

# भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

५

इस ग्रन्थमाला का उद्देश्य

प्राकृत संस्कृत आदि में निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन,  
साहित्य, पुराण आदिका यथा सम्भव  
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना



सञ्चालक

भा० दि० जैनसंघ

---

ग्रथाङ्क १-३

---

प्राप्तिस्थान

मैनेजर

भा० दि० जैन संघ

चौरासी, मथुरा

मुद्रक—शिवनारायण उपाध्याय, नया ससार प्रेस, काशी ।

Sri Dig Jain Sangha Granthmala No. 1-III

# **KASĀYA-PĀHUDAM**

III

(THIDI VIHATTI)

BY

**GUNABHADRACHARYA**

WITH

**CHURNI SUTRA OF YATIVASHABHACHARYA**

AND

**THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF**

**VIRASENACHARYA THERE-UPON**

EDITED BY

**Pandit Phulachandra Siddhantashastri**

*EDITOR MAHABANDHA*

*JOINT EDITOR DHAVALA,*

**Pandit Bailashachandra, Siddhantashastri**

*Nyayatirtha Siddhantarastha*

*Pradhasadhyapak Syadvada Digambara Jain*

*Vidyalyaya, Benares.*

PUBLISHED BY

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT

**THE ALL INDIA DIGMBAR JAIN SANGHA**

**CHAURASI, MATHURA**

VIRA SAMVAT 2481] VIKRAMA B. 2012

[ 1955 A. C.

# Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year—]

[—Vira Niravan Samvat 2468

*Aim of the Series —*

**Publication of Digambara Jain Siddhanta,  
Darsana, Purana, Sahitya and other Works  
in Prakrit, Samskrit etc. Possibly with Hindi  
Commentary and Translation.**

*DIRECTOR —*

**SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA**

**NO. 1. VOL. III.**

*To be had from —*

**THE MANAGER  
SRI DIG. JAIN SANGHA.  
CHAURASI, MATHURA,  
U P (INDIA)**

*Printed by—S N UPADHYAYA,  
AT THE NAYA SANBAR PRESS, BANARAS*

**800Copies,**

**Price Rs Twelve only**

## प्रकाशककी ओर से

आज साठ वर्षके पश्चात् कसावपाहुड (जयजयला) के तीसरे भाग (स्थिति विमर्श) को प्रकाशित करते हुए हमें जहाँ हँस है वहाँ अपन पर खेद भी है। दूसरा भाग प्रकाशित करते समय ही जयजय कागज दुष्प्राप्य था और प्रस सम्बन्धी कठिनाइयों भी थीं। उसके पश्चात् आर्थिक कठिनाई भी उपस्थित होगी और प्रयास करनेपर भी दुष्प्राप्त कार्य प्राप्त न हो सका।

इसी बीचमें संयुक्त प्रकाशकजी पं० रामेन्द्रकुमारजीन प्रधानमंत्रित्वके कार्य-कारणसे मुक्ति ले ली और पं० जगमोहनलालजी शर्माजीको प्रधानमंत्रित्वका भार सौंपा गया। आपके कार्यकालमें दुष्प्राप्त पुर (मध्यप्रदेश) में संयुक्त आर्थिक अभिवृद्धि हुआ और हमका समापतिपद बोंगरगढ़ (मध्यप्रदेश) के प्रसिद्ध ज्वालना दानवीर सेठ भागवन्मुखीन सुरोमित किया।

उस अवसर पर आपन कसावपाहुड (जयजयला) के प्रकाशकको पत्र रत्नके लिये म्याद हजार रुपयोंके दानकी वृद्धि कागज की और यह भी आश्वासन दिया कि दानकी कमीके कारण यह सत्कार्य पन् नहीं होगा। इससे समीक्षा एवं दुष्प्राप्त और कागज तथा प्रेसकी व्यवस्था होते ही तीसरा भाग प्रेसमें द दिया गया जो एक वर्षके पश्चात् प्रकाशित हो रहा है। तथा चौथे भागके भी कुछ कार्य आप खुद हैं और पाँचवें भाग भी प्रेसमें दिया जानेवाला है।

यह सब दानवीर सेठ भागवन्मुखीजी वृद्धि दानकीलताका ही सुफल है। उन्होंने अपनी क्षमताका विनियोग ऐसे सत्कार्यमें करके दानकों और दानियों के समुदाय एक आसरा उपस्थित करनेके साथ साथ असह्य पुण्यसाध लिया है। क्योंकि शास्त्रार्थोंम क्या है—

ये यजन्त भुतं मत्स्या तं यजन्तेऽङ्गुला बिनम् ।

न किञ्चिन्तरं मातुरा हि भुतदेवयोः ॥

‘जा मच्छिपूर्वकं भुतकी पूजा करत हैं वे अग्राह्यसे बिनन्तदेवकी ही पूजा करते हैं क्योंकि सर्वश्रेष्ठसे भुत और बिनन्तदेवमें कुछ भी भेद नहीं बतलाया है।’

अतः कसावपाहुड जैसे प्रत्येकके प्रकाशकमें दानका विनियोग करके सेठ भागवन्मुखीने प्रकाशकवृत्तसे गहरा महोत्सवकी ही सम्पन्न किया है, क्योंकि जिनविषय प्रतिष्ठासे जिनवाणी प्रतिष्ठा किसी भी कार्यमें कम नहीं है।

हम सेठ भागवन्मुखीकी उनकी इस उदारताके लिय शतशः अभ्यवाह देते हैं और आशा करते हैं कि अब यह सत्कार्य अवश्य ही विधिपूर्वक पूर्ण होगा।

इस भागके अनुवादादि समस्त कार्य पं० पूरुषोत्तमजी सिद्धान्तशास्त्रीने निष्पन्न किये हैं। मूल व अनुवाद आदि संशोधन व पाठ मिलान आदि कार्यमें मैंने भी पंडितजीके साथ सहयोग किया है। पण्डितजी आगेके कण्ठोंका भी सब कार्य बड़ी तत्परतासे कर रहे हैं। कुछ दानमें भी उनकी मेरवा विशेषता रही है। इसलिये व भी अभ्यवाहके पात्र हैं।

इस भागमें स्थिति विमर्श नामक अधिकार भाग है, जो अपूर्ण है, वह चौथे भागमें पूर्ण होगा। इसलिये उसके सङ्ग्रहमें संपादकीय कथन वगैरह चौथे अधिकारमें दिया जायेगा।

कार्यमें गजपट पर स्थित स्व० बाबू जेरीलालजीके किन्मतान्तरके नीचेके भागमें जयजयला कावलिज अपन जन्मकालसे ही स्थित है। और वह स्व० बाबू सा के सुपुत्र धर्मदेसी बाबू गणेशदासजी और पौत्र बा० खलिरामजी तथा आपसवन्धुजीके सौजन्य और धर्मप्रेमका परिचायक है, अतः मैं उन सज्जनोंका भी आभारी हूँ।



संहारनपुरके स्व० लाला जम्बूप्रसादजीके सुपुत्र रायसाहिब लाला प्रद्युम्नकुमारजीने अपने जिन-मन्दिरजीकी श्री जयधवलजीकी प्रति मिलानके लिये प्रदान की । श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशी-के अकलङ्क सरस्वती भवनके ग्रन्थोंका उपयोग विद्यालयके व्यवस्थापकोंके मौजन्यसे जयधवलके सम्पादनमें हो सका है । तथा जैन सिद्धान्त भवन आराके पुस्तकाध्यक्ष श्री प० नेमिचन्दजी ज्योति-पाचार्यके सौहार्दसे भवनसे सिद्धान्त ग्रन्थोंकी प्रतिया आदि प्राप्त होती रहती हैं, अतः उक्त सभी सज्जनोंका भी मैं आभारी हूँ ।

नया ससार प्रेसके व्यवस्थापक प० शिवनारायणजी उपाध्याय तथा उनके कर्मचारी भी धन्यवादके पात्र हैं जिन्होंने इस ग्रन्थके मुद्रण में पूर्ण सहयोग दिया ।

जयधवल कार्यालय  
भदौनी, काशी  
भाद्रपद कृष्ण १  
वी० नि० सं० २४८१

}

कैलाशचन्द्र शास्त्री  
मन्त्री साहित्य विभाग  
भा० दि० जैनसघ





## चित्र परिचय

देरी बोलीमें 'माम्म' को 'माग' कहते हैं और जिनका माग सराहने योग्य होता है उन्हें मागचन्द्र कहते हैं। बोंगरगाड़निवासी बानधीर सेठ मागचन्द्रजी पेसे ही व्यक्तियोंमेंसे एक हैं। यह इसलिये नहीं कि वे आधुनिक साक्षरसाक्षी मन्दिर मन्त्रन्त्रमें रहते हैं। उनके यहाँ निरंतर दस-पाँच नौकर लगे रहते हैं और बहाँकी परिस्थितिके अनुरूप व साधनसम्पन्न हैं वरिष्ठ इसलिये कि उन्हें पुण्य और भवे जो भी साधन मिले हैं अपनी परिस्थितिके अनुरूप व उनका उपयोग लोकसेवा व सांस्कृतिक और सामाजिक कार्योंमें करना जानते हैं।

लगभग दस वर्ष पूर्व सेठ सा० से हमारी प्रथम भेंट हुई थी। उस समय व मोटर अपघातसे पीड़ित हो अस्पतालमें पड़ हुए थे। सेठ सा०का छाती व सिरमें गुरी चोट आई थी, इसलिये उनके कार्य-कार्य कई परिचरक परिचर्यामें लगे हुए थे। डाक्टर कुर्सी बाज़र सिखाने बैठा हुआ था और दस-पाँच नर्स रिस्तेदार व मित्र शोकपूर्ण कर रहे थे। किसीको मिलन नहीं दिया जाता था। बात बात करना तो दूरकी बात थी। हमें केवल वृत्तसे देखनेभरका अवसर मिला था। हम चढ़ते भी नहीं व कि पसी परिस्थितिमें उनसे किसी प्रकारकी बातचीत की जाय। किन्तु उनकी सतर्क आँखोंने हमें पहिचान लिया और डाक्टरके सत्य मना करनेपर भी वे बोलनसे अपने आपको म रोक सके। पासमें जुलाकर कहने लगे—'पण्डितजी आप आगत, अच्छा हुआ। हमारी सेवा स्वीकार किये बिना आप जा नहीं सकते। सिर्फ़ वा दिन रुकें। इतनेमें ही हम इस लाबाड़ हो जायेंगे कि आपसे कन्व भिन्न बातचीत कर सकें और आपका मुँहसे बर्मेके दो शब्द सुन सकें।'

सेठ सा० एक भावनाप्रधान असाह्य व्यापारपुरुष व्यक्तित्व हैं। वे किसी विद्वान् त्यागी या अविशिष्ट अपने पर आमा हुआ देवकृष्ण मिल पड़ते हैं और सपत्नीक हर तरहसे उत्कृष्ट आचर-स्तुति करनेमें जुग जाते हैं। कभी कभी तो पता भी चला गया है कि वे इस आचरसाधनमें लगे रहनेके कारण उस दिन करने योग्य अन्य आवश्यक कार्योंकी भी भूल जाते हैं। इस कारण उन्हें काफ़ी झट्टि भी पड़ती है।

सेठ सा० की मुख्य रुचि विपणन शिक्षा है। संस्कृत शिक्षा और ज्ञानरूपि पर गुण और प्रकाशरूपमें आप निरन्तर कार्य करते रहते हैं। रामटेक गुस्सुसके आप प्रबल आत्मन्त्र हैं। एक मात्र इसीकी सेवाके उत्तरवर्तमें समाज द्वारा आप 'बानधीर' पदसे सम्मानित किये गये हैं। आप अपने गौर्वमें एक हाइस्कूल बोसना चाहते थे। किन्तु हमारे यह करने पर कि इस शिक्षापर कार्य करनेवाले प्युट हैं आपको सांस्कृतिक और सामाजिक कार्योंकी ओर ही मुख्य रूपसे ध्यान देना चाहिये सेठ सा० ने यह विचार त्याग दिया है।

इधर आपका ध्यान साहित्यिक सेवाकी ओर भी गया है। भी व यहाँ बौद्ध ग्रंथालाकमें आप निरंतर सहायता करते रहते हैं। हम वष भी बोंगरगाड़ जाते हैं, काफ़ी हाव नहीं झोन्ते। यह भी नहीं कि हमें माँगना पड़ता हो। बल्कि समय हज़ार-पाँचसौ को भी देना होता है, स्वेच्छासे उपस्थित कर देते हैं। यह पूछने पर कि इसे किस मर्मे कार्य किया जाय एक मात्र यही उत्तर मिला है कि आपकी इच्छा।

श्री भारतवर्षीय विद्वान् जैनसंघ एक पुरानी संस्था है। मुख्यरूपसे इसके सहायक विद्वान् हैं। अब तक इस संस्थामें साहित्यसेवा और धर्मप्रचारके क्षेत्रों को सेवा की है और कर रही है यह किसीके विपरीत हुई नहीं है। साक्षात्क व दिन हमें आज भी याद आते हैं जब आर्चसमाजका

जोर था और जैनियोंको शास्त्रार्थके लिये सार्वजनिक रूपसे ललकारा जाता था। उस समय यही एक ऐसी सस्था थी जिसने आर्यसमाजियोंसे न केवल टक्कर ली, अपितु अपने प्रचार और शास्त्रार्थके वलपर उनका सदाके लिये मुँह बन्द कर दिया और बल तोड़ दिया। ऐसी प्रसिद्ध सस्थाके वर्तमान स्थायी अध्यक्ष सेठ सा० ही हैं। आप इस पदका बड़ी सुन्दरतासे निर्वाह कर रहे हैं। इसके साथ आप श्री जयधवलाजीके प्रकाशनका भार भी सम्हाल रहे हैं। उसीके परिणामस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थका प्रकाशन हो रहा है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रमें आपकी जो विशेषता है वह राजनैतिक और सार्वजनिक क्षेत्रमें भी देखनेको मिलती है। आप अपने क्षेत्रमें इतने अधिक लोकप्रिय हैं कि गरीब अमीर सभी आपकी सलाह लेने तथा उचित सहायता प्राप्त करनेके लिये आपके पास आते रहते हैं। कई वर्ष पूर्व आपकी इस लोकप्रियता और परोपकारी स्वभावके कारण आप खैरागढ़ राज्य और जनता द्वारा 'राज्यरत्न' जैसी सम्मानित उपाधिसे विभूषित किये गये थे। जनता और सरकारमें आज भी आपका बड़ी सम्मान है।

सयोगवश आपको जीवनसाथी भी आपके अनुरूप ही मिला है। बहिन नर्मदाबाई अपने ढंगकी एक ही महिलारत्न हैं। इनकी टक्करकी बहुत ही कम महिलाएँ समाजमें देखनेको मिलेंगी। आपके मुखपर प्रसन्नता और बोलीमें मिठास है। समय निकालकर धर्मशास्त्रके स्वाध्यायद्वारा आत्म-कल्याणमें लगे रहना आपका दैनंदिनका कार्य है। सेठ सा० जो भी लोकोपकारी कार्य करते हैं उन सबमें आपका पूरा सहयोग रहता है। फिर भी आपकी रुचिका मुख्य विषय आयुर्वेदिक औषधियोंका समग्र कर और जो सम्भव है उन्हें स्वयं तैयार कर गरीब अमीर सबको समान भावसे वितरित करना है। चिकित्साशास्त्रका आपने सविधि अध्ययन किया है, अतएव आप स्वयं रोगियोंको देखने जाती हैं और आवश्यकता पडने पर दूसरे वैद्य वा डाक्टरकी भी सहायता लेती हैं। इनके इस कार्यमें सेठ सा० भी बड़ी रुचि रखते हैं और बहिन नर्मदाबाईको उत्साहित करते रहते हैं। तथा कभी कभी स्वयं भी इस कार्यमें जुट जाते हैं।

वर्तमान देश और समाजके लिये ऐसे सेवाभावी महानुभावोंकी बड़ी आवश्यकता है। हमारी मङ्गलकामना है कि यह दम्पति युगल चिरजीवी हो और परोपकार जैसे महान् लोकोपकारी कार्यको करते हुए पुण्य और यशके भागी बने।

फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

# विषय-सूची

## स्थितिबिम्बिक पु० १

| विषय  | पृष्ठ | विषय                      | पृष्ठ |
|---|-------|---------------------------|-------|
| मंगलाचरण  | १     | स्वामित्व                 | १६-२४ |
| स्थितिबिम्बिक के दो भेद   | २     | उत्कृष्ट स्वामित्व        | १६-२० |
| स्थितिबिम्बिक की सार्वकला   | २     | अपम्य स्वामित्व           | २०-२५ |
| स्थितिबिम्बिक के दो भेदों का समुचित निर्वेश                       | २-३   | काल                       | २५-४७ |
| मूल प्रकृतिस्थितिबिम्बिक विशेष                                    | ३-४   | उत्कृष्ट काल              | २५-३६ |
| उद्देश्य  | ४-४   | अपम्य काल                 | ३६-४७ |
| स्थितिबिम्बिक का अर्थपर   | ५     | मूलोपपाद्या पाठका निर्वेश | ४०    |
| मूल प्रकृतिस्थितिमें बिम्बिक                                      | ५-६   | अन्तरात्मगम               | ४७-५३ |
| पदकी सार्वकला   | ५-६   | उत्कृष्ट अन्तरात्मगम      | ४७-५० |
| उत्तर प्रकृतिस्थितिमें बिम्बिक                                    | ६-७   | अपम्य अन्तरात्मगम         | ५१-५३ |
| पदकी सार्वकला   | ६-७   | माना बीषोंकी अपेक्षा      | ५३-५७ |
| मूल प्रकृतिस्थितिबिम्बिक के अनुयोगद्वारा                          | ७-८   | मज्जविषय                  | ५३-५७ |
| य ही अनुयोगद्वारा उत्तर प्रकृतिस्थिति बिम्बिकमें भी लागू होते हैं | ८     | उत्कृष्ट मज्जविषय         | ५३-५६ |
| मूलप्रकृतिस्थितिबिम्बिक   | ८-१३० | अपम्य मज्जविषय            | ५६-५७ |
| २४ अनुयोगद्वारा   | ८-१३  | भागामात्मगम               | ५८-६० |
| अद्याप्येव  | ८-१४  | उत्कृष्ट भागामात्मगम      | ५८-५९ |
| उत्कृष्ट अद्याप्येव   | ८-१९  | अपम्य भागामात्मगम         | ५९-६० |
| अपम्य अद्याप्येव  | १९-१४ | परिमाणात्मगम              | ६१-६३ |
| सर्व-नोत्सर्गबिम्बिक  | १४    | उत्कृष्ट परिमाणात्मगम     | ६१-६२ |
| उत्कृष्ट-अनुकृष्टवि   | १४    | अपम्य परिमाणात्मगम        | ६२-६३ |
| अपम्य-अपम्यवि   | १४    | चेत्रात्मगम               | ६४-६७ |
| सर्वस्थिति और अद्याप्येवकी  | १४-१६ | उत्कृष्ट चेत्रात्मगम      | ६४-६५ |
| उत्कृष्ट स्थितिमें अन्तर कथन                                      | १४-१६ | अपम्य चेत्रात्मगम         | ६५-६७ |
| उत्कृष्ट बिम्बिक और उत्कृष्ट                                      | १६    | स्पर्शानुगम               | ६८-७० |
| अद्याप्येवमें अन्तर कथन   | १६    | उत्कृष्ट स्पर्शानुगम      | ६८-७० |
| सर्वबिम्बिक और उत्कृष्ट   | १६    | अपम्य स्पर्शानुगम         | ७०-७३ |
| बिम्बिकमें अन्तर कथन  | १६    | कालात्मगम                 | ७०-७३ |
| साक्षि-अनक्षि मुख-अमुखवि  | १६-१६ | उत्कृष्ट कालात्मगम        | ७३-७५ |
|   |       | अपम्य कालात्मगम           | ७३-७५ |
|   |       | अन्तरात्मगम               | ७५-७९ |
|   |       | उत्कृष्ट अन्तरात्मगम      | ७५-७९ |
|   |       | अपम्य अन्तरात्मगम         | ७९-८३ |

| विषय                           | पृष्ठ   | विषय                            | पृष्ठ   |
|--------------------------------|---------|---------------------------------|---------|
| भावानुगम                       | ६३      | कालानुगम                        | १७५-१८० |
| अल्पबहुत्वानुगम                | ६३-६५   | अन्तरानुगम                      | १८०-१८५ |
| उत्कृष्ट अल्पबहुत्वानुगम       | ६३-६४   | भावानुगम                        | १८५     |
| जघन्य अल्पबहुत्वानुगम          | ६४-६५   | अल्पबहुत्वानुगम                 | १८५-१८६ |
| भुजगारके १३ अनुयोगद्वार        | ६५-१२७  | स्थानप्ररूपणा                   | १८६-१९० |
| समुत्कीर्तनानुगम               | ६५-६६   | उत्तरप्रकृतिस्थितिभिक्ति        | १९१-५४४ |
| स्वामित्वानुगम                 | ६६-६७   | अर्थपद और उसकी व्याख्या         | १८१-१८२ |
| कालानुगम                       | ६८-१०८  | स्थिति पदकी व्याख्या            | १८२     |
| अन्तरानुगम                     | १०८-१११ | उत्तरप्रकृति पदकी व्याख्या      | १८२     |
| नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्ग विचय | १११-११३ | चौवीस अनुयोग द्वार              | १८३-५४४ |
| भागाभागानुगम                   | ११३-११४ | अनुयोगद्वारोंका नाम निर्देश     | १८३     |
| परिमाणानुगम                    | ११४-११५ | भुजगार आदि अनुयोगद्वारोंका २४   |         |
| क्षेत्रानुगम                   | ११६-११७ | अनुयोगद्वारोंमें अन्तर्भाव      | १८३     |
| स्पर्शानुगम                    | ११७-१२० | अद्धाच्छेद                      | १८४-२१४ |
| कालानुगम                       | १२१-१२२ | उत्कृष्ट स्थिति अद्धाच्छेद      | १८४-२०२ |
| अन्तरानुगम                     | १२३-१२५ | मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति     | १८४-१८५ |
| भावानुगम                       | १२६     | सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी  |         |
| अल्पबहुत्वानुगम                | १२६-१२७ | उत्कृष्ट स्थिति                 | १८५-१८६ |
| पदनिक्षेपके ३ अनुयोगद्वार      | १२७-१३५ | सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति   | १८७     |
| समुत्कीर्तना                   | १२७-१२८ | नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति   | १८७-१८८ |
| उत्कृष्ट समुत्कीर्तना          | १२७-१२८ | चारों गतियोंमें सब कर्मोंकी     |         |
| जघन्य समुत्कीर्तना             | १२८     | उत्कृष्ट स्थिति                 | १८८     |
| स्वामित्वानुगम                 | १२८     | १४ मार्गणाओंमें उच्चारणाके      |         |
| उत्कृष्ट स्वामित्वानुगम        | १२८-१३३ | अनुसार उत्कृष्ट स्थिति          | १८८-२०२ |
| जघन्य स्वामित्वानुगम           | १३३-१३४ | जघन्य स्थिति अद्धाच्छेद         | २०२-२१४ |
| अल्पबहुत्व                     | १३४-१५५ | मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और   |         |
| उत्कृष्ट अल्पबहुत्व            | १३४-१३५ | वारह कपायोंकी जघन्य स्थिति      | २०३-२०५ |
| जघन्य अल्पबहुत्व               | १३५     | सम्यक्त्व, लोभसज्जलन, स्त्रीवेद |         |
| वृद्धिके १३ अनुयोगद्वार        | १३६-१८६ | और नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति      | २०५-२०७ |
| समुत्कीर्तना                   | १३६-१३७ | क्रोधसज्जलनकी जघन्य स्थिति      | २०७-२०८ |
| स्वामित्वानुगम                 | १३८-१४१ | मानसज्जलनकी " "                 | २०८-२०९ |
| कालानुगम                       | १४१-१४६ | मायासज्जलनकी " "                | २०९     |
| अन्तरानुगम                     | १४६-१६० | पुरुषवेदकी " "                  | २०९-२१० |
| नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय  | १६०-१६४ | छह नोकपायोंकी " "               | २१०     |
| भागाभागानुगम                   | १६४-१६६ | गतियोंमें जघन्य स्थिति जानने    |         |
| परिमाणानुगम                    | १६६-१६८ | की सूचना                        | २११     |
| क्षेत्रानुगम                   | १६८-१६९ | १४ मार्गणाओंमें उच्चारणाके अनु- |         |
| स्पर्शानुगम                    | १६९-१७५ | सार जघन्य स्थिति                | २११-२२५ |

| विषय                                 | पृष्ठ   | विषय                                | पृष्ठ   |
|--------------------------------------|---------|-------------------------------------|---------|
| उच्चारणोंके अनुसार नोक्यायोंके       |         | और सुगुप्ता                         | २६६     |
| बन्धक कालका असम्बन्ध                 | २१३     | सम्बन्ध और सम्बन्धिमन्त्रात्        | २७०     |
| इस विषयमें व्याख्यानात्मक            |         | जीव, पुरुषत्व, हास्य और रति         | २७०-२७१ |
| अभिप्राय                             | २१३-२१४ | चार गतियोंमें                       | २७२     |
| सर्प-मोसर्पस्थितिविभक्ति             | २२६     | उच्चारणोंके अनुसार काल              | २७२-२८० |
| उत्कृष्ट-अमुत्कृष्टस्थिति०           | २२६     | अपम्य स्थितिका काल                  | २८०-३१५ |
| अपम्य-अअपम्यस्थिति०                  | २२६-२२७ | मिथ्यात्व, सम्बन्ध सम्बन्धि         |         |
| सादि अनादि ॥ अ-अमुत्कृष्ट            | २२७-२२८ | ध्यात्व, सोसाह कपाय और              |         |
| एक जीवकी अर्थसा स्वामित्व            | २२८ २६६ | तीन वर्ष                            | २८०-२८१ |
| उत्कृष्ट स्थितिका स्वामित्व          | २२८-२४१ | ब्रह्म नोकपाय                       | २८१-२८२ |
| मिथ्यात्व                            | २२८-२३० | अपम्य स्थिति और अपम्य अन्ता         |         |
| सोसाह कपाय                           | २३०     | पञ्चेव तथा उत्कृष्ट स्थिति और       |         |
| सम्बन्ध और सम्बन्धिमन्त्रात्         | २३१-२३२ | उत्कृष्ट अन्तापञ्चेव विचार          | २८१-२८२ |
| नौ नोकपाय                            | २३३-२३४ | उच्चारणोंके अनुसार अपम्य            |         |
| १४ मार्गवाच्योंमें उच्चारणोंके       |         | स्थितिका काल                        | २८२-३१५ |
| अनुसार स्वामित्व                     | २३४-२४१ | अन्तर                               | ३१६-३४५ |
| अपम्य स्थितिका स्वामित्व             | २४१-२६६ | उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर             | ३१६-३३० |
| मिथ्यात्व                            | २४१-२४२ | मिथ्यात्व और १६ कपाय                | ३१६-३१७ |
| सम्बन्ध                              | २४३     | नौ नोकपाय                           | ३१७-३१८ |
| सम्बन्धिमन्त्रात्                    | २४४     | सम्बन्ध और सम्बन्धिमन्त्रात्        | ३१८-३१९ |
| अनन्तानुबन्धी चार                    | २४५-२४७ | उच्चारणोंके अनुसार उत्कृष्ट स्थिति- |         |
| मध्यकी आठ कपाय                       | २४८-२४९ | का अन्तर                            | ३१९-३३० |
| क्रोधसंस्कृतन                        | २४९-२५० | अपम्य स्थितिका अन्तर                | ३३०-३४५ |
| मान और माया संस्कृतन                 | २५०     | मिथ्यात्व, सम्बन्ध, चारह कपाय       |         |
| शोम संस्कृतन                         | २५१     | और नौ नोकपाय                        | ३३१     |
| जीविह                                | २५१-२५२ | सम्बन्धिमन्त्रात् और अनन्तानु-      |         |
| पुरुषत्व                             | २५२-२५३ | बन्धी चार                           | ३३१-३३२ |
| नपुंसकत्व                            | २५३     | उच्चारणोंके अनुसार अपम्य स्थिति     |         |
| ब्रह्म नोकपाय                        | २५३-२५४ | का अन्तर                            | ३३३-३४५ |
| भारुकिमोंमें अपम्य स्वामित्व         | २५४-२५८ | मना जीवोंकी अपम्य भद्रविषय          | ३४५-३४६ |
| शेव गतियोंमें                        | २५८     | अर्थपद                              | ३४६-३४७ |
| संय मार्गवाच्योंमें उच्चारणोंके अनु- |         | उत्कृष्ट स्थितिका भद्रविषय          | ३४७-३४८ |
| सार अपम्य स्वामित्व                  | २५८-२६६ | मिथ्यात्वकी अपम्य भद्रविषय          | ३४७-३४८ |
| काल                                  | २६६-३१५ | शेव भद्रगियोंकी अपम्य भद्रविषय      | ३४८     |
| उत्कृष्ट स्थितिभिन्निका काल          | ३१५-३२० | उच्चारणोंके अनुसार भद्रविषय         | ३४८-३४९ |
| मिथ्यात्व                            | ३२०-३२८ | अपम्य स्थितिका भद्रविषय             | ३४९-३५३ |
| सातह कपाय                            | ३२८-३३९ | अर्थपद                              | ३५०     |
| पुनस्तम्भेव अरति, शास्त्र, भय        |         | मिथ्यात्वकी अपम्य भद्रविषय          | ३५०-३५१ |



| विषय                                  | पृष्ठ   |
|---------------------------------------|---------|
| शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भङ्गविचय     | ३५१     |
| उच्चारणके अनुसार भङ्गविचय             | ३५१-३५३ |
| भागाभागानुगम                          | ३५४-३५७ |
| उत्कृष्ट भागाभागानुगम                 | ३५४-३५५ |
| जघन्य भागाभागानुगम                    | ३५६-३५७ |
| परिमाणानुगम                           | ३५८-३६३ |
| उत्कृष्ट परिमाणानुगम                  | ३५८-३५९ |
| जघन्य परिमाणानुगम                     | ३६०-३६३ |
| चैत्रानुगम                            | ३६४-३६७ |
| उत्कृष्ट चैत्रानुगम                   | ३६४     |
| जघन्य चैत्रानुगम                      | ३६५-३६७ |
| स्पर्शानुगम                           | ३६८-३७७ |
| उत्कृष्ट स्पर्शानुगम                  | ३६८-३७८ |
| ओषसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदमे          |         |
| स्पर्शनके मतभेदका निर्देश             | ३६८     |
| जघन्य स्पर्शानुगम                     | ३७९-३८७ |
| तिर्यङ्मौमें कुछ प्रकृतियोंकी अपेक्षा |         |
| स्पर्शनमें पाठभेद                     | ३८०     |
| नाना जीवोंकी अपेक्षा काल              | ३८७-४०६ |
| उत्कृष्ट काल                          | ३८७-३९४ |
| सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके        |         |
| उत्कृष्ट कालका स्वतन्त्र निर्देश      | ३८३-३८९ |
| उच्चारणके अनुसार उत्कृष्ट काल         | ३८९-३९४ |
| जघन्यकाल                              | ३९४-४०६ |
| मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कपाय       |         |
| और तीन वेद                            | ३९४-३९५ |
| सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ता-            |         |
| नुवन्धी चार                           | ३९५-३९६ |
| छह नोकपाय                             | ३९६     |
| उच्चारणके अनुसार जघन्य काल            | ३९६     |
| चूर्णिसूत्र, घण्टदेवकी उच्चारण        |         |
| और वीरसेन द्वारा लिखित                |         |
| उच्चारणमें पाठभेदका निर्देश           | ३९८-४०६ |
| नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर            | ४०६-४१४ |
| उत्कृष्ट अन्तर                        | ४०६-४१० |
| सप्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तर      | ४०६-४०७ |
| उच्चारणके अनुसार उत्कृष्ट अन्तर       | ४०७-४१० |
| जघन्य अन्तर                           | ४१०-४२४ |

| विषय                                 | पृष्ठ   |
|--------------------------------------|---------|
| मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कपाय        |         |
| और छह नोरूपाय                        | ४१०-४११ |
| सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ता-           |         |
| नुवन्धी चार                          | ४११     |
| तीन सज्ज्वलन और पुरुषवेद             | ४१२-४१३ |
| लोभसज्ज्वलन                          | ४१३     |
| स्त्रीवेद और नपुंसकवेद               | ४१३-४१४ |
| नरकगतिमें सप्त प्रकृतियोंके अन्तर    |         |
| का विचार                             | ४१५     |
| उच्चारणके अनुसार जघन्य अन्तर         | ४१५-४२४ |
| भावानुगम                             | ४२४-४२५ |
| उत्कृष्ट भावानुगम                    | ४२४     |
| उपशान्तकपाय गुणस्थानमें सप्त         |         |
| प्रकृतियोंका औद्देशिक भाग            |         |
| कैसे बनता है इस शकाका                |         |
| परिहार                               | ४२४     |
| जघन्य भावानुगम                       | ४२४-४२५ |
| सन्निकर्ष                            | ४२५-४२४ |
| उत्कृष्ट सन्निकर्ष                   | ४२५-४२४ |
| मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आल-    |         |
| म्बन लेकर सन्निकर्ष विचार            | ४२५-४५४ |
| सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आल-    |         |
| म्बन लेकर सन्निकर्ष विचार            | ४५५-४५८ |
| सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  |         |
| अवलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार         | ४५८-४५९ |
| सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका      |         |
| आलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार          | ४५९     |
| स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका आलम्बन |         |
| लेकर सन्निकर्ष विचार                 | ४५९-४७२ |
| शेष प्रकृतियोंकी अर्थात् हास्य, रति, |         |
| और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका      |         |
| आलम्बन लेकर सन्निकर्ष विचार          | ४७२-४७५ |
| मतभेदका उल्लेख                       | ४७४     |
| नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका आल     |         |
| म्बन लेकर सन्निकर्षका निर्देश        | ४७६-४८२ |
| अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी          |         |
| उत्कृष्ट स्थितिका आलम्बन लेकर        |         |
| सन्निकर्षका निर्देश                  | ४८२-४८५ |

| विषय                                 | पृष्ठ   | विषय                              | पृष्ठ   |
|--------------------------------------|---------|-----------------------------------|---------|
| उच्चारणाके अनुसार वक्तृत्व सम्भिकर्ष | ४८५-४८४ | नरकजातिमें सब प्रकृतियोंके अस्य   |         |
| अपन्य सन्तिकर्ष                      | ४८४-५२४ | वहुत्व का विचार                   | ५२६-५२७ |
| मिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिका           |         | उच्चारणाके अनुसार वक्तृत्व स्थिति |         |
| आत्मन्वन सेकर सम्भिकर्ष विचार        | ४८४     | अस्यवहुत्व                        | ५२८-५३० |
| श्रेय प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका    |         | उच्चारणाके अनुसार अपन्य स्थिति    |         |
| आत्मन्वन सेकर सम्भिकर्ष विचार        | ४८५     | अस्यवहुत्व                        | ५३०-५४२ |
| उच्चारणाके अनुसार अपन्य सम्भिकर्ष    | ४८५-५२४ | उच्चारणाके अनुसार वक्तृत्व कलाकी  |         |
| अस्यवहुत्व                           | ५२४-५४४ | अपेक्षा संचष्टि सहित सब           |         |
| स्थिति अस्यवहुत्व                    | ५२४-५४२ | प्रकृतियोंके अस्यवहुत्वका निर्देश | ५३१-५३२ |
| वक्तृत्व स्थिति अस्यवहुत्व           | ५२४-५३० | चिरन्तन व्याख्यानानामके द्वारा    |         |
| नौ नोक्तव्य                          | ५२४-५२५ | निर्दिष्ट अस्यवहुत्व              | ५३२-५३३ |
| सोत्तर कपाय                          | ५२५     | दामों अस्यवहुत्वोंमें मतभेदका     |         |
| सम्यग्मिथ्यात्व                      | ५२५     | उत्प्रेषण                         | ५३३     |
| सम्यक्त्व                            | ५२५-५२६ | तियज्ञगतिमें एक दोनों अस्य-       |         |
| पूर्वसूत्र और उच्चारणाका आत्मन्वन    |         | वहुत्वोंकी अपेक्षा पुनः विचार     | ५३५     |
| सेकर आत्मन्वन और निरेक्यमान          |         | जीव अस्यवहुत्व                    | ५४२-५४४ |
| स्थितिका आत्मन्वन सहित निर्देश       | ५२५-५२६ | वक्तृत्व जीव अस्यवहुत्व           | ५४२-५४३ |
| मिथ्यात्व                            | ५२६     | अपन्य जीव अस्यवहुत्व              | ५४३-५४४ |

### शुद्धि

पृष्ठ २२७ के मूलकी ७ वीं पंक्ति इस पृष्ठकी प्रथम पंक्ति है।





कसायपाहुडस्स  
ट्टि दि वि ह ती  
तदियो अत्थाहियारो





सिरि अइबसहाइरियविरइय-बुगिणसुचसमणिकरुं

सिरि-भगवत्सुणहरमहारभोवइहुं

# क सा य पा हु डं

तस्स

सिरि-वरिसेणाइरियविरइया टीका

## जयधवला

तत्त्व

द्विदिबिह्वी णाम विदिभो अरुवाहियारो

— ०३-३-०३-०३ —

मैताइ-मङ्करहिया जाइ-मरा-मरणवतपोरइ।

संसारसया तयई जेण च्छिज्जा मिणं बदे ॥

जिन्होंने आदि मध्य और अन्तसे रहित तथा जाति सत्ता और मरणरूपी अन्त्य पोरोंसे ब्याप्त संसाररूपी बलाको छोड़ दिया है उन जिनकेबला में (भीरसेन स्वामी) समस्कार करता है।

विशेषार्थ—बड़ा संसारको बेलकी रुपमा ही है। बेलका आदि भी है, मध्य भी है और

❀ द्विदिविहत्ती दुविहा, मूलपयडिद्विदिविहत्ती चेव उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती चेव ।

§ १ द्विदिविहत्ति त्ति अहियारो किमट्टमागओ ? पुब्बं पयडिविहत्तीए जाणाविदअट्ठावीसमोहकम्मसहावस्स सिस्सस्स तेसिं चेव अट्ठावीसमोहकम्माणं पवाहसरूवेण आदिविवज्जियाणमेगेसमयपवद्धविसेसप्पणाए सादिसपज्जवसाणाणं जहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ चोदसमग्गण-ट्ठाणाणि अस्सिदूण परूवणट्ठं द्विदिविहत्ती आगया । सा दुविहा मूलपयडिद्विदिविहत्तीउत्तरपयडिद्विदिविहत्तीभेदेण । तिविहा किण्ण होदि ? ण, मूलत्तरपयडिद्विदिवदिरत्ताए अण्णिस्से पयडिद्विदीए अभावादो । णोक्कम्मपयडिरूव-रसादीणं द्विदीणं द्विदीओ अत्थि, ताओ एत्थ किण्ण उच्चंति ?

अन्त भी है तथा उसकी पोरें भी स्वरूप होती हैं, पर यह संसार ऐसी वेल है जो सन्तान-क्रमसे अनादि कालसे चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा, अतः उसके आदि, मध्य और अन्तका निर्णय नहीं किया जा सकता है । तथा उसमें अनन्त जन्म, जरा और मरण होते रहते हैं । ऐसी संसाररूपी वेलको जिन जिनेन्द्रदेवने छेद दिया उन्हें मैं ( वीरसेन स्वामी ) नमस्कार करता हूँ । यहा प्रश्न होता है कि जिसके आदि, मध्य और अन्तका पता नहीं उसका छेद कैसे किया जा सकता है । समाधान यह है कि यद्यपि नाना जीवोंकी सन्तानकी अपेक्षा ससार आदि, मध्य और अन्तसे रहित है फिर भी कोई एक भव्य जीव उसका अन्त कर सकता है । इस प्रकार उक्त मगल गाथामे वीरसेन स्वामीने दोनों प्रकारके ससारके स्वरूपका निर्देश कर दिया है ।

❀ स्थितिबिभक्ति दो प्रकारकी है—मूलप्रकृति स्थितिबिभक्ति और उत्तरप्रकृति स्थितिबिभक्ति ।

§ १. शंका—स्थितिबिभक्ति यह अधिकार किसलिये आया है ?

समाधान—पहले जिस शिष्यको प्रकृतिबिभक्ति नामक अधिकारके द्वारा मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके स्वभावका ज्ञान करा दिया है उसे प्रवाहकी अपेक्षा आदिरहित और प्रत्येक समयमें वधनेवाले एक एक समयप्रवद्धविशेषकी अपेक्षा सादि तथा सान्त उन्हीं मोहनीयकी अट्ठाईस कर्मप्रकृतियोंकी चौदह मार्गणाओंके आश्रयसे जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका कथन करनेके लिये यह स्थितिबिभक्ति नामक अधिकार आया है ।

वह स्थितिबिभक्ति मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्तिके भेदसे दो प्रकारकी है ।

शंका—वह तीन प्रकारकी क्यों नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्तिको छोड़कर प्रकृतियोंकी अन्य स्थिति नहीं पाई जाती है, अतः स्थितिबिभक्ति तीन प्रकारकी नहीं होती ।

शंका—नोर्कर्म प्रकृतियोंके रूप और रसादिककी स्थितियों पाई जाती हैं, उनका यहाँ

ण, कम्मपयडिहिदिपकूणणाए पंक्ताए णोकम्महिदिपकूणणाए असमवादो ।

§ २ का मूलपयडिहिदी णाम ? अट्टानीसपयडीणं पयडिसमाणत्तणेण एयत्त मुनगयाणं हिदिषित्तेसा मूसपयडिहिदी । कथं पुणमूदहिदीणमेयत्तं ? सरित्तत्तणेण पयडीए । ण स पयडिसरित्तमसिद्धं, सप्पण्णमोहपयडीए पइमसमयप्पहुदि अविणासादा मोहपयडीसरुप्पेण अवट्टाणुनत्तामादो । मोहपयडिहिदीए सामण्णाए आदिषिवज्जियाए कथं परूयणा कीरवे ? ण, पवाहसरुप्पेण अण्णादिमोहपयडिहिदिं मोत्तूण एगसमयम्मि दुक्कमाहासंसपयडीणं माहपयडित्तणेण एयत्तमुवगयाणं हिदीए परूयणा कीरदि त्ति दोसाभावादा । एवं संते मूलपयडिहिदि त्ति कथं जुज्जद ? ण, सम्मसिं समयपवत्ताणं पयडिसमूहस्स मूलपयडित्तमुवगयाभावादा । का पुण

कथं कथो न्ही किया ?

समाधान—न्ही क्योंकि कर्मप्रवृत्तियोंकी स्थितिकी प्ररूपणा करते समय नाकर्मकी स्थितिकी प्ररूपणा करना असंभव है, अतः यहाँ नोकर्मप्रवृत्तियोंकी स्थितियोंका प्ररूप नहीं किया है ।

§ २ शंका—मूलप्रकृतिस्थिति किसे करते हैं ?

समाधान—प्रकृति सामान्यकी अपेक्षा एकत्वको प्राप्त हुई अट्टाईस प्रकृतियोंकी जो स्थिति-विशेष है उसे मूलप्रकृतिस्थिति करते हैं ।

शंका—यद्यपि सब प्रकृतियोंकी स्थितियाँ अलग अलग हैं, तब इनमें एकत्व कैसे हो सकता है ?

समाधान—प्रकृतिसामान्यकी अपेक्षा सभी प्रकृतिशै एक हैं, अतः इनकी स्थितियोंमें एकत्व माननेमें कोई बाधा नहीं आती ।

यदि कहा जाय कि प्रकृतियोंकी सदृशता अस्ति है सो भी बात नहीं है, क्योंकि मोहप्रकृतिके उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर जब तक उसका विनाश नहीं होता तब तक वस्तुतः मोहप्रकृतिरूपसे ही अवस्थान पाया जाता है, इसलिये इनमें सदृशता माननेमें कोई बाधा नहीं आती है ।

शंका—मोहकर्मकी सामान्य स्थिति आदिरोहित अर्थात् अनादि है, अतः उसकी प्ररूपणा कैसे की जा सकती है ?

समाधान—न्ही, क्योंकि प्रवृत्तिरूपसे अमादिकालीन मोहकर्मकी स्थितिको ब्राह्मण एक समर्थमें जो मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृतियाँ कथको प्राप्त होती हैं या कि मोहप्रकृति सामान्य की अपेक्षा एक है, इनकी स्थितिकी यहाँ प्ररूपणा की गई है, इसलिये कोई शोष नहीं है ।

शंका—यदि ऐसा है तो मूलप्रकृतिस्थिति कैसे बन सकती है ?

समाधान—न्ही क्योंकि संपूर्ण समकप्रवृत्तियोंको प्रकृतिसमूह है उसे यहाँ मूलप्रकृतिरूपसे स्वीकार नहीं किया है ।

शंका—तो फिर यहाँ मूलप्रकृति पक्षे किस्का महत्त्व किया है ?



एत्थ मूलपयडी ? एगसमयम्मि बद्धासेसमोहकम्मक्खंधाणं पयडिसमूहो मूलपयडी  
णाम । तिस्से द्विदी मूलपयडिद्विदी । पुथ पुथ अट्ठावीसमोहपयडीणं द्विदीओ उत्तर-  
पयडिद्विदी णाम । एवं द्विदिविहत्ती दुविहा चेव होदि ।

§ ३ उत्तरपयडिद्विदिविहत्तीए परूविदाए मूलपयडिद्विदिविहत्ती णियमेणेव  
जाणिज्जदि तेण उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती चेव वत्तन्वा ण मूलपयडिद्विदिविहत्ती, तत्थ  
फलाभावादो । ण, दब्बद्वियपज्जवद्वियणयाणुग्गहट्ठं तप्परूवणादो । एत्थतण वे वि  
'च' सहा समुच्चए दट्ठन्वा । एगेणेव 'च' सहेण समुच्चयट्ठावगमादो विदिय 'च'  
सहो अणत्थओ चि णावणेदु' सकिज्जदे । अप्पिदेगणयं पडुच्च परूवणाए  
कीरमाणाए मूलपयडिद्विदिविहत्ती उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती च उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती  
मूलपयडिद्विदिविहत्ती चेदि एग'च'सद्दुच्चारणं मोत्तूण विदिय ( च ) सद्दुच्चा-  
रणाए अभावेण पुणरुत्तदोसाभावादो । 'एव'सहो इदिसइत्थे दट्ठन्वो; अवहार-  
णत्थस्स एत्थासंभवादो ।

समाधान—एक समयमें बंधे हुए संपूर्ण मोहनीय कर्मके स्कन्धोंके प्रकृतिसमूहका  
यहा मूलप्रकृतिरूपसे ग्रहण किया है । उस मूलप्रकृतिकी स्थितिको मूलप्रकृतिस्थिति  
कहते हैं । तथा मोहनीयकी पृथक् पृथक् अट्ठाईस प्रकृतियोंकी स्थितियोंको उत्तरप्रकृतिस्थिति  
कहते हैं । इस प्रकार स्थितिबिभक्तिको दो प्रकारकी ही होती है ।

§ ३ शंका—उत्तर प्रकृतिस्थितिबिभक्तिका कथन करनेपर मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका  
नियमसे ज्ञान हो जाता है, अतः उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका ही कथन करना चाहिये,  
मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका नहीं, क्योंकि मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका कथन करनेमें कोई  
फल नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयका अर्थात् द्रव्यार्थिक और  
पर्यायार्थिक नयवाले शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिये दोमों स्थितियोंका कथन किया है ।

उपर्युक्त सूत्रमें आये हुए दोनों ही 'च' शब्द समुच्चयरूप अर्थमें जानना चाहिये ।  
एक ही 'च' शब्दसे समुच्चयरूप अर्थका ज्ञान हो जाता है, अतः दूसरा 'च' शब्द अनर्थक  
है इसलिये उसे निकाला नहीं जा सकता है क्योंकि अर्पित एक नयकी अपेक्षा कथन करनेपर  
द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा 'मूलपयडिद्विदिविहत्ती उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती च' इस प्रकार और  
पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा 'उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती मूलपयडिद्विदिविहत्ती च' इस प्रकार प्राप्त  
होता है अतः एक 'च' शब्द के उच्चारणके सिवाय दूसरे 'च' शब्दका उच्चारण नहीं रहता,  
अतः पुनरुक्त दोष नहीं प्राप्त होता है । सूत्रमें जो 'एव' शब्द आया है वह 'इति' शब्दके अर्थमें  
जानना चाहिये, क्योंकि यहा उसका अवधारणरूप अर्थ नहीं हो सकता है ।

विशेषार्थ—यहा स्थितिबिभक्तिके दो भेद किये गये हैं—मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्ति  
और उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्ति । 'मूलप्रकृति' पदसे अवान्तर भेदोंकी गणना न कर सामान्य  
मोहनीय कर्मका ग्रहण किया है और 'उत्तरप्रकृति' पदसे मोहनीयके प्रत्येक भेदका पृथक् पृथक्

❀ तस्य अद्वयत्वं एषा द्विती द्विविधहृत्ती, अयोगाग्रो द्वितीओ द्विविधहृत्ती ।

§ ४ तस्य दोषं पि द्विविधहृत्तीणं पुष्पुत्ताणमेदमद्वयत्वं उच्यते । तं जहा, एषा द्विती द्विविधहृत्ती । विहृत्ती मेदो पुष्पमाग्रो चि पयहो । द्वितीए विहृत्ती द्विविधहृत्ती जे जेवं द्विविधहृत्तीसहो द्विदिमेदपरूपया, तेण मूलपर्यदिद्वितीए निहृत्तिच जत्वि, एहिस्से मेदाभावादो । याव वा ज सा मूलपर्यदिद्विती, एहिस्से पर्यहीए द्विविधहृत्तिविरोहादो चि उच्ये एषा द्विती द्विविधहृत्ति चि परिहारो पर्यहीदो । कचयेहिस्से द्वितीए जाणत्तं ? ज, एहिस्स चि द्वितीए पदसमेदेण पर्यहि मेदेण च जाणत्तुपसंभादो । ज च पर्यहिपदसमेदो द्विविधदस्स कारणं ज होदि; मिण्ण-

प्रत्यक्ष किया है । अथपि प्रवाह रूपसे मोहनीय कर्म अनापि है पर यहां प्रत्येक समकर्म को समप्रपञ्च प्राप्त होता है उसकी स्थिति सी गई है इसलिये स्थितिबिभक्तिकी अवधि बन जाती है । उसमें जो प्रत्येक भेदकी विभक्ता किये बिना सामान्य रूपसे माहनीयकी स्थिति प्राप्त होती है वह मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्ति है और प्रत्येक भेदकी जो स्थिति प्राप्त होती है वह उत्तरप्रकृति स्थितिबिभक्ति है । यहां सामान्य और विशेषरूपसे मोहनीयकी स्थितिका ही प्रत्यक्ष किया है इसलिये यह दो प्रकारकी वक्तव्य है । नोकमका प्रकरण न होनेसे यह वक्तव्य स्थितिच प्रत्यक्ष नहीं किया है । सूत्रमें जो 'च' द्वय आया है सो वे दोनों ही समुच्चयात्मक बान्तन चाहिए । प्रथम 'च' द्वय द्वारा मुख्यरूपसे मूलप्रकृति स्थितिबिभक्तिका और गौणरूपसे उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका समुच्चय होता है । तथा दूसरे 'च' द्वय द्वारा मुख्यरूपसे उत्तरप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका और गौणरूपसे मूलप्रकृतिस्थितिबिभक्तिका समुच्चय होता है । शेष विवेचन स्पष्ट ही है ।

❀ अब उन दोनों स्थितिबिभक्तियोंके अर्थपदको कहते हैं—एक स्थिति स्थितिबिभक्ति है और अनेक स्थितियां स्थितिबिभक्ति हैं ।

§ ४ अब पूर्वोक्त दोनों ही स्थितिबिभक्तियोंके इस अर्थपदका सुझावा करते हैं । जो इस प्रकार है—एक स्थिति स्थितिबिभक्ति है । बिभक्ति भेद और व्यवसाय ये दोनों एकवर्धवाची द्वय हैं । और स्थितिकी बिभक्ति स्थितिबिभक्ति नहीं जाती है । यद्यः स्थितिबिभक्ति अथ स्थितिभेदका कवन करता है, और इसलिये मूलप्रकृतिस्थितिमें बिभक्तियां नहीं बनती है, क्योंकि एकमें भेद नहीं हो सकता । यदि एकमें भेद माना जाय तो वह मूलप्रकृतिस्थिति नहीं ठहरती, क्योंकि एक प्रकृतिमें अनेक स्थितियां माननेमें विरोध आता है इसे प्रकार आप्तेय क्रम पर 'एषा द्विती द्विविधहृत्ती' इस प्रकार कहकर उस आप्तेयका परिहार किया है ।

शुंका—एक स्थितिमें नानात्व कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक स्थितिमें भी प्रवेक्षभेद और प्रकृतिभेदकी अपेक्षा नानात्व पाया जाता है ।

यदि कहा जाय कि प्रकृतिभेद और प्रवेक्षभेद स्थितिभेदका कारण नहीं है' सो भी बात नहीं है क्योंकि मूल मूल प्रकृति और प्रवेक्षोंमें पूर्व बान्तेवाली स्थितिको एक भागमें विरोध





विचित्रो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अतरं सण्णियासो अप्पाबहुअं च भुजगारो पदण्णिकखेवो वड्डी च ।

§ ७ एदाणि मूलपयडिद्विदिविहत्तीए अणियोगद्वाराणि । एत्थ अंतिल्लो 'च'सदो उत्तसमुच्चयदो । अप्पावहुअंते द्विदो 'च'सदो अवुत्तसमुच्चयदो । तेण एदेसु अणियोगद्वारेसु अवुत्तस्स अद्धाच्छेदाणिओगद्वारस्स भागाभागभावाणिओगद्वाराणं च गहणं कदं । एत्थ मूलपयडिद्विदिविहत्तीए जदि वि सण्णियासो ण संभवइ तो वि उत्तो; उत्तरपयड्डीसु तस्स संभवदंसणादो । एत्थ मोत्तूण तत्थेव किण्ण वुच्चदे ? सच्चं, तत्थ चेव वुत्तो ण एत्थ । जदि एवं, तो किण्णावणिज्जदे ? ण, मूलत्तरपयडिद्विदिविहत्तीणं साहारणभावेण परुविदाणिओगद्वारेसु द्विदसण्णियासस्स अवणयणुवायाभावादो ।

❀ एदाणि चेव उत्तरपयडिद्विदिविहत्तीए कादव्वाणि ।

§ ८. सुगमभेदं;अण्णाहियाणभेदेसिं तत्थ संभवादो ? संपहि एदेसिमणियोगद्वारेहि मूलपयडिद्विदिविहत्ती वुच्चदे । तं जहा,अद्धाच्छेदो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ

की अपेक्षा भंगविचय, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष और अल्पबहुत्व तथा भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि ।

§ ७ ये मूलप्रकृति स्थिति विभक्तिके विषयमें अनुयोगद्वार होते हैं । इस सूत्रमें जो अन्तमें 'च' शब्द आया है वह उक्त अर्थके समुच्चयके लिए आया है । तथा अल्पबहुत्व पदके अन्तमें जो 'च' शब्द स्थित है वह अनुक्त अर्थके समुच्चयके लिए आया है, इसलिए इस 'च' शब्दके द्वारा इन उपर्युक्त अनुयोगद्वारोंमें अनुक्त अद्धाच्छेद अनुयोगद्वार तथा भागाभाग और भाव अनुयोग द्वारोंका ग्रहण किया गया है ।

यद्यपि यहाँ मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिमें सन्निकर्ष अनुयोगद्वार सम्भव नहीं है तो भी वह यहाँ पर कहा गया है, क्योंकि उत्तर प्रकृतियोंमें उसकी सम्भावना देखी जाती है ।

शंका—सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको यहाँ न कह कर वहीं उत्तर प्रकृतियों के प्रकरणमें क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—यह ठीक है, क्योंकि सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको वहीं उत्तर प्रकृतियोंके प्रकरणमें ही कहा है यहाँ मूल प्रकृतिके प्रकरणमें नहीं ।

शंका—यदि ऐसा है तो यहाँसे उसे क्यों नहीं अलग कर दिया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति इन दोनोंके विषयमें साधारणरूपसे ये अनुयोगद्वार कहे गये हैं, इसलिये इनमें स्थित सन्निकर्षको अलग करनेका कोई कारण नहीं है ।

❀ उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिके विषयमें ये ही अनुयोगद्वार कहने चाहिये ।

§ ८ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि न्यूनता और अधिकतासे रहित ये सभी अनुयोगद्वार उत्तर प्रकृतिस्थितिविभक्तिके विषयमें संभव हैं ।

अब इन अनुयोगद्वारोंके द्वारा मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिका कथन करते हैं । यथा—ज्ञान्य और उत्कृष्टके भेदसे अद्धाच्छेद दो प्रकारका है ।

च । बहुस्तु भणिभोगहारोस्तु संतेस्तु अद्दाछेदा चेव पढम किमट्ठं बुद्धवे ? ण, अद्दाछेदे भणवणए संते वनरियअदियारपक्खिज्जमाणत्वाणमवगमानुबध्दीदो ।

१६ तस्से पयदं । दुषिहो णिद्धेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्त्व भाषेण मोहणीयतस्सहिदिमिहची केत्थिया ? सत्तरिसागरोपमकोडाकोडीओ पडिबुप्पाओ । कुदो ? अकम्मसरूपेण हिदा कम्मइयवगणवत्संधा मिच्छत्तादिपवणण मिच्छत्तकम्म-सरूपेण परिणदसमए चव बीषेण सह वंधमागदा सत्तनाससहम्सावार्थ मोक्षूण सत्तरिसागरोपमकोडाकोडीसु जहाकमेण णिसिचा सत्तरिसागरोपमकोडाकोडिमैचकारं कम्मभावेणच्छिय पुणो वेसिमकम्मभावण गमणुवलंभादो । एवं सव्वभिरय-तिरिक्त्त पंचिदियतिरिक्त्तविय-मणुस्सविय-देश भवणादि जाव सहस्सार-०-पंचिदिय-पंचि-०-पञ्ज-०-तस-तसपञ्ज-०-पंचमण-०-पंचवधि-०-कापमोगि-ओरासिय-०-वेरम्भिय-०-तिम्भिबेद चत्तारि कसाय-मदिसुदअप्पाण विरंग-०-असंजद-०-वत्सु-०-अनत्सु-०-पंचसेस्ता-०-अनसिद्धि-०-अम्मव-०-मिच्छाइहि-०-सणि-आहारि सि ।

रांका—बहुतसे अनुयोगहारोंके छट्ट हूँ सबसे पहले अद्दाछेदेका ही कवन क्यों किया ?

समाधान—नहीं क्योंकि अद्दाछेदेके अद्दात रखनेपर आगेके अधिकारोंके छट्ट छोड़ देनेवाले अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है । अतः सबसे पहले अद्दाछेदेका कवन किया जा रहा है ।

१६ छट्ट अद्दाछेदेका प्रकल्प है । उसकी अपेक्षा निर्बंध दो प्रकारका है—ओबनिर्बंध और आदेछनिर्बंध । उनमेंसे ओबनिर्बंधकी अपेक्षा मोहनीयकी छट्ट स्थितिबिम्बिक जितनी है ? पूरी सत्तर कोडाकोडी सागर है, क्योंकि जो कालेखवर्गकाओंके स्वरूप अकर्मरूपसे स्थित हैं वे मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे मिथ्यात्व कर्मरूपसे परियुक्त होनेके समर्थ हैं ही बीषके साथ कण्डा प्राप्त होकर सात हजार वर्षप्रमाण आवावा कालसे कम सत्तर काडाकोडी सागरोंके समर्थमें बजाक्रमसे गियेक्यावकी प्राप्त हो जाते हैं और सत्तर कोडाकोडी सागर अलतक कर्मरूपसे रहकर पुनः वे अकर्म आवावकी प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार सभी नारकी सामान्य तिर्यक पंचेन्द्रिय तिर्यक पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यक ओनिमती तिर्यक सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य मनुष्यिणी सामान्य देव अवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त ब्रह्म, ब्रह्म पर्याप्त पौर्षो मनोयोगी, पौर्षो वचनयोगी अक्षयोगी औदारिक-अक्षयोगी, वैकिथिककाययोगी तीनों वचनार्थ, कायाधि चारों कयावचनार्थ, मत्पद्यानी मृतपद्यानी विमगाद्यानी असंयत वचनचरीमी अक्षचरणीनी, छप्प आदि पौर्ष सेत्यावाले, भव्य अमर्यद, मिथ्यातृप्ति संझी और आहारक बीषोंके कामना चाहिये ।

विशेषार्थ—कर्मकाक्रमे मिथ्यात्वकी छट्ट स्थिति सत्तरकोडाकोडी सागर प्रमाण प्राप्त होती है अतः ओबसे मिथ्यात्वकी स्थितिअ छट्ट अद्दाछेदे सत्तर कोडाकोडी सागर कहा है । आगे और जितनी मार्गाचार्ये गिनाई हैं वे सब संझी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अवस्थाके रहते हुए सम्भव हैं और उनके मिथ्यात्व गुणस्थानके सहभाषमें मिथ्यात्वका यह छट्ट स्थितिकर्म सम्भव है इसीलिसे इनके कवनको ओबके समान कहा है । छुक्कलेपाममें संझी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अवस्था और मिथ्यात्व गुणस्थान भी होता है परन्तु छुक्कलेपाममें अमृतआटाकोटीसे अधिक

§ १० पंचिन्द्रियतिरिक्खअपज्ज० मोह० उक्क० सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ  
अंतोमुहुत्तूणाओ । एवं गणुसअपज्ज०-वादरेइंदियअपज्जत्त-सुहमेइंदियपज्जत्ता-  
पज्जत्त-सव्वविगल्लिंदिय-पंचि०अपज्ज०-वादरपुढवि०अपज्ज०-वादरआउ०अपज्ज० -  
वादरवणप्फदि०पत्तेयअपज्ज०-तेउ-वाउ०-वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि०-  
पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगोद-तसअपज्ज०-आभिणि०-मुद०-ओहि०-ओहिदंस०--मुक्क-  
सम्मादिट्ठि-वेदग०-सम्माभिच्छादिट्ठि त्ति ।

§ ११ आणदादि जाव सव्वट्ठ त्ति मोह० उक्क० अद्धच्छेदो अंतोकोडाकोडीए ।  
एवमाहार०-आहारभिरुस०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामास्यच्छेदो०-

स्थिति नहीं बधती अतः उसको यहाँपर नहीं ग्रहण किया है और इसी कारण आनतादि  
उपरिम विमानोंको भी छोड़ दिया है ।

§ १० पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंवे मोहनीय कर्मकी स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तकम  
सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय,  
सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, वादर पृथ्वी-  
कायिक अपर्याप्त, वादर जलकालिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त  
अग्निकायिक, वायुकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वादर वायु-  
कायिक, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुका-  
यिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त,  
सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सब निगोद, त्रस अपर्याप्त, आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी,  
अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेखावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ — जिस मनुष्य या तिर्यंचने सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिका बन्ध  
किया वह यदि मरकर पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है तो अन्तर्मुहूर्तके पश्चात्  
ही उत्पन्न हो सकता है इसके पहले नहीं, अतः पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तके मोहनीयकी स्थितिका  
उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर ही प्राप्त होता है अधिक नहीं । इसके  
सिवा और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी मोहनीयका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद इसी प्रकार  
जानना चाहिए, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव अन्तर्मुहूर्तके पहले  
उस उस मार्गणास्थानको नहीं प्राप्त होता है । सादि मिथ्यादृष्टि सात प्रकृतिकी सत्तावाले जिसने  
मोहनीयका उत्कृष्ट वध किया है वह स्थिति काबक वात किये बिना वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर  
लेता है अतः उस सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टिके मोहनीयका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम  
सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर पाया जाता है । इसी प्रकार मिश्र गुणस्थानमें भी जानना चाहिए ।

§ ११ आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके मोहनीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद  
अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी,  
अपगतवेदी, अकपायी, मन पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-

परिहार०-सुहुम०-महाबलाव०-संज्ञासंज्ञद-स्वयं०-सबसम०-सासणसम्मादिदि चि ।

§ १२ एहिदिपसु मोह० सक० अदृष्टेदो० सत्तरिसागराधमकोठाकाठीओ समयूपाओ । एवं वादरेहिदिय-वादरेहिदियपज्ज० वादरपुडवि०-वादरपुडविपज्ज० वादरआठ०-वादरआठपज्ज०-वादरवणफदिपसेय०-वादरवणफदिपसेयपज्ज०-ओरानिपमिस्स०-वेदवियमिस्स०-कम्मइय० असण्णि अणाहारि चि ।

एवमुक्तस्तत्रो अदृष्टेदो समचा ।

विष्णुसंयत, सूक्ष्मसत्त्वराधिकसंयत अयाव्याससंयत, संयतासंयत द्वाविकसंयतदृष्टि, उपशम-संयतदृष्टि और सासाधनसंयतदृष्टि जीवोंके आनना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो अतृपित और पौष अतृपित भिमानोंमें तो सकलसंयमी सम्बन्ध ही पैदा होता है । किन्तु आन्तादि चार कर्मोंमें और नौ प्रत्यक्षमें मिथ्यादृष्टि जीव भी उत्पन्न हो सकता है । पर ऐसा जीव ब्रह्मज्ञानी मुनि संबतान्यत छत्रय होगा और ऐसे जीवके कर्मोंकी स्थिति अन्ता कोठीकाठी सागरसे अधिक नहीं पाई जाती है । तथा आन्तादिकमें उत्पन्न होमके पदचात भी इसके स्थितिसत्त्वसे कम स्थितिवत्स कमका ही कथ्य होता है अतः आन्तादिकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अदृष्टेद अन्ताकोठाकोठी सागर कहा है । इनके सिवा और जितनी मातृगार्ह गिनार्ह हैं उनमें भी इसी प्रकार मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अदृष्टेद अन्ताकोठाकोठी सागर चित्त कर लेता चाहिये । यद्यपि इनमें वह ऐसी मार्गार्ह हैं जिनमें अन्ताकोठाकोठी सागर प्रसन्न स्थितिक्रम नहीं होता पर प्राक्तन सत्त्वकी अपेक्षा यहाँ भी यह अदृष्टेद उत्पन्न हो जाता है ।

§ १२ एकेन्द्रियोंमें माहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अदृष्टेद एक समय कम सत्तर कोठाकाठी सागर है । इसी प्रकार बाहर एकेन्द्रिय, बाहर एकेन्द्रिय पर्याप्त बाहर दृष्टी कायिक, बाहर दृष्टिधी कथिक पर्याप्त, बाहर अज्ञकायिक, बाहर अज्ञकायिक पर्याप्त बाहर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बाहर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त औदारिक मिश्रकाययोगी, वैश्वियकमिश्रकाययोगी कर्मसंयययोगी असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके आनना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो देव मोहनीयकी सत्तर काठाकोठी प्रमाय उत्कृष्ट स्थितिक्रम वन्द करके और दूसर समयमें मरकर एकेन्द्रियादिकमें उत्पन्न होते हैं उन एकेन्द्रियादिकके माहनीयकी स्थिति का उत्कृष्ट अदृष्टेद एक समय कम सत्तर कोठाकाठी सागर पाया जाता है । इसी प्रकार इस अपेक्षासे असंज्ञियों मोहनीयकी स्थितिका एक समय कम सत्तर कोठाकोठी प्रमाय अदृष्टेद कथ्य चाहिये । किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट अदृष्टेदका कथन करत समय यह और मरक पर्याप्त तिर्यचोंमें उत्पन्न कराकर कहना चाहिये । वैश्वियकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट अदृष्टेदका कथन करते समय मनुष्य और तिर्यच पर्याप्तसे नास्तिकियोंमें उत्पन्न कराकर कहना चाहिये । कर्मसंयययोगी और अनाहारकोंमें उत्कृष्ट अदृष्टेदका कथन करत समय चारों गतिके जीवोंकी अपेक्षा कहना चाहिये क्योंकि सब विवर्धित गतिक जीव सबके अन्तमें माहनीयका उत्कृष्ट स्थितिक्रम करके चार मरकर औदारिकमिश्रकाययोगी आदि हात हैं तब इनके मोहनीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अदृष्टेद एक समय कम सत्तर कोठाकाठी सागर देया जाता है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अदृष्टेद समाप्त हुआ ।



§ १३ जहण्णअद्धाच्छेदाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जहणिया अद्धा केत्तिया ? एगा द्विटी एगसमइया । एव मणुसतिय-पंचिंदिय०-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि--ओरालि०-अवगद०-लोभक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-सुहुमसांपरा०-संजद-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक०-भवसिद्धि०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि०-आहारि ति ।

§ १४ आदेसेण ऐरइएसु मोह० सागरोवमसहस्सस्स सत्तसत्तभागा पलिदो-वमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया । एवं पढमाए पुढवीए पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचि०-तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोगिणी-पंचि०तिरि०अपज्ज-मणुसअपज्ज० [देव-] भवण०-वाण०-पंचिंदियअपज्ज० वत्तव्वं ।

§ १५ विदियादि जाव सत्तमि ति मोह० अंतोकोढाकोडीए । एवं

§ १३. जघन्य अद्धाच्छेदानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयका जघन्यकाल कितना है ? एक समयवाली एक स्थितिप्रमाण जघन्यकाल है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, अमरातवेदी, लोभकपायी, आभिनवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन-पर्ययज्ञानी सूक्ष्म-सांपरायिक सयत, सयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेख्यावाले, भव्य, सम्य-गृष्टि, क्षाधिकसम्यगृष्टि, सञ्जी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो जीव क्षपकश्रेणीपर आरोहणकर सूक्ष्मसांपरायिके अन्तिम समयमें स्थित रहता है उसके मोहनीयका एक समयवाला एक स्थितिप्रमाण अद्धाच्छेद उपलब्ध होता है यद्वा अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें क्षपकश्रेणीकी प्राप्ति सम्भव है इसलिये इनमें मोहनीयका अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है ।

§ १४ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमें से पत्योपमके सत्तातवें भाग कम सात भागप्रमाण होती है । इसी प्रकार पहली पृथ्वीके जीवोंके तथा पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, पचेन्द्रिय तिर्यच लव्यपर्याप्त, मनुष्य लव्यपर्याप्त, देव, भवनवासी व्यन्तर और पचेन्द्रिय लव्य-पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—असञ्जी पचेन्द्रियके मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पत्यके सत्तातवें भाग कम हजार सागर प्रमाण होता है और यह जीव सामान्यसे नारकियोंमें, प्रथम पृथ्वीके नारकियोंमें, देवोंमें, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें तथा मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भरकर उत्पन्न हो सकता है इसलिए तो इन मार्गणाओंमें मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है । मात्र ऐसे असञ्जी जीवोंको इनमें उत्पन्न करानेके पहले प्राक्तन सन्ध इससे अधिक नहीं रखना चाहिए । तथा पचेन्द्रिय तिर्यच आदि चार अवस्थावाला असञ्जी पचेन्द्रिय भी होता है इसलिए इनमें भी मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है ।

§ १५. दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति

नोत्रिसियादि जाय सञ्चद० वेठमिय०-वेठमियमिस्स० आहार० आहारमिस्स०  
अकसाय०-बिहंग०-परिहार० नहावस्वाद०-संनद्रासमद-तेठ०-पम्म०-भेदय०-उव  
सम०-सासण०-सम्मामि० वक्तवर्न ।

११६ तिरिकव० मोह० जह० सागरोवम सचसचभागा पस्सिरोवमस्स  
असंस्सज्जदिमागेण ऊणया । एव० सम्भय०-दिय-वचकाय० आरात्तियमिस्स०-कम्मइय०  
मदि-सुअण्णाण० असंमद-विण्णित०-अयव० मिच्छा० असण्णि० अणाहारि चि ।  
सम्भयिगलिंदिय० मोह० जह० सागरोवमपणुषीसाए सागरोवमपण्णासाए सागरोवम  
सदस्स सच सचभागा पस्सिरोवमस्स संसेज्जदिमागेण ऊणया । तसअपज्ज०  
वेहदियअपम्वत्तमगो ।

११७ वेदाणुवादेण इत्थि०-णुस० याह० संसेज्जाणि वस्ससइस्साणि ।

अन्तःकोशकोशी सत्तार होती है । इसी प्रकार ज्योतिषी वेदोंसे लेकर सवार्थसिद्धितक वेद, वैदिक-  
दिक्कम्ययोगी, वैश्विदिक्कम्ययोगी आहारकम्ययोगी आहारकमिह कावयोगी अकयामी, बिहंग-  
ज्ञानी, परिहारबिहृदिसंयत यथाक्यासंयत, संयतासंयत पीतसेदयावत्तं यथासेदयावत्तं, वदकसम्य  
मदति, अपम्वमसम्मदति, सासावनसम्मदति और सम्ममिध्यादति जीवोंके कर्मा आदिप ।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्ग्याएँ गिनाई हैं उनमें स्थितिकम्य और प्राक्तन सत्त्व अन्तः  
कोशकोशी सत्तार प्रमाण भी सम्मिल होनेसे इनमें मोहनीयका अथवा अज्ञानको ज्ञान प्रमाण  
कहा है ।

११६ तिरियेज्जोके मोहनीयकी अथवा स्थिति एक सागरके सात भागोंमेंसे पस्सोपमके  
असंस्मातवर्ण भाग कम सात भागप्रमाण है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय पौर्वो स्वावरकाय  
और परिक्कमिअकययोगी कामण्णकययोगी मत्स्यज्ञानी, भुताज्ञानी, असेपठ, कृष्ण आदि तीन  
लेखापक्षे अथवा मिध्यादति, असंखी और अमाहारक जीवोंके कहना चाहिए । सभी वि-  
संमिध्या जीवोंके मोहनीयकी अथवा स्थिति कमसे पचीस, पचास और सौ सागरके सात भागोंमें  
से पस्सोपमके संस्मातवर्ण भाग कम सात भाग प्रमाण है । अतः ज्ञानव्यपारितर्कके द्वीन्द्रिय ज्ञान-  
व्यपारितर्कके समान अथवा स्थिति ज्ञाननी चाहिए ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मोहनीयका अथवा स्थितिसत्त्व पस्सक असंस्मातवर्ण भाग  
कम एक सागर प्रमाण मात्र होता है और एकेन्द्रिय तिजेज्ज ही होते हैं इसलिये इनमें मोहनीयका  
अथवा अज्ञानको ज्ञान प्रमाण कहा है । यहाँ अन्य एकेन्द्रिय आदि जितनी मार्ग्याएँ गिनाई  
हैं उन मार्ग्यावासे जीव भी एकेन्द्रिय हो सकते हैं इसलिये उनका कवन कुछ प्रमाण  
कहा है । इसी प्रकार द्वीन्द्रिय आदिकके अथवा स्थितिसत्त्वको प्पान्नेमं रखकर उनमें  
मोहनीयका अथवा अज्ञानको पस्सका संस्मातवर्ण भाग कम कमसे पचीस पचास और सौ सागर  
कहा है ।

११७ वदमार्ग्याके अनुवादे जीवकी और नपुंसकवैरी जीवोंके मोहनीय कर्माकी  
अथवा स्थिति संस्मात द्वारा वर्ण है । पुरुषवैरी जीवोंके मोहनीयकी अथवा स्थिति संस्मात

पुरिस० मोह० जह० संवेज्जाणि । कोह-माण-माय० मोह० जह० चत्तारि-वे-एकवस्साणि पडिबुण्णाणि । सामाइय-छेदो० मोह० जह० अंतोमु० ।

एवमद्वाछेदो समत्तो ।

§ १८, सव्वविहत्ती-णोसव्वविहत्तीअणुगमेण दुविहो णिहिसो--ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वाओ द्विदीओ सव्वविहत्ती, तदूणं णोसव्वविहत्ती । एवं जाणिदूण पेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ १९ उक्कस्स-अणुक्कस्स० दुविहो णिहिसो--ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वुक्कस्सिया द्विदी उक्कस्सविहत्ती । तदूणा अणुक्कस्सविहत्ती । एवं पेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ २० जहण्णाजहण्ण० दुविहो णिहिसो--ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वजहण्णद्विदी जहण्णद्विदिविहत्ती । तदुवरिमाओ अजहण्णद्विदिविहत्ती । एवं पेदव्वं जाव अणाहारि त्ति । सव्वद्विदीए अद्वाछेदम्मि भणिदुक्कस्सद्विदीए च को

वर्ष हैं । तथा क्रोधी, मानी और माया कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्रमसे परिपूर्ण चार, दो और एक वर्ष हैं । सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके मोहनीय कमकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त हैं ।

**विशेषार्थ—**उक्त तीन वेदवाले और क्रोधादि तीन कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी यह स्थिति क्षणकश्रेणिमें अपने अपने उदयके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, इसलिए इन मार्गणाओं-में मोहनीयका जघन्य अद्वाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है ।

इस प्रकार अद्वाच्छेद समाप्त हुआ ।

§ १८ सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सर्व स्थितियाँ सर्वविभक्ति हैं और उससे न्यून नोसर्वविभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणतक जानकर कथन करना चाहिये ।

§ १९ उत्कृष्टविभक्ति और अनुत्कृष्टविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सबसे उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्टविभक्ति है और उससे न्यून स्थिति अनुत्कृष्टविभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणतक कथन करना चाहिए ।

§ २० जघन्यविभक्ति और अजघन्यविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सबसे जघन्य स्थिति जघन्यस्थिति विभक्ति है और उससे ऊपरकी सब स्थितियाँ अजघन्य स्थिति विभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गण तक ले जाना चाहिए ।

**शंका—**सर्वस्थिति और अद्वाच्छेदमें कही गई उत्कृष्ट स्थितिमें क्या भेद है ?

भयो ? बुद्धदे—चरिमणिसेयस्स जो कामो सो उक्कस्सअद्भुतदेम्मि भणित्ठकस्सहिदी  
गाम । सत्तयणसम्भणिसेयणं समूहो सम्भहिदी गाम । तेण दोण्ढमत्थि मेदो ।  
उक्कस्सबिहारी उक्कस्सअद्भुतदेस्स च को मेदो ? बुद्धदे—चरिमणिसेयस्स कामो  
उक्कस्सअद्भुतदेस्स गाम । उक्कस्सहिदिबिहारी पुण सम्भणिसेयणं सम्भणिसेयपदेसाणं  
वा कामो । तेण एत्थं पि अत्थि मेदो । एव सत्ते सम्भुक्कस्सबिहारीणं णत्थि  
मेदो ति एत्थं कण्ठिअं । ताणं पि णयमिससवसण कथं चि भेदुपसंभादो । तं  
जहा—समुदायपहाणा उक्कस्सबिहारी । अवयवपहाणा सम्भबिहारी चि ।

३२१ सादि०४ बुद्धिही निवृत्तसो—अपेण आदसणय । सत्त ओपण मोह०  
उक्क० अणुक्क० जह० किं सादि०४ ? सादि० अद्भुतपु० । अनह० किं सादि०४ ?

समाधान—अन्तिम निवेदक जो काल है वह उक्त अद्भुतदेवमें रही गई उक्त स्थिति  
है । तथा वहाँ पर रहनवासे सम्पूर्ण निवेदकों को समूह है वह सर्वस्थिति है, इसलिये इन दोनोंमें  
भेद है ।

शुद्धा—उक्त विमर्ष और उक्त अद्भुतदेवमें क्या भेद है ?

समाधान—अन्तिम निवेदके कालको उक्त अद्भुतदेव कहते हैं और समस्त निवेदों के वा  
समस्त निवेदों के प्रदेशों के कालको उक्त स्थिति विमर्ष कहते हैं इसलिये इन दोनोंमें भी भेद है ।

ऐसा होते हुए सर्वविमर्ष और उक्त विमर्ष इन दोनोंमें भेद नहीं है परन्तु आत्मिक नहीं  
करनी चाहिए, क्योंकि नव विशेषकी अपेक्षा इन दोनोंमें भी कथं चि भेद पाया जाता है । वह  
इस प्रकार है—उक्त विमर्ष समुदायप्रधान होती है और सर्वविमर्ष अवयवप्रधान होती है ।

विशुद्धार्थ—उक्त अद्भुतदेव सर्वस्थिति विमर्ष और उक्त स्थिति विमर्ष य उक्त  
प्रयोगमें आते हैं, इतना ही नहीं, इन नामवाले स्वतन्त्र अधिकार भी हैं इसलिये इनमें क्या भेद  
है यही कहा जाता है । सुखासा इस प्रकार है—मान जो किसी जीवने मिथ्यात्वका  
मत्तर काड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उक्त स्थिति विमर्ष किया । तभी अवस्थामें मत्तर काड़ाकोड़ी  
सागरके अन्तिम समयमें स्थित जो निरंकुश उसका उक्त अद्भुतदेव मत्तर काड़ाकोड़ी सागर  
प्रमाण हुआ क्योंकि इतने ब्रह्म तक हमके सत्तामें रहमकी वाग्यना है । यह वा उक्त  
अद्भुतदेवका कहावत है । तथा इस उक्त स्थिति विमर्ष के होने पर वा प्रथम निरङ्गमे लेकर  
अन्तिम निवेद तक निरंकुश रहना होती है वह सर्वस्थिति विमर्ष है, क्योंकि यहाँ मने पर द्वारा  
सब निरंकुश लिए गए हैं । अब रही उक्त स्थिति विमर्ष सा हममें उक्त स्थिति विमर्ष नाम  
पर प्रथम निरङ्गमे लेकर अन्तिम निरंकुश तक सब स्थितियों का प्रमाण किया है । यहाँ सत्ताका  
प्रकरण होनेसे सत्ताकी अपेक्षा इस अन्तरको घटित कर लेना चाहिए । इतना बिना जानना  
चाहिए कि यह सब जहाँ आप उक्त सम्भव है वहाँ आप उक्त रहना चाहिए और जहाँ आप  
उक्त सम्भव न है वहाँ आदेश उक्त मान कर लेना चाहिए ।

३२१ सादि अनादि प्रथ और अणु अणु अनुगमकी अपेक्षा निर्देश । प्रकारका है—आप-  
निर्देश और आदेश निर्देश । इनमें आपकी अपेक्षा आदेश की उक्त विमर्ष, अनुगम विमर्ष

अण्णादिय० ध्रुवा वा अद्भुवा वा । एवमचक्षु०-भवसिद्धि० । एवरि भवसि०  
ध्रुवं एत्थि । सेसामु मग्गणामु उवक० अणुक्क० जह० अजह० सादि-अद्भुवाओ ।

एवं सादि-अद्भुवाणुगमो समत्तो ।

§ २२. सामित्तं दुविधं-जहणं उक्खस्सं च । तत्थ उक्खस्से पयदं । दुविहो  
णिद्वेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्खस्सट्ठिदी कस्स ? अण्णदरस्स,  
जो चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिं वंथंतो अच्छिदो उक्खस्ससंकिलेसं  
गदो । तदो उक्खस्सट्ठिदी पवद्धा तस्स उक्खस्सयं होदि ।

एवमोघपरूपणा गदा ।

और जघन्यविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि  
और अध्रुव है । अजघन्य विभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव  
है ? अनादि ध्रुव और अदध्रुव है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये ।  
इतनी विशेषता है कि भव्यजीवोंके ध्रुव यह विकल्प नहीं है । शेष मार्गणाओंमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट,  
जघन्य और अजघन्य ये चारों सादि और अध्रुव हैं ।

**विशेषार्थ—**मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति कादाचित्क है और जघन्य  
स्थिति-विभक्ति क्षपक्श्रेणिके सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है इसलिए ये तीनों  
सादि और अध्रुव कही हैं । किन्तु अजघन्य स्थिति-विभक्तिका विचार इससे कुछ भिन्न है ।  
वात यह है कि जघन्य स्थिति-विभक्तिके प्राप्त होनेके पूर्व तक अनादि कालसे अजघन्य स्थिति-  
विभक्ति होती है इसलिए तो वह अनादि कही है और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव तथा अभव्योंकी  
अपेक्षा ध्रुव कही है । इसमें सादि विकल्प सम्भव नहीं है, क्योंकि एक बार इसका अन्त  
होने पर पुनः इसकी उत्पत्ति नहीं होती । अचक्षुदर्शन और भव्य ये दो मार्गणाएँ क्रमसे  
क्षीणमोह गुणस्थानके अन्त तक और अयोगिकेवली गुणस्थान तक निरन्तर बनी रहती  
हैं इसलिए इनमें ओघपरूपणा अविकल घटित होनेके कारण वह उक्त प्रकार कही है ।  
मात्र भव्य मार्गणाओंमें अजघन्य स्थिति-विभक्तिका ध्रुवपना सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया  
है । शेष मार्गणाएँ कादाचित्क हैं इसलिए उनमें चारों स्थिति-विभक्तियोंके सादि और अध्रुव  
ये दो विकल्प कहे हैं । केवल अभव्य मार्गणा रह जाती है क्योंकि यह कादाचित्क नहीं है पर  
इसमें ओघके अनुसार जघन्य और अजघन्य स्थिति-विभक्ति सम्भव नहीं है इसलिए इसमें  
भी चारों स्थिति-विभक्तियाँ सादि और अध्रुव कही हैं ।

इस प्रकार सादि-अध्रुवानुगम समाप्त हुआ ।

§ २२ स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्ट स्वामित्वका  
प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे  
ओघनिर्देशकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो चतुःस्थानीय यवमध्यके ऊपर अन्तः  
कोडाकोडीप्रमाण स्थितिको बाधता हुआ स्थित है और अनन्तर उत्कृष्ट सक्लेशको प्राप्त होकर  
जिसने उत्कृष्ट स्थितिका ग्रन्थ किया है ऐसे किसी भी जीवके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

इस प्रकार ओघपरूपणा समाप्त हुई ।

§ २३ एवं सप्तपुत्रिणेराय-तिरिक्त्व-पंचिद्वियतिरिक्त्वतिय-मणुसतिय-देव  
भरणादि जाव सहस्तर०-पंचिद्विय०-पंचि०पञ्ज०-तस-तसपञ्ज०-पंचमण० पंचवचि०  
फायजागि०-भारानि०-वठधिय०-तिष्णिवद चचारिक्साय-मदिमुदभण्णाण-चिरंग०  
भसजद० अचक्कु० चक्कु० पंचल० यमसिद्धि-अभवसिद्धि०-मिच्छानि०-सणि०  
भारारि ति ।

§ २४ पंचिद्वियतिरिक्त्वअपञ्ज० माह० उक्क कस्स ? अण्णदरस्स सणि  
पचि०तिरिक्त्वो वा मणुस्सा वा उक्कस्सहिदि पंचिय पडिभग्गो होरूण हिदिघादमफा  
उण पंचिद्वियतिरिक्त्वअपञ्जत्तण्णु उवरण्णो तस्स पडमसमयउवरण्णत्तयस्स  
उक्कस्सिया हिदी । एवं मणुस्सअपञ्ज-भादरेइदियअपञ्ज० सुहुमेइदियपञ्जचापञ्जच  
सन्वविगन्दिदिय-पंचिद्वियअपञ्ज०-भारपुरीअपञ्ज०-भादरआठ०अपञ्ज०-भादरवण-  
प्पदिअपञ्ज०-सुहुमपुवविपञ्जचापञ्जत्त-सुहुममाठ०पञ्जचापञ्जच-सुहुमवणप्पदिपञ्ज  
चापञ्जत्त सन्वणिगाद०-सम्भराठ०-सन्वतठ०-तसअपञ्जत्त ति ।

§ २५ आणदादि जाव उवरियगवज्ज० उक्क० कस्स ? जा दम्भनिंगी उक्कस्म  
हिदिसंतक्कम्मिआ पडमसमयउवरण्णो तस्स । अणुरिसादि नाव सण्णत्ति माह०

§ २६ इसी प्रकार अथान् आपमरूपणाक समान सार्तो वृथिविषोके नारदी, सामान्य  
तियय पंचेन्द्रिय तियय पंचेन्द्रिय तियय पर्याप्त योनिमयी तियय सामान्य मनुष्य, पयाज  
मनुष्य, मनुष्यनी सामान्य देव भवनवासिबोसं सनर सहचार स्वर्ग तच्छ देव पंचेन्द्रिय, पंच  
न्द्रिय पयाज तस तसपयाज पार्थो मनोवागी, पार्थो वचनवागी, कायवागी, औदारिककाय  
वागी, वैश्विककायवागी तीनों प्रकारक बन्धन आपादि सार्तो कयापपद्, मत्स्थानी धुनप्रानी,  
विमदप्रानी, असंयत, अचक्षुषानी पक्ष्मदानी वृष्ण आदि पांच इत्याशास, मन्त्र, भगवत्,  
मिथ्यादि, संती और अज्ञातक जीवोके जानना यादिय ।

§ २७ पंचन्द्रिय तिवैष लक्ष्यपर्याप्तबोमें मादनीयकी वृक्षत्त्व स्थिति विसरे जाती है ?  
जा मंत्री पंचन्द्रिय तियय जा मनुष्य वृक्ष स्थितिका वैष करक और पदासं यमुन हाकर  
रिपनिदा पात जा वरय पंचन्द्रिय तियय लक्ष्यपयाजबोमें कल्प वृक्षा है, इमक उत्पन्न हानक  
पदासं समयमें मादनीयकी वृक्ष स्थिति जाती है । इसी प्रकार लक्ष्यपयाजक मनुष्य बाहर एक  
न्द्रिय लक्ष्यपयाज सूक्ष्म पंचन्द्रिय तथा उत्तम पयाज और अपयाज सभी विषयम्विय  
पंचेन्द्रिय लक्ष्यपयाज बाहर वृथिविषादिक अपयाज बाहर उत्तमवैषिक अपयाज बाहर  
वनस्तरितवैषिक प्रत्येक और अपयाज सूक्ष्म वृथिविषादिक तथा इमक पयाज और अपयाज  
सूक्ष्म उत्तमवैषिक प इमक पयाज और अपयाज सूक्ष्म वनस्तरितवैषिक और इमक पयाज और  
अपयाज सभी निगाइ सभी वायुवैषिक, सभी अग्निवैषिक और जगत्पयाज जीवोके  
जानना यादिय ।

§ २८ आनन वरणमें ईश्वर इतिस मायक गरुड देवोमें वृक्ष स्थिति विमद जाती है ?  
विमद मादनीय बमोदी वृक्ष रिपनिदी मला है जमा जा वृक्षम्वी जीव जाननादि वरणमें  
वरण वृक्षा वगैरे पञ्च हानक वरण समयमें मादनीयकी वृक्ष स्थिति जाती है । अनुदिग्ग

उक० कस्स० ? अण्णदस्स जो वेदयसम्माड्ढी तप्पाओग्गुकस्सट्ठिट्ठिगंतकम्मिओ पढमसमए उववण्णो तस्स ।

§ २६ एड्ढिय-वादरेड्ढियपज्ज० मोह० उक० कस्स ? अण्णदस्स जो देवो उकस्सट्ठिट्ठि वंधमाणो मढो पढमसमए जादो तस्स उकस्सट्ठिट्ठि । एवं पुढवि०--आउ०--वणप्फदि०--वादरपुढवि०--वादरपुढविपज्ज०--वादरआउ० वादरआउ-पज्ज०--वादरवणप्फदि०--वादरवणप्फदिपज्जो त्ति वत्तच्चं ।

§ २७ ओरालियमिस्स० मोह० उक० कस्स ? अण्णद० देवो णेग्गओ वा उकस्सट्ठिट्ठिवंधमाणो मढो तिरिक्खेसु उववण्णो पढमसमयओरालियमिस्सो जादो तस्स उकस्सिया ट्ठिट्ठि । वेउन्वियमिस्स० मोह० उक० कस्स ? अण्णद० तिग्गिग्गो मणुस्सो वा उकस्सट्ठिट्ठि वंधमाणो मढो णेरइएसु उववण्णो पढमसमए वेउन्वियमिस्सो जादो तस्स उकस्सिया ट्ठिट्ठि । आहार० मोह० उक० कस्स ? अण्णद० वेदयसम्मा-दिट्ठि तप्पाओग्गुकस्सट्ठिट्ठिसंतकम्मिओ पढमसमए आहारओ जादो तस्स उक्कस्सिया ट्ठिट्ठि । आहारमिस्स० मोह० उक० कस्स ? वेदग० उक० पढमसमयजादस्स । कम्मइय० उक० कस्स ? अण्णद० चउगइओ उकस्सट्ठिट्ठि वंधिदूण मढो तिरिक्खेसु

लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? मोहनीयकी तत्प्रा-योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनुविश आदिमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ २६ एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो देव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर मरा और उक्त जीवोंमें उत्पन्न हुआ उसके एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रियमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवी कायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक और वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २७ औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक देव या नारकी जीव मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बाधकर मरा और तिर्यचोंमें उ पन्न होकर पहले समयमें औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया उसके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ? वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट किसके होती है ? जो कोई एक मनुष्य या तिर्यच मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति बाध कर मरा और नारकियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगी होगया उसके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । आहारकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसके तत्प्रायोग्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है ऐसा कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारकाययोगी होगया उसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारक-

गेरइप्सु वा उववण्णो तस्स पइमसमयउववण्णज्जयस्स उक्कस्सिया ढिदी ।

§ २८ अथगद माह० उक्क० कस्स ? ओ उववण्णीसविहविमो तप्पाओ म्मुक्कस्सहिदिसंतकम्मणेण पइमसमयअथगदपंदो जादो तस्स उक्कस्सिया ढिदी । एममकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्व ।

§ २९. आधिणि०-सुद० ओहि० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० उक्कस्सहिदि संतकम्मणेण तप्पामान्णेण हिदिपादमक्काऊण सम्मत्तं पडिबण्णो तस्स पइमसमय वेदयसम्माहिस्स उक्कस्सपहिदिसंतकम्मं । एषमोहिदंस०-सम्मादि०-चंदय० वत्तव्व । मणपज्ज० उक्क० कस्स ? अण्णद० वेदयसम्मादिही संजदो तप्पाओ म्मुक्कस्सहिदिसंतकम्मो पइमसमयमणपज्जवणाणी जादो तस्स उक्कस्सहिदि संतकम्मं । एषं संजद०-सामाहय-वेदो परिहार०-संजदासंजद० वत्तव्व ।

§ ३० सुक्क० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० उक्कस्सहिदिसंतकम्मिओ हिदिपादमकदवसाए चेष परावचिदपइमसमयसुक्कलेस्सा तस्स उक्कस्सिया ढिदी ।

मित्रकाययागी हा गया इसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । कर्मण्यकर्मयोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके हाती है ? कोई एक चारों गतिक की मोहनीयकी स्थिति बांधकर मर और तिरवैष या मापकियोंमें उत्पन्न हुआ इसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ ३८. अपगतवेरी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके हाती है ? अनन्ताजुक्ककी चट्टाऊक पिता का बीवीस प्रद्विषियोंकी सत्तावाला जीव अपगतवेरी जीवके योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्ताके साथ अपगतवेरी हुआ उनके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार अकगामी सूक्ष्मसंपत्तिक संयत और ब्रह्मस्मात्संयत जीवोंके कहना चाहिये ।

§ २९ अइमनिबोधिकखानी भुतखानी और अचधिखानी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके हाती है ? जिसके उत्पत्त्याग्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है और वा स्थितिपात न करके सम्मत्सम्पन्ने प्राप्त हुआ है उस गतिखानी भुतखानी और अचधिखानी ब्रह्मसम्पत्ति कीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति हाती है । इसी प्रकार अचधिखानी सम्पत्ति और ब्रह्मसम्पत्ति कीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । मनःपर्ययखानी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके हाती है ? मनःपर्ययखानके योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक संयत ब्रह्मसम्पत्ति कीव मनःपर्ययखानी हुआ इसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति सत्ता पाया जाता है । इसी प्रकार संयत सामाधिकसंयत ज्ञानपस्थापनासंयत परिहारविमुक्तिसंयत और संयतासंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ३१ गुणसत्तयायाल जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके हाती है ? जिसके मोह नीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है और जिसने स्थिति पात करके उसी समय गुणसत्तयाओ प्राप्त कर लिया है उसे किसी भी गुणसत्तयावाला जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति हाती है ।



§ ३१, खइय० उक्क० कस्स ? अण्णद० पढमसमयखइयसम्मादिट्ठिस्स तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी । उवसम० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० पढमसमय-उवसामिददंसणमोहस्स उवसमसम्मादिट्ठिस्स तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी । सासण० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० पढमसमयसासणसम्मादिट्ठिस्स । सम्मामि० मोह० उक्क० कस्स ? ट्ठिदिसंतकम्मघादमकाऊण पढमसमयसम्माधिच्छाइट्ठी जादो तस्स । असण्णि० एइंदियभंगो । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवमुक्कस्ससामित्तं समत्तं ।

§ ३२ जहण्णए पयदं । दुविहो णिदेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० ट्ठिदी कस्स ? अण्णद० खवगस्स चरिमसमयसकसायस्स जहण्णट्ठिदी । एवं मणुसतिय-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि-कायजोगि०-

§ ३१ ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? किसी भी ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसने दर्शनमोहनीय कर्मकी उपशमना की है ऐसे किसी भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? किसी भी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक जीव स्थितिसत्त्वका घात न करके सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो गया है उसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । असंज्ञी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । तथा अनाहारक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति कर्मणकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां पर ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके क्रमसे ज्ञायिकसम्यक्त्व, उपशमसम्यक्त्व और सासादनसम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कहा गया है । सो इसका कारण यह है कि एक तो इन मार्गणाओंमें पूर्व मार्गणासे आनेपर जितना अधिक स्थितिसत्त्व सम्भव है उतना स्थितिवन्ध नहीं होता । दूसरे प्रथम समयके बाद उत्तरोत्तर स्थितिसत्त्व हीन होता जाता है, अतएव इन मार्गणाओंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका स्वामी प्रथम समयवाले जीवको कहा है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके तथा उसका घात न करके आना सम्भव है और ऐसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके सबसे अधिक स्थितिसत्त्व सम्भव है, इसलिए इसके भी उक्त प्रकारसे आनेपर उत्कृष्ट स्थिति कही है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ ।

§ ३२ अब जघन्य स्वामित्व प्रकृत है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे आंघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्यस्थिति किसके होती है ? किसी भी क्षपक जीवके सकपाय अवस्थाके अन्तिम समयमें अर्थात् क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य,

ओरासि० अममद०—सोभक०—आमिणि० सुद० ओहि०—मणपञ्ज० सजद०—सुहुम०  
चक्खु०—अचक्खु० ओहिर्दस०—सुक्क० मवसि०—सम्मादि०—स्वइय०—सण्णि—आहारि ति ।

§ ३३ आदेसज गेरइयसु मोह० जह० कस्स ? अण्णद० असण्णिपच्छायदस्स  
विदियसमयविगारे महमाजस्स तस्स जहणिया दिदी । एवं पढमपुडबि०—देव  
मवण०—नाण० पत्तम्बं । निदियादि जान छटि चि माह० जह० कस्स ? अण्णद० जो  
उक्क आउअहिदीए उववण्णो अपिदपुडबिसु अंतोमुहुत्तेण पढमसमत्त पडिबज्जिय  
पुणा अंतोमुहुत्तेण अणंतापुबंधिचउक्कं विसंजोइय चरिमसमयणिप्पिदमागओ तस्स  
जहणिया दिदी । एवं जोइसि० ।

§ ३४ सत्तमाए पुडवीए मोह० जह० कस्स ? अण्णद० जो उक्क० आउअहिदीए  
उववण्णो अंतोमुहुत्तेण पढमसमत्त पडिबज्जो पुणो अणंतापुबंधिचउक्कं विसंजोइय

पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके तथा पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पयाप्त ब्रह्म,  
ब्रह्म पयाप्त पांचों मनोयोगी पांचों बचनयोगी कर्मयोगी औदारिककाययोगी अपगतबेबी,  
लोभक्यायी आभिनवोभिक्यानी, कुतज्ञानी अविज्ञानी मनःपययज्ञानी संयत सूक्ष्मसांपर-  
यिकसंयत बबुइसेनी अचबुइसेनी अविबुइसेनी हुक्कसलेखावाले, भव्य, सम्पन्नदि,  
आधिकसम्पन्नदि, संखी और आहारक बीजोंके जानना चाहिये ।

§ ३५ आदेसकी अपेक्षा नरकियोंमें माहनीय की ब्रह्म स्थिति किसके होती है ? जो अस्तं-  
त्रियोंमेंसे नरकमें आया है और जो विप्रहरातिमें वृत्ते समयमें विद्यमान है ऐसे नारकीके मोहनीयकी  
ब्रह्म स्थिति होती है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी बीजोंके तथा सामान्य देव भवन  
वासी और व्यन्तर देवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—अस्तंत्री जीव नरकमें उत्पन्न हो सकता है और वृत्ते विप्रहरातिमें अस्तंत्रीके  
योग्य स्थितिक्रम होता है इसलिये यहां अस्तंत्रियोंमेंसे आप हुए नारकी बीजके द्वितीय विप्रहमें  
ब्रह्म स्थिति कही है । मात्र ऐसे अस्तंत्री बीजके प्राक्तन सत्त्व तत्त्वाद्योग्य ब्रह्म स्थितिक्रमसे  
अधिक नहीं होना चाहिए । यह अस्तंत्री प्रथम नरकके समान भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें भी  
उत्पन्न होता है इसलिये प्रथम नरक सामान्य देव भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें यह  
स्वाभित्व इसी प्रकार दिया है ।

दूसरी पृथिवीमें लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें माहनीयकी ब्रह्म स्थिति  
किसके होती है । जो कोई एक बीज दूसरी पृथिवीस लेकर छठी पृथिवी तक अपनी अपनी  
पृथिवीके अनुसार उच्छिद्य आमुको लेकर उत्पन्न हुआ है, तथा जिसने उत्पन्न होकर अन्तर्महूर्त  
कालके बाद प्रथमोपशम सम्पत्त्यको प्राप्त करके अन्तर्ग अन्तर्ग महूर्त कालके द्वारा अनन्तानुबन्धी  
अनुबन्धी विन्यासना की है उस बीजके नरकसे निकलनेके अन्तिम समयमें माहनीयकी ब्रह्म  
स्थिति होती है । इसी प्रकार व्यातिषा देवोंके मोहनीयकी ब्रह्म स्थिति जाननी चाहिए ।

§ ३६ सातवीं पृथिवीमें मोहनीयकी ब्रह्म स्थिति किसके होती है ? जो उच्छिद्य आमुको  
लेकर सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ तथा अन्तर्ग महूर्त कालके पश्चात् जिसने प्रथमोपशम सम्पत्त्य

अंतोमुहुत्तं जीवियमत्थि त्ति मिच्छत्तं गदो जावदि सका ताव संतकम्मस्स हेद्वा वंधिय से काले समट्ठिदि वंधिय बोलेहदि त्ति तस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं ।

§ ३५ तिरिक्खगदं मोहं जहं कस्स ? अण्णदरस्स जो एइंदियो हदसमु-  
पत्तियं काऊण जाव सका ताव संतकम्मस्स हेद्वा वंधिय से काले समट्ठिदि बोलेहदि  
त्ति तस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं । एवं सव्वएइंदिय-पंचकायं-ओरालियमिस्स-  
कम्मइयं-मदि सुदअण्णाण-असंजदं-तिण्णि लेस्सा-अभच्च-मिच्छादि-असण्णि-  
अणाहारि त्ति ।

§ ३६. पंचिंदियतिरिक्खवतियम्मि मोहं जहं कस्स ? जो एइंदियपच्छायदो  
द्विदीए कयहदसमुपत्तियो पढमविदियविग्गहे वट्टमाणो तस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं ।  
एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज-मणुसअपज्ज-सव्वविगलिदिय-पंचिं-अपज्ज-तस  
अपज्जो त्ति वत्तवं । णवरि विगलिंदिएसु सत्थाणे वि सामित्तमविरुद्धं दट्ठवं ।

§ ३७. सोहम्मीसाणादि जाव सव्वट्ठं मोहं जहं ? अण्णदं दो वारे

प्राप्त किया है, पुनः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना करके वहा रहा और जब जीवनमे  
अन्तमुहूर्त काल शेष रह जाय तब मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जहा तक शक्य हो वहा तक सत्तामें  
स्थित मोहनीय कर्मकी स्थितिसे कम स्थितिवाले कर्मका बन्ध करके तदनन्तर कालमें जो सत्तामें  
स्थित मोहनीय कर्मकी स्थितिके समान स्थितिवाले कर्मका बन्ध करेगा उसके मोहनीयका जघन्य  
स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ३५ तिर्यचगतिसं मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो कोई एकेन्द्रिय जीव  
हृतसमुत्पत्तिको करके जय तक शक्य हो तब तक सत्तामें स्थित मोहनीयकी स्थितिसे कम स्थिति-  
वाले कर्मका बन्ध करके तदनन्तर कालमें सत्तामें स्थित मोहनीयकी स्थितिके समान स्थितिवाले  
कर्मका बन्ध करेगा उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय,  
पाचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्ण  
आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३६ पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और योनिनी इन तीन प्रकारके तिर्यचोंमे मोहनीयकी  
जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो एकेन्द्रियोंसे लौटकर आया है, जिम्मे स्थातका हृतसमु-  
त्पात्त किया है और जो पहले या दूसरे विग्रहमें स्थित है उस पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त या  
योनिनी तिर्यचके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच लव्य-  
पर्याप्तक, मनुष्य लव्यपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लव्यपर्याप्तक और त्रस लव्यपर्याप्तक  
जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि विकलेन्द्रिय जीवोंमें स्वस्थानकी अपेक्षा भी  
स्वामित्वके कथन करनेमें कोई विरोध नहीं आता । अर्थात् जो विकलेन्द्रियोंसे भी विकलेन्द्रियोंमें  
लौटकर आया है उसके भी जघन्य स्थितिसत्त्व हो सकता है ।

§ ३७ सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी जघन्य

उपसमसङ्गिमाहो पञ्चा दंसणमोहं स्वविय अप्पप्पणो उक्कस्सारहिदीए उववण्णो तस्स चरिमसमयणिप्फिदमाणयस्स जहण्णयं हिदिसंतकम्मं ।

§ ३८ वेगध्विय० मोह० जह० कस्स ? अप्पण० सव्वह० देवस्स स्वइय सम्मादिहिस्स उवसंतकसायपञ्चायदस्स सगसगुक्कस्सारहिदिचरिमसमए वेगध्विय कायजोगे षट्ठमाणस्स तस्स जहण्णय हिदिसंतकम्मं । वंउध्वियमिस्स० मोह० जह० कस्स ? अप्पण० स्वइयसम्मा० उवसंत० पञ्चायदस्स चरिमसमएवंउध्वियमिस्स कायजोगिस्स जहण्णयं हिदिसंतकम्मं । आहार० मोह० जह० कस्स ? अप्पण० स्वइयसम्माइहिस्स स काले मूलसरीरं पविंसंतस्स जह० हिदिसंतकम्मं । आहारमिस्स० माह० जह० कस्स ? अप्पण० स्वइयसम्मा० से काले सरीरपञ्जात्तिं कोइदि (काइदि) ति तस्स जह० हिदिसंतकम्मं ।

§ ३९ बंदाणुवावेण इत्थिवेद० मोह० जह० कस्स ? अप्पण० अणियट्ठित्वयमो चरिमसमए इत्थिवेदंआ तस्स जह० हिदिसंतकम्मं । एवं पुरिस०-वाबुंस० वसव्वं ।

§ ४० कोइ०-माण०-माय० जह० कस्स ? अप्पण० अणियट्ठित्वयमो

स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक जीव उपशमवेष्टी पर हा वार बड़ा है अन्तर वस्तुमाह नीयका जब करके आयुक्रमकी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिको लेकर चौधमाहिमें उत्पन्न हुआ है उसके बड़ासे निकलनेके अन्तिम समयमें मोहनीयका अपम्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ३८ वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी अपम्य स्थिति किसके होती है ? जो चायिकसम्पत्ति उपशान्तकपाय गुणस्वान्तसे सर्वावेष्टिहिमें उत्पन्न हुआ तथा जो अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुके अन्तिम समयमें वैक्रियिककाययोगमें विद्यमान है उस सर्वावेष्टिहिमें रहनेवाले वैक्रियिककाययोगी जीवके मोहनीयका अपम्य स्थितिसत्त्व होता है । वैक्रियिकमित्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी अपम्य स्थिति किसके होती है ? जो चायिकसम्पत्ति जीव उपशान्तकपाय गुणस्वान्तसे आकर वेष्टिमें उत्पन्न हुआ है उसके वैक्रियिकमित्रकाययोगके अन्तिम समयमें अपम्य स्थितिसत्त्व होता है । आहारकमित्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयका अपम्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो चायिकसम्पत्ति आहारकाययोगी जीव उपशान्त समयमें मूल शरीरमें प्रवेश करेगा उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका अपम्य स्थितिसत्त्व होता है । आहारकमित्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयका अपम्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो चायिकसम्पत्ति आहारकमित्रकाययोगी जीव उपशान्त समयमें शरीरपञ्जात्तिको प्राप्त करेगा उसके मोहनीयका अपम्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ३९ वेदमणयाऽऽनुवावेसे श्रीवरी जीवोंमें मोहनीयका अपम्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो श्रीवेदी अनिशुचित्यका जीव है उसके श्रीवेदे अन्तिम समयमें मोहनीयका अपम्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार पुरुषवेदी और नृपुंसकवरी जीवोंके मोहनीयका अपम्य स्थितिसत्त्व कहा जाहिय ।

§ ४० अथ मान आर मायाकायवाले जीवोंमें मोहनीयका अपम्य स्थितिसत्त्व किसके

अप्पणो चरिमसमए वट्टमाणो तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । अकसा० मोह० जह० क० ? अण्ण० खइयसम्मा० चरिमसमयअकसायस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं । विहंग० मोह० जह० क० ? अण्ण० जो उवरिमगेवज्जदेवो चउवीससतकम्मिओ अवसाणे मिच्छत्तं गंतूण चरिमसमयविहंगणाणी जादो तस्स० जह० द्विदिसंतकम्मं ।

§ ४१ सामाइय-छेदो० जह० कस्स ? अण्ण० अणियट्ठिखवओ चरिमसमय-सामाइय-छेदोवट्ठावण० संजमो तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । परिहार० मोह० जह० क० ? अण्ण० खइयसम्मा० जो दो वारे उवसमसेहिं चठिय पच्छा खविददंसण-मोहणीओ देवेषु तेत्तीससागरोवममेत्ताउट्ठिट्ठिमणुपालिय मणुस्सेसुववज्जिय समय-विरोहेण पडिवण्णपरिहारसुद्धिसंजमो तस्स चरिमसमयपरिहारसुद्धिसंजदस्स जह० द्विदिसंतकम्मं । संजदासंजद० मोह० जह० कस्स ? अण्णद० जो खइयसम्मा० परिहारस्स भणिदविहाणेणागंतूण चरिमसमयसंजदासजदो जादो तस्स जह० द्विदिसंतकम्मं ।

§ ४२, तेउ०-पम्म० परिहार०भंगो । णवरि चरिमसमयतेउपम्मलेस्सालावो कायवो ।

होता है ? जो अनिवृत्तिक्षपक क्रोध, मान और मायाकपायके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । अकषायी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि 'अकषायी' जीव है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । विभगज्ञानी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? चौबीस प्रकृतियोंकी रूपावाला जो उपरिम अवेयकका देव आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर विभगज्ञानी हो गया है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ४१ सामायिक और छेदोपस्थापना सयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो अन्तिम समयवर्ती अनिवृत्ति क्षपक है उस सामायिकसयत और छेदो-पस्थापना सयत जीवके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । परिहारविशुद्धि सयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? दो बार उपशमश्रेणीपर चढ़कर अनन्तर जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय किया है ऐसा जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव देवोंमें उत्पन्न होकर और वहा तेतीस सागर प्रमाण आयुको समाप्त करके अनन्तर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर जिस प्रकार आगममें वताया है उसके अनुसार परिहारविशुद्धि समयको प्राप्त हुआ है उस परिहारविशुद्धि सयतके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । सयतासयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि परिहारविशुद्धि सयत जीव आगममें जिस प्रकार विधि वताई है उसके अनुसार परिहारविशुद्धि समयको त्यागकर संयतासंयत हो गया है उस सयतासयतके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ४२ पीतलेइया और पद्मलेइयावाले जीवोंके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व परिहार

१४३ वेदग० मोह० अह० क० ? अण्णाद० चरिमसमयअवस्थीणदंसणमोहणी  
यस्स अह० हिदिसंतकम्मं । उवसम० मोह० अह० क० ? अण्ण० उवसमसदीए हिदि  
घादं कादूण अघट्टिदिगलणाए च गाल्मिय से काखे वेदयसम्मादिदी होहिदि पि ओ  
हिदी तस्स अह० हिदिसंतकम्मं । सासण मोह० अ कस्स ? अण्णाद० चरिमसमय०  
सासण० तस्स अह० हिदिसंतकम्मं । सम्मायि० मोह० अ० क० ? अण्णाद० अउवीस-  
संतकम्मिओ जो चरिमसमयसम्मायिअदिदी तस्स अह० हिदिसंतकम्मं ।

एवं सामिच समच' ।

१४४ कालो दुबिहो—अण्णाओ उक्कस्सओ वेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं । दुबिहो  
जिहेसो—ओघण आदेसेण य । तत्थ ओयेण मोह० उक्कस्सहिदी केवचिरं कात्मदो  
होदि ? अह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुच । अण्णुक्क० केवचिरं ? अह० अंतोमुहुच, उक्क०  
अर्णतकात्मसंसेज्जा थोमालपरियहा । एवं मदि—मुदअण्णाण०—असंबद० अचक्खु०  
मय० अयय०—मिच्छादि० पि वचम्भं ।

बिष्णुसिंसंबत जीवोंके समान जानना चाहिये । इतनी बिशेष्टता है कि पीतलेरवा और पद्मलेरवा-  
वाले जीवके मोहनीयका अचम्य स्थितिसत्त्व कबसे समय अन्तिम समयमें पीतलेरवा और पद्म-  
लेरवा प्राप्त करने कसका कबन करना चाहिये ।

१४५ वेदकसम्पगट्ठि जीवोंमें मोहनीयका अचम्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जिसके  
वर्तनमोहनीयका अच नहीं हुआ है ऐसे वेदकसम्पगट्ठि जीवके अन्तिम समयमें मोहनीयका  
अचम्य स्थितिसत्त्व होता है । उपसमसम्पगट्ठि जीवोंमें मोहनीयका अचम्य स्थितिसत्त्व  
किसके होता है ? जो उपसमसम्पगट्ठि जीव उपसममेधीमें स्थितिपात करके और अपस्तन-  
स्थिति गलनके द्वारा स्थितिका गला कर तदनन्तर समयमें वेदकसम्पगट्ठि होगा उसके मोह  
नीयका अचम्य स्थितिसत्त्व होता है । सासावनसम्पगट्ठि जीवोंमें मोहनीयका अचम्य स्थिति  
सत्त्व किसके होता है ? जो सासावनसम्पगट्ठि हुआ है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका अचम्य  
स्थितिसत्त्व होता है । सम्मगिमध्याट्ठि जीवोंमें मोहनीयका अचम्य स्थितिसत्त्व किसके होता  
है । श्रीवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव सम्मगिमध्याट्ठि हुआ है उसके अन्तिम समयमें  
मोहनीयका अचम्य स्थितिसत्त्व होता है ।

इस प्रकार स्वागित्वालुयोगद्वार उपपन्न हुआ ।

१४६ काल दो प्रकारका है—अचम्यकाल और उत्कृष्ट काल । इनमेंसे पहले उत्कृष्ट काल  
का प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेयनिर्देश । इसमें  
से ओघकी अपेक्षा मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका काल कितना है ? अचम्यकाल एक समय  
और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहृत है । मोहनीयकी अनुकृत स्थिति सत्त्वका काल कितना है ? अचम्य  
काल अन्तर्मुहृत और उत्कृष्टकाल असेव्यात पुरुषात् परिवर्तन प्रमाद्य है जिसका प्रमाण अगम्यकाल  
है । इसी प्रकार अत्युपानी, सुतापानी, असंयत, अचक्षुर्दृष्टी, अण्य, अयम्य और मिध्याट्ठि  
जीवोंके करना चाहिये ।

§ ४५ आदेसेण गिरयगईए गेरइएमु मोह० उक्क० केवचि० ? जह० एगसमओ, उक्क० अतोमु० । अणुक्क० केवचिरं० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि । पढमादि जाव सत्तमि त्ति मोह० उक्क० केवचिरं० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० एक० तिण्णि० सत्त० दस० सत्तारस० वावीस० तेत्तीससागरोवमाणि ।

§ ४६ तिरिक्ख० मोह० उक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्ठा । एवं कायजोगि०-णवुस० वत्तव्वं ।

**विशेषार्थ—**मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त होनेसे उत्कृष्ट स्थिति सत्त्वका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । उत्कृष्ट स्थिति बन्धकी व्युच्छित्ति होने पर पुनः उसका बन्ध क्रमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके बाद ही होता है । इस बीच अनुत्कृष्ट स्थितिवन्ध होने लगता है और सत्त्व भी अधःस्तन स्थिति गलनाके द्वारा उत्तरोत्तर न्यून होता जाता है इसलिए अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा सही पचेन्द्रिय-पर्याप्त पर्यायका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल होनेसे इस कालमें अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्व रहता है, इसलिए अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका उत्कृष्ट काल अनन्तकाल कहा है । यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें ओघ प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इनकी प्ररूपणा ओघके समान कही है ।

§ ४५ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तेतीस सागर है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ—**यहा सर्वत्र मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त ओघके समान घटित कर लेना चाहिए । नरकमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय निम्न प्रकार होता है—जिस नारकीने भवके उपान्त्य समयमें उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको बाधा है और तीसरे समयमें मरकर जो अन्य पर्यायको प्राप्त हो गया उसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ ४६ तिर्यचोमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जो असंख्यात् पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । इसी प्रकार काययोगी और नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ४७ पंचिन्द्रियतिरिक्ततियमि मोह० उभक० केव० ? जह० एगसमओ, उभक० मतोमुहुचं । अणुभक० कव० ? अह० एगसमओ, उभक० सगसगुनकस्तठिदी । एवं मणुसतियस्स ।

§ ४८ पंचि०तिरिक्तअपज्ज० माह० उभक० केव० ? अहणुभक० एगसमओ । अणुभक० केव० ? अह० सुदामयगहणं समउणं, उभक० अतोमुहुचं । एवं मणुस-अपज्ज० ।

**विशुपार्थ**—तिर्यँचोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका अवस्थकाल एक समय नातिक्रियोके समान पटित कर लेना चाहिये । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आपके समान पटित कर लेना चाहिये । जब कोई जीव अपनेव्याप्त पुद्गल परिवर्तनकाल तक पकेन्द्रिय पयाप्तमें निरन्तर रहता है तब उसके कर्मयोग और मनुष्यकेवद् ही होता है अतः काययोग और मनुष्यकेवद्में भी मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल तिर्यँचोंके समान बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ४९ पंचेन्द्रिय तियञ पंचेन्द्रिय तियञ पयाप्त और चान्निमसी तिर्यँचोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्पन्नकाल कितना है ? अवस्थ एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्पन्नकाल कितना है ? अवस्थ एक समय और उत्कृष्ट अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य पयाप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके जानना चाहिये ।

**विशुपार्थ**—उक्त तीन प्रकारके तिर्यँचोंमें उत्कृष्ट स्थितिका अवस्थ और उत्कृष्ट काल आपके समान तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अवस्थ काल एकसमय नातिक्रियोके समान पटित कर लेना चाहिये । इनका सुतासा हम पहले कर ही आये हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि किसी भी तिर्यँचके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे भीतर मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका कथन हो यह सम्भव है । यहाँ स्थितिसे कायस्थिति का ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार अवस्थ भी यहाँ अवस्थितिसे कायस्थिति अधिक हो यहाँ भी स्थिति पदसं कथस्थितिका ही ग्रहण करना चाहिये । उक्त तीन प्रकारके तिर्यँचोंकी कायस्थिति क्रमसे पंचान्ते पूर्वकोटि अधिक तीन पदसं, सेंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पदसं और पन्त्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पदसं होती है । सामान्य मनुष्य, पयाप्त मनुष्य और मनुष्यनीकी भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इनकी कायस्थिति क्रमसे सेंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पदसं सेईस पूर्वकोटि अधिक तीन पदसं और सात पूर्वकोटि अधिक तीन पदसं होती है ।

§ ४८ पंचेन्द्रिय तियञ अवस्थपयाप्तक्रममें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्पन्नकाल कितना है ? अवस्थ और उत्कृष्ट दोनों एक समय है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्पन्नकाल कितना है ? अवस्थ एक समय कम सुदामयगहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अवस्थपयाप्तक मनुष्योंके जानना चाहिये ।

**विशुपार्थ**—पंचेन्द्रिय तियञ अवस्थपयाप्तकोके कथनसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती नहीं । हाँ जिसम सेंकी पयाप्त अवस्थामें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका कथन किया और यह स्थिति प्राप्त न करके अन्तर्मुहूर्त कालके दानपर मरकर उक्त जीवोंमें उत्पन्न हो गया ता उसके



§ ४६. देवाणं णारगभगो । भवणादि जाव सहस्सार त्ति उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अप्पणो उक्कस्सट्ठिदी । आणदादि जाव सन्वट्ठ० मोह० उक्क० केव० ? जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० जहण्णट्ठिदी० समज्जा, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी सणुण्णा ।

§ ५० एइदिएसु मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० एगस० । अणुक्क० जह० खुदाभवग्गहण, उक्क० अणंतकालमसखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । एवं वादरेइदिय० । णवरि अणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्सकालो वादरट्ठिदी । वादरेइदियपज्ज० उक्कस्सट्ठिदीए एइंदियभगो । अणुक्क० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं (एगसमयूणं), उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि ।

उत्पन्न होनेके पहले समयमें अपनी पर्यायमें सम्भव स्थितिकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है अतः इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इस एक समयको कम कर देनेपर अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम खुदाभव-प्रहण प्रमाण प्राप्त होता है । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्धपर्याप्तकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । मनुष्य लब्धपर्याप्तकोंके भी इसी प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल घटित कर लेना चाहिए ।

§ ४६ देवोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल नारकियों के समान जानना चाहिये । भवनवासियोंसे लेकर सहस्सारस्वर्ग तकके देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों सत्त्वकाल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण है और उत्कृष्ट अपनी अपनी सम्पूर्ण उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है ।

**विशेषार्थ—**आनतसे सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा इस एक समयको कम कर देनेपर अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण प्राप्त होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और उत्कृष्ट आयु नहीं होती अतः वहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम तेतीस सागर और उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर होगा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५० एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल खुदाभवप्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तःकाल है जो अस्वल्पात् पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय जीवोंके कहना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल वादर स्थिति प्रमाण है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल एकेन्द्रियोंके समान है । तथा इनके

॥ ५१ ॥ वादरेइदियअपज्ज०-सुहुमेइदियअपज्ज०-विगलिदियअपज्ज०-पंचिदियअपज्ज०-पंचकाय०-बादरअपज्ज०-तसि सुहुमअपज्ज०-तसअपज्ज० पंचिदियतिरिक्खअपज्जचमंगा ।

॥ ५२ ॥ सुहुमेइदिय० उक्क० केव० ? अहण्णुक्कस्सेण एयसमओ । अणुक्क० अह० सुहामवग्गणं समउणं, उक्क० असंसेजा खागा । एवं पंचकायसुहुमाणं पच्चचारणं ।

॥ ५३ ॥ सुहमेइदियपज्ज० कं० ? अहण्णुक्कस्सेणेगसमओ । अणुक्क० अह० अंतोसुहुत्तं समयूणं, उक्क० अंतोसुहुत्तं । एवं पंचकायसुहम० ।

अमुत्तुष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? अपन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात इबारत है ।

विशयार्थ—एकेन्द्रियों मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति जबके पहले समझें ही प्राप्त होती है अतः इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । साथ ही यह उत्कृष्ट स्थिति लक्ष्यपर्याप्तक एकेन्द्रिय और सूक्ष्म बीबोंके नहीं प्राप्त होती, अतः अमुत्तुष्ट स्थितिका अपन्यकाल पूरा सुहामवग्गण्य प्रमाण कहा । एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण होनेसे इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल एक प्रमाण कहा । बाहर एकेन्द्रिय और बाहर एकेन्द्रिय पर्याप्त बीबोंकी कायस्थिति क्रमशः अंगुलके असंख्यातवें मात्रा प्रमाण जबकि असंख्यातसंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल प्रमाण व संख्यात इबारत एवं क्रम प्रमाण होनेसे इनके केवल अमुत्तुष्ट स्थितिके उत्कृष्टकालमें एकेन्द्रियोंसे अन्तर है । बाकी सब एकेन्द्रियोंके समान है । सो इसका ज्ञान पहले किया ही है ।

॥ ५१ ॥ बाहर एकेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तक विज्ञानेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तक पाँचों स्वावरकाय बाहर लक्ष्यपर्याप्तक, पाँचों स्वावर काय सूक्ष्म लक्ष्यपर्याप्तक और त्रस लक्ष्यपर्याप्तक बीबोंके पंचेन्द्रिय तिसैल लक्ष्यपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि समी लक्ष्यपर्याप्तक बीबोंके उत्कृष्ट और अमुत्तुष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक समान होता है अतः एक सब लक्ष्यपर्याप्तक बीबोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल पंचेन्द्रिय तिसैल लक्ष्यपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये ।

॥ ५२ ॥ सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? अपन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है । तथा अमुत्तुष्ट स्थितिका अपन्य सत्त्वकाल एक समय कम सुहामवग्गण्यप्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल असंख्यात सांक्ष प्रमाण है । इसी प्रकार पाँचों सूक्ष्म स्वावर कायिक बीबोंके कहा जाहिये ।

॥ ५३ ॥ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक बीबोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? अपन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है । तथा अमुत्तुष्ट स्थितिका अपन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पाँचों सूक्ष्म स्वावरकायिक पर्याप्तकोंके जानना चाहिये ।

§ ५४ विगलिदिय० मोह० उक्क० केव० ? जहएणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० खुदाभवग्गहणं समउणं, उक्क० मखेज्जाणि वाससहस्साणि । एव विगलिदियपज्जत्ताणं पि । णवरि अणुक्कस्सजहएणकालो अतोमुहुत्तं समउणं ।

§ ५५ पचिदिय-पचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मोह० उक्क० ओघभगो । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी ।

§ ५६ पुढवि०-वादरपुढवि०--आउ०-वादरआउ० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० खुदाभवग्गहण, उक्क० सगसगुक्क-स्सट्ठिदी । वादरपुढविपज्ज०-वादरआउ०पज्ज० उक्क० के० ? जह० एगसमओ,

§ ५४ विकलेन्द्रिय जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्ष है । इसी प्रकार विकलेन्द्रिय पर्याप्तकोंके भी जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—सूक्ष्म एकेन्द्रियसे लेकर आगे जितनी मार्गणाश्रमे काल कहा है उन सबके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमे ही प्राप्त हो सकती है, अतः सबके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । पर अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कालका कथन करते समय जहा खुदाभवग्रहण प्रमाण जघन्य स्थिति सम्भव है वहा एक समय कम खुदा भवग्रहण प्रमाण जघन्य काल कहा और जहा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य स्थिति सम्भव है वहा एक समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य काल कहा । तथा जहा जो उत्कृष्ट काल सम्भव है वहा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल तत्प्रमाण कहा ।

§ ५५ पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—पचेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पूर्व कोटि पृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागर, पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरपृथक्त्व, त्रसकायिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रसकायिक, पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो हजार सागर बतलाई है अतः इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त स्थिति प्रमाण जानना चाहिये । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार नारकियोंके घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहा भी घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५६ पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, जलकायिक और वादर जलकायिक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल खुदाभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और वादर जलकायिक पर्याप्त

उपक० एगसमया । अणुपक० अह० अंतोमुद्रुतमेगसमऊणं, उपक० सत्सेउझाणि  
वाससइस्ताणि ।

§ ५७ तउ०—वादरतउ०—वादरतउपउग०—याउ०—वादरनाउ०—वादरबाउपउग०  
उक० अहण्णुक्कस्तण एगसमया, अणुपक० अह० सुदामयमाहणं समऊणं । नवरि  
पउत्ताणमंतामुद्रुतं समऊणं । सम्पसिमणुक्कस्तुक्कस्तं सगसगुक्कस्तट्टिटी ।

§ ५८ वणप्फदिकाइयाणमेइदियमंगो । वादरवणप्फदिकाइयाणं वादरेइ दिय

बीबोंके मोहनीपकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? अपन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक  
समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य सत्त्वकाल एक समय कम अस्तमुहूर्त है । और  
उत्कृष्ट सत्त्वकाल सम्पात हजार बप है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त बीबोंके जिस प्रकार  
उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य काल घटित करके  
सिद्ध आये हैं वसी प्रकार यहां पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक और वादर पृथिवीकायिक  
पर्याप्त आदि बीबोंके जानना चाहिये । किन्तु इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता  
है जिसका निर्देश मूलमें किया ही है । पृथिवीकायिक और वसकायिक बीबोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति  
असंख्यात लोक प्रमाण्य कही है । वादर पृथिवीकायिक और वादर वसकायिक बीबोंकी उत्कृष्ट  
कायस्थिति उत्कृष्ट कमस्थिति प्रमाण्य कही है । तथा वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और वादर  
वसकायिक पर्याप्त बीबोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार बप प्रमाण्य कही है सो इस  
क्रमसे एक बीबोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये ।

§ ५९ अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्त वायुकायिक, वादर  
वायुकायिक और वादर वायुकायिक पर्याप्त बीबोंके मोहनीपकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और  
उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय कम सुरामयमहण्य प्रमाण्य है । इतनी विशेषता है कि पर्याप्तकोंके  
अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य सत्त्वकाल एक समय कम अस्तमुहूर्त है । तथा उपर्युक्त सभी बीबोंके  
अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण्य है ।

विशेषार्थ—उक्त कायवाले बीबोंके इनके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना सम्भव  
है अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । पर्याप्त बीबोंका  
अपन्य काल अस्तमुहूर्त और लोकका सुरामयमहण्य प्रमाण्य है अतः इस अपन्य काह में उत्कृष्ट  
स्थितिके कालके एक समय घटा देने पर जो एक समय कम सुरामयमहण्य प्रमाण्य और एक समय  
कम अस्तमुहूर्त काल बनता है वह इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य काल है । इनमेंसे कौन  
किसका काल है वह सुसंज्ञा मूलमें ही किया है । तथा अग्निकायिक और वायुकायिकका उत्कृष्ट  
काल असंख्यात लोक प्रमाण्य है । वादर अग्निकायिक और वादर वायुकायिकका उत्कृष्ट काल  
कमस्थितिप्रमाण्य है और वादर अग्निकायिक पर्याप्त तथा वादर वायुकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट  
काल संख्यात हजार बप है । इस प्रकार इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ऊपर कही गई  
अपनी अपनी कास्थिति प्रमाण्य जानना ।

§ ५८ वनस्पतिकायिक बीबोंके एकेन्द्रियोंके समान, वादर वनस्पतिकायिक बीबोंके वादर

भंगो । वादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ताणं वादरेइंदियपज्जत्तभंगो ।

§ ५६ पंचमण०-पंचवचि० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं वेउव्वियकाय० वत्तव्वं । ओरालि० मोह० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वावीसवाससहस्साणि देसूणाणि । ओरालियमिस्स० मोह० उक्क० के० ? जहण्णुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज० खुदाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्क० अंतोमु० ।

§ ६० वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ, अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं समऊणं, उक्क० अंतोमु० । एवमाहारमिस्स०-उवसम०-सम्माभि० वत्तव्वं । आहार० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ । (अणुक्क०) ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्त्वाद० वत्तव्वं । कम्मइय० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०, अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया ।

एकेन्द्रिय जीवोंके समान और वादर वनस्पतिकाधिक पर्याप्त जीवोंके वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान काल जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इनके सब प्रकारसे एकेन्द्रिय और उनके भेद-प्रभेदोंके समान उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल वन जाता है ।

§ ५६ पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगी जीवोंके कहना चाहिये । औदारिककाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वका ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल कुछ कम वाईस हजार वर्ष है । औदारिक-मिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल तीन समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ६० वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । आहारककाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकपायी, सूक्ष्मसापराधिकसयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । कार्मण-काययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तीन समय है ।

विशेषार्थ—पाचों मनोयोग और पाचों वचनयोगोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक

१६१ इत्यं मोहं चक्षुः अहं एगसमग्रो, चक्षुः अंतोमुहुरं । अणुचक्षुः  
नहं एगसमग्रो, चक्षुः सगृहीदी । एषं पुरिसः ।

समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुरं बन जाता है । यही बात वैद्विषिक काययोगमें मानना चाहिये ।  
भौतिक काययोगमें अनुकृष्ट स्थितिके उत्कृष्टकालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि भौतिक-  
काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुरं कम याईस हजार वर्षप्रमाण है और इतने काल तक जीवके  
इसमें मोहनीयकी अमुकस्थ स्थिति पाई जाती है, अतः भौतिककाययोगमें अनुकृष्ट स्थितिक  
उत्कृष्ट काल एक प्रमाण कहा । भौतिक मिश्रकाययोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति हो  
सकती है अतः भौतिकमिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट स्थिति का जपन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा ।  
पर ऐसा जीव निवृत्त्यर्थात् होगा । इससे सिद्ध हुआ कि जपन्यर्थात् भौतिक मिश्रकाययोगके  
अनुकृष्ट स्थिति ही होती है । अब यदि कोई जीव तीन मोहा लेकर एकत्रिय सन्ध्यपमात्रकमें  
उत्पन्न हो तो उसके कुरामवस्थप्रमाण कालमें से तीन समय और कम हो जायेंगे अतः भौता-  
रिकमिश्रकाययोगमें अनुकृष्ट स्थितिका जपन्यकाल तीन समय कम कुरामवस्थप्रमाण कहा ।  
तब इससे अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहुरं होता है यह स्पष्ट ही है । वैद्विषिकमिश्र  
काययोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और  
उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा उत्कृष्ट स्थितिके इस एक समयके कम कर देन पर भी  
वैद्विषिकमिश्रकाय एक समय कम अन्तर्मुहुरं काल होप रहता है यह अनुकृष्ट स्थितिका जपन्य  
काल है । वैद्विषिकमिश्रकाययोगमें अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहुरं होता है यह  
स्पष्ट ही है । आहारकमिश्रकाययोगी, उपज्जमसम्बन्धि और सन्ध्यमिष्याष्टि जीवोंके भी इसी  
प्रकार कवन करना चाहिय क्योंकि इनके भी पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है, अतः  
इनके उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बन जाता है । तथा इस एक  
समयके कम कर देन पर उक्त मार्गणात्मीका भी एक समय कम अन्तर्मुहुरं प्रमाण काल होप  
बचता है यह उनकी अनुकृष्ट स्थितिका जपन्य काल है और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट  
स्थितिप्रमाण अन्तर्मुहुरं होता है यह स्पष्ट ही है । आहारककाययोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट  
स्थिति सम्भव है अतः इसमें उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा ।  
बा जीव एक समय तक आहारक काययोगके साथ रहकर दूसरे समयमें मर्यादादि निमित्तोंसे  
अन्य योगको प्राप्त हो जात है उनके अनुकृष्ट स्थितिका जपन्य काल एक समय पाया जाता है  
अतः आहारक काययोगमें अनुकृष्ट स्थितिका जपन्य काल एक समय कहा । तथा उत्कृष्टकाल  
अन्तर्मुहुरं आहारक काययोगके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा । अपगतवेदी अकयापी,  
सूक्ष्मसोपराधिक संयत और वषास्मात्संयत इन मार्गणात्मीकी स्थिति आहारक काययोगके समान  
है अतः इनमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका काल आहारककाय योगके समान कहा । कामकायप  
योगके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः इसमें भी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट  
काल एक समय कहा । तथा कामकाययोगका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन  
समय है अतः इसमें अनुकृष्ट स्थितिका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन  
समय कहा है ।

१६१ सजीवही जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य सत्त्वकाल एक समय और  
उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहुरं है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका जपन्य सत्त्वकाल एक समय और  
उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार पुरुषवही जीवोंके कदना चाहिये ।

§ ६२ चत्वारिंशसाय० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§ ६३ विहंग० सत्तमपुढविभंगो । णवरि अणुक्क० उक्क० तेत्तीस सागरो० अंतोमुहुत्तणाणि । आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० केव० ? जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० द्वावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । एवमोहिदंस०-सम्मादि०-वेदयसम्मादि० । णवरि वेदयसम्पत्तिमि अणुक्क० द्वावट्टि-सागरोवमाणि । मणपज्ज० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ, अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । एव संजद०-परिहार०-संजदासंजद० । सामा-इय-छेदो० एवं चेव । णवरि अणुक्क० जह० एगसमओ । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

विशेषार्थ-स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त ओषधके समान घटित कर लेना चाहिये । जो स्त्रीवेदसे अपगतवेदको प्राप्त हुआ जीव उपशमश्रेणीसे उतरते हुए एक समयके लिये स्त्रीवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर अन्य-वेदी हो गया उस स्त्रीवेदीके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । या जिस स्त्रीवेदी या पुरुषवेदी जीवने उत्कृष्ट स्थितिके पश्चात् एक समयके लिये अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त किया और दूसरे समयमें वह मर कर अन्यवेदी हो गया उस स्त्रीवेदी या पुरुषवेदीके अनु-त्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी पत्योपमशतप्रथक्त्व व सागरोपमशतप्रथक्त्व स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ६२ चारों कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तात्पर्य यह है कि चारों कपायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनमें उक्त प्रमाण काल बन जाता है ।

§ ६३ विभगजानी जीवोंके सातवीं पृथिवीके समान जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर है । आभिनि-वोधिकजानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल साधिक छयासठ सागर है । इसी प्रकार अवधि-दर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेद-कसम्यक्त्वमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल पूरा छयासठ सागर है । मन पर्ययज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसी प्रकार सयन, परिहारविश्रुत्तिमयत और संयतासयत जीवोंके जानना चाहिये । तथा सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासयत जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । पर

१६४ किण्व०—णीस०—काठ०—तेर०—पम्प० मोह० सकक० ओघमंगो ।  
अणुकक० नह० अंतोमु० एगसमआ, सकक० सगुक्कस्तहिदी । सुक्क० मोह०  
उक्क० नहण्णुकक० एगसमआ । अणुकक० नह० अंतोमु०, उक्क० तचीस सागरोव

इतनी बिसेस्ता है कि इनके अनुकृष्ट स्थितिका अपन्य सत्यकास एक समय हाता है । बहुत  
दूरीकी जीवोंमें असप्यासकोंके समान जानता चाहिये ।

विशेषार्थ—विमर्गज्ञान पर्याप्त अवस्थामें ही होता है अतः इसके अनुकृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट  
कासको अन्तर्मुहूर्त कम वेतीस सागर कहा । सेप कयन सुगम है । आमिनिवाचिक ज्ञानी, मुक्तिज्ञानी  
और अचरिज्ञानी जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना पहले समयमें ही सम्भव है अतः इनके उत्कृष्ट  
स्थितिअ अपन्य और उत्कृष्टकास एक समय कहा । जो जीव अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्दर्शि रहा परचात्  
सम्यक्त्वसे खुद हो गया या सम्यक्त्व प्राप्तिके बाद जिसने अन्तर्मुहूर्तमें कबलज्ञान प्राप्त कर  
लिया उसके लक्ष तीन ज्ञानोंके लक्षे हुए अनुकृष्ट स्थितिका अपन्य कास अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है ।  
तथा आमिनिवाचिकज्ञान मुक्तज्ञान और अचरिज्ञानका उत्कृष्टकास बार पूर्वकोटि अधिक द्रष्टासठ  
सागर है अतः इनके अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट कास साधिक द्रष्टासठ सागर कहा । यहाँ पर  
अधिकसे बार पूर्वकोटियोंका प्रवेश करना चाहिये । अचरिज्ञानी सम्यग्दर्शि और वेदकस्तम्यदर्शि  
जीवोंके भी इसी प्रकार उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका कास करना चाहिये । किन्तु वेदकस्तम्यक्त्व  
का उत्कृष्ट कास पूरा द्रष्टासठ सागर है अतः इसके अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट कास पूरा द्रष्टा  
सठ सागर हागा । जो जीव मनुष्यव्यक्तिके प्राप्त होता है उसके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति  
सम्भव है अतः मनुष्यव्यक्तिके उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट कास एक समय कहा ।  
तथा मनुष्यव्यक्तिके अपन्य कास अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कास कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है,  
अतः इसके अनुकृष्ट स्थितिका अपन्य कास अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कास कुछ कम पूर्वकोटि  
प्रमाण कहा । यहाँ कुछ कमसे आठ वष अन्तर्मुहूर्त लिया है । पूर्वकोटिमेंसे इतना कम कम कर  
देना चाहिये । संवत्, परिहारविद्युत्संयत और संयतासंयतकी स्थिति मनुष्यव्यक्तिके समान  
है अतः इनमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिके कासको मनुष्यव्यक्तिके समान कहा । परन्तु  
इतनी बिशेस्ता है कि परिहारविद्युत्संयतका उत्कृष्ट कास १६ वर्ष कम एक पूर्वकाति वष है और  
संयतासंयतका उत्कृष्ट कास अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वष है । जो जीव उपशममेणीसे  
छतर कर और एक समय तक मोर्चे गुप्तस्थानमें रह कर भर जाता है उसके सामाधिक और वेद-  
पस्थापना संयतका अपन्य कास एक समय पाया जाता है, अतः इनके अनुकृष्ट स्थितिका  
अपन्य कास एक समय बन जाता है । सेप कयन मनुष्यव्यक्तिके समान है । असप्याससं बहुत  
दूरीकी स्थितिमें अन्तर नहीं है अतः बहुतदूरीके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका कास अस  
पर्याप्तके समान कहा ।

१६५ कुप्पसेरयावाला मीलसेरयावाला नापातलेयावाले, पीतसेरयावाले और पछलेया-  
वाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्यकास अपन्य समान है । तथा अनुकृष्ट  
स्थितिका अपन्य सत्यकास मार्मकी तीन लेखापालोंके अन्तर्मुहूर्त और पीत तथा पछलेया-  
वालोंके एक समय है । तथा उत्कृष्ट सत्यकास अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । उत्कृष्ट  
सेरयावाले जीवोंके माहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट सत्यकास एक समय है ।



माणि सादिरेयाणि । एवं खड्य० वत्तव्वं ।

§ ६५ सासण० मोह० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० एग-  
समओ, उक्क छ आवलियाओ । सण्णि० पुरिसभंगो । असण्णि० एइंदियभंगो ।  
आहारि० मोह० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिटी ।  
अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल साधिक तेतीस सागर  
है । इसी प्रकार चायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—मरते समय यदि अशुभ लेश्या हो तो दूसरी पर्यायमें उत्पन्न होने पर अन्तर्मु-  
हूर्त काल तक वही लेश्या बनी रहती है पर पीत और पद्म लेश्याकी यह बात नहीं, क्योंकि  
एक लेश्यावाला यदि कोई देव तिर्यचोमें उत्पन्न होता है तो उसके तिर्यच पर्यायमें कापोत लेश्या  
हो जाती है, अतः तीन अशुभ लेश्याओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त  
होता है । तथा पीत और पद्म लेश्यामें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय भी प्राप्त हो  
जाता है । जैसे किसी पीत या पद्म लेश्यावाले देवने आयुके उपान्त्य समयमें मोहनीयका उत्कृष्ट  
वध किया और अन्तके एक समयमें पीत तथा पद्म लेश्याके साथ अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला हो  
गया । फिर मरकर तिर्यचोमें उत्पन्न होनेसे लेश्या पलट गई । इस प्रकार पीत व पद्मलेश्यामें अनुत्कृष्ट  
स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय होता है । शुक्ल लेश्याके तो पहले समयमें ही उत्कृष्ट  
स्थिति सम्भव है अतः इसके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा ।  
लेश्याओंमें शेष कथन सुगम है । चायिकसम्यक्त्व की स्थिति शुक्ल लेश्याके समान है, अतः  
इसके कथनको शुक्ल लेश्याके समान कहा । इतनी विशेषता है कि शुक्ल लेश्याका उत्कृष्ट काल  
अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है और चायिक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त  
क्रम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है । अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते  
समय अपना अपना काल कहना चाहिये ।

§ ६५. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट  
सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट  
सत्त्वकाल छह आवली है । सद्गी जीवोंके पुरुषवेदो जीवोंके समान जानना चाहिये । असद्गी  
जीवोंके ऐकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिए । आहारक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका  
सत्त्वकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और  
उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थितिप्रमाण है । अनाहारक जीवोंके कर्मण काययोगियोंके समान  
जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सासादनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि है, अतः  
इसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण प्राप्त होता  
है । किन्तु सासादनसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट स्थिति पहले समयमें ही प्राप्त हो सकती है । अतः इसके  
उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जो आहारक उपान्त्य समयमें  
उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करके अन्त समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है और तीसरे

॥ ६६ जहण्य पयर्द बुविहो जिहोसो—ओघेण आदेसण य । तत्त ओघेण मोह० जह० के० ? जहण्यकस्सेण एगसमयो । अजहण्य० अजादियो अपजवसिदो मणादियो सपजवसिदो था । एवमवस्तु० मवसि० । साविसपजवसिदमंगो अजहण्यस्स जत्थि; जहण्यहिदीदो जरिमसमयसुहमसांपराह्यस्ववयस्स अनहण्यहिदीए णिमायाभावादो । सबसंतकसाए भाहोदयवज्जिदे हेहा णिवदिदे अजहण्यहिदीए सादिर्ण किण्ण घेण्णद ? वा, सबसंतकसाए वि मोह० अनहण्यहिदीए सम्भाबुनत्तमादो ।

॥ ६७ आदेसेण णिरय० मोह० जह० जहण्यक० एगसमया । अजहण्य०

समयमें मरकर अनाहारक हो जाता है उसके आहारकके अनुकूल स्थितिक्र ज्ञपन्व कल एक समय प्राप्त होता है और एकदृष्टकाल अंगुलके अस्स्यातर्षे भाग प्रमाण अस्स्यातासंज्ञात अब सर्पिणी अस्सर्पिणी प्रमाण है । छेब कथन सुगम है ।

इस प्रकार एकदृष्ट कालानुगम समस्त हुआ ।

॥ ६८ अब ज्ञपन्व कालानुगम प्रकरण प्राप्त है । इसकी अपेक्षा निर्वेद्य को प्रकरण है—आपनिर्वेद्य और आदेसनिर्वेद्य । हमसे आपकी अपेक्षा मोहनीयकी ज्ञपन्व स्थितिक्र कितना उत्तमकाल है ? ज्ञपन्व और एकदृष्ट उत्तमकाल एक समय है । तथा अज्ञपन्व स्थितिक्र उत्तमकाल अनादि अनन्त और अनादि-साम्य है । इसी प्रकार अपचुर्ध्वनी और भव्य बीबके जानना चाहिये । अज्ञपन्व स्थितिक्र सादि-साम्य मंग नहीं है क्योंकि ज्ञपन्व सूक्ष्मसांप्रदायिक बीबके अन्तिम समयमें मोहनीयकी ज्ञपन्व स्थिति होती है और इससे बीबका अज्ञपन्व स्थितिमें पतन नहीं होता । अर्थात् सामान्यसे मोहनीयकी ज्ञपन्व स्थिति ज्ञपन्व सूक्ष्मसांप्रदायिक बीबके अन्तिम समयमें होती है और वह बीब तबतन्त्र बीबमाह हा जाता है पुनः वह अज्ञपन्व स्थितिमें लौटकर नहीं जाता है अतः अज्ञपन्व स्थितिक्र सादि-साम्य मंग नहीं है ।

शुद्धा—मोहनीय कर्मके वृत्तसे रहित उपशान्तकपाय बीब अब नीच वृत्तें गुह्यत्वानमें आता है तब इसके अज्ञपन्व स्थितिक्र सादिपन्व क्यों नहीं लिया जाता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि उपशान्तकपायमें भी मोहनीयकी अज्ञपन्व स्थितिक्र सञ्ज्ञा पाया जाता है, अतः सामान्यकी अपेक्षा मोहनीयकी अज्ञपन्व स्थितिमें सादि-साम्य मंग नहीं बनता ।

विशेषार्थ—ज्ञपन्व सूक्ष्मसांप्रदाय गुह्यत्वानके अन्तिम समयमें सूक्ष्म साम्य व्यवस्था निरूपेण रहता है जो इसी समय कल रिकर निर्णीय हो जाता है अतः ओपसे माहकी ज्ञपन्व स्थितिक्र ज्ञपन्व और एकदृष्ट कल एक समय कहा । तथा पूरे मोहनीयका अभाव होकर पुनः इसका सञ्ज्ञा नहीं होता, अतः ओपसे मोहकी अज्ञपन्व स्थितिक्र कल अनादि-अनन्त और अनादि-साम्य ही होता है, सादि-साम्य नहीं । हमसे अनादि अनन्त कल अमर्त्यकी अपेक्षा कहा और अनादि-साम्य कल मर्त्यकी अपेक्षा कहा । यह ओपमरूपणा अचक्षुर्ध्वनीयसे और मर्त्यके अधिकतम बन जाती है अतः इनकी प्रकृष्टताको ओपके समान कहा । यही इतना विशेष जानना चाहिये कि मर्त्यके मोहकी अज्ञपन्व स्थितिक्र अनादि अनन्त विस्तृत नहीं बनता । अथवा जो मर्त्य अमर्त्यके समान हैं उनकी अपेक्षा यह विस्तृत मर्त्यके भी बन जागा है ।

॥ ६९ आदेससे मरकालिमें मोहनीयकी ज्ञपन्व स्थितिक्र ज्ञपन्व और एकदृष्ट

जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । पढमाए ज० जहण्णुक० एगसमओ । अज० जह० एगसमओ, उक्क० सागरोवमं । विदियादि जाव छट्ठि ति मोह० ज० जहण्णुक०, एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णेण जहण्णट्ठिदी, उक्कस्सेण उक्कस्सट्ठिदी । सत्तमाए पुढवीए मोह० जहण्णट्ठिदी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अजहण्ण० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पहले नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक सागर है । दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तक प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अपनी अपनी जघन्य स्थिति-प्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सातवें नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ**—जो असङ्गी पंचेन्द्रिय जीव हजार सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवंधमेंसे पत्थो-पमके सख्यातवें भाग प्रमाण कम जघन्य स्थिति सत्कर्मको प्राप्त करके पुन जघन्य स्थिति सत्त्व होनेके समय ही जघन्य स्थिति सत्त्वके समान स्थितिको बाधकर दो समय विग्रह करके नरकगति में उत्पन्न होता है और विग्रहमें असङ्गी पंचेन्द्रियके जघन्य स्थिति सत्त्वसे हीन स्थितिका बध करता है उसके दूसरे विग्रहके समय मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः नरकमें जघन्यस्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा ऐसे नारकीके पहले समयमें अजघन्य स्थिति रहती है अतः नरकमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा नरकमें अजघन्य स्थिति का उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । सामान्य नारकियोंके समान पहले नरकमें भी मोहकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये । पहले नरककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है अतः यहा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल एक सागर कहा । दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तकके नारकियोंके मोहकी जघन्य स्थितिका प्राप्त होना भवके अन्तिम समयमें ही सम्भव है अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । किन्तु यह जघन्य स्थिति अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके ही प्राप्त हो सकती है सो भी सबके नहीं, अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपने अपने नरककी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा । सातवें नरकमें उत्कृष्ट आयुवाला जो नारकी पर्याप्ति पूर्ण करके अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दूसरे अन्तर्मुहूर्तके द्वारा अनन्तानुबन्धी स्थितिसत्कर्मकी विसयोजना कर जीवन भर सम्यक्त्वके साथ रहा और अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ पुन मिथ्यात्वमें जितने काल तक शक्य हो उतने काल तक स्थिति सत्कर्मसे हीन बध करके अगले समयमें सत्त्व स्थितिसे अधिक स्थिति बध करेगा, उस जीवके जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है और जो सत्तामें स्थित स्थितिके समान स्थितिवाले बर्माका बध करता रहता है उसके जघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्त-

§ ६८ विरिक्त० मोह० जहण्णहिदी न० एगसमओ, चक० अंतोमु० । अज  
हण्ण० न० एगसमओ, चक० असंसेज्जा सोगा । एवमिदि-सुदअण्णाण०-असंजद०  
मभव०-मिच्छादि०-असण्णि सि यत्तव्व । जवरि असण्णिपत्तिपसु अज न० अंतोमु० ।

§ ६९ पंचिदियतिरिक्त्तचवकम्मि मोह० जहण्णहिदी जह० एगसमआ, चक०  
न समया । अजहण्ण० जह० सुहाभवग्गहण विसमऊण, अतोमुहुत्थं विसमऊण । एत्थ

मुहुत्त होता है । तथा अजपण्य स्थितिके बाद जो अन्तमु हुत्त काल छेप रह जाता है वह अजपण्य  
स्थितिका अजपण्यकाल है । तथा अजपण्य स्थितिका उत्कृष्टकाल सातवें नरककी उत्कृष्ट स्थिति  
प्रमाण होता है, यह स्पष्ट ही है ।

§ ६८ तिर्यक् गतिमें मोहनीयकी अजपण्य स्थितिका अजपण्य सत्त्वकाल एक समय और  
उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमु हुत्त है । तथा अजपण्य स्थितिका अजपण्य सत्त्वकाल एक समय और  
उत्कृष्ट सत्त्वकाल असंख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार मत्त्वज्ञानी, भूताज्ञानी, असंखत,  
अमध्य मिथ्यादृष्टि और असंखी जीवोंके रहना चाहिये । इतनी चिन्तेला है कि असंखियोंको  
बोझकर छेप मत्त्वज्ञानी आदि जीवोंके अजपण्य स्थितिका अजपण्य सत्त्वकाल अन्तमु हुत्त है ।

विशेषार्थ—तिर्यक्में मोहनीयकी अजपण्य स्थिति एकैन्द्रियोंके प्राप्त होती है और वह कमसे  
कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमु हुत्त काल तक रहती है, क्योंकि प्रत्येक स्थिति  
का अजपण्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमु हुत्त है । अतः इनके मोहनीयकी  
अजपण्य स्थितिका अजपण्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत्त कहा । तथा जो तिर्यक्  
अजपण्य स्थितिके बाद एक समय तक अजपण्य स्थितिके साथ रहा और मरकर दूसरे समयमें  
अन्य गतिको प्राप्त हो गया उसके अजपण्य स्थितिका अजपण्य काल एक समय प्राप्त होता है ।  
तथा तिर्यक् पर्यायमें मोहनीयकी अजपण्य स्थितिके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक-  
प्रमाण है, अतः इनके अजपण्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण कहा । यह जो  
ऊपर सामान्य तिर्यक्के अजपण्य और अजपण्य स्थितिका काल कहा वह एकैन्द्रियोंकी मरान्तरासे  
कहा है और एकैन्द्रिय पर्यायके रहत हुए मत्त्वज्ञान भूताज्ञान असंखम, अमध्य मिथ्यादृष्टि  
और असंखी व मत्त्वज्ञान सगम हैं ही अतः इनका कवन तिर्यक्के समान जानना । किन्तु  
ऊपर अजपण्य स्थितिका अजपण्यकाल जो एक समय कहा है वह असंखी अजपण्यमें ही प्राप्त होता  
ह छेप मार्गलाभोंमें नहीं क्योंकि जो जीव अजपण्य स्थितिके बाद एक समय तक अजपण्य  
स्थितिका प्राप्त हुआ और उपरान्त मरकर अन्य गतिके प्राप्त हो जाता है इसका असंखी  
मार्गलाभ ता बरस जाती है पर ऊपर कहा हुआ मार्गलाभ नहीं वरसती अतः मत्त्वज्ञानी आदि  
वस्तुके छेप मार्गलाभोंमें अजपण्य स्थितिका अजपण्य काल अन्तमु हुत्त जानना चाहिये ।

§ ६९ पंचमिदिय पंचमिदिय पचाण योमिमती और जहण्णपचाण इन चार प्रकारके  
तिर्यक्में मोहनीयकी अजपण्य स्थितिका अजपण्य सत्त्वकाल एक समय है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल  
एक समय है । तथा अजपण्य स्थितिका अजपण्य सत्त्वकाल पंचमिदिय तिर्यक् और जहण्णपचाण पंचे-  
न्द्रियतिर्यक्में ही समय कम सुहाभवग्गहण प्रमाण और छेप वा प्रकारके तिर्यक्में ही समय कम  
अन्तमु हुत्त है । यहां मूलोच्चारणाका पाठ है कि जत वातं यत्तव्वं तिर्यक्के अजपण्य

जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कसद्विदी । पढमाए ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० जह० एयसमओ, उक्क० सागरोवमं । विदियादि जाव छद्वि ति मोह० ज० जहण्णुक्क०, एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णेण जहण्णद्विदी, उक्कस्सेण उक्कस्सद्विदी । सत्तमाए पुढवीए मोह० जहण्णद्विदी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अजहण्ण० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पहले नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक सागर है । दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तक प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अपनी अपनी जघन्य स्थिति-प्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सातवें नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ**—जो असह्य पचेन्द्रिय जीव हजार सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवंधमेसे पत्थो-पमके सख्यातवें भाग प्रमाण कम जघन्य स्थिति सत्कर्मको प्राप्त करके पुनः जघन्य स्थिति सत्त्व होनेके समय ही जघन्य स्थिति सत्त्वके समान स्थितिको बाधकर दो समय विग्रह करके नरकगति में उत्पन्न होता है और विग्रहमें असह्य पचेन्द्रियके जघन्य स्थिति सत्त्वसे हीन स्थितिका बाध करता है उसके दूसरे विग्रहके समय मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः नरकमें जघन्यस्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा ऐसे नारकीके पहले समयमें अजघन्य स्थिति रहती है अतः नरकमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा नरकमें अजघन्य स्थिति का उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । सामान्य नारकियोंके समान पहले नरकमें भी मोहकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये । पहले नरककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है अतः यहा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल एक सागर कहा । दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तकके नारकियोंके मोहकी जघन्य स्थितिका प्राप्त होना भवके अन्तिम समयमें ही सम्भव है अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । किन्तु यह जघन्य स्थिति अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके ही प्राप्त हो सकती है सो भी सबके नहीं, अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपने अपने नरककी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा । सातवें नरकमें उत्कृष्ट आयुवाला जो नारकी पर्याप्ति पूर्ण करके अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दूसरे अन्तर्मुहूर्तके द्वारा अनन्तानुबन्धी स्थितिसत्कर्मकी विसंयोजना कर जीवन भर सम्यक्त्वके साथ रहा और अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ पुनः मिथ्यात्वमें जितने काल तक शक्य हो उतने काल तक स्थिति सत्कर्मसे हीन बाध करके अगले समयमें सत्त्व स्थितिसे अधिक स्थिति बाध करेगा, उस जीवके जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है और जो सत्तामें स्थित स्थितिके समान स्थितिवाले वर्मका बाध करता रहता है उसके जघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तः

सुखामवगाहणं मंतोमुहूर्त्तं, उक्त० सगहिदी । मशुसअपञ्ज० पंचिदियतिरिक्त्तअप  
कचर्मगो ।

१७१ देव० मोह० अहण्णहिदी अहण्णुक० एगसमओ । अजह० अह० एगस-  
मओ, उक्त० सगहिदी । मचण०-माण० मोह० अहण्णहिदी अहण्णुक० एगसमओ ।  
अजह० अह० एगसमओ, उक्त० सगसण्णुक्त्तहिदी । ओदिसियादि जाष सम्भट्ट० पि  
अह०हिदि० अहण्णुक० एगसमओ । अजहण्ण० अहण्णुक० अहण्णुकत्तहिदी ।

स्थितिका ज्ञानस्य सत्त्वकात् सामान्य मनुष्योंके क्षुरामवगाहणप्रमाण और छेप होके अन्तर्मुहूर्त्त  
है तथा अहण्ण सत्त्वकात् अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सामान्यपर्याप्तक मनुष्योंके ज्ञानस्य  
और अज्ञानस्य स्थितिका अज्ञान पंचेन्द्रवर्तियेस्य सामान्यपर्याप्तकोंके समान जानना ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके  
मोहनीयकी ज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और अहण्ण काल को एक समय बतलाया है सो इसका  
क्षुरासा जिस प्रकार औपग्रहकाके समान कर भाये हैं उस प्रकार कर लेना चाहिये । तथा  
सामान्य मनुष्यका ज्ञानस्य काल क्षुरामवगाहणप्रमाण और छेप हो प्रकारके मनुष्योंका ज्ञानस्य काल  
अन्तर्मुहूर्त्त है अतः इनके अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य काल उक्त प्रमाण कहा । तथा अज्ञानस्य  
स्थितिका अहण्ण काल अपनी अपनी अहण्ण कायस्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । इस  
विषयमें सामान्यपर्याप्त मनुष्यकी स्थिति सामान्यपर्याप्त पंचेन्द्रवर्तियेस्य के समान है, अतः इसके  
ज्ञानस्य और अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और अहण्ण काल सामान्यपर्याप्त पंचेन्द्रवर्तियेस्य के  
समान कहा ।

१७१ देवोंमें मोहनीयकी ज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और अहण्ण सत्त्वकात् एक समय  
है । तथा अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य सत्त्वकात् एक समय और अहण्ण सत्त्वकात् अपनी स्थिति  
प्रमाण है । अन्तर्वासी और अन्तर देवोंमें मोहनीयकी ज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और अहण्ण  
सत्त्वकात् एक समय है । तथा अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य सत्त्वकात् एक समय और अहण्ण  
सत्त्वकात् अपनी अपनी अहण्ण स्थितिप्रमाण है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वाभिसिद्धिकके देवोंके ज्ञानस्य  
स्थितिका ज्ञानस्य और अहण्ण सत्त्वकात् एक समय है । तथा अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और  
अहण्ण सत्त्वकात् क्रमसे अपनी अपनी ज्ञानस्य और अहण्ण स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार सामान्य नारिकोंके मोहनीयकी ज्ञानस्य और अज्ञानस्य स्थितिका  
ज्ञानस्य और अहण्ण काल घटित करके लिल भाय हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके पण्डित कर  
लेना चाहिये । तथा अन्तर्वासी और अन्तर देवोंके भी इसी प्रकार जानना । जिस बात इतनी है कि  
इनके अज्ञानस्य स्थितिका अहण्ण काल अपनी अपनी अहण्ण स्थिति प्रमाण होता है, क्योंकि  
इतने काल तक इनके मोहनीय अज्ञानस्य स्थिति पाइ जा सकती है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वाभिसिद्धि  
लकके देवोंके मोहनीयकी ज्ञानस्य स्थिति उनके अन्तिम समयमें ही सम्भव है अतः इनके  
ज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य और अहण्ण काल एक समय कहा । पर यह ज्ञानस्य स्थिति अहण्ण  
जाननासे होती है और यह भी सत्ये नहीं अतः अज्ञानस्य स्थितिका ज्ञानस्य काल अपनी अपनी  
ज्ञानस्य स्थितिप्रमाण और अहण्ण काल अपनी अपनी अहण्ण स्थितिप्रमाण कहा ।

मूलोच्चारणापाठों जह० एयसमओ त्ति । तत्थायमहिप्पाओ एहंदिएगु समयुत्तरममणि-  
द्विट्ठि सण्णिद्विट्ठिदादवसेण कादण गदस्स पढमविग्गहं तदुवलभसंभवो त्ति । उवरु-  
स्सेण सगद्विटी ।

§ ७० मणुसतिय० मोह० जहण्णद्विट्ठी जहण्णुक० एगममओ । अजह० जह०

स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । इसका यह अभिप्राय है कि जो सभी एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उसने मनीकी स्थितिका बात किया । अनन्तर वह मरकर एक समय अधिक असञ्जीके योग्य स्थितिके साथ उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले विग्रहमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—जो एकेन्द्रिय दो मोडा लेकर पचेन्द्रिय तिर्यचचतुष्कमे उत्पन्न होते हैं उनके पहले और दूसरे समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः इनके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा । तथा इन दो समयोंको खुदाभवग्रहणप्रमाण अन्तर्मुहूर्त कालमें पटा देने पर जो दो समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण काल शेष रहता है वह पचेन्द्रिय तिर्यच और पचेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तक तिर्यचोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । तथा जो दो समय कम अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है वह पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । इन चार प्रकारके तिर्यचोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है ऐसा मूलोच्चारणामें पाठ पाया जाता है सो उसका यह तात्पर्य है कि पहले कोई एक संजी जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर उस एकेन्द्रियने सञ्जीकी स्थितिका बात किया और ऐसा करते हुए जब उसके असञ्जीकी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिक स्थिति शेष रह गई तब वह मरकर उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न हो गया, इस प्रकार इन चारों प्रकारके तिर्यचोंके पहले मोडेके समय अजघन्य स्थिति प्राप्त हो गई और स प्रकार अजघन्य स्थितिका भी एक समय काल बन जाता है । बात यह है कि एकेन्द्रियोंसे लेकर असञ्जी तक जो जीव मर कर सञ्जियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके अनाहारक अवस्थामें असञ्जीके योग्य स्थितिका ही बन्ध होता है । हाँ ऐसे जीवोंके शरीर ग्रहण करनेके समयसे लेकर सञ्जियोंके योग्य स्थितिका बन्ध होने लगता है । अतः ऐसे सञ्जी जीवोंके पहले और दूसरे मोड़ेमें असञ्जियोंकी जघन्य स्थिति भी पाई जाती है और यही इनकी जघन्य स्थिति हो जाती है । अब यदि कोई जीव एक समय अधिक असञ्जियोंकी जघन्य स्थितिके साथ सञ्जियोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले मोड़ेमें अजघन्य स्थिति ही कही जायगी । यही संभव है कि मूलोच्चारणामें उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी माना है । तथा उक्त चार प्रकारके तिर्यचोंमें जिसके जितनी कायस्थिति हो उतनी उनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । किसके कितनी कायस्थिति है यह अन्यत्रसे जान लेना चाहिये ।

§ ७० सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य

सुशामवग्गहणं भंतोसुहृषी, चक्र० सगहिदी । मणुसअपज्ज० पंषिदियतिरिस्सअप  
ज्जवमंगा ।

१७१ देव० मोह० जहण्हिदी जहण्हुक्क० एगसमओ । अमह० जह० एगस-  
मओ, चक्र० सगहिदी । भनण०-भाण० मोह० जहण्हिदी जहण्हुक्क० एगसमओ ।  
अनह० जह० एगसमओ, चक्र० सगसण्हुक्कस्सहिदी । ओदिसियादि जाव सम्मह० चि  
जह०हिदि० जहण्हुक्क० एगसमओ । अनहण्ह० जहण्हुक्क० जहण्हुक्कस्सहिदी ।

स्वितिका जपन्य सत्त्वकाल सामान्य मनुष्योके सुशामवग्गहणप्रमाण और होय होके अन्तमु हुत  
है तथा चक्रुष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सत्त्वपर्याप्तक मनुष्योके जपन्य  
और अजपन्य स्वितिका काल पंचेन्द्रियतिर्यक् सत्त्वपर्याप्तको समान जानना ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य, पक्षात् मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योके  
मोहनीयकी जपन्य स्वितिका जपन्य और चक्रुष्ट काल को एक समय कहलाता है सो इसका  
झुलासा जिस प्रकार जोषप्रकफणाके समय कर जाये हैं उस प्रकार कर लेना चाहिये । तथा  
सामान्य मनुष्यका जपन्य काल सुशामवग्गहणप्रमाण और होय हो प्रकारके मनुष्योका जपन्य काल  
अन्तमु हुत है अतः इनके अजपन्य स्वितिका जपन्य काल उक्त प्रमाण कहा । तथा अजपन्य  
स्वितिका चक्रुष्ट काल अपनी अपनी चक्रुष्ट कायस्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । इस  
विषयमें सत्त्वपर्याप्त मनुष्यकी स्थिति सत्त्वपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यक्के समान है, अतः इसके  
जपन्य और अजपन्य स्वितिका जपन्य और चक्रुष्ट काल सत्त्वपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यक्के  
समान कहा ।

१७२ देवोमि मोहनीयकी जपन्य स्वितिका जपन्य और चक्रुष्ट सत्त्वकाल एक समय  
है । तथा अजपन्य स्वितिका जपन्य सत्त्वकाल एक समय और चक्रुष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थिति  
प्रमाण है । मज्जिमासी और अन्तर देवोमि मोहनीयकी जपन्य स्वितिका जपन्य और चक्रुष्ट  
सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजपन्य स्वितिका जपन्य सत्त्वकाल एक समय और चक्रुष्ट  
सत्त्वकाल अपनी अपनी चक्रुष्ट स्थितिप्रमाण है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिउक्तके देवोके जपन्य  
स्वितिका जपन्य और चक्रुष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजपन्य स्वितिका जपन्य और  
चक्रुष्ट सत्त्वकाल क्रमसे अपनी अपनी जपन्य और चक्रुष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार सामान्य मारुतिनोके मोहनीयकी जपन्य और अजपन्य स्वितिका  
जपन्य और चक्रुष्ट काल पठित करके मिल जाय हैं वही प्रकार सामान्य देवोके पठित कर  
लेना चाहिये । तथा मज्जिमासी और अन्तर देवोके भी इसी प्रकार जानना । विशेष बात इतनी है कि  
इनके अजपन्य स्वितिका चक्रुष्ट काल अपनी अपनी चक्रुष्ट स्थिति प्रमाण होता है, क्योंकि  
इतने काल तक इनके मोहकी अजपन्य स्थिति पार्थ वा सफटी है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थ-  
सिद्धि उनके देवोके मोहनीयकी जपन्य स्थिति उनके अन्तिम समयमें ही सम्भव है, अतः इनके  
जपन्य स्वितिका जपन्य और चक्रुष्ट काल एक समय कहा । पर वह जपन्य स्थिति चक्रुष्ट  
वास्तुवातेके होती है और वह भी सबके नहीं अतः अजपन्य स्वितिका जपन्य काल अपनी अपनी  
जपन्य स्थितिप्रमाण और चक्रुष्ट काल अपनी अपनी चक्रुष्ट स्थितिप्रमाण कहा ।



§ ७२ एइंदिय० मोह० जह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्त । अज० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एव सुहुमेइंदिय० । वादरेइ दिय०—वादरेइदियपज्ज० मोह० जहण्णट्ठिदि० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अजहण्ण० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । वादरेइदियअपज्ज० सुहुमपज्ज०—सुहुमअपज्ज० मोह० जहण्णाजहण्णट्ठिदी ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं विगलंदियअपज्ज० पंचकायाणं वादरअपज्ज०—सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स० वत्तव्व ।

§ ७३ विगलंदिय-विगलंदियपज्ज० मोह० जहण्णट्ठिदी जह० एगसमओ, उक्क० वे समया; परत्थाणसामित्तावल्लवणादो । अजहण्ण० जह० खुदाभवग्गहणं विसमज्जणं अतोमुहुत्त विसमज्जणं एगसमओ वा, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

§ ७२ एकेन्द्रिय जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल असंख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय, जीवोंके जानना चाहिए । वादरएकेन्द्रिय और वादरएकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । वादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार विकलेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, पाचों स्थावरकाय वादर लब्ध्यपर्याप्तक, पाचों स्थावरकाय सूक्ष्मपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक तथा औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सामान्य एकेन्द्रिय और उनके जितने भेद प्रभेद हैं उनमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल सामान्य तिर्यचोंके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण जानना चाहिये, क्योंकि जिसकी जितनी कायस्थिति वतलाई है उसके उतने काल तक मोहनीयकी अजघन्य स्थिति पाई जा सकती है । किन्तु एकेन्द्रिय जीवोंके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण ही होता है । तथा विकलत्रय अपर्याप्त, पाचों स्थावरकाय वादर अपर्याप्त, पाचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त तथा औदारिकमिश्र-काययोगी जीवोंके भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । किन्तु इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि इनका उत्कृष्ट काल इससे अधिक नहीं है ।

§ ७३ विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल दो समय है । यह काल परस्थान स्वामित्वका अवलम्बन करनेसे प्राप्त होता है । तथा मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल

‡ ७४ पंचिन्द्रिय पंचि० पञ्ज०-तस०-तसपञ्ज० मोह० ब्रह्मण्डिदी ब्रह्मणुक्त०  
एगसमभो । अग्रहण्य० ज० खुदामयमाहर्ण अंतोमु०, उक्त० सगसगुक्तस्तद्विदी ।

‡ ७५ पचक्रायसुहृमाय सुहृमेइदियमंगो । बादरपुडवि०-बादरमाच०-बादर  
तेज०-बादरबाच०-बादरवणप्पदिपयो० तेसिं पञ्ज० ब्रह्मण्डिदी ज० एयसमभो,  
उक्त० अंतोमु० । अग्रहण्य० ज० एगसमभो, उक्त० सगद्विदी । वणप्पदि० णिगोद०

क्रमसे वा समय कम सुदामयमाहर्ण प्रमाण और वो समय कम अन्तमु हुते है या एक समय है  
और उक्त सत्त्वकाल संख्यात हजार वर्ष है ।

विशेषार्थ-जिस पंचेन्द्रियने हतसमुत्पत्ति क्रमसे विकलत्रयोके योग्य अथवा स्थिति प्राप्त की  
अन्तर वह मरा और वो मोहोंके साथ विकलत्रयोमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले और दूसरे  
मोहमें अथवा स्थिति पार्थे जाती है अतः विकलत्रयोके मोहनीयकी अथवा स्थितिका अथवाकाल  
एक समय और उक्त काल वो समय कहा । यहां यह वो अथवा स्थितिका अथवाकाल एक समय  
और उक्त काल वो समय बतलाया है सो जो बीच पंचेन्द्रियोमेंसे आकर विकलत्रयोमें उत्पन्न  
होता है उसकी अपेक्षासे बतलाया है यही यहाँ परस्थान स्वामित्वका अक्षम्बन है । तथा इन वो  
समयोंको सुदामयमाहर्णप्रमाण और अन्तमु हुते कालमेंसे पटा देन पर जो वो समय कम सुदामय-  
माहर्णप्रमाण काल छेप रहता है वह सामान्य विकलत्रयोके मोहनीयकी अथवा स्थितिका अथवा  
काल होता है । तथा जो वो समय कम अन्तमु हुते काल छेप रहता है वह पर्याप्त विकलत्रयोके  
मोहनीयकी अथवा स्थितिका अथवा काल होता है । तथा इन दोनों प्रकारके विकलत्रयोके  
अथवा स्थितिका वा अथवाकाल एक समय बतलाया है सो यह मूलोच्चारणके पाठके अनुसार  
बतलाया है और इसका सुझावा जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यक् वस्तुके कर आये हैं उसी प्रकार  
यहां भी कर लेना चाहिये । उक्त दोनों प्रकारके विकलत्रयोकी उक्त अवस्थिति संख्यात हजार  
वर्ष है और इतन कालतक इनके मोहनीयकी अथवा स्थिति प्राप्त होमें बाधा नहीं आती है,  
अतः इनके अथवा स्थितिका उक्तकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहा है ।

‡ ७६ पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी अथवा  
स्थितिका अथवा और उक्त सत्त्वकाल एक समय है । तथा अथवा स्थितिका अथवा सत्त्वकाल  
सुदामयमाहर्ण प्रमाण और अन्तमु हुते है । तथा उक्त सत्त्वकाल अपनी अपनी उक्त स्थिति  
प्रमाण है ।

विशेषार्थ-पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके मोहनीयकी अथवा  
स्थिति वक्षों गुणस्वान्तके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके अथवा स्थितिका अथवा  
और उक्त काल एक समय कहा । छेप कथन सुगम है ।

‡ ७७ पाँचों स्वाध्याय तथा उनके सूत्र जीवोंके सूत्र पंचेन्द्रियोके समान है । बाहर  
पृथिवीकायिक, बाहर जलकायिक, बाहर अग्निकायिक, बाहर वायुकायिक और बाहर वनस्पति  
प्रत्येक शरीर जीवोंके तथा इन सब पर्याप्त जीवोंके अथवा स्थितिका अथवा सत्त्वकाल एक  
समय और उक्त सत्त्वकाल अन्तमु हुते है । तथा अथवा स्थितिका अथवा सत्त्वकाल एक  
समय और उक्त सत्त्वकाल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है । वनस्पतिकायिक और

पट्टदियभंगो । पंचिदियअप०-तस०अप० पंचि०तिरिखअपजत्तभंगो ।

६ ७६. पंचमण०-पंचवचि० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक० एयसमओ । अजहण्ण० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांपराय०-जहास्वाद० वत्तव्वं ।

६ ७७. ओरालिय० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक० एगसमओ । अजहण्ण० ज० एगसमओ, उक्क० चावीस वाससहस्साणि देसूणाणि । वेजव्विय० मणजोगिभंगो । नेउन्नियमिरस० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक० एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णुक० अंतोमुत्तं । कायजोगि० मोह० जहण्णट्टिदी० जहण्णुक० एगसमओ । अजहण्ण० जह० एगसमओ, जहण्णविहत्तियदुचरिमसमए कायजोगेण परिणदम्मि तदुवलंभादो । उक्क० अणतफोलमसस्वेज्जा पोगलपरियट्ठा । एवं णवुंसं वत्तव्वं । आहार० मणजोगिभंगो । आहारमिरस० वेजव्वियमिस्सभंगो । कम्मइय० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक० एगसमओ । अज० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया ।

निर्माण जीवोंके प्रोक्तियोंके समान है । पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक और त्रस लब्धपर्याप्तक जीवोंके पंचेन्द्रियार्थेष्वहमयपर्याप्तकों समान है ।

६ ७८. पाँचों भगोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट शतकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट शतकाल अन्युद्भूत है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसापराधिक-मयन और अथाक्यातावीर्य जीवोंके पक्षान्ता पाटिण ।

६ ७९. औदारिका काययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट शतकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट शतकाल कुछ कम भाग्य हजार वर्ष है । वैक्रियिकाकाययोगी जीवोंके मनोयोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । वैक्रियिकाश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट शतकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुद्भूत है । काययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । जो जघन्य स्थिति निर्माणके प्रथम समयमें काययोगके होनेपर पाया जाता है । तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अनन्त भाग्यमान है । जगता प्रमाण अस्मय्यात पुण्ड्र परित्वर्तन है । इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । आहारक-मिन्नकाययोगी जीवोंके वैक्रियिकाश्रकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । तथा कामणकाय-योगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तीन समय है ।

निर्माण पाँचों भगोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंके दशवें गुणस्थानके अन्तमें पाया निर्माण भात होता है, अगस्त्यके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय

§ ७८ वेदायुक्ताण इत्यपिदे० मोह० जह० ग्रहण्यक० एगसमग्रो । मज्ज० ख० एगसमग्रो, सक्क० सगहिदी । पुरिस० मोह० ग्रहण्यहिदी जहण्यक० एगसमग्रो । मज्ज० ख० अतोसु०, सक्क० सगहिदी ।

कहा । तथा पाँचों मनोयोग और पाँचों बचनयागोंका अपन्यकास एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है अतः इनके अग्रपण्य स्थितिका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त बन जाता है । औदारिककाययोगमें अग्रपण्य स्थितिके उत्कृष्टकालमें विशेषता है । बात यह है कि औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कम बार्हस हजार वर्ष है अतः इसमें अग्रपण्य स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है । शेष कमन मनोयोगियोंके समान है । वैश्वियिकाययोगमें भी अपन्य और अग्रपण्य स्थितिका काल मनोयोगके समान जानता । किन्तु जो दायिकसम्पत्ति और उपक्रमवेधीसे सर्वावसिद्धिमें जाता है उसके मन्त्रके अन्तिम समयमें यदि वैश्वियिकाययोग हो तो वैश्वियिकाययोगमें मोहनीयकी अपन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः वैश्वियिकाययोगमें इस प्रकार अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक समय पटित करके कहना चाहिये । वैश्वियिकमित्रकाययोगके अन्तिम समयमें मोहनीयकी अपन्य स्थितिका प्राप्त होना सम्भव है, अतः इसमें अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा वैश्वियिकमित्र काययोगका अपन्य और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है, अतः इसमें अग्रपण्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कहा । काययोगमें अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल मनोयोगके समान पटित कर लेना चाहिये । काययोगमें अग्रपण्य स्थितिका अपन्य काल एक समय होता है । इसका कारण यह बताया है कि जिस समय अपन्य स्थिति हुई उसके उपन्य समयमें यदि काय योग हो तो काययोगमें अग्रपण्य स्थितिका अपन्यकाल एक समय पाया जाता है । जगद्व्याप्त्यै शश्वै गुणस्वानके अन्तिम समयमें अपन्य स्थिति होती है । वह यदि अन्तिम हो समयके लिये काययोगी हो जाय तो काययोगमें अग्रपण्य स्थितिका अपन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है । काययोगका उत्कृष्ट काल अत्यन्तप्राय पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है अतः इसमें अग्रपण्य स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । काययोगियोंके समान नपुंसकोंके कवन करना चाहिये । किन्तु जब नपुंसकके अन्तिम समयमें मोहनीयकी अपन्य स्थिति होती है इतना विशेष जानना । आहारक काययोगमें मनोयोगीके समान अपन्य और अग्रपण्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्टकाल पाया जाता है । किन्तु इतना विशेष है कि आहारक काययोगके अन्तिम समयमें मोहनीयकी अपन्य स्थिति होती है । शेष कमन सुगम है ।

§ ७९ वेदमार्गशाके अनुपादसे कीवेदी बीजोंमें मोहनीयकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अग्रपण्य स्थितिका अपन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पुरुषवेदी बीजोंमें मोहनीयकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अग्रपण्य स्थितिका अपन्य सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—उपकके स्त्रीवेदके उदयके अन्तिम समयमें मोहनीयकी अपन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार पुरुषवेदी अपन्य जानना चाहिये, अतः इनके अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । उपक्रम वेदीसे उतर कर जो जोन एक समयके लिये स्त्रीवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर दण्डा गया उसके अग्रपण्य स्थितिका अपन्य काल एक समय प्राप्त होता

§ ७६ चत्तारिकसाय० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§ ८० आभिणि०—सुद०—ओहि० मोह० जहण्णट्टिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० जहण्णुक्कस्सेण जहण्णुक्कस्सट्टिदी । एव मणपज्जव०—संजट-सामाइय-छेदो-परिहार०—संजटासंजट०—ओहिदंस०—सुक्कले०—सम्मादि-खइय०—वेदग० वत्तव्वं । विहंग० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

है । तथा पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः पुरुषवेदमे अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ७६ चारों कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्व-काल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—क्षपक जीवके अपनी अपनी कपायके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा प्रत्येक कपायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा ।

§ ८० आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल क्रमसे अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । विभगज्ञानी जीवोंके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है । चक्षुदर्शनी जीवोंके त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी क्षपक जीवके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । शेष कथन सुगम है । मूलमें और जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी जघन्य स्थितिके स्वामित्वका विचार करके जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयका कथन करना चाहिये । जो चौथीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपरिम प्रवेयकवासी देव आगुके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया उसके अन्तिम समयमें विभगज्ञानमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है । तथा जो अवधिज्ञानी शेष देव या नारकी अन्तिम समयमें मिथ्यादृष्टि हो जाता है उसके विभगज्ञानमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । तथा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल विभगज्ञानके उत्कृष्ट काल

§ ८१ किण्व० नीम०-काठ० मोह० जहण्णहिदी ज० एगसमओ, उक्क० मंठीमु० । अज० जह० एगसमओ, उक्क० सगहिदी । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्तरभंगो ।

§ ८२ चरसम०-सम्मायि० आहारमिस्सभंगो । सासण० मोह० जहण्णहिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० जह० एगसमओ, उक्क० ज्ञ आपम्मियाओ । सण्णि० पुरिसभंगो । आहार० मोह० जहण्णहिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० जे० खुदा मयमाहण विसमऊण । उक्क० सगहिदी । अणाहार० कम्महयभंगो ।

एवं कालभुगमो समथो ।

§ ८३ अंतराणुगमो दुविहो—जहण्णमुक्कस्म चेदि । उक्कस्से पयदं ।

प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । चक्षुर्जनकालोमं त्रस पर्याप्त सुख है, अतः चक्षुर्जनके कथनको त्रसपर्याप्तके समान कहा ।

§ ८४ कण्ठ्य, मोक्ष और कापोठ लेद्यावाले जीवोंके मोहनीयकी जपम्य स्थितिका जपम्य सत्त्वकाल एक समय और कण्ठ्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहृत है । तथा अजपम्य स्थितिका जपम्य सत्त्वकाल एक समय और कण्ठ्य सत्त्वकाल अपनी कण्ठ्य स्थितिप्रमाण है । पीतलेह्यावाले जीवोंके सौममस्वर्गके समान जानना चाहिए । पद्मलेद्यावाले जीवोंके सद्भारन्वर्गके समान जानना चाहिए ।

§ ८५ कपलम सम्मन्टि और सम्मन्धिआदि जीवोंके आहारकमिमकायवागी जीवोंके समान जानना चाहिए । सासातनसम्मन्टि जीवोंके मोहनीयकी जपम्य स्थितिका जपम्य और कण्ठ्य सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजपम्य स्थितिका जपम्य सत्त्वकाल एक समय और काल है अवली है । संदी जीवोंके पुरुषपरिवर्तके समान जानना चाहिए । अहारक जीवोंके मोहनीयकी जपम्य स्थितिका जपम्य और कण्ठ्यकाल एक समय है । तथा अजपम्य स्थितिका जपम्य सत्त्वकाल तीन समय कम कुत्रमवधारणप्रमाण और कण्ठ्य सत्त्वकाल अपनी कण्ठ्य स्थितिप्रमाण है । अनाहारक जीवोंके कर्मव्यवहारयोगी जीवोंके समान जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—इच्छादि तीन लेद्यावर्गमें मोहनीयकी जपम्य और अजपम्य स्थितिका काल सामान्य त्रिवर्गके समान पटित कर जना चाहिए । किन्तु इनके अजपम्य स्थितिका कण्ठ्य काल अपनी अपनी कण्ठ्य स्थिति प्रमाण जानना चाहिए क्योंकि अपन अपन कण्ठ्य काल तक अजपम्य स्थितिके निरन्तर रहनेमें काइ बाधा नहीं आती है । अहारक वृत्तों गुणत्यागक अन्तिम समयमें मोहनीयकी जपम्य स्थिति होती है अतः इनके जपम्य स्थितिका जपम्य और कण्ठ्य काल एक समय कहा । तथा जो तीन माइसे सम्मन्धिवातकोमें उत्पन्न होता है उसके आहारककाल तीन समयकम मुरामवधारणप्रमाण पाया जाना है अतः आहारकके अजपम्य स्थितिका जपम्य काल तीन समय कम मुरामवधारण प्रमाण कहा । अजपम्य स्थितिका कण्ठ्य काल अपनी स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

§ ८६ अन्तराणुगम वा प्रसरण है—जपम्य और कण्ठ्य । उनमेंसे कण्ठ्य अन्तराणुगम

१ प्रत्ये ज एगसमओ मुरा इति पाठः ।

दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उम्फस्सट्ठिदीअंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० अतोमुहुत्तं, उक्क० अणंतकालमसखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । अणुक्क० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अतोमुहुत्तं । एवं तिरिक्ख०—कायजोगि० णवुंस०—मदि-मुदअण्णाण-असंजद०—अचक्खु०—भवसिद्धि-अभवसिद्धि--मिच्छादिट्ठि ति वत्तव्वं ।

§ ८४ आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्क० अंतरं जह० अतोमु०, उक्क० तेत्तीस सागरो० देसूणाणि । अणुक्कस्स० ओघभंगो । पढमादि जाव सत्तमि ति मोह० उक्क० अंतरं केवचिरं० ? ज० अतोमुहुत्तं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० ओघभंगो ।

प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल प्रमाण है। जिसका प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है। अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंतर्मुहूर्त है। इसी प्रकार तिर्यच, काययोगी, नपुसकवेदी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भन्य, अभन्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—ऐसा नियम है कि जिसने कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है वह यदि अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगे तो कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके पहले उस जीवमें उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध करनेकी योग्यता नहीं आ सकती अतः मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा किसी सही पंचेन्द्रिय पर्याप्तने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति बाधी अनन्तर वह अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगा और मर कर एकेन्द्रियादिमें उत्पन्न होकर अनन्त काल तक बड़ा धमता रहा। पुनः एकेन्द्रियोंमें अनन्त कालके पूरे हो जाने पर वह सही पंचेन्द्रिय हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् उसने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया। इस प्रकार इस जीवके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण प्राप्त होता है अतः ओघसे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा। ऐसा नियम है कि उत्कृष्ट स्थितिका वध एक समय तक भी होता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अंतर एक समय प्राप्त हो जाता है। तथा उत्कृष्ट स्थितिका निरन्तर बन्ध अंतर्मुहूर्त काल तक होता है अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है। मूलमें सामान्य तिर्यच आदि और जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें ही यह ओघ प्ररूपणा घटित होती है, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा।

§ ८४ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अंतरकाल अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेत्तीस सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है। पहले नरकसे लेकर सातवें नरक तक प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है।

§ ८५ पंचिदियसिरिक्सतिय० मोह० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्व  
कोटिपुपत्त। अणुक्क० ओघमंगो। एवं मणुसतिय०। पंचि० सिरि० अपज्ज० मोह०  
उक्क० अणुक्क० णरिय अंतरं। एवं मणुसअपज्ज०-आणदादि जाव सव्वह०-सम्भ  
पइंदिय-सव्वविगिअिंदिय-पंचिदियअपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज० ओरालियमिस्स०-वेठ  
वियमिस्स० आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय अमगद०-अकसाय-आमिणि०-सुद०  
आहि०-मणपज्ज०-संभव० सामाइयछेदो०-परिहा० सुइम० गहाक्खाद०-संमदासनद  
ओरिदंस०-सुक्खोस्स०-सम्मादि०-स्वइय०-वेदय०-उषसम०-सासण०-सम्माभि०-  
असन्धि०-अणाहारि चि वचम्भं।

§ ८६ देव० मोह० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० अट्टारस सागरोवमाणि सादि  
रेयाणि। अणुक्क० ओघमंगो। मणगादि जाव सहस्तारे चि उक्क० अंतरं केव० ? ज०  
अंतोमु०, उक्क० समद्विदी देवणा। अणुक्क० ओघमंगो।

§ ८७ पंचिदिय-पंचि० पज्ज०-तस०-तसपज्ज० मोह० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०,  
उक्क० सगद्विदी देवणा। अणुक्क० ओघं। एवमित्थि० पुरिस०-वक्खु०-पंचसोस्सा०-

§ ८८ पंचेन्द्रियतिर्यैव, पंचेन्द्रियतिर्यैव पयात्र और पंचेन्द्रिय तिर्यैव योनिमयी जीवोंमें मोह  
नीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जपम्भ अंतरकाल अंतमुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतरकाल पूर्वकोटिपुपत्त है। तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिका अंतरकाल आपके समान है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य पयात्र मनुष्य और  
मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके ज्ञानता चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यैव लक्ष्यपर्याप्तक जीवोंमें  
मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अंतरकाल नहीं है। इसी प्रकार लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्य  
जानता स्वर्गसे लेकर सर्वत्रैवसिद्धि तकके देव समी पंचेन्द्रिय समी विष्णोन्द्रिय पंचन्द्रिय लक्ष्य-  
पयात्रक पांचों स्थावरकाय जस लक्ष्यपयात्रक, औदारिकमिमकाययोगी, वैश्विदिकमिमकाययोगी,  
आहारककाययोगी, आहारकमिमकाययोगी कामंयकाययोगी अपगतवेरी अकपावी, आमिनि-  
वायिकदानी, जूतदानी, अरुधिका, मनःपययदानी संयत सामाविकसंयत छेदोपस्थापनासंयत  
परिहाविमुदिसंयत मूहमसापविऊनीक, दवाध्यातसंयत संयतासंयत अरुधिका, अरुधिका  
हृत्तोरवाधो सम्भम्यगृष्टि, वायिकसम्भम्यगृष्टि, अरुधकासम्भम्यगृष्टि, अरुधकासम्भम्यगृष्टि, सामादनम्यगृष्टि  
सम्भमिम्यगृष्टि, अरुधका और अमाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

§ ८९ देवगतिमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जपम्भ अंतरकाल अंतमुहूर्त है और  
उत्कृष्ट अंतरकाल साधिक अट्टारस सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अंतरकाल आपके समान  
है। मणनमामिपोसे लेकर सहस्तार स्वर्ग तकके देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका अंतरकाल ज्ञानता है ?  
अपन्य अंतरकाल अंतमुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतरकाल हृत्त कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति  
ममाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अंतरकाल आपके समान है।

§ ९० पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पयात्रक, जस जार जस पयात्रक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट  
स्थितिका जपम्भ अंतरकाल अंतमुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतरकाल हृत्त कम अपनी अपनी  
उत्कृष्ट स्थिति ममाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अंतरकाल आपके समान है। इसी प्रकार



सण्णि०-आहारि० त्ति ।

§ ८८. पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेडव्विय०-चत्तारिक०  
मोह०उक्क०णत्थि अंतरं । अणुक्क० ओघं । विहंग०सत्तमपुटविभगो । एवमुक्कस्स-  
द्विदिअंतराणुगमो समत्तो ।

स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि पाच लेख्यावाले, सही और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ८८ पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैकियिककाय योगी और क्रोधादि चारों कपायवाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है । विभगजानी जीवोंके अन्तरकाल सातवीं पृथिवीमे कहे गये अन्तरकालके समान है ।

**विशेषार्थ—**आदेशसे अन्तरकालका खुलासा करते समय जहा जो विशेषता होगी उसीका स्पष्टीकरण करेंगे जेपका खुलासा ओघके समान जानना । सामान्यमे नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है, अतः यहा उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होगा । इसी प्रकार प्रथमादि नरकोंमें भी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण घटित कर लेना चाहिये । सामान्य पचेन्द्रिय तिर्यचोंकी उत्कृष्ट स्थिति सत्ता-नवे पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है । पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति सेतालिस पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है और योनिमती तिर्यचोंकी उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है । किन्तु भोगभूमिमें उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती अतः प्रत्येकके कालमेंसे तीन पत्य कम कर देना चाहिये और इस प्रकार जो प्रत्येकका पूर्वकोटिप्रत्यक्त्व प्रमाण काल जेप रहता है वही उनके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । इसमें भी प्रारम्भका पर्याप्त होने तकका काल और कम कर देना चाहिये । जिसका मूलमे निर्देश नहीं किया । इसी प्रकार मनुष्य त्रिकके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिप्रत्यक्त्व प्रमाण लेना चाहिये । यहाँ सामान्य मनुष्यकी सेंतालिस, पर्याप्त मनुष्यकी तेईस और मनुष्यनीकी सात पूर्वकोटियों लेनी चाहिये । पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होनेके प्रथम समय में ही होती है जो सही पचेन्द्रिय से मरकर उत्पन्न हुआ है । इनके बन्धकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट इनमेंसे किसी भी स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता ऐसा कहा है । मूलमें लब्धपर्याप्तक मनुष्योंसे लेकर अनाहारक तक और भी जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनके भी इसी प्रकार समझना चाहिए । देवोंमें बारहवें स्वर्गतक ही मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है और बारहवें स्वर्गकी उत्कृष्ट स्थिति साधिक अठारह सागर है, अतः सामान्यसे देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर कहा । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति हो उसमेंसे कुछ कम प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल जानना चाहिये । आगे और जितनी मार्गणाए बतलाई हैं उनमें भी इसी प्रकार विचारकर खुलासा कर लेना चाहिए । हा पाचों मनोयोग, पाचों वचनयोग, काययोग, औदारिककाययोग, वैकियिक-काययोग और चारों कपायोंमें उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता, क्योंकि इनका काल इतना कम है जिससे इनके कालके भीतर दोवार उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती । किन्तु जिसने अनुत्कृष्ट स्थितिके साथ इन मार्गणाओंको प्राप्त किया और मध्यमें एक समय

१८६. अहण्य पयदं । दुषिहो णिहो-ओघेण-ओवेसण य । तत्त ओघण मोह० अहण्यमाहण्यदिदीर्घं गत्यि अंतरं । एवं विदियादि नाव छद्दी पुढी० सम्ब पंचिदियतिरिक्त-सम्बमणुस्स-आदिसियादि भाव सम्बह-सम्बविगमिदिय-सम्बपंचि दिय-सम्बतस-पचमण०-पंचवचि०-कायभोगि०-भोरासि०-वेत्तमिय०-वत्तमियमिस्स० आहार० आहारमिस्स इत्यि० पुरिस० जणुंसय अयगद चत्तारिक्साय अक्साय-वि- हंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-संगद०-सामाइय -धेदो०-परिहार०-सुहुप० जहाक्खाद०-समदासंनद चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंसण विणिण्णे० भवसि -सम्मादि०- तइय०-वेद्ग०-उवसम०-सासण०-सम्मायि०-सम्भि०-आहारि चि ।

तक पा अन्तमु हृतं क्लृप्तक क्लृप्त स्थितिका वक्ष्य हुआ तो वसके अमुकक स्थितिका अक्षय्य अन्तर एक समय और क्लृप्त अन्तर अन्तमु हृतं प्रमाण वन जाता है । अतः क्लृप्त मात्रावाच्योर्मे अमुकक स्थितिका अन्तरकाल ओपके समान रहा । अपि आपयोग और औदारिक क्लृप्तयोग काल बहुत अधिक है पर यह काल पंचेन्द्रिय और पृथिवीकायिक जीवोंके ही मंत्र होता है अतः इन्में भी क्लृप्त स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं ।

इस प्रकार क्लृप्त स्थिति अन्तरप्रमाण समाप्त हुआ ।

१८७. अब अक्षय्य स्थिति अन्तरप्रमाण प्रकृत है । उसकी अपेक्षा निर्लेख दो प्रकारका है—ओपनिर्लेख और आहोनिर्लेख । उनमेंसे ओपकी अपेक्षा मोहनीयकी अक्षय्य और अक्षय्य स्थितियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर बड़ी पृथिवी तकके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय धियैव सभी मनुष्य, व्योमिणी देवोंसे लेकर सर्वावैसिद्धि तकके देव, सभी वैश्वेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी ब्रह्म, पाँचों मनोयोगी, पाँचों बचन्तबोगी, कायबोगी, औदारिककायबोगी, वैश्विककायबोगी, वैश्विकमिमांसकायबोगी आहारक कायबोगी आहारकमिमांसकायबोगी, बीजवी, पुष्पवेदी मनुसम्बेदी अपगतवेदी ओषादि चार्ते कपायवाले, अक्षयायी, विमंगलानी आग्निवायुविज्जानी भुतजानी अक्षयिज्जानी मनःपर्यव्यानी, संवत्, सामाधिकसंवत् ज्ञेयापस्थापनासंवत्, परिहाराविद्युदिसंवत्, सूक्ष्मसांप्रदायिकसंवत्, यवात्म्यासंवत्, संवत्संवत्, बभ्रुवर्षसंवत्, अक्षयवर्षसंवत्, अक्षयवर्षसंवत् तीन शेरवापले मध्य, सम्यग्दधि, वायिकसम्यग्दधि वेदकसम्यग्दधि, उपसमसम्यग्दधि, सासादनसम्यग्दधि, सम्यग्मिमांसाधि, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहा चाहिये ।

विशेषार्थ—ओपसे मोहनीयकी अक्षय्य स्थिति एक जीवके वसईं गुणस्वात्मके अन्तिम समकर्म होती है अतः ओपसे अक्षय्य और अक्षय्य स्थितिका अन्तर काल नहीं बनता । इसी प्रकार मनुष्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त ब्रह्म ब्रह्म पर्याप्त पाँचों मनोबोगी, पाँचों बचन्तबोगी, कायबोगी, औदारिककायबोगी, अपगतवेदी, सोमकाययी, आग्निवायुविज्जानी, भुतजानी अक्षयिज्जानी, मनःपर्यव्यानी, संवत् सूक्ष्मसांप्रदायिकसंवत्, बभ्रुवर्षनी, अक्षयवर्षनी अक्षयवर्षनी मध्य, सम्यग्दधि, वायिक सम्यग्दधि, संज्ञी और आहारकके जानना चाहिये क्योंकि इन्में भी एककाल वसईं गुणस्वात्म पाया जाता है । दूसरे नारके बड़े नारक तक नारकी आतिथी देवोंसे लेकर सर्वावैसिद्धि तकके देव, वैश्विक कायबोगी, वैश्विक मिमांसकायबोगी, आहारकायबोगी, आहारकमिमांसकायबोगी अक्षयायी, परिहाराविद्युदि

§ ६० आदेसेण णिरयगर्हणं मोह० जहण० णत्थि अतरं । अज० जहणुक्क० एगसमओ । एवं पढमपुढवि-देव-भरण०-वाण०-रुम्मइय-अणाहारि त्ति । सत्तमाए मोह० जह० णत्थि अतरं । अज० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ६१ तिरिक्ख० मोह० जह० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अमंखेज्जा लोमा । अज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं यदि-मुदअण्णाण-अमंजद०-अभवसि०-

सयत्त, यथाख्यातसयत्त, सयत्तासयत्त, वदकसम्यग्दष्टि, उपजमसम्यग्दष्टि आर मासादनसम्यग्दष्टिके अपने अपने उत्कृष्ट आयुके अन्तिम समयमें ही मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता । सभी पंचेन्द्रियतिर्पण, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, और त्रस अपर्याप्तकोके उत्पन्न होते समय ही जघन्य स्थिति होती है अतः इनके भी अन्तर नहीं होता । स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुमरुवेदी, क्रोध, मान और माया कषायवाले जीवोंके नौवें गुणस्थानमें अपने अपने क्षयके अन्तिम समयमें और सामायिक संयत व छेदोपस्थापनावाले जीवोंके क्षणिक नौवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें ही मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके भी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता । विभगज्ञानमें उपरिम ग्रैवेयरुके देवके आयुके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है, अतः अन्तर नहीं होता । पीत लेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले परिहारविशुद्धि सयतके समान जानना ।

§ ६० आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी देव, व्यन्तर देव, कर्मण्णकाययोगी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । सातवीं पृथिवीमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—जो असह्य जीव नरकमें दो विग्रहसे उत्पन्न होता है उसके दूसरे विग्रहके समय जघन्य स्थिति सम्भव है अतः सामान्यसे नारकियोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा । क्योंकि ऐसे नारकीके प्रथम और तृतीयादि समयोंमें अजघन्य स्थिति हुई और दूसरे समयमें जघन्य स्थिति रही, अतः अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल एक समय प्राप्त हो गया । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, कर्मण्णकाययोगी और अनाहारक जीवोंके अजघन्य स्थितिके जघन्य अन्तरकाल एक समयको घटित कर लेना चाहिये । सातवें नरकमें जब आयुमें अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रह जाता है तब कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जघन्य स्थितिका प्राप्त होना सम्भव है । तथा इस नारकीके इस जघन्य स्थितिके पश्चात् पुनः अजघन्य स्थिति हो जाती है, अतः यदा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । तथा जघन्य स्थिति दो बार नहीं प्राप्त होती इसलिये उसका अन्तरकाल नहीं बनता ।

§ ६१ तिर्यचगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असख्यात लोक है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत्त, अभन्य,

मिथ्यादिद्वी०-असण्णि णि । एइदिय० तिरिक्खमंगो । वादरेइदिय-वादरइदियपज्ज०  
 वादरेइदियअपज्ज०-सुहुमेइदिय सुहुमेइदियपज्ज०-सुहुमेइदियअपज्ज० मोइ० जइ०  
 अंतामु०, उक्क० सगहिदी दमूणा । अज० जइ० एगसमजो, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।  
 एयं चत्तारि काय० । णवरि सगसमुक्कस्सहिन्दी देमूणा । वणप्फदि० एइदियमंगो ।

§ ६२ ओराखियमिस्स० मोइ० जइ० ज० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु० । अन०  
 व० एगसमजो, उक्क० अंतोमु० । किण्हणील-काठ० सत्तमपुढविमंगो ।

एवमंतराणुगमो सनत्तो ।

मिथ्यादिद्वि और असंख्य जीवोंके कइना चाहिये । एकेन्द्रियोंके त्रिवैधोक्त समान जानना चाहिये ।  
 वादर एकेन्द्रिय वादर एकेन्द्रियपयात्तक वादर एकेन्द्रिय सङ्ख्यपयात्तक सुख एकेन्द्रिय  
 सुख एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सुख एकेन्द्रिय सङ्ख्यपयात्तक जीवोंके मोहनीयकी अण्य  
 स्थितिक अण्य अन्तरकाल अन्तमुहुत्तं है और उक्त अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उक्त  
 स्थितिप्रमाण है । तथा अजयन्य स्थितिका अण्य अन्तरकाल एक समय है और उक्त अन्तर  
 काल अन्तमुहुत्तं है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक आदि चार स्वाध्यायिक जीवोंके जानना  
 चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके मोहनीयकी अण्य स्थितिका उक्त अन्तरकाल कुछ कम  
 अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण कइना चाहिये । वनस्पतिकायिक जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान  
 जानना चाहिये ।

§ ६२ औदारिकमिगजययोगी जीवोंके मोहनीयकी अण्य स्थितिका अण्य और उक्त  
 अन्तरकाल अन्तमुहुत्तं है । तथा अजयन्य स्थितिका अण्य अन्तरकाल एक समय है और उक्त  
 अन्तरकाल अन्तमुहुत्तं है । कण्य, नील और कपोतलेशयावलो जीवोंके सातवीं पृथिवीके  
 समान है ।

विशेषार्थ—उक्त स्थितिके समान आदेशसे अण्य स्थितिके सम्बन्धमें भी यह नियम  
 समझना चाहिये कि जिसके अण्य स्थितिके पञ्चान् अजयन्य स्थिति हो जाती है उसे पुनः अण्य  
 स्थितिको प्राप्त करनेमें कमसे कम अन्तमुहुत्त काल अवश्य लगता है तथा जिसने त्रिवैध पर्यायमें  
 अण्य स्थितिको प्राप्त किया पुनः वह अजयन्य स्थितिको प्राप्त करके यदि मिरन्तर उसीके  
 साथ रहे तो उसे पुनः अण्य स्थितिके प्राप्त करनेमें अधिकसे अधिक असंख्यदात लोकप्रमाण  
 काल लगता है अतः त्रिवैधोंमें अण्य स्थितिका अण्य अन्तर अन्तमुहुत्तं और उक्त अन्तर  
 असंख्यदात लोकप्रमाण प्राप्त होता है यह सिद्ध हुआ । तथा अण्य स्थितिका अण्यकाल एक  
 समय और उक्तकाल अन्तमुहुत्तं होता है अतः त्रिवैधोंमें अजयन्य स्थितिका अण्य अन्तर एक  
 समय और उक्त अन्तर अन्तमुहुत्तं कइता । मूलमें गिन्याई गइ मरवतानी आदि मार्गणाओंमें  
 अन्तरकाल प्राप्त करनेकी यही विधि जानना अतः इनमें अण्य और अजयन्य स्थितिक अन्तर  
 कालके सामान्य त्रिवैधोंके समान कइता । तथा जागे जा वादर एकेन्द्रियादिकोंके अण्य और  
 अजयन्य स्थितिका अन्तरकाल कइता इसमें केवल अण्य स्थितिक उक्त अन्तरकालमें ही बिसे  
 पता है । सब सब कइने सामान्य त्रिवैधोंके समान है । बात यह है कि इन वादर एकेन्द्रियादिकोंकी  
 उक्त अण्यस्थिति मित मित है अतः इनमें अण्य स्थितिक उक्त अन्तरकाल कुछ कम अपनी  
 अपनी अण्यस्थितिप्रमाण ही कइना चाहिये । औदारिकमिगजययागक उक्तकाल अन्तमुहुत्तं है  
 अतः इसमें अण्य स्थितिका उक्त अन्तरकाल अन्तमुहुत्तं कइता । कण्य नील व कपोतलेशया-

§ ६३ णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण भण्णमाणे तत्थ णाणाजीवेहि उक्कस्सभंग-  
विचए इदमट्ठपदं—जे उक्कस्सस्स विहत्तिया ते अणुक्कस्सस्स अविहत्तिया । जे अणु-  
क्कस्सस्स विहत्तिया ते उक्कस्सस्स अविहत्तिया । एदेण अट्ठपदेण दुविहो णिदेसो  
ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्सद्विदीए सिया सव्वे जीवा अवि-  
हत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।  
एवं तिण्णि भंणा ३ । अणुक्क० द्विदीए सिया सव्वे विहत्तिया, सिया विहत्तिया च  
अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च । एव सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-मणुस-  
तिय-देव-भवणादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलंदिय-सव्वपंचिंदिय-अक्काय-  
पंचमण०-पचवचि०--कायजोगि०-ओरालिय०--वेउव्विय०--ओरालियमिस्स०--कम्म-  
इय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मण-

वाले एकेन्द्रिय जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । एकेन्द्रियोंमें उक्त लेश्याओंका काल  
अन्तर्मुहूर्त है जो अजघन्य स्थितिके जघन्यकालसे छोटा है अतः जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है  
परन्तु उक्त लेश्याओंका काल जघन्य स्थितिके कालसे बड़ा है अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त घटित हो जाता है जो सातवीं पृथिवीके समान है ।  
शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६३ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगमका कथन करते हैं । उसमें भी नाना  
जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट भगविचयके कथनमें यह अर्थपद है—जो उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तवाले हैं वे  
अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तवाले नहीं हैं । जो अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तवाले हैं वे उत्कृष्ट स्थिति-  
बिभक्तवाले नहीं हैं । इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तसे रहित  
हैं । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तसे रहित हैं और एक जीव  
माहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तवाला है । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट  
स्थितिबिभक्तसे रहित हैं और बहुतसे जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तवाले हैं ।  
इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति-  
बिभक्तकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तवाले हैं । कदाचित्  
बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तवाले हैं और एक जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट  
स्थितिबिभक्तसे रहित है, कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तवाले हैं  
और बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तसे रहित हैं ये तीन भंग होते हैं । इसी  
प्रकार सभी नारकी, सभी तिर्यच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके  
मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सर्वासिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकले-  
न्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक  
काययोगी, वैश्रियिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि  
चारों कपायवाले, मत्त्यज्ञानी, श्रतज्ञानी, विमगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी,

पञ्च०-संन०-सामाहय-खेदो०-परिहार०-सज्जदासंनद०-असंनद०-चक्रसु-अचक्रसु०-  
ओहि०-अखेस्ता०-मय०-अमय सम्पादि०-तवइय०-वेवय०-मिचजा०-सणि०-असणि०-  
आहारि-अणाहारि धि ।

§ ६४ मनुसअपञ्च-सकस्तसिहसिपुम्मा अहमंगा । अणुक्कस्तसिहसिपुम्मा  
धि अहमंगा । एवं वेवधियमिस्त आहार०-आहारमिस्त०-अवगद०-अकसा०-  
सुदुपसाप०-अहाक्साव०-उवसम०-सासण०-सम्मापि० ।

एवमुक्कस्तमंगविचओ समघो ।

मनापचयहानी, संयत, सामाधिकसंयत जेवापस्थापनासंयत, परिहारविमुद्धिसंयत, संयतसंयत,  
असंयत अचक्रसंयतले अचक्रसंयतले, अचक्रसंयतले, अहो लेववावाले मय्य, अमय्य,  
सम्पत्ति, आसिक्कसम्पत्ति बवक्कसम्पत्ति, मिध्यात्ति, सणी, असणी, आहारक और  
अनाहारक जीवोंके बहना चाहिये ।

§ ६४ लक्ष्यपचात्तक मनुज्योंमें अणुक्क स्थितिविमक्ति पूर्वक आठ मंग होत हैं और  
अनुक्क स्थितिविमक्तिपूर्वक भी आठ मंग होते हैं । इसी प्रकार वैद्विचक्रमिमाकाययोगी,  
आहारककाययोगी आहारकमिमाकाययोगी अपगतवशी अकपायी, सूक्ष्मसाधारणिकसंयत  
यथाव्याप्तसंयत अणुसम्पत्ति, सासावनसम्पत्ति और सम्पत्तिप्यात्ति जीवोंके  
आनना चाहिये ।

विशेषार्थ-निश्चित सिद्धान्तके अनुसार व्यवस्थाके दोतक वाक्यको अवैपव कहत हैं ।  
पहों निश्चित सिद्धान्त यह है कि जो अणुक्क स्थितिवाले होते हैं वे अनुक्क स्थितिवाले नहीं  
होते और जो अनुक्क स्थितिवाले होते हैं वे अणुक्क स्थितिवाले नहीं होत । इससे यह व्यवस्था  
क्षतित हुई कि अणुक्क स्थितिविमक्तिवालोंसे अनुक्क स्थितिअविमक्तिवाले जीव भिन्न नहीं और  
अनुक्क स्थितिविमक्तिवालोंसे अणुक्क स्थिति अविमक्तिवाले जीव भिन्न नहीं । फिर भी एकबार  
अणुक्क स्थितिवालोंको और दूसरी बार अनुक्क स्थितिवालोंको मुख्य करके मंगोंका संप्र  
क्षिप्ता जाय तो प्रत्येकी अपेक्षा तीन तीन मग्न भल्ल होत हैं । जो मूलमें गिमाय हो हैं ।  
बात यह है कि अणुक्क स्थितिवाला जीव कराकिन् एक भी नहीं रहता, तथा कराकिन्  
एक होता है और कराकिन् अनक होत हैं । अब यदि इन तीन विधियोंको मुख्य करके  
मंग करे जाते हैं तो उनकी सूत्र निम्न होती है—(१) कराकिन् सब जीव अणुक्क स्थिति  
अविमक्तिवाले होत हैं । (२) बहुत जीव अणुक्क स्थितिअविमक्तिवाले होत हैं और एक  
जीव अणुक्क स्थिति विमक्तिवाला होता है । (३) कराकिन् बहुत जीव अणुक्क स्थिति  
अविमक्तिवाले होते हैं और बहुत जीव अणुक्क स्थितिविमक्तिवाले होत हैं । यह ता अणुक्क  
स्थितिकी अपवा कथन हुआ । अब यदि इसके स्थानमें अनुक्क स्थितिवालोंका मुख्य कर  
देते हैं और अणुक्क स्थितिवालोंका गोण तो कभी मंगोंकी एकत्र निम्न हो जाती है—(१) कराकिन्  
सब जीव अनुक्क स्थितिविमक्तिवाले होत हैं । (२) कराकिन् बहुत जीव अनुक्क  
स्थितिविमक्तिवाले होत हैं और एक जीव अनुक्क स्थिति अविमक्तिवाला होता है ।  
(३) कराकिन् बहुत जीव अनुक्क स्थिति विमक्तिवाले और बहुत जीव अनुक्क स्थिति  
अविमक्तिवाले होत हैं । सब नादिकोंसे लेकर अनाहारकों तक मुख्य त्रिगुणी माहाकार्य गिनत  
हैं । इनमें यह आपप्रत्ययान बन जानी है अपाण् बन मागणाओंमें भी इसी प्रकार अणुक्क और  
अनुक्क स्थितिवालोंकी अपवा तीन तीन मंग बन जात हैं अतः इनकी प्रत्ययान आपके

§ ६५ जहण्यमिम अट्टपदं । तं जहा—जे जहणस्स विहत्तिया ते अजहणस्स अविहत्तिया, जे अजहणस्स विहत्तिया ते जहणस्स अविहत्तिया । एदेण अट्टपदेण दुविहो णिहोसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह०-जहण-द्विदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च, एवं तिण्णि भंगा । एवमजह० । णवरि विहत्तिया पुवं भाणियवं । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुसतिय-सव्वदेव-सव्वविगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय-वादरपुढवि०पज्ज०-वादरआउ० पज्जत्त०-वादरतेउ०-पज्ज०-वादरवाउ०पज्ज०-वादरवणप्फदि०पत्तेय०पज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-

समान कहा । किन्तु लब्धपर्याप्तक मनुष्य यह सान्तर मार्गणा है अतः इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंमेंसे प्रत्येकके आठ आठ भग हो जाते हैं । इसी प्रकार और जितनी सान्तर मार्गणाएँ हैं उनमें तथा अपगतवेदी, अकपाथी और यथाख्यातसयत इन तीन मार्गणाओंमें भी आठ आठ भग प्राप्त होते हैं ।

वह आठ भग इस प्रकार हैं:-एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (१), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (२), एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (३), अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (४) एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (५), एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (६), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (७), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (८) ।

इस प्रकार उत्कृष्ट भगविचय समाप्त हुआ ।

§ ६५ नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य भगविचयके कथनमें जो अर्थपद है वह इस प्रकार है— जो जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं वे अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं । जो अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं वे जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं । इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं और एक जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाला है । कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं और बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं इस प्रकार जघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षा तीन भग होते हैं । इसी प्रकार मोहनीयकी अजघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षासे भी तीन भग होते हैं । इतनी विशेषता है कि अजघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षा कथन करते समय 'विहत्तिया' का पहले कथन करना चाहिये । अर्थात् जिस प्रकार जघन्य स्थितिकी अपेक्षा कथन करते समय तीन भगोंमें अविभक्तिवालोंका पहले कथन किया है उसी प्रकार अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा कथन करते समय तीन भगोंमें पहले विभक्तिवालोंका कथन करना चाहिये । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादरजलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादरवायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी ब्रह्म, पाचों मनोयोगी,

काययोगि०-भोराखि-वेरम्बिय०-तिष्णिवेद०-वचारिकसाय-विहंग०-आमिणि०-सुद०-  
ओहि-मणपज्ज०-सज्जद-सामाहय-छेदा-परिहार-संखदासज्जद०-चक्खु-अचक्खु०-  
ओहिदंस०-तिष्णिक्खस्ता०-अमसिदि०-सम्मादि०-सहय०-वेदय-सणि-आहारि च ।

§ १६ तिरिक्ख मोह० अ अज्ज णियमा अत्थि । एवं सम्भएइदिय-  
पुडवि-बादरपुडवि-बादरपुडविअपज्ज०-सुहुमपुडवि-पज्जचापज्जच-आठ-बादर-  
आठ०-बादरआठअपज्ज०-सुहुमआठ०-पज्जचापज्जच-तेठ-बादरतेठ०-बादरतेठअपज्ज०-  
सुहुमतेठ०-पज्जचापज्जच-चाठ-बादरचाठ०-बादरचाठअपज्ज०-सुहुमचाठ०-पज्जचा-  
पज्जच-बादरवणप्फविपचेय०-अपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-आराखियमिस्स०-कम्म-  
इय०-मदि-सुदमण्णाण-असंज्जद०-तिष्णिक्खे०-अमव०-मिच्छादि०-असणि०-  
अणाहारि च ।

§ १७ मणुसअपज्ज उक्कस्सर्गो । एवं वेरम्बियमिस्स०-आहार०-आहार  
मिस्स० ( अमवद ) अकसाय-सुहुम०-जहक्खाद०-उवसम०-सासण०-सम्माभि० ।

एवं जाणावीवेहि मंगविषयो समचो ।

पाँचों बचनयोग काययोगी औदारिककाययोगी बैक्खियिककाययोगी तीनों वेदवाले ओहादि चारों  
क्यायवाले, विमंगखानी, आम्निविबोधिक्खानी, ब्रतखानी, अचविखानी मननपर्ययखानी संयत सामा  
बिहसंयत छेदोपस्वानत्संयत परिहारविहृक्षिसंयत संयतासंयत चक्षुर्वर्धनवाले, अचक्षुर्वर्धनवाले  
अचविषयनवाले पीठ आदि तीन लेखावाले अमय सम्मगृहि, ज्ञायिकसम्मगृहि, वेदकसम्मगृहि  
रुद्धी और आहारक बीबोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ १६ तिर्णोमें मोहनीयकी बधम्य स्थिति विमर्शितवाले और अज्जपण्य स्थितिविभक्ति  
वाले बीब नियमसे हैं । इसी प्रकार छमी एकेन्द्रिय पृथिवीकायिक बाहर पृथिवीकायिक, वातर  
पृथिवीकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक  
अपर्याप्त जलकायिक, वातर जलकायिक, वातरजलकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक  
पर्याप्त सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त अग्निकायिक बाहर अग्निकायिक, बाहर अग्निकायिक  
अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त वायुकायिक  
बाहर वायुकायिक वातरवायुकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त  
सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त वातर वनस्पतिकायिक प्रत्येक छरीर बाहर वनस्पतिकायिक प्रत्येक  
छरीर अपर्याप्त वनस्पतिकायिक निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी काम्यैक्यपयोगी, भव्यहामी  
ब्रतखानी अस्तंयत कृष्ण आदि तीन लेखावाले अमय मिथ्यागृहि, अस्तंयी और आहारक  
बीबोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ १७ लक्ष्म्यपर्याप्तक मणुष्योक्ते कृच्छ्र स्थितिविभक्तिके समान यहाँ भी आठ आठ मंग  
हैं । इसी प्रकार बैक्खियिकमिश्रकाययोगी आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी  
अकयावी, सूक्ष्मसापर्याप्तसंयत अथाध्यातसंयत, कपधमसम्मगृहि, सासादनसम्मगृहि और  
सम्यग्मिथ्यागृहि बीबोंके ज्ञानना चाहिये ।



§ ६८ भागाभागानुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्कम्मद्विदि—विहत्तिया जीवा सच्चजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । अणुक० सच्चजी० के० भागो ? अणंता भागा । एवं तिरिक्ख०-सच्चण्हंदिअ-वणप्फदि०-णिगोद०-काययोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-णवु स०--चत्तारिक्कसाय-मदि-मुद—अण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिलेस्सा-भवसिद्धि०-अभव०-मिन्हा०-असण्णि-आहारि०-अणाहारि ति ।

§ ६९ आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्क० सच्चजी० के० भागो ? असंखे० भागो । अणुक० सच्चजी० केवडिओ भागो ? असंखेज्जा भागा । एवं सच्चपुढवि०-सच्चपंचि०तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराद्ध०-सच्चविग-लिंदिय-सच्चपचिंदिय-सच्चपुढवि०-सच्चआउ०-सच्चतेउ०-सच्चवाउ०-वादरवणप्फदि०

विशेषार्थ—उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा भगविचयका कथन करते समय ओघ और आदेशसे जिन भगोंको पहले वतला आये हैं वे भग यहा जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी उसी प्रकार वन जाते हैं । किन्तु सामान्यतिर्यच और एकेन्द्रियोसे लेकर अनाहारक तक मूलमें गिनाई हुई कुछ मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें जघन्य स्थितिवाले बहुत जीव और अजघन्य स्थितिवाले बहुत जीव नियमसे पाये जाते हैं, अतः यहाँ ( १ ) मोहनीयकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले नाना जीव नियमसे हैं । ( २ ) मोहनीयकी अजघन्य स्थिति-विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं ये दो भग ही प्राप्त होते हैं ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६८ भागाभागानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट भागा-भागानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । अनुत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । इसी प्रकार तिर्यच, सभी एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, काय-योगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्स्यजानी, श्रुताजानी, असयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असत्री, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६९ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अनुत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यच, सामान्य मनुष्य, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पृथिवीकायिक, सभी जलकायिक, सभी अम्रिकायिक, सभी वायुकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर,

पच्ये०-पञ्चसापञ्च-सम्बतस-पंचमण०-पंचयचि०-पंचविय०-पंचवियमिस्स०-  
इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-मुद०-ओहि-संजदामंमद चमसु०-ओहिदंस०-  
तिण्णिख०-सम्मादि-स्वइय०-वेदय-उवसम०-सासण-सम्माभि०-सण्णि ति ।

§ १०० मणुसपञ्ज०-मणुसि० मोह० उक्त० सम्बन्धी० के० भागो ? संखे-  
भागो । अनुक्त० सम्बन्धी० क० ? संखज्जा भागा । एवं सम्बद्ध-आहार०-माहार-  
मिस्स०-अवगद-अकसाय-प्रणपञ्ज०-संमद-सायाइय-ऊदो० परिहार०-सुहुमसाप०-  
बहाक्त्वाद० ।

एषमुक्तस्सभागाभागो समचो ।

§ १०१ अहण्ण पपद । दुविहो जिह्वेसो-ओपेण मादसण य । सत्य ओपेण

बाह्वर वनस्पतिकार्यिक मत्स्यक क्षीर पर्वत बाह्वर वनस्पतिकार्यिक प्रत्यक्षक्षीर अपर्याप्त समी त्रस,  
पांचों मनोयोगी पांचों वचनयोगी, वैक्रियिकमययोगी, वैक्रियिकमिमकाययोगी, क्षीवेरी, पुरुषवेरी  
विसंग्रहानी आभिनिबोधिष्ठानी वृत्तज्ञानी अवचिष्ठानी, संयतासंयत, बहुवर्णनवाले अवधि  
वर्णनवाले पीठ आदि तीन क्षेत्रवाले मन्मथट्टि कार्यात्ममन्मथट्टि वेदकसम्यग्मट्टि  
अपक्रमसम्यग्मट्टि, सासावनसम्यग्मट्टि सम्यग्मिध्याट्टि और संज्ञी बीबोंके क्क्षना चाहिये ।

§ १ = मनुष्यपराष्ट और मनुष्यनियमों मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिभिभक्तिवाले बीच  
सब बीबोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अनुक्तस्थ स्थितिभिभक्तिवाले बीच सब बीबोंके  
कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सप्तवैसिद्धिके बीच, आहारककाययोगी  
आहारकमिमकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकण्ठ्यी, मनोवर्णनवाली, संयत, सामायिकसंयत  
वेदापस्थापनासंयत परिहारविमुक्तिसंयत, सुहमसापराष्टिकसंयत और सप्तवैसिद्धिकसंयत बीबोंके  
बान्ना चाहिये ।

विशेषार्थ-भागाभागमें कौन किसके कितने भागप्रमाण हैं इसका विचार किया जाता है ।  
प्रकृतमें सामान्यरूपसे उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले बीच किसके  
कितने भाग हैं वह बतलाया गया है । आधमें कितने उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले बीच हैं  
उनमें अनन्तमें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले हैं और अनन्त बहुभाग अनुत्कृष्ट स्थितिवाले हैं ।  
मानेखाओंकी अपवा कन्धी रक्तपक्षा तीन प्रकारसे हो जाती है । कुछ मार्गाणाओंमें उत्कृष्ट और  
अनुत्कृष्ट स्थितिवालाकी प्ररूपका आपक समान है । कुछ मार्गाणाओंमें असंख्यातवें भागप्रमाण  
उत्कृष्ट स्थितिवाले और असंख्यात बहुभाग अनुत्कृष्ट स्थितिवाले हैं । तथा कुछ मार्गाणाओंमें  
संख्यातवें भागप्रमाण बीच उत्कृष्ट स्थितिवाले और संख्यात बहुभागप्रमाण बीच अनुत्कृष्ट स्थिति-  
वाले हैं । इन सब मार्गाणाओंके नाम मूलमें गिनाये हैं । इसी प्रकार सप्तम्य और अत्र  
पन्थ स्थितिवाले बीबोंके भागाभागस्य सुतासा समझना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट भागाभाग समाय हुआ ।

§ ११ अब सप्तम्य भागाभागका प्रकरण है । उसकी अपवा निर्देश दा प्रकारका है-  
ओपनिर्देश और ओर आदेशनिर्देश । हममेंसे आपनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी सप्तम्य स्थिति-

मोह० ज० सव्वजीवा० केवडि० ? अणंतिमभागो । अज० सव्वजी० के० ? अणता भागा । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसिद्धिय-आहारि ति ।

§ १०२ आदेसेण णेरइएसु मोह० ज० सव्वजी० के० ? असंखे० भागो । अज० सव्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा । एवं सत्तसु पुढ्वीसु सव्वतिरिक्ख-मणुस- मणुसअपज्ज०-देव०-भवणादि जाव अवराइद०-सव्वएइदिय-सव्वविगलंदिय-सव्वपंचिदिय-इकाय-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालियमिस्स-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-कम्मइय०-इत्थि०-पुरिस०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदा०-संजद०-असंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-इलेस्सा-अभव०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि-अणाहारि ति ।

§ १०३ मणुसपज्ज०-मणुसिणी० मोह० जह० सव्वजी० के० ? संखे० भागो । अज० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा । एवं सव्वह० आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद० ।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । मोहनीयकी अजघन्य स्थिति-वाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिक काययोगी, नपु सकवेदवाले, क्रोधादि चारो कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, मन्य और आहारक जीवों के कहना चाहिये ।

§ १०२ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव विवक्षित जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले नारकी जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले नारकी जीव कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यच, सामान्य मनुष्य, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासयत, असयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेख्यावाले, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्यादृष्टि, मिध्यादृष्टि, सङ्गी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १०३ मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनिर्योके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले अकषायी,

१०४ परिभाषाशुगमो दुविहा—अहण्यओ उक्कस्सओ चदि । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहदंसा आघण आदंसण य । तस्य आघेण मोहं उक्कस्सद्विदि विहधिया जीवा केधिया ? असंखजा । अणुक्कं केधिया ? अर्णता । एवं तिरिक्ख सम्मण्हदिय—पणप्फदि०—णिगोद०—फायनोगि०—आरासि०—ओरात्थिभिस्स०—कम्मइय—णवु स० चत्तारिक्साय०—मदि सुदअण्णाण०—असंजद०—अचन्नु० तिण्णिले० भवसि० अभवसि०—मिच्छा० असण्णि०—आहारि०—अणाहारि ति ।

१०५ आदेसेण भेरइएसु मोहं उक्कं अणुक्कं केधिया ? असंखजा । एवं सच्चपुइरि०—सन्नपविण्यितिरिक्ख—मणुसअपज्ज०—देव० भवणादि नाम सहस्सार० सम्मविगळिदिय—सन्नपविण्यितिरिक्ख—सत्तारिकाय सम्मतस—पंचमण—पंचवचि०—बच्चविय०—पठच्चपमिस्स०—इत्थि० पुरिस० निहग०—आभिणि०—सुद०—ओहि०—संजदासंमद—वचलु० ओहिदंस०—तिण्णिले०—सम्मादि०—वेदय०—उवसय०—सासण०—सम्मावि०—सण्णि ति ।

१०६ मणुस० मोह उक्कं के ? संखजा । अणुक्क असंखजा ।

मनःपयस्यज्ज्ञानी, संयत सामायिकसंयत ज्ञेयोपस्थापनासंयत, परिहारविमुक्तिसंयत सूक्ष्मसांपर-  
यिक्तसंयत और स्वाध्यायसंयत जीवोंके ज्ञाना चाहिये ।

इस प्रकार भागाभागाशुगम समाप्त हुआ ।

१०४ परिभाषाशुगम दो प्रकारका है—अपण्य और उक्कट । उनमेंसे उक्कट परिभाषा शुगमका प्रकार है । उसकी अपणा निर्देश वा प्रकारका है—आधमिर्देश और आहमिर्देश । ऊर्णमेंसे ओषधी अवेदा मोहनीयकी उक्कट स्थितिविमक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कट स्थितिविमक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार तिर्यक, सभी पक्षेत्रिय, पनस्वतिकायिक, निगाह कर्मयोगी औदारिकाययोगी औदारिकमित्रकर्मयोगी कर्मसकल्य योगी तर्पुसकल्य, ओषाधि चारों कणमवाले मत्स्यजानी, भूतजानी अमंयत, अचचुइरानी, कृष्ण आदि तीन क्षेत्रवाले मध्य, अमध्य मिथ्यादृष्टि, असंखी आहारक और अनहारक जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

१०५ आदेयकी अपणा नाटकियोंमें मोहनीयकी उक्कट और अनुत्कट स्थितिविमक्ति वाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सातों प्रविधियोंके नारकी सभी पक्षेत्रियतिर्यक सक्कपवर्णाक मनुष्य, सामान्य बृह, मदनयासियोंसे लेकर सहस्सार तकके देव, सभी विष्णुमित्र, सभी पक्षेत्रिय प्रविधीकायिक आदि चार करवाले सभी वस पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी शैक्यिकाययोगी वैदिकिकमित्रकर्मयोगी जीवेवी, पुरुषेवी विमंगझानी, आमिनिवाभिज्ञानी, भूतजानी अचभिज्ञानी, संयतासंयत चचुइरानाके अचधिवर्जनवाले, पीत आदि तीन क्षेत्रवाले, सम्मदृष्टि वदकसम्यग्दृष्टि, उपसमसम्यग्दृष्टि, सासाधमसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सभी जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

१०६ मनुष्योंमें मोहनीयकी उक्कट स्थितिविमक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कट स्थितिविमक्तिवाले कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार ज्ञानतसे लेकर अपराजित

एवमाणदादि जाव अरराटद० खड्य०दिदि चि । मणुमपज्ज०-मणुसिणी० उ०  
अणुक्क० केत्ति० ? संखेज्जा । एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिम्म०-अगद०-अरसा०-  
मणपज्ज०-संजद०-समाड्य-अदो०-परिहार०-मुहुम०-जहासमाद० ।

एवमुक्कस्मओ परिमाणानुगमो समत्तो ।

§ १०७. जहण्णए पयद । दुविहो णिट्ठेसो—ओघेण आदेमेण य । तन्थ  
ओघेण मोह० ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? अणता । एव कायजोगि०-  
ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिकाय-अचम्बु०-भवसि०-आहारि चि ।

§ १०८ आदेसेण एरडएमु मोह० ज० अज० केत्तिया ? अमंगेज्जा । एवं  
पढमपुढवि०-सव्वपचिंदिय—तिरिसय—मणुसअपज्ज०-देव०-भवण०-राण०-सव्व—  
विगलिदिय—पचिदिअपज्ज०-चत्तारिकाय-तसअपज्जत्ते चि ।

तत्तु देव और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पशुपक्ष और मनुष्यनिबोध  
उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । इसी प्रकार मर्याद-  
सिद्धिके देव, आहाररुकाययोगी, आहाररुमिश्रकाययोगी, अपगतवडवाले, अरुपायी, मनःपर्यय-  
ज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छंदोपस्थापनासयत, परिहारमिश्रद्विसयत, सूदनमापरायिकसयत  
और यथाख्यातसयत जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—इसमें ओघ और आदेशमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंकी सन्ख्या  
वतलाई गई है । आपसे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असख्यात और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव  
अनन्त हैं । तथा आदेशसे सख्याकी प्ररूपणा चार भागमें बट जाती हैं । कुछ मार्गणाए अनन्त  
सख्यावाली हैं जिनमें ओघप्ररूपणा घटित हो जाती हैं । कुछ मार्गणाए असख्यात सख्यावाली हैं  
जिनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दानों स्थितिवाले असख्यात हैं । कुछ मार्गणाए असख्यात सख्या-  
वाली हैं परन्तु उनमें उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असं-  
ख्यात हैं । तथा कुछ मार्गणाए सख्यात सख्यावाली हैं जिनमें उत्कृष्ट स्थितिवाले और अनुत्कृष्ट  
स्थितिवाले दोनों सख्यात हैं । मार्गणाओंके नाम मूलमें गिनाये हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ १०७ अथ जघन्य परिमाणानुगमका प्रकरण है ? उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका  
है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिप्रभक्ति-  
वाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । अजघन्य स्थितिप्रभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ।  
इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपु सकवेदी, काधादि चारों कपायवाले, अचक्षुदर्शन-  
वाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १०८ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिप्रभक्तिवाले  
जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी प्रकार पहली पृथ्वीके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, लव्यपर्याप्तक मनुष्य,  
सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लव्यपर्याप्तक, पृथि-  
वीकायिक आदि चार स्थावरकाय, और त्रस लव्यपर्याप्तक जीवोंका परिमाण जानना चाहिये ।

§ १०६ निदियादि आव छदि चिमणुस०-जोदिसियादि आव अनराइद-पंचि०-  
पंचि०-पञ्च०-तस-तसपञ्च०-पचमण०-पंचपचि-वेठम्बि०-वेठम्बिपमिस्स०-इत्यि०-  
पुरिस०-विहंग०-आमिणि०-मुद०-ओहि-संमत्तामञ्जद०-चक्कु०-ओहिदस०-तिणिल०  
सम्मादि-स्वइय-वेदय-उबसम०-सासण सम्मामि०-सण्णि० मोह०-हिदि० क !  
संस्वज्जा । अन्न० क० ? असम्बेज्जा ।

§ ११० सत्तमाइए मोह० ज० अन्न० केचि० ? असम्बेज्जा । तिरिक्ख० मोह०  
अ० अज० के० ? अरुता । एषं सम्बपइदिय-सम्बपणप्पदि०-सम्बणिगोद०  
ओरास्मियमिस्स० कम्मइय०-मदि-मुदअण्णाण-असंजद०-तिणिले०-अमब० मिच्छा-  
दिदि०-असण्णि० अणाहारि चि ।

§ १११ मणुसपञ्च०-मणुसिणी० मोह० अ० अन्न० केचिया ? संस्वज्जा ।  
एषं सम्बह०-आहार० आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपञ्च०-संजद०-सामाइय  
छेदी०-परिहार०-मुहुमसांपराय० अहास्सादसंजदा चि ।

एषं परिमाणानुगमो समथो ।

§ १६ दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी सामान्य मनुष्य, ज्योतिषियोंसे लेकर  
अपराधित तकके देव पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त पाँचों मनोबोगी पाँचों ब्रह्मन्तोगी  
वैक्रियिकमन्तोगी वैक्रियिकमन्तोगी ब्रह्मन्तोगी जीवोरी पुरुषवैरी, विमंगलानी भ्रामिनिबोधिकाणी  
भुतजानी, अक्षयिजानी संवत्तमन्त ब्रह्मन्तवैरी, अक्षयिजवैरी, पीत आदि तीन सेहवाबले,  
सम्बन्धित, आधिकसम्बन्धित, वेदकसम्बन्धित, उपरमसम्बन्धित, सासन्तसम्बन्धित, सम्बन्धि-  
ध्वन्धित और संती जीवोंमें माहनीयकी ब्रह्मन्त स्थितिबिम्बितबाल जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।  
तथा अक्षयन्त स्थितिबिम्बितबाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

§ ११० सातवीं पृथिवीमें माहनीयकी ब्रह्मन्त और अक्षयन्त स्थितिबिम्बितबाल जीव  
कितने हैं ? असंख्यात हैं । तिसरोंमें माहनीयकी ब्रह्मन्त और अक्षयन्त स्थितिबिम्बितबाल जीव  
कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय सभी ब्रह्मन्तस्थितिकारिक, सभी निगाद और-  
रिक्मिमन्तब्रह्मन्तोगी कर्मशक्यब्रह्मन्तोगी मन्तजानी भुतजानी असंयत, कृष्ण आदि तीन लक्ष्वा  
बाले अक्षयन्त, मिष्वादि, असंजी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १११ मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्योय माहनीयकी ब्रह्मन्त और अक्षयन्त स्थितिबिम्बित-  
बाल जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सवावैरिदिक देव, आक्षरक्यब्रह्मन्तोगी,  
अक्षरक्यमन्तब्रह्मन्तोगी अपराधितब्रह्मन्त अक्षयन्त मन्तपर्याप्तजानी संयत सामायिकमन्त  
एषापस्थापनासंयत परिहृतब्रह्मन्तसंयत सूक्ष्मसंयतपर्याप्तसंयत और अक्षयन्तमन्तसंयत जीवोंके  
जानना चाहिये ।

विशुपार्य—आपने ब्रह्मन्त स्थिति कृष्ण जीवके दसवें गुणस्थानके अग्रिम समर्थमें प्राप्ति  
दाती है । अतः आपकी अपराधित ब्रह्मन्त स्थितिबाले जीव संख्यात हैं । तथा इनके अनिरिक्म

§ ११२ खेताणुगमो दुविहो जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पगद ।  
 दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्क० केवडि खेत्ते ?  
 लोगस्स असंखे० भागे । अणुक्क० के० खेत्ते ? सच्चलोए । एवं तिरिक्ख-सच्चण्डिय०—  
 पुढवि०—वादरपुढवि०—वादरपुढविअपज्ज०—सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त—आउ०—  
 वादरआउअपज्ज-सुहुमआउ०—पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०—वादरतेउ०—वादरतेउअपज्ज०—सुहुम-  
 तेउ-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०—वादरवाउ०—वादरवाउअपज्ज०—सुहुमवाउ-पज्जत्तापज्जत्त-  
 वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०—सच्चवणप्फदि०—सच्चणिगोद०—कायजोगि०—ओरालिय०—  
 ओरालियमिस्स०—कम्महूय०—णवुंस०—चत्तारिकसाय—मदि—सुदअण्णाण०—असंजद०—  
 अचक्खु०—तिणिले० भवसि०—अभवसि०—मिच्छा०—असणि०—आहारि०—अणाहारि ति ।

मोहनीयकर्मकी सत्तावाले शेष सब जीव अजघन्य स्थितिवाले हुए और उनका प्रमाण अनन्त है अतः ओघसे अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त कहे । तथा मार्गणाओंकी अपेक्षा विचार करने पर कहीं ओघ जघन्य स्थिति सम्भव है और कहीं आदेश जघन्य स्थिति सम्भव है । इसीप्रकार कहीं जघन्य स्थितिका काल एक समय है और कहीं अन्तर्मुहूर्त, अतः जहा जिस प्रकारसे जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षम या अधिक सचय होता है वहा उसके अनुसार उनकी सख्या कही । किन्तु अजघन्य स्थितिवालोंकी सख्या सर्वत्र अपनी अपनी मार्गणाकी सख्याके अनुसार जानना चाहिये । अर्थात् जिस मार्गणामें अनन्त जीव हैं उस मार्गणामें अजघन्य स्थितिवाले जीवोंकी सख्या अनन्त जानना । तथा जिस मार्गणामें जीव असख्यात या सख्यात हैं उसमें अजघन्य स्थितिवाले जीवोंकी सख्या असख्यात या सख्यात जानना ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ११२ क्षेत्रानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट क्षेत्रानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, काम्पलकाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन जेदयावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ११३ आदेसण गेरइपसु मोह० सकक० अणुकक० के० स्वचे ? लोग० असंखे०भागे । एवं सचपुडवि-गेरइय-सम्बर्षचिदियतिरिक्त्त-सम्बमणुस्त सम्बदव-सम्बविगमिदिय-सम्बर्षचिदिय-बादरपुडविपज्ज०-बादरआवपज्ज०-बादरतेव पज्ज०-बादरवणप्फदिपणेय०पज्ज०-सम्बतस पंचमण०-पंचवचि०-वरन्विय-वउ०मिस्त० [माहार०] माहारमिस्त०-इत्थि० पुरिस०-अवगद०-अकसाय-विईम०-आभिणि-सुद० आहि०-मणपज्ज०-संजद सामाइय०-अदो० परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजत्तासंनद चक्खु-आहिदंसय० तिण्णिखेस्ता-सम्मादि०-खइय०-बदय०-वचसम०-सासण० सम्मामि०-सण्णि पि ।

§ ११४ बादरबावपज्ज० उक्क० क० खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । अणुकक० लोग० संख०भाग ।

एवमुक्कस्सत्त्वाणुगमो समणो ।

§ ११३ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें माहनीयकी उत्कृष्ट व अतुल्य स्थितिबिभक्ति-वाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके अस्मत्प्राप्तमें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार सातों प्रविधियोंके नारकी सभी पंचमिदिय तिर्यक्, सभी मनुष्य सभी देव सभी विकसन्त्रिय सभी पंच-मिदिय बादर प्रविधीकायिक पर्याण बादर अलकायिक पर्याण, बादर अग्निकायिक पर्याण बादर वनस्पतिकायिक प्रत्यक्ष स्त्रीर पर्याण, सभी ब्रम पांशों मनोयोगी पांशों वचनयोगी वैश्वविक्रमाय योगी वैश्वविक्रमिभकाययोगी अज्जमककमयागी आहारकमिभकाययागी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी अपगतवेदवाले अकयायी विमंगशानी आमिनिवायिकशानी, वृत्तशानी अषविशानी, मनःपर्यवशानी, संयत सामाधिकसंयत क्षेत्रोपम्भापनासंयत, परिहारविहृदिसंयत, सूक्ष्ममांशरायिकसंयत तथा स्वातसंयत संयतासंयत अक्षुडशनी, अषविर्दनी, पीत आदि तीन सेदयावाले, सम्यग्दृष्टि, धायिकमस्यग्दृष्टि, वेदगसम्यग्दृष्टि, अपज्ञमसम्यग्दृष्टि मासावमसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिध्यादृष्टि और संक्षी बीषोंके ज्ञानता आदिय ।

§ ११४ बादर बावुकायिक पर्याण बीषोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके अस्मत्प्राप्तमें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । अतुल्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके संन्यागमें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

विशुपार्य-आपमे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव अस्मत्प्राप्त हैं और भगवत्प्राप्तोंमेंसे किसीमें अस्मत्प्राप्त हैं और किसीमें संन्याग । अतः 'तुल्य स्थितिवालोंका एक पक्ष सातक अस्मत्प्राप्तमें भाग प्रमाण पड़ा । किन्तु अतुल्य स्थितिवालोंमें आप या आहर्गमे जिनका प्रमाण अनन्त है उनका पक्ष सब सातक पड़ा । और जिनका प्रमाण अस्मत्प्राप्त है उनका पक्ष तीन प्रमाणका है । किसी मार्गावालोका सब सातक पक्ष है, किसीका सातका संन्यागभागा पक्ष है और किसीका सातका अस्मत्प्राप्तभागा पक्ष है । तथा जिन मार्गावालोंका प्रमाण संन्याग है उनका पक्ष सातका अस्मत्प्राप्तभागा पक्ष ही है । जिन मार्गावालोंका जिनका पक्ष है उनका पक्ष मूलमें गिनाय हो है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।



§ ११५ जहणए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० अजह० उक्कस्सभंगो । एवं कायजोगि० ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि ति ।

§ ११६ आदेसेण णिरयगदीए मोह० जह० अजह० उक्कस्सभंगो । एवं सत्त-पुढवीसव्वपंचिदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगल्लिंदिय-सव्वपंचिदिय-सव्वतस०-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेय-पज्ज०-पचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउमिस्सि०-आहार०-आहारमिस्सि०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मण०पज्ज०-संजद०-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजटासंजद०-चक्खु०-ओहिदस०-तिण्णले०-सम्मादि०-खड्डय०-वेदय०-उवसग०-सासण०-सम्मायि०-सणि ति । णवरि वादरवाउपज्ज० जह० अजह० लोगस्स संखे०भागे ।

§ ११७ तिरिक्ख० मोह० जह० अजह० के० खेत्ते ? सव्वलोए । एवं सव्व-एण्दिय-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादर-

§ ११५ अब जघन्य स्थितिविभक्ति क्षेत्रानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओपनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा क्षेत्रका कथन उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके समान है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ११६ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थिति-विभक्तिकी अपेक्षा क्षेत्र उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके समान है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नाकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सभी मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी ब्रह्म, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिकपर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायु-कायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रि-पृ निकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी पुरुषवेदी, अ-तत्वेदी, अकपायी, विभगज्ञानी, आभिनवोधिक्खज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन-पर्ययज्ञानी, आ-पामायिक संयत, छेदो रस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथा-जल-न, मयतासयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक-कायिक-दकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यगिमथ्यादृष्टि और सद्गी-वायुका-वाहिये । इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिक पर्याप्तक जीवोंमें जघन्य स्थिति-प्रत्येक शरीर-जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके सख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

नियकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक, र, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक

भाठ०-बादरभाठअपज०-सुहुमभाठ-पञ्जचापञ्जच-तेव०-[बादरतेव०]-बादरतेवअपज०-  
सुहुमत०-पञ्जचापञ्जच-भाठ०-बादरभाठ०-बादरभाठअपज०-सुहुमभाठ०-पञ्जचा  
पञ्जच-बादरवणप्फदि०-पत्तेय०-ससिमपज०-सम्बवणप्फदि० सम्बणिगोद०ओरास्त्रिय  
मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण अममद० तिण्णिसेस्सा अमवसि० मिच्छादि०-  
असणि-अणाहारि सि ।

§ ११८ एतं मूलोच्चारणापाठो—तिरिप्पन्म० मोह० अह० सोम० संख० भागे ।  
अज० सम्बसोग । एदस्साहिप्पाया सत्याणविसुद्धादरइदियपज्जत्तएसु चेव जहण्ण  
सामिच्च जावमिदि । एवमेइदिय-बादरेइदियपज्जचापज्जच-भाठ-बादरभाठ०-तदपज्जचार्यं  
च वत्तम् । एदस्मि अहिप्पाए चत्तारिकाय-तेसिं बादर-तदपज्जचार्यं अह० सोम०  
अत्तंसे० भागे । अज० सम्बत्तंग । यदि सुदअण्णाण०-असज्ज० तिप्पिन्ने० अमम०  
मिच्छादिहि-असज्जीजं बादरभाठमंगो । एतवणुसारेण च पोसणं वेदव्यमिदि एद  
मेत्थ पहाणं ।

एवं स्वेच्छाशुगमो समचो ।

अपर्याप्त, वस्तुकायिक वातरजसकायिक वातरजसकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म वस्तुकायिक, सूक्ष्म वस्तुकायिक  
पराप्त सूक्ष्म वस्तुकायिक अपर्याप्त अग्निकायिक वातर अग्निकायिक वातर अग्निकायिक अपर्याप्त  
सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त वायुकायिक, वातर  
वायुकायिक बादरवायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त सूक्ष्म  
वायुकायिक अपर्याप्त वातर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वातर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर  
अपर्याप्त, समी वनस्पतिकायिक, समी निगोष ओशरिकमिच्छावयागी, कर्मण्यकावयागी,  
मत्पञ्चानी भुताद्यानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लोकावासे अमम्य, मिप्पादिहि, असेन्दी  
और अनन्तरक बीजोंके जानना चाहिये ।

§ ११८ वहाँ पर मूलोच्चारणाका पाठ है कि तिरिप्पन्मो मोहनीयकी अपर्याप्त स्थितिबिमन्त्रितवासे  
बीज लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । तथा अमम्य स्थितिबिमन्त्रितवासे बीज सब लोकमें  
रहते हैं । इसका यह अन्विष्टाव है कि स्वस्वान विष्णु बादर परेन्द्रिय पर्याप्तकी ही वहाँ तक  
अपर्याप्त स्वामित्व है वहाँ तक वस्तु क्षेत्र प्राप्त होता है । तात्पर्य यह है कि तिरिप्पन्मो अपर्याप्त स्थिति  
वातर परेन्द्रिय पर्याप्तकी ही प्राप्त होती है और वस्तु क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागसे अधिक  
नहीं इसलिये समान्य तिरिप्पन्मो अपर्याप्त स्थितिवासे बीजोंका क्षेत्र वस्तु प्रमाण बतलाता है ।  
इसी प्रकार परेन्द्रिय वातर परेन्द्रिय, वातर परेन्द्रिय पर्याप्त वातर परेन्द्रिय अपर्याप्त वायुकायिक,  
वातर वायुकायिक और वातर वायुकायिक अपर्याप्त बीजोंके कहना चाहिये । तथा इस  
अभियायानुसार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय उनके वातर और उनके वातर अपर्याप्त  
बीजोंमें अपर्याप्त स्थितिबिमन्त्रितवासे बीज लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं, तथा अमम्य  
स्थितिबिमन्त्रितवासे बीज सब लोकमें रहते हैं । मत्पञ्चानी भुताद्यानी, असंयत कृष्ण आदि तीन  
लोकवासे अमम्य, मिप्पादिहि और असेन्दी बीजोंके वातर वायुकायिक बीजोंके समान क्षेत्र है ।  
तथा इसीके अनुसार स्थानका कवन करना चाहिये । इस प्रकार यही विवक्षा यहाँ पर प्रधान है ।

विशुद्धार्थ—बीजसे अपर्याप्त स्थितिवासे बीज संख्यात हैं और मागशक्तियोंकी अपर्याप्त

१११६ पोसणाणुगमो दुविहो—जहण्णयो उक्कस्सओ च । उक्कस्से पयटं ।  
दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्क० के० रयेत्तं  
पोसितं ? लोग० असंखे० भागो अट्-तेरह्चोदस भागा वा देमृणा । अणुव० खेत्त-  
भंगो । एवं कायजोगि०-चत्तारिकसाय-मट्ठिअण्णाण-मुट्ठअण्णाण-अमजद०-अचवरु०-  
भव०-अभव०-मिच्छादि०-आहारि त्ति ।

किसीमे अनन्त हैं, किसीमे असख्यात और किसीमें सख्यात हैं । इनमेंसे जिन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिवाले सख्यात जीव हैं उनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । जिन मार्गणाओंमें असख्यात हैं उनमेंसे कुछ मार्गणाएँ तो गेम्नी हैं जिनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही है । जैसे सातों नरकोंके नारकी आदि । तथा वादरघायुकायिक पर्याप्त यह मार्गणा ऐसी है जिसकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोके संख्यातवें भाग-प्रमाण है । इनके अतिरिक्त जो अनन्त सख्यावाली और असख्यात सख्यावाली मार्गणाएँ शेष रहती हैं उनकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीवोंका वर्तमान क्षेत्र सब लोक प्राप्त होता है । जैसे सामान्य तिर्यच, एकेन्द्रिय और पृथिवीकायिक आदि । पर इस विषयमें मूलोच्चारणमें जो पाठ पाया जाता है उसका यह अभिप्राय है कि मूलमें असंख्यात सख्यावाली और अनन्त सख्यावाली जिन मार्गणाओंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक कहा है उनमेंसे पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, उनके वादर तथा वादर अपर्याप्त जघन्य स्थितिवाले जीवों का क्षेत्र तो लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही है और इन्हें छोड़कर शेष सब जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके सख्यातवें भागप्रमाण है । सो वीरसेन स्वामीने इस मतभेदका यह कारण बतलाया है कि ऊपर जो सब लोक क्षेत्र कहा है वह मारणान्तिकसमुद्घात आदिकी अपेक्षासे कहा है और मूलोच्चारणमें जो कुछका लोके असख्यातवें भागप्रमाण और कुछका लोकके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है वह स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षासे कहा है, अतः दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं है । फिर भी वीरसेन स्वामी इन दोनोंमेंसे मूलोच्चारणके अभिप्रायको प्रधान मानते हैं और उसके अनुसार स्पर्शनके कथन करनेकी सूचना भी करते हैं । अब रहा ओघ और आदेश से अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र सो ओघ या आदेशसे जिसका जितना क्षेत्र बतलाया है, अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी उसका उतना ही क्षेत्र जानना चाहिये । क्योंकि सर्वत्र यद्यपि जघन्य स्थितिवाले जीव कम हो जाते हैं फिर भी इससे अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा उनके क्षेत्रमें न्यूनता नहीं आती ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

१११६ स्पर्शानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट स्पर्शानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघ निर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार काययोगी, क्रोधादि चारो कपायवाले, मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अस-यत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवालोकोंको जो लोकके असख्यात वें भाग प्रमाण

§ १२० आदेसेण गिरय मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेचं पोसिद ? एगस्स असंखे० भागो छचोइस भागा ना देसुणा । पढमाए खतमगो । निदियादि बाव सत्तमि चि मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेचं पोसिद ? छाग० असंखे० भागो एक-व तिप्पि-वचारि पंच-छचोइस भागा देसुणा ।

§ १२१ तिरिक्ख० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? छोग० असंखे० भागो छचोइस भागा ना देसुणा । अणुक्क० के० खेचं पोसिद ? सज्जमोगो । एवमोरासि० जनुंस० वचव्वं ।

स्पष्ट बतलाया है वह वर्तमान कालकी मुख्यतासे बतलाया है क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति साठों नरकोंके नारकी संखी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यक्, पर्याप्त मनुष्य व बारहवें स्वर्ग तकके इषोंके ही सम्मेल है । पर इन सबका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है । ब्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे जो कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण स्पष्ट बतलाया है वह अतीत कालकी अपेक्षासे बतलाया है क्योंकि विशारपस्त्वस्वान, बेहना, कपय और वैश्विक पदसे परिखत हुए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने कुछ कम आठ भाग स्पष्ट किया है और मात्रात्मिक समुदायसे परिखत हुए मोहनोयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने कुछ कम तेरह भाग स्पष्ट किया है । मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए तेजस, आहारक और उपपाद ये तीन पद सम्मेल नहीं । हाँ स्वस्वामस्वस्वानपद अवश्य होता है जो इसकी अपेक्षा नरों को लोके असंख्यातवें भागप्रमाण जानना चाहिये । तथा मोहनीयकी अनुकृष्ट स्थितिवालोंका क्षेत्र वह कि सब लोक है वह स्पष्ट तो सब लोक होगा ही । कुछ मार्गवाए भी पक्षी हैं जिनमें यह आप प्रकृत्या अभिच्छ बन जाती है अतः उनके कवनको ओपके समान कहा । जैसे व्यवयोगी आदि ।

§ १२ आदेसनिर्लेखकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तियाँ जीवोंने कितन क्षेत्रका स्पष्ट किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्र और ब्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बार भाग क्षेत्रका स्पष्ट किया है । पृथ्वी पृथिवीमें स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मत्स्य पृथिवीमें मोहनीय की उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तियाँ जीवोंने कितन क्षेत्रका स्पष्ट किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा ब्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक दो तीन चार, पाँच और छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पष्ट किया है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका वर्तमान वर्तमान स्पष्ट लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीत कालीन स्पष्ट ब्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बार भाग प्रमाण बतलाया है । इसीसे यहाँ पर मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिवाले नारकियोंके दानों प्रकारका स्पष्ट क्षेत्रप्रमाण कहा । विशेषकी अपेक्षा जिस नरकका अतीत कालीन जितना स्पष्ट बतलाया है वतना ही ज्ञान सना चाहिये जो मूलमें बतलाया ही है । यहाँ हमने पर्याप्तसेरोंका स्पष्टन नहीं किया है सा यह सब विशेषता जीवद्वारासे ज्ञान जनी चाहिये ।

§ १२१ तिर्यक् गतिमें तिर्यकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तियाँ जीवोंने कितन क्षेत्रका स्पष्ट किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्र और ब्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बार भागप्रमाण क्षेत्रका स्पष्ट किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तियाँ जीवोंने कितने

§ १२२ पंचिन्द्रियतिरिक्त्वतियम्भि उक्त्वा० तिरिक्त्वोघं । अणुक्त्वा० के० से० पा० ।  
लोग० असंख्यभागो सव्यल्लोगो वा । पंचिन्द्रियतिरिक्त्वव्यपञ्ज० मोह उक्त्वा० लोग०  
असंख्य० भागो । अणुक्त्वा० लोग० असंख्य० भागो सव्यल्लोगो वा । एव मणुस-  
अपञ्ज० ।

क्षेत्रका स्पर्श किया है । सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार आदारिकाययोगी  
और नपुसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति सद्गी पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचोंके ही  
सम्भव है और इनका वर्तमान निवास लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण होता है, 'अतः' तिर्यचोंमें  
मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण वतलाया  
है । तथा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका अतीत कालीन स्पर्श कुछ कम छह बड़े चौंढ  
भागप्रमाण वतलानेका कारण यह है कि ऐसे तिर्यचोंने मारणान्तिक समुद्रघात द्वारा नीचे लुप्त कम  
छह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । क्योंकि जिन तिर्यचोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हो  
रहा है उनका सद्गी पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच, मनुष्य और नारिक्योंमें ही मारणान्तिक समुद्रघात  
करना सम्भव है । तथा मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थिति सप्त जातिके तिर्यचोंके सम्भव है और वे  
सब लोकमें पाये जाते हैं अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका सप्त लोक स्पर्श  
वतलाया है । आदारिकाययोग और नपुसकवेदमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः इनके  
स्पर्शको सामान्य तिर्यचोंके समान वतलाया है ।

§ १२२ पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिमती इन तीन  
प्रकारके तिर्यचोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यचोंके समान है । तथा  
उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने क्रिने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।  
लोकके असंख्यातमें भाग क्षेत्रका और सप्त लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पचेन्द्रियतिर्यच  
लव्यपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातमें भाग क्षेत्रका  
स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातमें भाग क्षेत्रका  
और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार लव्यपर्याप्तक मनुष्योंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सामान्य तिर्यचोंमें जो उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवों का स्पर्श कहा है वह  
पचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक की मुख्यतासे ही कहा है अतः इन तीन प्रकारके तिर्यचोंमें उत्कृष्ट  
स्थितिवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान वतलाया है । किन्तु उक्त तीन प्रकारके  
तिर्यचोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंके स्पर्शमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि इन  
तीन प्रकारके तिर्यचोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण है और अतीतकालीन  
स्पर्श सब लोक है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंने स्पर्श उक्त प्रमाण वतलाया है । जो  
तिर्यच या मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और स्थितिवात किये बिना पचेन्द्रिय  
तिर्यच लव्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें मोहनीयकी आदेश उत्कृष्ट स्थिति  
पाई जाती है । किन्तु इनके अतीतकालीन और वर्तमानकालीन क्षेत्रका विचार करते हैं तो वह  
लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, अतः यहाँ मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले  
लव्यपर्याप्तक तिर्यचोंका दोनों प्रकारका स्पर्श लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण कहा है । वैसे  
पचेन्द्रिय लव्यपर्याप्तक तिर्यचोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण और  
अतीत कालीन स्पर्श सब लोक वतलाया है जो इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए सम्भव है,  
अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले पचेन्द्रिय तिर्यच लव्यपर्याप्तकोंके दोनों प्रकारका स्पर्श

॥ १०३ ॥ मणु०-मणुसप्तमः-मणुसिणीसु उक्त्वा० फ० ख० पो० १ लो० अमखे० भागो । अणु० लो० अमखे० भागो सत्यनागा वा ।

॥ १०४ ॥ दवसु मोद० उक्त्वा० अणु० फ० ख० पा० १ लो० अमखे० भागो अह-ग्न चौरसभागा वा दमूणा । एवं मोहमीसाण० वत्तव्यं । भवण-पाण०-जादिसि० मोद० उक्त्वा० अणु० फ० ख० पो० १ लो० अमखे० भागो अहग्न अहग्न चौरसभागा वा दमूणा । सणनकुमारादि जान महस्सार सि मोद० उक्त्वा० अणु० फ० ख० पो० १ लो० अमखे० भागो अहचारस भागा वा दमूणा । आणद पाणद भारणस्सुद० मोद० उक्त्वा० सुचर्यमो । अणु० फ० ख० पो० १ लो० अमखे० भागो

कृत प्रमाण वनसाया है । इस विषयमें मनुष्य सत्यपथाप्रकटी स्थिति वंशत्रिय सत्यपथाप्रकटी विषयों समान है अतः मनुष्य सत्यपथाप्रकटी स्वयं वंशत्रिय विषय सत्यपथाप्रकटी समान वनसाया है ।

॥ १०३ ॥ सामान्य मनुष्य, मनुष्य पथा और मनुष्यविषयों में माहनीपदी कृत स्थिति विषयित्वा जीवाम द्वितन पत्रका स्वयं किया है । साकट अमखे० भाग प्रमाण पत्रका स्वयं किया है । तथा अनुकृत स्थिति विषयित्वा जीवाम द्वितन पत्रका स्वयं किया है । साकट अमखे० भाग और स्वयं साकट पत्रका स्वयं किया है ।

विशुद्धार्थ-सामान्य आदि तीन प्रकारके मनुष्यों में माहनीपदी कृत स्थितिपत्र जीवों का स्वयं साकट अमखे० भाग करने का कारण यह है कि ऐसे मनुष्य संग्रहण का हाथ है और इनका कृत स्थिति का स्वयं कारण कारणित्व मनुष्यात् परना मन्त्र नहीं जनः इनका हाथ प्रमाण स्वयं इसमें अधिक नहीं प्रमाण हाथ । किन्तु स्वयं तीन प्रकारके मनुष्यों का वनमान स्वयं साकट अमखे० भाग और अमानकारीन स्वयं स्वयं साकट वनसाया है या माहनीपदी अनुकृत स्थिति का स्वयं संग्रहण है अतः अनुकृत स्थिति का हाथ तीन प्रकारके मनुष्यों का स्वयं वनमान प्रमाण है ।

॥ १०४ ॥ दोषों में माहनीपदी कृत और अनुकृत स्थिति विषयित्वा जीवों में द्वितन पत्रका स्वयं किया है । साकट अमखे० भाग पत्रका तथा प्रमत्तादी चौर भागों में स्वयं कृत अह और अनुकृत नी सागप्रमाण पत्रका स्वयं किया है । इसी प्रकार सागप्रमाण पत्रका स्वयं कृत दोषों में स्वयं पथिय । अमानकारी प्रमाण और स्थिति दोषों में माहनीपदी कृत और अनुकृत स्थिति विषयित्वा जीवों में द्वितन पत्रका स्वयं किया है । साकट अमखे० भाग पत्रका तथा प्रमत्तादी चौर भागों में स्वयं कृत अह और अनुकृत नी सागप्रमाण पत्रका स्वयं किया है । मनुष्यमात्र ही मनुष्य स्वयं कृत हाथ में माहनीपदी कृत और अनुकृत स्थिति विषयित्वा जीवों में द्वितन पत्रका स्वयं किया है । साकट अमखे० भाग पत्रका और प्रमत्तादी चौर भागों में स्वयं कृत अह और अनुकृत नी सागप्रमाण पत्रका स्वयं किया है । अमानकारी पत्रका और अनुकृत पत्रका दोषों में माहनीपदी कृत स्थिति विषयित्वा जीवों में द्वितन पत्रका स्वयं किया है । तथा स्वयं दोषों में माहनीपदी अनुकृत स्थिति विषयित्वा जीवों में द्वितन पत्रका स्वयं किया है । साकट अमखे० भाग पत्रका और प्रमत्तादी चौर भागों में स्वयं कृत अह और अनुकृत नी सागप्रमाण पत्रका स्वयं किया है ।

छचोहस भागा वा देसूणा । उवरि खेत्तभगो । एवं औरालियमिस्स- वेउव्वियमिस्स-  
आहार-आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-  
सुहुम०-जहाक्खवाद०-संजदे त्ति ।

§ १२५. एइंदिय० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो णव  
चोइसभागा वा देसूणा । अणुक्क० सव्वलोगो । एवं वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्ज० ।  
सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-वादरेइंदियअपज्ज० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? लोगस्स  
असंखे० भागो सव्वलोगो वा । अणुक्क० सव्वलोगो । एवं पंचकाय-सुहुम-पज्जत्तापज्ज-  
त्ताणं ।

है । अच्युत स्वर्गके ऊपर देवोंके स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अर्थात् नौमेयक  
आदिके देवोंके समान औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी,  
आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिरुसयत, छेदोपस्था-  
पनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**ब्रह्माण आदिमें सामान्य देवोंका व भवनवासी आदि देवोंका जो वर्तमान-  
कालीन व अतीतकालीन स्पर्श बतलाया है वही यहा उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट स्थितिवाले उक्त देवोंका  
स्पर्श जानना चाहिये जो मूलमें बतलाया ही है । अन्तर केवल आनतादिक चार कल्पोंके देवोंमें  
उत्कृष्ट स्थितिवालोंने स्पर्शमें है । बात यह है कि आनतादिक चार कल्पोंमें जो द्रव्यलिंगी मुनि  
उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है और इनके अतीतकालीन  
स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह राजु विहार आदिके समय प्राप्त होता है । इस प्रकार आनतादिकमें  
मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंने वर्तमान व अतीत स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण  
ही प्राप्त होता है । मूलमें औदारिकमिश्र आदि मार्गणाओंमें इसी प्रकार है यह बतलाया है सो  
इसका भाव यह है कि इन मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट स्थितिवालोंने स्पर्श अपने अपने क्षेत्रके  
समान जानना चाहिये । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

§ १२५ एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श  
किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम नौ भाग  
प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण  
क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके जानना  
चाहिये । सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय  
अपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ?  
लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट  
स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार पाचों स्थावर-  
काय, पाचों स्थावरकाय सूक्ष्म, पाचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त और पाचों स्थावरकाय सूक्ष्म  
अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १२६ सव्यविगलितिय० मोह० उक्क० लो० असंसे० भागो । अणु०  
लो० असंसे० भागो सव्यलो० या । एवं पंचिदियअपज्ज०-तसअपज्ज० पचम्मं ।

§ १२७ पंचिदिय-पंचिदियपज्ज०-तस तसपज्ज० मोह० उक्क० ओपं । अणु०  
लो० असंसे० भागो अट्ठोहस भागो या देसुणा सव्यलो० या । एवं पंचमण०-  
पंचमणि० इत्थि०-पुरिस०-विहंग० चनसु -सण्णि पि ।

इस कम नौ बटे पोरह रसु बतलाया है । यहाँ तीसरी पृथिवीतक दो रसु और ऊपर सात रसु  
इस प्रकार नौ रसु लेना चाहिये । तथा अनुक्त स्थितिवाले एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये  
जाते हैं अतः इनका दोनों प्रकारका स्पर्श सब लोक कहा । बाहर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें वह व्यवस्था  
अधिकतः पणित हो जाती है इसलिये इनके स्पर्शका एकेन्द्रियोंके समान कहा । किन्तु इतनी  
बिधेयता है कि इनका सब लोक स्पष्ट मारणान्तिक और उपपादपक्की अपेक्षा ही जानना  
चाहिये । जो संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यक् और मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बच करके  
सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त तथा बाहर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न होते  
हैं क्योंकि पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । अब यदि इनके वर्तमान स्पर्शका  
विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण प्राप्त होता है और अतीत कालीन  
स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह सब लोक प्राप्त होता है । यही सब है कि यहाँ जन्त  
मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण और अतीत  
कालीन स्पर्श सब लोक प्रमाण बतलाया जाना सम्भव है अतः जन्त मार्गणाओंमें अनुक्त  
स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक कहा । यहाँ बाहर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका सब लोक स्पर्श  
उपपाद और मारणान्तिक पक्की अपेक्षा ही जानना चाहिये । पाँचों सूक्ष्म स्थावरकर्म आदि कुछ  
पेसी मार्गवाद हैं जिनमें वह व्यवस्था बन जाती है अतः इनके जन्तको एक प्रमाण कहा ।

§ १२६ सभी विकलेन्द्रिय जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विम्वितवाले जीवोंने लोकके  
असंख्यातवें माग क्षेत्रका तथा अनुक्त स्थितिविम्वितवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें माग  
क्षेत्र और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तक और त्रस  
सम्पपर्याप्तक जीवोंके कहा चाहिये ।

विशेषार्थ-सब विकलेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट स्थिति क्योंकि होती है जो संज्ञी तिर्यक् और मनुष्योंमेंसे  
बाहर यहाँ उत्पन्न होते हैं । अतः इनमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका दोनों प्रकारका स्पर्श लोकके असंख्यातवें  
मागप्रमाण कहा । तथा सब विकलेन्द्रियोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण है  
और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक है अतः इनमें अनुक्त स्थितिवालोंका दोनों प्रकारका स्पर्श  
एकप्रमाण कहा है । यही व्यवस्था पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्तकोंमें बन जाती है अतः  
इनके जन्तको सब विकलेन्द्रियोंके समान कहा ।

§ १२७ पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट  
स्थितिविम्वितवाले जीवोंका स्पर्श ओपके समान है । तथा अनुक्त स्थितिविम्वितवाले जीवोंका  
स्पर्श लोकका असंख्यातवें माग त्रसनालोके पोरह मार्गोंमेंसे कुछ कम आठ मागप्रमाण और सब  
लोक है । इसी प्रकार पाँचों मज्जोगी पाँचों बचमपोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी विम्विज्ञानी, चक्षु  
दरौनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-पंचन्द्रियादि चार मार्गणाओंमें अनुक्त स्थितिवालोंका स्पर्श तीन प्रकारका  
वतलाया है । लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण स्पर्श वर्तमानकर्मकी अपेक्षासे वतलाया है, क्योंकि



§ १२८ कायाणुवादेण पुढवि-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-आउ०-वादर-  
 आउ०—वादरआउपज्ज०—वणप्फदि-वादरवणप्फदि०-वादरवणप्फदिपत्तेय० तस्सेव  
 पज्ज० मोह० उक्क० एइदियभंगो । अणुक्क० सव्वलोगो । णवरि तिण्हं पज्जत्ताणं  
 मोह० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । वादरपुढविअपज्ज०-वादर  
 आउअपज्ज०—तेउ०—वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउ—  
 अपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो  
 वा । णवरि वादरपुढविअपज्ज० [ -वादरआउ०अपज्ज०- ] वादरतेउ०अपज्ज०-  
 [ वादरवाउअपज्ज०- ] वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्जत्ताणं सव्वलोगफोसणं णत्थि ।  
 अणुक्क० सव्वलोगो । वादरवाउ०पज्ज० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो  
 वा । अणुक्क० लोग० संखे०भागो सव्वलोगो वा । वादरतेउ०पज्ज० मोह० उक्क०  
 के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो । अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा ।

जितने क्षेत्रमें उक्त मार्गणावाले जीव निवास करते हैं । उनके वर्तमान क्षेत्रका प्रमाण लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक प्राप्त नहीं होता । कुछ कस आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्श विहारवत् स्वस्थान आदिकी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि इन जीवोंके ये पद दो राजु नीचे और छह राजु ऊपर इस प्रकार आठ राजु क्षेत्रमें ही पाये जाते हैं । तथा सब लोक प्रमाण स्पर्श मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षासे कहा है । कुछ और मार्गणाए हैं जिनमें उक्त व्यवस्था ही प्राप्त होती है । जैसे पाचों मनोयोगी आदि ।

§ १२८ कायमार्गणके अनुवादसे पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवी कायिक पर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिकपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन एकेन्द्रियोंके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन सब लोक है । इतनी विशेषता है कि उक्त तीन प्रकारके पर्याप्त जीवोंमें अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन लोकका असंख्यातवा भाग और सब लोक है । वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इतनी विशेषता है कि वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके सर्वलोक स्पर्शन नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्शन सब लोक है । वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके सख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । वादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

॥ १२६. बेतन्विय० उक्क० अणुक्क० के० खे० पो० १ खोग० असंखे० भागी  
मह-तेरह चौरस भागा वा देखूणा । कम्माइय० मोह० उक्क० खे० असं० भागी तेरह  
चौरसभागा वा देखूणा । [अणुक्क० सम्बलागो ।] आभिणि०-सुद०-भीहि० मोह० उक्क०  
अणुक्क० खे० असं० भागी महचौरस भागा वा देखूणा । एवमोहिदस० सम्मादि०-  
वेदय०-उवसम०-सम्माभि० ।

विशेषार्थ-यहां प्रविधीकायिक आदिमें उक्त स्थितिवालोंका स्पर्श एकेश्वरोंके समान  
वतसाथ ही अनुक्त स्थितिवालोंका स्पर्श अलगसे वतलाया है । इसका कारण यह है कि उपर्युक्त  
मार्गानुसारमेंसे कुछमें तो अनुक्त स्थितिवालोंका दोनों प्रकारका स्पर्श सब लोक बन जाता है  
पर उनके पश्चात्तर्षमें वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है क्योंकि  
बाह्यप्रविधीकायिक पश्चात्तर्ष आदि बीबोंमें वर्तमानमें लोकके असंख्यातमें भाग क्षेत्रका ही स्पर्श  
किया है । इस इतनी विशेषताके लिये ही उक्त मार्गानुसारमें अनुक्त स्थितिवालोंका स्पर्श  
अलगसे कहा है । बाह्य प्रविधीकायिक अपवाह आदि बीबोंमें माहनीयकी उक्त स्थिति वही  
बीबोंमें प्राप्त होती है वा संज्ञा तिर्यक् वा मनुष्य उक्त स्थिति वांछकर परचात् इन्में उत्पन्न होते  
हैं । जब यदि इनके वर्तमान और अतीत स्पर्शका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातमें  
भागप्रमाण ही प्राप्त होता है अतः यहां उक्त मार्गानुसारमें सब लोक प्रमाण स्पर्शका निवेदन किया  
है । यद्यपि बाह्य बायुकायिक पश्चात्तर्ष बीब लोकके संख्यातमें भागका और सब लोकका स्पर्श करत  
हैं किन्तु मोहनांशका उक्त स्थितिकी अपेक्षा जब विचार करते हैं तब उनका लोकके संख्यातमें  
भागके स्थानमें लोकका असंख्यातका भागप्रमाण ही स्पर्श प्राप्त होता है, क्योंकि जो संज्ञा  
पंचेश्वर पश्चात्तर्ष तिर्यक् वा मनुष्य माहनीयकी उक्त स्थितिका वर्णन करते परचात् बाह्य पश्चात्तर्ष  
बायुकायिकमें उत्पन्न होते हैं । उनका वर्तमान कालीन स्पर्शका भाग लोकका असंख्यातका भाग  
प्रमाण ही होता है । हां यदि अतीत कालीन उपपावका अपेक्षा इसका विचार करते हैं तो वह  
सब लोक बन जाता है ।

॥ १२६. वैश्विक कर्मयोगी बीबोंमें उक्त और अनुक्त स्थितिबिम्बिकासे बीबोंमें किन्तु  
क्षेत्रका स्पर्श किया है । लोकके असंख्यातमें भाग क्षेत्रका तथा प्रसन्नताकी चौरह भागोंमेंसे कुछ कम  
आठ भाग और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । कर्मयोग्ययोगियोंमें माहनीय  
का उक्त स्थिति विभाकेवाला बाबांन लोकके असंख्यातमें भाग और प्रसन्नताकी चौरह भागोंमें से  
कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुक्त स्थितिबिम्बिकासे बीबोंमें  
संज्ञाका क्षेत्रका स्पर्श किया है । आभिनिर्वाहकालीन, सुतकालीन और अश्विनीयकी बीबोंमें माहनीयकी  
उक्त और अनुक्त स्थितिबिम्बिकासे बाबांन लोकके असंख्यातमें भाग और प्रसन्नताकी  
चौरह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार अश्विनीयकी,  
सम्यग्दृष्टि, वरुणसम्यग्दृष्टि, अश्विनीयकी और सत्यगिर्महार्थादि बीबोंके स्थानका वर्णन ।

विशेषार्थ-वैश्विक कर्मयोगमें उक्त और अनुक्त स्थितिवालोंका स्पर्श तीन प्रकार  
का वतलाया है । लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण स्पर्श वर्तमानकालीन अपवाह वतलाया है,  
क्योंकि वैश्विककर्मयोगवालोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण ही है ।  
अतीतकालीन स्पर्श पश्चात्तर्षोंकी अपेक्षा वा प्रकारका है कुछ कम आठ बटे चौरह उक्त और  
कुछ कम तेरह बटे चौरह उक्त । इसमेंसे पहला विद्वान्, स्वप्नान्, वेदना, कथन और वैश्विक

§ १३० संजदासंजद-संजद० उक्क० खेतभंगो । अणुक्क० लोग० असंखे०-भागो छचोदस भागा वा देसूणा । एवं सुक्कले० । तेउले० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो ।

§ १३१ किण्ह०-णील०-काउ० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो छ-चदु-बे-चोदसभागा देसूणा । अणु० सन्वलो० ।

§ १३२ खइय० मोह० उक्क० खेतभंगो । अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोदस भागा वा देसूणा ।

§ १३३ सासण० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोदस भागा वा देसूणा । अणुक्क० अट्ठ-वारहचोदस भागा वा देसूणा । असण्णि० एइदियभंगो ।

पदोंकी अपेक्षा कहा है और दूसरा मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा कहा है । कर्मणकाययोगियोंका स्पर्श यद्यपि सब लोक है किन्तु यहा उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग है और अतीतकालीने स्पर्श कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु है, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति संज्ञी पर्याप्तके ही होती है । अब यदि ऐसे जीव दूसरे समयमें मरकर कर्मणकाययोगी होते हैं तो उनका वर्तमान स्पर्श लोके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिये यहा वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग कहा । तथा उत्कृष्ट स्थितिवाले कर्मणकाययोगियोंने अतीत कालमें नीचे कुछ कम छह राजु और ऊपर कुछ कम सात राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है अतः इनका अतीतकालीन स्पर्श कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु कहा । आभिनवोधिकज्ञानादि मार्गणाओंमें उस मार्गणाका जो स्पर्श है वही यहा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जानना चाहिये ।

§ १३०. सयतासयत जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्क-लेस्यावाले जीवोंका स्पर्श है । पीतलेस्यावाले जीवोंका स्पर्श सौधर्मके देवोंके समान है । तथा पद्मलेस्यावाले जीवोंका स्पर्श सहस्रार स्वर्गके देवोंके समान है ।

§ १३१. कृष्ण, नील और कापोत लेस्यावालोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागों में से कुछ कम छह, चार और दो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सवेलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३२. क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३३ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ

अणाहारि कम्मइयमंगो ।

एवं उक्कस्सपोसणाणुगमो समथो ।

‡ १३४ महण्णप पयदं । दुविहा णिवुदसो—ओपेण आदसेण य । तत्थ ओपेण मीह० सह० के० खे० पो० ? साग० असंखे० भागो । अज० सम्बसोमो । एवं काययोगि—ओराभि०—णखु स० वचारिक०—अचनखु० मनसि० आहारि पि ।

‡ १३५ आदेसेण णेरइय० मीह० जह० खेत्तमंगो । अज० अणुनकस्समंगो । पढयाण खेत्तमंगो । विदियादि खाव सत्तमि पि मोह० जह० खेत्तमंगा । अज० अणु नकस्स० मंगा ।

और कुछ कम बाह्य भागप्रमाण क्षेत्रका स्पष्ट किया है । असंखी बीजोंका स्पष्ट पकेन्द्रोंके समान है । तथा अनाहारी बीजोंका स्पष्ट कर्मणकावयोगियोंके समान है ।

विशेषार्थ—संभतासंयतके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति इन गुणास्थानोंको प्राप्त होनेके पहले समयमें होती है पर उस समय मारणात्मिक समुत्पात सम्प्रथ नहीं अतः इन दोनों मार्गस्थानोंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पष्ट होकरके असंख्यातवें भाग कहा है और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पष्ट इन मार्गस्थानोंके स्पष्टके समान ही कहा है । कृष्ण रक्त्यामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पष्ट सातवें नरककी मुख्यतासे, नील रक्त्यामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पष्ट पांचवें नरककी मुख्यतासे और कापोत रक्त्यामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पष्ट तीसरे नरककी मुख्यतासे कहा है । सासारानोंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जो कुछ कम आठ वने बीहड़ राखु स्पष्ट उत्तमाया ह वह वृक्षोंकी प्रधानतासे कहा है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थानानुगम समाप्त हुआ ।

‡ १३६ अथ अजपन्य स्थानानुगमका प्रकरण है । उसकी अपवा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेष्टनिर्देश । उनमेंसे ओप निर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी अजपन्य स्थिति विमर्शिताले बीजोंने कितन क्षेत्रका स्पष्ट किया है ? जोकरके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पष्ट किया है । तथा अजपन्य स्थितिविमर्शिताले बीजोंने सर्वत्राक क्षेत्रका स्पष्ट किया है । इसी प्रकार काययोगी औत्तरिककाययोगी तपुसज्ज्वरी क्षेत्रादि बारों कयायवाले, अचक्षुर्दृष्टनी भव्य और आहारक बीजोंके कदापि आदिपे ।

विशेषार्थ—ओपसे मोहनीयकी अजपन्य स्थिति चक्रमणिमें प्राप्त होती है और अपकोंका स्पष्ट होकरके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है अतः यहाँ ओपसे अजपन्य स्थितिवालोंका स्पष्ट होकरके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । तथा अजपन्य स्थितिवालोंका स्पष्ट सब लोक है यह स्पष्ट ही है । मूलमें गिनार्य गार्ह अजपयोगी आदि कुछ धंसी मार्गणार्थ हैं जिनमें ओपके समाप्त स्पष्ट बन जाता है अतः इनके कर्मनकी ओपके समान कहा ।

‡ १३७ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा मारकियोंमें मोहनीयकी अजपन्य स्थितिविमर्शिताले बीजों का स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा अजपन्य स्थितिविमर्शिताले बीजोंका स्पष्ट अनुत्कृष्ट स्थिति विमर्शिताले बीजोंके समान है । पहली पृथिवीमें स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके मारकियोंमें मारणीयकी अजपन्य स्थितिविमर्शिताले बीजोंका स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा अजपन्य स्थितिविमर्शिताले बीजोंका स्पष्ट अनुत्कृष्ट स्थितिविमर्शिताले बीजोंके स्पष्टके समान है ।

§ १३६, तिरिक्ख० मोह० जह० अजह० के० खे० पोसिदं ? सव्वलोगो । एवं सव्वेइंदिय-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त - तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ-वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज-सुहुम-वाउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय०-तस्सेव अपज्ज०-सव्ववणप्फदि०-सव्वणि-गोद०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-मदिअण्णाण-सुदअण्णाण-असंजद-तिणिले०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि ति । एत्थ खेत्तम्मि भणिदविहाणेण मूलुच्चारणाए पाठ-भेदो अणुगंतव्वो । तदहिप्पाएण तिरिक्खेसु लोगस्स असंखे० भागमेत्तपोसणुवलंभादो ।

**विशेषार्थः**--नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । संश्र भी उतना ही प्राप्त होता है, क्योंकि जो असंज्ञी नरकमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं नारकियोंके विग्रहके दूसरे समयमें जघन्य स्थिति होती है । किन्तु असंज्ञी जीव पहले नरकमें ही उत्पन्न होते हैं और पहले नरकका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं है अतः सामान्यसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है । अजघन्य स्थितिवालोंमें जघन्य स्थितिवालोंको छोड़कर शेष सबका समावेश हो जाता है अतः सामान्यसे अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बतलाया है । पहली पृथिवीके नारकियोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान ही है अतः यहा पहली पृथिवीके जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले नारकियोंका स्पर्श क्षेत्रके समान कहा है । दूसरेसे लेकर छठे नरक तक जघन्य स्थिति उन सम्यग्दृष्टि नारकियोंके अन्तिम समयमें हाती है जिन्होंने नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना कर ली है । तथा सातवें नरकमें उन मिथ्यादृष्टि नारकियोंके होती है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहे हैं पर अन्तमें मिथ्यादृष्टि हो गये हैं । अब यदि इन जीवोंके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असख्यातवें भाग-प्रमाण ही प्राप्त होता है और इन द्वितीयादि नरकोंके नारकियोंका क्षेत्र भी इतना ही है अतः उक्त नरकोंमें जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोंके स्पर्शका खुलासा जैसा ऊपर कर आये हैं उसी प्रकार यहा भी कर लेना चाहिये ।

§ १३६ तिर्य्यचगतिमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्नि-कायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादरवायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायु-कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, औदारिक, निम्नकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, इन्द्रिय, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । यहा पर क्षेत्रानुगममें कही

§ १३७ सम्बन्धविधिविरिक्तत्वात् नह० खेतमर्गो । अन्न० अणुकस्समर्गो । एवं सम्बन्धशुभ० ।

§ १३८ देव० मोह० ख० खेतमर्गो । अन्न० अणुकस्समर्गो । मयणादि आभ्यारणन्तुदे चि नह० खेतमर्गो । अन्न० अणुकस्समर्गो । तयारि खेतमर्गो । एवं देवमिषमिस्त० आहार०—आहारमिस्त०—अभयद०—अकसा० मणपञ्च०—संभद०—सामाहय भेदो० परिहार०—सुदुम—जहाकसादसंजदे चि ।

गई विधिसे मूलेच्छायाके अनुसार पाठभेद जान लेना चाहिये । इसके अभिप्रायानुसार तिर्यचोंमें लोकका असंख्याततां मतमात्र स्पष्टन पाया जाता है ।

विशेषार्थ—तिर्यचोंमें मोहनीयकी अचम्य स्थिति एकेन्द्रियोंकी होती है तथा अचम्य स्थितिवालोंमें भी एकेन्द्रिय ही मुख्य हैं और वे सब लोकमें पाये जाते हैं अतः तिर्यचोंमें अचम्य और अचम्य स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक वतलाया है । इसी प्रकार मूलमें जो सब एकेन्द्रिय आदि मागण्याप गितार्थ हैं उनमें भी तिर्यचोंके समान जानना चाहिये । किन्तु मूल व्याख्यानमें इन सबका अचम्य स्थिती लोकके असंख्याततां मागण्या वतलाया है । सो वह स्वस्थानस्वस्थान पदकी अपेक्षा जानना चाहिये ।

§ १३७ समी पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें मोहनीयकी अचम्य स्थितिबिम्बित्वाले बीबोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अचम्य स्थितिबिम्बित्वाले बीबोंका स्पर्श अनुकृत स्थितिबिम्बित्वाले बीबोंके समान है । इसी प्रकार समी मनुष्योंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय आदि तिर्यचोंमें मोहनीयकी अचम्य स्थिति कहीं तिर्यचोंके पक्षे और दूसरे विग्रहमें होती है जो एकेन्द्रिय पक्षोंसे आकर उक्त तिर्यच रूप हैं । अब यदि इनके क्षेत्रका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्याततां मागण्या प्राप्त होता है । स्पर्शमें भी इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता, अतः सब प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें अचम्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान वतलाया है । तथा अचम्य स्थितिवालोंका मग अनुकृतके समान वतलानेका कारण यह है कि अचम्य स्थितिमें अचम्य स्थितिको जोड़कर दोर सब स्थितियोंका प्रत्यक्ष हो जाता है और इसलिये इनका स्पर्श अनुकृतके समान बन जाता है । सब मनुष्योंके भी इसी प्रकार स्पर्शनेका कथन करना चाहिये । इसका यह तात्पर्य है कि सब प्रकारके मनुष्योंमें अचम्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है और अचम्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुकृत स्थितिवालोंके स्पर्शके समान है ।

§ १३८ क्षेत्रोंमें मोहनीयकी अचम्य स्थितिबिम्बित्वाले बीबोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अचम्य स्थितिबिम्बित्वाले बीबोंका स्पर्श अनुकृत स्थितिबिम्बित्वाले क्षेत्रोंके स्पर्शके समान है । मयणादिबोसे लेकर आकर अचम्य स्वर्ग तकके क्षेत्रोंमें अचम्य स्थितिबिम्बित्वाले बीबोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अचम्य स्थितिबिम्बित्वाले उक्त क्षेत्रोंका स्पर्श अनुकृत स्थिति बिम्बित्वाले उक्त क्षेत्रोंके स्पर्शके समान है । अचम्य स्वर्गके ऊपर स्पर्श क्षेत्रके समान है । इस प्रकार वैश्विकमिषमयवागी, आहारकमयवागी, आहारकमिषमयवागी, अचम्यवेदी अत पायी मन्त्रपर्ययजानी संयत सामाधिकसंयत क्षेत्रोपस्थानासंयत, परित्वादिद्विसंयत सूक्ष्म-सांयदिकसंयत और यथाक्यातसंयत बीबोंके जानना चाहिये ।

§ १३६ सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज-० तसअपज्ज० पंचिदियतिरिक्खअप-  
ज्जत्तभंगो । पंचि- [पंचि-] पज्ज०-तस०-तसपज्ज० मोह० जह० खेत्तभंगो । अज०  
अणुक्कस्सभंगो । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-  
सण्णि त्ति ।

§ १४०, वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्ते य  
पज्ज० मोह० ज० अज० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । वादरवाउपज्ज०  
मोह० ज० अज० लोग० संखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ।

§ १४१, वेउव्विय० मोह० जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो । एव-  
माभिणि०-सुद०-ओहि०-सज्जदासंजद०-ओहिदंस०-तिणिले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-  
उवसम०-सासण०-सम्मामि० ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

§ १४२ कालाणुगमो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं ।  
दुविहो णिहोसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्क० केवचिर कालादो ?

§ १३६ सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रसअपर्याप्त जीवोंमें स्पर्श पंचे-  
न्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्तकोंके समान है । पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें  
मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थिति-  
विभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्श उन्हींके अनुत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पाचों  
वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभगज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १४० वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक  
पर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अज-  
घन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।  
वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने  
लोकके सख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १४१ वैक्रियिकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श  
उनके क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्श उनके अनुत्कृष्ट  
स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शके समान है । इसी प्रकार आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी,  
अवधिज्ञानी, सयतासयत, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि,  
वेदगसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।  
इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ १४२ कालानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट कालानुगमका  
प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी

१—प्रती अज० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । वादरवाउपज्ज० अणुक्कस्सभंगो  
इति पाठः ।

जह० एगसमभो, उक्त० पम्बिदा० असंखे० भागो । अणुक० के० ? सम्बदा । एवं  
सम्बधिरय-तिरिक्त-पंचिदियतिरिक्ततिय-ट्रेय भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिदिय  
पंचि० पञ्ज०-तस-ससपञ्ज०-पंचमण०-यननधि-कायजोगि०-ओरासिय०-वेरधिय०  
तिभिणवेद० चचारिक०-मदि-मुदअण्णाण०-विईग०-असंमद०-बक्सु० अचक्सु०-यंच  
से० भवसि० अमवसि०-मिच्छाईहि-सण्णि आहारि पि ?

§ १४३ पंचिदियतिरि० अपञ्ज० मोह उक्त० केव ? जह० एगसमभो, उक्त०  
आवलि० असंखे० भागो । अणुक० सम्बदा । एवं सम्बधिरय-सम्बधिरयिदिय पंचि  
दियअपञ्ज०-यंचकाय०-तसअपञ्ज० ओरासियमिस्स०-कम्मइय० आमिणि०-मुद०  
मोहि०-संमदासंमद-ओरिदंस०-मुक्त०-सम्मादि०-वेदय० असण्णि-अणाहारि पि ।

§ १४४ मणुसतिय० मोह० उक्त० के० ? जह० एगसमभो, उक्त० अंतोमुहुत्तं ।  
अणुक० सम्बदा । मणुसअपञ्ज० मोह० उक्त० के० ? जह० एगसमभो, उक्त०  
आवलि० असंखे० भागो । अणुक० के० ? जह० खुदामवगइणं समउणं । उक्त०  
पम्बिदा० असंखे० भागो । आणदादि जाव सम्बह० मोह० उक्त० केव ? ज० एग-

अपेदा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विमणितबाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? अथवा सत्त्वकाल  
एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल परबके असंख्यातवें मागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति-  
विमणितबाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? सबैसा है । इसी प्रकार सभी नारकी, सामान्य  
तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पंचन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय योनिमयी तिर्यंच सामान्य देव भव-  
वासियोंसे लेकर स्वर्गात्तर स्तरी तकके देव पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस त्रसपर्याप्त पांचों  
मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, कर्मयोगी औदारिककाययोगी, वैदिकिकाययोगी, तीनों धरबाले  
क्षेपादि चारों कपात्यबाले मत्प्राणी भूतप्राणी विसंग्राहणी असंयत पञ्चदशैनी अचक्षुर्दृष्टैनी  
हृन्म आदि पांच शेरबाबाले भव्य अमम्य मिध्यातटि, संकी और अनाहारक जीवोंके कइना  
चाहिये ।

§ १४३ पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट विमणितबाले जीवोंका सत्त्व  
काल कितना है ? अथवा सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आबलीके असंख्यातवें माग-  
प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विमणितबाले जीवोंका सत्त्वकाल सबैसा है । इसी प्रकार सभी पंचे-  
न्द्रिय सभी विकसेन्द्रिय पंचेन्द्रिय अपर्याप्त पांचों स्थावरकाय त्रस जन्मर्याप्त औदारिकमिश्र  
अययोगी कर्मक्षेत्रावयोगी आमिनिबोधिप्राणी, जतप्राणी, अचक्षिप्राणी संपतासंबत अचक्षिर्दृष्टैनी  
हृन्मज्जैस्याबाले सम्बन्धित, वेदकसम्बन्धित, असंकी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १४४ सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें  
मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विमणितबाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? अथवा एक समय और उत्कृष्ट  
अनुत्कृष्ट है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विमणितबाले जीवोंका सत्त्वकाल सबैसा है । सम्बन्धपर्याप्तक मनु-  
ष्योंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विमणितबाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? अथवा एक समय और  
उत्कृष्ट आबलीके असंख्यातवें मागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विमणितबाले जीवोंका सत्त्वकाल  
कितना है । अथवा एक समय कम खुदामवगइणमाय और उत्कृष्ट परमोपमके असंख्यातवें



समओ, उक्क० संखेज्जा समया । अणुक्क० सव्वद्धा । एवं मणपज्ज०-संजद०-सामा-  
इय-छेदो०-परिहार०-खइयसम्भाइहि ति ।

§ १४५ वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क०  
आवलि० असंखे० भागो । अणुक्क० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।  
एवमुवसम०-सम्माभि० वत्तव्वं ।

§ १४६ अवगद० मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया ।  
अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमकसा०-सुहुमसांपरा०-जहक्खादे ति ।  
[ एवं आहार०-आहारमि० । णवरि आहारमि० अणुक्क० जह० अंतोमु० । ]

§ १४७ सासण० मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०-  
भागो । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।  
एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

भागप्रमाण है । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति-  
वाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट सख्यात समय है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, सयत,  
सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत और क्षायिकसन्त्यगृष्टि जीवोंके जानना  
चाहिये ।

§ १४५ वैक्यिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका  
सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलीके असख्यातवें भाग प्रमाण है ।  
तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल  
पल्योपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार उपशमसम्यगृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि  
जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १४६ अपगतवेदियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल  
एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल सख्यात समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका  
जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार अकपायी,  
सूक्ष्मसांपरायिकसयत और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिए । इसी प्रकार आहारक व  
आहारकमिश्रकाययोगियोंके जानना चाहिए । परन्तु आहारकमिश्रकाययोगमें अनुत्कृष्ट स्थिति  
बिभक्तिवालोंका जघन्य सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है ।

§ १४७ सासादनसम्यगृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका  
जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल  
पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**--नाना जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कमसे कम एक समय तक  
और अधिकसे अधिक पल्यके असख्यातवें भाग कालतक होता है । इसके पश्चात् एक भी जीव  
मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला नहीं रहता, इसलिए नाना जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकी

उक्त स्थिति का बचन्यकाल एक समय और उक्त काल पक्षके असेस्मातवें भागप्रमाण का। सामान्य मारकी आदि कुछ ऐसी मार्ग्याओं हैं जिनमें यह ओषधप्रत्यक्षा अविकल घटित होती है, अतः उनकी प्रत्यक्षाओ ओषधके समान कहा। उन मार्ग्याओंके नाम मूलमें गिनाने ही हैं। इनके अतिरिक्त और जितनी मार्ग्याएँ हैं उनमेंसे आठ साम्तर मार्ग्याओंको तथा अपगतवेध अक्षय्य और वषास्मातसंयत इन तीन मार्ग्याओंको छोड़कर शेष सब मार्ग्याओंमें अनुक्त स्थिति का उक्तकाल सर्वथा है, क्योंकि इनमें अनुक्त स्थिति का अन्तरकाल नहीं पाया जाता। तथा उक्त स्थिति का बचन्यकाल एक समय है क्योंकि इन मार्ग्याओंमें एक समयतक उक्त स्थिति प्राप्त होकर दूसरे समयमें उसका बिच्छु सम्भव है। हाँ इनमें उक्तकाल भिन्न भिन्न प्रकार पाया जाता है जिसका निर्देश मूलमें किया ही है। फिर भी यहाँ उसके कारणका संक्षेपमें विचार कर लेते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यङ्ग लक्ष्यपर्याप्तकोंमें एक बीबकी अपेक्षा उक्त काल एक समय बतलाया है। अब यदि नाना बीब निरन्तर उक्त स्थिति के धारक हों तो वे आबलिके असेस्मातवें भागप्रमाण काल तक ही होंगे इसके बाद इनमें उक्त स्थिति निम्नसे अन्तरकाल आ जाता है अतः इनमें उक्तस्थिति का उक्त काल आबलिके असेस्मातवें भागप्रमाण का। मूलमें निर्दिष्ट सब पंचेन्द्रिय आदि कुछ मार्ग्याओंकी स्थिति इसी प्रकारकी है अतः इनमें भी उक्त स्थिति का उक्त काल उक्तप्रमाण का। सामान्य आदि तीन प्रकारके मनुष्योंमें एक बीबकी अपेक्षा उक्त स्थिति का उक्त काल अन्तमु हुत्त है। परन्तु इनका प्रमाण संस्मात है अतः लगातार संस्मात नाना बीब भी कमका यदि उक्त स्थिति के धारक हों तो भी उस सब कालका बीब अन्तमु हुत्तसे अधिक नहीं होगा। यही कारण है कि इनमें उक्त स्थिति का उक्त काल अन्तमु हुत्त का। यद्यपि सामान्य मनुष्योंकी संख्या असेस्मात है फिर भी यहाँ उक्त स्थिति के प्रकरणमें सामान्य मनुष्योंमें लक्ष्यपर्याप्त मनुष्य प्रधान नहीं हैं। आन्तरिक कर्णोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही उक्त स्थिति सम्भव है जिसका काल एक समय है और वहाँ मनुष्य बीब ही भरकर उत्पन्न होते हैं। अब यदि आन्तरिक कर्णोंमें उक्त स्थितिवाले बीब लगातार उत्पन्न हों तो संस्मात समय तक ही उत्पन्न हो सकते हैं क्योंकि इनमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य ही संस्मात हैं। अतः इनमें उक्त स्थिति का उक्त काल संस्मात समय का। यही बात मनुष्यजान आदि मूलमें गिनाने गई शेष मार्ग्याओंमें जानना चाहिए। अब यही साम्तर मार्ग्याओं और अपगत वेध आदि तीन मार्ग्याओंकी बात। जो इनमें कालका गुणासा निम्न प्रकार है—लक्ष्यपर्याप्त मनुष्योंमें एक बीबकी अपेक्षा उक्त स्थिति का बचन्य और उक्त काल एक समय बतलाया है। अब यदि अन्तरके बीब नाना बीब एक साथ उक्त स्थिति के धारक हुए तो दूसरे समयमें उनकी निम्नसे अनुक्त स्थिति हो जायगी अतः लक्ष्यपर्याप्त मनुष्योंमें माना बीबोंकी अपेक्षा भी उक्त स्थिति का बचन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। यही बात शेष मार्ग्याओंमें जान लेना चाहिए। लक्ष्यपर्याप्त मनुष्य यदि निरन्तर उक्त स्थिति के धारक होते रहें तो आबलिके असेस्मातवें भाग प्रमाण काल तक ही होंगे अतः इनमें उक्त स्थिति का उक्तकाल आबलिके असेस्मातवें भागप्रमाण का। यही बात वैदिकविधिमाकायोगी, वषासम्पदघटित सम्बन्धित घटित और सासाधनसम्पदघटित मार्ग्याओंके विषयमें जानना चाहिए। तथा उक्त स्थिति के धारक लक्ष्यपर्याप्त मनुष्य एक साथ उत्पन्न हुए और दूसरे समयसे उनका उत्पन्न होना ही बन्द हो गया तो लक्ष्यपर्याप्त मनुष्योंमें अनुक्त स्थिति का बचन्यकाल एक समय कम सुरामयप्रमाण प्रमाण प्राप्त होगा। तथा लक्ष्यपर्याप्त मनुष्योंका उक्तकाल पक्षके असेस्मातवें भागप्रमाण है अतः इनमें अनुक्त स्थिति का उक्तकाल भी इतना ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार वैदिकविधिमाकायोगी, वषासम्पदघटित और सासाधनसम्पदघटितके अनुक्त स्थिति का उक्त

§ १४८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण० मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा सामया । अज० सवद्धा । एवं विट्ठियादि जाव छट्ठि त्ति मणुसतिय-जोडिसियादि जाव सव्वट्ठ०-पंचिण्डिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेडव्विय०--तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-आभिणि०-मुद०-ओहि०--मणपज्ज०-विहंग०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंसण०-तिण्णिले०-भवसि०-सम्मादि०-वेदय०-खइय०-सण्णि०-आहारि० त्ति ।

§ १४९. आदेसेण णेरइयेसु मोह० जह० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०-भागो । अज० केव० ? सव्वद्धा । एवं पढमाए । एवं सव्वपंचिण्डियतिरिक्ख-देव०-भवण०-वाण०-सव्वविगल्लिदिय-पंचि०अपज्ज०-तसअपज्ज० वत्तव्व । सत्तमाए० मोह०

काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण जानना । नाना जीवोंकी अपेक्षा भी वैकृतियरुमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जगन्मकाल अन्तमुहूर्त है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा । यदि मनुष्य उपशमश्रेणी पर निरन्तर बढें तो सख्यात समय तक ही चढेंगे और उन सबके कालका जोड़ अन्तमुहूर्त ही होगा अतः अपगतवेद, अकपाय, सूक्ष्मसम्परायसयम और यथाख्यातसयमसे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल सख्यात समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । सासादनसम्यक्त्वका जघन्यकाल एक समय है अतः इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ १४८ अब जघन्य कालानुगमका प्रकरण है । उसकी उपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल सख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है । इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैकृतियरु काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, आभिनवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन, पर्ययज्ञानी, विमंगज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सयतासयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, संह्री और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १४९ आदेश निर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? सर्वदा है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये । सातवीं पृथिवीमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्ति

मह० म० एगसमओ, उक्क० पसिदो० असंखे० मागो । अज० सम्बद्धा ।

§ १५० तिरिक्त्त० मोह० जह० अज० सम्बद्धा । एनं सम्बद्धादिय पुडवि० वादरपुडवि०-वादरपुडविअपज्ज०-सुहुमपुडवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आठ०-वादरमाठ०-वादरमाउअपज्ज०-सुहुममाठ०-पज्जत्तापज्जत्त-तेठ०-[वादरतउ०]-[वादरतेठअपज्ज०-सुहुमतठ०-पज्जत्तापज्जत्त-माठ०-वादरमाठ०-वादरमाउअपज्ज०-सुहुममाठ०-पज्जत्तापज्जत्त-वादर-वणप्फदिपत्तेय तस्सव अपज्ज०-सम्बवणप्फदि-सम्बणिगाद्-ओरासियमिस्स०-कम्मइय० मदि सुद्धअण्णाण-असज्जत्त तिणिले०-अमवसि० पिच्छादि० असणि० अणाहारि ति ।

§ १५१ मणुसअपज्ज० मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० आवसि० असंखे० मागो । अम० के ? जह० सुशामवमार्हणं विसमउणं एगसमओ वा, उक्क० पसिदो० असंखे० मागो ।

§ १५२ चत्तारिकापवादरपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज० जह० ज० एगसमओ, उक्क० पसिदो० असंखे० मागो । अज० सम्बद्धा ।

बाल बौद्धोंका जपन्य सत्त्वकाज एक समय है और छहस सत्त्वकाज पस्सोपमका असंख्यातर्षो भाग है । तथा अजपन्य स्थितिविमर्शिताले बीबोंका सत्त्वकाज सर्वथा है ।

§ १५ तिरिक्त्तोंमें मोहनीयकी जपन्य और अजपन्य स्थितिविमर्शिताले बीबोंका सत्त्वकाज सर्वथा है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वायु पृथिवीकायिक, वायु पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पक्षात् सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जल कायिक वायु जलकायिक, वायु जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त अग्निकायिक, वायु अग्निकायिक, वायु अग्निकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त वायुकायिक वायु वायुकायिक, वायु वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वायु वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर, वायु वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर अपर्याप्त सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगाव औदारिकमित्रकाययोगी कामैणअभयोगी, मत्पञ्चानी, मुठपञ्चानी असंखत, कृष्ण आदि तीन लेखपात्राले, अमक्य, पिच्छादि, असंखी और अनन्तारक बीबाके जानना चाहिये ।

§ १५१ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी जपन्य स्थितिविमर्शिताले बीबोंका जपन्य सत्त्वकाज एक समय है और छहस सत्त्वकाज आबलीका असंख्यातर्षो भाग है । तथा अजपन्य स्थितिविमर्शिताले बीबोंका सत्त्वकाज कितना है ? जपन्य दो समय कम सुशामवमार्हण्य प्रमाण वा एक समय है और छहस पस्सोपमका असंख्यातर्षो भाग है ।

§ १५२ पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय वायु पर्याप्त और वायु वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर पर्याप्त बीबोंमें मोहनीयकी जपन्य स्थितिविमर्शिताले बीबोंका जपन्य सत्त्वकाज एक समय है और छहस सत्त्वकाज पस्सोपमका असंख्यातर्षो भाग है । तथा अजपन्य स्थितिविमर्शिताले बीबोंका सत्त्वकाज सर्वथा है ।

§ १५३ वेउन्वियमिस्स० मोह० जह० केव० ? ज० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अज० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एवमुवसम०-सम्माभि० वत्तन्वं । आहार० मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अज० ज० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद० अकसा०-मुहुम०-जहामवाद०-संजदे त्ति । आहारमिस्स० मोह० जह० [ज०] एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु० ।

§ १५४ सासण० मो० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अज० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।

### एव कालाणुगमो समत्तो ।

§ १५३. वैकियिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका कितना सत्त्वकाल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपमका असंख्यातवा भाग है । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । आहारककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकपायी, सूक्ष्मसापरायिकसयत और यथाख्यात-सयत जीवोंके कहना चाहिये । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ १५४ सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—मोहनीयकी जघन्य सत्त्वस्थिति क्षणिक सूक्ष्मसापरायिक जीवके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है । तथा क्षणिकश्रेणी पर चढ़नेका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है, अतः ओपसे जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा । ओपसे अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है । मूलमें दूसरीसे लेकर छठवीं पृथिवी तकके नारकी, मनुष्यत्रिक आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ गिनार्ह हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओपके समान बन जाता है । इसके कारण भिन्न भिन्न हैं । दूसरी पृथिवीसे लेकर नारकियोंमें और ज्योतिषियोंमें तो यह कारण है कि जो उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हों और उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालमें सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर लें, उनके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति होती है । ऐसे जीव मरकर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होंगे अतः उनका प्रमाण संख्यात ही होगा । यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा । सर्वार्थसिद्धि और वैकियिककाययोगमें भी करीब इसी प्रकारका कारण जानना चाहिये । विभगज्ञानमें यह कारण है कि चौथीस प्रकृतियोंकी सत्ता-वाला उपरिम प्रवेयकका देव यदि अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें मिध्यात्वको प्राप्त होता है तो उस

विमंगलानीके अन्तिम समयमें जपन्य स्थिति पाई जाती है। य मरकर मनुष्योंमें ही उत्तरम होते हैं, अतः इनके भी जपन्य स्थितिका जपन्य और उत्कृष्टकाल एक प्रमाण प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त जो दोन मार्गोपाय गिनाई हैं उनकी जपन्य स्थिति मनुष्य पञ्चायमें ही प्राप्त होती है अतः उनमें भी जपन्य स्थितिका जपन्य और उत्कृष्टकाल एक प्रमाण बड़ा। तथा इन सब मार्गोपायोंमें अजपन्य स्थितिका काल सर्वथा है वह स्पष्ट ही है। नारदियोंमें एक जीव को अपेक्षा जपन्य स्थितिका जपन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अथ यदि इनमें नाना जीव जपन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आपत्तिके असे क्पातवें भागप्रमाणानुसृत तक ही होंगे अतः इनमें जपन्य स्थितिका जपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आपत्तिके असे क्पातवें भागप्रमाण बड़ा। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारदी आदि मार्गोपायोंमें जानना चाहिये किनका निर्वैक मूलमें किया ही है। सातवीं पृथिवीमें एक जीवको अपेक्षा जपन्य स्थितिका जपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा जपन्य स्थितिका जपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पत्न्यके असे क्पातवें भागप्रमाण वन जाता है। तिर्यचोंमें जपन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण भी अनन्त है, अतः यहां जपन्य स्थितिका काल सर्वथा बड़ा। मूलमें सब पदेन्द्रिय आदि और त्रितनी मार्गोपाय गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार समझना चाहिये। यद्यपि इनमें बहुतसी मार्गोपायोंमें जीवोंका प्रमाण असे क्पात है फिर भी वह संख्या बहुत बड़ी है अतः उनमें अजपन्य स्थितिवालोंका काल सबदा मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं आती। सकलपञ्चायक मनुष्योंमें मोहनीयकी जपन्य स्थिति विमर्शिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक जीवकी अपेक्षासे एक समय है। यदि इनमें नाना जीव जपन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आपत्तिके असे क्पातवें भाग कालतक ही होंगे। अतः इनमें जपन्य स्थितिका जपन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट आपत्तिके असे क्पातवें भाग बड़ा। जो पदेन्द्रिय जीव दो विमर्शके साव सकलपञ्चायक मनुष्योंमें उत्पन्न हो रहा है उसके प्रथम विमर्शमें अजपन्य स्थिति होकर दूसरे समयमें जपन्य स्थिति हागी और विमर्शके वा समय सुरामभ्यस्य प्रमाण आयुमेंसे कम कर देने पर दोन आयुका काल भी अजपन्य स्थितिका है अतः अजपन्य स्थितिका जपन्यकाल एक समय वा वा समय कम सुरामभ्यस्य प्रमाण बड़ा है। सकलपञ्चायक मनुष्य सन्तर मार्गोपा है किञ्चन उत्कृष्ट काल पत्न्योपमके असे क्पातवें भाग मात्र है अतः अजपन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल पञ्चायकका असे क्पातवें भाग बड़ा। वादर पृथिवीकाधिक आदि पञ्चायकोंमें एक जीवकी अपेक्षा जपन्य स्थितिका जपन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। यदि इनमें नाना जीव जपन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक पञ्चायकके असे क्पातवें भाग काल तक होंगे अतः इनकी जपन्य स्थितिका जपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पत्न्योपमका असे क्पातवें भाग बड़ा है। वैकल्पिकमित्रअययोगियों जपन्य स्थिति दायिक सम्बन्धति लपार्शतमोहसे मरकर सर्वाभिसिद्धिमें उत्पन्न होनेवाले जीवके वैकल्पिकमित्रअययोगके अन्तिम समयमें होती है। अतः इसका जपन्यकाल एक समय है अतः इसका जपन्यकाल एक समय बड़ा। पञ्चाय मनुष्योंका प्रमाण संख्यात है अतः इनमें निरन्तर संख्यातसे अधिक काल तक उत्पन्न नहीं हो सक्त अतः इनका उत्कृष्टकाल संख्यात समय बड़ा। इसी प्रकार लपञ्च सम्बन्धति, सम्बन्धित्यादि, आहारकअययोगी आहारकमित्रअययोगी अफातवेही सूर्यसापर-पयिक संपत क्पातकालसंयत और सासापत्नी प्ररूपका पतित कर लेने चाहिये क्योंकि इन मार्गोपायोंमें अन्तिम समयमें ही जपन्य स्थिति विमर्श होती है। अजपन्य स्थितिके विषयमें हर एक मार्गोपाय को विशेषता है वह मूलमें भी ही है।

इस प्रकार कलालुगय समस्त हुआ।

§ १५५ अतराणुगमो दुविहो—जहणओ उकसओ चेदि । उकसए पयदं ।  
 दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उकस्सट्ठिदिविहत्तियाण-  
 मंतरं के० । जह० एगसमओ, उक० अंगुलस्स असंखे० भागो । अणुक० णत्थि अंतरं ।  
 एवं सत्तपुढवि०-सव्वतिरिक्ख०-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-  
 सव्वपिगल्लिंदियं-सव्वपंचिंदिय-सव्वपंचकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-  
 ओरालि०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-कम्मइय-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-मदि-सुदअ-  
 ण्णाण०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-समाइय-छेदो०-परिहार०-  
 असंजद०-संजदासंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिंदंसण०-छलेस्सा-भवसिद्धि०-[अभव०]-  
 सम्मादि०-खइय०-वेदय०-मिच्छादि०-सण्णि-असण्णि-आहारि-अणाहारि त्ति ।

§ १५६ मणुसअपज्ज० मोह० उक० ओघमंगो । अणुक० [ जह० एगसमओ,  
 उक० ] पलिदो० असखेभागो । एवं सासण०-सम्मामि०दिट्ठि त्ति । वेउव्वियमिस्स० मोह०  
 उक० ओघं । अणुक० जह० एगसमओ, उक० वारस मुहुत्ता । आहार०-आहार-

§ १५५ अन्तराणुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट अन्तराणुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पाचों स्थावरकाय, सभी त्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों वचन-योगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, कर्मणकाय-योगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, आमिनिवो-धिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन-पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसयत, असयत, सयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, छद्मं लेख्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्य दृष्टि, सङ्गी, असङ्गी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १५६ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है । आहारककाययोगी,

मिस्स० मोह० उक्क० ओर्थ । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० बासपुषव । एवम  
कसा० जहाकत्वादसंजदे धि ।

१५७ अवगद० मोह० उक्क० ओर्थ । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क०  
धम्मासा । एवं सुहुमसंपराय० वत्थ्वं । उवसम० उक्क० ओर्थ । अणुक्क० जह०  
एगसमओ, उक्क० चचवीसमहोरथे । अथवा अकसा०-जहाकत्वाव०-अवगद०  
सुहुम० मोह० उक्क० बासपुषव । उवसम० चचवीसमहोरथे० सादि० । सासण०  
पस्सिओ० असंखे० भागो । स्वह्य० धम्मासा ।

एवमुक्कस्सओ अंतराणुगमो समथो ।

और आहारकमिअययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिमिष्ठिबाले जीवोंका अन्तरकाल  
ओषके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिमिष्ठिबाले जीवोंका अल्प अन्तरकाल एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षे प्रत्यक्ष है । इसी प्रकार अकपावी और यथाक्यातसंयत जीवोंके  
मानना चाहिये ।

१५७ अपगतवेदियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिमिष्ठिबाले जीवोंका अन्तरकाल  
ओषके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिमिष्ठिबाले जीवोंका अल्प अन्तरकाल एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तरकाल जह महीना है । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके क्ख्या  
चाहिये । उपक्षमसम्पत्तिधियोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिमिष्ठिबाले जीवोंका अन्तरकाल ओषके समान  
है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिमिष्ठिबाले जीवोंका अल्प अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट  
अन्तरकाल बीबीस दिन रात है । अथवा, अकपावी यथाक्यातसंयत अपगतवेदी और सूक्ष्म  
सांपरायिकसंयत जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिमिष्ठिबाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल  
वर्षेप्रत्यक्ष है उपक्षमसम्पत्तिधियोंमें साविक बीबीस दिनरात है । सासाइन सम्पत्तिधियोंमें  
पस्यापमके असंख्यातवें मागप्रमाण है और साविक सम्पत्तिधियोंमें जह महीना है ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिबाले जीव यदि संसारमें न हों तो कमसे कम एक समय तक  
और अधिक से अधिक अंगुलके असंख्यातवें मागप्रमाण काजतक नहीं होते हैं अतः यहाँ  
उत्कृष्टस्थितिका अल्प अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें माग प्रमाण  
कहा । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबाले जीव मर्यादा पाये जाते हैं अतः इनका अन्तरकाल नहीं कहा ।  
मूलमें सातों प्रविधिकोंके नारकी आदि और जितनी मार्गोपायें गिमाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन  
जाती है अतः उनकी प्रकृषणाओं ओषके समान कहा । तथा इनके अतिरिक्त और जितनी  
मार्गोपायें हैं उनमें भी उत्कृष्ट स्थितिका अल्प और उत्कृष्ट अन्तर ओषके समान है अतः उन सबमें  
उत्कृष्टस्थितिका अल्प अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें मागप्रमाण कहा ।  
हैं इन मार्गोपायोंमें अंगुलक स्थितिका भी अन्तरकाल पाया जाता है जिसका सुप्तासा निम्न प्रकार  
है—सम्पत्तिधिसंज्ञक मनुष्य सासाइन सम्पत्ति और सम्पत्तिध्याट्टिका अल्प अन्तर एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तर पस्सके असंख्यातवें माग प्रमाण है । वैकिस्सिमिअययोगका अल्प अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है । आहारकमिअययोग और आहारकमिअययोगका  
अल्प अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षेप्रत्यक्ष है । उपक्षममेयीका अल्प अन्तर एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षेप्रत्यक्ष है । अपक अपगतवेदी और सूक्ष्मसांपरायिकसंयतका अल्प



§ १५८ जहणण पयदं । दुविहो णिदोसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० ज्जमासा । अज० णत्थि अंतर । एवं मणुम०-मणुसपज्ज०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस०-तमपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-लोभकसाय-आभिणि०-सुद०-ओहि०-सज्जद-सामादय-छेदो०-चक्रु०-अच-क्खु०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खडय०-सण्णि०-आहारि त्ति । णवरि ओहि-णाण० वासपुघत्तं ।

§ १५९. आदेसेण णेरइण्णु जह० अज० उक्कम्माणुक्कस्सभंगो । एवं सत्त-पुढवि०-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देव-भवणादि जाव सव्वद०-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदिय-

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, उपशम सम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात है, अतः इन मार्गणाओमें अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल उक्तमाण प्राप्त होता है। यहाँ पहले जो उपशमश्रेणीका अन्तरकाल कहा उससे मोहसत्कर्मणाले अकपायी और यथाख्यातसयतोंका अन्तरकाल लेना चाहिए। यहाँ अथवा कहकर कुछ मार्गणाओंके अन्तरकालमें कुछ फरक बतलाया है जो मूलमें ही दर्ज हैं। अकपायी, यथाख्यातसयत, अपगतवेदी और सूक्ष्मसापरायिक सयतमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीव उपशमश्रेणीमें ही होते हैं और उपशमश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है अतः अथवा कहकर इनका उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व कहा गया है। परन्तु कुछ आचार्यों का मत यह भी रहा है कि सभी उपशम श्रेणीवालोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती बहुत कम जीवोंके होती है। अतः उनके मतानुसार अकपायी आदि में उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान अग्रुलका असख्यातवा भाग भी कहा है जो संभवतः वीरसेन स्वामीको भी इष्ट था। तथा उन्होंने अथवा कहकर दूसरे मतका भी उल्लेखकर दिया है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और द्वायिकसम्यग्दृष्टियोंमें भी मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरके विषयमें मतभेद जान लेना चाहिये। यह अन्तर मूलमें दिया ही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १५८ अब जघन्य अन्तरानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, व्रस, व्रसपर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाय-योगी, लोभकपायी, आभिनिवाधिक्खानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदो-पस्थापनासयत, चतुर्दशी, अचतुर्दशी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, द्वायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञो और आहारकोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है।

§ १५९ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके अन्तरकालके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर

अपञ्ज०-तस्यअपञ्ज० चचारिकायबादरपञ्जच-[ बादरवणपञ्०पचैयपञ्ज०-वेठध्वय-  
कायभोगि-]विहंग० परिहार०-संज्ञासंज्ञद-तेज०-पम्प०-वेदयसम्मादिदि पि ।

§ १६० विरिक्त०-मोह० अह० अज्ञ० गत्यि अंतरं । एवं सम्बन्धद्वय-चचारि  
काय-वेसि बादरअपञ्ज०-सुहुम०-पञ्जचापञ्जच-बादरवणपञ्जविपचैय० अपञ्ज०-वण  
पञ्ज-निगोद०-बादर-सुहुम-पञ्जचापञ्जच-ओरासियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-  
अपञ्जाण-असंज्ञद०-तिष्णिहोस्सि०-अमव०-मिष्णादि०-असण्णि० अपाहारि पि ।

§ १६१ मणुसिणीसु मोह० अ० अ० एगसमओ, उक्क० वासपुषच । अज०  
गत्यि अंतरं । एवं मणुपञ्ज० । ओहिदंस० ओहिणाणिमंगो । मणुसअपञ्ज० उक्क-  
स्समंगो । वठम्बियमिस्स० उक्कस्समंगो । आहार० आहारमिस्स० उक्कस्समंगो ।

§ १६२ इत्थि०-णुस० अ० अ० एगस०, उक्क० वासपुषच । पुरिस०  
अह० अह० एगसमओ, उक्क० वास सादरेय । अज० तिण्णं पि गत्यि अंतरं ।

सर्वत्रैकचित्तकनेहव समी विक्खेत्थिय, पंचेत्थिय अपर्याप्त, इत्थअपर्याप्त पुबिबीअधिक आदि बार  
स्वावरकाय बाहर पर्याप्त बाहर वनस्पति प्रत्येक छरीर पर्याप्त, वैकल्पिकअययोगी विमंगलानी  
पट्टारविमृष्टिदंसयत संयतासंयत पीठलेख्यावाले, पट्टालेख्यावाले और वेदकसम्बन्धदि जीवोंके  
आना आदि ।

§ १६ तिष्ठन्तों मोहनीयकी अपम्य और अज्ञपम्य स्थिति विमृष्टिहीन अपञ्ज अन्तरकाल  
नहीं है । इसी प्रकार समी पंचेत्थिय, चारों स्वावरकाय चारों स्वावरकाय बाहर, चारों स्वावरकाय  
बाहर अपर्याप्त चारों स्वावरकाय सूक्ष्म चारों स्वावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त चारों स्वावरकाय सूक्ष्म  
अपर्याप्त बाहर वनस्पतिकल्पिक प्रत्येक छरीर, बाहर वनस्पतिकल्पिक प्रत्येक छरीर अपर्याप्त सामान्य  
वनस्पति, निगोद वनस्पतिकल्पिक बाहर वनस्पतिकल्पिक बाहर पर्याप्त, वनस्पतिकल्पिक बाहर  
अपर्याप्त वनस्पतिकल्पिक सूक्ष्म, वनस्पतिकल्पिक सूक्ष्म पर्याप्त वनस्पतिकल्पिक सूक्ष्म अपर्याप्त,  
बाहर निगोद बाहर निगोद पर्याप्त बाहर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद सूक्ष्म निगोद पर्याप्त,  
सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी कर्मणकाययोगी भरपूरानी, मृताशानी,  
असंयत कृच्छ्र आदि तीन लेख्यावाले, अमम्य मिष्णादि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके  
आना आदि ।

§ १६१ मणुपिण्यमों मोहनीयकी अपम्य स्थिति विमृष्टिवाले जीवोंका अपम्य अन्तरकाल  
एक समय है और कृच्छ्र अन्तरकाल अपट्टकाल है । तथा अज्ञपम्य स्थिति विमृष्टिवाले जीवोंका  
अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार अनापर्ययानी जीवोंके आना आदि । अचरिअज्ञनाले जीवोंके  
अचरिअज्ञनाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । सत्त्वपण्यात्तक मणुपिण्यमों इनके कृच्छ्र स्थिति विमृष्टि-  
वाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । वैकल्पिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें इनके कृच्छ्र स्थिति-  
विमृष्टिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । तथा आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी  
जीवोंमें इनके कृच्छ्र स्थिति विमृष्टिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है ।

§ १६२ जीवोंकी और मणुमण्येही जीवोंमें अपम्य स्थिति विमृष्टिवाले जीवोंका अपम्य  
अन्तरकाल एक समय और कृच्छ्र अन्तरकाल अपट्टकाल है । पुरुषकी जीवोंमें अपम्य स्थिति-

अवगद० मोह० ज० ज० एगसमथ्रो, उरक० छमासा । एवमजहण्णट्टिदीए वि वत्तव्वं । एवं सुहुमसंप० । कोह०-माण०-माय० पुरिस०भंगो । अऊसाय० उरकस्स-भंगो । एवं जहाक्खाद० वत्तव्वं । उवसम०-[सासण०-]सम्मामि० उरकस्सभंगो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

विभक्तिवाले जीवोका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है । तथा तीनों ही वेदवाले जीवोंमें अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । अपगत-वेदियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तथा इनके अजघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इसी प्रकार सूक्ष्मसापराधिकमयत जीवोंके कहना चाहिये । क्रोध, मान और माया कपायवाले जीवोंके पुरुषवेदियोंके समान कहना चाहिये । अकपायी जीवोंके इनके उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । इसी प्रकार यथाख्यातसयत जीवोंके कहना चाहिये । तथा उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके इनके उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है ।

**विशेषार्थ-** जब एक समयके अन्तरमें जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं तब जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय पाया जाता है और जब छह महीनाके अन्तरसे जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं तब जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना पाया जाता है । ओघसे अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है यह तो स्पष्ट ही है । सामान्य मनुष्य आदि और जितनी मार्गणाएं गिनार्ह हैं उनमें भी इसी प्रकार अन्तर समझना चाहिये, क्योंकि क्षपकश्रेणीमें वे सब मार्गणाएं सम्भव हैं अतः उनमें जघन्य स्थितिका अन्तर ओघके समान बन जाता है । और वे मार्गणाएं निरन्तर हैं अतः उनमें अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं पाया जाता । किन्तु अवधिज्ञानी जीव यदि क्षपकश्रेणी पर न चढ़ें तो वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं चढ़ते हैं अतः इनमें जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है । सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके समान है । सामान्य तिर्यच आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः इनमें उनका अन्तरकाल सम्भव नहीं । मनुष्यिनी, मनःपर्ययज्ञानी, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इन मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः इनमें जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । यही बात अवधिदर्शनकी है । पर इनमें अजघन्य स्थितिका अन्तरवाला नहीं पाया जाता । लघ्वपर्याप्तकमनुष्य, वैक्रियिकमिश्रकाय-योगी, आहारककाययोगी इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान है उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । पुरुषवेदमें कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक साधिक एक वर्ष तक क्षपकश्रेणी नहीं प्राप्त होती, अतः इसमें जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है । किन्तु इसमें अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है क्योंकि यह निरन्तर मार्गणा है । मोह सत्कर्मवाले क्षपक अपगतवेद और क्षपक सूक्ष्मसम्पराय सयमकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है अतः इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा । क्रोध, मान और माया कपायका कथन पुरुषवेदके समान है, क्योंकि इन तीनों कषायोंका क्षपकश्रेणीमें जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष पाया जाता है । मोहनीयसत्कर्मवाले अकपायी और यथाख्यातसयत उपशमश्रेणीमें

§ १६३ माषाणुगमेण सञ्चत्य ओदइओ भावो ।

एव माषाणुगमो समचो ।

§ १६४ अण्यवहृत्तयणुगमो दुषिहो—नहण्णओ उक्कस्सओ चदि । उक्कस्स पयदं । दुषिहो गिहोसो—ओपेण आदेसेण य । तत्तयओपेण सञ्चत्योवा मोह० उक्कस्स हिदिनिहृत्तिया जीवा । अणुक्क० अणुतणुणा । एव तिरिक्कस्स-सञ्चपइदिय सम्बवणप्फदि०-सञ्चणिओद०-कायमोगि०-ओरासिय०-ओरासियमिस्स०—कम्मइय०-जवुस०-वचचारिकसाय—मदि-मुदमण्णाण०—असुनद-अवक्खु०—तिण्णिणे०—मवसि०—अमवसि०—मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि०—अणाहारि चि ।

§ १६५ आदेसेण गेरइपसु माह० सञ्चत्योवा उक्क० । अणुक्क० असंसज्ज गुणा । एवं सत्तसु पुहवीसु सञ्चपंदिदियतिरिक्कस्स-मणुस-माणुसअपज्ज०—इव भवजादि काय अमराइद०—सञ्चविगमिदिय-सञ्चपंदिदिय-वचचारिकाय—सञ्चतस पंचमण०—पंच वधि०—वेचन्विय-वचन्वियमिस्स० इत्यि०-पुरिस०-विहंग०—आमिणि०—मुद०—ओहि०—

ही होते हैं अतः इनमें वचम्य और अवचम्य स्थितिक्र अन्तर उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके समान बन जाता है । इसी प्रकार उपसम सम्पत्त्य सासादन और सम्बन्धिमध्यात्ममें उत्कृष्ट स्थितिके समान अन्तर जानना, क्योंकि ये तीनों सान्तर माग्यार्थ हैं अतः इनके वचम्य स्थितिके अन्तरमें उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरसे कोई बिछेपता नहीं आती ।

इस प्रकार अन्तराणुगम समाप्त हुआ ।

माषाणुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदायिक माष है ।

इस प्रकार माषाणुगम समाप्त हुआ ।

§ १६४ अण्यवहृत्तयणुगम वो प्रकरका है—वचम्य और अवचम्य । इनमेंसे उत्कृष्ट अण्यवहृत्तयणुगमका प्रकरका है । उसकी अपेक्षा निर्लेख वो प्रकरका है—ओवमिर्लेख और आदेसनिर्लेख । इनमेंसे ओवकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्टस्थितिबिम्बित्वाले जीव सबसे बड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिबिम्बित्वाले जीव अनन्तरगुण्ये हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी पंचेन्द्रिय सभी वनस्पतिव्यधिक, सभी निगोह काययोगी, औदारिककाययोगी औदारिकमिधकाययोगी कामकाययोगी नपुंसकवेशी, अपादि चारों कपायवाज मत्पश्यानी, वटपश्यानी असंबत अचक्षुषसैनी कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, मध्य अमध्य, मिध्यावृद्धि, असंती, अहारक और अमाश्रक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६५ आदेसनिर्लेखकी अपेक्षा नारकिर्लेख मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित्वाले जीव सबसे बड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिबिम्बित्वाले जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च सामान्य मनुष्य मनुष्य अपर्याप्त सामान्य वेष, मवनवासियोंसे लेकर अपराधित स्वर्ग तकके वेष सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्वावरकाय सभी वस पाँचों मनोयोगी पाँचों वचम्ययोगी, वैदिकिककाययोगी,

संजदासंजद-चक्खु०-ओहिदंस०-तिणिले०-सम्मादि-खडय०-पेटय०-उवसम०-सासण०  
सम्मामि०-सण्णि त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी०-सवत्थोवा उप्पक० । अणुक्क०-सखेज्ज-  
गुणा । एवं सव्वद०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसाय०--मणपज्ज०-  
संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपरा०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

एवमुक्कस्सअप्पावहुगाणुगमो समत्तो ।

§ १६६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिदंसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण जह० अजह० उक्कस्स०भंगो । एवं कायजोगि-ओरालि०-णवंगु०-चत्तारिकसा०-  
अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ १६७ आदेसेण णेरइएसु मोह० जह० अज० उक्कस्साणुकस्सभंगो । एवं  
सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद-सव्व-  
एइंदिय-सव्वविगलिटिय-सव्वपंचिटिय-छक्काय०-पंचमण०-पचवचि०-ओरालियमिस्स०-  
वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स -कम्मइय०--इत्थि०-पुरिस०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-  
आभिणि०-सुद०-ओहि०--संजदासजद-असजद-चक्खु०-ओहिदंस-पंचले०-मुक्क०--

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभगज्ञानी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-  
सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिग्गदृष्टि और सज्ञी जीवोंके जानना  
चाहिये । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियामें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं ।  
इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सार्थसिद्धिके देव, आहारक-  
काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी अकपायी, मनःपयज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत,  
छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके  
जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ १६६ अब जघन्य अल्पबहुत्वानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका  
है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य स्थिति-  
विभक्तिवाले जीवोंका अल्पबहुत्व उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके अल्पबहुत्वके  
समान है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले,  
अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६७ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थिति-  
विभक्तिवाले जीवोंका अल्पबहुत्व उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके अल्पबहुत्वके  
समान है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तीर्थंच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य  
देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित स्वर्ग तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी  
पचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिक-  
काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी,  
विभगज्ञानी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनी, अवधि-

अमय०-सम्मादि०-स्वय०-वेद्य०-सयसय०-सासण०-सम्मायि० मिच्छादि०-सण्णि-  
असण्णि-मणाहारि चि ।

§ १६८ मणुसपज्ज०-मणुसिणी० सव्यत्योवा भर० । अग्रह० सत्तेज्जगुणा ।  
एवं सम्पद०-आहार०-आहारमिस्स० भवगद० अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामादय  
वेदो०-परिहार०-मुहुमसांपराय०-अहाक्त्वादसंजद चि ।  
एवमप्याबहुगाणुगमो समसो ।

—१—

एवं चरयीस-मणियोगहाराणि समसाणि ।

§ १६९. मुनगारे तस्य इमाणि तेरस मणियोगहाराणि-समुक्तिचणादि जाव  
अप्याबहु चि । समुक्तिचणाणुगमेण वुविहो निहोसो-ओपेण आदसेण य । तस्य  
ओपेण मोह० अत्ति मुम० अप्पद० भवद्विद्विहसिया बीवा । एवं सत्तमु पुहनीसु  
सम्पतिरिक्ख-सम्पमणुस्स-वेध भवणादि जाव सहस्सार०-सम्पपहिय-सम्पविगल्लिदिय  
सम्पपहिय-पंचकाय-सम्पतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायमोगि-ओरानि०-ओरालिय-  
मिस्स-वेठविय०-वेठवियमिस्स-कम्माद-विण्णिवेद-वचारिकसा०-मदि-मुदमण्णाण०-  
विहंग०-असंजद०-वचलु भवचलु०-पंचलेस्सा० भवसिद्धि०-अभवसिद्धि०-मिच्छादि०-

इहानी कृष्ण आदि पांच लेखावाले शुक्ललेखावाले, अमय्य सम्पगट्टि, सामिक्कसम्पगट्टि, वेद  
सम्पगट्टि, कपमसम्पगट्टि सासादनसम्पगट्टि, सम्पमिप्याट्टि, मिप्याट्टि, संघी असंघी  
और अनाहारक बीबोंके जानना चाहिये ।

§ १६८. मनुष्य पचास और मनुष्यनियमोंमें जयस्य स्थितिविमित्तबाले बीब सप्तसे पांच  
हैं । इनसे अजयस्य स्थितिविमित्तबाले बीब संख्यातगुण्ये हैं । इसी प्रकार सर्पायमिक्षिके देव,  
आहारककाययोगी आहारकमिमकाययोगी अयगतवेणी अकपायी मनाःखयदानी, संयत  
सामायिकसंयत कुरोपस्थापनासंयत पट्टारविशुद्धिसंयत, सूरमसांपरायिकसंयत और वयत्स्यात  
संयत बीबोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार अस्वपदुत्थानुगम समाप्त हुआ ।

इस प्रकार बीबीस अनुयागाहार समाप्त हुए ।

—३—

§ १६९ मुनगार स्थितिविमिक्षिके कथनमें समुत्पीतनसे लेकर अस्वपदुत्थतक ऐह्य  
अनुयोगहार हैं । इनमेंसे समुत्पीतनानुगमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकारअ है-आपनिर्देश और  
आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओपकी अपेक्षा माहनीयकी मुनगार, अस्वतर और अवस्थित स्थिति-  
विमिक्षिके बीब हैं । इसी प्रकार सातों वृत्तिविषयोंके मारकी, समी तियव समी मनुष्य, सामास्य  
देव भवनवासिबोंसे लेकर सहस्सार कस्पतरक देव समी पचेन्द्रिय समी विकलेन्द्रिय समी  
पंचेन्द्रिय पांचों स्वावरकाय समी वस, पांचों मनायोगी पांचों वचनयोगी अपयागी, ओश-  
रिककप्ययोगी ओहारिकमिमकाययोगी वैधियिककाययोगी वैधियिकमिमकाययोगी, अमय-  
काययोगी तीनों वर्णोंके आधादि चारों कपायवाले मयदानी जनादानी धर्मगदानी असंयत  
चतुर्दानी अचतुर्दानी इत्यादि पांच लेखावाले, अमय, अमय्य, मिप्याट्टि, संघी असंघी

सण्णि-असण्णि-आहारि-अणाहारि चि ।

§ १७० आणटादि जाव सव्वह० मोह० अत्थि अप्पदरविहत्तिया । एवमाहार०-  
आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-  
खेदो०-परिहार०-सुहमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासजद-ओहिदंस०-मुक्क०-  
सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मायि० ।

एवं समुक्तिणाणुगमो समत्तो ।

§ १७१ सामित्ताणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
मोह० भुज० अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० मिच्छादिद्विस्स । अप्पदर० कस्स ? अण्ण०

आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १७० आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमें मोहनीयकी अल्पतर स्थिति-  
विभक्तिवाले जीव हैं । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अप्रगतवेदी,  
अकपायी, आभिनिवोधिकज्जानी, भुनज्जानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसयत,  
छेदोपस्थापनासयत, परिहारावशुद्विसयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत,  
अवधिदर्शनी शुक्ललेश्यामाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि,  
सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—भुजगार अनुयोगद्वारमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित इन तीनोंका विचार  
किया जाता है । इसके अत्रान्तर अधिकार तेरह हैं । जो निम्न हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक  
जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन,  
काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वन । इनमेंसे पहले यहा समुत्कीर्तनाका विचार करते हैं—ओघसे  
भुजगारस्थितिवाले, अल्पतर स्थितिवाले और अवस्थित स्थितिवाले जीव पाये जाते हैं । जो कर्म  
स्थितिसे अधिक स्थितिको प्राप्त हो उसे भुजगारस्थितिवाला कहते हैं । जो अधिक स्थितिसे  
कम स्थितिको प्राप्त हो उसे अल्पतरस्थितिवाला कहते हैं और जिसकी पहले समयके समान दूसरे  
समयमें स्थिति रहे उसे अवस्थित स्थितिवाला कहते हैं । इस प्रकार ओघकी अपेक्षा इन तीनों  
प्रकारके जीवोंका पाया जाना सम्भव है । सातों पृथिवीके नारकी आदि प्रायः बहुत सी मार्ग  
णाओंमें इसी प्रकारकी स्थिति है अतः वहा भी ओघके समान तीनों प्रकारकी स्थितिवाले जीव  
जानना चाहिये, क्योंकि जिन मार्गणाओंमें मिथ्यादर्शन सम्भव है वहा तीनों विभक्तियां बन सकती  
हैं । केवल आनतसे लेकर नौ ग्रैयक तकके देव तथा शुक्ललेश्यावाले इसके अपवाद हैं । किन्तु  
आनतादि कल्पोंमें, शुक्ललेश्यामें और सम्यग्दर्शनसे सम्बन्ध रखनेवाली शेष मार्गणाओंमें पहले  
समयमें प्राप्त हुई स्थितिसे द्वितीयादि समयोंमें स्थिति उत्तरोत्तर घटती जाती है, अतः इनमें  
केवल एक अल्पतर स्थिति ही जाननी चाहिये ।

इस प्रकार समुत्कीर्तनाणुगम समाप्त हुआ ।

§ १७१ स्वामित्वाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्ति किसके होती  
है ? किसी भी मिध्यादृष्टि जीवके होती है । अल्पतर स्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी भी

सम्मादिहिस्स मिच्छादिहिस्स वा । एवं सत्तसु पुहनीसु तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खतिय मणुसतिय-देव-भवणादि आब सहस्सार-पंचिदिय-पंचि०पञ्ज०-तस-तसपञ्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-काययोगि०-ओरासि० ओरासियमिस्स०-वेठविय०-वेठविय मिस्स०-कम्मइय० तिण्णिवेद-वचारिकसा०-असंनद-वत्सु०-अवत्सु०-पंचलोस्सा भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि०-अणाहारि चि ।

§ १७२ पंचिदियतिरि०अपञ्ज० मोह० भुज० अप्पद० अवहि० कस्स ? अण्णदरस्स । एवं मणुसअपञ्ज०-सव्वपइदिय-सम्भविमहिदिय-पंचिदियअपञ्ज०-पंचकाय-तसअपञ्ज०-पदि-सुवअप्पाज०-विहंग० अमव०-मिच्छादि०-असण्णि चि ।

§ १७३ आप्पादि आब उवरिमगेवज्जे चि अप्पदर० कस्स ? अण्ण० सम्मा-विहिस्स मिच्छादिहिस्स वा । [एवं सुक्क ।] गवापुत्तिसादि आब सव्वहे चि अप्पदर० कस्स ? अण्णवरस्स सम्माइहिस्स । एवमाहार० आहारमिस्स० अवगद०-अकसा०-आमिणि०-सुद०-ओहि०-मणपञ्ज०-संनद०-सामाइय०-जेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-अहानत्ताद०संनद०-संनदासंनद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-त्वइय०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिहि चि ।

एवं सामिचाणुगमी समचो ।

सम्यग्दृष्टि वा मिथ्यादृष्टि जीवके होती है । इसी प्रकार सातों दृष्टिबिधोंके नारकी, सामान्य तिर्यक पंचेन्द्रियतिर्यकब्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव भवनवासियोंके लेकर सद्गुरु स्वर्गतकके देव पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म ब्रह्म पर्याप्त पाँचों मनायोगी पाँचों बचनयोगी कर्मयोगी, औदारिककर्मयोगी औदारिकमित्रकर्मयोगी वैश्विककर्मयोगी, वैश्विकमित्रकर्मयोगी कर्मयोगी तीनों वेदवाले क्रोधादि पातों कपायवाले असंयत बहुवर्धनवाले अवचरुर्धनवाले, कृष्यादि पाँच संनदावाले, अथ्य संनदी आहारक और अनहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १७२ पंचेन्द्रिय तिर्यक अपर्याप्तकर्मों मोहनीयकी मुजगार, अत्यन्त और अवस्थित स्थितिबिमर्षि किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सभी पंचेन्द्रिय सभी विकलेन्द्रिय पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाँचों स्वाध्यायक ब्रह्म अपर्याप्त मत्पद्धानी, भुताधानी विमगाधानी अभव्य मिथ्यादृष्टि और असंनदी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १७३ अन्तःकर्मसे लेकर तपरिम प्रेषिक तकके देवोंमें अत्यन्त स्थितिबिमर्षि किसके होती है ? किसी भी सम्मगदृष्टि वा मिथ्यादृष्टि जीवके होती है । इसी प्रकार भुक्त सेव्यावासोंके कठना चाहिये । जो मनुष्यक्षिसे लेकर सर्वाधिमर्षि तकके देवोंमें अत्यन्त स्थितिबिमर्षि किसके होती है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होती है । इसी प्रकार आहारककर्मयोगी आहारकमित्रकर्मयोगी, अपगतवर्दी अकथायी आनिनिवाधिकाधानी भुताधानी अवधिकाधानी मत्प-पयेयधानी संयत सामाधिकसंयत जेवोपस्वापनासंयत परिहारविद्विदिसंयत, सुहमसांपराधिकसंयत, यथाक्यातसंयत संयतासंयत अवधिर्धनवाले सम्यग्दृष्टि दायिकसम्यग्दृष्टि बह्वसम्यग्दृष्टि, बह्वसम्यग्दृष्टि, सासद्वनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-इस बातका उत्प्रेक्ष इस पहले कर आये हैं कि मिथ्यादृष्टिक मुजगार आदि तीनों



§ १७४ कालाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० जह० एगसमओ, उक्क० चत्तारि समया । अप्पद० जह एगसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं तीहि पल्लिदोवमेहि अतोमुहुत्तम्भहि एहि सादिरेय । अवट्ठिद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमचक्खु०—भवसिद्धि० ।

स्थिति विभक्तिया सम्भव हैं और सम्यग्दृष्टिके केवल एक अल्पतर स्थिति विभक्ति ही सम्भव है । इस अनुयोगद्वारमें इसी दृष्टिसे विचार किया गया है । पूर्वोक्त सूचनानुसार सामान्य सिद्धान्त यह निष्पन्न हुआ कि सामान्यसे मिथ्यादृष्टि जीव तीनों स्थिति विभक्तियोंके स्वामी हैं और सम्यग्दृष्टि जीव केवल एक अल्पतर स्थिति विभक्तिके ही स्वामी हैं । आदेशकी अपेक्षा भी विचार करनेका मूल यही है । आनतसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देवोंको व शुक्ललेश्यावालोंको छोड़कर शेष जिन मार्गणाओंमें मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन सम्भव है वहा मिथ्यादृष्टियोंको तीनों स्थिति विभक्तियोंके स्वामी जानना चाहिये और सम्यग्दृष्टियोंको केवल एक अल्पतर स्थिति विभक्तिका ही स्वामी जानना चाहिये । ऐसी मार्गणाओंके नाम मूलमें गिनाये ही हैं । इतना विशेष जानना कि यहा सम्यग्दृष्टि पदसे सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी ग्रहण कर लेना चाहिये, क्योंकि इनके भी एक अल्पतर स्थिति विभक्ति ही होती है । मनुष्य अपर्याप्त आदि कुछ मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें एक मिथ्यादर्शन ही सम्भव है अतः यहा तीनों स्थिति विभक्तियोंका स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव होता है । यद्यपि इस कसायपाहुडेके अनुसार इनमें कुछ मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें सासादनसम्यक्त्व भी पाया जाता है पर उसकी अपेक्षासे यहा पृथक् कथन नहीं किया । फिर भी उसकी अपेक्षा विचार करने पर एक अल्पतर स्थिति विभक्ति ही प्राप्त होती है । अर्थात् ऐसे एकेन्द्रियादि जीव जो सासादनसम्यग्दृष्टि होंगे वे सासादनसम्यक्त्वके काल तक एक अल्पतर स्थिति विभक्तिके ही स्वामी होंगे । आनत कल्पसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देवोंके तथा शुक्ललेश्यावालोंके मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन दोनों सम्भव हैं फिर भी यहा एक अल्पतर स्थिति ही होती है, अतः उक्त स्थानोंमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवको अल्पतर स्थिति विभक्तिका ही स्वामी बतलाया है । शेष मार्गणाओंमें अल्पतर स्थिति विभक्तिका स्वामी सम्यग्दृष्टि ही होता है, क्योंकि उनमें मिथ्यादर्शन सम्भव ही नहीं है ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ १७४ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार स्थिति विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल चार समय हैं । अल्पतर स्थिति विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन पत्य और अन्तर्मुहूर्त अधिक एकसौ त्रेसठ सागर हैं । अवस्थितस्थिति विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त हैं । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—किसी जीवने एक समय तक भुजगार स्थितिका बन्ध किया और दूसरे समयमें वह अल्पतर या अवस्थित स्थितिका बन्ध करने लगा तो भुजगारका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । तथा जब कोई एक एकेन्द्रिय जीव पहले समयमें अद्वाक्ष्यसे स्थितिको बढाकर बंधता है, दूसरे समयमें सल्लोक्ष्यसे स्थितिको बढाकर बंधता है, तीसरे समयमें मरकर और एक विग्रहसे सन्नियोंमें उत्पन्न होकर असन्नियों के योग्य स्थितिको बढाकर बंधता है और चौथे समयमें शरीरको ग्रहण करके सब्बीके योग्य स्थितिको बढाकर बंधता है तब उस जीवके भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल चार समय प्राप्त होता है, इस प्रकार भुजगार स्थितिका जघन्यकाल

एक समय और एकद्वय काल बार समय समझना चाहिये। इसका विशेष सुझावा इस प्रकार है—  
 यहाँ एक स्थिति के बन्ध के योग्य कालको अष्टा कहा है। जो कमसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक होता है। तात्पर्य यह है कि किसी जीवके विषयित एक स्थिति का बन्ध हा रहा है ता वह बन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक होगा। इसके पश्चात् यह बदल जायगा और तब उससे म्यून या अधिक स्थितिका बन्ध होने लगेगा। पर यहाँ मुबगारकी स्थिति विवक्षित है अतः अधिकका बन्ध कल्पना चाहिए। पर इस प्रकार अष्टाचयसे बंधनवाली स्थितिमें फरक यह जानेपर भी स्थितिकबन्ध के कारणभूत संज्ञेरूप परिणामोंमें नियमसे वृद्ध होगा ही यह नहीं कहा जा सकता। किसी जीवके अष्टाचयके साथ संस्नेहचय हो जाता है और किसी जीवके अष्टाचयके पश्चात् भी संस्नेहचय होता है। केवल अष्टाचयके होने पर स्थितिमें अधिकसे अधिक वृद्धि पस्त्रके असंख्यातवें मात्राप्रमाण ही हो सकती है अधिक नहीं क्योंकि एक एक क्षेत्रादि कल्पयत्पर परिणामक्षण ठक प्रमाण स्थितिकबन्ध ही कारण होता है। पर संस्नेह चयके होने पर अधिकसे अधिक संख्यात सागर स्थिति बन सकती है और घट भी सकती है। किन्तु यहाँ मुबगारकी विषया है, इसलिय वृद्धि ही लानी चाहिये। इस प्रकार जब किसी ऐनेन्द्रिय जीवके पहले समयमें अष्टाचयसे स्थितिमें वृद्धि होती है दूसरे समयमें संस्नेहचयसे स्थितिमें वृद्धि होती है। तब उसके मुबगारके दो समय हो ऐनेन्द्रिय पर्यायमें प्राप्त हो जाते हैं। तथा वह जीव यदि तीसरे समयमें मर्य और एक मोड़के साथ संक्षिप्तमें उत्पन्न हुआ ता उसके तीसरे समयमें अस्तीके योग्य स्थितिक बन्ध होने लगेगा और चाहे समयमें छपारका प्रमाण कर देनेके कारण संज्ञीके योग्य स्थितिक बन्ध होने लगेगा। इस प्रकार वही जीवके मुबगारके दो समय संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायमें प्राप्त हुए। इस तरह मुबगारके कुछ समय बार हुए। अतः मुबगार स्थितिका एकद्वय काल बार समय कहा। जो बाव एक समय तक अल्पतर स्थितिका बन्ध करके दूसरे समयमें मुबगार या अवस्थित स्थितिका बन्ध करने लगता है उसके अल्पतरका अपन्यकाल एक समयका पाया जाता है। तथा जिस जीवने अन्तर्मुहूर्त काल तक अल्पतर स्थितिका बन्ध किया। अन्तर यह तीन पक्षकी आत्मा लेकर योगभूमिमें उत्पन्न हुआ और वहाँ आत्मा में अन्तर्मुहूर्त कालके क्षेत्र रहने पर इसका सम्बन्धको प्रमाण किया। अन्तर यह द्वापार सागर तक सम्बन्धक साव परिभ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्बन्धितम्यात्मने रहा और वहाँसे पुनः सम्बन्धको प्राप्त करके दूसरी बार द्वापार सागर तक सम्बन्धके साथ परिभ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् मिथ्यात्मने गया और इक्ष्मीस सागरकी आयुवासे बेबोमें उत्पन्न हो गया और वहाँसे म्युत होकर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक उसने अल्पतर स्थितिकबन्ध किया पश्चात् वह मुबगार स्थितिकबन्ध करने लगा। इस प्रकार अल्पतर स्थितिका एकद्वयकाल अन्तर्मुहूर्त और तीन पक्ष अधिक एक सौ त्रेष्ठ सागर प्राप्त होता है। एक स्थिति कबका अपन्य काल एक समय और एकद्वय काल अन्तर्मुहूर्त है। अब यदि कोई जीव स्थितिकबन्धके समान स्थितिक बन्ध करता है ता वह कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक ही ऐसा कर सकेगा इसके पश्चात् उसके नियमसे अल्पतर या मुबगार स्थितिका बन्ध होन लगेगा, अतः अवस्थित स्थितिका अपन्य काल एक समय और एकद्वय काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। अन्तर्मुहूर्त और मध्य ये दो मार्गोपाय अष्टाचय जीवके सम्बन्ध और मिथ्यात्व दोनों दशाओंमें संज्ञा रखती हैं अतः इनमें बाध प्रकल्पना बन जाती है, और इसीविषय इनके कबको जीवके समान कहा।

§ १७५. आदेसेण एरइय० मोह० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० वे समया । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अवट्टि० ओघ-भंगो । पढमादि जाव सत्तमि त्ति भुज०-अवट्टि० गिर०ओघं । अप्प० जह० एग-समओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्टिदी देसूणा ।

§ १७६. तिरिक्ख० मोह० भुज० अवट्टि० ओघं । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि सादिरेयाणि अंतोमुहुत्तेण । पंचिदियतिरिक्ख०-पंचि-तिरिक्खपज्ज०-पंचि०तिरिक्खजोणिणीसु भुज० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । अप्पद०-अवट्टि० तिरिक्खोघं । पंचि०तिरि०अपज्ज० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । अप्पद०-अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एव

§ १७५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी भुजगार स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय हैं । अल्पतर स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर हैं । तथा अवस्थित स्थिति विभक्तिका काल ओघके समान है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें भुजगार और अवस्थित स्थिति विभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है । तथा अल्पतर स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समझ और उत्कृष्ट वाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—नरकमें अद्वाक्ष्य और सकलेशक्ष्यसे दो भुजगार समय प्राप्त होते हैं अतः यहाँ भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल दो समय कहा । कोई एक असह्य दो विग्रहसे नरकमें उत्पन्न हुआ और उसके यदि दूसरे विग्रहमें अद्वाक्ष्यसे तीसरे समयमें शरीरको ग्रहण करनेसे तथा चौथे समयमें सकलेशक्ष्यसे भुजगार स्थिति बन्ध हुआ तो इस प्रकार नरकमें भुजगार स्थितिके तीन समय भी प्राप्त हो सकते हैं पर यहाँ पहले कथनकी ही मुख्यता है अतः उच्चारणावृत्तिमें उसीका उल्लेख किया है । जिस जीवने नरकमें उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालमें सम्यक्त्वका ग्रहण कर लिया है और जो अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर मिथ्यात्वमें गया उसके नरकमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है । शेष कथन ओघके समान घटित कर लेना चाहिए । इसी प्रकार प्रथमादि नरकोंमें भी कथन करना चाहिये । किन्तु वहा अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण जानना चाहिये । यद्यपि पहले नरकमें सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होता है और उसके अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है । किन्तु ऐसा जीव पहले नरककी उत्कृष्ट स्थितिके साथ नहीं उत्पन्न होता अतः पहले नरकमें भी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम एक सागर प्रमाण प्राप्त होता है ।

§ १७६. तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थिति विभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है । पचेन्द्रियतिर्यञ्च, पचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्तक और पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिमती जीवोंमें भुजगार स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय हैं । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थिति विभक्तिका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । पचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें भुजगार स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट

पवि०अपज० ।

§ १७७ मणुसतिय० सुज० अशदि० गिरमोषं । अप्यद० जह० एगसमभा,  
तक० तिणि पन्दिरोयमाणि पुय्यकोटितिमागण सादिरयाणि । मणुसिणीसु अंतो-  
मुहुत्तेण सान्तिरेयाणि । मणुसअपज० सुज० अह० एयसमभा, तक० पं समया ।  
अप्यद०-अशदि० अह० एगसमभा, तक० अंतोमुहुत्त ।

§ १७८ वेवेसु सुज०-अशदि० गिरमोषं । अप्यद० जह० एगसमभा, उफ०

काव अन्तमुहृते है । इसी प्रकार पंचन्द्रिय अपयात्त जीवों के जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जिस तियचन पर्व पयायमे अन्तमुहृते तक अस्सर स्थितिका बच दिया ।  
परवान् मरकर तीन पत्तकी आसुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हो गया उसके अस्सर  
स्थितिका उत्पन्नअन्न अन्तमुहृते अधिक तीन पत्त पाया जाता है । सामान्य तियचोंमें क्षेत्र क्यन  
आपक समान है । यदि कोई अन्य इन्द्रियवाला जीव पंचन्द्रिय तियचत्रिमे उत्पन्न हुआ ता  
उसके पहला समय अद्यावधसे दूसरा समय उदीरका प्रमाण करनेसे और तीसरा समय संकलनवधसे  
मुझगार स्थितिका प्राप्त होता है अतः इनमें मुझगार स्थितिका उत्पन्नअन्न तीन समय बड़ा ।  
सब क्यन सुगम है । पंचन्द्रिय तियच सक्ष्यपयात्त और पंचेन्द्रिय सक्ष्यपयात्तक उत्पन्नअन्न  
अन्तमुहृते है अतः इनके अस्सर और अवस्थित स्थितिक उत्पन्नअन्न अन्तमुहृते बड़ा । मेरा  
क्यन सुगम है ।

§ १७९ सामान्य मनुष्य पयात्त मनुष्य और मनुष्यनी "न तीन प्रकारके मनुष्योंमें मुझगार  
और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका बात सामान्य नारकियोंके समान है । अस्सर स्थिति  
बिभक्तिक अपन्य अन्न एक समय और उत्पन्न अन्य पूर्वकारिके प्रमाणमें अधिक तीन पत्त है ।  
मनुष्यनियोंमें अस्सर स्थितिबिभक्तिका उत्पन्नअन्न अन्तमुहृते अधिक तीन पत्त है । मनुष्य  
अपयात्तकोंमें मुझगार स्थितिबिभक्तिका उपन्य अन्न एक समय और उत्पन्न अन्न ता समय है ।  
तथा अस्सर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका अपन्य अन्न एक समय और उत्पन्न अन्न  
अन्तमुहृते है ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य पयात्त मनुष्य और मनुष्यनियोंमेंमे एक पूर्वकारिके आसु  
पला जिस मनुष्यन प्रमाणके सब धनपर मनुष्यापुछा क्य करके पयात्त कारिकमन्यप्रजनका प्राप्त  
कर लिया है वह मरकर उत्तम भोगभूमिमें तीन पत्तकी आसुके साथ उत्पन्न होता है । इसके  
प्रमाणसे सब्र अन्न तक निरस्सर स्थितिसम्बन्धे कम स्थितिका ही क्य होता रहता है अतः  
अस्सर स्थितिका उत्पन्नअन्न पूर्वकारिका प्रमाण अधिक तीन पत्त प्राप्त होता है । किन्तु  
सम्पादित जीव मरकर जीवों मदीं होता अतः मनुष्यनियोंके अस्सरस्थितिक अन्न अन्तमुहृते  
अधिक तीन पत्त है । प्राप्त होता है । यदि अन्तमुहृतेसे पूर्व पयायक और तीन पत्तमें इनम भोग  
भूमिक अस्सर स्थितिक अन्नका प्रमाण क्यना चाहिए । सक्ष्यपयात्तक मनुष्यका उत्पन्नअन्न  
अन्तमुहृते है, अतः इसके अस्सर और अवस्थितस्थितिक उत्पन्नअन्न अन्तमुहृते बड़ा । सब  
क्यन सुगम है ।

§ १८० देवोंमें मुझगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका क्य सामान्य नारकियोंके

तेत्तीस सागरोवमाणि । भवणादि जाव सहस्रारे त्ति एवं चेव । णवरि अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । भवण०—वाण०—जोदिसि० सगट्ठिदी अंतो—मुहुत्तूणा । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अप्पदर० जह० जहणट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी ।

§ १७६ एइंदिय० भुज०—अवट्ठि० मणुसभंगो । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो असंखे० भागो । एवं वादरेइंदिय—सुहुमेइंदिय—चत्तारिकाय तेसि वादर—सुहुम—वणप्फदि—वादरवणप्फदि—सुहुमवणप्फदि—णिगोद—वादरणिगोद—सुहुमणिगोदे त्ति । एदेसि पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च एवं चेव । णवरि अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी ।

§ १८० विगल्लिंदिय—विगल्लिंदियपज्जत्ताणं भुज०—अवट्ठि० एइंदियभंगो । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । विगल्लिंदियअपज्ज० भुज०—अवट्ठि० समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर हैं । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतक इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमे अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । उसमें भी भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिए । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ—**भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार तकके देवोंके तीनों प्रकारकी स्थितियोंका बन्ध होता है । अतः सहस्रार स्वर्गतक अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त हो जाता है । पर इतनी विशेषता है कि भवन-त्रिकोंमें सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता अतः वहा अल्पतरका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तकम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होगा । किन्तु आनतसे सर्वार्थसिद्धितक अल्पतर स्थितिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होगा, क्योंकि वहा एक अल्पतर स्थितिका ही बन्ध होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ १७६ एकेन्द्रियोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल मनुष्योंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्लोपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, उनके वादर और सूक्ष्म, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर निगोद और सूक्ष्म निगोद जीवोंके जानना चाहिये । इन वादर एकेन्द्रिय आदिके जो पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद हैं उनके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमे अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है ।

§ १८० विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थिति विभक्तिका काल एकेन्द्रियोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय

विगमिदियमंगो । अप्पद० मणुसअपज्जचर्मगो ।

१८१ पंचि०-पंचि०पज्ज० भुज० अषट्ठि० पंचि०तिरिक्कनमंगा । अप्पद० मूलाप० । तस-तसपज्ज० भुज० अषट्ठि० अप्पद० मूलाप० । तसअपज्ज० भुज० ओप० । अप्पद० अषट्ठि० अह० एगसगओ, उक्क० अतोमु० । एवमोराडियमिस्स० वसम्मं । गवरि भुज० उक्क० तिण्णि समया ।

और उत्पद्यमान अपनी अपनी उत्पद्य स्थितिप्रमाण है । विषमन्त्रिय अपवातक जीवोंके मुबगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल विप्लवन्त्रियोंके समान है । तथा अन्तर स्थितिबिभक्तिका काल मनुष्य अपवातकोंके समान है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें भी अज्ञात और मन्त्रशक्तियुक्त मुबगारके दो समय प्राप्त होते हैं अतः इनमें मुबगार स्थितिका उत्पद्य काल भी मनुष्योंके समान है । तथा एकन्द्रियोंके निरन्तर पत्यक असेन्यातवें मागप्रमाण कालतक अन्तर स्थितिका होना सम्भव है, क्योंकि जिस एकन्द्रियक संक्षी पंचन्द्रियकी स्थितिका सत्त्व है वह उसे पत्य के असेन्यातवें मागप्रमाण काल तक पटाता रहता है । अतः एकेन्द्रियोंमें अन्तर स्थितिका उत्पद्य काल पत्यके असेन्यातवें मागप्रमाण है । बारहपन्द्रिय सूक्ष्मपन्द्रिय तथा पौषों न्यावरण और इनके बाहर और सूक्ष्म जीवोंकी उत्पद्य कायस्थिति पत्यक असेन्यातवें मागसे अधिक है अतः इनमें भी एकन्द्रियोंके समान काल घन जाता है । किन्तु इन सबके पयाज और अपवात भेदोंका काल कम है अतः इनमें अन्तर स्थितिका उत्पद्य काल अपनी अपनी उत्पद्य स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार विप्लवय पयाज और विप्लवय अपवात जीवोंके उत्पद्य काल का विचार करके अन्तर स्थितिका उत्पद्य काल जानना । शेष कथन सुगम है ।

१८१ पंचन्द्रिय पंचाम्रयपयाजक जीवोंके मुबगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल पंचन्द्रिय त्रियकोंके समान है । तथा अन्तर स्थितिबिभक्तिका काल मूलापक समान है । श्रम और श्रम पयाजक जीवोंके मुबगार, अवस्थित और अन्तर स्थितिबिभक्तिका काल मूलापक समान है । श्रम अपवातमेंके मुबगार स्थितिबिभक्तिका काल आपक समान है । तथा अन्तर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका उपपत्य काल एक समय और उत्पद्य काल अन्तमु होता है । इसी प्रकार औदारिकमित्रावयागी जीवोंके काला पादित्य । इसी विस्तारता है कि इनके मुबगार स्थितिबिभक्तिका उत्पद्य काल तीन समय है ।

विशेषार्थ—पंचन्द्रिय और पंचन्द्रिय पयाजकोंमें सब पंचन्द्रिय जीव का काल है । इनमें पंचाश्रय निपत्य भी सम्मिलित हैं अतः पंचाश्रय निपत्योंक जिस प्रकार मुबगार स्थिति का उत्पद्य काल तीन समय पत्ति करके घनता पाते हैं इसी प्रकार इनके भी जानना पादित्य । तथा आपमें अन्तर स्थिति का उत्पद्य काल घनता पाते हैं यदि पंचाश्रय और पंचन्द्रिय पयाजकोंके ही माग होता है अन्तर्गत । अतः इनके अन्तर स्थितिका काल आपक समान है । आपमें मुबगार आदि नीचे विभक्तिपौषों का काल होता है वह श्रम और श्रम पयाज जीवोंके अविद्या घन जाता है अतः इनकी उत्पद्यका आपक समान है । श्रम अपवातकोंका उत्पद्य मागमु होता है अतः इनके अन्तर और अवस्थित स्थितिबिभक्ति का उत्पद्य मागमु होता है । अ पंचाश्रय पादित्य पंचाश्रय पंचाश्रयोंमें उत्पद्य होता है अतः मुबगार स्थिति पार समय प्राप्त होता है । किन्तु इनमें मुबगारका पटाता समय निपत्ति मन्त्रि है । जाता है और

§ १८२ पंचमण०-पंचवचि०—वेउन्विय०--वेउन्वियमिस्स० मणुसअपज्जत्त-  
भंगो । कायजोगि० भुज०-अवट्ठि० ओघं । अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो०  
असंखे० भागो । ओरालि० भुज०-अवट्ठि० मणुसअपज्जत्तभंगो । अप्पद० जह० एग-  
समओ, उक्क० वावीसवस्ससहस्साणि देसूणाणि । आहार० अप्पद० जह० एगसमओ,  
उक्क० अंतोमु० । आहारमिस्स० अप्पद० जहण्णुक्क० अंतोमु० । कम्मइय० भुज० ज०  
एगसमओ, उक्क० वे समया । एवमप्पद० । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि  
समया ।

विग्रहितमें औदारिकमिश्रकाययोग पाया नहीं जाता, अतः इस योगमें भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट  
काल तीन समय कहा जो भव ग्रहण अद्वात्तय और सकलेशक्तयके कारण प्राप्त होता है ।

§ १८२ पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्र-  
काययोगी जीवोंके मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । काययोगी जीवोंके भुजगार  
और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य  
काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है । औदारिक काय  
योगी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है ।  
तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार  
वर्ष है । आहारक काययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और  
उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य और  
उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । कर्मणकाययोगी जीवोंके भुजगार स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक  
समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । इसी प्रकार अल्पतर स्थितिबिभक्तिका काल जानना  
चाहिये । तथा अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन  
समय है ।

**विशेषार्थ**—पाचों मनोयोग, पाचों वचनयोग, वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाय-  
योगमें भुजगार स्थितिबिभक्तिका अद्वात्तय और सकलेशक्तयसे दो समय ही उत्कृष्टकाल प्राप्त  
होता है तथा अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि इन योगोंका  
इससे अधिक उत्कृष्टकाल नहीं पाया जाता, अतः इनमें भुजगार आदि स्थितियोंके कालको  
लब्धपर्याप्तक मनुष्योंके समान कहा । काययोगमें सब काययोगोंका अन्तर्भाव हो जाता है और  
भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल चार समय काययोगमें ही बनता है अतः इसमें भुजगार और  
अवस्थितस्थितिके कालको ओघके समान कहा । तथा सामान्य काययोगका उत्कृष्टकाल तो  
असख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । पर वह एकेन्द्रियके ही पाया जाता है और एकेन्द्रियके  
अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा, अतः काययोगमें भी अल्पतर  
स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण जानना । औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम  
बाईस हजार वर्ष है, अतः इसमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । आहारक-  
काययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें अल्पतर स्थितिबिभक्ति ही होती है अतः इनका जो  
जघन्य और उत्कृष्टकाल है तत्प्रमाण ही इनमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल जानना  
चाहिये । कर्मणकाययोगका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है, अतः इसमें  
अवस्थिति स्थितिबिभक्तिका तो जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय बन जाता





§ १८५. मदि० सुदअण्णाण० भुज०-अवट्ठि० ओघं । अप्पद० जह० एगसमआ, उक्क० एकत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । विभंग० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० सत्तमपुट-विभंगो । णवरि अप्पद० एकत्तीससागरो० अंतोमुहुत्तूणाणि । आभिणि०-सुद०-ओहि० अप्पद० जह० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि । एवमोहिदंस०-सम्मा-मि०-वेदयसम्मादिट्ठि ति । णवरि वेदयसम्मादिट्ठीसु छावट्ठिसागरोवमाणि संपु-ण्णाणि । मणपज्ज० अप्पद० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । एवं संजद-परिहार०-सज्जदासंजदा ति ।

समय कोई भी एक कषाय पाई जा सकती है अतः चारों कषायोंमें भुजगार स्थितिका काल ओघके समान कहा । एक कषायका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है अतः शेष कालकी औदारिक मिश्रकाय-योगके साथ समानता घटित हो जाती है । शेष कथन सुगम है ।

§ १८५ मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है । विभंगज्ञानी जीवोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल सातवीं पृथिवीके नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कम इकतीस सागर है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पूरे छयासठ सागर होते हैं । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है । इसी प्रकार सयत, परिहारविशुद्धिसयत और सयतासयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—प्रारम्भके दो अज्ञानोंके रहते हुए अधिकसे अधिक अल्पतर स्थितिबिभक्ति नौवें प्रैवेयक्रमें पाई जाती है, अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अल्पतर स्थितिबिभक्तिका उत्कृष्टकाल साधिक इकतीस सागर कहा । यहा साधिकसे नौवें प्रैवेयक्रमके पिछले भवके अन्तका अन्तमुहूर्तकाल और अगले भवके प्रारम्भका अन्तमुहूर्तकाल लेना चाहिये, क्योंकि इन कालोंमें भी इस जीवनके अल्पतर स्थितिका पाया जाना सम्भव है । किन्तु विभंगज्ञानमें अल्पतर स्थितिबिभक्तिका काल अन्तमुहूर्त कम इकतीस सागर ही प्राप्त होता है जो कि उपरिम नौवें प्रैवेयक्रमें अपर्याप्त अवस्थाके अन्तमुहूर्त कालको कम कर देनेसे प्राप्त होता है । अभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, अवधिदर्शन और सामान्य सम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागर और वेदक सन्यक्त्वका उत्कृष्टकाल पूरा छयासठ सागर है और इनके एक अल्पतर स्थिति ही सम्भव है अतः इनके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । तथा इन सबका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त है, अतः इनमें अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त कहा । मनःपर्ययज्ञानका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है अतः इसमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । सयत, परिहारविशुद्धिसयत और सयतासयत जीवोंके भी अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण जान लेना चाहिये ।

§ १८६ सामास्य-च्छदो० अप्यद० जह० एगममभो, उरु० पुञ्जसोटी दम्णा ।  
 भमनद० णतुंगमंगा । णवरि अप्यद० उरु० सेतीस सागरा० सादिरयाणि । परतु०  
 तसपञ्जमंगा । विण्द०-णीरु० फाउ० भुज० भवद्वि० आर्य । अप्यद० जह०  
 एगममभा, उरु० सगद्विदी दम्णा । तउ०-यम्भ० भुज० भवद्वि० सादम्भमंगो ।  
 अप्यद० ज० एगममभा, उरु० सगद्विनी । धुक्क० अप्य० ज० मंगामु०, उरु०  
 तत्तीस साग० सादिरयाणि । एवं खर्य० वसप्य ।

§ १८७ अपव० मिच्छादि० यन्त्रिज्जणाणिमंगा । उरुसम०-साम्मादि० आदार  
 भिसममंगो । सासन० अप्यद० ज० एगममभा, उरु० दारल्लियाभा । सणि० भुज०  
 झ० एगममभो उरु० यसमया । अप्यद० भवद्वि० आप । अमणि० भुज०  
 पविदियतिरिक्कमभा । अप्यद० भवद्वि० एद्विदियमंगा । आदारि० भुज०

अवट्टि० ओरालियमिस्सभंगो । अप्पदर० ज० एगसमओ, उक्क० ओघभंगो ।  
अणाहार० कम्मइयभंगो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ १८८. अंतराणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
मोह० भुज०-अवट्टि० अंतरं केवचिरं कालादो होटि ? जह० एगसमओ, उक्क०  
तेवट्टिसागरोवमसदं तीहि पल्लिदोवमेहि अंतोमुहुत्तन्भट्टिएहि सादिरेय । अप्पद०  
जह० एगसमओ, उक्क० अतोमुहुत्ता । एव पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-  
पुरिस०-चक्खु०-अचक्खु०-भगसि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

§ १८९ आदेसेण णेरइएमु भुज०-अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस  
सागरोवमाणि देसूणाणि । अप्पद० ओघं । पढमादि जाव सत्तमि त्ति भुज०-अवट्टि०  
अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अप्पद० ओघं ।

है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल पचेन्द्रियोंके समान है । आहारक  
जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका काल ओदारिकामित्रकाययोगी जीवोंके समान  
है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल ओघके समान है ।  
अनाहारक जीवोंके कर्मणकाययोगी जीवोंके समान है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ १८८ अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे  
ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका अन्तरकाल कितना है ?  
जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त अधिक एकसौ त्रेसठ सागर हैं ।  
अल्पतर स्थितिबिभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।  
इसी प्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पुरुषवेदी, चतुर्दशीनी, अचतुर्दशीनी,  
भन्य, सही और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—एक कालमें एक जीवके भुजगार आदि स्थितियोंमेंसे कोई एक ही स्थिति  
होगी और इन तीनोंका जघन्यकाल एक समय है अतः जघन्य अन्तर भी इतना ही प्राप्त होता  
है । तथा अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागर  
हैं और उस समय अन्य दो स्थितियोंका पाया जाना सम्भव नहीं, अतः भुजगार और अवस्थित  
स्थितिका अन्तरकाल अल्पतरस्थितिके उत्कृष्टकाल प्रमाण कहा । तथा अवस्थितका उत्कृष्टकाल  
अन्तर्मुहूर्त है, अतः अल्पतरका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा । पचेन्द्रिय आदि कुछ मार्ग-  
णाओंमें यह अन्तरकाल बन जाता है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा ।

§ १८९ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेत्तीस सागर है । तथा अल्पतर स्थिति-  
बिभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक  
नरकमें भुजगार और अवस्थित स्थितिबिभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट  
अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिबिभक्तिका  
अन्तरकाल ओघके समान है ।

११६० तिरिक्ख० मुज० अवडि० ज० एगसमओ, उक्क० पस्वि० असंखे० भागो । अप्प० ओषं । पंचि० तिरिक्ख पंचि० तिरि० पज्ज० पंचि० तिरि० ओणिणी० मुज० अवडि० ज० एगसमओ, उक्क० पुब्बकोट्टिपुघरां । अप्पद० ओषं । पंचि० तिरि० अपज्ज० मुज० अप्प अवडि० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोष्ठ० । एषं मप्पसअपज्ज० । मणुसतिय० मुज० अवडि० ज० एगसमओ, उक्क० पुब्बकोट्टी देसुणा । अप्पद० ओषं ।

११६१ देवेसु मुज० अवडि० ज० एगसमओ, उक्क० अठारस सागरो० सादिरेयाणि । अप्प० ओषं । मण्णादि जाव सहस्सार ति मुज० अवडि० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिवी देसुणा । अप्प० ओषं० । आणदादि जाव सम्ब द ति अप्प० गत्थि अंतरं ।

११६ तिर्यचोर्मि मुजगार और अवस्थित स्थितिबिमित्तका अथवा अन्तरकाश एक समय और एक अन्तरकाश पत्थोरमके अर्धस्यातर्धे माग प्रमाण है । तथा अस्पतर स्थिति बिम्वित्तका अन्तरकाश आपके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यच पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमयी बीबीके मुजगार और अवस्थित स्थितिबिमित्तका अथवा अन्तरकाश एक समय और एक अन्तरकाश पूर्वकोट्टिपुघरत्त्व है । तथा अस्पतर स्थितिबिमित्तका अन्तरकाश आपके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोके मुजगार अस्पतर और अवस्थित स्थितिबिमित्तका अथवा अन्तरकाश एक समय और एक अन्तरकाश अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त बीबीके जानना चाहिये । सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यमिवोर्मि मुजगार और अवस्थित स्थितिबिमित्तका अथवा अन्तरकाश एक समय और एक अन्तरकाश कुछ कम पूर्वकोट्टिपुमाय है । तथा अस्पतर स्थितिबिमित्तका अन्तरकाश आपके समान है ।

११६१ देवोर्मि मुजगार और अवस्थित स्थितिबिमित्तका अथवा अन्तरकाश एक समय और एक अन्तरकाश साधिक अठारह सागर है । तथा अस्पतर स्थितिबिमित्तका अन्तरकाश आपके समान है । मणनशास्त्रियोंसे लेकर सहस्रार कस्पतकके देवोर्मि मुजगार और अवस्थित स्थितिबिमित्तका अथवा अन्तरकाश एक समय और एक अन्तरकाश कुछ कम अपनी अपनी एक अन्तरकाश है । तथा अस्पतर स्थितिबिमित्तका अन्तरकाश आपके समान है । आन्त कस्पमे लेकर सर्पासिद्धि तकके देवोर्मि अस्पतर स्थितिबिमित्तका अन्तरकाश नहीं है ।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यजके अस्पतर स्थितिका एक अन्तरकाश साधिक तीन पश्य वत्ता भाये हैं । पर जिस तिर्यजके यह काल प्राप्त होता है उसके तिर्यज पर्याप्तके रहते हुए पुनः मुजगार और अवस्थित स्थिति नहीं प्राप्त होती क्योंकि यह आद्य तिर्यजसम्बन्धी अस्पतर स्थितिके कालको समाप्त करके देवपथायमें चला जाता है अतः पंचेन्द्रियोंमें जो अस्पतर स्थितिका एक अन्तरकाश वत्ताया है वह सामान्य तिर्यजके मुजगार और अवस्थितस्थितिका एक अन्तरकाश जानना चाहिये । तिर्यज त्रिकके अस्पतर स्थितिका जो साधिक तीन पश्य एक अन्तरकाश वत्ताया है उसे इसके मुजगार और अवस्थित स्थितिका एक अन्तरकाश माननपर नहीं आपत्ति लगी होती है जो सामान्य तिर्यजोंके एक स्थितिबिम्बके अन्तरकाशका स्पष्टीकरण करते समय वत्ता

§ १६२ सन्वएइंदिय-सन्वविगलितिय-पंचिदियअपज्ज० पंचि०तिरिक्खअप-  
ज्जत्तमंगो । पंचकाय० तसअपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०-वेउन्विय० पंचि-  
दियतिरिक्खअपज्जत्तमंगो । एवमोरालियमिस्स-वेउन्वियमिस्स० वत्तव्वं । काय-  
जोगि० भुज०-अवट्ठि० ज० एयसमओ, उक्क० पल्लिदो० अमैत्ते०भागो । अप्पद०  
ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । आहार-आहारमिस्स० अप्पद० णत्थि अंतरं ।  
एवमवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-  
परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-मुक्क०-सम्मादि०-खइय०-  
वेदय०-उवसम०-सम्माभि०-सासण०दिट्ठि ति । कम्मइय० भुज०-अप्पद० णत्थि

आये हैं अत इनके भुजगार और अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकाटि पृथक्त्वप्रमाण  
कहा है । कोई सझी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च उत्कृष्ट स्थिति बौध्दर मरा और असजी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें  
उत्पन्न हुआ और सेंतालीस पूर्वकोटि तक पचेन्द्रिय असन्नियोंमें भ्रमणकर फिर सझी पचेन्द्रिय  
तिर्यञ्च हो गया । इस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर  
सेंतालीस पूर्वकोटि होता है । क्योंकि जिस असझी जीवके सजी पचेन्द्रियकी स्थितिका सत्त्व  
होता है उसको घटानेके लिए सेंतालीस पूर्वकोटिसे भी अधिक काल चाहिये परन्तु असझी  
पचेन्द्रिय तिर्यञ्चमें भ्रमण करनेका उत्कृष्टकाल सेतालीस पूर्वकोटि है अतः उक्त काल कहा । इसी  
प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें पन्द्रह पूर्वकोटि और योनिमतिमें सात पूर्वकोटि कहना  
चाहिए । मनुष्यमें असझी नहीं होते अतः उनमें सम्यक्त्वकी अपेक्षा कुछ कम पूर्वकोटि काल कहा है  
मनुष्य त्रिकके यद्यपि अल्पतरका उत्कृष्टकाल साधिक तीन पत्य वतलाया है पर वह इनके  
भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर नहीं हो सकता । आपत्ति वही आती है जिसका  
पहले उल्लेख कर आये हैं । अतः इनके भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम  
पूर्वकोटि प्रमाण जानना चाहिये । कुछ कमसे यहाँ प्रारम्भके आठ वर्षका और अन्तके  
अन्तर्मुहूर्त कालका ग्रहण किया है । देवोंमें यद्यपि अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर  
वतलाया है । पर भुजगार और अवस्थित स्थितियों सहस्रार स्वर्गतक ही होती हैं और  
सहस्रार कल्पकी उत्कृष्ट स्थिति साधिक अठारह सागर है, अतः इनके भुजगार और अवस्थित  
का उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ १६२ सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय और पचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवोंके पचेन्द्रिय तिर्यञ्च  
अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । पाँचों स्थावरकाय, त्रसअपर्याप्तक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों  
वचनयोगी, औदारिककाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंके पचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान  
जानना चाहिये । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना  
चाहिये । काययोगी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थिति-  
विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । आहारक-  
काययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है ।  
इसी प्रकार अपगतवेदी, अकपायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी,  
संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यात  
संयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,  
उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्याहृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । कर्मण-

अंतरं । अमर्दि० अहण्णक० एगसमओ । एवमणाहारि० ।

§ १६३ वेदाणुवादेण इत्थि० मुज० अवहि० जह० एगसमओ, उक्क० पण  
वण्ण पस्सिदोवमाणि देसूणाणि । अप्प० ओषं । णबुंसं मुज० अमर्दि० अह० एग-  
समओ, उक्क० वेणीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अप्पद० ओषं । एवमसंसद० ।

§ १६४ अचारिकसाय० मणजोगिमंगो । मदिअण्णाण-सुदअण्णाण०  
मुज०-अमर्दि० ज० एगसमओ, उक्क० एककीस सागरोवमाणि सादिरयाणि ।  
अप्पद० ओषं । बिहंग० मुज० अमर्दि० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोसु० । अप्पद०  
ओषं । पंचल० मुज०-अमर्दि० ज० एगसमओ, उक्क० सगद्धिदी देसूणा । अप्पद०  
ओषं । अमव० मिच्छादि० मदिअण्णाणिमंगो । असण्णि० कायनोगिमंगा ।  
एवमसराणुगमो समत्ता ।

§ १६५ खाद्यानीषां गंगविजयाणुगमेण दुबिहो णिहो-ओषण आदसण य ।  
तत्प ओषेण मुज० अप्प० अमर्दि० णियमा अत्थि । एषं विरिक्ख-सञ्चएदिय पुडवि०

काययोगी जीवोंके मुञ्जगार और अस्पतर स्थितिबिमर्दिता अन्तरकाल नहीं है । तथा अवस्थित स्थितिबिमर्दिता जपम्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ १६३ वेद मार्गणाके अनुवाकसे स्त्रीवेदी जीवोंके मुञ्जगार और अवस्थित स्थिति  
बिमर्दिता जपम्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पल्प है ।  
तथा अस्पतर स्थितिबिमर्दिता अन्तरकाल आपके समान है । नपुंसकवरी जीवोंके मुञ्जगार  
और अवस्थित स्थितिबिमर्दिता जपम्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ  
कम वेणीस सागर है । तथा अस्पतर स्थितिबिमर्दिता अन्तरकाल आपके समान है । इसी  
प्रकार असंयत जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ १६४ चारों कपावबाले जीवोंके मनोबोगी जीवोंके समान ज्ञानना चाहिये । मत्पद्धानी  
और सुतद्धानी जीवोंके मुञ्जगार और अवस्थित स्थितिबिमर्दिता जपम्य अन्तरकाल एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक इक्कीस सागर है । तथा अस्पतर स्थितिबिमर्दिता अन्तरकाल  
ओषके समान है । विमंग्गानी जीवोंके मुञ्जगार और अवस्थित स्थितिबिमर्दिता जपम्य  
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुख है । तथा अस्पतर स्थितिबिमर्दिता  
अन्तरकाल ओषके समान है । कृष्य आवि पाँच जहायावले जीवोंके मुञ्जगार और अवस्थित  
स्थितिबिमर्दिता जपम्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अस्पतर स्थितिबिमर्दिता अन्तरकाल ओषके समान है ।  
अमम्य और मिप्यादि जीवोंके मत्पद्धानी जीवोंके समान ज्ञानना चाहिये । तथा अस्तंरी  
जीवोंके कायबोगी जीवोंके समान ज्ञानना चाहिये ।

इस प्रकार अन्तराणुगम समाप्त हुआ ।

§ १६५ मान्य जीवोंकी अपेक्षा गंगविजयाणुगमसे निर्देष्ट हो प्रकारक है—ओषनिर्देष्ट  
और आश्चर्यनिर्देष्ट । इनमेंसे ओषकी अपेक्षा मुञ्जगार, अस्पतर और अवस्थित स्थितिबिमर्दिता

बादरपुढवि०-बादरपुढवि०अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढनिपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादर-  
 आउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०  
 [-बादरतेउ०] अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउ-  
 अपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ०पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०तस्सेव अप्पज्ज०-  
 सव्ववणप्फदि०-सव्वणिगोद०-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्म०-कम्मइय०-  
 एवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णण-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णलेस्सिय-भव०-  
 अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि ति ।

§ १६६ आदेसेण णेरइएसु अप्पद० अवट्ठि० णियमा अत्थि । भुज० भज्जियव्वं  
 सिया एदे च भुजगारविहत्तिओ च । सिया एदे च भुजगारविहत्तिया च २ । धुवे  
 पक्खिचं तिण्णि भंगा । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचि०तिरि०-मणुसतिय०-देव०-भव-  
 णादि-जाव सहस्सार०-सव्वविगलिय-सव्वपंचिदिय-बादरपुढवीपज्ज०-बादरआउ-  
 पज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-  
 पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि ति ।

जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवी-  
 कायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म  
 पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म  
 जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक,  
 बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक  
 अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म  
 वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर  
 वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी,  
 औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों  
 कषायवाले, मत्स्यज्ञानी, भुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य,  
 अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंखी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६६ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव  
 नियमसे हैं । तथा भुजगार स्थितिबिभक्तिवाले जीव भजनीय हैं-। ( १ ) कदाचित् बहुत  
 अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव होते हैं और एक भुजगार स्थितिबिभक्तिवाला  
 जीव होता है । ( २ ) कदाचित् बहुत अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव होते हैं  
 और बहुत भुजगार स्थितिबिभक्तिवाले जीव होते हैं । इन दोनों भगोंको ध्रुव भंगमें मिला देनेपर  
 तीन भग होते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य, पर्याप्त  
 और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके  
 देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादरजलकायिक पर्याप्त,  
 बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी  
 त्रस, पंचों मनोयोगी, पंचों वचनयोगी, वैक्रियिकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी,  
 चक्षुदर्शनी, पतिलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संखी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६७ मणुसअपज्जं सम्मपदा मणिज्जा । एवं वचम्वियमिस्सं । आण  
 दादि माय सम्मद्वेत्ति अप्पदं । णियमा अत्थि । एवमाभिणिं सुदं-ओरिं- मणपज्जं  
 संज्जदं- सापाइयच्छदो-परिहारं-संमडासंज्जदं-आरिदंसं-मुक्कं-सम्मादिं-  
 खइयं-नदपत्ति । आहारं आहारमिस्सं । सिया अप्पन्तरिहत्तिमा च सिया अप्पदर  
 बिहत्तिया च । एवमवगत्तं अफसां-सुहुमं-ब्रह्मत्तादं-उपसमं-सम्माभिं सासण  
 सम्मादिदि ति ।

एवं णाणाजीवहि मंगमिषआ समत्ता ।

§ १६८ भागाभागाशुगमेण दुबिहो णिहसा आयेण आदसेण ५ । तस्य  
 आयेण सुद्धं सम्मजीवं कं भागो ? अमत्ते-भागो । अवहिं सम्मजीवं के ?  
 संस्वं-भागो । अप्पन्-सम्मजीवं के ? भागा ? संस्वज्जा भागा । एवं सत्तसु पुडवीसु  
 सम्मतिरिक्क-मणुस-मणुसअपज्जं-इव भयणादि माय सहस्सार-सम्मपद्विदिय सम्मभिगळि-

§ १६९ मनुष्य अपयापकर्म मयी पद मज्जनीय है । इसी प्रकार वैदिकमित्रकायपागी  
 जीवोंके जानना चाहिये । जानत कल्पसे लेकर सकार्येच्छाि पर्वन्त अस्पतर स्थितिबिभक्तिवाले  
 जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार मतिशाली, बुद्धशाली अथविज्ञानी मनःपयवहानी संयत  
 सामायिक संयत देहापम्बापनामंयत परिहातबिद्विद्विर्मयत संयतासंयत अथविज्ञानी, हुक्क  
 सरवापास, सम्मगृष्टि, साबिकमम्यगृष्टि और वेदकसम्यगृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । आहारक-  
 कायपागी और आहारकमित्रकायपागी जीवोंमें कदाचिन् अस्पतर स्थितिबिभक्तिवाला एक  
 जीव होता है कदाचिन् अस्पतर स्थितिबिभक्तिवाला जनक जीव होते हैं । इसी प्रकार  
 अपगतवर्ती अफपायी सूक्ष्मसांप्रदायिकसंयत, यथाव्याप्तसंयत अपक्षमसम्यगृष्टि, सम्ममिध्वागृष्टि  
 और सासादनमम्यगृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशुद्धार्थ-ओपसे मुजगार, अस्पतर और अयम्वित स्थितिबिभक्तिवाले माना जीव  
 सनरा पाव जात है । पर मागणाधोमें विचार करनेपर बुद्ध मागणाधो एमी है जिनमें आप  
 प्रकृष्टा पत जाती है । बुद्ध मागणाधो एमी है जिनमें अस्पतर और अयम्वित स्थितिवाले माना  
 जीव ता नियमसे है तथा मुजगार स्थितिवाला कदाचिन् एक जीव होता है और कदाचिन् अनेक  
 जीव हात है । इस प्रकार इन दो आधुप भोगोंमें पहला भुवभोग मित्रा वेनपर तीन भोग हा जात  
 है । बुद्ध मागणाधो एमी है जिनमें तीनों पद मज्जनीय है । जमे लक्ष्यपरवाज्जक मनुष्य आदि ।  
 अन्तः यदा २६ भोग होंगे । बुद्ध मागणाधो एमी है जिनमें एक अस्पतर स्थितिवाले १ जीव हात है  
 और बुद्ध मागणाधो एमी है जिनमें अस्पतर स्थितिवाला कदाचिन् एक जीव होता है और  
 कदाचिन् नाग जाव हात है । जमे आहारक अपयागी आदि । अन्तः यदा ११ भोग होंगे ।

इस प्रकार मानाजीवोंकी अरुणा भंगविषयाशुगम समान दुष्टा ।

§ १६८ भागाभागाशुगमकी अपवा निर्देश वा प्रकारका है-आपनिर्देश और आदेन  
 निर्देश । इनमें आपकी अपवा मुजगार स्थितिबिभक्तिवाले जीव मय जीवोंके जिन माग है ?  
 अमी-गानधे माग है । अयम्वित स्थितिबिभक्तिवाले जीव मय जीवोंके जिन माग है ? मन्त्यानधे  
 माग है । अस्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीव मय जीवोंके जिन माग है ? मन्त्यानधे माग है ।



दिय-सव्वपंचिदिय-पंचकाय०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-कम्मइय-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि ति ।

§ १६६ मणुसपज्जत्तमणुसिणीसु भुज० सव्वजी० के० भागो ? संखे०भागो । एवमवट्ठिदि० । अप्पदर० संखेज्जा भागा । आणदादि जाव सव्वट्ठा ति णत्थि भागाभागं । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयव्वेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहि-दस०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि० ।

एवं भागाभागानुगमो समत्तो ।

§ २०० परिमाणाणुगमेण दुविहो णिदे सो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० अप्पद० अवट्ठि० केत्ति० ? अणंता । एव तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-सव्ववणप्पदि-सव्वणिगोद०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-णवुंस०-चत्तारिकसाय-

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवन-वासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकचेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पाचों स्थावरकाय, सभी त्रसकाय, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाय-योगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, वृणादि पाच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सज्ञी, असज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६६ मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले सख्यातवें भाग हैं । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले संख्यात बहुभाग हैं । आनत कल्पसे लेकर सवार्थसिद्धि पर्यन्त जीवोंके भागाभाग नहीं हैं, क्योंकि वहा एक अल्पतर पद ही पाया जाता है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मति-ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन-पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, द्वेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूत्रमसापरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ल-लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ २०० परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक,

मदिसुदअप्पाण०—असुनद—अचक्खु—तिण्णिखं०—भवसि०—अयवसि०—मिप्पदादि०  
असण्णि० आहारि०—अणाहारि णि ।

§ २०१ आदसेण णेरइएसु मुअ० अप्पद० अवहि० केचि० ? असंलज्जा । एअं  
सत्तसु पुइवीसु सम्भपेचि०तिरिक्ख—अणुस मणुसअपज्ज०—दव—अवणादि भाव सह-  
स्सार०—सम्भविगल्लिदिय—सम्भपेचि० अत्तारिकाय—मादरवणप्फदिपत्तय० पज्जत्तापज्ज-  
सम्भतस०—यच्चमण०—पंचवचि०—अवम्भिय०—अवम्भियमिस्स इत्थि—पुरिस०—विहंग०—  
अक्खु०—तेव०—पम्म०—सण्णिणि ।

§ २०२ मणुसपज्ज०—मणुसिणी० मुअ० अप्पद० अवहि० केचि० ?  
संलज्जा । आणदादि ज्ञाव अवराइदि अप्पदर० केचि० ? असंलज्जा ।  
एवमामिणि०—सुद०—आहि०—संअदासअद०—ओहिदंस०—सम्मादि०—अइय०—वेदय०—  
अवसम०—सासण०—सम्मामिप्पदादिदि णि । सम्मद० अप्पद० केचिया ? संलज्जा ।  
एवमाहार०—आहारमिस्स०—अवगद०—अकसा०—अणपज्ज०—संअद०—साभाइयअेदो०  
परिहार०—सुहु० अहाक्खादसअद्वि । सुक्क० आमिणि०अंगो ।

समी निगाह, कर्मयोगी औदारिकअवयोगी, औदारिक मित्रकर्मयोगी कर्मण्यकर्मयोगी  
नपुसकवेदी कर्मणि चारों कर्मयोगी मत्तजानी, अतुजानी असंयत, अचक्षुषेनी कर्मणि  
तीन सेस्यावाले, अन्व अमन्व मिप्पदादि, अन्वी आहारक और अनन्तरक जीवोंके जानना  
बाह्य ।

२ ? आरेखकी अपेक्षा मरुकिर्बोमें मुजगार अत्यन्त और अवस्थित स्थितिबिम्बित  
जीव कितन हैं ? संख्यात हैं । इसा प्रकार सातों प्रविधियोंके नारकी, समी पंचेन्द्रिय त्रियज  
सामान्य मनुष्य मनुष्य अपमान, सामान्यरेव अन्तवासियोंसे लेकर सद्गुरु कर्मठक रेव  
समी विद्वत्त्रिय समी पंचेन्द्रिय प्रविधीकर्मणि आदि चार स्वावरकर्म, बाहर वनस्पतिकार्यिक  
प्रत्येक चरीर, बाहर वनस्पतिकार्यिक प्रत्येक शरीर पयाप्त बाहर वनस्पतिकार्यिक प्रत्येक शरीर  
अपमान, समी अत्र पांचों अंगयोगी पांचों वनस्पति योगी वैश्विककर्मयोगी वैश्विकमित्र  
कर्मयोगी, आन्वो पुरुषरेवो, विनंगजानी, अक्षुषणी पीतलेस्यावाले पद्मसेस्यावाले और  
अन्वी जीवोंके जानना बाह्ये ।

§ २२ मनुष्य पयाप्त और मनुष्यनिर्बोमें मुजगार, अत्यन्त और अवस्थित स्थितिबिम्बित  
वाले जीव कितन हैं ? संख्यात हैं । आन्त कर्मसे लेकर अपराजित कर्मठकसे रेवोंमें अत्यन्त  
स्थितिबिम्बितवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सो प्रकार मतिजानी, अतुजानी, अपमानिनी  
संयतसंयत, अवक्षुषेनी सम्मद्वि, कर्मिकसन्मद्वि अक्षुषसन्मद्वि, अपमानसन्मद्वि,  
सासादनसन्मद्वि और सम्मग्निमद्वि जीवोंके जानना बाह्ये । सर्वावेसिद्धिमें अत्यन्त  
स्थितिबिम्बितवाले रेव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अक्षुषकर्मयोगी आहारकर्मिक  
कर्मयोगी अपमानवेदो अक्षुषणी अन्वपयवजानी, संयत सामान्य संयत रेवोपस्थापनसंयत  
परिहारविद्वत्संयत सूक्ष्मसांप्रत्यिकसंयत, और यवस्थितसंयत जीवोंके जानना बाह्य ।  
अक्षुषसेस्यावाले जीवोंका कर्म मतिजानी जीवोंके सामान्य है

## एवं परिमाणानुगमो समत्तो ।

§ २०३ खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्वेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० अप्पद० अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोए । एवं तिरिक्ख०-सव्वएइदिय-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय-मदिमुदअण्णाण-अचक्खु०-तिणिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि ति ।

§ २०४ आदेसेण णेरइएमु भुज० अप्पद० अवट्ठि० के० खे०? लोग० असखे०-भागे । एव सत्तमु पुढवीमु सव्वपच्चिदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगल्लि-दिय-सव्वपच्चिदिय-वादरपुढवि०पज्ज०-वादरआउ०पज्ज०-वादरतेउ०पज्ज०-वादरवाउ०पज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहग०-आभिणि०-मुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिणिले०-सम्मादिट्ठी-खइय०-वेदय०-

**विशेषार्थ—**ओघसे तीनों स्थितिविभक्तिवाले अनन्त हैं यह तो स्पष्ट है पर मार्गणाओंमें जिस मार्गणाका जितना प्रमाण है उसमें सम्भव स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सामान्यरूपसे उतना ही प्रमाण जानना चाहिये । अर्थात् जिस मार्गणाका प्रमाण अनन्त है उसमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण भी अनन्त ही है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना । किन्तु जहा एक ही स्थिति हो वहा एक की अपेक्षा ही कथन करना ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ २०३ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे आघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २०४ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले प्रत्येक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार सातो पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सभी मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदी, अरुपायी, विभगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रतज्ञानी, अधधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहार-

वनसम०-सासण०-सम्माधि०-सण्णि सि । अनरि वादरमाठ०पज्ज० साग०  
सत्ते०मागा ।

§ २०५ पुडधि०-वादरपुडधि० वादरपुडधिअपज्ज०-सुहुमपुडधि०-सुहुमपुडधि०  
पज्जत्तापज्जत्त-आठ०-वादरआठ०-वादरआठ०अपज्ज०-सुहुमआठ०-सुहुमआठ०पज्जत्ता  
पज्जत्त-तठ०-वादरतठ० वादरतठ०अपज्ज०-सुहुमतठ०-सुहुमतेठ०पज्जत्तापज्जत्त-माठ०  
वादरवादरअपज्ज०-सुहुममाठ०-सुहुममाठपज्जत्तापज्जत्त-माठरवणफटिपणेयअपज्ज०  
मुञ्ज० अम्पठ० अयटि० क० खेपे ! सम्बराणे ।

एवं खेसापुगयो समसी ।

§ २०६ पोतणापुगमेण दुबिहो शिर सो माचण आदसण य । तस्य ओचण

विमुञ्जितस्य सुहमसांपद्यिकस्यैव, पयास्मात्तस्य संयत्तस्यैव वसुधैर्धनी व्यवसितसनी,  
पात आदि तीन क्षेत्रावस्थे, सम्मगदधि, चायिकसम्मगदधि, वेदकसम्मगदधि, उपग्रमसम्मगदधि,  
सासादतसम्मगदधि, सम्मग्मिध्यादधि और संघी बीचोंके खानना चाहिये । इतनी विद्येता है कि  
वादर वायुकायिक पर्याप्त बीचोंका बतमान क्षेत्र लोकका संख्यातर्वा भाग है ।

§ २१ L. पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अरयात्त सूहम  
पृथिवीकायिक, सूहम पृथिवीकायिक पर्याप्त सूहम पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर  
जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त सूहम जलकायिक सूहमजलकायिक पयात्त सूहम  
जलकायिक अपर्याप्त अग्निकायिक, वादरअग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त  
सूहमअग्निकायिक सूहमअग्निकायिकपर्याप्त, सूहमअग्निकायिक अपर्याप्त वायुकायिक वादर वायु  
कायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त सूहमवायुकायिक सूहमवायुकायिक पर्याप्त सूहमवायु  
कायिक अपर्याप्त, वादरबनस्पतिकायिक प्रत्येक घरीर और वादर बनस्पतिकायिक प्रत्येक घरीर  
अपर्याप्तमें सुबगार, अरुतर और अरुत्तित स्थितिबिमिदिताले बीच कितन क्षेत्रमें रखे हैं ।  
सर्वे लोकमें रखे हैं ।

विशुपार्थ-आपसे तीनों स्थितिबाले बीच अनन्त हैं अतः इनका क्षेत्र सब लोक बन  
जाता है । पर मागायाधोंकी अपक्षा क्षेत्रका विचार करनेपर दो बिन्दु प्रम्य हात हैं । जिन  
मालेखाओंमें तीनों स्थितिबालोंम प्रमात्र अमन्त है उनका ता सब लोक क्षेत्र है ही । साथ ही  
पृथिवीकायिक आदि अस्तेव्यात संख्याबाली कुछ पंसा मार्गेषाए है जिनमें भी तीनों स्थिति  
बालोंम क्षेत्र सब लोक है । तथा इनके अतिरिक्त क्षेत्र जिनकी मागायाध है उनमें अपनी अपनी  
सम्भव सुबगार आदि स्थितियोंकी अपक्षा लोक अस्तेव्यातमें भागप्रमाण ही क्षेत्र जानना  
चाहिये । किन्तु वायुकायिक पक्षा बीच इसके अपक्षा हैं क्योंकि उनके तीनों स्थितियोंकी  
अपक्षा लोकके संज्ञातर्वा भाग प्रमाण क्षेत्र पाया जाता है । तदर्थ यह है कि मागायाधोंकी  
अपक्षा जिस मार्गेषा का क्षेत्र है वही पक्ष अपनी अपनी सम्भव स्थितिबिमिदिताले अपक्षा  
भाग होता है ।

इस प्रकार सत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ २१ सत्रानुगमकी अपक्षा निर्देश वा प्रकारका है-आपनिर्देश और आदेशनिर्देश

भुज० अप्पद० अवट्टि० खेतभंगो । एवं तिरिक्ख०-णवगेवज्जादि जाव सव्वट्ट०-  
 सव्वण्डंदि-पुढवि०-[ वादरपुढवि० ] वादरपुढवि०अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुम-  
 पुढवि०पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुम-  
 आउअपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउअपज्जत्ता-  
 पज्जत्त-आउ०-वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउअपज्जत्तापज्जत्त-  
 वादरवणप्फदिपत्तेय० - वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज० -- कायजोगि० - ओरालि० -  
 ओरालियमिस्स०-वेउळियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय-णवुंस०-अवगट०-  
 चत्तारिकसाय-अकसा०-मदिसुदअण्णाण०-मणपज्ज० - संजद-समाइयच्छेदो०-परिहार०-  
 सुहुम०-जहाक्खाद०-असंजद०-अचक्खु०-तिणिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-  
 असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति ।

§ २०७ आदेसेण गिरय० भुज० अप्पद० अवट्टि० केव० खे० पो० ?  
 लोग० असंखे०भागो छ चोइसभागा वा देसूणा । पढमपुढवि० खेतभंगो । विदि-  
 यादि जाव सत्तमि त्ति भुज० अप्पद० अवट्टि० के० खे० पोसिदं ? लोग० असंखे०  
 भागो एक्क वे तिण्णि चत्तारि पच छ चोइस भागा वा देसूणा ।

उनमेंसे ओषधी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यच, नौ अवयवसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादरजलकायिक, वादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्मजलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मजलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादरअग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादरवायुकायिक, वादरवायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककायोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुसकवेदी, अपगतवेदी, क्रोधादि चारो कपायवाले, अकषायी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथाख्यातसयत, असयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि उक्त मार्गणाओंमें जिसका जितना क्षेत्र बतला आये हैं उसका उतना स्पर्शन भी जानना चाहिये ।

§ २०७ आदेशकी अपेक्षा नरकगतमें नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग और प्रस-  
 नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें

॥ २०८ ॥ सव्यपंथि० तिरिनख० मुन० अप्यद० अबहि० क० खे० पो० ?  
 साग० असंखे० भागो सव्यलोगो वा । एष मणुस्स सव्यनिगर्हिदिय-पंनिदिय अपज्ज०  
 वादरप्पवि० ( पज्ज० )-वादरआठ० पज्ज०-वादरतेउ० पज्ज०-वादरवाउ० पज्ज०-वादर  
 वणप्पदिपचेय० पज्ज०-तसअपज्ज० । णवरि वादरनाउपज्ज० लो० संखे० भागो  
 सव्यलोगो वा ।

॥ २०९ ॥ दंव० मुन्न० अप्य० अबहि० लो० असंखे० भागो अट्ठणव चोइस  
 भागा वा देसूणा । एवं सोइम्मीसाणेषु । यवण० बाण० जोदिसि० एवं चेव ।  
 णवरि अद्दुहु भट्ठ णव चोइसभागा वा देसूणा । सणक्कुमारदि जाव सहस्सारेणि के०  
 खे० पो० ? लो० असंखे० भागो अट्ठचोइस भागा वा देसूणा । आणदादि आव  
 अच्चुदेणि के० खेत्तं पो० ? लो० अमखे० भागो अ चोइसभागा देसूणा ।

॥ २१० ॥ पंथिदिय पंथि० पज्ज०-तस-तसपज्ज० मुन्न० अप्यद० अबहि० के०  
 खे० पो० ? लो० असंखे० भागो अट्ठ चोइसभागा देसूणा सव्यलोगो वा । एवं पंथ

भाग क्षेत्रका और प्रसनालीके बीच भागोंमेंसे कमसे कुछ कम एक कुछ कम दो, कुछ कम तीन,  
 कुछ कम चार, कुछ कम पाँच और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पष्ट किया है ।

॥ २११ ॥ सभी पंचत्रिंशत्तिर्ययामें मुन्नारे, अस्वतर और अवस्थित स्थितिभिम्भित  
 बाल बीर्वाणि कितन क्षेत्रका स्पष्ट किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण  
 क्षेत्रका स्पष्ट किया है । इसी प्रकार सभी मनुष्य सभी विष्णुत्रिंशत् पंचत्रिंशत् अवस्थात वादर  
 पृथिवीकायिक पर्वात वादर जलकायिक पर्वात वादर अग्निकायिक पर्वात वादर वायुकायिक  
 पर्वात वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्वात और व्रस अपर्वात बीर्वाणि जानना चाहिये ।  
 इतनी बिसेरता है कि वादर वायुकायिक पर्वातबीर्वाणि लोकके संख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण  
 क्षेत्रका स्पष्ट किया है ।

॥ २१२ ॥ येषां मुन्नारे अस्वतर और अवस्थित स्थितिभिम्भितवासे बीर्वाणि लोकके  
 असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा प्रसनालीके बीच भागोंमेंसे कुछ कम आठ और नौ भागप्रमाण  
 क्षेत्रका स्पष्ट किया है । इसी प्रकार सौधर्मे और पणान स्वर्गके द्वेषोंके जानना चाहिये । भवन्-  
 वासी अस्वतर और अस्वोतिपो येषां भी इसी प्रकार जानना चाहिये । तनी बिसेरता है कि  
 इनके अतीतकालीन स्पष्ट प्रसनालीके बीच भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन कुछ कम आठ और  
 कुछ कम नौ भागप्रमाण होता है । सान्ख्यमारसे लेकर साक्षात् स्वर्ग तकके येषां कितन क्षेत्रका  
 स्पष्ट किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और प्रसनालीके बीच भागोंमेंसे कुछ कम  
 आठ भाग क्षेत्रका स्पष्ट किया है ? आननकस्ससे लेकर अच्युतकस्स तकके येषां कितन क्षेत्रका  
 स्पष्ट किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और प्रसनालीके बीच भागोंमेंसे कुछ कम छह  
 भाग क्षेत्रका स्पष्ट किया है ।

॥ २१३ ॥ पंचत्रिंशत् पंचत्रिंशत्पर्वात व्रस और व्रस पर्वत बीर्वाणि मुन्नारे, अस्वतर  
 और अवस्थित स्थितिभिम्भितबाल बीर्वाणि कितन क्षेत्रका स्पष्ट किया है ? लोकके असंख्यातवें  
 भाग क्षेत्रका प्रसनालीके बीच भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका और सर्व लोक क्षेत्रका स्पष्ट

मण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चकखु०-सणि त्ति । वेउव्विय० भुज०  
अप्प० अवट्ठि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ तेरह चोदस भागा वा  
देसूणा ।

§ २११, आभिणी० सुद० ओहि० अप्पद० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०  
भागो अट्ठ चोदस० देसूणा । एवमोहिदंस०-पम्मले०-सम्मादि०-खड्ढय०-वेडय०-उव-  
सम०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

§ २१२, संजदासंजद० अप्पद० के० खेत्तं पो० ? लोग० असंखे० भागो छ  
चोदस० देसूणा । एवं मुक्क० लेस्सा । तेउ० सोहम्मभंगो । सासण० अप्पद० के०  
खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ वारह चोदस० देसूणा ।

एव पोमणाणुगमो समत्तो ।

किया है । इसी प्रकार पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभगज्ञानी,  
चक्षुदर्शनी और सञ्जी जीवोंके जानना चाहिये । वैक्रियिकाययोगी जीवोंमें भुजगार, अल्पतर  
और अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातातवें  
भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग क्षेत्रका  
स्पर्श किया है ।

§ २११ मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अल्पतर स्थिति विभक्तिवाले  
जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह  
भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, पद्मलेश्यावाले  
सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके  
जानना चाहिये ।

§ २१२. सयतासयतोंमें अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श  
किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह  
भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जावोंके जानना चाहिये । पीतलेश्या-  
वाले जीवोंके सौधर्मस्वर्गके समान स्पर्श है । सासादनसम्यग्दृष्टि अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले  
जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह  
भागोंमेंसे कुछ कम आठ तथा कुछ कम बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

विशेषार्थ—ओषसे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिवालोंका क्षेत्र सब लोक  
वतलाया है दर्शन भी इतना ही है अतः इनके स्पर्शको क्षेत्रके समान कहा । इसी प्रकार तिर्यच  
आदिकमें स्पर्श जाननेकी सूचना की है । इसका यह अभिप्राय है कि उन मार्गणाओंमें, जिनका  
जितना क्षेत्र है स्पर्श भी उतना ही है । हा, सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनका  
स्पर्श क्षेत्रसे भिन्न है । अतः उनका पृथक् कथन किया । फिर भी जीवद्वारा स्पर्शन अनुयोग  
द्वारमें उन मार्गणाओंमेंसे जिसका जितना स्पर्श वतलाया है वही यहाँ उस उस मार्गणामें भुजगार  
आदि सम्भव पदोंकी अपेक्षा प्राप्त होता है । जो मूलमें वतलाया ही है । अब अमुक मार्गणमें  
अमुक स्पर्श क्यों प्राप्त होता है इसका विशेष खुलासा स्पर्शन अनुयोगद्वारासे जान लेना चाहिये ।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ २१३ कासाशुभयेण दुविहो णिइदेसो—आयेण आवेसण य । तस्य भोयेण  
 सुन०—अप्पद० अवहि० केचचिरं कासादा होति ? सम्बद्धा । एव तिरिक्त्त-सञ्च  
 परंदिय पुढवि०—वादरपुढवि०—वादरपुढविअपज्ज०—सुहुमपुढवि०—सुहुमपुढविपज्ज  
 पज्जत्त—आठ०—वादरआठ०—वादरआठअपज्ज०—सुहुमआठ—सुहुमआठपज्जत्तापज्जत्त  
 तेठ०—वादरनेठ०—वादरतठअपज्जत्त—सुहुमतेठ०—सुहुमतेठपज्जत्तापज्जत्त—वाठ०—वादर  
 वाठ०—वादरवाठअपज्जत्त—सुहुमवाठ०—सुहुमवाठपज्जत्तापज्जत्त—वादरवणप्फदिपरोय०—  
 वादरवणप्फदिपरोयअपज्जत्त०—सञ्चवणप्फत्ति सञ्चणिगोद०—कायजोगि—ओराभिय०  
 ओराभियभिस्स०—कम्मइय०—णबुस०—अचारिअ०—मदि—सुदअण्णा०—असंज०—अचक्खु०  
 तिणिल्ले०—मवसि०—अमवसि०—विच्छादिही—मसण्णि०—आहारि०—अणाहारि चि ।

§ २१४ आवेसेण णेरइएसु सुम० क० ? जइ० एयसमओ, वक्क आवसि०  
 असले०—भागो । अप्पत्त० अवहि० के० ? सम्बद्धा । एवं सत्तसु पुढवीसु सञ्चपंचिंदिय  
 तिरिक्त्त०—देव-मवणादि भाष सहस्तारे चि सञ्चविगसिंदिय-सञ्चपंचिंदिय वादरपुढवि  
 पज्ज० वादरआठपज्ज० वादरतेठपज्ज० वादरवाठपज्ज० वादरवणप्फदिपरोयपज्ज०  
 सम्बत्तस-पंचमण० पंचवचि०—वेडब्बिय—इत्थि०—परिस०—विहंग०—चक्खु०—तेठ०—पम्म०  
 सण्णि चि ।

§ २१५ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रत्यक्ष इ—अपेक्षानिर्देश और आवेक्षनिर्देश ।  
 वृत्तसे अपेक्षी अपेक्षा मुक्तागार अल्पतर और अवस्थित स्थितिपिमच्छिन्न किन्ता वात्त है ?  
 सप्त वात्त है । इसी प्रकार सामान्य नियम सभी ऐकेश्रिय श्रुतिबीकायिक, वादर श्रुतिबीकायिक  
 वादर श्रुतिबीकायिक अपवात्त सूक्ष्मश्रुतिबीकायिक सूक्ष्म श्रुतिपीकायिक पवात्त सूक्ष्म श्रुतिबीकायिक  
 अपवात्त जलकायिक वादर जलकायिक वादर जलकायिक अपवात्त सूक्ष्म जलकायिक सूक्ष्म  
 जलकायिक पवात्त सूक्ष्म जलकायिक अपवात्त अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्नि  
 कायिक अपवात्त सूक्ष्म अग्निकायिक सूक्ष्म अग्निकायिक पवात्त सूक्ष्म अग्निकायिक अपवात्त  
 वायुकायिक वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपवात्त सूक्ष्म वायुकायिक सूक्ष्म वायुकायिक  
 पवात्त सूक्ष्म वायुकायिक अपवात्त वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक  
 प्रत्येक शरीर अपवात्त सभी वनस्पतिकायिक सभी निगाए काययोगी औदारिक अयथागी  
 औदारिकमित्रअयथागी, कर्मलकाययोगी नपुमकवरी अपवादि चारों कथापपाले मर्यादानी  
 कृताग्रान्ती असंयत अवचुदानी कृष्णादि तीन लक्षणापासे मम्म अमरय मिथ्यादि  
 असंती, आहारक और अन्तहारक जीवोंके जानना चाहिय ।

§ २१४ आवेक्षकी अपेक्षा नारकियोंमें मुक्तागार स्थितिपिमच्छिन्न किन्ता पत्त है ?  
 अपम्य वात्त एक समय और उद्गृह्य पञ्च व्यावलीक असंयताने भोग ममत्ता है । तथा अस्तर  
 और अवस्थित स्थितिपिमच्छिन्न किन्ता वात्त है ? सप्त वात्त है । इसी प्रकार सभी श्रुतिपिपेक्षि  
 नारकी सभी पंचेश्रिय नियम सामान्य इव मपनपामिदामे सत्तर सदस्तार करन तकक हैय  
 सभी बिच्छुश्रिय सभी पंचेश्रिय वादर श्रुतिपीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पवात्त वादर  
 अग्निकायिक पवात्त, वादर वायुकायिक पवात्त वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पवात्त सभी  
 वस पांचों मन्तायागी पांचों वचनवागी वैदिकिक अयथागी स्त्रीवंशी पुम्पवरी विमंगयान्ती  
 वचुदानी, पीनल-वाचन, पञ्चलक्षणापासे और सभी जीवोंके जानना चाहिय ।



§ २१५. मणुस० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० भुज० के० ? ज० एगसमओ उक्क० संखेज्जा समया । मणुसतिएसु अप्पद०-अवट्ठि सव्वद्धा । मणुसअपज्ज० भुज० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अप्प०-अवट्ठि० के० ? जह० एगस० उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । एवं वेजवियमिस्स० ।

§ २१६ आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धेत्ति अप्पदर० के० ? सव्वद्धा । एवमा-भिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-सजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदामंजद०-ओहिदंसण०-सुकले०-सम्मदि०-खइय०-वेदय०दिट्ठि ति ।

§ २१७ आहार०-आहारमिस्स० अप्पदर० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । णवरि आहारमिस्स० जहण्णु० अंतोमु० अवगद० अप्प० के० ? ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तो । एवमकसा०-सुहुम०-जहास्वाद० संजदे ति । उवसम० अप्पद० के० ? जह० अंतोमु०, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । एवं सम्मामि०-सासण० । णवरि सासण० जह० एयसमओ ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ २१५ मनुष्योंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका जपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भुजगार स्थिति-विभक्तिका कितना काल है ? जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है । तथा उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सर्वदा है । लब्ध-पर्याप्तक मनुष्योंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका काल कितना है ? जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्ति का कितना काल है ? जपन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार वैक्यिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २१६ आन्त कल्पसे लेकर सर्वाथसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल है । इसी प्रकार आभिनिषेधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सयतासयत अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २१७ आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्ति वाले जीवोंका कितना काल है ? जपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जपन्य और उत्कृष्ट दोनों काल अन्तर्मुहूर्त हैं । अपगतवेदी जीवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अक्रपायी, सूक्ष्मसापरायिक-सयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंका कितना काल है ? जपन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जपन्यकाल एक समय है ।

१२१= अंतराणुगमेण दुविहो गिहोसो—ओघेण आदसेण य । तस्य ओघेण  
 सु३०-अप्यद०-अवदि० अंतरं केवचिरं । १ णत्थि अंतरं । एवं तिरिक्ख०-सम्भ  
 प३दिय-पु३वि०-वादरपु३वि०-वादरपु३विअपज्ज०-सुहुमपु३वि० सुहुमपु३विपज्जता  
 पज्जत आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जतापज्जत

विशुपाये—माना जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार करकेपर ओषस तीनों स्थितियां निरन्तर  
 है अतः इतना काल सदैव का है । मागण्याओंमें कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनमें ये सर्वदा पाइ  
 जाती हैं । जैसे सामान्य तिर्येय आदि । कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनमें अस्पतर और अवस्थित  
 स्थितियां तो सर्वदा पाई जाती हैं पर मुजगार स्थिति साम्तर है कभी होती और कभी नहीं भी  
 होती । यदि होती है तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आशक्तिके असंख्यातमें  
 भागप्रमाण काल तक होती है । जैसे सामान्य नारकी आदि । किन्तु मनुष्य पर्वत और मनुष्यनी  
 वे दो मार्गोपाय ऐसी हैं जिनमें मुजगार स्थितिका उच्छ्र काल संख्यात समय है, क्योंकि ये दोनों  
 मागण्याएँ ही संख्यातसंख्यावासी हैं । कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनमें तीनों स्थितियां साम्तर हैं  
 क्योंकि वे मार्गोपाय स्वयं साम्तर हैं अतः इनमें मुजगारका अपन्य काल एक समय और उच्छ्र  
 काल आशक्तिके असंख्यातमें भागप्रमाण है । तथा अस्पतर और अवस्थितका अपन्य काल एक  
 समय और उच्छ्र काल पश्यके असंख्यातमें भागप्रमाण है । यहाँ यह शंका होती है कि ऐसी  
 मार्गोपायोंका उच्छ्र काल पश्यके असंख्यातमें भागप्रमाण है और अंगविचय अनुभागद्वारमें तीनों  
 को मजनीय वतसाया है अतः इतमें अस्पतर और अवस्थित का उच्छ्र काल एक प्रमाण नहीं  
 बनना चाहिये । सो इसका यह समाधान है कि जब एक मार्गोपायवाले जीव निरन्तर पश्यके  
 असंख्यातमें भागप्रमाण काल तक होते रहते हैं तब इनमें कदाचित् अस्पतर और अवस्थित  
 स्थितियां नाना जीवोंकी अपेक्षा एक काल तक सदैव पाई जा सकती हैं अतः इतका इच्छ्र काल  
 एक प्रमाण बन जाता है । कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनमें निरन्तर अस्पतर स्थिति ही पाई जाती है  
 अतः इनमें अस्पतर स्थितिका काल सर्वदा है । यथा—आनत कुरवअदिकेय आदि । कुछ ऐसी  
 मार्गोपाय हैं जिनका अपन्य काल एक समय और उच्छ्र काल अन्तमु हुते हैं । तथा जिनमें एक  
 अस्पतर स्थिति ही पाई जाती है, अतः इनमें अस्पतर स्थितिका अपन्य और उच्छ्र काल एक  
 प्रमाण जानना । यथा—आहारअययोग आदि । किन्तु आहारअययोगका अपन्य और  
 इच्छ्र काल अन्तमु हुते हैं अतः इसमें अस्पतर स्थितिका अपन्य और उच्छ्र काल एक प्रमाण  
 ही प्राप्त होता है । तथा कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनका अपन्य काल अन्तमु हुते और इच्छ्र काल  
 पश्यके असंख्यातमें भागप्रमाण है और इनमें एक अस्पतर स्थिति ही सम्भव है, अतः इनमें  
 अस्पतर स्थितिका अपन्य और उच्छ्र काल एक प्रमाण कहा । किन्तु इन मागण्याओंमें साधारण  
 सम्बन्धित मार्गोपाय ऐसी हैं जिसका अपन्य काल एक समय ही है अतः इसमें अस्पतर स्थितिका  
 अपन्य काल एक समय जानना चाहिये ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

१२२= अन्तराणुगमकी अपेक्षा निर्देस या प्रकारका है—आपनिर्देस और आदेउनिर्देस ।

इनमें से ओष की अपेक्षा मुजगार, अस्पतर और अवस्थित स्थिति विमर्शिता जीवों का  
 अन्तरकाल चिन्ता है । इनका अन्तराणुगम नहीं है । इसी प्रकार सामान्य तिर्येय, समी परत्रिय,  
 दुधियोअधिक, वादर दुधियोअधिक वादर दुधियोअधिक अपवात, सूक्ष्म दुधियोअधिक सूक्ष्म  
 दुधियोअधिक पपात, सूक्ष्म दुधियोअधिक अपवात, वतकादिक, वादर जनकादिक, वादर वत-



§ २२१ आणदादि जाव सन्नहसिद्धि चि अप्पद० नास्थि अतरं । एवमा  
भिभि०-सुद० ओहि०-मणपल०-संजद०-सामाह्य-वेदो०-परिहार० संभदासंनद०  
ओरिईस०-मुक्कले०-सम्मादि०-स्वइय० धवय०दिदि चि ।

§ २२२ आहार० आहारमिस्स० अप्पद० अतरं फ० ? जह० एगसमओ,  
उक० वासपुअत्तं । एवगफसाय जहावत्तावसजदं चि । अवगद० अप्पद० जह० एग  
समओ, उक० कम्मासा । एवं सुहुसांपरायसंजदं चि । उवसम अप्पद० के० ? खह०  
एगसमओ, उक० चववीस अहोरत्ताणि । सासण०-सम्माभि० अप्पद० जह० एग  
समओ, उक० पस्सिदो० असुत्वे०भागो ।

एवमतराशुभो समयो ।

§ २२१ आनत कस्यसे सकर सर्वांसिद्धतक इषामें अस्पतर स्थितिबिम्बित्वाले  
बीबोंक अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार आभिनिवाचिकछानी बुद्धछानी अवधिछानी, मन्दपर्यय  
छानी, संयत, सामाधिकसंयत क्षेत्रापस्थापनासंयत परिहारविद्विद्धिसंयत संयतासंयत अवधिवधनी,  
पुत्तलेवावाले, सम्बरदृष्टि काविकसम्बरदृष्टि और वेदकसम्बरदृष्टि बीबोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ २२२ आहारकअवयोगी और आहारधर्मिकअवयोगी बीबोंमें अस्पतर स्थितिबिम्बित्वाले  
बीबोंक अन्तरकाल कितना है ? अपन्य अन्तरकाल एक समय और कल्प अन्तरकाल अपमन्त्र  
है । इसी प्रकार अकपायी और यवात्म्यातसंयत बीबोंके ज्ञानना चाहिये । अपगतवही अस्पतर  
स्थितिबिम्बित्वाले बीबोंक अपन्य अन्तरकाल एक समय और कल्प अन्तरकाल वह नहींना  
है । इसी प्रकार सूक्ष्मसंपादयिकसंयत बीबोंके ज्ञानना चाहिये । वरमसम्बरदृष्टि अस्पतर  
स्थितिबिम्बित्वाले बीबोंक अन्तरकाल कितना है ? अपन्य अन्तरकाल एक समय और कल्प  
अन्तरकाल बीबीस दिनगत है । सासाइनसम्बरदृष्टि और सम्बरमिप्यादृष्टि अस्पतर स्थिति  
बिम्बित्वाले बीबोंना अपन्य अन्तरकाल एक समय और कल्प अन्तरकाल पस्थापनक असंख्यातवें  
भाग प्रमाण है ।

विशुपार्थ-तीनों स्थितिबाल माना बीब सर्वथा पाव जात हैं अतः आपस इनका अन्तर  
काय नहीं बनता । मार्गलाभोंमें कुछ जमा मार्गलाभ हैं जिनमें तीनों स्थितिबाल बीब सर्वथा पाव  
जाते हैं अतः इनके कवनका आपसके समाप्त कहा । बुद्ध पर्या मार्गलाभ हैं जिनमें मुनगारक  
अपन्य अन्तर एक समय और कल्प अन्तर अन्तमुहृत है तथा अन्तर आर अवस्थित  
स्थितिक अन्तरकाल नहीं है । यथा सामान्य गारकी भावि । इत्थं कारण यह है कि इनमें कपल  
मुनगार स्थिति ही मात्र है फिर भी माना बीबोंकी अपवा समझा अन्तरकाल अन्तमुहृतम  
अधिक नहीं प्राप्त होता । भाग ममुप्य अपवाप्त भावि जितनी मार्गलाभोंमें मुनगार भावि  
स्थितियोंके अन्तरकालक वधन किया है उनमें जिस मार्गलाभ जितना अन्तर काल है उन्में  
सम्भय स्थितियोंक जना अन्तरकाल ज्ञानना चाहिये । जहावत्ताके स्थि कल्पपथात मनुष्योंक  
अपन्य अन्तरकाल एक समय और कल्प अन्तरकाल पन्यके अन्तरकालमें भागप्रमाण है अतः  
इसमें मुनगार भावि तीनों स्थितियोंक जमा अन्तरकाल एक समय और कल्प अन्तरकाल  
पन्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । इसी प्रकार अन्ध मार्गलाभोंमें भी ज्ञानना चाहिये ।

इस प्रकार अन्तरागम समय हुआ ।

तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादग्वाउ-  
वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय-वादरव-  
णप्फदिपत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-  
कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय०-मदि-सुदग्रण्णाण०-असंजद०-अचम्पु०-तिण्णिले०-  
भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-असरिण०-आहारि०-अणाहारि० चि ।

§ २१६. आदेसेण णेरइएसु भुज० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क०  
अंतोमु० । अप्प०-अवद्धि० एत्थि अंतरं । एवं सत्तसु पुढीमु सव्वपचिदियतिरिक्ख-  
मणुसतिय०-डेव०-मवणादि जाव सहस्सार०-सव्वणिगलिंदिय-सव्वपचिदिय०-  
वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादरवणप्फदि-  
पत्तेयपज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउविय०-इत्थि०-पुरिस०-विहग०-  
चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि चि ।

§ २२०. मणुसअपज्ज० भुज०-अप्प०-अवद्धि० अंतरं के० ? जह० एग-  
समओ, उक्क० पलिदो असंखे०भागो । एवं वेउवियमिस्स० । णवरि उक्क० वारस  
मुहुत्ता ।

कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि-  
कायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्नि-  
कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पति-  
कायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पति, निगोद, काययोगी,  
औदारिककाययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों  
कपायकाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत्, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य,  
अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी, आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये ।

§ २१६ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल  
कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त है । तथा अल्पतर और अवस्थित  
स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय  
तिर्यञ्च, सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे  
लेकर सद्भस्त्रार स्वर्ग तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त,  
वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पति-  
कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी व्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियिकाययोगी,  
ओवेदी, पुरुषवेदी, विभगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और सङ्गी जीवोंके  
जानना चाहिये ।

§ २२० मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले  
जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके  
असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी  
विशेषता है कि इनके उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है ।

सुद्ध०-सम्मादिही-स्वइय०-वेतय०-उवसम० सासण०-सम्माभिष्खादिदि पित्ति ।

एवमप्यावहुगाणुगमो समत्तो ।

एवं मुञ्जगारबिहारी समत्ता ।

—०—

§ २२६ पदपिक्खेवे तत्थ इमाणि तिण्णि अभिजोगहाराणि—समुत्तिपणा  
साभिच अप्यावहुअं चेदि । समुत्तिपणं दुषिहं—अण्णय उक्कस्सय चेदि । तत्थ  
उक्कस्से पयदं । दुदिही णिहोसो—ओपेण आदेसेण य । तत्थ ओपेण मोह० अत्थि  
उक्कस्सिया बह्वी उक्क हाणी उक्कस्समवहाणं व । एवं सत्तु पुटवीसु सत्थ  
तिरिक्क-सम्भयजुस वेव भवणादि आब सहस्सार०-सम्भयइदिय-सम्भविगस्मिदिय-सम्भ  
पंचिदिय-पंचकाय-सम्भतत्त०-पंचमण०-पंचवसि०-कायजोगि-ओराखिय०-ओराखिय-  
मिस्स-वेवम्भिय-वेट०-मिस्स-कम्मइय-तिण्णिवेद-चचारिकसाय-मदि-मुद्धअण्णाय०-  
विहंग०-असंभद०-वक्खु०-अवक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिष्खादि०-  
सप्पि०-असप्पि०-आहारि०-अणाहारि पित्ति ।

§ २२७ आणवादि जाव सम्भइसिद्धि पित्ति अत्थि उक्कस्सिया हाणि । एव  
माहार-[आहार]मिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-मुद्ध०-ओहि०-मणपज्जव०

अवधिहोती इत्युक्तेत्यापाते सम्पद्यति, कायिकसम्पद्यति वेदकसम्पद्यति, उपशमसम्पद्यति  
सासादनसम्पद्यति और सम्यग्मिष्यादिति बीबोंके जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन  
मार्गशास्त्रोंमें एक अल्पतर स्थिति पाई जाती है इसलिये इन्हीं अल्पवृत्त नहीं पाया जाता ।

इस प्रकार असम्पत्त्वानुगम समाप्त हुआ ।

इस प्रकार मुञ्जगार विमर्श समाप्त हुई ।

—०—

§ २२६ अब पदनिक्षेपका कथन अवसर प्राप्त है । उसके विषयमें व तीन अनुपांगद्वार  
हाव हैं—समुत्तीर्तता स्वामित्व और आत्मवृत्त । समुत्तीर्तता दो प्रकार की है—अदम्य और  
वृत्त । इनमेंसे वृत्तका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और  
आवेष्टनिर्देश । इनमेंसे आपकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिपिण्डितकी उत्पत्ति वृद्धि वृत्त हाति  
और वृत्त अवस्थान है । इसी प्रकार सातों प्रविधियोंके मारकी समी तिर्यक् समी मनुष्य  
सामान्य वेव भवतवासियोंसे लेकर सहस्सार स्वर्ग तकके वेव समी एकेन्द्रिय समी विक्षेपेन्द्रिय  
समी पंचेन्द्रिय समी पाँचों स्वावरज्य समी वस, पाँचों मनोयोगी पाँचों पञ्चनयोगी काययोगी  
औरारिककाययोगी, औरारिकमिष्यकाययोगी वैक्रियिककाययोगी वैक्रियिकमिष्यकाययोगी  
पामंयप्रवयोगी तीनों वेववाले कायाभि चारों कायवाले मत्तकाणी, भुताहाणी विमंगकाणी  
असंयत वृद्धसैनवाले अवचुदवीतवाले कम्प्यादि पाँच संस्थावाले मध्य अमध्य मिष्यादिति  
संघी असंघी आहारक और अमाहारक बीबोंके जानना चाहिये ।

§ २२७ आन्त कथ्यसे लेकर सर्वविधिति तकके देशमें मोहनीय स्थितिबिभक्तिकी  
वृत्त हाति है । इसी प्रकार आहारकाययोगी आहारकमिष्यकाययोगी अपगतवेही अकपायी  
आभिनिक्षेपकाणी भुताहाणी अवधिवाणी मन्त्रपर्यवगायी संयत सामायिकसंयत

§ २२३. भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइयो भावो ।

एवं भावाणुगमो समत्तो ।

§ २२४ अप्पावहुगाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा भुज० विहत्तिया । अपट्ठि० असंखे० गुणा । अप्पद० संखे० गुणा । एवं सत्तसु पुट्ठीसु सव्वतिरिक्ख० मणुस०—मणुसअपज्ज०—देव-भवणादि जाव सहस्सार०—सव्वएइंदिय—सव्वविगलिटिय—सव्वपंचि०—पंचकाय—सव्वतस—पंचमण०—पंचवचि०—कायजोगि०—ओरालिय०—ओरालियमिस्स०—वेउव्विय०—वेउ० मिस्स०—कम्मइय०—तिण्णिवेद०—चत्तारिकसाय—मदि—सुदअएणाण०—विहंग०—असंजद०—चक्खु०—अचक्खु०—पंचले०—भवसि०—अभवसि०—मिच्छादि०—सण्णि०—असण्णि०—आहारि—अणाहारि ति ।

§ २२५. मणुसपज्ज०—मणुसिणीसु सव्वत्थोवा भुज० । अवट्ठि० संखे० गुणा । अप्पद० संखे० गुणा । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि ति अप्पद० णत्थि अप्पावहुगं । एममाहार०—आहारमिस्स०—अवगद०—अकसा०—आभिणि०—सुद—ओहि०—मणपज्ज०—संजद०—समाइय—छेदो०—परिहार०—सुहुमसांपराय०—जहाक्खाद०—संजदामंजद—ओहिदंस०—

§ २२३ भावानुगम की अपेक्षा सवत्र ओदयिक भाव है ।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

§ २२४ अल्पवहुत्वानुगम की अपेक्षा निर्देश दा प्रकार का है—ओपनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमें से ओप की अपेक्षा भुजगारस्थितिबिभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतर स्थितिबिभक्ति वाले जीव सख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियों के नारकी, सभी तिर्यच, सामान्य मनुष्य, लघ्व-पर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियों से लेकर सहस्त्रार स्वर्ग तक के देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, पाचों स्थावर काय, सभी त्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों वचन योगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्र काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, कामैणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, असयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि पाच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सङ्गी, असङ्गी, आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि उक्त मार्गणाएँ अनन्त और असख्यात सख्यावाली हैं अतः इनमें उक्त क्रम बन जाता है ।

§ २२५ मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोमे भुजगार स्थितिबिभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थित स्थितिबिभक्तिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । तात्पर्य यह है कि ये मार्गणाएँ सख्यात सख्यावाली हैं । सलिये इनमें उक्त क्रम ही घटित होता है । आनन कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके अल्पतर स्थितिबिभक्तिवाले देवोंका अल्पवहुत्व नहीं है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी अकपायी, अभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापराधिकसयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत,

सुष्ठु०-सम्मादिही-स्वइय०-वेदय०-सवसम०-सासण०-सम्भामिच्छादिहि चि ।

एवमप्यावहुगागुगमो समसो ।

एवं मुञ्जगारविहरी समसा ।

— — —

§ २२६ पदविच्छेदे तस्य इमाणि तिष्ठिणि अणिओगहाराणि—समुच्चिन्ना  
सामिच अप्यावहुअं चेदि । समुच्चिन्नं दुविहं—ब्रह्मण्य उक्कस्सय चेदि । तस्य  
उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहंसो—ओघेण आदेसेण य । तस्य ओघेण मोह० अस्ति  
उक्कस्सिया वड्डी उक्क हाणी उक्कस्सयवहानं च । एवं सत्तसु पुढवीसु सम्भ  
तिरिक्ख-सम्भमणुस-वेध मवणादि जाव सहस्सार०-सम्भएइदिय-सम्भमिगसिदिय-सम्भ-  
पंचिदिय-पंचकाय-सम्भउस०-पंचमण०-पंचवसि०-कायओगि-ओरासिय०-ओरासिय-  
मिस्स-वेडम्भिय-वेड०-मिस्स-कम्माइय-तिणिवेद-वचारिकसाय-मदि-मुदअण्णाण०-  
मिहंग०-असंजद०-वक्खु०-अवक्खु०-पंचत्ते०-मवसि०-अयवसि०-मिच्छादि०-  
सणि०-असण्णि०-आहारि०-अपाहारि चि ।

§ २२७ आणदादि जाव सम्भउसिद्धि चि अस्ति उक्कस्सिया हाणि । एव  
माहार-[माहार]मिस्स०-अवगद०-अकसा०-आमिणि०-मुद०-मोहि०-मणपक्खव०

अवविहतेनी हुक्कलेखावाले सम्यन्दहि, कायिकसम्यन्दहि, वेदकसम्यन्दहि क्यम्भसम्भन्दहि  
छावादनसम्यन्दहि और सम्भमिध्यान्दहि बीचोंके जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन  
मानौषाओंमें एक अस्पष्टर विभक्ति पाई जाती है इसलिये इनमें अवस्पष्टत्व नहीं पाया जाता ।

इस प्रकार अवस्पष्टत्वानुगम समस्त हुआ ।

इस प्रकार मुञ्जगार विभक्ति समाप्त हुई ।

— — —

§ २२६ अब पदविच्छेदक कथन अबसर प्राप्त है । इसके विषयमें वे तीन अनुयोगद्वारा  
हाते हैं—समुत्कीर्तना स्वामित्व और अवस्पष्टत्व । समुत्कीर्तना दो प्रकार की है—अवस्य और  
उत्स्य । उनमेंसे उत्स्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश भी प्रकारका है—ओपनिर्देश और  
आवेकनिर्देश । उनमेंसे आवेकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिचिम्बिकि की उत्स्य बुद्धि उत्स्य हानि  
और उत्स्य अवस्थान है । इसी प्रकार सातों प्रविधियोंके मारकी सभी ठियैच सभी समुच्च्य  
सामान्य वेध मवनवासियोंसे लेकर सहस्सार स्वर्ग तकके वेध सभी एकेन्द्रिय सभी विकसेन्द्रिय  
सभी पंचेन्द्रिय सभी पाँचों स्थावरकाय सभी प्रस, पाँचों मनोयोगी पाँचों वचनयोगी काययोगी  
औशारिककाययोगी, औशारिकमिगकाययोगी वैश्वियिककाययोगी वैश्वियिकमिगकाययोगी  
अनस्यकाययोगी तीनों वेधवाले क्काधादि चारों अणववाले मत्त्वजानी, भुताजानी विसंगजानी  
असंपद, पक्खुअनवाले, अवक्खुअनवाले, कण्णादि पाँच संख्यावाले भव्य, अवस्य मिध्यान्दहि  
संकी असंकी आहारक और अनाहारक बीचोंके जानना चाहिये ।

§ २२७ आनत कण्ठसे लेकर सर्वाधिसिद्धि तकके वेधोंमें मोहनीय स्थितिचिम्बिकि की  
उत्स्य हानि है । इसी प्रकार आहारकमययोगी आहारकमिगकाययोगी अवगतवेदी, अवकायी  
आमिनिबोधकजानी, भुताजानी अवविहानी भन्तपर्यव्याप्ती संवत् सामायिकसंवत्



संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-मुहुम०-जहाक्खाद०-संजडासंजद-ओहिदंस०-  
सुककले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि० ।

एवमुक्कस्मसमुक्किक्त्तणाणुगमो समत्तो ।

§ २२८ जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण मोह० अत्थि जहण्णवड्ढी जहण्णहाणी जहण्णमवट्ठाणं च । एवं सव्वणिरय-  
सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-देव-भवणादि जाव सहस्मार०-सव्वएइदिय-सव्वविगल्लिदिय-  
सव्वपंचिदिय-पंचकाय-सव्वतस०-पंचमण-पंचवचि०-कायजोगी-ओरालिय०-ओरालिय-  
मिस्स-वेउव्विय-वेउ०मिस्स-रुम्मइय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकमाय-मदि-मुदअण्णाण-विहंग०-  
असंजद०-चमखु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि-अमण्णि-  
आहारि०-अणाहारि ति ।

§ २२९ आणदादि जाय सव्वद्वसिद्धि ति अत्थि जह० हाणी । एवमाहार०-  
आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-आभिणि० सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-मजद०-सामाइय-  
छेदो०-परिहार०-मुहुमसाप०-जहाक्खाद०-संजडासंजद०-ओहिदंस०-सुक०-सम्मा-  
दिद्वी-खइय०-वेदय०-उवसम०-मासण०-सम्माभि० ।

छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत,  
अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि,  
सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ ।

§ २२८ अब जघन्य समुत्कीर्तनानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार  
का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमें से ओघकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिविभक्तिकी  
जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान है । इसी प्रकार सभी नारकी, सभी तिर्यंच,  
सभी मनुष्य, सामान्य देव, भयनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तरुके देव, सभी एकेन्द्रिय  
सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, सभी पाचों स्थावरकाय, सभी व्रस, पाचों मनोयोगी, पाचों  
वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी,  
वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, मल्यज्ञानी,  
श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी असयत चतुर्दशदर्शनवाले अचतुर्दशदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य,  
अभव्य, मिध्यादृष्टि, सङ्गी, असङ्गी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २२९ आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मोहनीय स्थितिविभक्तिकी जघन्य  
हानि है । इसी प्रकार आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी,  
आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसयत, छेदो-  
पस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसाम्परायिकसयत यथाख्यातसयत, सयतासयत, अवधि-  
दर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन-  
सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जहाँ स्थितिकी वृद्धि और हानिके अनेक विकल्प सम्भव हैं वहाँ जब वन्ध या  
सक्रिय द्वारा सबसे अधिक बढाकर स्थिति प्राप्त होती है तब उत्कृष्ट वृद्धि कहलाती है । तथा

## एवं समुक्तिगणानुगमो समचो ।

§ २३० सामिचानुगमो दुषिहो—जहणओ उक्कस्सओ च । उक्कस्सए पयदं । दुषिहो णिहो—ओपेण आदसेण य । ओपेण मोह० उक्कस्सिया पददी कस्स ? अण्णदरस्स ओ चवुहाणियनवमज्जस्स उवरि अतोकोडाकादिदिदि बंधतो अण्णदो दिदिबंधदाए पुण्णाए भण उक्कस्सदिदिसंकिसेस गदेण उक्कस्सदिदी पयदा तस्स उक्कस्सिया पददी । तस्सय स काल उक्कस्समपट्ठाणं । उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्सदिदिसंतकम्मिओ तेष उक्कस्सदिदिदंअए इद तस्स उक्क० हाणी । एवं सत्तमु पुड्डीमु तिरिक्क०—पंचिदियतिरिक्क०—पंचि०तिरि०पज्ज० पंचितिरि०जोगिणी-मणुससिय-दंन-मवणादि आच सहस्सार०—पंचिदिय-पंचि०पज्ज० तस-तसपज्ज०—पंचमण० पंचवधि० कायजोगि०—ओरासिय० वेत्तम्मिय०—विणिग्गद

स्वितिकाण्डकपात आदिके द्वारा जब पक्के अधिक स्थिति पदाई जाती है तब उत्कृष्ट हानि करताती है । तथा उत्कृष्ट वृद्धि वायु का अस्तित्व होता है उसे उत्कृष्ट अवस्थान कहते हैं । ओपमे मोहनीय कर्मकी स्थितिमें ये तीनों पद सम्मेल हैं अतः ओपमे मोहनीय कर्मकी स्थितिकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होता है यह कहा है । इसी प्रकार जिस जिस मार्गामें अपने अपने योग्य हानि वृद्धि और अवस्थान सम्मेल हैं हम इस मार्गामें हमके अनुसर उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान जानना चाहिये । किन्तु कुछ ऐसी म गैरवाह्य हैं जिनमें हानि ही होती है । जैसे आनन आदि । फिर भी वहाँ स्थितिकी हानि एक समय प्रमाण भी होती है और अधिक भी होती है । अतः वहाँ उत्कृष्टपदकी अपेक्षा केवल उत्कृष्ट हानि बतलाई है उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थान ये दो पद नहीं बतलाए । अपम्य वृद्धि आदिमें भी ऐसा प्रकार कवन करना चाहिये । तत्पय यह है कि वहाँ उत्कृष्ट वृद्धि आदि सम्मेल हैं वहाँ अपम्य वृद्धि आदि भी सम्मेल हैं । किन्तु वहाँ उत्कृष्टकी अपेक्षा केवल उत्कृष्ट हानि है वहाँ अपम्यकी अपेक्षा केवल अपम्य हानि है । कारण स्पष्ट है ।

इस प्रकार अपम्य समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ ।

§ २३१ स्वामित्वानुगम दो प्रकारका है—तपन्य और उत्कृष्ट । हमसेसे पहले उत्कृष्टका प्रमाण है । इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आपभिर्देश और आदशनिर्देश । ओपकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिभिभक्तिकी उत्कृष्ट वृद्धि किमक होती है ? जो अनुस्थानिक पवमप्यके ऊपर अस्ताकोडाकोडी स्थितिमें आपम्य स्थित है और स्थितिपदके काष्ठ पृथ होनपर उत्कृष्ट स्थितिमें वायु संस्पर्शसे जिसमें उत्कृष्ट स्थिति बांधी है उसे किसी एक जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा हमारे तदनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किमक होती है ? जो काष्ठ एक जीव मोह कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिमें सत्तागता है वह जब उत्कृष्ट स्थितिपदकपात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार मार्गों पृथिवीके नारणी सामान्य तिर्यक्, पंचमिष्य निर्धक् पंचेत्र्य तिर्यक् पणाल पंचमिष्य तिर्यक् धान्यमणी, सामान्य मनुष्य पणाल मनुष्य और मनुष्यनी, सामान्य देव अन्नपातिर्योसं जल नदस्तार स्वर्ग तटके देव पंचमिष्य, पंचेत्र्य पणाल जल, धन पणाल पाँचों मनावाणी पाँचों वपमपाणी वपमपाणी, ओहारिकपवाणी, वैकिकिकपवाणी, तीनों वपपाते आधादि चारों कपावधान, मत्पयानी

चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

§ २३१. पंचि०तिरि०अपज्ज० उक्क० वड्ढी कस्स ? जेण तप्पायोग-जहण्णद्विदिं वंधमाणेण उक्कस्सिया द्विदी पवद्धा तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सद्विदिसंतकम्मओ द्विदिधाद करेमाणो पंचिदियतिरिक्खवअपज्जत्तएसु उव-वण्णो तेण उक्कस्सद्विदिखंडगे ह्दं तस्स उक्कस्सिया हाणी । एव मणुसअपज्ज०-वादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज०-पंच-कायाणं वादरअपज्ज०-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-[तेउ०-] वादरतेउ०-वादरतेउपज्ज-[वाउ०] वादरवाउ०-वादरवाउपज्ज०-तसअपज्जत्ते त्ति ।

§ २३२. आणदादि जाव उवरिमगेअज्जो त्ति उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्सद्विदिसंतकम्मओ तेण पढमसम्मत्त पडिवज्जमाणेण पढमद्विदि-खंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । अणुदिसादि जाव सव्वद्विसिद्धि त्ति उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएमाणो तेण पढमद्विदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी ।

श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, असयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाच लेश्यावाले, भव्य अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सही और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३१ पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिको बाधनेवाले जिस जीवने उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध किया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो तिर्यंच या मनुष्य स्थितिघातको करता हुआ पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । फिर वहाँ उसके उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करने पर उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, पाचों स्थावरकाय वादर अपर्याप्तक, पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म, पाचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्तक, पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म अपर्याप्तक, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्तक, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक पर्याप्तक और त्रस अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३२ आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करते समय जब प्रथम स्थितिकाण्डकका घात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला जो कोई एक जीव जब प्रथम स्थितिकाण्डकका घात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि होती है ।

§ २३३ एइदिय० उक्कस्सवड्ढि उक्कस्सअवढाणाणं पंषिदियतिरिक्ख-  
अपञ्चमंगो । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो पंषिदिओ उक्कस्सहिदिपाद  
मकाऊण एइदिएसु उववण्णो तेण पढमहिदिखंडए पादिवे तस्स उक्कस्सिया हाणी ।  
एवं बादरेइदिय-बादरेइदियपज्ज०-पुडभि० बादरपुडभि-बादरपुडभिपज्ज०-आठ०-बादर  
आठ०-बादरआठपज्ज०-अण्णफदि बादरअण्णफदि बादरअण्णफदिपरोयसरीरपज्ज  
असणि पि ।

§ २३४ आरास्सियमिस्स० उक्क०वड्ढि अत्रहा० पंषि०तिरि०अपञ्चमंगो ।  
उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो देवो गेरूओ वा उक्कस्सहिदिसंतकम्मिओ  
हिदिपादमकाऊण ओरास्सियमिस्सओगेसु उववण्णो तेण उक्कस्सहिदिखंडए पादिवे  
तस्स उक्क० हाणी ।

§ २३५ वेचम्बियमिस्स० उक्क०वड्ढि-अवट्ठाणार्ण पंषि०तिरि०अपञ्चम-  
मंगो । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सहिदि  
संतकम्मिओ हिदिपादमकाऊण वचम्बियमिस्स० उववण्णो तेण उक्कस्सए हिदिखंडए  
पादिवे तस्स उक्क० हाणी । आहार०-आहारमिस्स० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स  
अद्विदिं गळेमाणसंतस्स उक्क० हाणी । एवमकसाय-अहाकसाद०-सासण०दिदि पि।

§ २३६ एकेन्द्रियोमिं उत्तुख बुद्धि और उत्तुख अवस्थानके स्वामित्वका कवन पंचेन्द्रिय  
तिर्यक् अपर्याप्तकोके समान जानना चाहिये । एकेन्द्रियोमिं उत्तुख हानि किसके होती है ? जो कोई  
एक पंचेन्द्रिय तिर्यक् उत्तुख स्थितिका पाठ न करके एकेन्द्रियोमिं उत्तुख होकर बहो समय स्थिति  
कालप्रकाश पाठ करता है उसके उत्तुख हानि होती है । इसी प्रकार बाहर एकेन्द्रिय, बाहर  
एकेन्द्रिय पर्याप्तक, पृथिवीकायिक, बाहर पृथिवीकायिक, बाहर पृथिवीकायिक पर्याप्तक, जलकायिक,  
बाहर जलकायिक, बाहर जलकायिक पर्याप्तक, वनस्पतिकायिक, बाहर वनस्पतिकायिक, बाहर  
वनस्पतिकायिक प्रत्येकसरीर पर्याप्त और असीरी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३७ औदारिकमित्रकामयोगियोमिं उत्तुख बुद्धि और उत्तुख अवस्थानके स्वामित्वका  
कवन पंचेन्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्तकोके समान जानना चाहिये । औदारिकमित्रकामयोगियोमिं उत्तुख  
हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्तुख स्थितिकी सत्ताप्राप्ता जो कोई एक देव या नारकी  
स्थितिपाठ न करके औदारिकमित्रकामयोगियोमिं उत्तुख होकर बहो उत्तुख स्थितिकालप्रकाश  
पाठ करता है उसके उत्तुख हानि होती है ।

§ २३८ वैश्वियकमित्रकामयोगियोमिं उत्तुख बुद्धि और उत्तुख अवस्थानके स्वामित्वका कवन  
पंचेन्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्तकोके समान जानना चाहिये । वैश्वियकमित्रकामयोगियोमिं उत्तुख हानि  
किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्तुख स्थितिकी सत्ताप्राप्ता जो कोई एक तिर्यक् या मनुष्य  
स्थितिपाठ न करके वैश्वियकमित्रकामयोगियोमिं उत्तुख होकर बहो उत्तुख स्थितिकालप्रकाश  
पाठ करता है उसके उत्तुख हानि होती है । आहारकामयोगी और आहारकमित्रकाम-  
योगियोमिं उत्तुख हानि किसके होती है ? वा अद्या स्थितिका निजरा करता हुआ विद्यमान है  
उसके उत्तुख हानि होती है । इसी प्रकार अकलयी यथाकथासंनय और सात्ताहनसम्पद्यष्टि  
जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३६ कम्मइय० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णद० जेण पंचिदियसण्णिणा विग्गहगदीए वट्ठमणेण तप्पाओग्गट्ठिदिसंत्तकम्मादो तप्पाओग्गउक्कस्सट्ठिदिवंओ पवद्धा तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो चट्ठगट्ठिओ उक्क० ट्ठिदिसंतकम्मओ ट्ठिदिकंदयघादमादणिय विदियविग्गहे ट्ठिदिसंतकम्मस्स ट्ठिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । उक्क० अवट्ठाण कस्स ? अण्ण० जो एइंदिओ तप्पाओग्गट्ठिदिसंतकम्मादो वड्ढिदूण अवट्ठिदो तस्स उक्क० अवट्ठाण । एवमणाहारीण ।

§ २३७ अवगद० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० इत्थिणवुंस० वेदखवगस्स पदमे ट्ठिदिखंडए हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । माट०-मुद०-ओहि० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो उक्कस्सट्ठिदिसतक गमओ तेण उक्कस्सए ट्ठिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । एवं ओहिदस०-मुक्क०-सम्मादि०-वेदय०दिट्ठि ति । मणपज्ज० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जेण सागरोवमपुत्तमेत्तमुक्कस्सट्ठिदिखंडयं पादिदं तस्स उक्क० हाणी । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-खइय०दिट्ठि-परिहार०-संजदासंजद० । सुहुमसांप० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० खवगस्स चरिमट्ठिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी ।

§ २३८. उवसम० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० अणंताणु० विमजोयणापदम-

§ २३६ कर्मण्णकाययोगियामे उत्कृष्ट वृद्ध किसके हाती है ? विग्रहगतिमें नियमान जो पचेन्द्रिय सही जीव तद्योग्य स्थितिसत्त्ववाले कर्मके साथ तद्योग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उस कर्मण्णकाययोगीके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिसके मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है ऐसा चारों गतिका जीव स्थितिकाण्डकवातका आरम्भ करके दूसरे विग्रह में जब स्थितिसत्त्ववाले कर्मके स्थितिरण्डका घात करता है तब उस कर्मण्णकाययोगी जीवके उत्कृष्ट हानि हाता है । उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है ? जो एचेन्द्रिय तद्योग्य स्थितिसत्त्व से बढ़ाकर अवस्थित है उसके उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार अनाहारक जावोंके जानना चाहिये ।

§ २३७ अपगतवेदियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका चपक जो कोई एक जीव प्रथम स्थितिरण्डका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रतज्ञानी और अवधिज्ञानी जावोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक जीव उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार अवधिदशनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मन पययज्ञानियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिसने सागरपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, ज्ञायकसम्यग्दृष्टि, परिहारविशुद्धिसयत और सयतासयत जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसापरायिक संयतामे उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक चपक अन्तिम स्यातकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है ।

§ २३८ उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक जीव अनन्ताणु-

द्विदिस्वद्वय पादिदे तस्त उक्त० हाणी । अथवा कसायउपसामगस्त पदमद्विदिस्वद्वय पदिदे एदं सामिच वचन्, उवसमसम्पत्फलम्भतरे अणसाणु० बिसं ज्ञोयणपक्वपाण म्भुषगमादो । अथवा एदं पि आणिय वचम्भ, उवसमसवीण वंसणतियस्त द्विदिपाद संमयाणुषणमादो । सम्मामि० उक्त० हाणी कस्म ? अण्ण० उक्तस्सद्विदिस्त- कम्ममि उक्तस्सद्विदिस्वद्वय पदिदे तस्त उक्तस्सिया हाणी ।

एवमुक्तस्ससामिचं समचं ।

§ २३६ ग्रहणण पयदं । दुविहो णिहोसो—ओयेण आयेसेण य । तत्त्व ओयेण जह० बद्दी कस्स ? अण्ण० ओ समउणउक्तस्सद्विदि वंचमाणो उक्तस्ससंक्रितोसं गंतूण उक्तस्सद्विदि पक्वो तस्त जह० बद्दी । जह० हाणी कस्स ? अण्ण० अथ द्विद्वत्त्वएण । एगदरत्थ अबहाणं । एवं सचसु पुढरीसु सम्बतिरिक्ख-सम्बमणुस देव० भवजादि ज्ञान सहस्सार०—सम्भएहदिय०—सम्भविगसिदिय-सम्भपंचिदिय-इकाय पंचमण०—पंचववि०—कायजोगि-ओराणि०—ओराणिपमिस्स—वठम्भिय—वठ०मिस्स०—कम्मय विणिज्जद०—वचारिकसाय-विणिज्जमण्णाण-अपमद० वक्खु०—अचक्खु०—पंचसु०—भवसि०—अमवसि० मिच्छादि०—सण्णि०—असण्णि० आहारि-अणाहारि णि ।

कम्भीकी विसंवाजनाके समय प्रथम स्थितिकण्डकका पाठ करता है उसके उत्पन्न हानि होती है । अथवा कणायकी उपक्रमना करनेवाले उपशमसम्बन्धित जीवके प्रथमस्थितिलक्षणका पाठ करनेपर उत्पन्न हानिके स्वामित्वका कथन करना चाहिये क्योंकि उपशमसम्बन्धके कालक भीतर अनन्तलुपकम्भीकी विसंयोचनाका पक्ष स्वीकर नहीं किया है । अथवा इसका भी ज्ञान कर ही कथन करना चाहिये क्योंकि उपशमब्रह्मीमें ब्रह्मनमीदमीयकी तीन प्रकृतियोंके स्थितिपाठकी संभावना नहीं पाई जाती है । सम्ममिध्माद्विधियोंमें उत्पन्न हानि किसके होती है ? माहनीय कम्भीकी उत्पन्न स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक जीव उत्पन्न स्थितिलक्षणका पाठ करता है उसके उत्पन्न हानि होती है ।

इस प्रकार उत्पन्न स्वामित्व समाप्त हुआ ।

§ २३६ अथ अपन्य स्वामित्वका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकरणा है—आचनिर्देश और आचननिर्देश । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा अपन्य वृत्ति किसके होती है ? जो एक समय कम उत्पन्न स्थितिकी बाधता हुआ उत्पन्न संकलनको प्राप्त होकर उत्पन्न स्थितिकी वन्ध करता है ऐसे किसी एक जीवके अपन्य वृत्ति होती है । अपन्य हानि किसके होती है ? अथ स्थितिके रूपसे किसी एक जीवके अपन्य हानि होती है । तथा इनमेंसे किसी एकमें अवस्थान होता है । इसी प्रकार मातों पृथिवियोंके मारकी समी तिर्यैष समी मनुष्य सामान्य देव, भवनवासिनों से लेकर स्वरसार स्वर्ग तकके वंच सभी एकत्रिय, समी विक्रमेन्द्रिय समी पंचन्द्रिय, वहाँ कायवाले पाँचों मनोयोगी पाँचों बचनयोगी काययोगी औदारिकव्यययोगी औदारिकमिध्माययोगी वैक्रियिकाययोगी वैक्रियिकमिध्माययोगी, काम्यकाययोगी, तीनों वेदवाले ओषादि चारों कणाय-वाले, तीनों अजामी, असेयत चक्षुर्ब्रह्मणाले, अचक्षुर्ब्रह्मणाले कृष्णादि पाँच लेखावाले, मध्य अमध्य मिध्माद्विदि संधी, असंधी आहारक और अमाहारक जीवोंके ज्ञानता चाहिये ।

§ २४० आणदादि जाव सव्वट्टसिद्धिं त्ति जहं हाणी कस्स ? अण्णं अधट्ठिदिकखएण । एवमाहारं-आहारमिस्स-अग्गदं-अरुग्गं-आभिणिं-मुदं ओहिं-मणपज्जं-संजदं-सामाइय-छेदो-परिहारं-मुहुमं-जहाक्खादं-संजदा-संजदं-ओहिदंसं-सुक्कं-सम्मोहट्ठि-एइयं-वेदयं-उवसमं-सासणं-सम्मामि-च्छादिट्ठिं त्ति ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

§ २४१ अप्पावहुअं दुविहं-जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्सं पयदं । दुविहो णिहो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोरा उक्कस्सिया हाणी । वड्ढी अवट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि विसंसाहियाणि । एव सत्तमु पुढवीमु तिरिक्ख-पचिं-तिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव महस्सारं-पंचिं-पचिंपज्जं-तस-तसपज्जं-पंचमणं-पंचवचिं-कायजोगि-ओरालियं-वेउव्वियं-तिण्णिवेद-चत्तारिकं-तिण्णिअण्णाण-असंजदं-चक्खुं-अचक्खुं-पचले-भवसिं-अभवसिं-भिच्छादिं-सण्णिं-आहारिं त्ति ।

§ २४२ पंचिं-तिरिक्खअपज्जं सव्वत्थोवा उक्कं वड्ढी अवट्ठाणं च । हाणी संखेज्जगुणा । एवं मणुसअपज्जं-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्जं-तसअपज्जं-ओरालि-

§ २४० आनत कल्पसे लेनर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें जघन्य हानि किसके होती है ? अधःस्थितिके क्षयसे किसी एकके होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथाख्यात-सयत, सयतासयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ २४१ अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट हानिवाले जीव सबसे स्तोके हैं । वृद्धि और अवस्थान इन दोनोंवाले जीव समान होते हुए भी उत्कृष्ट हानिवाले जीवोंसे विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पौंचों मनोयोगी, पौंचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, तीनों अज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाँच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सक्खी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४२ पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे उत्कृष्ट हानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय,

यमिस्स-वेठम्बियमिस्स-असणिं च ।

§ २४३ आणदादि जान सव्वहं णत्थि अप्पावहुर्म । एवमाहार०-आहार मिस्स० अवगद०-अकसा०-आमिणि०-सुद -ओहि०-मणपज्ज०-संभद०-सामाइय छेदो०-परिहार०-सुहुम० अहाक्खाव०-संजठासंजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-स्वइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभिष्सादिदि चि ।

§ २४४ एइदिपसु सव्वत्थोवा बद्धी अवट्ठानं च । हाणी असंखेज्जगुणा । एवं पंचकाय० । कम्मइय० सव्वत्थोवमवट्ठानं । बद्धी अवसंखेज्जगुणा । हाणी असंखेज्जगुणा । एवमयाहार० ।

एवमुक्कस्सप्पावहुर्म समत्तं ।

§ २४५ अइप्पय पपदं । इविहो णिहोसो—ओणेण आदेसेण य । तत्थ ओणेण अइप्पिया बद्धी हाणी अवट्ठानं च विणिं वि तुप्पसाणि । एवं वेदव्वं आव मयाहारय चि । आणदादिसु णत्थि अप्पावहुर्म, एगपदचादो ।

एव पदपिक्वलेवा समत्तो ।

पंचेन्द्रिय अपर्मात्तक, इस अपर्मात्तक औदारिकमित्रकर्मयोगी वैश्विकमित्रकर्मयोगी और असंखी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४३ आन्त कस्ससे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके वेवोंके अस्वबहुत्व नहीं है । इसी प्रकार आहारककाययोगी आहारकमित्रकर्मयोगी अपगतवेही अक्यावी आमिनिवोधिकज्जानी बुद्धजानी, अवविज्ञानी मनापचयज्ञानी संयत सम्माविकसंयत ज्ञेवापस्त्वापनासंबत परिहारविहृदिसंबत सुत्तसंयतविहृदिसंबत यथाक्यातसंबत संबतसंबत अवविहृदिसंबतले पुक्कलेवाबले सम्मत्ति, सामिकसम्मत्ति वेदकसम्मत्ति, वपक्कसम्मत्ति, सासादनसम्मत्ति और सम्मम्मिप्प्यात्ति जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४४ समी एवेमिहोयोंमें उक्कट बुद्धि और अवस्थानबले जीव सबसे बोधे हैं । इनसे उक्कट ज्ञानिबले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार समी पौषों स्थावरकर्म जीवोंके जानना चाहिये । कर्मणकर्मयोगियोंमें अवस्थानबले जीव सबसे बोधे हैं । इनसे बुद्धिबले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे ज्ञानिबले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार उक्कट अस्वबहुत्व समाप्त हुआ ।

§ २४५ अब अवग्य अस्वबहुत्वका प्रकरण है । कसकी अपेक्षा निर्देश से प्रकरण है—ओपनिर्देश और आवेधनिर्देश । उनसेवे ओपकी अपेक्षा अवग्य बुद्धि, अवग्य ज्ञान और अवस्थान इन तीनोंबले जीव समान हैं । इसी प्रकार अनाहारक आर्गेणा तक जानना चाहिये । किन्तु आनतादिकमें अस्वबहुत्व नहीं है क्योंकि नहीं एक ज्ञानिय ही पाया जाता है ।

इस प्रकार पदपिक्व समाप्त हुआ ।



§ २४६. वड्डि त्ति तत्थ इमाणि तेरस आणियोगदराणि—समुक्कित्तणादि जाव अप्पावहुए त्ति । समुक्कित्तणाणु० दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण तिण्णि वड्डी तिण्णि हाणी असंखेज्जगुणहाणी अवट्ठाणं च अत्थि । एवं मणुसतिय—पंचिदिय—चि०पज्ज०—तस—तसपज्ज०—पंचमण०—पंचवचि०—कायजोगि०—ओरालि०—तिण्णिवेद—चत्तारिकसाय—चक्खु०—अचक्खु०—भवसि०—सण्णि०—आहारए त्ति ।

§ २४७. आदेसेण णेरइएसु मोह० अत्थि तिण्णि वड्डी तिण्णि हाणी अवट्ठाणं च । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख—मणुमअपज्ज—देव—भवणादि जाव सहस्सार०—पचि०अपज्ज०—तसअपज्ज०—ओरालियमिस्स—वेउन्नि०—वेउ०मिस्स०—कम्मइय—तिण्णि—अण्णाण—अज्जद०—पंचले०—अभव०—मिच्छादि०—असण्णि०—अणाहारए त्ति ।

§ २४८. आणदादि जाव सव्वट्ठ० मोह० अत्थि असंखेज्जभागहाणी संखेज्जभागहाणी । एवं परिहार०—संजदासंजद०—उवसमसम्माइट्ठि त्ति । एइदिएसु अत्थि असंखेज्जभागवड्डी तिण्णि हाणी अवट्ठाणं च । एव पंचकाय० । विगल्लिदिएसु अत्थि दो वड्डी तिण्णि हाणी अवट्ठाणं च । आहार०—आहारमिस्स० अत्थि असंखे०—भागहाणी । एवमकमा०—जहाक्खाद०—सासण० । अवगद० अत्थि असंखेज्जभागहाणी [ संखेज्जभागहाणी ] संखे०गुणहाणी । एवं सुहुमसांप०—वेदय०—सम्माभि०दिट्ठीणं ।

§ २४६ अब वृद्धि अनुयोगद्वारका प्रकरण है । उसके कथनमें समुत्क्रांतनासे लेकर अल्पवहुतक तक ये तेरह अनुयोगद्वार हैं । उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओपकी अपेक्षा तीन वृद्धि, तीन हानि, असंख्यात-गुणहानि और अवस्थान हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाचों मतयोगी, पाचों वचनयोगी, काययागी, औदारिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४७ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीय कर्मकी तीन वृद्धियाँ, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यञ्च, मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सदस्सार कल्पतकके देव, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, तानों अज्ञानी, असंयत, कृष्णाद पाँच लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४८ आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मोहनीय कर्मकी असंख्यात भागहानि और संख्यातभागहानि हैं । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत, संयनासंयत और उपशम-सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । एकेन्द्रियोंमें असंख्यातभागवृद्धि, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं । इसी प्रकार पाँचों स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिये । सभी विकलेन्द्रियोंमें दो वृद्धियाँ, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं । आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जावोंमें असंख्यातभागहानि हैं । इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यानतंयन और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । अपगतवेदी जीवोंमें असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि

भामिणि०—सुद० मोहि० अतिथ यत्तारि हाणीमो । एवं मणपज्ज०—संजद०—सामाहय—  
वेदो०—मोहिदंस०—सुकलोस्सि०—सम्माविही०—सहय० ।

एवं समुकिरणपा समप्ता ।

हे । इसी प्रकार सूक्ष्मसापराधिकसंयत वेदकसम्पादधि और सम्पगिमध्यादधि बीबोंके जानना चाहिये । भामिनिषाधिकज्ञानी, ब्रुतज्ञानी और अपधितानी बीबोंमें वार हानियाँ हैं । इसी प्रकार मनःपययज्ञानी संयत, सामाधिकसंयत छेदापस्थापनासंयत अपधिविशनवाले, सुकलोत्तरपा-  
वत्त सन्वदधि और साधिकमस्यदधि बीबोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**पञ्चिसेपमें उक्त छद्म हानि, उक्त अपस्थान, अपम्य हानि, अपम्य हानि और अपम्य अपस्थानका कथन किया जाता है । किन्तु वे उक्त हानि आदि एक रूप न होकर अनेकस्वर होते हैं । इसका ज्ञान पञ्चिसेपसे न होकर हानि अनुवागद्वारासे होता है अतः पञ्चिसेप विशेषके हानि पढ़ते हैं—समुदकीतना, स्वामित्व काय अन्तर, नाना बीबोंकी अपेक्षा मंगविषय भागामाग परिमाण क्षेत्र म्यशन काय, अन्तर, भाव और अस्ववद्वय इसके ये तरह अनुवागद्वारा हैं । इनमेंसे पहले समुत्तीर्तनाय विचार किया गया है । इसकी अपेक्षा ओपसे असंख्यात भागहानि, संख्यात भागहानि संख्यात गुणहानि ये तीन हानियाँ, असंख्यात भागहानि संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि ये तीन हानियाँ और असंख्यात गुणहानि तथा इनके अवस्थान हात हैं । विवक्षित स्थितिमें जो हानि या हानि हाती है वह जब तक उसके असंख्यातमें भाग प्रमाण रहती है तब तक उसे असंख्यात भागहानि या असंख्यात भागहानि कहते हैं । जब वह हानि या हानि विवक्षित स्थितिसे संख्यातमें भागप्रमाण हो जाती है तब उसे संख्यात भाग हानि और संख्यात भागहानि कहते हैं । तथा जब वह हानि या हानि विवक्षित स्थितिसे संख्यातगुणी हानि या हानिरूप हो जाती है तब उसे संख्यात गुणहानि या संख्यात गुणहानि कहते हैं । इसी प्रकार असंख्यात गुणहानिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये । यह असंख्यात गुणहानि केवल अविशुद्ध रूपके ही होती है अपम्य नहीं । अवस्थान सुगम है । यदि हानिरीके वाय अपस्थान हुआ तो वह हानि सम्बन्धी अवस्थान कहा जाता है और हानियोंके वाय अवस्थान हुआ तो वह हानि सम्बन्धी अवस्थान कहा जाता है । मनुष्य त्रिद्व आदि कुछ ऐसी मार्गायाप हैं जिनमें वह ओपम रूपका अविकल पठित हो जाती है अतः उनके कथनको भाषके समान कहा । तत्त्विकोंमें केवल असंख्यात गुणहानि सम्भव नहीं क्योंकि वहाँ अग्नित्ति रूपक बीब नहीं पाये जाते । शेष सब सम्भव हैं इसी प्रकार सातों मरकके नारकी आदि मूलमें गिनती हुई और भी मार्गायाप हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा । आन्तरिकरूपसे लेकर सर्वावस्थितकके देखोमि उक्त विवक्षित अन्तःकोशकोही सागर प्रमाण ही होती है और वह वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयसे ऊपर उत्तरोत्तर पड़ती ही जाती है जो मन्त्रियोंकी अन्तः उत्पत्ती केतुपत्ती के विसंबोधनाके समान संख्यातमें भागप्रमाण पड़ती है और शेष समयमें असंख्यातमें भागप्रमाण ही पड़ती है । अतः वहाँ जो हानियाँ ही हैं । पवित्रविशुद्धिसंयत संयतासंयत और उपशमसम्बन्धित बीबोंके इसी प्रकार जानना । पञ्चिसेपमें अपम्य स्थितिकय पक्षका असंख्यातमें भाग कम एक सागरप्रमाण और उक्त स्थितिकय एक सागर प्रमाण होता है अतः वहाँ हानिरूपसे असंख्यात भागहानि ही सम्भव है क्योंकि किसी बीबम यदि अपम्य स्थिति से उक्त स्थितिकम भी कथ किया तो भी अपम्य स्थितिसे असंख्यातमें भाग की ही हानि हुई । पर इनके असंख्यात गुणहानिके जोड़ कर शेष तीनों हानियाँ सम्भव हैं क्योंकि जो संख्या

§ २४६. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिदोसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण तिण्णि वड्डी अवट्ठाणाणि कस्स ? मिच्छादिट्ठिस्स । तिण्णि हाणीओ कस्स ? सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा । असखे० गुणहाणी कस्स ? आणियट्ठिखवयस्स । एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचि० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-[ काय०- ] ओरालिय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारि ति ।

§ २५०. आदेसेण णेरएसु तिण्णि वड्डी अवट्ठा० कस्स ? मिच्छादिट्ठिस्स । तिण्णि हाणी कस्स ? सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा । एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-वेउव्विय०-असंजद०-पंचलेस्सा ति ।

पंचेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियोमें उत्पन्न होता है उसके तीनों हानिया वन जाती हैं । पाचों स्थावरकायिक जीवोंमें भी इसी प्रकार जानना । विकलत्रयोंमें जघन्य स्थितिवन्धसे उत्कृष्ट स्थितिवन्ध पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण अधिक है अतः यहाँ वृद्धिरूपसे सख्यात भागवृद्धि और असख्यातभागवृद्धि ये दो वृद्धिया ही सम्भव हैं, क्योंकि जब कोई विकलत्रय अपनी पूर्व समयमें बंधनेवाली स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक स्थितिको बाधता है तब उसके असख्यात भागवृद्धि होती है और जब वह अपनी पूर्व समयमें बंधनेवाली स्थितिसे सख्यातवें भाग अधिक स्थितिको बाधता है तब उसके सख्यातभागवृद्धि होती है । तथा इनके तीन हानियोंका खुलासा एकेन्द्रियोंके समान कर लेना चाहिये । आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें मोहनीयकी स्थिति अन्न कोडाकोडी सागर प्रमाण है और यहाँ स्थितिकाण्डकघात न होकर अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक एक निपेकका ही गलन होता है अतः यहाँ एक असख्यात भागहानि ही सम्भव है । इसी प्रकार अकपायी, यथाख्यातसयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । अपगतवेदमें असंख्यात भागहानि उपशमक और क्षपक किसी भी जीवके वन जाती है पर संख्यात भागहानि और सख्यात गुणहानि क्षपके ही वनती है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक सयत और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना । आभिनयोधिकज्ञानी आदि जीवोंके चारों हानिया सम्भव हैं यह स्पष्ट ही है ।

इस प्रकार समुत्कीर्तनानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ २४६ स्वामित्वाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा तीन वृद्धियों और अवस्थान किसके होते हैं ? मिथ्यादृष्टिके होते हैं । तीन हानियों किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती हैं । असख्यात-गुणहानि किसके होती हैं ? अनिवृत्तिकरणक्षपकके होती हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस, त्रस पर्याप्तक, पाँचो मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक-काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, सद्गी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५० आदेशकी अपेक्षा नारकियों में तीन वृद्धिया और अवस्थान किसके होते हैं ? मिथ्यादृष्टिके होते हैं । तीन हानियों किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती हैं । इसी प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्त्रार कल्पतकके देव, वैक्रियिककाययोगी, असयत और कृष्णादि पाँच लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५१ पंचिदियतिरिन्स्त्रयपञ्च० तिण्णि वट्टी अबहाणाणि तिण्णि हाणीओ कस्स ? अण्णदरस्स । एवं मणुसअपञ्च०-पंचिदियअपञ्च०-तसअपञ्च०-तिण्णि अण्णाण अभन मिच्छादि० असण्णि चि ।

§ २५२ आणदादि जाव चवरिमगेनञ्ज० असंखेज्जमागहाणी कस्स ? अण्ण-दरस्स सम्मादिहि० मिच्छादिहिस्स वा । सखे०मागहाणी कस्स ? अण्णताणुबंभि चउक्कं विसंखोए तस्स पइयसम्पक्कं पडिइज्जमाणस्स वा । मणुहिसादि जाव सम्म-हसिदि चि असंखे०मागहाणी कस्स ? अण्णदरस्स । सखे०मागहाणी कस्स ? अण्णताणुबंभिचउक्कं विसंखोए तस्स ।

§ २५३ पण्णदिसु असंखेज्जमागवट्टी तिण्णिहाणी अबहाणाणि कस्स ? अण्णद० । एवं पंषणं कायार्ण । विगमिदिसु वो वट्टी तिण्णि हाणी मवहाणाणि कस्स ? अण्णद० ।

§ २५४ ओरासियमिस्स० तिण्णिवट्टि-अबहाणाणि कस्स ? मिच्छादिहिस्स । दोहाणिओ कस्स ? मिच्छादिहिस्स । असंखे०मागहाणी कस्स ? सम्मादिहि० मिच्छा-दिहिस्स वा । एवं वेठक्खियमिस्स०-कम्मइय०-अणाहारि चि । आहार० आहार-मिस्स० असंखे०मागहाणी कस्स ? अण्णदिदि गान्धयमाणस्स । एवमकसा०-महा-क्त्वाद०-सासण०दिहि चि ।

§ २५१ पंचेन्द्रिय तिर्यक् अवस्थातर्कमें तीन बुद्धियाँ, अवस्थान और तीन ज्ञानियाँ किसके होती हैं ? किसी एक जीवके होती हैं । इसी प्रकार मनुष्य अवस्थातर्क पंचेन्द्रिय अवस्थातर्क, व्रत अवस्थातर्क, तीनों अज्ञानी अवस्था मिच्छादृष्टि और असंखी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५२ अज्ञात कल्पसे लेकर ऊपरिम प्रत्येक तर्कके क्षेत्रोंमें असंख्यात मागज्ञानि किसके होती हैं ? किसी एक सम्मदृष्टि वा मिच्छादृष्टिके होती हैं । संख्यातमागज्ञानि किसके होती हैं ? अज्ञातानुबन्धी वस्तुवृत्ती विसंयोजन करनेवाले जीवके वा प्रबोधपञ्च सम्मत्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके होती हैं । अनुविशसे लेकर सर्वोपसिद्धितर्कके क्षेत्रोंमें असंख्यातमागज्ञानि किसके होती हैं ? किसी एकके होती हैं । संख्यातमागज्ञानि किसके होती हैं ? अज्ञातानुबन्धी वस्तुवृत्ती विसंयोजन करनेवाले जीवके होती हैं ।

§ २५३ एकैन्द्रियोंमें असंख्यातमागबुद्धि तीन ज्ञानियाँ और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी जीवके होते हैं । इसी प्रकार पाँचों स्वाधरकविक जीवोंके जानना चाहिये । विपक्ष-न्द्रियोंमें दो बुद्धियाँ तीन ज्ञानियाँ और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी जीवके होते हैं ।

§ २५४ औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें तीन बुद्धियाँ और अवस्थान किसके होते हैं ? मिच्छादृष्टिके होते हैं । वा ज्ञानियाँ किसके होती हैं ? मिच्छादृष्टिके होती हैं । असंख्यात मागज्ञानि किसके होती हैं ? सम्मदृष्टि वा मिच्छादृष्टिके होती हैं । इसी प्रकार वैश्वमिश्रमिश्र काययोगी कर्मणकाययोगी और अनज्हारक जीवोंके जानना चाहिये । जज्हारककाययोगी और अज्हारकमिश्रकाययोगियोंमें असंख्यात मागज्ञानि किसके होती हैं ? अवस्थिति गलनाके द्वारा निर्गम करनेवाले जीवके होती हैं । इसी प्रकार अकयायी, यथावस्थातर्क और सासाधनसम्मदृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५५, अवगद० असंखे० भागहाणी कस्स ? अण्णदरस्स उवसामयस्स खवयस्स वा । संखे० भागहाणी संखे० गुणहाणी खवगस्स । आभिणि०-सुट०-ओहि० तिण्णि हाणीओ कस्स ? अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स । असंखे० गुणहाणी कस्स ? अण्णियट्ठिखवयस्स । एवं मणपज्ज०- [ संजद- ] समाइय-च्छेदो०-ओहिदस०-सम्माइट्ठि ति ।

§ २५६ परिहार० असंखेज्जभागहाणि-संखेज्जभागहाणीओ कस्स ? अण्ण० । एववरि संखेज्जभागहाणी अण्णंताणुवंधिविसंजोएंतस्स दंसणतियक्खवेंतस्स वा । एवं संजदासंजद० । सुहुमसांपरा० असंखेज्जभागहाणी संखेभागहाणी संखेगुणहाणी कस्स ? अण्णदरस्स ।

§ २५७, सुक्कले० तिण्णि हाणीओ कस्स ? सम्मादिट्ठि० भिच्छादिट्ठिस्स वा । असंखे० गुणहाणी कस्स ? अण्णियट्ठिखवयस्स । खइय० असंखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद० । संखे० भागहाणी कस्स ? उवसामयस्स खवयस्स वा । संखेज्जगुणहाणी कस्स ? खवयस्स । असंखेज्जगुणहाणी कस्स ? ओध ।

§ २५८ उवसम० असंखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद० । संखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद अण्णंताणुवंधि० विसंजोएंतस्स कसायोवसामगस्स वा ।

§ २५५ अपगतवेदियोंमें असंख्यात भागहानि किसके होती हैं ? किसी भी उपशामक या क्षपक जीवके होती हैं । तथा संख्यात भागहानि और संख्यातगुणहानि क्षपक जीवके होती हैं । आमिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें तीन हानियाँ किसके होती हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होती हैं । असंख्यात गुणहानि किसके होती हैं ? अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती हैं । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, सयत सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५६ परिहारविशुद्धिसयतोंमें असंख्यात भागहानि और संख्यात भागहानि किसके होती हैं । किसी भी जीवके होती हैं । परन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात भागहानि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके या तीन दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके होती हैं । इसी प्रकार सयतासयत जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसापराधिक सयतोंमें असंख्यात भागहानि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती हैं ।

§ २५७ शुक्कलेख्यावाले जीवोंमें तीन हानियाँ किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्या-दृष्टि जीवके होती हैं । असंख्यात गुणहानि किसके होती हैं ? अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती हैं । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानि किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती हैं । संख्यात भागहानि किसके होती हैं ? उपशामक या क्षपक जीवके होती हैं । संख्यात गुणहानि किसके होती हैं ? क्षपकके होती हैं । असंख्यातगुणहानि किसके होती हैं ? इसका कथन ओघके समान है ? अर्थात् असंख्यातगुणहानि अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती हैं ।

§ २५८ उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानि किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती हैं । संख्यातभागहानि किसके होती हैं ? अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले या

वदय० असंख्यजभागाहाणी संख्यजगुणाहाणी कस्स ? अण्णदग्गस्स । सत्तज्जभागा  
हाणी कस्स ? अय्यताणुपेभि० विसुमोपेतस्स दंसणतिर्यं स्ववेत्तस्स वा । सम्मामि०  
तिणिहाणीओ कस्म ? अण्णद० ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

§ २५६ कानाणुगमेण दुविहा णिहेसो-आधण आठसण य । तस्य आधण  
तिणि वही कनचिरं कालाणो होति ? जह० एगसमआ, उक्क० व समया । अमत्त०  
भागाहाणी कवचि० ? जह० एयसमओ, उक्क० सनहिसागरासमसदं अतोमुदुत्तम्भियं  
पल्लिओ० समुत्ते० भाग० सादिरगं । सत्ते० भागाहाणी कव ? जह० एगसमआ,  
उक्क० उक्कस्सत्तुसज्जं दुरुवुणं । दा हाणी कव ? जह० एगसमआ,  
उक्क० ज० एगसमओ उक्क० अतामु० । एवमवक्खु० भवमि०-तस-तमपक्ख० ।

कपायोंका उदयम करनपल्ल किसी भी जीवके होती है। वेदकम्मगृह्योमें असंख्यजभागाहानि और  
संख्यजगुणाहानि किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती है। संख्याज भागाहानि किमके होता है ?  
अनन्तलुवन्धी पतुप्पकी विखयावना करनवाले जीवके या तीन वीनमाहनीयका कय करनवाले  
जीवके होती है। सम्यग्मिध्वादि जीवोंमें तीनों हानियां किसके होती हैं ? किसी भी जीवके  
होती हैं।

इस प्रकार स्वामित्वलुगम समग्र हुआ ।

§ २५६ काललुगमकी अपक्षा निर्देश वा प्रकारका है-आपनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
इनमेंसे आपकी अपक्षा तीन द्वितीयोका द्विना फल है ? अपन्व काल एक समय और इच्छ  
काल वा समय है। असंख्याज भागाहानिका द्विना काल है ? अपन्व काल एक समय और इच्छ  
काल अन्तुमु हत और पत्तका असंख्याज भाग अधिक एक सा प्रसठ सागर है। संख्याज  
भागाहानिका द्विना काल है ? अपन्व काल एक समय और इच्छ फल वा कम इच्छ संख्याज  
समय प्रमाण है। संख्याजगुणाहानि और असंख्याजगुणाहानि इन ११ हानियोंका द्विना फल  
है ? अपन्व और इच्छ काल एक समय है। अवस्थितका अपन्व फल एक समय और इच्छ  
काल अन्तुमु हत है। इसी प्रकार अवच्छेदजनकाल भवे प्रस और त्रस पदमद आशों० जानना  
पादिय ।

विशेषार्थ-अप काई जीव अष्टाश्रय वा संस्तुतवत्त सांख्यक कार एक समय तक

असंख्याज भाग संख्याज भाग वा संख्याजगुणी स्थितिका यद्वापर बांधना है और दूसरे समयमें  
अस्तरर वा अपस्थित स्थितिका प्राप्त करना है तब उगके असंख्याजगुणाहानि संख्याजगुणाहानि और  
संख्याजगुणाहानि अपन्व काल एक समय प्राप्त होता है। अप काई एक जीव परन समयमें अष्टाश्रयम  
और दूसरे समयमें संस्तुतवत्त असंख्याज भागप्रमाण स्थितिका यद्वापर बांधना है तथा तीसरे  
समयमें अस्तरर वा अपस्थित स्थितिकय करन लगना है तब उगके असंख्याजगुणाहानि  
संख्याजगुणाहानि अपन्व काल एक समय प्राप्त होता है। अप काई एक द्वितीय जीव संस्तुतवत्त एक समय तक  
संख्याज भागप्रमाण स्थितिका यद्वापर बांधना है और दूसरे समयमें अस्तरर तथा अस्थितियोंमें  
रूपम होकर पूर स्थितिसे संख्याज भाग अधिक वस्थितिकि पात्र अपन्व स्थितिसे बांधना है

१२६०. आदेमेण णेरइएसु अमंसेज्जभागवट्ठी केव० ? जह० एगसमओ,

तब सख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट काल दा समय प्राप्त हाता है । अथवा जा तेजन्द्रिय जीव स्वस्थानमे सक्लेशक्षयसे एक समय तक सख्यात भागवृद्धि करके और दूसरे समयमे मरकर तथा चौइन्द्रियोंमे उत्पन्न होकर चौइन्द्रियोंके योग्य जघन्य स्थितिवन्ध करता है उसके सख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय पाया जाता है । तथा जो एकेन्द्रिय एक मोड़ा लेकर सन्नियोंमें उत्पन्न होता है उसके पहले समयमे असज्ञीके योग्य स्थिति बन्ध होता है जो कि एकेन्द्रियके स्थितिमत्त्वसे सख्यातगुणा है और दूसरे समयमे शरीरको ग्रहण करके सज्ञीके योग्य स्थितिवन्ध होता है जो कि असज्ञीके योग्य स्थितिवन्धसे सख्यातगुणा है अतः सख्यात गुणवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है । असख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय है क्योंकि समान स्थितिको बाधनेवाले जिस जीवने एक समय तक पूर्व स्थितिसे असख्यातवें भाग कम स्थितिका बन्ध किया और दूसरे समयमें पुनः सत्त्वके समान स्थितिका बन्ध करने लगा उसके असख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा असख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हृत और पत्यके असख्यातवें भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । उसका खुलासा इस प्रकार है—कोई मिथ्या-दृष्टि भोगभूमिया, आयुमे पत्योपमका असख्यातवों भाग शेष रहने पर उपशम सम्यक्त्व को ग्रहण कर सख्यात भागहानि कर, मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया । उस समयसे असख्यात भागहानि प्रारंभ हो गई । आयुके अन्तमे वह वेदक सम्यग्दृष्टि हो गया और छयासठ सागर तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा । पुनः अन्तमुर्हृत काल तक सम्यग्मिथ्यात्वके साथ रहा और तदनन्तर वह पुनः वेदक सम्यग्दृष्टि हो गया और छयासठ सागर तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा तथा अन्तमे इकतीस सागर की आयुवाले देवोंमे उत्पन्न होकर मिथ्यादृष्टि हो गया । तदनन्तर वहासे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और एक अन्तमुर्हृतके बाद भुजगार स्थितिको प्राप्त हो गया । इस प्रकार इस जीवके असख्यात भागहानिका उत्कृष्टकाल अन्तमुर्हृत और पत्योपमके असख्यातवें भागसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर पाया जाता है । सख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो कम उत्कृष्ट सख्यात समय प्रमाण है । इसका खुलासा इस प्रकार है—दर्शनमोहीनीयनी क्षणमें या अन्यत्र जब पत्यके सख्यातवें भागप्रमाण स्थितिकाण्डकका घात होता है तब सख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा सूक्ष्मसापरायिक क्षणके अन्तिम दो समय कम उत्कृष्ट सख्यात समय प्रमाण काल तक सख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । जो जीव सत्तर कोड़ाकोडी प्रमाण स्थितिके सख्यात बहुभागका घात करता है उसके तथा अन्यत्र अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय सख्यात गुणहानि पाई जाती है अतः सख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा अनिवृत्तिकरणक्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके सेवेद भागमें स्थितिकाण्डक की अन्तिम फालिके पतनके समय असख्यात गुणहानि होती है, अतः असख्यात गुणहानिका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा अवस्थित स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हृत है, क्योंकि, जो जीव एक समय तक अवस्थित स्थितिको प्राप्त होकर दूसरे समयमे भुजगार या अल्पतर स्थितिको प्राप्त हो जाता है उसके अवस्थित स्थिति एक समय तक ही पाई जाती है तथा जो लगातार अन्तमुर्हृत काल तक अवस्थित स्थितिके साथ रहकर भुजगार या अल्पतर स्थितिको प्राप्त होता है उसके अवस्थित स्थितिका अन्तमुर्हृत काल पाया जाता है । अचक्षुदर्शनी, भव्य, अस और प्रसर्प्यतिष्ठ जीवोंके यह ओघ प्ररूपणा अविकल वन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा ।

१२६० आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें असख्यातभागवृद्धिका कितना काल है ? जघन्य

उक्क० ये समय । दो बह्वी० दो हाणी० केव० ? अहणुक्क० एगसमओ । असंखे० भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० तचीस सागरोपमाणि दमूणाणि । अवहि० क० ? अह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं सम्बणेरह० । नवरि असंखेज्जभागहाणीए उक्कस्म० सगसगुक्कस्सहिदी देवणा ।

§ २६१ तिरिक्खेसु तिणि बह्वी संखेज्जगुणहाणी अवहि० ओपं । असंखे० भागहाणी ज० एगसमओ, उक्क० तिणि पल्लिदावणां न साविरेयाणि । सत्त्वज्ज भागहाणी जहएणुक्क० एगसमओ । एवं पंचिदियतिरिक्खवियस्स । नवरि संखज्ज भागवहि० संखेज्जगुणहाणी जहणुक्क० एगसमओ । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० तिणिबहि० दाहाणि अवहिदाणं गिरओपमंगो । असंखज्जभागहाणी के० ? अह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं मणुसअपज्ज० । मणुसतिय० पंचिदियतिरिक्ख वियमंगो । नवरि संखज्जभागहाणी असंखे० गुणहाणी ओपं ।

अत एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । या बुद्धियों और दो हानियों का कितना काल है ? अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । असंख्यातभागहानिज्ज कितना काल है ? अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम बचीस सागर है । अवस्थितविमर्शिका कितना काल है ? अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार सभी नारक्ष्यों के जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सब असंख्यातभागहानिज्ज उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है ।

§ २६२ तिर्येयंमिं तीन बुद्धियों संख्यातगुणहाणि और अवस्थितविमर्शिका काल ओपके समान है । असंख्यातभागहानिज्ज अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पद्व है । तथा संख्यातभागहानिज्ज अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार पंचन्द्रियतिर्येय त्रिकके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागहानि और संख्यात गुणहानि अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । पंचेन्द्रिय तिर्येय अपर्वात्तिमें में तीन बुद्धियों, या हानियों और अवस्थितविमर्शिका काल सामान्य नारक्ष्यों के समान है । तथा असंख्यातभागहानिज्ज कितना काल है ? अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्वात्तियों के जानना चाहिये । तथा मनुष्य त्रिकके पंचन्द्रिय तिर्येय त्रिकके समान काल है । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यात भागहानि और असंख्यातगुणहानिज्ज काल आप समान है ।

विशेषार्थ—असंख्यात भागहानि अद्यावय और संकलशय जानों में मात्र दो मरनी है किन्तु संख्यातभागहानि और संख्यात गुणहानि केवल संकलशयमे ही प्राप्त होता है अतः नारक्ष्यों में असंख्यात भागहानिज्ज अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय तथा सब दो बुद्धियों अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार संख्यात भागहानि और संख्यातगुणहानि अग्नितम कण्टकरी अग्नितम कालिक बनकर समय ही होती है अतः इनमें अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बड़ा । नारक्ष्यों में असंख्यात भागहानिज्ज अपन्य काल एक समय आपके समान पटित कर सना चाहिये । जिस नारक्ष्य ने मरछीं अन्तमहानि अन्तमुहूर्त काल का बड़ा सम्पत्त का प्राप्त कर लिया है और जब अन्तुमें अन्तमुहूर्त का



§ २६२ देव० तिणिण वट्टी दो हाणी अवट्ठि० णिरओघं । असंखे० भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । भवण०-वाण०-जोइसि० एवं चेव । णवरि असंखे० भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्स-ट्ठिदी देसूणा । सोहम्माट्ठि जाव सहस्सार ति एवं चेव । णवरि असंखे० भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सग०ट्ठिदी । आणटादि जाव उवरिमगेवज्ज ति असंखेज्जभागहाणी के० ? ज० अंतोमु०, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । संखेज्जभागहाणी के० ? जहणुक्क० एगसमओ । आणुदिसादि जाव सव्वट्ठिसिद्धि ति एवं चेव ।

§ २६३ इंदियाणुवादेण एइंदिएसु असंखे० भागवट्टी के० ? जह० एग-समओ, उक्क० वे समया । असंखेज्जभागहाणी के० ? जह एगसमओ, उक्क०

शेष रह गया तब उसका त्याग किया है उसके असख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है । शेष कथन सुगम है । प्रथमादि नरकोंमें असख्यातभागहानिके उत्कृष्ट कालको छोड़कर शेष कथन इसी प्रकार जानना । किन्तु असख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जानना । यहा कुछ कमसे भवके प्रारम्भका अन्तर्मुहूर्त काल लेना चाहिये । जो तिर्यच तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है उसके असख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य प्राप्त होता है । पचेन्द्रिय तिर्यच त्रिकके सख्यात भागवृद्धि और सख्यात गुणवृद्धि सकलेशक्षयसे ही प्राप्त होगी अतः यहा इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । लव्यपर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यचका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । ओघसे सख्यात भागहानि और असख्यात गुणहानिका जो उत्कृष्ट काल कहा है वह मनुष्य पर्याय में ही घनता है अतः मनुष्यत्रिक के उक्त दो हानियोंका काल ओघके समान कहा । इस प्रकार ओघप्ररूपणाका और नरकादि तीन गतियोंका जो खुलासा किया है उसीसे आगेकी मार्गणाओं में जहाँ जितनी हानि और वृद्धियाँ सम्भव हों उनके कालका खुलासा हो जाता है अतः आगे नहीं लिखा जाता है । हाँ जहाँ कुछ विशेषता होगी वहाँ अवश्य निर्देश कर दंगे ।

§ २६२ देवोंमें तीन वृद्धियों, दो हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है । तथा असख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेसीस सागर है । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सौधर्म कल्पसे लेकर सहस्त्रार कल्पतक भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । आनत कल्पसे लेकर उपरिम त्रैवेद्यक तक के देवोंमें असख्यात भागहानि का कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है । संख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये

§ २६३ इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें असख्यात भागवृद्धिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । असख्यात भागहानिका कितना

पसिदा० असखे०भागो । दो हाणी केव० ? अहणुक्क० एगसममो । अबहि०  
ओप । एन वादरेदिय वादरेदियपज्जचापज्जत्त-सुहुमेइ दिय-सुहुमेइ दियपज्जचा  
पज्जचाप । एवरि असखे०भागहाणी क० ? जइ० एगसममो, उक्क० वादरे  
इ दिय-सुहुमेइ दियसु पम्भो० असखे०भागो । वादरेइ दियपज्जचोसु सम्बन्धाणि वस्स  
सइस्साणि । अणत्थ भंतासुहुचं ।

§ २६४ विगसिंदियसु अमखेज्जभागवट्ठी आपं । संख०भागवट्ठी वा  
हाणी० अनदिदार्णं एवरिओपमंगो । असखेज्जभागहाणी केव० ? जइ० एगसममो,  
उक्क० सगाहिनी । पंचिदिय० पंचि०पज्ज० पणुसमंगा । एवरि असखे०भागहाणी०  
आपं । पंचिदियअपज्ज०-तसअपज्ज० पंचिदियतिगिक्खअपज्जत्तमंगो । एवरि  
तसअपज्ज० संख०भागवट्ठी संखे०गुणवट्ठी० आपं ।

§ २६५ पंचकाय वादर-सुहुमाणमइ दियमंगो । तसि पज्जचापज्जचाणमेव  
वच । एवरि असखे०भागहाणी० क० ? ज० एगसममो, उक्क० सगाहिदी ।

काल है ? जपन्य काल एक समय और उक्त काल पत्योपमक असंख्यातमें भाग प्रमाण है ।  
हा दानियोंक किना काल है ? जपन्य और उक्तकाल एक समय है । तथा अवस्थितविमर्शिका  
काल आपके समान है । इसी प्रकार बार एकेन्द्रिय वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त वादर एकेन्द्रिय  
अपवात, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पयात और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपयात जीपोंके  
जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागानिश्च किना काल है ?  
जपन्य काल एक समय है और उक्त काल वादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें पत्योपमक  
असंख्यातमें भागप्रमाण है । वादर एकेन्द्रिय पयातकोंमें संख्यात हजार वच है तथा इनके  
वतिरिक्त बार वादर एकेन्द्रिय अपयात, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पयात और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपयात  
जीपोंमें अन्तसु हूत काल है ।

§ २६६ विरुत्तमियोंमें असंखान भागवट्टिका काल आपक समान है । संख्यात  
भागवट्टि, वा दानि और अवस्थितविमर्शिका काल सामान्य नारदियों के समान है । तथा  
असंख्यातभागानिश्च किना काल है ? जपन्य काल एक समय और उक्त काल अपनी  
अपनी उक्त स्थिति प्रमाण है । एकेन्द्रिय और एकेन्द्रिय पयातकोंके अनुपपत्ति समान जानना  
चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागानिश्च काल आपक समान है । एकेन्द्रिय  
अपयातक और प्रम अपयातकों के एकेन्द्रिय निर्भर अपयातकोंके समान जानना चाहिये । इतनी  
विशेषता है कि प्रम अपयातकोंके संख्यातभागवट्टि और संख्यातगुणवट्टि पर काल आपक  
समान है ।

§ २६७ पाँचों व्यापकाय, पाँचों व्यापकाय वादर और पाँचों व्यापकाय सूक्ष्म जीपोंके  
एकेन्द्रियके समान जानना चाहिये । तथा पाँचों व्यापकाय वादर और सूक्ष्मोंके वा पयात  
और अपयात भइ है इनके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विचारता है कि इनके असंख्यात  
भागानिश्च काल किना है ? जपन्य काल एक समय और उक्त काल अपनी अपनी उक्त  
स्थिति प्रमाण है ।

२६६. पंचमण०-पंचवचि० असंखेज्जभागहाणी० अवट्ठि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । संखे०भागहाणी० ओघं । सेसा० मणुसभंगो । कायजोगि० तिण्णि वड्डी० तिण्णि हाणी० अवट्ठि० ओघं । असंखे०भागहाणी० एइंदियभंगो । ओरालि० मणजोगिभंगो । णवरि असंखे०भागहाणी० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वावीसवस्ससहस्साणि देसूणाणि । ओरालियमिस्स० संखे० भागवड्डी असंखे०भागवड्डी अवट्ठि० ओघं । संखे०गुणवड्डी तिण्णि हाणी पंचि-दियअपज्जत्तभंगो । वेउव्वियकायजोगि० तिण्णि वड्डी तिण्णि हाणी अवट्ठि० णिर-ओघं । णवरि असंखेज्जभागहाणी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं वेउव्वियमिस्स० । आहार० असंखे०भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवमकसाय० - जहाक्खाद० । आहारमि० असंखे०-भागहाणी के० ? जहएणुक्क० अंतोमु० । एवमुवसम० । णवरि संखेज्जभागहाणी जहएणुक्क० एगस० । कम्मइय० दो वड्डी दो हाणी के० ? जहणुक्क० एगसमओ । असंखे०भागवड्डी हाणी ज० एगसमओ, उक्क० वे समया । अवट्ठि० ज० एग-समओ, उक्क० तिण्णि समया ।

§ २६६ पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें असंख्यातभागहानि और अवस्थितकाल कितना है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा सख्यातभागहानिका काल ओघके समान है । तथा शेषकाल मनुष्यों के समान है । काययोगी जीवोंमें तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा असंख्यातभागहानिका काल एकेन्द्रियोंके समान है । औदारिककाययोगियोंके मनोयोगियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका कितना काल है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है । औदारिकमिश्रकाययो-गियोंमें सख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा संख्यातगुणवृद्धि और तीन हानियोंका काल पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है । वैक्रियिककाययोगियोंमें तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल सामान्य-नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके जानना चाहिये । आहारककाययोगियोंमें असंख्यातभागहानिका कितना काल है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टियोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके सख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । कर्मणकाययोगियोंमें दो वृद्धियों और दो हानियोंका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है ।

§ २६७ वेदाणुपादेण इत्थि० तिण्णि बङ्गी० दो हाणी० अवट्ठि० गिरओपं ।  
असंखे० भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० पणवण्णपत्तिरोरमाणि देसूणाणि ।  
असंखे० गुणहाणी के० ? जहण्णुक० एगसमओ । एवं पुरिस० । गनरि असंखे०  
भागहाणी ओपं । जवु स० तिण्णि बङ्गी सखेअगुणहाणी असंखे० गुणहाणी अनहा०  
ओपं । संखे० भागहाणी जहण्णुक० एगसमओ । असंखे० भागहाणी० जह० एग  
समओ, उक्क० वेत्तीस सागरोपमाणि देसूणाणि । अवमद० असंखे० भागहाणी  
के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । संखे० भागहाणी संखे० गुणहाणी ओपं ।

§ २६८ चत्तारिक्का० तिण्णि बङ्गी तिण्णि [ हाणी ] असंखेअगुणहाणी  
अवहाणं गवु सगमंगो । गवरि असंखे० भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क०  
अंतोमु० । सोमकसाय० असंखे० भागहाणी ओपं ।

§ २६९ मदि-सुदअण्णाख० तिण्णि बङ्गी तिण्णि हाणी अवहा० तिरिक्कोपं ।  
खवरि असंखे० भागहाणी जह० एगसमओ, उक्क० एक्कत्तीस सागरोपमाणि सादि  
रेयाणि । [एव विच्छादहीणं] विहंग० सत्तमपुहकिमंगो । खवरि असंखे० भागहाणी  
जह० एगसमओ, उक्क० एक्कत्तीस सागरोपमाणि देसूणाणि ।

§ २६७ वेदमार्गवाके अनुवादसे श्रीवेदियोंमें तीन वृद्धियों, दो हाणियों और अवस्थित  
विमर्शिक अथ सामान्य नारकियोंके समान है । तथा असंख्यात भागहानिका कितना अथ है ?  
अथ काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पश्य है । तथा असंख्यातगुणहानिका  
कितना काल है ? अथ और उत्कृष्टकाल एक समय है । इसी प्रकार पुरुषवेदियोंके ज्ञानता  
बाहिये । इतनी विधेयता है कि इनके असंख्यात भागहानिका काल ओपके समान है । नपुंसक-  
वेदियोंमें तीन वृद्धियों संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि और अवस्थितविमर्शिक  
अथ ओपके समान है । तथा संख्यातभागहानिका अथ और उत्कृष्ट काल एक समय है ।  
तथा असंख्यातभागहानिका अथ काल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम वेत्तीस सागर है ।  
अपगतवेदियोंमें असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? अथ अथ एक समय और उत्कृष्ट  
काल अथमु हूत है । तथा संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका काल ओपके  
समान है ।

§ २६८ ओपादि चारों कथायवाले जीवोंमें तीन वृद्धियों तीन हाणियों, असंख्यात  
गुणहानि और अवस्थितविमर्शिक काल नपुंसकवेदियोंके समान है । इतनी विधेयता है कि  
इनके असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? अथ काल एक समय और उत्कृष्ट काल  
अथमु हूत है । तथा सोमकसायवाले जीवोंके असंख्यातभागहानिका काल ओपके समान है ।

§ २६९ मत्पण्णानी और भुताण्णानी जीवोंके तीन वृद्धियों तीन हाणियों और अवस्थित  
विमर्शिक अथ सामान्य तिरिक्कोंके समान है । इतनी विधेयता है कि इनके असंख्यातभाग-  
हानिका अथ काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक इक्कीस सागर है । इसी प्रकार  
मिच्छादहियोंके ज्ञानता बाहिये । विमंगणानियोंके सातवीं वृद्धियोंके समान ज्ञानता बाहिये । इतनी  
विधेयता है कि इनके असंख्यातभागहानिका अथ काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम  
इक्कीस सागर है ।

§ २७०. आभिणि०-मुद०-ओहि० अमंखे०भागहाणी के० ? ज० अतो-मुहुत्तं, उक्क० आगहिंसागरे० देमूणाणि । तिण्णि हाणी ओघं । एगमोहिदंस०-सम्मादि० । मणपज्ज० अमंखे०भागहाणी जह० एगसमओ, उक्क० पुब्बकोडी देमूणा । तिण्णि हाणी ओघं । एवं सजद० । सामाडय-वेदो०मंजदाणमं चं । एवरि मंखेज्जभागहाणीए कालो जहण्णुक्क० एगसमओ । परिहार०-मंजदासंजद० असंखे०भागहाणी जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगहिदी । मखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ । मुहुप० अवगदघेदभंगो । असंजद० णवुंमयभंगो । णवरि अमंखेज्ज-भागहाणीए कालो जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीमं सागरो० सादिग्ग्याणि । असंखे०गुणहाणीवि० एत्थि । चम्पु० तसपज्जत्तभंगो । णवरि मंखे०भागवड्डी जहण्णुक्क० एगसमओ ।

§ २७१. किण्णलील-काउत्ते० अमंजदभंगो । एवरि अमंखे०भागहाणीए जह० एगसमओ, उक्क० सगहिदी देमूणा । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणक्कुमार-भंगो । मुक्क० असंखे०भागहाणीए जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादि-रेयाणि । तिण्णि हाणी ओघ । एवं सडय० । णवरि असंखे०भागहाणी ज०

§ २७०. आभिनिमाधिकरानो, अतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असंख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर हैं । तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । मनःपर्यव्रजानी जीवोंके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार सयत जीवोंके जानना चाहिये । सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । परिहारविशुद्धिसंयत और सयतासंयत जीवोंके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति-प्रमाण है । तथा संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय हैं । सूक्ष्म-सापरायिकसंयत जीवोंके अपगतवेदियोंके समान जानना चाहिये । असंयतोंके नपुसकवेदियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । असंयतोंके असंख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है । चक्षुदर्शनवाले जीवोंके असंख्यातकोके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ २७१. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके असंयतोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्म कल्पके समान जानना चाहिये । पद्मलेश्यावाले जीवोंके सानलुमार कल्पके समान जानना चाहिये । शुक्ल लेश्यावाले जीवोंके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार चायिकसम्यग्दृष्टि

अंतोमुहुचं, उक्क० तेवीसं साग० सादिरेयाणि । वेद्य० असंखे० भागहाणी०  
आमिणि० भंगो । संखे० भागहाणी सखे० गुणहाणी अहयणुक० एगसमओ ।

§ २७२ सासण० असंखे० भागहाणी० अह० एगसमओ, उक्क० छ आबलि  
यामो । सम्माभि० असंखे० भागहाणी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुचं । ब  
हाणी० वेद्यभंगो । सण्णि० पंचिदियभंगो । असण्णि० दो बहरी सखे० गुणहाणी०  
अबहि० ओघं । सखे० गुणबहरी संख० भागहाणी अहयणुक० एगसमओ । असंखे०  
भागहाणीए एहंदिभंगो । अमब० मदि० भंगा । आहारि० दो बहरी चचारि  
हाणी अबहि० ओघभंगो । संखे० गुणबहरी जहयणुक० एगस० । अपाहारि०  
कम्मइय० भंगो ।

एवं कालाणुगमो समसो ।

§ २७३ अंतराणुगमेण इविहो गिहेसो—ओघेण आदंसण य । तस्य ओघेण  
असंखे० भागबहरी० अबहि० अंतरं कव० ? ज० एगसमओ, उक्क० तबहिसागरा  
बमसदं अंतोमुहुचं मरियतीहि पम्भोषयेहि सादिरय । दो बहरी० दो हाणी० जह०  
एगसमओ अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखत्ता पोग्गसपरियहा । असंखे० भाग

बीबोंके जानना चाहिये । इतनी विवेकता है कि असंख्यातमागहानिका अपन्य काल अन्तमु हुतं  
और उक्क० काल साधिक तेवीस सागर है । वेदकसम्यग्दृष्टि बीबों के असंख्यात मागहानिका  
काल आभिविवाधिकहानियोंके समान है । तथा संख्यातमागहानि और संख्यातगुणहानिका अपन्य  
और उक्क० काल एक समय है ।

§ २७४ सासादनसम्यग्दृष्टि बीबोंके असंख्यात मागहानिका अपन्य काल एक समय  
और उक्क० काल बह आबली है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि बीबोंके असंख्यातमागहानिका अपन्य  
काल एक समय और उक्क० काल अन्तमु हुतं है । तथा दो हानियोंका काल वक्कसम्यग्दृष्टियोंके  
समान है । संखी बीबोंके पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । असंखी बीबोंके दो बुद्धियों, संख्यात  
गुणहानि और अवस्थितविमर्शिका काल ओषके समान है । तथा संख्यातगुणबुद्धि और  
संख्यातमागहानिका अपन्य और उक्क० काल एक समय है और असंख्यात मागहानिका  
काल एकेन्द्रियोंके समान है । जसम्य बीबोंके मत्प्राप्तियोंके समान जानना चाहिये ।  
आहारक बीबोंके दो बुद्धियों, चार हानियों और अवस्थितविमर्शिका काल ओषके समान है ।  
तथा संख्यातगुणबुद्धिका अपन्य और उक्क० काल एक समय है । अनाहारक बीबों के कर्मण्य  
कामयोगियोंके समान जानना चाहिये ।

इस प्रकार कालाणुगम समाप्त हुआ ।

§ २७५ अन्तराणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेअनिर्देश ।  
जन्मसे ओपकी अपेक्षा असंख्यातमागबुद्धि और अवस्थितविमर्शिका अन्तराणुगम फलना है ।  
अपन्य अन्तर काल एक समय और उक्क० अन्तर काल अन्तमु हुतं और तीन पद्योंसे अधिक  
एक ही त्रेखठ सागर है । तथा दो बुद्धियों और दो हानियोंका अपन्य अन्तरकाल एक समय  
और अन्तमु हुतं है और उक्क० अन्तरकाल अन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण

हाणी० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखे० गुणहाणी० जहणुक्क० अंतो-  
मुहुत्तं । एवमचक्खु०-भवसि० ।

है। तथा असख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है। तथा असख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**जब असख्यातभागवृद्धि और अवस्थित स्थितिके मध्यमे एक समय तक अन्य स्थितिबिभक्ति प्राप्त हो जाती है तब इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा असख्यात भागहानि और सख्यातभागहानिका मिला कर उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त और तीन पत्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है, अतः असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित का उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। जब कोई दो इन्द्रिय जीव पहले समयमे सख्यातभागवृद्धि करता है, दूसरे समयमे अवस्थित स्थितिको प्राप्त होता है और तीसरे समयमे मरकर तथा तेइन्द्रियोंमे उत्पन्न होकर पुनः संख्यातभागवृद्धि करता है तब सख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर काल एक समय प्राप्त होता है, अतः सख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय कहा। जो एकेन्द्रिय जीव दो मोडा लेकर सत्री पचेन्द्रियोंमे उत्पन्न होता है उसके पहले मोडेके समय सख्यातगुणवृद्धि होती है। दूसरे मोडेके समय अन्य स्थिति होती है और तीसरे समयमे पुनः सख्यातगुणवृद्धि होती है अतः संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर काल एक समय कहा। जिस जीवके स्थिति काण्डककी चरम फालिके पतनके समय सख्यातभागहानि हुई पुनः अन्तमुहूर्त कालके बाद अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यातभागहानि होती है अतः सख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा। तथा उसी जीवके दूरपकृष्टि प्रमाण स्थितिके उपरिम द्विचरम स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय सख्यातगुणहानि होती है। पुनः अन्तमुहूर्त कालके बाद अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय सख्यातगुणहानि होती है अतः संख्यात गुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा। तथा उक्त दानों वृद्धियों और दोनों हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है, क्योंकि जिस जीवने सत्री पचेन्द्रिय पर्यायमे उक्त दो वृद्धिया और दो हानिया की पुनः जो मरकर एकेन्द्रियोंमे उत्पन्न हुआ और वहा असख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् वहासे निकलकर जो सत्रियोंमे उत्पन्न हुआ और सत्री पर्यायमे जिसने पुनः दो वृद्धिया और दो हानिया की उसके उक्त दो वृद्धियों और दो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है। एक समयके अन्तरसे असख्यातभागहानिका होना सम्भव है, अतः असख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय कहा। तथा अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। अब यदि असख्यात भागहानिको अवस्थित स्थितिसे अन्तमुहूर्त काल तक अन्तरित कर दिया जाय तो असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तमुहूर्त प्राप्त हो जाता है। अनिवृत्तिकरण क्षणके सवेद भागमें स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय असंख्यातगुणहानि होती है पुनः अन्तमुहूर्तके बाद दूसरे स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय असख्यातगुणहानि होती है, अतः असख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त प्राप्त होता है। अचक्षुदर्शन और भव्य मार्गणमें यह ओघ प्रेरुपणा बन जाती है, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा।

५ २७४ आयेसेण जेरइय० असंखे० मागवङ्गी अनडि० जह० एगसमओ ।  
दो वङ्गी० दा हाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० तेरीससागरो० देसणाणि । असंखे०  
मागहाणी० ओष । पहमादि जाय सत्तमि पि एव चेव । जवरि सगसगुक्खसिद्धिदी  
देसणा ।

५ २७५ तिरिक्खेसु असंखेज्जमागवङ्गी अनडि० जह० एगसमओ, उक्क०  
पस्सिओ० असंखे० मागो । दो वङ्गी० दोहाणी० असंखे० मागहाणी० ओष । पचि०  
तिरिक्खत्तियम्मि असंखे० मागवङ्गी० अनडि० ज० एगसमओ । दो वङ्गी० संखे०  
गुणहाणी० ज० अंतोमुहुत्तं । उक्क० सम्भसि पि पुन्वकोडिपुवत्तं । असंखेज्जमाग-  
हाणी० ओष । संखे० मागहाणी० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तिरिण पस्सिदावमाणि  
अंतोमुहुत्तंमहिपाणि । एवं मणुसत्तिय० । जवरि जग्गि पुन्वकोडिपुवत्तं तम्मि  
पुन्वकोडी देसणा । असंखे० गुणहाणी० ओष । पचि० तिरिक्खत्तियम्मि असंखे०  
मागवङ्गी० हाणी० अनडि० जह० एगसमओ । दो वङ्गी० दा हाणी० जह० अंतोमु० ।  
उक्क० सम्भेसिमंतोमुहुत्तं । एवं मणुसत्तियम्मि पचि० मपज्ज० तसमपज्ज० विहंग० ।  
जवरि तसमपज्ज० दोवङ्गी० जह० एगसमओ ।

५ २७४ आयेसकी अपेक्षा नायिकोंके असंख्यातमागवङ्गी और अवस्थितविमलिका  
अपन्य अन्तरकाश एक समय तथा दो बुद्धियों और दो हानियोंका अपन्य अन्तरकाश अन्तमुहूर्त  
है । तथा समीक उत्कृष्ट अन्तरकाश कुछ कम तृतीय सागर है । तथा असंख्यात  
मागहाणिका अन्तरकाश ओषके समान है । पक्षी प्रविषीसे लेकर सातवीं प्रविषी तक इसी  
प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति  
रखनी चाहिये ।

५ २७५ तिरिक्खेसु असंख्यातमागवङ्गी और अवस्थितविमलिका अपन्य अन्तरकाश  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाश पस्सोपमके असंख्यातवर्ग मागवमाण है । तथा दो बुद्धियों  
दो हानियों और अवस्थितमागहाणिका अन्तरकाश ओषके समान है । पंचमित्रियतिर्यङ्गाश्रिकोंमें  
असंख्यातमागवङ्गी और अवस्थितविमलिका अपन्य अन्तरकाश एक समय तथा दो बुद्धियों  
और संख्यातगुणहाणिका अपन्य अन्तरकाश अन्तमुहूर्त है । तथा समीक उत्कृष्ट अन्तरकाश  
पूर्वकोटिपुवत्त है । असंख्यात मागहाणिका अन्तरकाश ओषके समान है तथा संख्यात  
मागहाणिका अपन्य अन्तरकाश अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाश अन्तमुहूर्त अधिक तीन  
पस्स है । इसी प्रकार मनुष्यश्रिके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पंचमित्रिय तिर्यङ्गाश्रिकोंके  
वहाँ पूर्वकोटि प्रमत्त कहा है वहाँ मनुष्यश्रिके कुछ कम पूर्वकोटि करना चाहिये । तथा  
असंख्यातगुणहाणिका अन्तरकाश ओषके समान है । पंचमित्रिय तिर्यङ्गा अपवातकोंके असंख्यात-  
मागवङ्गी, असंख्यातमागहाणि और अवस्थितविमलिका अपन्य अन्तरकाश एक समय है तथा  
दो बुद्धियों और दो हानियोंका अपन्य अन्तरकाश अन्तमुहूर्त है । तथा एक समीक उत्कृष्ट  
अन्तरकाश अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपवातक, पंचमित्रिय अपवातक, त्रस अपवातक  
और विमंगलानियोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि त्रस अपवातकोंके दो बुद्धियोंका  
अपन्य अन्तरकाश एक समय है ।



§ २७६. देव० असंखेज्जभागवट्ठी० अवट्ठी० जह० एगसमओ, दो वट्ठी० संखेज्जगुणहाणी० जह० अंतोमुहुत्तां, उक्क० अट्टारस सागरोवमाणि सादिरैयाणि । संखेज्जभागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देसूणाणि । असंखे० भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव । गवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति असंखे० भागहाणीए जहणुक्क० एगसमओ । संखे० भागहाणीए जह० अंतोमु०, उक्क० सग-ट्ठिदी देसूणा । अणुदिसादि जाव सच्चट्ठेत्ति असंखे० भागहाणी० जहणुक्क० एग-समओ । संखे० भागहाणी० जहणुक्क० अंतोमु० ।

§ २७६ देवोंमें असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितवभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है तथा दो वृद्धियों और सख्यात गुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त हैं । तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर हैं । तथा सख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर हैं । तथा असख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त हैं । भवनवासियोंसे लेकर सहस्सार स्वर्ग तकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । आनत कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंमें असख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा सख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके असख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय तथा सख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—नरकमें स्वस्थानकी अपेक्षा सख्यातभाग वृद्धि और सख्यातगुणवृद्धि सकलेश ज्ञयसे एक समय तक होती है और पुनः इनका होना अन्तमुहूर्त कालके विना सम्भव नहीं है, अतः इनका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा । तथा नरकमें असख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः असख्यातभागहानिको छोड़कर शेष सबका उत्कृष्ट अन्तर काल उक्त प्रमाण कहा । तिर्यचोंमें असख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल यद्यपि साधिक तीन पत्य है पर ऐसे जीवके तिर्यच पर्यायके रहते हुए असख्यातभागवृद्धिकका उत्कृष्ट अन्तरकाल सम्भव नहीं किन्तु तिर्यचोंमें एकेन्द्रियोंके जो असख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया है वही इनके असख्यात भागवृद्धिकका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । तिर्यचत्रिकमें स्वस्थानकी अपेक्षा सख्यातभागवृद्धि और सख्यातगुणवृद्धि एक समय तक होकर पुनः अन्तमुहूर्त कालके विना नहीं हो सकती हैं अतः इन दोनोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा । तथा तिर्यच त्रिकके असख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल यद्यपि साधिक तीन पत्य बतलाया है किन्तु ऐसा जीव मरकर पुनः तिर्यच पर्यायमें नहीं आता, अतः तिर्यच त्रिकके असंख्यात भागहानिका जो उत्कृष्ट काल है वह तीन वृद्धि, संख्यातगुणहानि और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल नहीं हो सकता किन्तु इनके सबी अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होकर असंख्यातोंमें उत्पन्न हो जानेसे असख्यातभागहानि प्रारंभ हो जाती है । पुनः असंख्यातोंमें अपने अपने असंज्ञियोग्य उत्कृष्ट काल तक, जो क्रमशः ४६, १५ व ७ कोटि पूर्व भ्रमण किया । तथा वहाँ अपनी अपनी असंज्ञी पर्यायके

१२७७ एइदिपसु असंखे० मागवन्नी० हाणी० अबदि० सह० पयसमओ,  
 उह० अंतोमु० । दा हाणी० णत्थि अंतरं । एयं पंचकायाखं । विगस्मिदिपसु  
 असंखे० मागवन्नी हाणी० अबदि० सह० पयसमओ, उह० अंतोमु० । संखे० मागवन्नी०  
 संखे० मागहाणी० महण्णुह० अंतोमुह० । संखे० गुणहाणी० णत्थि अंतरं ।

मारम्भमें वृद्ध तीन वृद्धियां संख्यात गुणहानि और अवस्थित स्थिति का अन्तर करके वृद्ध पूर्व  
 कोटि दृक्त्व काल तक असंख्यात मागहानिके साथ रहा । और संक्षिप्तोमें उत्पन्न होकर पुनः  
 तीन वृद्धियां संख्यातगुण हानि और अवस्थित स्थिति प्राप्त हो गईं तब बाहर इनका उत्कृष्ट  
 अन्तरकाल पूर्वकोटि दृक्त्व प्रमाण ही प्राप्त होता है । जिस तिर्यचने प्रथमोपसम सम्बन्धको  
 प्राप्त करते समय संख्यातमागहानि की । पुनः मिथ्यात्वमें बाहर और अन्तमु हुत कालके बाद जा  
 तीन पक्षकी आसुके साथ उत्पन्न मोगमूर्तिमें उत्पन्न हुआ और जीवनमें अन्तमु हुत कालके सेप  
 रह जाने पर जिसने पुनः प्रथमोपसम सम्बन्धको प्राप्त करके संख्यात मागहानि की उसके संख्यात  
 मागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमु हुत अधिक तीन पक्ष प्रमाण पाया जाता है । मनुष्यत्रिकके  
 असंख्यातमागहानिका उत्कृष्ट काल तिर्यच त्रिकके समान ही है पर इनके भी असंख्यात  
 मागहानि आदिका उत्कृष्ट अन्तरकाल तत्प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि तिर्यचत्रिकके समान यहाँ भी  
 वही बाधा आती है । जब यदि कहा जाय कि जिस प्रकार तिर्यच त्रिकके इतका उत्कृष्ट अन्तरकाल  
 पूर्वकोटि दृक्त्व प्रमाण वृत्ता आये है वही प्रकार मनुष्योंके भी पठित हो जायगा सा भी बात  
 नहीं है, क्योंकि मनुष्योंमें असेही न होनेके कारण सम्बन्ध की अपेक्षा सुखगार और  
 अवस्थित स्थिति का उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकादि प्रमाण वृत्तसाया है अतः यहाँ असंख्यात  
 मागहानि आदिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकादि प्रमाण ही कहा है । जो पंचेन्द्रिय तिर्यच  
 अपमान स्थितिपात करता है उसके एक काण्डकी अन्तिम क्षणिके पतनके समय संख्यातमाग-  
 हानि या संख्यातगुणहानि हुई । पुनः अन्तमु हुतकालके बाद दूसरे काण्डकी अन्तिम क्षणिके  
 पतनके समय संख्यात मागहानि या संख्यात गुणहानि होगी अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच अपमानक्रममें  
 इनका अन्तर अन्तरकाल अन्तमु हुत कहा । किन्तु जब अपमानक्रममें विकलत्रय भी सम्मिलित हैं,  
 अतः इनके संख्यातमागहानिका अपमान अन्तरकाल एक समय भी बन जाता है । देवोंमें  
 बारहवें स्वर्गके बाद असंख्यातमागहानि संख्यातमागहानि, संख्यात गुणहानि, संख्यात  
 गुणहानि और अवस्थित स्थिति नहीं पाई जाती अतः इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल सापेक्ष अठारह  
 सागर कहा । तथा नौ वैभवके देव सम्बन्धरैतको प्राप्त करके पुनः मिथ्यात्वमें और मिथ्यात्वसे  
 सम्बन्धमें जा सफल हैं और इस प्रकार उनके पुनः अनन्तानुबन्धीका सत्य और उसकी  
 विस्तृतता हो सकती है अतः सामान्य देवोंके संख्यात मागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम  
 इक्कीस सागर कहा । सेप कवन सुख है ।

१२७८ एकेन्द्रियोंमें असंख्यात मागहानि, असंख्यात मागहानि और अवस्थितविभक्तिका  
 अपमान अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमु हुत है । तथा दो हानियोंका  
 अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जापना चाहिये । विकलत्रियोंमें  
 असंख्यात मागहानि, असंख्यात मागहानि और अवस्थितविभक्तिका अपमान अन्तरकाल एक समय  
 और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तमु हुत है । संख्यात मागहानि और संख्यात मागहानिका  
 अपमान और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमु हुत है । तथा संख्यात गुणहानिका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें असंख्यात मागहानिका उत्कृष्ट काल जो पक्षके असंख्यातवे

§ २७८ पचिंदिय-पचिं०पज्ज० असंखे०भागवड्डी० अवट्ठि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं अंतोमुहुत्तमभियतीहि पण्डितोप्पेहि साट्ठिरेयं । असंखे०भागहाणि० अतर ज० एगसम०, उक्क० अतोमु० । दोवड्डी-दोहाणीणं ज० अंतोमु०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं साट्ठिरेयं । असंखे०गुणहाणी० जहण्णक्क० अंतोमु० । एवं तस-तसपज्जत्ताणं । णवरि दो वड्डी० जह० एगसमओ ।

भागप्रमाण वतलाया सो इतने काल तक असख्यात भागहानि उन एकेन्द्रियोंके पाई जाती है जिनकी स्थिति एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धसे बहुत ही अधिक होती है और इसलिये ऐसे जीवके असख्यात भागवृद्धि, या अवस्थित या इनका अन्तरकाल यह कुछ भी सम्भव नहीं । किन्तु असंख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि या अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल उन एकेन्द्रियोंके पाया जाता है जिनका स्थितिसत्त्व एकेन्द्रियोंके स्थितिवन्धके योग्य रह जाता है और इस प्रकार इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन जाता है । तथा जिस सजी पचेन्द्रियने सख्यात भागहानि या सख्यात गुणहानिका प्रारम्भ किया है वह यदि स्थितिकाण्डरूपके उत्कीरण कालका समाप्त करनेके पहले मरकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो जाय तो उस एकेन्द्रिय जीवके सख्यात भागहानि या सख्यात गुणहानि पाई जाती है अतः एकेन्द्रियके इनका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । विरुलत्रयोंमें सख्यात भागवृद्धि भी सम्भव है अतः इनके अपने स्थितिवन्धके योग्य स्थितिके रहते हुए भी सख्यात भागहानि हो सकती है पर इस प्रकार सख्यात भागवृद्धि और सख्यात भागहानि अन्तर्मुहूर्तके पहले नहीं होती, अतः इनका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ २७८ पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें असख्यात भागवृद्धि और अवस्थित-विभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और तीन पत्य अधिक एकसौ त्रैसठ सागर है । असख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रैसठ सागर है । तथा असंख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके दो वृद्धियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

**विशेषार्थ—**पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके सख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानिका जो उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रैसठ सागर वतलाया है सो यहा दोनों वृद्धियों और सख्यात गुणहानिके अन्तरकालका कथन करते समय साधिकसे तीन पत्य और अन्तर्मुहूर्त कालका ग्रहण करना चाहिये तथा सख्यात भागहानिके अन्तरकालका कथन करते समय साधिकसे पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण कालका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि पहले असंख्यात भागहानिका जो पत्यका असख्यातवा भाग अधिक एकसौ त्रैसठ सागर प्रमाण उत्कृष्ट काल वतला आये हैं वह यहा सख्यात भागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल है और जो अल्पतर स्थितिका अन्तर्मुहूर्त और तीन पत्य अधिक एकसौ त्रैसठ सागरप्रमाण उत्कृष्ट काल वतला आये हैं वह यहा सख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि और सख्यात गुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल है । तथा उक्त जीवोंके उक्त दो वृद्धि और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण वतलाया है सो इसका कारण यह है कि स्वस्थानकी अपेक्षा उक्त स्थिति-

§ २७६ पचमण०-पचमणि० अमखे० मागवद्दी० अवहि० अंतरं के० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अमखे० मागहाणी० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । ससदोवद्दी तिण्णिहाणीणं एत्थि अंतरं । एमओरासियकायनोगीणं ।

§ २८० कायनोगीसु असंखे० मागवद्दी० अवहि० ज० एगसमओ, उक्क० पसिओ० असंखे० मागो । असंखे० मागहाणी० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । दावद्दी-दोहाणीणं जह० एगसमओ अंतोमु०, उक्क० अणंतकासमसंखेज्जा पोगस-परियद्दा । असंखे० गुणहाणी० एत्थि अंतरं । ओरासियमिस्स० असंखे० माग-वद्दी० अवहि० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखे० मागहाणी० ज० एमसं०, उक्क० अंतोमु० । सखे० मागवद्दी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । दोहाणी० संसा० गुणवद्दी० जह० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु० । वडम्बिय० असंखे० माग-वद्दी० हाणी० अवहि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । संसदोवद्दी-दोहाणीणं एत्थि अंतरं । वडम्बियमिस्स० असंखे० मागवद्दी हाणी० अवहि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सेसपवेसु एत्थि अंतरं । कम्मइय० अवहि० ज० उ० एगसमओ ।

बिभक्षिमांश्च इस्से क्क अन्तरकास न्ही पाया वा सक्का है । तथा त्रस और त्रस पर्याप्त जीवों के संख्यात मागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि के अपन्य अन्तरकास वा एक समय वत्सत्वा है जो वह परस्वानकी अपेक्षा जानना चाहिये जिसका कुलासा आप प्ररूपबाके समय कर भाव है ।

§ २८६ पौर्वो मत्तायागी और पांचा वचनयागी जीवोंमें असंख्यात मागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिक अन्तरकास कितना है ? अपन्य अन्तरकास एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकास अन्तमु हुते है । असंख्यात मागवृद्धि के अपन्य अन्तरकास एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकास अन्तमु हुते है । तथा शर वा वृद्धिों और तीन हानियोंका अन्तरकास नहीं है । इसी प्रकार औदारिकमावयागी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २८० काययागियोंमें असंख्यात मागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिक अपन्य अन्तरकास एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकास पर्याप्तके असंख्यातमें मागममास्य है । असंख्यात मागवृद्धि के अपन्य अन्तरकास एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकास अन्तमु हुते है । शेर वृद्धियों और नू हानियोंके अपन्य अन्तरकास एक समय और अन्तमु हुते तथा उत्कृष्ट अन्तरकास अन्तमु हुते है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमास्य है । असंख्यात गुणवृद्धि के अपन्य अन्तरकास नहीं है । औदारिकमिमावयागियोंमें असंख्यात मागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिक अपन्य अन्तरकास एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकास अन्तमु हुते है । असंख्यात मागवृद्धि के अपन्य अन्तरकास एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकास अन्तमु हुते है । संख्यात मागवृद्धि के अपन्य अन्तरकास एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकास अन्तमु हुते है । तथा दो हानियों और संख्यात गुणवृद्धि के अपन्य और उत्कृष्ट अन्तरकास अन्तमु हुते है । वैश्विकमावयागियोंमें असंख्यात मागवृद्धि असंख्यातमागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिक अपन्य अन्तरकास एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकास अन्तमु हुते है । तथा शर वा वृद्धियों और वा हानियोंका अन्तरकास नहीं है । वैश्विकमिमावयागियोंमें असंख्यात मागवृद्धि असंख्यात मागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिक अपन्य अन्तरकास एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकास अन्तमु हुते है । तथा शेष पौर्वो अन्तरकास नहीं है । कम्मवकावयागियोंमें अवस्थितविभक्तिक अपन्य और उत्कृष्ट अन्तरकास एक समय है । तथा

सेसपदानं णत्थि अतरं । आहार०-आहारमिस्स० असंखे० भागहाणी० णत्थि अंतरं ।  
एवमकसा०-जहाक्खाद०-सासण० । अणाहारीणं कम्मइयभंगो ।

§ २८१ इत्थिवेद० असंखे० भागवद्धी० अवट्ठि० ज० एगसमओ । दो  
वद्धी-दोहाणीणं जह० अंतोमु० । उक्क० पणवण्णपल्लिदोवमाणि देसूणाणि ।  
असंखे० भागहाणी-असंखे० गुणहाणीणमोघभंगो । पुरिस० पंचिदियभंगो । णवुंस०  
असंखे० भागहाणी-अवट्ठिदाणं णिरओघं । सेसपदानमोघभंगो । एवमसंजद० ।

शेष पदोंका अन्तरकाल नहीं है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें  
असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और  
सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । अनाहारक जीवोंके कर्मण्णकाययोगियोंके समान  
जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—पाचों मनोयोगों और पाचों वचनयोगोंका तथा एकेन्द्रियोंको छोड़कर शेष  
जीवोंके औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है और विवक्षित किसी एक योगके रहते  
हुए संख्यात भागवृद्धि आदि तथा संख्यात भागहानि आदि दो बार सम्भव नहीं अतः इनके संख्यात  
भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि इन दो वृद्धियोंका तथा संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि  
और असंख्यातगुणहानि इन तीन हानियोंका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । काययोगमें असंख्यात भाग  
हानिका जो उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवर्षे भागप्रमाण बतलाया है वही यहा असंख्यात भागवृद्धि  
और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । कोई एक त्रस जीव है उसने काययोगके  
रहते हुए संख्यात भागवृद्धि की । पुनः वह काययोगके साथ मर गया और एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर  
अनन्त काल तक धूमता रहा । तदनन्तर वह त्रस हुआ और वहा उसने पुनः संख्यात भागवृद्धि  
की । इस प्रकार इस जीवके संख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन  
प्रमाण प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार संख्यात गुणवृद्धि और दो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल  
यथायोग्य रीतिसे घटित कर लेना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त  
है इसलिये इसमें सम्भव सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्तप्रमाण ही प्राप्त होता है ।  
वैक्रियिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है और एक योगके रहते हुए संख्यात भागवृद्धि  
और संख्यात गुणवृद्धि इन दो वृद्धियोंका तथा संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि इन  
दो हानियोंका दो दो बार होना सम्भव नहीं अतः वैक्रियिककाययोगमें इनका अन्तरकाल नहीं  
बतलाया । यही बात वैक्रियिकमिश्रकाययोगके सम्बन्धमें जानना चाहिये । कर्मण्णकाययोगमें अव-  
स्थित पदका ही उत्कृष्ट काल तीन समय बतलाया है । अथ यदि किसी कर्मण्णकाययोगीने पहले  
और तीसरे समयमें अवस्थित स्थिति की तो उसके अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल  
एक समय पाया जाता है । यहा शेष पदोंका अन्तरकाल सम्भव नहीं । यही बात अनाहारकोंके  
जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ २८१ स्त्रीवेदी जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर-  
काल एक समय और दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । तथा  
उक्त सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पत्य है । तथा असंख्यात भागहानि और  
असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । पुरुषवेदियोंके पचेन्द्रियोंके समान जानना  
चाहिये । नपुसकवेदियोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल सामान्य  
नारकियोंके समान है । तथा शेष पदोंका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार असंयत

पवरि असंखे० गुणहाणी णत्थि । अनगद० असंखे० मागहाणी जहणुक्क० एग-  
समओ । दोहाणीण जहणुक्क० अंतोमु० । एनं सुहुमसांपराय० ।

§ २८२ चचारिक्कसाय० तिण्णि बह्नी० असंखेज्जमागहाणी० अवढि अह०  
एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । संखे० मागहाणी० संखे० गुणहाणी असंखेज्जगुणहाणीणं  
जहणुक्क० अंतोमु० ।

§ २८३ यदि सुदमण्णाणीसु असंखेज्जमागहनह्नी [अवढि०] जह० एगसमओ,  
उक्क० एकक्कीस सागरी० साविरेयाणि । सेसमोष । एषममव० मिच्छादिदि चि ।

§ २८४ आभिणि० सुद० ओरि० असंखे० मागहाणी जहणुक्क० एग  
समओ । संखे० मागहाणी जह० अंतोमुहुचं, उक्क० आवढिसागरावमाणि देमूयाणि ।

जीवोंके ज्ञानता चाहिये । इतनी बिसेरता है कि इनके असंख्यात गुणहानि नहीं है । अपगतवेदियों  
में अस्मत्काल मागहानिज्ज जपम्य और उक्कत्त अन्तरकाल एक समय है । तथा दो हानियोंज्ज  
जपम्य और उक्कत्त अन्तरकाल अन्तमु हुते है । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंबन्ध जीवोंके  
ज्ञानता चाहिये ।

§ २८२ ओषादि चारों कयावकाल जीवोंमें तीन बुद्धियों असंख्यात मागहानि और  
अवस्थितविमलिकज्ज जपम्य अन्तरकाल एक समय और उक्कत्त अन्तरकाल अन्तमु हुते है । तथा  
संख्यात मागहानि संख्यात गुणहानि और असंख्यात गुणहानिज्ज जपम्य और उक्कत्त अन्तरकाल  
अन्तमु हुते है ।

विशेषार्थ—देवीकी उक्कत्त आसु पचवन पत्तकी है । अब यदि किसी देवीज्ज जपम्य होनेके  
अन्तमु हुते ब्रह्म सम्मवर्धनको प्राप्त कर लिया और जीवनेमें अन्तमु हुते कलके क्षेत्र रहन पर यह  
मिच्छादिदि हो गई ता उसके इतने काल तक असंख्यात मागहानि ही पाई जायगी अतः जीवितमें  
असंख्यात मागहानि, अवस्थित संख्यात मागहानि, संख्यात गुणहानि संख्यात मागहानि  
और संख्यात गुणहानिका उक्कत्त अन्तरकाल कुछ कम पचवन पचवन जाता है क्योंकि व सब  
पर सम्मवर्धनको प्रदण कराने पूर्व और बादमें सम्मवर्धन है । असंख्यात गुणहानि अतिवृत्ति  
अपके ही हावी है अतः असंबन्ध जीवके इसका निषेध किया । अपगतवर्धनमें असंख्यात मागहानि  
जप संख्यातमागहानि वा संख्यातगुणहानिसे एक समयके लिये अन्तरित हाजाती है तब असंख्यात  
मागहानिका अन्तरकाल पाया जाता है जो कि जपम्य और उक्कत्त रूपसे एक समय प्रमाण ही  
होता है । तथा यहां संख्यात मागहानि और संख्यातगुणहानिज्ज अन्तरकाल ओषके समान पठित  
कर ज्ञानता चाहिये । किन्तु यहां जो जपम्य अन्तरकाल जपसाया है वही यहां जपम्य और उक्कत्त  
अन्तरकाल ज्ञानता चाहिये । अपगतवर्धनसे सूक्ष्मसांपरायिक संबंध कम्य विभरता नहीं अतः  
उक्त कथन को अपगतवर्धनके समान ज्ञानता चाहिये । चारों कयावोंका उक्कत्तकाल अन्तमु हुते है  
अतः इनमें सम्मवर्धनको उक्कत्त अन्तरकाल अन्तमुहुते प्रमाण बन जाता है । धन धन सुगम है ।

§ २८३ मत्तहानी और भुताहानी जीवोंमें असंख्यात मागहानि और अवस्थितज्ज जपम्य  
अन्तरकाल एक समय और उक्कत्त अन्तरकाल साधिक इच्छीस सागर है । धन धन आपक  
समान है । इसी प्रकार जपम्य और मिच्छादिदि जीवोंके ज्ञानता चाहिये ।

§ २८४ आभिनिवाधिकाहानी भुताहानी और अवस्थितज्ज जीवोंमें असंख्यात मागहानिका  
जपम्य और उक्कत्त अन्तरकाल एक समय है । संख्यात मागहानिका जपम्य अन्तरकाल अन्तमु हुते

एव संखेज्जगुणहाणीण् । णवरि ज्ञावट्टिमागरो० मादिमेयाणि । अमंरो० गुणहाणी०  
ओघं । एवमोहिदंम०-सम्मादिद्वीणं । मणपज्ज० असंरो० भागहाणी० जहणुक्क० एग-  
समओ । संखेज्जभागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० पुच्चकोटी देमणा । दोहाणी०  
जहणुक्क० अतोमु० । एव मंजद०-मामाड्य देदो० मजदे नि ।

§ २८५ परिहार०-मजदामंजद० असंरो० भागहाणी-मंरो० भागहाणीणं मण-  
पज्जयभगो । चम्पु० तसपज्जत्तभंगो । णवरि मंरो० भागवट्टा० ज० अंतोम० ।

आर उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छियासठ सागर हैं । इसी प्रकार सख्यात गुणहानिका जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधक द्वायामष्ट सागर हैं । तथा असख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिज्ञानयाने और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानियोंमें अगत्यात भागहानिका जगन्म और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय हैं । सख्यात भागहानिका जगन्म अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि हैं । तथा वा दानियोंका जगन्म और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त हैं । इसी प्रकार नयत, सामाधिकमयत और देवोपम्यापनामयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २८५ परिहारविशुद्धिसयत और सयतामयत जीवोंके असख्यात भागहानि और सख्यात भागहानिका अन्तरकाल मन पर्ययज्ञानियोंके समान हैं । चतुर्दर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके सख्यात भागवृद्धिका जगन्म अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त हैं ।

विशेषार्थ—किसी एक मिथ्यादृष्टि मनुष्यने असख्यात भागवृद्धि या अवस्थित स्थितिको किया । अनन्तर वह असख्यात भागहानिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट आयुके साथ नौवें प्रवेयकमें उत्पन्न हो गया और वहा से च्युत होकर वह पुन असख्यात भागवृद्धि या अवस्थित स्थितिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार मत्तज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके उक्त दो पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधक इकतीस सागर पाया जाता है । आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असख्यात भागहानिके सम्भव रहते हुए जगन्म अन्य पद एक समयके लिये प्राप्त हो जाते हैं तभी इनके असख्यात भागहानिका अन्तरकाल प्राप्त होता है अतः इनके असख्यात भागहानिका जगन्म और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्रमाण कहा । सख्यात भागहानि अनन्तानुबन्धीकी विसयोजनाके समय आदिमें हुई और ६६ सागर के अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें दर्शन मोहकी क्षणिके समय हुई अतः इसका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कम ६६ सागर होता है । सख्यात गुणहानि वेदक सम्यक्त्वके प्रथम समयमें हुई । फिर वेदक सम्यक्त्वमें ३ पूर्वकोटि ४२ सागर काल तत्र रह कर क्षणिक सम्यग्दृष्टि हो २४ सागर व १ पूर्वकोटिके अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में क्षणश्रेणीके कालमें सख्यातगुणहानि हुई इस प्रकार इसका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम चार पूर्वकोटियोंसे अधिक छियासठ सागरोपम होता है । मनःपर्ययज्ञानी, परिहारविशुद्धि व सयतासयतका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि हैं । अतः जिसने इस कालके प्रारम्भमें अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना और अन्तर्मुहूर्त दर्शनमोहकी क्षणिकी उसके सख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्थात्, ८ वर्ष, ३८ वर्ष व ८ वर्ष कम पूर्वकोटि होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ २८६ किण्वं एतन् काठं तिणिं बह्नीं अवट्टिं नहं एगसममो, दोहाणीं ज० अंतोमु० । उक्क० सव्वसिं सगट्टिदी दण्णा । असंखे० भागहाणीं ओषं । तेउ० सोहम्ममंगो । पम्म० सहस्सारमंगा । सुक्क० अमखे० भागहाणीं अहय्युक्क० एगसममो । संखे० भागहाणीं अहं अंतोमु०, उक्क० एकत्तीस साग० देमूणाणि । संखे० गुणहाणीं जहण्णुक्क० अंतोमु० । असंखे० गुणहाणीं ओषं ।

§ २८७ जइयं अमखे० भागहाणीं जहण्णुक्क० एगसममो । तिणिं हाणीं जहण्णुक्क० अंतोमु० । नवरि संखे० भागहाणीं उक्क० तत्तीस सागरावमाणि सादि रयाणि । बइयं दो हाणीणं ओषिमंगो । संखे० गुणहाणीं सत्थि अंतरं । उवसम० असंखे० भागहाणीं जहण्णुक्क० एगसममो । संखे० भागहाणीं जहण्णुक्क० अंतोमु० । सम्मामि० अमंखे० भागहाणीं जहण्णुक्क० एगसममो । दो हाणीं गत्थि अंतरं ।

§ २८८ [ सज्जीणं पंचिदियमंगो । ] असज्जीसु असंखे० भागवट्टी अवट्टिं नहं एगसममो, उक्क० पत्तिदो० असंखे० भागो । संखे० भागहाणीं ओषं । संखे० भागवट्टी ज० एगसममो, संखे० गुणवट्टी-दोहाणीणं ज० अंतोमु० । उक्क० सव्वेसिमखंत्तसमसंखंता पोग्गमपरिपट्टा ।

§ २८९ कम्म नील, और कापात लेखावाले बीबीमें तीन बुद्धिओं और अवस्थित विमर्शिका जपम्य अन्तरकाल एक समय है और ॥ हानियोंका जपम्य अन्तरकाल अन्तमु हुत है । तथा समीक उत्तुष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्तुष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओषके समान है । पीतलेखावाले बीबीके चौधमें स्वर्गके समान और पद्मलेखावाले बीबीके छहकायस्वर्गके समान जानना चाहिये । तथा लुप्तलेखावाले बीबीमें असंख्यात भागहानिका जपम्य और उत्तुष्ट अन्तरकाल एक समय है । संख्यात भागहानिका जपम्य अन्तरकाल अन्तमु हुत और उत्तुष्ट अन्तरकाल कुछ कम एकत्तीस सागर है । तथा संख्यात गुणहानिका जपम्य और उत्तुष्ट अन्तरकाल अन्तमु हुत और असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओषके समान है ।

§ २९० चायिकसम्मगट्टियोंमें असंख्यात भागहानिका जपम्य और उत्तुष्ट अन्तरकाल एक समय तथा तीन हानियोंका जपम्य और उत्तुष्ट अन्तरकाल अन्तमु हुत है । इतनी विशेषता है कि संख्यात भागहानिका उत्तुष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर है । वेदकसम्मगट्टियोंमें दो हानियोंका अन्तरकाल अवधिहानियोंके समान है । तथा संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है । वज्जसम्मगट्टियोंमें असंख्यात भागहानिका जपम्य और उत्तुष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा संख्यात भागहानिका जपम्य और उत्तुष्ट अन्तरकाल अन्तमु हुत है । सम्मगिप्पाट्टि बीबीमें असंख्यात भागहानिका जपम्य और उत्तुष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा दो हानियोंका अन्तरकाल नहीं है ।

§ २९१. संही बीबीमें पंचेन्द्रियोंके समान योग है । असीसी बीबीमें असंख्यात भागबुद्धि और अवस्थितविमर्शिका जपम्य अन्तरकाल एक समय और उत्तुष्ट अन्तरकाल पन्धोपमके असंख्यातमें भागप्रमाण है । संख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओषके समान है । संख्यात भागबुद्धि का जपम्य अन्तरकाल एक समय तथा संख्यातगुणबुद्धि और दो हानियोंका जपम्य अन्तरकाल अन्तमु हुत है । तथा एक समीक उत्तुष्ट अन्तर अन्तकाल है जो कि असंख्यात पुत्रपरिवर्तनप्रमाण है ।



§ २८९ आहारि० असखे० भागवट्टी हाणी० अवट्टि० ओघं । संखे० गुणवट्टी दोहाणी० जह० अतोमु० । संखे० भागवट्टी० ज० एगसमओ, उक्क० अंगुलस्स असखे० भागो । अमंखेज्जगुणहाणी० ओघं ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ २९०. एणाजावेदि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदे-  
सेण य । तत्थ ओघेण अमंखेज्जभागवट्टी-हाणि-अवट्टाणाणि णियमा अत्थि । सेस-  
पदाणि भयणिज्जाणि । भंगा वादालीसुत्तरदुसदमेत्ता २४२ । एव तिरिक्ख०-  
सव्वेडं दिय-पुढवी०-वादरपुढवी०-वादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्ता-  
पज्जत्त—आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-  
तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-  
वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त०-वणप्फदि०-वादरवणप्फदि०-  
वादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त—सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त—णिगोद०-वादरणिगोद०-  
वादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदि-  
पत्तेय०—वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०—वादरणिगोदपदिट्ठिद—वादरणिगोदपदिट्ठिद-

§ २८९ आहारक जीवोंके असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित-  
विभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान हैं । संख्यातगुणवृद्धि और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल  
अन्तर्मुहूर्त हैं तथा संख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है । तथा सभीका उत्कृष्ट  
अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके  
समान है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ २९० नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और  
आदेजनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अव-  
स्थितविभक्तियाँ जीव नियमसे हैं । ओघ पद भजनीय हैं । भग दोसो व्यालीस होते हैं । इसी  
प्रकार सामान्य तिर्यच, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जल-  
कायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त,  
सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त,  
सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुका-  
यिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक  
पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक  
पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त,  
सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद, वादर निगोद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद  
अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक  
प्रत्येक शरीर. वायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, वादर निगोद प्रतिष्ठित, वादर निगोद

मपङ्ग०-काययोगि०-ओराखिय०-ओराखियमिस्स०-कम्मइय०-णवु स०-चत्तारि  
कसाय-मदि-सुदम्पणाण०-असब्ब०-अचक्खु०-विष्णुखे०-मवसि०-अमवसि०-  
मिच्छादि० असण्णि०-आहारि-भणाहारि सि । खवरि मंगा जाणिय भवम्मा ।

प्रतिष्ठित प्रत्येकस्मिन् अपयाण्ट काययोगी, ओराखिककाययोगी ओराखिमिमकाययोगी,  
कर्मण्यकाययोगी सपुसक्खेवी, ओपावि चारो कपायभासे मत्प्याहानी भुताहानी, असंयत, अचक्खु  
वर्द्धनवासे, कप्प्यादि तीन क्षेत्रयाभासे मध्य, अमध्य, मिष्प्यादि, असंयती आहारक और अना  
हारक बीबंकि जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके मंग जान कर कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—मोहनीय कर्मकी स्थितिमें असंख्यातमागहानि, संख्यातमागहानि और संख्यात  
गुणहानि ये तीन बुद्धिवां, असंख्यातमागहानि, संख्यातमागहानि, संख्यातगुणहानि और  
असंख्यातगुणहानि ये चार हानियां तथा अवस्थित इस प्रकार आठ पद पात्र बताते हैं । इनमेंसे  
असंख्यातमागहानि, असंख्यातमागहानि और अवस्थित पदवासे नाना बीब नियमसे पात्र  
बताते हैं इसलिये इतना एक प्रुब मंग हुआ । किन्तु खेर पांच पद मङ्गनीय हैं । उनमेंसे किसी एक  
पदवासा कदाचित् एक बीब होता है और कदाचित् नाना बीब होत हैं । यह भी सम्भव है कि  
कदाचित् किसी एक पदवासा एक या नाना बीब हों तथा उसी समय उससे भिन्न अन्य पदवासे भी  
एक या नाना बीब हों । इस प्रकार इन मङ्गनीय पदोंके मंगोंमें एक प्रुब मंगके मिलान पर कुछ  
मंगोंका जोड़ २४३ होता है । यथा—

१ प्रुब मंग

२ संख्यातमागहानिके एक और नाना बीबोंकी  
अपेक्षा

३ कुछ जोड़

४ संख्यातमागहानिके प्रत्येक और संख्यातगुण-  
हानिके साथ एक और नाना बीबोंकी अपेक्षा  
संयोगी मंग

६ कुछ जोड़

१८ संख्यात मागहानिके प्रत्येक व पूर्वोक्त दो पदों  
क साथ संयोगी मंग

२७ कुछ जोड़

१४ संख्यातगुणहानि के प्रत्येक व पूर्वोक्त तीन  
पदोंके साथ संयोगी मंग

८१ कुछ जोड़

१६२ असंख्यातगुणहानिके प्रत्येक व पूर्वोक्त चार  
पदोंके साथ संयोगी मंग

४०३ कुछ जोड़

मूलमें प्रुब मंगको समिश्रित न करके जबस मङ्गनीय पदोंके २४२ मंग यह हैं और प्रुब  
मंगको अलग बतलाया है । अब यदि इन २४२ मंगोंमें प्रुब मंग भी मिला दिया जाना है तो कुछ  
मंगोंका जोड़ १४३ होता है तथा कि इसमें पूर्वमें बटित करक बतलाया ही है । भागे सामान्य

§ २६१ आदेसेण णेरइएसु असखे० भागहाणि-अवट्ठाणाणि णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । भंगा वाढालीमुत्तरदुसदमेत्ता २४२ । एवं सत्तमु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसपज्ज०-मणुसिणी-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वविगल्लिंदिय-सव्वपंचिंदिय-वादरपुढवीपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादरवण प्फदिपत्तेयपज्ज०-वादरणिगोदपदिट्ठिदपज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति ।

तिर्यंच आदि मार्गणाओंमें जो ओघके समान कथन करनेकी सूचना की है सो उसका मतलब यह है कि उन मार्गणाओंमें जहां जितने सम्भव पद हैं उनमेंसे असंख्यात भागहानि, असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित इन तीन पदोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भग है और शेष पद भजनीय हैं । विशेष खुलासा इस प्रकार है—मूलमें गिनाई हुई मार्गणाओंमेंसे काययोग, आंदारिककाययोग, चारों कपाय, अचक्षुदर्शन, भव्य, आहारक और नपुसकवेद ये मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें अविकल ओघ-प्ररूपणा घटित हो जाती है, अतः २४३ भग प्राप्त होते हैं । सामान्य तिर्यंच, आंदारिकमिश्रकाय-योगी, कामरूपाययोगी, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असायत, असङ्गी, अनाहारक, मिथ्यादृष्टि, अभव्य और कृष्णादि तीन लेश्यावाले ये मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें असंख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती अतः भजनीय पद चार रह जाते हैं और इसलिये इनमें ध्रुव भगके साथ कुल भग ८१ होते हैं । तथा इनके अतिरिक्त जो एकेन्द्रिय और उनके भेद तथा पाच स्थावरकाय और उनके भेद वतलाये हैं । उनमें संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानिके बिना एक वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित ये पाच पद ही पाये जाते हैं । सो इनमेंसे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पद की अपेक्षा एक ध्रुव भग ही प्राप्त होता है । अब भजनीय पद दो रह जाते हैं, अतः इनमें ध्रुव भगके साथ कुल नौ भग होते हैं ।

§ २६१ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें असंख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा शेष पद भजनीय हैं । भग दोसौ व्यालीस होते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्वार कल्प तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरपर्याप्त, वादर निगोदप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सभी ब्रह्म, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और सङ्गी जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नारकियोंमें असंख्यात गुणहानिको छोड़कर सात पद हैं पर उनमें असंख्यात भागहानि और अवस्थित ये दो पद ध्रुव हैं तथा शेष पाच पद भजनीय हैं, अतः यहां भी भजनीय पदोंके २४२ भग और एक ध्रुव भग इस प्रकार कुल २४३ भग प्राप्त होते हैं । आगे सातों तरहके नारकी आदि कुछ और मार्गणाओंमें जो सामान्य नारकियोंके समान कथन करनेकी सूचना की है सो उसका यह मतलब है कि जहां जितने सम्भव पद हैं उनमेंसे असंख्यात भागहानि और अवस्थित इन दो पदोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भग है और शेष पद भजनीय हैं । विशेष खुलासा इस

§ २६२ मनुस्सज्जपण० सख्यपदा भयणिग्गहा । एवं बज्जिभयमिस्स०  
अनगद०-सुद्धम०-सम्माधि० । उपरि मंगा जाणिय वचन्ना ।

§ २६३ आणदादि खाव सण्हसिद्धि पि अमसंखेज्जभागहाणी णियमा  
अस्यि । सिया एवे च संखेज्जभागहाणिविहत्तिओ च । सिया एवे च सखे०भाग  
हाणिविहत्तिया च । पुनसहिदा तिप्पि मंगा । पणं परिहार०-संभदासंभव० ।

§ २६४ आहार-आहारमिस्स० सिया असखेज्जभागहाणिविहत्तिओ,  
सिया असखे०भागहाणीविहत्तिया एवं दाप्पि मंगा २ । एवमकसा० ब्रह्मस्वाद०-  
सासण० । आभिणि०-सुद०-ओरिणाणीसु असखेज्जभागहाणी णियमा अस्यि । सेस

प्रकार है—मनुष्य में गिनती हुई मार्गाणाजोसे से सारों नरकके नारकी पंचेन्द्रिय तिर्यक्, सामान्य देव,  
मनवांसिचोसे लेकर सहायक कर्मपदके देव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त वैश्विककर्म-  
योगी विमंगलाणी पीतसेवावाले और पद्मसेवावाले ये मार्गाणा पक्षी हैं जिनमें सामान्य नार  
किकों के समान प्रकृष्टता बन जाती है अतः इनमें प्रथम मंग सहित कुल मंग २४३ होते हैं ।  
सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य मनुष्यनी पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त त्रस, त्रस पर्याप्त पांचों  
मनोबोगी पांचों वचनवाली, स्त्रीदेववाले पुत्रदेववाले, चतुर्वर्त्तनी और संघी ये मार्गाणा पक्षी  
हैं जिनमें असंख्यात गुणहानि और पाप जाती है, अतः कुल आठ पक्षोंमें से भवनीय पक्ष  
६ हो जाते हैं अतः यहां प्रथम मंगके साथ कुल मंग ७५६ हो जाते हैं । विष्णुत्रयोंमें असंख्यात  
मार्गाणि संख्यातमार्गाणि तथा तीन हानि और अवस्थित इस प्रकार ब्रह्म पक्ष हैं । इनमें से चार  
अमृष हैं अतः यहां प्रथम मंगके साथ कुल मंग ८१ होते हैं । अब से पक्षी पृथिवीभूमिक पर्याप्त  
आदि मार्गाणा सो इनमें असंख्यात मार्गाणि, तीन हानि और अवस्थित इस प्रकार पांच पक्ष  
हैं । इनमें से तीन अमृष हैं अतः यहां प्रथम मंगके साथ कुल मंग २० होते हैं ।

§ २६५ मनुष्य अपर्याप्तकों के सभी पक्ष भवनीय हैं । इसी प्रकार वैश्विककर्मभक्तयोगी  
अपगतवेदी, सूक्ष्मसांपरायिकसंबन्ध और सम्यग्मिच्छादृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिये । इतनी विवेचना  
है कि इनके मंग जानकर बचना चाहिये ।

विशेषाये—साम्यपर्याप्त मनुष्योंके असंख्यात गुणहानिके सिवा सात पक्ष पाव जाते हैं  
और ये सब भवनीय हैं अतः यहां प्रथम मंगके बिना कुल मंग २१८६ होंगे । इसी प्रकार वैश्विक-  
मिच्छायोगी २१८६ मंग ज्ञानना चाहिये । अपगतवेदी, सूक्ष्मसांपरायिकसंबन्ध और सम्यग्मिच्छा-  
दृष्टिके असंख्यातमार्गाणि संख्यातमार्गाणि और संख्यातगुणहानि ये तीन पक्ष हैं तथा ये तीनों  
भवनीय हैं, अतः यहां २६ मंग होंगे ।

§ २६६ आन्तसे लेकर सर्वावस्थितिकोंके देवोंमें असंख्यात मार्गाणिके जीव नियमसे  
हैं । तथा कदाचित् असंख्यात मार्गाणिके जीव भी हैं और संख्यातमार्गाणिके जीव एक  
जीव है । कदाचित् असंख्यातमार्गाणिके जीव भी हैं और संख्यात मार्गाणिके जीव भी हैं । इस प्रकार प्रथम मंगसहित तीन मंग प्राप्त हैं । इसी प्रकार परिहारविमुक्तिसंबन्ध और  
संप्रदासंपद जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ २६७ आहारकर्मयोगी और आहारकर्मभक्तयोगी जीवोंमें कदाचित् असंख्यात मार्गा-  
णिके जीव हैं और कदाचित् असंख्यातमार्गाणिके जीव भी हैं । इस प्रकार दो  
मंग हैं । इसी प्रकार अकृपावी, यथाकामासंबन्ध और साक्षात्सम्बन्ध जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।  
आभिनिवाजिकानी, भुतानी और अवस्थितानी जीवोंमें असंख्यात मार्गाणिके जीव नियम

पदा भयणिज्जा । एवं मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मा-  
दि०-खइय०-वेदय०दिदि त्ति । उवसम० दो हाणी भयणिज्जा ।

एव शाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

§ २६५. भागाभागानुगमेण दुविहो णिदोसो—ओघेण आदेसेण य ।  
ओघेण असंखे० भागवट्ठी० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असंखे० भागो । अवट्ठी०  
सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? संखेज्ज० भागो । असंखे० भागहाणी० सव्वजी० के० ?  
संखेज्जा भागा । सेसपदा सव्वजीवा के० ? अणंतिमभागो । एवं तिरिक्ख०-सव्व-  
एइंदिय - वणप्फदि०-वादरवणप्फदि०-वादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त - सुहुमवणप्फदि०-  
सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद० - वादरणिगोद०-वादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-  
सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त - कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-  
कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-तिणिले०-भवसि०

से हैं । तथा शेषपद भजनीय हैं । इसी प्रकार मन.पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्था-  
पनासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि  
जीवोंके जानना चाहिये । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें दो हानियां भजनीय हैं ।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असख्यात भागहानि  
की अपेक्षा एक ध्रुवपद है और सख्यातभागहानि, सख्यातगुणहानि और असख्यात गुणहानि  
ये तीन पद अध्रुव हैं अतः यहा ध्रुव भगके साथ कुल भंग २७ होंगे । इसी प्रकार मन पर्ययज्ञानी,  
संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके २७ भग जानना चाहिये । किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके असख्यात  
गुणहानि नहीं होती, अतः यहा एक ध्रुवपद और दो भजनीय पद हुए और इसलिये कुल भग नौ  
होंगे । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके असख्यात भागहानि और सख्यात भागहानि ये दो पद ही होते  
हैं । किन्तु दोनों भजनीय हैं अतः यहा कुल भंग आठ होंगे ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ २६५ भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असख्यात भागवृद्धिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवें  
भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । असख्यात  
भागहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । शेष पदवाले जीव सब  
जीवोंके कितने भाग हैं । अनन्तवें भाग हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यच, सभी एकेन्द्रिय, वनस्प-  
तिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त,  
निगोद, वादरनिगोद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त,  
सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी,  
नपु सकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि

ममवसि०-मिच्छादिदि०-असण्णि०-आहारि० अणाहारि चि ।

‡ २६६ आदेसेण णेरइपुसु अवहि० सज्जमी० क० ? संखेज्जदिमागो । असंखे० मागहाणी० सम्बजी० के० ? संखेजा मागा । सेसपदा सम्बजीवाण के० ? असंखे० मागो । एवं सपसु पुवपीसु सज्जर्पचिदियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसमपज्जच दस भवणादि जान सहस्सार० सज्जविगन्धिदिय सज्जर्पचिदिय चचारिकाय-बादर-सुहुम-पज्जचापज्जत्त-बादरपणप्फदि० पत्तेय०-सज्जतस०-यचमण०-यचवधि० [विठम्भि०] वेठवियमिस्स० इत्थि-पुरिस० विहय० चकसु०-सेउ०-यम्म०-सण्णि चि । मणुसपज्ज० मणुसिणीसु असंखे० मागहाणी० सम्बजी० के० ? संखेजा मागा । सेसपदा संखेज्जदिमागो । एवमवगद०-मणुपज्ज०-संनद०-सामाहय-वेदो०-सुहुम०-संज्जदे चि ।

‡ २६७ आसदादि जाव अवराइदे चि असंखे० मागहाणी० सम्बजी० क० ? असंखेजा मागा । संखे० मागहाणी० सम्बजी० के० ? असंखे० मागा । एव

रीन सेरयावले मम्म, अमम्म, मिच्छादृष्टि असंखी आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-यहाँ तिर्येच आवि अम्म मार्गजात्रोंमें जो ओपके समान मागामाग जानन्की सूचना की सो उसका यह अमिमाय नहीं कि इन सब मार्गजात्रोंमें सब पर्वोंकी अपेक्षा ओपके समान मागामाग बन जाता है । किन्तु इसका इतना ही अमिमाय है कि जहाँ जितन पद सम्भव हों उनकी अपेक्षा मागामाग ओपके समान ही जानना । तथा जहाँ जो पद न हो उसकी अपेक्षा मागामागका कवन नहीं करना । आगे भी इसी प्रकार विचार करके क्यामम्म्य मागामाग जानना चाहिये ।

‡ २६८ आदेज्जनिर्वैरुकी अपेक्षा नारकियोंमें अवस्थितविमर्शितवाले जीव सभी नारकियोंके कितने माग हैं ? संख्यातवें माग हैं । असंख्यात मागहातिवाले जीव सभी नारकियोंके कितने माग हैं । संख्यात बहुमाग हैं । दोष पदवाले जीव सभी नारकियोंके कितने माग हैं ? असंख्यातवें माग हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी सभी पंचमित्रियतिर्येच सामान्य मनुष्य मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव सभी विक्षेत्रमित्र सभी पंचेन्द्र पृथिवीकामिक आवि आर स्वावरकाव तथा इनके बाहर और सूक्ष्म तथा बाहर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, बाहर बनस्पतिअधिक मत्स्यच्छरीर, सभी व्रक्ष, पाँचों मनोयोगी, पाँचों कचनयोगी, वैश्वियिकाययोगी, वैश्वियिकमिजकाययोगी जीवपक्षले पुत्रसेववाले विदग्ग जानी बहुदर्शनवाले पीतलेहवावाले, पद्मलेहवावाले और सखी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्तक और मनुष्यनियोगोंमें असंख्यात मागहातिवाले जीव उक्त सभी जीवों के कितने माग हैं ? संख्यात बहुमाग हैं । तथा दोष पदवाले जीव संख्यातवें माग हैं । इसी प्रकार अपरात-वदवाले मन्त्रपदवाली संवत्, सामायिकसंवत् ज्योपेपस्थापनासंवत् और सूक्ष्मसोपराधिक संवत् जीवोंके जानना चाहिये ।

‡ २६९ आमत कश्यसे लेकर अपराधित तकके देवोंमें असंख्यात मागहातिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने माग प्रमाण हैं ? असंख्यात बहुमाग हैं । संख्यात मागहातिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने माग हैं । असंख्यातवें माग हैं । इसी प्रकार कथमसम्पदृष्टि और संवत्सासंवत्

§ ३०५. खड्य० असंखेज्जभागहाणी० के० ? असंखेज्जा । सेसपदा संखेज्जा । वेदग० तिण्णि हाणी० के० ? असंखेज्जा । उवसम० दो हाणी० असंखेज्जा । सासण० असंखे०भागहाणी० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मामि० तिण्णि हाणी० वेदय०भंगो ।

एवं परिमाणानुगमो समत्तो ।

§ ३०६. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्दो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखे०भागवड्डी हाणी अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । सेसपदा केवडि खेत्ते ? लोग० असंखेज्ज०भागे । एवमणंतरासीणं ।

§ ३०७. पुढवी-वादरपुढवी-वादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवी-सुहुमपुढवीपज्जत्ता-पज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउअपज्जत्तापज्जत्त०-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादर-वाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउअपज्जत्तापज्जत्त० असंखेज्जभागवड्डी-हाणी अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । सेसपदा० के० ? लोग० असंखेज्ज०भागे । सेससंखेज्जासंखेज्जरासीणं सव्वपदा लोगस्स असंखे०भागे । एवरि वादरवाउ-

§ ३०५ ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असाख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । तथा शेष पदवाले जीव साख्यात हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें तीन हानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें दो हानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असाख्यात भागहानिवाले जाव कितने हैं ? असाख्यात हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें तीन हानिवाले जीवोंका प्रमाण वेदकसम्यग्दृष्टियोंके समान है ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३०६ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असाख्यात भागवृद्धि, असाख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असाख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनन्त साख्यावाली राशियोंके कहना चाहिये ।

§ ३०७ पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि कायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादरवायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, जीवोंमें असाख्यात भागवृद्धि, असाख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । तथा शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असाख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । शेष साख्यात और असाख्यात साख्यावाली राशियोंकी अपेक्षा सभी पदवाले जीव

पञ्च० असंख्ये० भागवद्गी हाणी अवधि० सोगस्त संख्येज्जदिमागे ।<sup>१</sup>

एवं संघाणुगमो समप्तो ।

§ ३०८ पोसणानुगमेण दुविहो थिहोसो—ओपेण आवेसेण य । तत्त्व ओपेण असंख्येज्जभागवद्गी-हाणी-अवधि० केनदियं खेयं पोसिदं ? सम्बलोगो । दोषद्गी दोहाणी० के० खे० पो० ? सोग० असंख्ये० भागो अह-पोरसमागा देवणा सम्बलोगो वा । असंख्येज्जगुणहाणी० के० खे० पो० ? सोग० असंख्ये० भागो । एवं कायमोगि०-वचारिकसा०-अचक्खु० भवसि०-आहारि चि ।

लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इतनी विवेकता है कि बाहर वायुकायिक पर्याप्त बीबीमें असंख्यातभागावृद्धि, असंख्यातभागाहानि और अवस्थितविभक्तिवाले बीबीका क्षेत्र लोकक संख्यातवां भाग है ।

विशेषार्थ—ओपसे असंख्यातभागावृद्धि, असंख्यातभागाहानि और अवस्थित विविक्तवाले बीब अन्तर्गत हैं यह परिमाणानुसंगेष्टावर्तमें बतला ही जाय है और अन्तर्गत संख्यावाली एविबीका स्वस्मान्ती अपेक्षा भी सब लोक क्षेत्र बन जाता है अतः इन तीन पदवाले बीबीका ओपसे सब शाक क्षेत्र पड़ा । किन्तु क्षेत्र पांच पदवाले बीब बहुत स्वल्प हैं, क्योंकि इन पदोंका अधिकतर ब्रह्मसे ही सम्बन्ध है । वां हानियां ऐसी हैं जो स्थावरोंके भी पार्श्व जाती हैं पर जो ब्रह्म स्थितिकाण्डकपातके द्वारा संख्यात भागाहानि और संख्यात गुणहानिको कर रहे हैं ऐसे ब्रह्म पार्श्व भर कर एकत्रियोंने छपक हो तो इन स्थावरोंके ही वे दो हानियां पार्श्व जाती हैं अतः क्षेत्र पदवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही बनता है । जितनी भी अन्तर्गत संख्यावाली भागैष्टावर्त हैं उनमें भी अपने अपने सम्मम पदोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र जानना चाहिये । तथा सामान्य द्रविवीकायिक आदि कुछ असंख्यात संख्यावाली ऐसी भागैष्टावर्त हैं जिनका सब लोक क्षेत्र बन जाता है अतः इनमें भी अपने सम्मम पदोंकी अपेक्षा अधिकतर ओप मरुपया पटित हो जाती है । पर इतसे अतिरिक्त जितनी भी असंख्यात वा संख्यात संख्यावाली भागैष्टावर्त हैं उनमें सभी सम्मम पदोंकी अपेक्षा कुछ लोकक असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इन भागैष्टावर्त बीबीका क्षेत्र ही लोकक असंख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु वायुकायिक पर्याप्त बीब इस व्यवस्थाके अपवाद्भूत हैं क्योंकि इनका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है अतः इनमें असंख्यात भागाहानि, असंख्यात भागावृद्धि और अवस्थित विविक्तवालोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण जानना और क्षेत्र पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र जानना ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३०८ स्पर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकारका है—ओपनिर्देश और आवेदननिर्देश ।

अनर्से ओपकी अपेक्षा असंख्यात भागावृद्धि, असंख्यात भागाहानि और अवस्थितविभक्तिवाले बीबीने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोकका स्पष्ट किया है । वा वृद्धि और दो हानिवाले बीबीने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका, ब्रह्मवालीके बीब भागोंमें से कुछ कम भाग भागप्रमाण क्षेत्रका और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । असंख्यात-गुणहानिवाले बीबीने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार व्यवसायी श्रेण्यादि बाह्य कवचवाले अचक्षुर्दर्शनवाले, मध्य और आहारक बीबीके जानना चाहिये ।



सुवसम०-संजदासंजदाणं । सव्वट्ठे असंखे० भागहाणी० सव्वजी० के० ? मंखे० भागा । सखे० भागहाणी० सव्वजी० के० ? सखे० भागो । एवं परिहार० ।

§ २६८. आभिणि०-सुद०-ओहि० असंखे० भागहाणी० सव्वजी० के० ? असखेज्जा भागा । सेसपदा ग्रमंखे० भागो । एवमोद्धिसं०-मुक्क०-सम्मादि०-खडय०-वेदय०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति । आहार० आहारमिस्स०-ग्रकसा०-जहाक्खाद०-सासणसम्मदिट्ठीणं एत्थि भागाभागं ।

एवं भागाभागानुगमो समत्तो ।

§ २६९. परिमाणानुगमेण दुविहो णिहेसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ-ओघेण असंखे० भागवट्ठी हाणी० अवट्ठि० केत्तिया ? अणंता । दोवट्ठी० दोहाणी० के० ? असंखेज्जा । असखे० गुणहाणी० केत्ति० ? संखेज्जा । एव कायजोगि०-ओरालि०-एवुंस०-चत्तारिकाय-अचक्खु०-भवमि०-आहारि त्ति ।

§ ३०० आदेसेण णेरइएसु सव्वपदा केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं सव्वणेरडय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वविग-लिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-चत्तारिकाय-वादग्गणप्फटिपचेय०-तस्सेव पज्जत्तापज्ज०-

जीवोंके जानना चाहिये । सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें असख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग हैं । मख्यात बहुभाग हैं । सख्यात भागहानिमान जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवै भाग हैं । इसी प्रकार परिहारविशुद्धि सयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २६८ आभिनिवोधिकन्नानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं । तथा जेव पदवाले जीव असख्यातवै भाग हैं । इसी प्रकार अवधिदशनवाले, शुक्लेदश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । आहारककाययोगी, आहारकमिश्र-काययोगी, अकपायी, यथाख्यातसयत और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके भागाभाग नहीं है ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ २६९ परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । दो वृद्धियों और दो हानियोंवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । तथा असख्यात गुणहानिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिक-काययोगी नपुमकवेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, अवचुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३००. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सभी पदवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी प्रकार सभी नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्सार-स्वर्गतकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक आदि चार स्यावर

तस्यपञ्च०-वेत्तत्रिय०-वेत्तत्रियमिस्स-विहंग०-सेत्त०-पम्मसेस्से चि ।

§ ३०१ तिरिक्त्वा ओषं । जवरि असंखे० गुणहाणी नत्थि । एवमेइदिय सम्मवणप्पदि० श्रीराम्भिमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्माण०-असंनद०-तिप्पसे०-अमप० मिच्छादिदि-असणि अणाहारि चि ।

§ ३०२ मणुस्समु णिरओषं । जवरि असंखे० गुणहाणी० संखेज्जा । एवं पंचिदिय पंचि० पञ्च०-तस-तसपञ्च०-पंचमण०-पंचमपि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु० सणि चि । मणुस्सपञ्च०-मणुस्सिणीमु सक्कपद० क० ? संखेज्जा । एवं सम्मद०-अण्णद०-मणपञ्च०-संजद०-सामाइय-वेत्तो० परिहार० सुद्धमसांपराय० ।

§ ३०३ आणदादि जाप अवरामिदा चि असंखे० मागहाणी मंखे० मागहाणी केचि० ? असंखेज्जा । [ एवं संनदासंजद० । आहार० ] आहार० मिस्स० असंखे० मागहाणी० केचि० ? संखेज्जा । एवमकसाय०-महाक्त्वाद० चि ।

§ ३०४ आमिणि०-सुद०-ओहि० तिप्पि हाणि० केचिया ? असंखेज्जा । असंखे० गुणहाणी० संखेज्जा ? एवमोहिदस०-सुक०-सम्मादिदि चि ।

अथ, बादर वनस्पतिकारिक प्रत्येकशरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त व्रस अपर्याप्त वैश्वविक्रमयोगी वैश्वविक्रमिमकम्ययोगी विमंगलानी पीतसेवावाले और पद्मसेवावाले बीजोंके जानना चाहिये ।

§ ३१ तिरिक्त्वा असंख्यातमागहाणि आधिकी अपेक्षा संख्या ओषके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यात गुणहानि नहीं है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय सभी वनस्पतिकारिक, औदारिकमिमकम्ययोगी, कर्मयुक्तावयोगी मत्स्यहानी पुत्रहानी असंयत, कृष्णादि तीन सेवयावाले, अभिम्भ, मिच्छादिदि, असंखी और अनन्तरक बीजोंके जानना चाहिये ।

§ ३२ मनुष्योंमें असंख्यात मागहाणि आधिकी अपेक्षा संख्या सामान्य नारिक्योंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यात गुणहानिवाले बीज संयत हैं । इसी प्रकार पंचन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त व्रस व्रसपर्याप्त पांशों मत्तयोगी पांशों वचनयोगी स्त्रीवधवाले, पुष्पवधवाले पशुवधनवाले और सखी बीजोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियों में सभी वधवाले बीज कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सखावसिद्धिक देव अपगतवधवाले मनःपदैयहानी सयत, सामायिकसंयत वेत्तोपस्थापनासंयत परिहारविकृतिसंयत और सूक्ष्म सांपरायिकसंयत बीजोंके जानना चाहिये ।

§ ३३ आनतकल्पसे लेकर अपराजित तकके देवों में असंख्यात मागहाणि और संख्यात मागहाणिवाले बीज कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार संयतासंयत बीजोंके जानना चाहिये । आहारकक्रावयोगी और आहारकमिमकम्यवागियोंमें असंख्यात मागहाणिवाले बीज कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अकपायी और यथाप्यातासंयत बीजोंके जानना चाहिये ।

§ ३४ आभिन्निबोधिकाहानी भतहानी और पचपिहानियोंमें तीन हानिवाले बीज कितने हैं ? असंख्यात हैं । तथा अकशतगुणहानिवाले बीज संख्यात हैं । इसी प्रकार अचपिहानिवाले, दुष्कसेवावाले और सग्यदिदि बीजोंके जानना चाहिये ।

§ ३०५, खड्य० असंखेज्जभागहाणी० के० ? असंखेज्जा । सेसपदा संखेज्जा । वेदग० तिण्णि हाणी० के० ? असंखेज्जा । उवसम० दो हाणी० असंखेज्जा । सासण० असंखे०भागहाणी० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मामि० तिण्णि हाणी० वेदय०भंगो ।

एवं परिमाणानुगमो समत्तो ।

§ ३०६, खेत्ताणुगमेण दुविहो णिदोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखे०भागवट्ठी हाणी अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सन्वलोगे । सेसपदा केवडि खेत्ते ? लोग० असंखेज्ज०भागे । एवमणंतरासीणं ।

§ ३०७, पुढवी-वादरपुढवी-वादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवी-सुहुमपुढवीपज्जत्ता-पज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त० तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त०-वाउ०-वादर-वाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त० असंखेज्जभागवट्ठी-हाणी अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सन्वलोगे । सेसपदा० के० ? लोग० असंखेज्ज०भागे । सेससंखेज्जासंखेज्जरासीणं सन्वपदा लोगस्स असंखे०भागे । एवरि वादरवाउ-

§ ३०५ चायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असाख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । तथा शेष पदवाले जीव साख्यात हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें तीन हानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें दो हानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असाख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असाख्यात हैं । सम्यग्निमध्याहृष्टियोंमें तीन हानिवाले जीवोंका प्रमाण वेदकसम्यग्दृष्टियोंके समान है ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३०६ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असाख्यात भागवृद्धि, असाख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असाख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनन्त साख्यावाली राशियोंके कहना चाहिये ।

§ ३०७ पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि कायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादरवायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, जीवोंमें असाख्यात भागवृद्धि, असाख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । तथा शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असाख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । शेष साख्यात और असाख्यात साख्यावाली राशियोंकी अपेक्षा सभी पदवाले जीव

पञ्च० असंसे० मागवद्दी हाणी अवदि० लोगस्स संखोज्जमदिमाग ।<sup>१</sup>

एवं खोत्ताणुगमो समचा ।

§ ३०८ पोसणाणुगमेण दुबिहो णिहोसो—ओपेण आदेसेण य । तत्त्व ओपेण असत्संज्जमागवद्दी-हाणी-अवदि० केवडिय खेचं पोसिदं । सम्मसोगो । दोवद्दी दोहाणी० के० खे० पो० । लोग० असंसे मागो अह-चोइसमागा देवणा सम्मसोगो वा । असंसेअणुगहाणी० के० खे० पो० । लोग० असंसे० मामो । एवं कायमोगि०-वचारिकसा० अवक्तु०-भवसि०-माहारि चि ।

लोकके असंस्मातवें मागप्रमाण क्षेत्रमें रहत हैं । इतनी विशेषता है कि बाहर वायुकायिक पर्याप्त बीबोंमें असंस्मातमागवृद्धि, असंस्मातमागहानि और अवस्थितविमलितप्रज्ञ बीबोंका क्षेत्र लोकका संस्मातवें माग है ।

विशेषार्थ—ओपमे असंस्मातमागवृद्धि असंस्मातमागहानि और अवस्थित स्थिति-वाले जीव अनन्त हैं यह परिमाणलुगागहानिमें वनता ही आवे हैं और अनन्त संस्मातवाली राशिपोंका स्वस्मानकी अपेक्षा भी सब लोक क्षेत्र बन जाता है अतः इन तीन पक्षोंमें बीबोंका ओपसे सब लोक क्षेत्र कहा । किन्तु ओप पांच पक्षोंमें जीव बहुत स्वल्प हैं, क्योंकि इन पक्षोंका अधिकतर ब्रह्मसे ही सम्बन्ध है । वा हानियां ऐसी हैं वा स्वाधर्मिक भी पक्ष जाती हैं पर ओ ब्रह्म स्थितिकाण्डकपातके द्वारा संस्मात मागहानि और संस्मात गुणहानिका कर रहे हैं पक्षे ब्रह्म पर मर कर पक्षत्रियोंमें उत्पन्न हों तो उन स्वाधर्मिक ही व ओ हानियां पक्ष जाती हैं अतः छप पक्षोंका क्षेत्र लोकके असंस्मातवें मागप्रमाण ही बनता है । अतः भी अनन्त संस्मातवाली मार्गवापद हैं इनमें भी अपने अपने सम्मय पक्षोंकी अपेक्षा इसी प्रकार कम जानना चाहिये । तथा सामान्य पृथिवीकायिक आदि कुछ असंस्मात संस्मातवाली ऐसी मार्गवापद हैं जिनका सब लोक क्षेत्र बन जाता है अतः इनमें भी अपने सम्मय पक्षोंकी अपेक्षा अधिकतर ओप प्रकृष्टता बढित हो जाती है । पर इन्से अतिरिक्त अतः भी असंस्मात वा संस्मात संस्मातवाली मार्गवापद हैं इनमें सभी सम्मय पक्षोंकी अपेक्षा कम लोकके असंस्मातवें मागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इन मार्गवापदों बीबोंका क्षेत्र ही लोकके असंस्मातवें मागप्रमाण है । किन्तु वायुकायिक पर्याप्त जीव इस व्यवस्थानके अपमानमूल हैं क्योंकि वनता क्षेत्र लोकके संस्मातवें मागप्रमाण है अतः इनमें असंस्मात मागहानि, असंस्मात मागवृद्धि और अवस्थित स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके संस्मातवें मागप्रमाण जानना और ओप पक्षोंकी अपेक्षा लोकके असंस्मातवें मागप्रमाण क्षेत्र जानना ।

इस प्रकार लुगागम समाप्त हुआ ।

§ ३१ = स्पर्शनलुगागमकी अपेक्षा निर्णय दो प्रकारका है—ओपनिर्णय और आदेक्षनिर्णय ।

अन्तर्से ओपकी अपेक्षा असंस्मात मागवृद्धि, असंस्मात मागहानि और अवस्थितविमलितप्रज्ञ बीबोंमें कितने क्षेत्रका स्पष्ट किया है । सर्वलोकका स्पष्ट किया है । दो वृद्धि और दो हानिवाले बीबोंमें कितने क्षेत्रका स्पष्ट किया है । लोकके असंस्मातवें माग क्षेत्रका प्रकृतवालीके चोइस भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पष्ट किया है । असंस्मात-गुणहानिवाले बीबोंमें कितने क्षेत्रका स्पष्ट किया है । लोकके असंस्मातवें माग क्षेत्रका स्पष्ट किया है । इसी प्रकार काययोगी, ओपादि चारों कथायवाले, अवक्तुवर्धनवाले मध्य और आहारक बीबोंमें जानना चाहिये ।

§ ३०९. आदेसेण णेरइणमु सव्यपदा के० से० पो० ? लोग० असंखेभागो छ चोइस० देसूणा । पढमपुढवि० खेत्तभंगो । विटियादि जाय मत्तमि ति सव्यपदानं विहत्तिएहि के० से० पो० ? लोग० असंखे०भागो एक्क वे तिणि चत्तारि पंच छ चोइसभाग देसूणा ।

§ ३१०. तिक्खि० असखे०भागवट्टी-हाणी०-अट्ठि० के० ? सव्वलोगो । दोवट्टी-दोहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । एवमो-रालियमिस्स०-कम्मइय०-तिणिणले०-असण्णि०-अणाहारि ति ।

**विशेषार्थ-**ओत्रमे असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थित पदवालोंका स्पर्श सब लोक घटलानेका कारण यह है कि इन पदवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त है और वे सब लोकमें पाये जाते हैं। सख्यात भागवृद्धि, सख्यात गुणवृद्धि, सख्यात भागहानि और सख्यात गुणहानि इन पदवालोंका स्पर्श तीन प्रकारका घटलाया है। लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श वर्तमान कालकी अपेक्षा घटलाया है। कुछ कम आठ बटे चौदह राजु प्रमाण रपर्ण निहार, वेदना आदि की अपेक्षा घटलाया है, क्योंकि उक्त पदवालोंका नीचे दो राजु और ऊपर छह राजु तक गमना-गमन पाया जाता है। और सब लोक प्रमाण स्पर्श भारणान्तिक समुद्रात और उपपादपदकी अपेक्षा घटलाया है। तथा असख्यात गुणहानिवालोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण घटलानेका कारण यह है कि इस पदको नीचे गुणस्थानवाले जीव ही प्राप्त होते हैं। पर नाचें गुणस्थानवालोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं है। कुछ मार्गणाए भी ऐसी हैं जिनमें यह ओत्र-प्ररूपणा अविरल बन जाती है। जैसे काययोगी आदि, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा।

३०६ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार, कुछ कम पांच और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

**विशेषार्थ-**नरकमें सामान्य नारकियोंका और प्रत्येक नरकके नारकियोंका जो स्पर्श घटलाया है वही यहा सब पदवालोंका स्पर्श है उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। कारण यह है कि सब नारकी सच्ची पचेन्द्रिय होते हैं अतः सबके सब पद सम्भव हैं और इसीलिये यहा प्रत्येक पदकी अपेक्षा वही स्पर्श प्राप्त होता है जो सामान्य नारकियोंके या उस नरकके नारकियोंके घटलाया है।

§ ३१० तिर्यचोंमें असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार औदारिकमिश्राकाययोगी, कर्मणकाययोगी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, असंक्षी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३११ सम्बपंचि०तिरिक्ख० सम्बपदा० के० खे० पो० । साग० असंखे० मागो सम्बपगो वा । एवं मणुस्सअपउज्ज०-सम्बधिगण्ठिदिय पण्ठिदियमपउज्ज० वादरपुडपिपज्ज० वादरआउपउज्ज०-वादरतेउपउज्ज०-वादरनाउपउज्ज०-वादरवणफुदिपरोय पज्ज०-तसअपज्जचे धि । एवरिवादरनाउपउज्जअउपहि असंखेअभागवहुा हाणी-अबट्ठि० के० खे० पोसिदं ? लोम० संखे० भागो सन्नलोमो वा । मणुसतिप० पंचि०तिरिक्ख मंगो । एवरि असं०गुणहाणीए मापमंगो ।

§ ३१२ दंसु सम्बपदाणं धि० के० खे० पोसिदं ? लोमस्स असं० भागो अट्ठ एव चोइस० देसणा । एवं सोइय्मीसाणे । ववण०-आण० जाप्रसि० सम्बपदा० के० खे० पो० ? लो० असंख० भागो अट्ठपुड एवचोइसभागा वा दसुणा । सण्वहुमागदि माव सहस्मारो धि सम्बपदा० के० खे० पो० ? लोम० असंखे० भागो अट्ठचोइस०

विशुपार्थ—तिर्यचोमें असंख्यात मागवृद्धि, असंख्यात मागहानि और अवस्थितपदवाले जीव सब शोकमें पाये जाते हैं अतः इन तीन पदवालोंका स्वयं सब शोक पतलाना है । संख्यात मागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यात मागहानि और संख्यात गुणहानि विधिवृद्धिवाले तिर्यच जीव पाये तो लाकके असंख्यातमें मागप्रमाण क्षेत्रमें ही जाते हैं किन्तु मारकामितिक और उपपातपक्षकी अपेक्षा अतीत कालमें इन्होंने सब शोकका स्वयं किया है इसलिये इनका शोकके असंख्यातमें मागप्रमाण और सब शोकप्रमाण स्वयं बनताया है । औरारिखिमिअयबोग आदि मूलमें गिनताई गइ कुइ और पेसी मार्गछाप हैं जिनका स्वयं तिर्यचोके समान है अतः उनके कमनका तिर्यचोके समान कहा ।

§ ३११ सभी पंचेन्द्रिय तिर्यचोमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्वयं किया है ? शोकके असंख्यातमें माग और सर्वलाकप्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्मात्त, सभी बिन्दुमिन्द्रिय पंचेन्द्रिय अपर्मात्त, वावर वृषिमीकाविक पर्मात्त, वावर बलकाविक पर्मात्त, वावर अग्निकाविक पर्मात्त वावर वायुकाविक पर्मात्त वावर वनस्पतिकाविक प्रत्येक शरीर पर्मात्त और सब अपर्मात्त जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विवेकता है कि वावर वायुकाविक पर्मात्तमें असंख्यात मागवृद्धि, असंख्यातमागहानि और अवस्थितविधिवृद्धिवाले जानना कितन क्षेत्रका स्वयं किया है ? शोकके संख्यातमें माग और उपपत्तोप्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । मनुष्यात्रकके पंचेन्द्रिय तिर्यचोके समान स्वयं जानना चाहिये । इतनी विवेकता है कि इनके असंख्यात गुणहानिका अपेक्षा स्वयं आपके समान है ।

§ ३१२ इवमि सभी पदवाले जानने कितन क्षेत्रका स्वयं किया है ? लाकके असंख्यातमें माग और वसुनालीके चौइह भागोंमें से कुछ कम आठ और कुछ कम तो मागप्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । इसी प्रकार शौनर्ग और पेछन स्वयं के देवोंके जानना चाहिये । मयनवासी, म्यन्तर और म्योतिषी देवोंमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्वयं किया है ? शोकके असंख्यातमें माग क्षेत्रका और वसुनालीके चौइह भागोंमें से कुछ कम साढ़े तीन भाग और कुछ कम तो माग प्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । सनत्कुमारसे लेकर सख्खार स्वर्गावतके देवों में सभी पदवाले जीवोंने कितन क्षेत्रका स्वयं किया है ? शोकके असंख्यातमें माग क्षेत्रका और वसुनालीके चौइह भागोंमें से कुछ कम आठ मागप्रमाण क्षेत्रका स्वयं किया है । ज्ञानत मायत, आरण्य

देसूणा । आणद-पाणद-आरणचुद० सव्वपदा० के० खेत्तं पोसिदं० ? लोग० असंखे०-  
भागो छचोइसभागा वा देसूणा । उवरि खेत्तभंगो । एवं वेउन्वियमिस्स०-आहार०-  
आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा० मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-  
सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

§ ३१३ सव्वेइंदिय० असंखेज्जभागवड्डी-हाणी-अवट्ठा० के० खे० पो० ? सव्व-  
लोगो । सेसपद० वि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । एवं  
पुढवी०-वादरपुढवी०-वादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवी०-सुहुमपुढवीपज्जत्तापज्जत्त-

और अच्युत कल्पके देवोंमें सभी पदवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके अस-  
ख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।  
सोलहवें कल्पके ऊपर स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी,  
आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपाथी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत,  
सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत और यथाख्यात  
सयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सब प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका वर्तमानकालीन और कुछ अन्य पदोंकी अपेक्षा  
अतीतकालीन स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण तथा मारणान्तिक और उपपादपदकी अपेक्षा  
अतीतकालीन स्पर्श सब लोक बतलाया है । तथा सब प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके असख्यात  
गुणहानिको छोड़कर सब पद संभव हैं अतः सब प्रकारके तिर्यचोंमें सब पदवालोंका स्पर्श लोकके  
असख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है । मूलमें गिनाई गई मनुष्य अपर्याप्तक आदि सब  
मार्गणाओंमें भी अपने अपने पदोंकी अपेक्षा इसी प्रकार स्पर्श प्राप्त होता है अतः उनके कथनको  
पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान कहा है । किन्तु वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके असख्यात भागवृद्धि,  
असख्यात भागहानि और अवस्थित पदकी अपेक्षा कुछ विशेषता है । वात यह है कि इन जीवोंने  
वर्तमानमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और अतीत कालमें सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया  
है अतः उक्त तीन पदोंकी अपेक्षा इनका स्पर्श उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है । जिन कारणोंसे  
पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण या सब लोक प्राप्त होता है वे ही कारण  
मनुष्यत्रिकके भी समझना चाहिये अतः इनमें पंचेन्द्रियतिर्यचोंके समान स्पर्श बतलाया है । किन्तु  
मनुष्योंके नौवा गुणस्थान भी होता है अतः यहा असख्यातगुणहानि सम्भव है । फिर भी असख्यात  
गुणहानिवालोंका जो स्पर्श ओघसे कह आये हैं वही उक्त पदकी अपेक्षा मनुष्योंके जानना चाहिये  
क्योंकि यह पद मनुष्योंके ही होता है । देवोंमें जिसका जितना स्पर्श है सब पदोंकी अपेक्षा उसका  
उतना ही स्पर्श प्राप्त होता है अतः यहा उसका विशेष खुलासा नहीं किया । 'एव' कह कर मूलमें जो  
कुछ वैक्रियिकमिश्रकाययोग आदि मार्गणाए गिनाई हैं वहा 'एवं' का यही अर्थ है कि जिस मार्ग-  
णाका जितना स्पर्श है अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा उस मार्गणाका उतना ही स्पर्श प्राप्त होता है ।

§ ३१३ सभी पंचेन्द्रियोंमें असख्यात भागवृद्धि, असख्यात भागहानि और अवस्थित  
विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा शेष  
पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्वलोक  
क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक  
अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त,

मात०-[बादरभात०] बादरभातअपज्ज० सुहुमभात० सुहुमभातपज्जचापज्जच  
तेठ०-बादरतेठ० बादरतेठअपज्ज० सुहुमतठ० सुहुमतेठपज्जचापज्जच-वाउ०-बादर  
वाउ०-बादरवाउअपज्ज० सुहुमवाउ० सुहुमवाउपज्जचापज्जच वणप्फदि०-बादरवण  
प्फदि० बादरवणप्फदिपज्जचापज्जच सुहुमवणप्फदि मुहुमवणप्फदिपज्जचापज्जच  
णिगोद०-बादरणिगोद०-बादरणिगोदपज्जचापज्जच-सुहुमणिगोद० सुहुमणिगोदपज्जचा  
पज्जच-बादरवणप्फदिपत्तेय०-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्जमत्ते चि ।

‡ ३१४ पंचिदिय० पंचि०पज्ज० तस० तसपज्ज० सम्भपदवि० के० खे०  
पो० ? साग० असंखे०भागो अइचोदस० देख्णा सम्भसोगो वा । जवरि ममत्तेज्ज  
गुणहाणी० ओषं । एवं पंचमज्ज०-पंचवचि० इत्थि०-पुरिस०-वक्खु०-सण्णि चि ।

बलकायिक बादर बलकायिक, बादर बलकायिक अपर्वात् सूक्ष्म बलकायिक सूक्ष्म बलकायिक  
पर्याप्त, सूक्ष्म बलकायिक अपर्वात्, अग्निकायिक बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक  
अपर्वात्, सूक्ष्म अग्निकायिक सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्वात्, वायुकायिक,  
बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्वात् सूक्ष्म वायुकायिक सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म  
वायुकायिक अपर्वात् वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त बादर  
वनस्पतिकायिक अपर्वात्, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पति  
कायिक अपर्वात् निगोद बादर निगोद बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्वात् सूक्ष्म  
निगोद, सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सूक्ष्म निगोद अपर्वात् बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर और  
बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक क्षरीर अपर्वात् जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-जैसा कि आधर्म पटित करके बतला आये हैं तदनुसार अस्तव्यास मागवृद्धि,  
अस्तव्यास मागवृद्धि और अवस्थितपदवाचको वतमान और अतीत दोनों प्रकारका स्पष्ट सब  
लोक एकेन्द्रियोंमें ही पाया जाता है अतः एकेन्द्रियोंमें एक पदवाचको स्पष्ट सब लोक प्रमाण  
बतलाया । किन्तु एकेन्द्रियोंमें क्षेत्र पद सबके नहीं पाये जाते हैं किन्तु जो पंचन्द्रियोंमेंसे आकर  
एकेन्द्रिय होते हैं उन्हींके पाये जाते हैं किन्तु ऐसे जीव स्वल्प हात हैं अतः इनका वतमान कालीन  
स्पर्श ही लोकके अस्तव्यासवर्ष मागप्रमाण ही प्राप्त होता है हाँ अतीत कालीन स्पर्श सब लोक वत  
जाता है अतः इनमें क्षेत्र पदोंकी अपेक्षा वतमान कालीन स्पर्श लोकके अस्तव्यासवर्ष मागप्रमाण  
कदा और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक कदा । मूलमें जो पृथिवी आदि वृक्षी मार्गवायु गिनार्ह  
हैं उन्हीं भी एक प्रमाण स्पर्श उन्हीं कमसे कम जाता है अतः इनके कपनको एकेन्द्रियोंके समान  
कदा । इसी प्रकार आगे और जितनी मार्गवायुओंमें अपने अपने पदोंकी अपेक्षा स्पर्श बतलाया  
है वह उन वन मार्गवायुओंके स्पर्शके अनुसार वन जाता है । अतः जिस मागवाचका जितना स्पर्श  
है अपने समस्त पदोंकी अपेक्षा उसका उतना स्पर्श जानना चाहिये जिसका निर्देश मूलमें  
किया ही है ।

‡ ३१४ पंचन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, अस और अस पर्याप्त जीवोंमें सभी पदवाच जीवोंने  
जितने क्षेत्रका हाथ किया है ? लोकके अस्तव्यासवर्ष माग क्षेत्रका असनस्पर्शके पदवाच मार्गोंमेंसे  
एक कम पाठ माग क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इतनी विवेकता है कि  
इनके अस्तव्यासवर्ष मागवाचका स्पर्शान् आधर्म समान है । इसी प्रकार पाँचों मनायोगी पाँचों  
वचनपाणी, स्त्रीवही, पुरुषवही, वसुधैवकुर्वते और संखी जीवोंके जानना चाहिये । वैश्वसिद्ध-



वेउच्चिय० सन्वपदवि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अठ-तेरहचोइस० देसूणा । ओरालि० तिरिक्खोघं । एवं णवुंस० ।

§ ३१५. मदि-सुदअण्णा० ओघं । णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि । एवम-संजद०-अभव०-मिच्छादिट्ठि त्ति । विहंग० पंचिदियभंगो । णवरि असंखेज्जगुण-हाणी णत्थि । आभिणि०-सुद०-ओहि० तिण्णि हाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अठचोइस० देसूणा । असंखे०गुणहाणी ओघं । एवमोहिदंस०सम्मादिट्ठि त्ति । एवं वेदय० । णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि ।

§ ३१६ तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो । सुक्क० तिण्णिहाणी के० खे० पोसिदं ? लोग० असंखेभागो छचोइस० देसूणा । असंखेज्जगुणहाणी० ओघं ।

§ ३१७ खइय० असंखे०भागहाणी० के० खे० पो० ? लो० असं०भागो । अठचोइस० देसूणा । सेसपदाणं खेत्तभंगो । उवसम० असंखे०भागहाणी० संखे०-भागहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अठचोइस० देसूणा । सासण०

काययोगियोंमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । औदारिककाययोगियोंके स्पर्श सामान्य तिर्यञ्चोके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३१५ मत्यज्ञानी और भ्रुताज्ञानी जीवोंके ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है । इसी प्रकार असयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । विभगहानियोंके पचेन्द्रियोंके समान स्पर्श है । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं पायी जाती है । आभिनिबोधिकज्ञानी, भ्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें तीन हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा इनके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदशनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है ।

§ ३१६ पीतलेश्यावालोंके सौधर्भ कल्पके समान स्पर्शन है । पद्मलेश्यावालोंके सहस्त्रार कल्पके समान स्पर्श है । तथा शुक्ललेश्यावालोंमें तीन हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा इनके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है ।

§ ३१७ क्षाधिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा इनके शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानि और सख्यातभागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम

असंखेज्जमागहाणी० के० खे० पो० ? छोग० असंखे०भागो अह-मारहचोइस० देसणा । सम्मापि० वेवय०भंयो ।

§ ३१८ समदासनद० असंखे०भागहाणी० के० खे० पो० ? छोग० असंखे० भागो अचोइस० देसणा । सखे०भागहाणी० खेचमंगो ।

एवं पोसणाणुगमो समचो ।

§ ३१९. कस्मणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण मावेसेण य । तस्य ओघेण असंखे०भागवह्नी हाणी अवहा० केवधिरं ? सम्बद्धा । दोवह्नी० दोहाणी० के० ? अ० एगसमभो, ठक० आवसि० असको०भागो । असंखे०गुणहाणी० जह० एगसमभो, ठक० संकोजा समया । एवं कायजोगि०-भोरसि०-अर्बुस० वचारिक०-अवस्तु० मवसि० आहारि सि ।

आठ भागप्रमाण क्षेत्रक स्पष्ट किया है । साक्षात्सम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंमें कितने क्षेत्रक स्पष्ट किया है ? शोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रक तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रक स्पष्ट किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके वैश्वसम्यग्दृष्टियोंके समान स्पष्ट जानना चाहिये ।

§ ३१८ संयत्तासंयत्तोमें असंख्यात भागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रक स्पष्ट किया है ? शोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रक और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रक स्पष्ट किया है । तथा इनके संख्यात भागहानिकी अपेक्षा स्पष्ट क्षेत्रके समान है ।

इस प्रकार स्पष्टननुगम समाप्त हुआ ।

§ ३१९. कस्मणुगमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकरका है—आपनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमें से आपकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल है । वो वृद्धि और वा हानिवाले जीवोंका कितना काल है ? अपन्य काल एक समय है और उत्पन्न काल आवर्त्तोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा असंख्यात गुणहानिवाले जीवोंका अपन्य काल एक समय और उत्पन्न काल संख्यात समय है । इसी प्रकार अययोगी आहारिकअययोगी, गर्भसंक्रमणवाले आपादि चारों कथावचाले अचक्षु रचनवाले सम्म और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार किया जा रहा है । तदनुसार आपसे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित स्थितिवाले जीव अनन्त हैं अतः इनका सम्मान सर्वदा पाया जाता है । संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि तथा संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि इनके निरन्तर रहनेका अपन्य काल एक समय और उत्पन्न काल आवर्त्तोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः इनका अपन्य काल एक समय और उत्पन्न काल आवर्त्तोंके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । तथा असंख्यात गुणहानि अनिष्टति चरकके ही दाढ़ी है और पणितृप्ति चरकके इसके निरन्तर प्राप्त होनेका अपन्य काल एक समय और उत्पन्न काल संख्यात समय है, अतः असंख्यात गुणहानिका अपन्य और उत्पन्न काल उत्पन्नाय बतलाया । यह भाव प्रकृष्टा अययोगी आदि कुछ मार्गशास्त्रों में अवस्थित बन जाती है, अतः इनकी कबनी आपके समान करी ।

§ ३२० आदेशेण णेरइएसु असंखेज्जभागहाणी अवट्ठि० के० ? सव्वद्धा । सेसपदा० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असखे०भागो । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-देव०भवणादि जाव सहस्सार०-पंचि०अपज्ज०-सव्व-विगल्लिंदिय-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादर-वणप्फदिपत्तेयपज्ज०-तसअपज्ज०-वेउव्विय०-विहग०-तेउ०-पम्मलेस्से त्ति ।

§ ३२१ तिरिक्खा ओघं । णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि । एवमोरालिय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि-मुदअण्णा०-असजद०-तिणिलेस्सा०-अभव०-भिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ ३२२ मणुस० पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि असंखे०गुणहाणी० ओघं । एवं पंचि०-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चेव ? णवरि जम्हि आवलि० असंखे०-

§ ३२० आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति-वाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा शेष पदवालोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, व्रस अपर्याप्त, वैक्रियिकाययोगी, विभगज्ञानी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नारकियोंमें असंख्यात भागहानि और अवस्थितस्थिति ये दो ध्रुव पद हैं अतः यहा इनका सर्वदा काल कहा । इसी प्रकार आगे भी जानना । तथा शेष पद अध्रुव हैं फिर भी यदि वे निरन्तर रहें तो कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक आवलिके असंख्यातवें भाग काल तक निरन्तर पाये जाते हैं अतः शेष पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । सातों नरकके नारकी आदि कुछ ऐसी मांगोणए है जिनमें उक्त प्ररूपणा अधिकल वन जाती है, अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य नारकियोंके समान कहा ।

§ ३२१ सामान्य तिर्यचोंके ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असजी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३२० सामान्य मनुष्योंके पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात गुणहानिका काल ओघके समान है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, व्रम, व्रम पर्याप्त, पौचों मनोयोगी, पौचों वचनयोगी, स्त्रीपदवाले, पुरुषपदवाले, चतुर्दशनवाल और सद्दी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पहले जहाँ आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल कहा है वहाँ इनके

मागो तन्मि संसेजा समय। नवरि संसे० मागहाणी० जह० एगसमओ, उक्त० आबसि०  
असंसे० मागो। मनुसअपअ० असंसे० मागहाणी अयदि० के० ? जह० एगसमओ,  
उक्त० पसिदो० असंसे० मागो। सेसपदधि० के० ? जह० एगसमओ, उक्त० आबसि०  
असंसे० मागो। एवं वेदभियमिस्स०।

संस्कार समय काल कहना चाहिये। तथा इतनी और विवेचना है कि इनके संस्कारमागहानिका  
अपन्य काल एक समय और अत्युत्कृष्ट काल आबलीके असंस्कारतर्षे मागप्रमाण है। मनुष्य अपन्य-  
हर्षमें असंस्कारमागहानि और अचरित्य विमर्शितली बीबोके कितना काल है ? अपन्यकाल  
एक समय और अत्युत्कृष्ट काल पस्योपमके असंस्कारतर्षे मागप्रमाण है। तथा सेप पदवाले बीबोका  
कितना काल है ? अपन्यकाल एक समय और अत्युत्कृष्ट काल आबलीके असंस्कारतर्षे मागप्रमाण है।  
इसी प्रकार वैदिकमिमकाययोगी बीबोके जानना चाहिये।

विशेषार्थ-तिर्यचोका प्रमाण अमल है, अतः इनके सब पदोंका काल ओषके समान बन  
जाता है। किन्तु इनके असंस्कारगुणहानि नहीं होती क्योंकि यह पर अनिष्टिचपकके ही पाया  
जाता है। औदारिकमिमकाययोग आदि कुछ ऐसी मार्गवाप हैं जिनमें उक्त प्रकरण बन जाती है  
अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य तिर्यचोके समान कहा। मनुष्योंके और सब पदोंका  
काल तो पंचेन्द्रिच तिर्यचोके समान है, क्योंकि इनके द्रुच और अप्रच पर पंचेन्द्रिच तिर्यचोके  
समान पाव जात हैं। किन्तु इतनी विवेचना है कि इनके असंस्कारगुणहानि और पाई जाती है।  
पर यह पर मनुष्योंके ही होता है क्योंकि अनिष्टिच चपक गुणस्थान मनुष्य गतिके छोड़कर  
अन्य गतिवाले बीबोके नहीं पाया जाता। अतः सामान्य मनुष्योंके इस पदका काल आपके  
समान बन जाता है। पंचेन्द्रिच आदि कुछ ऐसी मार्गवाप हैं जिनमें उक्त प्रकरण बन जाती  
है अतः उनमें सम्भव सब पदोंका काल सामान्य मनुष्योंके समान कहा। मनुष्यपदोंपर  
और मनुष्यनी संस्कार होवे हैं अतः इनके संस्कारमागहानि संस्कारगुणहानि, और संस्कार  
गुणहानिका अत्युत्कृष्ट काल आबलीके असंस्कारतर्षे मागप्रमाण पाव न होकर संस्कार समय प्राप्त  
होता है। किन्तु उक्त दोनों मागवापोंका प्रमाण संस्कार होवे हुए भी इनके संस्कारमागहानिक  
अत्युत्कृष्ट काल आबलीके असंस्कारतर्षे मागप्रमाण बन जाता है क्योंकि पहले एक बीबकी अपेक्षा  
संस्कारमागहानिक अत्युत्कृष्ट काल दो कम अत्युत्कृष्ट संस्कार समय प्रमाण बतला आते हैं। अब यदि  
किसी एक पदोपरमनुष्य या मनुष्यनीने संस्कारमागहानिक प्रारम्भ किया और वह संस्कार  
मागहानिके अत्युत्कृष्ट काल तक उसके साथ रहकर जिस समय समाप्त करता है उसी समय किसी एक  
मागवापके अन्य जीवन उसका प्रारम्भ किया तो इस प्रकार निरन्तर संस्कारमागहानिकी  
प्रवृत्ति आबलीके असंस्कारतर्षे मागप्रमाण काल तक पाई जाती है अतः उक्त मार्गवापमें इसका  
अत्युत्कृष्ट काल एक प्रमाण कहा। मनुष्य अपन्य यह सन्तर मार्गवाप है अतः इस मार्गवाप को  
अत्युत्कृष्ट काल है वही यहाँ असंस्कारमागहानि और अचरित्य परका अत्युत्कृष्ट काल जानना। किन्तु  
अन्तरकालके बाद जब माना बीब इस मार्गवापको प्राप्त होते हैं तब वे यदि एक समय तक  
असंस्कारमागहानि या अचरित्य परके साथ रहे और दूसरे समयमें अन्य पदको प्राप्त ह। गये  
तो इनके उक्त दो पदोंका अपन्यकाल एक समय पाया जाता है। वैदिकमिमकाययोग यह  
मार्गवाप भी सन्तर है, अतः यहाँ भी सत्यपदोंपर मनुष्योंके समान सम्भव सब पदोंका काल  
बन जाता है।

§ ३२० आदेसेण णेरइएसु असंखेज्जमागहाणी अवट्ठि० के० ? सव्वद्धा । सेसपदा० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असखे०भागो । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देव०भवणादि जाव सहस्सार०-पंचि०अपज्ज०-सव्व-विगलिदिय-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादर-वणप्फदिपत्तेयपज्ज०-तसअपज्ज०-वेउव्विय०-विहग०-तेउ०-पम्मलेस्से त्ति ।

§ ३२१ तिरिक्खा ओघं । णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि । एवमोरालिय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णा०-असजद०-तिण्णिलेस्सा०-अभव०-भिच्चादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ ३२२ मणुस० पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि असंखे०गुणहाणी० ओघं । एवं पंचि०-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पचचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चेव ? णवरि जम्हि आवलि० असंखे०-

§ ३२० आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें असख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति-वाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा शेष पदवालोंका कितना काल है ? जवन्त्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिकाययोगी, विभगज्ञानी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नारकियोंमें असख्यात भागहानि और अवस्थितस्थिति ये दो ध्रुव पद हैं अतः यहा इनका सर्वदा काल कहा । इसी प्रकार आगे भी जानना । तथा शेष पद अध्रुव हैं फिर भी यदि वे निरन्तर रहें तो कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक आवलिके असंख्यातवें भाग काल तक निरन्तर पाये जाते हैं अतः शेष पदोंका जवन्त्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । सातों नरकके नारकी आदि कुछ ऐसी मागेणाए हैं जिनमें उक्त प्ररूपणा अविकल बन जाती है, अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य नारकियोंके समान कहा ।

§ ३२१ सामान्य तिर्यंचोंके ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती हैं । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३२२ सामान्य मनुष्योंके पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यात गुणहानिका काल ओघके समान है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पंचों मनोयोगी, पंचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाल और सज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पहले जहाँ आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल कहा है वहाँ इनके

मागो तम्हि संलेखा समय। नवरि संले० मागहाणी० नह० एयसमओ, उक० आवलि०  
असंले० मागो। मणुसअपअ० असंले० मागहाणी-अपठि० के० ? नह० एयसमओ,  
उक० पसिदी० असंले० मागो। सेसपदवि० के० ? नह० एयसमओ, उक० आवलि०  
असंले० मागो। एयं येदम्बियमिस्त०।

संख्यात समय काल कहना चाहिये। तथा इतनी और विशेषता है कि इनके संख्यातभागानिका  
अपन्य काल एक समय और उक्तकाल आवलीके असंख्यातके मागप्रमाण है। मनुष्य अपर्वा-  
त्कर्म असंख्यातभागानि और अवस्थित विमलितले जीवोंके कितना काल है ? अपन्यकाल  
एक समय और उक्तकाल पत्थोपमके असंख्यातके मागप्रमाण है। तथा जेप पदबले जीवोंका  
कितना काल है ? अपन्यकाल एक समय और उक्तकाल आवलीके असंख्यातके मागप्रमाण है।  
इसी प्रकार वैदिकविमलकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ-तिर्यचोंका प्रमाण अनन्त है, अतः उनके सब पदोंका काल ओपके समान बन  
जाता है। किन्तु इनके असंख्यातगुणहानि नहीं होती क्योंकि यह पद अनिवृत्तव्यपकके ही पाया  
जाता है। औदारिकमिश्रकययोग आदि कुछ ऐसी मार्गार्थ हैं जिनमें उक्त प्ररूपणा बन जाती है  
अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य तिर्यचोंके समान रहा। मनुष्योंके और सब पदोंका  
काल तो पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है, क्योंकि इनके मूत्र और अपाव पद पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके  
समान पाये जाते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि और पाई जाती है।  
पर यह पद मनुष्योंके ही होता है क्योंकि अनिवृत्ति व्यपक गुणस्थान मनुष्य गतिमें छोड़कर  
अन्य गतिबले जीवोंके नहीं पाया जाता। अतः सामान्य मनुष्योंके इस पदका काल आपके  
समान बन जाता है। पंचेन्द्रिय आदि कुछ ऐसी मार्गार्थ हैं जिनमें उक्त प्ररूपणा बन जाती  
है अतः इनमें सम्भव सब पदोंका काल सामान्य मनुष्योंके समान रहा। मनुष्यपर्वत  
और मनुष्यनी संख्यात होते हैं अतः इनके संख्यातभागानि संख्यातगुणहानि और संख्यात  
गुणहानिक उक्त काल आवलीके असंख्यातके मागप्रमाण प्राप्त न होकर संख्यात समय प्राप्त  
होता है। किन्तु उक्त दोनों मार्गार्थोंका प्रमाण संख्यात होते हुए भी इनके संख्यातभागानिक  
उक्त काल आवलीके असंख्यातके मागप्रमाण बन जाता है, क्योंकि पहले एक जीवकी अपेक्षा  
संख्यातभागानिका उक्त काल जो कम उक्त संख्यात समय प्रमाण बतला आते हैं। अब यदि  
किसी एक पवात्रमनुष्य या मनुष्यनी संख्यातभागानिक प्रारम्भ किया और यह संख्यात  
भागानिके उक्त काल तक उसके साथ रहकर जिस समय समाप्त करता है उसी समय किसी उक्त  
मार्गार्थबले अन्य जीवने उसका प्रारम्भ किया तो इस प्रकार निरन्तर संख्यातभागानिकी  
प्रवृत्ति आपलिक असंख्यातके मागप्रमाण काल तक पाई जाती है अतः उक्त मार्गार्थोंमें इसका  
उक्त काल उक्त प्रमाण रहा। मनुष्य अपर्वात्कर्म साधर मार्गार्थ है अतः इस मार्गार्थको जो  
उक्त काल है वही यहाँ असंख्यातभागानि और अवस्थित पदका उक्त काल जानना। किन्तु  
अन्तरकालके बाद तब माना जीव इस मार्गार्थको प्राप्त होते हैं तब वे यदि एक समय तक  
असंख्यातभागानि या अवस्थित पदके साथ रह और दूसरे समयमें अन्य पदका प्राप्त हो गये  
तो इनके उक्त दो पदोंका अपन्यकाल एक समय पाया जाता है। वैदिकविमलकाययोग यह  
मार्गार्थ भी साधर है, अतः यहाँ भी लक्ष्यपवात्र मनुष्योंके समान सम्भव सब पदोंका काल  
बन जाता है।

§ ३२३. आणदादि जाव अवराइद ति असंखे० भागहाणी० के० ? सव्वद्धा । संखे० भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । एवं संजदा-संजद० । सवट्ठे असंखे० भागहाणी० के० ? सव्वद्धा । संखेज्जभागहाणी ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । एवं परिहार० ।

§ ३२४ सवणएइंदिएसु असंखे० भागवट्ठी-हाणी-अवट्ठि० तिरिक्खोघं । सेस-पदवि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । एव पुढवि०-वादर-पुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-[-वादरतेउ०-]वादरतेउ-अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुम-वाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-णणप्फदि०-वादरणणप्फदि-वादरणणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणणप्फदि० - सुहुमवणणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त - वादरणणणप्फदिपत्तेयसरीर० - तस्सेव अपज्जत्ते ति ।

§ ३२३ आनत कल्पसे लेकर अपराजित कल्पतकके देवोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । सख्यातभागहानिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये । सर्वार्थसिद्धिमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा सख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल सख्यात समय है । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके प्रत्येक स्थान के देवोंका प्रमाण असख्यात है अतः यहाँ सख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है । पर मर्वार्थसिद्धिमें देवोंका तथा परिहारविशुद्धि सयतोंका प्रमाण सख्यात है, अतः यहाँ सख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल सख्यात समय ही प्राप्त होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ३२४ सभी एकेन्द्रियोंमें असख्यातभागवृद्धि, असख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंका काल सामान्य तिर्यचोंके समान है । तथा शेष पदवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३२५ आहार० असंख० भागहाणी० जह० एगसमओ, उक० अंतोमु० । एगम कसा० जहास्त्वावसंमये ति । आहारमिस्स० असंखे० भागहाणी० जहणुक्क० अंतोमु० । अवगद० असंखे० भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक० अंतोमु० । ससपदा० मणुसपन्नचर्मगो । एरं सुहुमसांपरा० ।

§ ३२६ आमिणि०-मुद० ओहि० असंखे० भागहाणी० के० ? सवद्धा । ससपदा० पंचिंदयमगो । एवमोहिदंस०-मुक्क० सम्मादिट्ठि ति । मणपन्न० असंखे० भागहाणी० के० ? सम्बद्धा । ससपदा० के० ? जह० एगसमओ, उक० संखेज्जा समया । जहरि संखे० भागहाणी० उक्क० आवलि० असंखे० भागो । एरं संवद०-सामाइय-वेदोव०-स्वइय० । जहरि सामाइय-वेदोव० संखेज्जभागाहाणी० उक्क० संखेज्जा समया ।

§ ३२७ वेदय० असंखज्जभागाहाणी० के० ? सम्बद्धा । सेसपद० आमिणि०

§ ३२४, आहारकाम्ययोगिबोमं असंख्यातभागाहानिवासे जीबोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हुत है । इसी प्रकार अवकायी और एवाक्यातसंयत जीबोंके ज्ञानना चाहिये । आहारकमिन्नयोगिबोमं असंख्यातभागाहानिवासे जीबोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हुत है । अपगतवेदियोंमें असंख्यातभागाहानिवासे जीबोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हुत है । तथा इनके शेष पक्षोंकी अपेक्षा काल मनुष्य पक्षात्की समान जानना चाहिये । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयतों के जानना चाहिये ।

विशुपार्य—आहारकम्ययोगि, निषिद्ध प्रकारकी अवकाय और एवाक्यातसंयतका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हुत है अतः यहाँ असंख्यातभागाहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उत्कृष्टमात्र कहा । किन्तु आहारकमिन्नयोगिक जघन्य काल भी अन्तमुं हुत है अतः इसमें असंख्यातभागाहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हुत ही प्राप्त होता है । अपगतवेद और सूक्ष्मसांपरायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हुत है अतः इसमें असंख्यात भागाहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उत्कृष्टमात्र बन जाता है । तथा अपगतवेद अवस्था सूक्ष्म साम्परायिकसंयत मनुष्योंके भी होती है अतः इसमें सम्मेल शेर पक्षोंका काल मनुष्य पक्षात्की समान बन जाता है ।

§ ३२६ आमिनिबोधिकज्जानी जुत्तसामी और अवधिच्छादियोंमें असंख्यातभागाहानिवासे जीबोंका कितना काल है ? सर्वकाल है । तथा शेष पक्षोंकी अपेक्षा काल पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार अवधिच्छानिवासे जुत्तसालेखावासे और सम्पगच्छि जीबोंके जानना चाहिये । मनःपययज्ञानियोंमें असंख्यातभागाहानिवासे जीबों का कितना काल है ? सर्वकाल है । तथा शेष पक्षासे जीबोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । इतनी कितोस्ता है कि संख्यातभागाहानिवासे जीबोंका उत्कृष्ट काल आबलीके असंख्यातपक्ष भाग प्रमाण है । इसी प्रकार संयत सामायिकसंयत जेरोपस्थापनासंयत और वायिकसम्पगच्छि जीबोंके जानना चाहिये । इतनी कितोस्ता है कि सामायिकसंयत और जेरोपस्थापना संयतोंमें संख्यातभागाहानिवासे जीबोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ३२७, वेदकसम्पगच्छियोंमें असंख्यातभागाहानिवासे जीबोंका कितना काल है ? सर्वकाल



भंगो । उवसम० असंखे०भागहाणी० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । संखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । सासण० असंखे०भागहाणी० के० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । सम्मामि० असंखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । सेसपदाणमोहिभंगो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ ३२८ अंतराणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखे०भागवट्ठी-हाणी-अवट्ठि० णत्थि अंतरं । दो वट्ठी-हाणी० अंतर के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणी० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० छ मासा । एवं कायजोगि० - ओरालि०-णवु स०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि ति । एवरि एवु सयवेदे असंखे०गुणहाणी० उक्क० अंतरं वासपुधत्तं । कोध-माण-माया-लोमाणं वार्सा सादिरेंयं ।

है । तथा इनके शेष पदोंकी अपेक्षा काल अभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा संख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा शेष पदोंकी अपेक्षा काल अवधिज्ञानियोंके समान है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३२८ अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षु-दर्शनवाले भव्य और, आहारक जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषना है नपुसकवेदमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है और क्रोध, मान, माया और लोभमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है ।

**विशेषार्थ**—असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितका काल सर्वदा है अतः इनका अन्तरकाल नहीं पाया जाता । संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि ये कमसे कम एक समयके बाद और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालके बाद नियमसे प्राप्त होती हैं, अतः इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा असंख्यातगुणहानि क्षपकश्रेणीमें ही होती है और इसका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः एक समय और छह महीना प्रमाण है, अतः असंख्यातगुणहानिका जघन्य

§ ३२६ आदेसेण गिरयगईए असखे० भागहाणी-अवडि० गत्यि अंतरं । सेसपदाणं केव० १ अ० एगसमओ, ठक० अंतोमुहुत्तं । एवं सत्तसु पुड्ढीसु पंचिदिय तिरिस्त्व-पंचि० तिर० पज्ज०-पंचि० तिर० जोखिणी-पंचि० तिरि० अणख०-देव० भवणादि वाय सहस्सार०-पंचि० अणज्ज०-तसअणज्ज०-वेउम्बि० विमंग० सेउ०-यम्मलस्स चि ।

§ ३३० तिरिस्त्वा० आध । गवरि असखेअणुणहाणी गत्यि । एवमारामिय मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णा०-असंज्जद०-किण्ण जीस-काठ०-अमघ०-मिच्छा० असण्णि० अणाहारि चि ।

§ ३३१ मणुस० गिरओपं । गवरि अमत्ते गुणहाणी आधं । एवं पंचिदिय-पंचि० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवधि०-इत्यि०-पुरिस० चक्खु०-सण्णि चि । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चव । एवरि, इत्यि०-मणुस्सिणी० असखेअणुणहाणी० पासपुपत्तं । पुरिसवेद० पास सादिरें ।

अन्तर एक समय और एकत्र अन्तर यह महीना प्रमाण कहा । काययोगी भाषि कुछ पंसी मानेपाए हैं जिसमें यह ओष प्ररूपणा बन जाती है अतः उनके कथनको ओषके समान कहा । किन्तु इतनी विशेषता है कि यदि नपुंसकवेदी बीच चपकमेखी पर न बढ़ तो अधिक से अधिक वर्षपूववत्त्व काज तक नहीं बढ़ता है अतः इसको असंख्यातगुणहानिका अष्टम अन्तरकाल वर्ष वृषवत्त्व प्रमाण कहा । तथा ओषादि कयायवासि बीच यदि चपकमेखी पर न बढ़ तो अधिक से अधिक साधिक एक वर्ष तक नहीं बढ़ते हैं अतः इनके असंख्यातगुणहानिक अष्टम अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण कहा ।

§ ३२६ आदेकनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें असंख्यातभागहानि और अचस्तिवचिमचि वाले जीवोंको अन्तरकाल नहीं है । तथा इनके छेप पर्वोकी अपेक्षा अन्तरकाल किटना है १ अथवा अन्तरकाल एक समय है और एकत्र अन्तरकाल अन्तमु हुत है । इसी प्रकार सानों पृथिवियोक नारकी पंचेन्द्रिय विभज्ज पंचेन्द्रिय तिरैव पर्याप्त पंचेन्द्रियवतिर्येव योनिमयी पंचेन्द्रिय तिरैव अपर्याप्त सामान्य देव भवनवासियोंसे ऊपर स्वरूप कल्पतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त अस अपर्याप्त वैश्विचक्रव्यवयोगी विमंगगहानी पीतलेस्यावाले और पद्मलस्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३२ तिरैवके अन्तरकाल ओषके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं हाते हैं । इसी प्रकार औदारिकमिजकवयोगी, काम्यकवयोगी मत्पहानी वृताहानी असंयत कृष्णलस्यावाले मीतलेस्यावाले कापोतलेस्यावाले, अमम्य मिध्यादधि, असंजी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३१ मनुष्योंमें अन्तरकाल सामान्य नारकियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल ओषके समान है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, अस अस पर्याप्त पाणों मनोवागी पाणों वचनयोगी जीववत्त्व पुरुषवत्त्ववाले चक्षुवत्त्ववाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पक्षात और मनुष्यनीके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जीववत्त्व और मनुष्यनीके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल वर्षवत्त्व है । तथा पुरुषवत्त्ववाले जीवोंके साधिक एक वर्ष है ।

§ ३३२, मणुमअपज्ज० सव्वपदा० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० अमंसे०भागो ।

§ ३३३ आणदादि जाव अवराहट्ठं त्ति अमंसे०भागहाणीए णत्थि अंतरं । संसे०भागहाणि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सत्तं गादिद्वियाणि वामपुत्तं । सव्वहो असंखेज्जभागहाणीए णत्थि अंतरं । अमंसे०भागहाणि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० अमंसे०भागो ।

**विशेषार्थ—**नरकगतिमें असंख्यातभागहानि और अवस्थित ये दो पद निरन्तर पाये जाते हैं अतः इनका अन्तरकाल नहीं बनना । तथा यहाँ सम्भव दो पदोंका अन्तरकाल प्रयोग जिस प्रकार घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना । मातो नरकके नारकी आदि कुछ मार्गणाए ऐसी हैं जिनमें नरकगतिके समान अन्तरकालकी प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा । तिर्यचोके असंख्यातभागहानि, असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित ये तीन पद निरन्तर पाये जाते हैं अतः इनमें अन्तर प्ररूपणा आद्यके समान कही । किन्तु तिर्यचोके असंख्यातगुणहानि नहीं होती, क्योंकि यह पद अनित्यचित्तपुरुषके ही पाया जाता है । आदरिक्कमिश्रकाययोग आदि कुछ आर भी मार्गणाए हैं जिनमें सम्भव पदोंका अन्तरकाल सामान्य तिर्यचोके समान बन जाता है, अतः उनकी प्ररूपणा सामान्य तिर्यचोके समान कही । मनुष्योंमें असंख्यातभागहानि और अवस्थित ये दो पद ही निरन्तर पाये जाते हैं, अतः इनमें अन्तर प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान कही । किन्तु इनके असंख्यातगुणहानि भी पाई जाती है जो मनुष्य पर्यायमें ही सम्भव है, अतः मनुष्योंके असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल आद्यके समान कहा । पचेन्द्रिय आदि कुछ और ऐसी मार्गणाए हैं जिनमें अन्तरकाल सामान्य मनुष्योंके समान है, अतः उनकी प्ररूपणा सामान्य मनुष्योंके समान कही । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनीके क्षपकश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व प्रमाण है, अतः स्त्रीवेद और मनुष्यनीके असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वषपृथक्त्व प्रमाण कहा । तथा पुरुषवेदमें क्षपकश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधक एक वर्ष प्रमाण पाया जाता है, अतः पुरुषवेदमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधक एक वर्ष प्रमाण कहा ।

§ ३३२ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सभी पदमाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ—**नव्यपर्याप्त मनुष्योंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनके सम्भव सप्त पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा ।

§ ३३३ आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंके असंख्यातभागहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । संख्यातभागहानिवाले उक्त देवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सात दिन रात और वषपृथक्त्व है । सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यात भागहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । तथा संख्यातभागहानिवाले उक्त देवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्लोपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

१३३४ एदिपसु सम्पदाणं तिरिक्खोयं । एव पुडवि-वादरपुडवि-  
 वादरपुडविअपज्जम-सुहुमपुडवि - सुहुमपुडविपज्जचापज्जच-आठ -वादरआठ-  
 वादरआठअपज्ज - सुहुमआठ- सुहुमआठपज्जचापज्जच-तेउ -वादरतउ-वादर-  
 तेउअपज्जम-सुहुमतेउ-सुहुमतेउपज्जचापज्जच-वाठ-वादरवाठ-वादरवाठअपज्जम-  
 सुहुमवाठ-सुहुमवाठपज्जचापज्जच-वादरवणप्फदिपयो-तस्सा अपज्ज-वण-  
 प्फदि-वादरवणप्फदि-वादरवणप्फदिपज्जचापज्जच-सुहुमवणप्फदि-सुहुमवणप्फदि  
 पज्जचापज्जच णिगोद-वादरणिगाद-वादरणिगोदपज्जचापज्जच-सुहुमणिगोद-सुहुम  
 णिगोदपज्जचापज्जचो चि ।

१३३५ सम्भविगच्छिदियं सम्पदाणं पंचिदियतिरिक्खमगो । एवं  
 वादरपुडविपज्जम-वादरआठपज्जम-वादरतेउपज्जम-वादरवाठपज्जम-वादरवणप्फदि-  
 पचेयसरीरपज्जचा चि ।

१३३६ बड्ढिअमिस्सं सम्पदाणमतं जहं एगसमओ, उक्कं वारस  
 सुहुत । आहारं आहारमिस्सं असखेमागहाणि अंतरं के ? जं एगसमओ,  
 उक्कं वासपुवत्त । एवमकसाय जहाक्खादसग्गे चि ।

१३३४ एकेन्द्रिये समी पवोकी अपेक्षा अन्तरकास सामान्य तिर्यकोक्ति समान है । इसी  
 प्रकार पृथिवीकायिक वादर पृथ्वीकायिक वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक,  
 सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक वादर जलकायिक वादर  
 जलकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त  
 अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक वादर अग्निकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म  
 अग्निकायिक पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त वायुकायिक, वादर वायुकायिक वादर  
 वायुकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त  
 वादर वनस्पतिकायिक मत्स्येश्वरी, वादर वनस्पतिकायिक मत्स्येश्वरी अपर्याप्त वनस्पतिकायिक,  
 वादर वनस्पतिकायिक वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म  
 वनस्पतिकायिक सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त निगोद वादर  
 निगोद वादरनिगोद पर्याप्त वादर निगोद अपर्याप्त सूक्ष्मनिगोद सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त और सूक्ष्म  
 निगोद अपर्याप्त जीवोक्ति जानना चाहिये ।

१३३५ समी बिक्खेन्द्रिये समी पवोकी अपेक्षा अन्तरकास पंचन्द्रिय तिर्यकोक्ति समान  
 जानना चाहिये । इसी प्रकार वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्नि-  
 कायिक पर्याप्त वादर वायुकायिक पर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक मत्स्येश्वरी पर्याप्त जीवोक्ति  
 जानना चाहिये ।

१३३६ त्रैकलोकमिषकाययोगिये समी पदवाक्य जीवोक्ति अपर्याप्त अन्तरकास एक समय  
 और एक अन्तरकास वादर सुहुत है । आहारकमययोगी और आहारकमिषकायवागयोगी  
 असंख्यातमागहानिवाले जीवोक्ति अन्तरकास कितना है ? अथवा अन्तरकास एक समय और  
 एक अन्तरकास अपर्याप्त है । इसी प्रकार अकयन्ती और यथाक्यातसंयत जीवोक्ति  
 जानना चाहिये ।

§ ३३७. अवगद० तिणि हाणि० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । एवं सुहुमसांपरा० ।

§ ३३८. आभिणि०—सुद०—ओहि० असंखे०भागहाणि० णत्थि अंतरं । संखे०भागहाणि०—संखेगुणहाणि० ज० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि । असंखे०गुणहाणी० ओघं । एवमोहिदंस०—सम्मादिदि ति । णवरि ओहिणाणि०—ओहिदंसणी० असंखे०गुणहाणि० उक्क० वासपुधत्तं । मणपज्ज० असंखे०भागहाणि०—संखे०भागहाणि० ओहि०भंगो । दोहाणि० अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं ।

§ ३३९ संजद०—सामाइय-छेद० असंखेज्जभागहाणी० णत्थि अंतरं । संखे०भागहाणि० मणपज्जवभंगो । दोहाणि० जह० एगसमओ, उक्क० छ मासा । परिहार०—संजदासंजद० असंखे०भागहा०—संखे०भागहाणी० आभिणि०भंगो ।

§ ३४०. सुकले० असंखेज्जभागहाणि० णत्थि अंतरं । सेसपदा० ओघं । खइय० संजदभंगो । णवरि संखेज्जभागहाणी० उक्क० छम्मासा । वेदय० सव्व-पदानमाभिणि०भंगो । उवसम० असंखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि ।

§ ३३७ अपगतवेदियोंमें तीन हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । इसी प्रकार सूक्ष्मसापरायिक सयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३८ आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । सख्यातभागहानिवाले और संख्यातगुणहानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है । तथा असख्यात गुणहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके असख्यात गुणहानिकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । मन पर्ययज्ञानियोंमें असख्यातभागहानि और सख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल अवधिज्ञानियोंके समान है । तथा दो हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है ।

§ ३३९ संयत, सामायिकसयत और छेदोपस्थापनासंयतोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । संख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । तथा दो हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासयतोंमें असख्यातभागहानि और सख्यात-भागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है ।

§ ३४० शुक्ललेख्यावालोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । तथा शेष पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल ओघके समान है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सयतोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सख्यातभागहानिवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सभी पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है । उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें असख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है ।

§ ३४१ जवनसहाहरियो उवसमसम्माइहिकाम्मि अणताणुर्बिधिसमोपण  
पिच्छदि वस्साहियाएण संखे० भागहाणी समदि सा एत्य कत्य बि बुत्ता कत्य बि ण बुत्ता  
तण धर्ण काउख एत्य संखेज्जभागहाणी भत्तव्वा । अयथा जवसमसेहीए दंसणतिपस्स  
टिडिपादसंभववत्तमस्सियूण सवममसम्माइहिकाम्मि सम्बत्थ सखज्जभागहाणी  
णिन्निमंक्रमणुगतव्वा । सासण० असत्ते० भागहा० न० पयसमओ, उक्क० पन्दिओ  
असत्त० भागो । एवं सम्मायि० । एवरि पवमेदा मत्थि ।

एवमंतराणुगमो समचो ।

§ ३४२ भाषाणुगमेण सम्बत्थ सन्नपदाए की भावो ? ओदइमो भावो ।

एवं भाषाणुगमो समचो ।

§ ३४३ अप्याबहुगालुगमेण दुविहो णिहेसो—ओपेण आदसेण य । तत्थ  
ओपेण सन्नत्थोका असंखे० गुणहाणि विहियिआ जीवा । संखे० गुणहाणि विह०  
जीवा असंख्य० गुणा । संखे० भागहाणि बि० ज वा संखे० गुणा । संखे० गुणवट्टि बि०  
जीवा असंख्यगुणा । संखज्जभागवट्टि बि० जीवा सखेज्जगुणा । असखेज्जभागवट्टि  
मीवा अणंतगुणा । अवट्टिदि बि० जीवा असखे० गुणा । असख० भागहाणि विहियिआ

§ ३४१ पतिवृत्तम आचार्ये उपक्रममन्वयट्टिके फलमे अनन्तानुपगमीकी विसंवाज्जना स्वीकार  
करत है, अतः इनके अभिप्रायसे उपक्रमसम्बन्धट्टियोंके संकषातमागदानि प्राप्त होनी है । यह यहाँ  
यहाँ पर कही गई है और कहीं पर नहीं कही गई है, इसलिये इसे स्वगत फल पर  
पर संख्यातमागदानि कहनी चाहिये । अथवा उपक्रममन्वये तब वस्तुमाहनीयका विनिर्माण  
संभव है अतः तब फलमात्र आशय करके उपक्रममन्वयट्टिके लक्ष्य संकषातमागदानि निर्दिष्ट  
जाननी चाहिये । साक्षात्तमन्वयट्टियोंमें अमंशानमागदानिपात्र जीवोंका रूपन्य अन्तरात्त एक  
समय और उन्मुख अन्तरात्त पल्यापमक अमंशानर्षे मागप्रमाण है । इसी प्रकार मन्वयमन्वयट्टि  
जीवोंके कहना चाहिये । इनका विधाना है कि इनके यह नियम पाय करत है । अथवा सामान्यमें  
असंख्यातमागदानि यह है और मन्वयमन्वयारम्भ असंख्यातमागदानि, संकषातमागदानि  
और संकषातगुणदानि इस प्रकार य तीन पर है ।

इस प्रकार मन्तराणुगम समान हुआ ।

§ ३४२ भाषाणुगमकी अपक्षा मन्त्र समा पशोंकी अपक्षा क्या भाव है । ओदयिकमाय है ।

इस प्रकार भाषाणुगम समान हुआ ।

§ ३४३, अस्यावहुगालुगमकी अपक्षा निर्णय प्रकरा है । आपनिर्णय और आपने निर्णय ।  
इनमेंसे आपकी अपक्षा अमंशानमागदानिपात्र जीव मन्त्रे पाय है । इनमें संकषातमागदानि  
पात्र जीव अमंशानमागदानि हैं । इनमें संकषातमागदानिपात्र जीव संकषातमागदानि हैं । इनमें संकषात  
गुणवट्टिपात्र जीव अमंशानमागदानि हैं । इनमें संकषातमागदानिपात्र जीव संकषातमागदानि हैं । इनमें  
अमंशानमागदानिपात्र जीव अमंशानमागदानि हैं । इनमें अमंशानमागदानिपात्र जीव अमंशानमागदानि

जीवा संखे०गुणा । एवं कायजोगि०-णवुंस०-चत्तारिकसाय०-अचक्खु—भवसि०-आहारि ति ।

§ ३४४ आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०-गुणवड्ढिवि० जीवा विसेसाहिया । संखे०भागवड्ढि-संखे०भागहाणिविहत्तिया जीवा दो वि सरिसा संखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढिवि० जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठिदवि० जीवा असंखे०गुणा । अमंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । एवं पढमाए पुढवीए सव्वपंचि०तिरिक्ख-मणुसअपज्ज-देव०-भवण०-वाण०-पंचिदियअपज्जत्ते ति । विदियाति जाव सत्तमि ति सव्वत्थोवा संखे०गुणवड्ढि-हाणिवि० जीवा दो वि सरिसा । संखे०ज-भागवड्ढि-हाणिविह० जीवा दो वि सरिसा संखे०गुणा । असंखे०जभागवड्ढिवि० जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठिदवि० जीवा असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा ।

§ ३४५ तिरिक्खा ओघं । एवरि सव्वत्थोवा संखे०जगुणहाणिविह० जीवा ति वत्तव्वं । एवमोराणियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद०-असंजद०-किण्ह-णील-काउ०-अभव०-मिच्छा०-असण्ण-अणाहारि ति ।

§ ३४६ मणुस्सेसु सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०गुण-

हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार काययोगी, नपुसरुदेवाले श्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३४४ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यातगुणवृद्धिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सख्यातभागवृद्धि और सख्यातभागहानिवाले जीव समान होते हुए भी सख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागवृद्धिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार पहली पृथ्वीके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तरदेव और पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सख्यातगुणवृद्धि और सख्यातगुणहानि इन दोनों पदवाले जीव समान होते हुए भी सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यातभागवृद्धि और सख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव समान होते हुए भी सख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागवृद्धिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं ।

§ ३४५ तिर्यचोंमें अल्पबहुत्व ओघके समान हैं । इतनी विशेषता है कि इनमें सख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं ऐसा कहना चाहिये । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३४६ मनुष्योंमें असख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यातगुणहानि-

हाणिषि० जीवा असंखे० गुणा । संखे० गुणवद्विषि० जीवा भित्तेसाहिया । संखे०  
मागवद्वि हाणिषि० जीवा सरिसा संखे० गुणा । असंखे० मागवद्विषि० जीवा असंखे०  
गुणा । अवद्विद्वि० जीवा असंखे० गुणा । असंखे० भागहाणिषि० जीवा संखे० गुणा । एवं  
पंचि० पंचि० पञ्च० इत्थि पुरिस० सण्णि सि । मणुसपञ्च-मणुसिणीसु एवं चेव ।  
अपरि तम्मि असंखे० गुणं तम्मि संखेज्जगुणं कायम्भं ।

§ ३४७ जोइत्थियादि आष सहस्सारे ति विदियपुटविमंगा । भाणदादि जाय  
अवराइदं ति सम्बत्थोवा संखे० भागहाणिषि० जीवा । असंखे० भागहाणिषि० जीवा  
असंखे० गुणा । एवं संनदानां भदानं । सम्बद्धे सम्बत्थोवा संखे० भागहाणिषि० जीवा ।  
असंखे० भागहाणिषि० जीवा संखे० गुणा । एवं परिहार० ।

§ ३४८ पइदिपसु सम्बत्थोवा संखे० गुणहाणिषि० जीवा । संखे० भागहाणिषि०  
जीवा संखे० गुणा । असंखे० मागवद्विषि० जीवा अणंतगुणा । अवद्वि० जीवा असंखे०  
गुणा । असंखे० भागहाणिषि० जीवा संखे० गुणा । एवं सम्बत्थोवा वणप्फदि० वादर  
वणप्फदि० वादरवणप्फदिपन्नचापन्नच-सुहुमवणप्फदि० सुहुमवणप्फदिपन्नचापन्नच  
मिगाद० वादरणिगोद० वादरणिगोदपन्नचापन्नच सुहुमणिगोद सुहुमणिगोद  
पन्नचापन्नचा सि ।

भाते जीव असंख्यातगुण हैं । इनसे संख्यातगुणवद्विषाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे  
संख्यातमागवद्वि और संख्यातभागहाणि इन दोनों वक्त्राले जीव समान होते हुए भी संख्यातगुणे  
हैं । इनसे असंख्यातमागवद्विषाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविमर्शाले जीव असं  
ख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातमागहाणिषाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रि  
य पञ्च स्त्रीवक्त्राले पुद्गलवक्त्राले और संखी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्यपर्वत और  
मनुष्यनिर्बोमें इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहाँ असंख्यातगुणा है वहाँ इनके  
संख्यातगुणा करना चाहिये ।

§ ३४९ अतोत्थिपयोसे लेकर सम्बन्धारतक दूसरी पृथिवीके समान रंग है । आन्त कल्पसे  
लेकर अपराजित तक संख्यातमागहाणिषाले जीव सबसे बड़े हैं । इनसे असंख्यातमागहाणिषा  
ले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार संनदानां भदानं जानना चाहिये । सर्वाभेदिसिद्धिसे संख्यात  
भागहाणिषाले जीव सबसे बड़े हैं । इनसे असंख्यातमागहाणिषाले जीव संख्यातगुणे हैं ।  
इसी प्रकार पण्डितपण्डितसंनदानां भदानं जानना चाहिये ।

§ ३५० पंचेन्द्रियोंमें संख्यातगुणहाणिषाले जीव सबसे बड़े हैं । इनसे संख्यातमागहाणि  
षाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातमागवद्विषाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे अवस्थित-  
विमर्शाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातमागहाणिषाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी  
प्रकार सभी पंचेन्द्रिय वनस्पतिअधिक, वादरवनस्पतिअधिक, वादर वनस्पतिअधिक पर्याप्त, वादर  
वनस्पतिअधिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिअधिक, सूक्ष्म वनस्पतिअधिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति  
अधिक अपर्याप्त मिगोद, वादर मिगोद वादर मिगोद पर्याप्त वादर मिगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म  
मिगोद सूक्ष्म मिगोद पर्याप्त और सूक्ष्म मिगोद अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।



§ ३४९ सव्वविगल्लिदिएसु सव्वत्थोवा संखे० गुणहाणिविहत्तिया जीवा । संखे० भागवट्ठि-हाणिवि० जीवा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा । असंखे० भागवट्ठिवि० जीवा असंखे० गुणा । अवट्ठिदवि० जीवा असंखे० गुणा । असंखे० भागहाणिवि० जीवा संखे० गुणा । चदुण्हं कायाणमेइंदियभंगो । णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे० गुणं कायव्वं । तस०-तसपज्जत्ताणमोघभगो । णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे० गुणं । एवं तस० अपज्ज० । णवरि असंखे० गुणहाणी गत्थि ।

§ ३५० पंचमण०-पंचवचि० सव्वत्थोवा असंखे० गुणहाणिवि० जीवा । सेसं विदियपुढविभंगो । एवमोरालि० । णवरि जम्मि असंखे० गुणं तम्मि अणंतगुणं कायव्वं । वेउच्चिय० विदियपुढविभंगो । वेउच्चियमिस्स० पढमपुढविभंगो । आहार०-आहारमिस्स०-अकसा०-जहानखाद० उवसम०-सासण० गत्थि अप्पावहुअं ।

§ ३५१ अवगद० सव्वत्थोवा संखे० गुणहाणि० जीवा । संखे० भागहाणि० जीवा संखे० गुणा । असंखेज्जभागहाणि० जीवा संखे० गुणा । एवं सुहुमसांपरा० ।

§ ३५२ आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणि० जीवा । संखेज्जगुणहाणि० जीवा असंखे० गुणा । संखे० भागहाणि० जीवा संखे० गुणा । असंखे०

§ ३४६ सभी चिकलेन्द्रियोंमें सख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यात-भागवट्ठि और सख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव परस्पर समान होते हुए संख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागवट्ठिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । चारों कायवाले जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान भग है । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंके जिस स्थानमें अनन्तगुणा कहा है वहा इनके असख्यातगुणा करना चाहिये । त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके ओघके समान भग है । इतनी विशेषता है कि ओघमें जहा अनन्तगुणा है वहा इनके असख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातगुणहानि नहीं हैं ।

§ ३५० पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंमें असख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । शेष कथन दूसरी पृथिवीके समान है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनोयोगी और वचनयोगियोंमें जहाँ असख्यातगुणा है वहाँ औदारिककाययोगियोंके अनन्तगुणा करना चाहिये । वैक्रियिककाययोगियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भग है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें पहली पृथिवीके समान भग है । आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकपायी, यथाख्यातसयत, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पवहुत्वन नहीं है ।

§ ३५१ अपगतवेदियोंमें सख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यात-भागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सूक्ष्मसापरायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३५२ आभिनिवेशिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यातगुणहानिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सख्यातभाग-

भागहाणिवि० जीवा असंख्ये० गुणा । एवमोहिदंसण०-सुक्कखे०-सम्मादिदि धि ।  
मणपत्तम्व० एव चेव । एवरि मम्म असंख्ये० गुणं तम्म संख्ये० गुणं कायव्व । एवं  
संब्रद०-सामाहय-भेदो० ।

§ ३५३ चक्खु० सच्चस्वोवा असंख्येज्जगुणहाणिविहसिया जीवा । सखो०  
गुणहाणिवि० जीवा असंख्ये गुणा । संखे० गुणवट्ठुवि० जीवा विसेसाहिया । संखेज्ज  
मागवट्ठुहाणिवि० जीवा दो वि तुम्हा संख्येज्जगुणा । असंखो० भागवट्ठु० जीवा  
असंख्ये० गुणा । अवट्ठि० जीवा असंख्येज्जगुणा । असंख्ये० मागहाणिवि० जीवा संख्ये०  
गुणा । विमंग०-वेड०-पम्प० विदियपुडविभंगो ।

§ ३५४ रुइय० मणपत्तम्वमगा । एवरि असंख्ये० भागहाणि० असंख्ये० गुणा पि  
वत्तव्वं । वदय० सच्चस्वोवा संख्ये० गुणहाणिवि० जीवा । संख्ये० मागहाणिवि० जीवा  
संख्ये० गुणा । असंख्ये० मागहाणिवि० जीवा असंख्ये० गुणा । एवं सम्मामि० ।

एवं वट्ठी समत्ता ।

§ ३५५ संपहि हाणपरखणे कीरमाणे सत्तरिसागरोबमकोटाकोटीओ समयूण  
हुममयूणादिकमेण ओदारेयम्माओ भाव णिब्बियप्यमंतोकोटाकोटि पि । तदा

हानिवाले जीव संख्यातगुण हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुण हैं । इसी  
प्रकार अवस्थितजीववाले सुखसंज्ञावाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिये । मनःपद  
ज्ञानियोंके इसी प्रकार ज्ञानना चाहिये । पर उनके इतनी विवेचना है कि आमिनिवापिच्छानी आदिके  
असंख्यातगुण हैं वहाँ इनके संख्यातगुण करना चाहिये । इसी प्रकार संवत्, सामाधिकसंवत्  
और वेदोपस्थापनासंवत् जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

§ ३५६ चक्षुस्सन्नासोमि असंख्यातगुणहानिवाले जीव सवसे बाह हैं । इनसे संख्यात-  
गुणहानिवाले जीव असंख्यातगुण हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव विसं अचिक हैं । इनसे  
संख्यातमागवृद्धि और संख्यातमागहानि इन दोनों पदवाले जीव परस्पर समान होते हुए भी  
संख्यातगुण हैं । इनसे असंख्यातमागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुण हैं । इनसे अवस्थित  
विमक्तिवाले जीव असंख्यातगुण हैं । इनसे असंख्यातमागहानिवाले जीव संख्यातगुण हैं ।  
विमंगद्वानी पातलेइयावाले और पदलेइयावाले जीवोंमें वृत्तरी वृद्धिबोध समान भंग है ।

§ ३५७ आधिकसम्यग्दृष्टियोंमें अनापर्ययज्ञानियोंके समान भंग है । इतनी विचरता है कि  
इनमें असंख्यातमागहानिवाले जीव असंख्यातगुण हैं ऐसा कहना चाहिये । वरुणसम्यग्दृष्टियोंमें  
संख्यातगुणहानिवाले जीव सवसे बोधे हैं । इनसे संख्यातमागहानिवाले जीव संख्यातगुण हैं ।  
इनसे असंख्यातमागहानिवाले जीव असंख्यातगुण हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिच्छादृष्टि जीवोंके  
ज्ञानना चाहिये ।

इस प्रकार वृद्धि अनुयागद्वार समाज हुआ ।

§ ३५८ स्थानकी प्रत्यक्षा फलत समय एक समय कम वा समय कम इस क्रमसे सत्तर  
कोटाकोटी सागरप्रमाण स्थितिके निर्बिच्छन्न अमृतकाटाकोटी सागरप्रमाण प्रज्ञा होने तक कम

§ ३४९ सव्वविगल्लिदिण्णु सव्वत्थोवा संखे० गुणहाणिविहत्तिया जीवा । संखे० भागवट्ठि-हाणिवि० जीवा दो वि तुल्ला संरोज्जगुणा । अमंखे० भागवट्ठिवि० जीवा असंखे० गुणा । अवट्ठिदवि० जीवा अमंखे० गुणा । असंखे० भागहाणिवि० जीवा संखे० गुणा । चट्ठण्हं कायाणमेइंदियभंगो । णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे० गुणं कायव्वं । तस०-तसपज्जत्ताणयोवभंगो । णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे० गुणं । एवं तस० अपज्ज० । णवरि अमंखे० गुणहाणी णत्थि ।

§ ३५० पंचमण०-पंचवचि० सव्वत्थोवा अमंखे० गुणहाणिवि० जीवा । सेसं विदियपुढविभंगो । एवमारालि० । णवरि जम्मि असंखे० गुणं तम्मि अणंतगुणं कायव्वं । वेउच्चिय० विदियपुढविभंगो । वेउच्चियमिस्स० पढमपुढविभंगो । आहार०-आहारमिस्स०-अकसा०-जहाक्खाद० उवसम०-सासण० णत्थि अप्पावहुअं ।

§ ३५१ अवगद० सव्वत्थोवा संखे० गुणहाणि० जीवा । मंखे० भागहाणि० जीवा संखे० गुणा । अमंखेज्जभागहाणि० जीवा संखे० गुणा । एवं सुद्धमसांपरा० ।

§ ३५२ आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणि० जीवा । सखेज्जगुणहाणि० जीवा असंखे० गुणा । सखे० भागहाणि० जीवा संखे० गुणा । असखे०

§ ३४६ सभी विकलेन्द्रियोंमें सख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सख्यात-भागवृद्धि और सख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव परस्पर समान होते हुए सख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागवृद्धिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यात-गुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । चारों कायवाले जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान भग है । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंके जिस स्थानमें अनन्तगुणा कहा है वहा इनके असख्यातगुणा करना चाहिये । त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके थोचके समान भग है । इतनी विशेषता है कि ओघमें जहा अनन्तगुणा है वहा इनके असख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असख्यातगुणहानि नहीं हैं ।

§ ३५० पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंमें असख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । शेष कथन दूसरी पृथिवीके समान है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनोयोगी और वचनयोगियोंमें जहाँ असख्यातगुणा है वहाँ औदारिककाययोगियोंके अनन्तगुणा करना चाहिये । वैकियिककाययोगियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भग है । वैकियिकमिश्रकाययोगियोंमें पहली पृथिवीके समान भग है । आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकपायी, यथाख्यातसयत, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पवहुत्व नहीं है ।

§ ३५१, अपगतवेदियोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यात-भागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे असख्यातभागहानिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सूद्धमसांपरायिकसयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३५२ आभिनिशोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातगुणहानिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभाग-

भागहाणिविह० जीवा असंख्ये०गुणा । एवमोदिवसण०-सुखकल०-सम्मादिदि ति ।  
मणपञ्चर० एव चेत् । पञ्चरि नम्मि अमम्ये०गुणं तम्मि संख्ये०गुणं कायय । एव  
संघद०-सामाहय-धदो० ।

§ ३५३ चरुदु० सन्वत्योवा असंख्येज्जगुणहाणिनिहत्तिया जीवा । सखा०  
गुणहाणिवि० जीवा असंख्ये०गुणा । संख्ये०गुणवट्टि० जीवा विसेमाहिया । संख्येज्ज  
भागवट्टि-हाणिवि० जीवा दो वि सुख्ये संख्येज्जगुणा । असंख्ये०भागवट्टि० जीवा  
असंख्ये०गुणा । अवट्टि० जीवा असंख्येज्जगुणा । असंख्ये०भागहाणिवि० जीवा संख्ये०  
गुणा । विमंग०-तउ० एम्म० विदियपुडविमंगो ।

§ ३५४ खइय० मणपञ्चमया । पञ्चरि असंख्ये०भागहाणि० अमम्ये०गुणा ति  
चरुदु० । वेदय० सन्वत्यावा संख्ये०गुणहाणिवि० जीवा । मंग्ये०भागहाणिवि० जीवा  
संख्ये०गुणा । असंख्ये०भागहाणिवि० जीवा असंख्ये०गुणा । एवं सम्मादि० ।

एव चरुदी समप्ता ।

§ ३५५ संपदि द्वापपञ्चम्ये कीरमाण सचरिसागरोवमकाहाकादीमा समयूण  
दुसमयूणादिकमेण ओदारयम्माओ जाव णिन्वियप्पअतोकोहाको ति । तन्ना  
हानिवासे जीव संघातगुण है । इनसे अमंग्यातभागहानिवासे जीव असंख्यातगुण है । इन्हीं  
प्रकार अवधिद्वयवासे अक्षय्येयवासे और सम्यग्दृष्टि जीवों के ज्ञानता चाहिये । मनापयप-  
मानियों के इसी प्रकार ज्ञानता चाहिये । पर उनके इतनी विवेचना है कि आध्यात्मिकता के आदिक  
वहाँ असंख्यातगुणा है वहाँ इनके संख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार संयत, सामाधिक्यमेव  
और देशपस्थापनासंयत जीवों के ज्ञानता चाहिये ।

§ ३५६ चरुदुसमयूणादिमं अमंग्यातगुणहानिवासे जीव सरसे थाइ है । इनमे संख्यात  
गुणहानिवासे जीव असंख्यातगुण है । इनमे संख्यातगुणद्विषासे जीव विचार अधिक है । इनमे  
संख्यातभागवट्टि और संख्यातभागहानि इन दोनों पक्षों जीव परस्पर समान शत्रु हुए भी  
संख्यातगुण है । इनमे असंख्यातभागवट्टिवासे जीव असंख्यातगुण है । इनमे अवस्थित  
विमंग्यासे जीव असंख्यातगुण है । इनमे अमंग्यातभागहानिवासे जीव संख्यातगुण है ।  
विमंग्यानी वातय-वाक्य और पक्षलपथासे जीवोंमे दूसरी वृथिवाक समान भंग है ।

§ ३५७ पाण्डित्यसम्यग्दृष्टियोंमें अमंग्यातगुणहानिवासे जीव असंख्यातगुण है । इनमें विचारता है कि  
इन्हीं अमंग्यातभागहानिवासे जीव असंख्यातगुण है । इनमें विचारता है कि  
संख्यातगुणहानिवासे जीव सख्ये थाइ है । इनमे संख्यातभागहानिवासे जीव संख्यातगुण है ।  
इनमे अमंग्यातभागहानिवासे जीव असंख्यातगुण है । इनमें प्रकट सम्यग्मिप्यादृष्टि जीवों के  
ज्ञानता चाहिये ।

इस प्रकार वृद्धि अनुशासनार समाप्त हुआ ।

§ ३५८ स्थानता प्रकृष्टा करत समय एक समय कम वा समय कम इन समय मन्तर  
वाहाकादी मागपञ्चाय स्थिति निर्णयन अमंग्याकाहाकादी मन्तर-माग्य आय हान नक कम

ध्रुवद्विदीए ददसमुत्पत्तियं कादूण गिरतरमोदारेद्वं जाव एइंदियध्रुवद्विदि ति ।  
 तदो एइंदियध्रुवद्विदिमग्मिभणियद्विखवणद्विदिस्तकम्मं धेत्तूण सांतरणिरंतरकमेण  
 ओदारेद्वं जाव मुहूमसांपराडयचरिमसमयम्मि एगा द्विदि ति । एवमोदारेदे मूल  
 पयडिट्टाणाणि सव्वाणि ममुप्पण्णाणि होति ।

एव मूलपयडिट्टिदिविहत्ती समत्ता ।

करना चाहिये । तदनन्तर ध्रुव स्थितिकी हतसमुत्पत्ति करके एकेन्द्रियोंकी ध्रुव स्थिति प्राप्त होने  
 तक क्रम करते जाना चाहिये । तदनन्तर एकेन्द्रियोंकी ध्रुवस्थितिके समान अनिवृत्तिकरणचक्रकी  
 सत्तामें स्थित स्थितिको ग्रहण करके सान्तर-निरन्तर क्रमसे इमे सूक्ष्मसापराधिक गुणस्थानके  
 अन्तिम समयमें प्राप्त होनेवाली एक स्थितिके प्राप्त होनेतक क्रम करते जाना चाहिये । इस प्रकार  
 प्रारम्भमें स्थितिके उत्तरोत्तर कम करने पर सभी मूलप्रकृतिस्वित्तिस्थान प्राप्त हो जाते हैं ।

इस प्रकार मूलप्रकृति स्थितिबिभक्ति समान हुई ।

उत्तरपयद्विदिविहृत्ती

❁ उत्तरपयद्विदिविहृत्तिमणुमग्नस्सामो ।

§ ३५६ एवं जइसहाइरियस्स पइज्जावणं । ज चेसा पइज्जा पिप्फसा,

सिस्सार्णं पइविज्जमाणअहियारावगमणफलसादो । अहियारो किमिदि जाणाविज्जदे ?  
सिस्समणोगयसंदइविणासणह ।

❁ तं जहा । तत्थ अइपदं—एया द्विदी द्विविहृत्ती अपेयाओ द्विदीओ  
द्विविहृत्ती ।

§ ३५७ पइविज्जमाणद्विदिनिहृत्तीए एवमहपदं जइसहाइरियण किमह  
पइविदं ? द्विविहृत्तिसरूवावगमणह । एया कम्मस्स द्विदी एया द्विदी णाम ।  
कयमणेयाणं पदेसमेवेण मिप्पणं द्विदीणमेयत्तं ? ज, पयद्विभावेण सम्मपदे  
साणमेयत्तुपलमादो । परिमणितेयद्विदिपरमाणुखं सम्मसिं कालमस्सिइण सरिसत्त  
वंसजादो वा एयत्तं । एसा एगा द्विदी द्विविहृत्ती होदि । समयूण-दुसमयूणादि

उत्तरपयद्विदिविहृत्तिविमक्ति

❁ अब उत्तरमकृति स्थितिविमक्तिका विचार करत हैं ।

§ ३५६ एह यत्तिवृत्त आचार्यका प्रतिष्ठापन है । यदि कोई कहे कि यह प्रतिष्ठा निष्प्रज्ञ  
है सा भी बात नहीं है क्योंकि शिष्योंको यह जानेवाले अभिस्तरका ज्ञान करना इसका फल है ।  
शंका—अधिकारक ज्ञान क्यों करताया जाता है ?

समाधान—शिष्योंके मनमें उत्पन्न हुए सन्देहको नष्ट करानके लिये अधिकारक ज्ञान  
कराया जाता है ।

❁ जो इस प्रकार है । उसके विषयमें यह अर्थपद है—एक स्थिति भी  
स्थितिविमक्ति है और अनेक स्थितियों भी स्थितिविमक्ति हैं ।

§ ३५ शंका—कही जानवासी स्थितिविमक्तिका यह अवयव यत्तिवृत्त आचार्यने  
किसलिए कहा ?

समाधान—स्थितिविमक्तिके स्वरूपका ज्ञान करानके लिये यत्तिवृत्त आचार्यने यह  
अवयव कहा है ।

कमकी एक स्थितिको एक स्थिति कहते हैं ।

शंका—प्रदेशोंके भेदसे भेदको प्राप्त हुई अनेक स्थितियोंमें एकत्र कहे वन सकता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि प्रकृति सामान्यकी अपेक्षा सभी प्रदेशोंमें एकत्र पाया जाता है ।  
अथवा अन्तिम नियेककी स्थितिको प्राप्त हुए सब परमाणुओंमें बालकी अपेक्षा समानता होती  
जाती है अतः उनमें एकत्र वन जाता है ।

एह एक स्थिति भी स्थितिविमक्ति होती है क्योंकि एक समय कम और दो समय कम

द्विदीहितो भेदुवलभादो । अथवा मुहुमसांपराड्यचरिमसमयपरमाणुपोगलकसंधकालो  
 एया द्विदी णाम । तस्म एगसमयणिप्पण्णत्तादो । एसा वि द्विदी द्विदिविहत्ती होदि,  
 दुसमयादिद्विदीहितो पुग्गभूदत्तादो । तत्थेव भिण्णपरमाणुद्विदमएहितो अप्पिद-  
 कालसमयस्स पुग्गभावुवलभादो वा सगाहारपरमाणुम्मि पोगलकसंधे वावड्ढिद-  
 तिकालगोयराणंतपज्जएहितो एदिस्से द्विदीए पुग्गभावदंसणादो वा विहत्तिचं जुज्जदे ।  
 दच्चद्वियण्यमस्सिदूण एसा पख्खणा कदा । उक्खस्स-समउणुक्खस्स-दुममउणुक्खस्स-  
 दिभेदेण अणेयाओ द्विदीओ ताओ वि द्विदिविहत्ती होति, समाणासमाणद्विदीहितो  
 परमाणुपोगलभेदेण च भेदुवलभादो । एदमट्ठपदं पज्जवद्वियसिस्साणुग्गहट्ठं कदं ।

§ ३५८ का द्विदी णाम ? कम्मसरूवेण परिणटाणं कम्मइयपोगलकसंधाणं कम्म-  
 भावमच्छडिय अच्छणकालो द्विदी णाम । उत्तरपयडीणं द्विदी उत्तरपयडिद्विदी ।  
 का उत्तरपयडी ? मूलपयडीए अवांतरपयडीओ । कथं मदि-मुद-ओहि-मणपज्जव-  
 केवलणाणावरणीयाणं पुग्गभूदणाणेषु वावटाणं पयडीणमेयत्त ? ण, णाणसामण्णेण  
 सव्वेसिं णाणाणमेयत्तामुवगयाणमावरणाण पि एयत्ताविरोहादो ।

आदि स्थितियोसे इममे भेद पाया जाता है । अथवा सूक्ष्मसापरायिक गुणस्थानक अन्तिम  
 समयमे पुद्गल परमाणुओंके स्कन्धका जो काल है वह एक स्थिति कहलाती है, क्योंकि वह काल  
 एक समय निष्पन्न है । यह स्थिति भी एक स्थितिभिक्ति होती है, क्योंकि यह दो समय आदि  
 स्थितियोसे भिन्न है । अथवा उसी सूक्ष्मसापरायिक गुणस्थानके अन्तिम समयमें भिन्न परमाणुओं  
 में स्थित समयोंसे विवक्षित कालमय प्रत्यक्ष पाया जाता है । अथवा अपने आधारभूत परमाणुओं  
 में या पुद्गलस्कन्धमें अरक्षित त्रिकाशकी विषयभूत अनन्त पर्यायोसे यह स्थिति प्रत्यक्ष देखी  
 जाती है, इसलिये इसमे विभक्तिपना बन जाता है । यह कथनी द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे की है ।  
 तथा जो उत्कृष्ट, एक समय कम उत्कृष्ट और दो समय कम उत्कृष्ट आदिके भेदसे अनेक  
 स्थितियाँ हैं वे भी स्थितिभिक्ति कहलाती हैं, क्योंकि इनमे समान और असमान स्थितियोंकी  
 अपेक्षा तथा पुद्गलपरमाणुओंके भेदकी अपेक्षा भेद पाया जाता है । यह अर्थपद पर्यायार्थिक  
 बुद्धिवाले शिष्योंके उपकारके लिये किया है ।

§ ३५८ शंका—स्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान—कर्मरूपसे परिणत हुए पुद्गलकर्मस्कन्धोंके कर्मयनेको न छोड़कर रहनेके कालक  
 स्थिति कहते हैं ।

उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितिको उत्तर प्रकृतिस्थिति कहते हैं ।

शंका—उत्तर प्रकृति किसे कहते हैं ?

समाधान—मूल प्रकृतिकी अवान्तर प्रकृतियोंको उत्तरप्रकृति कहते हैं ।

शंका—भिन्न भिन्न ज्ञानोंमें व्यापार करनेवाले मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि-  
 ज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरणरूप प्रकृतियोंमें एकपना कैसे बन  
 सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा सभी ज्ञान एक हैं, अतः उनकोआवरण

ॐ एदेण अहपदेण ।

३५६. एदमहपदं कादूण उत्तरिमचउवीसअणियोगहारेहि टिडिविहरीए मखुगमं कस्सामा । तेसिं चउवीसण्हमणिओगहाराणं शुण्णिसुत्तमि पुब्बं पस्विदाणं पासमयाणुमाहद पुखरवि णामणिदेसो कीरदे । तं जहा—अद्वाधेदो सम्भट्टिडिविहरी गोसम्भट्टिडिविहरी उक्कस्सट्टिडिविहरी अणुक्कस्सट्टिडिविहरी जहण्णट्टिडिविहरी अमहण्णट्टिडिविहरी सादियविहरी अयादियविहरी धुवट्टिडिविहरी अइधुवट्टिडिविहरी एयवीनेण सामिणं कालो अंतरं णाणाजीवेहि मंगविअओ भागामागो परिमाणं खेचं पोसणं कालो अंतरं सण्णियासो भावो अप्पावहुअं यदि २४ । सुजगार पदणिकखेव बट्टि-हाणाणि चि एदाणि चचारि अणियोगहाराणि, एदेहि चि टिडिविहरी पस्विद्धदि । अट्टावीस अणियांगहाराणि किण्ण होंति चि धुत्ते ण, चउवीसअणियोगहारेसु चेह एदेसिमंतम्भापादो । तं जहा—अमहण्णाणुक्कस्स टिडिविहरीसु सुजगारविहरी पविट्ठा उत्थ उक्कस्सणोसकणविहाणपरूषणादो । सुजगारविसेसो पदणिकखेवो, जहण्णुक्कस्सबट्टिहाणिपरूषणादो । पदणिकखेव विसेसो वट्टी, बट्टिहाणीणं भेदपरूषणादो । बट्टिविसेसो हाणं, तत्थतणअवांतर भेदपरूषणादो । तदो टिडिविहरीए चउवीस चेव अणियोगहाराणि होंति चि सिद्ध ।

अनबासे कर्मोको मी एक माननेमें कोई विरोध नहीं जाता है ।

ॐ इस अर्थपदको अनुसार स्थितिबिभक्तिका अनुगम करते हैं ।

§ ३५६. इस अर्थपदका आश्रयन लेकर आगे अरे ज्ञानेवासे चौबीस अनुयोगद्वारोंके द्वारा स्थितिबिभक्तिक अनुगम करते हैं । ये चौबीस अनुयोगद्वार अस्मिन्मूर्ते परसे अरे वा मुक्ते हैं फिर मी वास्तवताके उपकारक लिये बनका फिरसे नामनिर्देश करते हैं । वा इस प्रकार है—अद्वाधेदो, सभैस्थितिबिभक्ति नोसवैस्थितिबिभक्ति उत्तमस्थितिबिभक्ति, अनुत्तमस्थितिबिभक्ति अपन्यस्थितिबिभक्ति, असपन्यस्थितिबिभक्ति साविस्थितिबिभक्ति, अनाविस्थितिबिभक्ति, प्रवस्थितिबिभक्ति अप्रवस्थितिबिभक्ति एक बीबकी अपेक्षा स्वामित्य अल, अमर, माना बीबोंकी अपेक्षा मंगविअओ, भागामाग परिमाण क्षेत्र, स्पष्टन, अल, अमर, सन्निधन, भाव और अस्पष्टत्व ।

संज्ञ—सुजगार, पदनिशेष वृद्धि और स्थान से चार अनुयोगद्वार और हैं क्योंकि इनके द्वारा मी स्थितिबिभक्तिक कथन किया जायगा, अतः अद्वाधेद अनुयोगद्वार क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि चौबीस अनुयोगद्वारोंमें ही उनका समावेश हो जाता है । यथा—जबजब्य और अनुत्तम स्थितिबिभक्तियोंमें सुजगार स्थितिबिभक्तिका अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि उसमें उत्कृष्ट और अपकर्षण विधिका कथन किया गया है । तथा सुजगार क्षेत्रपद पर निवेश करते हैं क्योंकि उसमें अपन्य और उत्कृष्टरूप वृद्धि और हानिक कथन किया गया है । पदनिशेष का एक विशेष वृद्धि है क्योंकि इसमें वृद्धि और हानिक भेदोंका कथन किया गया है । तथा वृद्धिका एक विशेष स्थान है, क्योंकि इसमें स्थानगत अभांतर भेदोंका कथन किया गया है । इसलिये स्थितिबिभक्तिने चौबीस ही अनुयोगद्वार होते हैं यह सिद्ध हुआ ।



### ❀ प्रमाणगुणसो ।

§ ३६०. कीरदे इदि एत्थ अज्झाहारो कायव्वो, अण्णहा सुत्तहाणुववत्तीदो । चववीसअणियोगदारेसु ताव उत्तरपयडीणमद्दाछेदं भणामि ति वुत्तं होदि । पढम-मद्दाछेदो चेव किमहं वुच्चदे ? ण, अणवगयअद्दाछेदस्स उवरिमअणियोगदाराणं परुवणाणुववत्तीदो ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ पडिबुण्णाओ ।

§ ३६१. एसो अद्दाछेदो एगसमयपवद्धमस्सिदूण परुविदो ण णाणासमय-पवद्धे; तत्थ तिण्णिभंगप्पसंगादो । एगसमयपवद्धस्से त्ति कथं णव्वदे ? अरुम्मसरु-वेण ट्ठिदाणं कम्मइयवग्गणक्खंधाणं मिच्छत्तादिपच्चएहि मिच्छत्तकम्मसरुवेण अक्कमेण परिणमिय सव्वजीवपदेसेसु संबंधाणं समयाहियसत्तवाससहस्समाटिं कादूण गिरं-तरं समयुत्तरादिकमेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीमेत्तट्ठिदिदंमणादो । जम्मि समय-पवद्धे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिकम्मक्खंधा अत्थि तत्थ एगसमयमादिं कादूण जाव सत्तवास-सहस्साणि त्ति एदेसु ट्ठिदिविसेसेसु एगो वि कम्मक्खंधो एत्थि त्ति कुदो णव्वदे ?

❀ अब प्रमाणका अनुगम करते है ।

§ ३६० 'प्रमाणगुणसो' इस सूत्रमे 'कीरदे' क्रियाका अध्याहार कर लेना चाहिये, अन्यथा सूत्रका अर्थ नहीं बन सकता है । चौबीस अनुयोगद्वारोंमेसे पहले उत्तर प्रकृतियोंके अद्दाछेद अर्थात् कालका कथन करते हैं यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका—सबसे पहले अद्दाछेदका ही कथन किसलिये किया जा रहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अद्दाछेदका ज्ञान किये बिना आगेके अनुयोगद्वारोंका कथन नहीं बन सकता है, अतः सबसे पहले अद्दाछेदका कथन किया जा रहा है ।

❀ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिनिमित्त पूरी सत्तर कोडाकोडी सागर है ।

§ ३६१ यह अद्दाछेद एक समयप्रवद्धकी अपेक्षा कहा है नाना समयप्रवद्धोंकी अपेक्षा नहीं, क्योंकि नाना समयप्रवद्धोंकी अपेक्षा अद्दाछेदके कथन करने पर तीन भग प्राप्त होते हैं ।

शंका—यह स्थिति एक समयप्रवद्धकी है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि जो कर्मणवर्गणास्कन्ध अकर्मरूपसे स्थित हैं वे मिथ्यात्वादिक कारणोंसे मिथ्यात्वकर्मरूपसे एक साथ परिणत होकर जब सम्पूर्ण जीव प्रदेशोंमें सम्बद्ध हो जाते हैं तब उनकी एक समय अधिक सात हजार वर्षसे लेकर समयोत्तरादि क्रमसे निरन्तर सत्तर कोडा कोड़ी सागर प्रमाण स्थिति देखी जाती है । इससे जाना जाता है, कि यह स्थिति एक समय-प्रवद्धकी है ।

शंका—जिस समयप्रवद्धमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कर्मस्कन्ध हैं वहाँ प्रथम समयसे लेकर सात हजार वर्ष प्रमाण स्थितिविशेषोंमें एक भी कर्मस्कन्ध नहीं है यह किस प्रमाण

मिच्छत्तस्त सचवाससहस्ताणि सक्तस्सिया आवाहा आवाहणिया कम्महिदी कम्म  
खिसम्भो चि महारंभमुत्तादो । ए च सम्भासु हिदीसु सचवाससहस्ताणि पेय आवाहा  
होदि चि णियमो; एगावाहाकंदयमेत्तहिदीसुचणियमुत्तमादो । आवाहाकंदपण्ण-  
ज्जकस्सहिदीप समयूयसचवाससहस्ताणि आवाहा होदि चि एयं जाणिदूय गेयम्भं  
जाव पुबहिदि चि ।

❖ एयं सम्मत्त—सम्माभिच्छत्ताण । जवरि अंतोमुहुत्तणाभो ।

§ ३६२ एदाखि ये चि कम्माणि जेण ज बंधपयबीओ तेण एदासिमुक्कस्स-  
हिदी सचरिसागरोरुमकोडाकाटीओ अंतोमुहुत्तणाभो होदि । बंधामावे कयमेदासि  
दोणं पयबीयमुक्कस्सहिदीप वा समुप्पत्ती ? मिच्छत्तसंकमादो । सं जहा—पढमसम्मत्त-  
गाइयपढमसमए तिहि करणपरिणामेहि तिहाविहत्तमिच्छत्तकम्मसेण अट्टाबीससंत-  
कम्मियमिच्छाहिदिना बद्धमिच्छत्तमुक्कस्सहिदिखा अंतोमुहुत्तपविहत्तगेण पुणो सम्मत्त-

से जाना जाता है ?

समाधान— मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आवाधा सात हजार वर्ष प्रमाण है और आवाधासे मूल  
कर्मस्विति प्रमाण कर्मनिदेक है महाकर्मके इस सूत्रसे जाना जाता है कि जिस समयप्रसंगमें  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कर्मस्वत्व है वहाँ प्रथम समयसे लेकर सात हजार वर्ष प्रमाण  
स्थितिके भेदोंमें एक भी कर्मस्वत्व नहीं है ।

परिच्छा जाव कि समस्त स्थितियोंमें सात हजार वर्ष प्रमाण ही आवाधा होती है ऐसा  
नियम है सो भी बात नहीं है क्योंकि एक आवाधाकाज्जक प्रमाण स्थितियोंमें ही एक नियम देखा  
जाता है, अतः आवाधाकाज्जकसे मूल उत्कृष्ट स्थितिकी एक समय कम सात हजार वर्ष प्रमाण  
आवाधा होती है ऐसा समझना चाहिये । आगे भी इसी प्रकार जानकर प्रवृत्ति तक ले  
जाना चाहिये ।

❖ इसी प्रकार सम्पत्त्व प्रकृति और सम्पत्तिमिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थिति  
है । पर इतनी विशेषता है कि इनकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम सचर कोड़ाकोड़ी  
सागर है ।

§ ३६२ चू कि ये दोनों ही कर्म बंधते नहीं हैं इसलिये हमकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त  
कम सचर कोड़ाकोड़ी सागर होती है ।

सूत्रा—कर्मके नहीं होने पर इन दोनों प्रकृतियोंकी और इनकी उत्कृष्ट स्थितिकी उत्पत्ति  
कैसे हो सकती है ?

समाधान—मिथ्यात्वका संक्रमण होकर इन दोनों प्रकृतियोंकी और इनकी उत्कृष्ट स्थिति  
की उत्पत्ति होती है । उसका जलासा इस प्रकार है—तीन करण परिणामोंके द्वारा जिसने  
प्रबोधप्रसंग सम्पत्त्वके प्रवृत्त करनेके पहले समयमें सत्तामें स्थित मिथ्यात्व कर्मके तीन मार्गोंमें  
बाँट दिया है ऐसा अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ताजाला मिथ्यात्वादि जीव जाव उत्कृष्ट स्थितिके सब  
मिथ्यात्व कर्मको बाँधकर उत्कृष्ट स्थिति कर्मके योग्य उत्कृष्ट संश्लेषपरिणामोंसे निवृत्त होममें  
सगनवासे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काज्जके द्वारा पुनः सम्पत्त्वके प्रवृत्त करनेके प्रबोध समयमें ही एक

गहणपढमसमए चेव पडिग्गकालेएणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडीमेत्तभिन्धच्चट्टिटीए सम्मत्तसम्माभिच्छत्तेसु संकामिदाए सम्मत्तसम्माभिच्छात्ताणमुक्कस्सग्रद्धाब्बेदो होदि, तेण वंधाभावे वि दोणं पयडीण तदुक्कस्सट्टिटीणं च अत्थिचं सिद्धं । पडिग्गकालो एग-दु-तिसमइओ किण्ण होदि ? ण, संकित्तेसादो ओयरिय विसोहीए अंतोमुहुत्तावट्ठाणेण विणा सम्मत्तस्स गहणाणुववत्तीदो ।

प्रतिभग्नकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाणसे न्यून सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमे सकान्त कर देता है तब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अद्वाच्छेद होता है, अतः बन्धके नहीं होने पर भी दानों प्रकृतियोंका और उनकी उत्कृष्ट स्थितिका अस्तित्व सिद्ध होता है ।

**शंका**—प्रतिभग्न कालका प्रमाण एक, दो और तीन समय क्यों नहीं होता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमे आकर और उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारणभूत संक्लेशसे च्युन होकर और विशुद्धिको प्राप्त करके जब तक उसके साथ जीव मिथ्यात्वमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक नहीं ठहरता है तब तक उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, इसीलिये प्रतिभग्न कालका प्रमाण एक, दो और तीन समय नहीं होता ।

**विशेषार्थ**—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतिया बन्धसे सत्त्वको नहीं प्राप्त होतीं किन्तु मिथ्यात्व का इन दोनों प्रकृतियों रूप से सक्रमण होता है और इसीलिये मोहनीय की बन्ध प्रकृतिया २६ तथा उदय और सत्त्व प्रकृतिया २८ मानी गई हैं । यद्यपि एक सजातीय प्रकृति का दूसरी सजातीय प्रकृतिरूप से सक्रमण दूसरी प्रकृतिके बन्धकाल में ही होता है ऐसा नियम है पर यह नियम बन्ध प्रकृतियोंमें ही लागू होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंमें नहीं, क्योंकि ये दोनों बन्ध प्रकृतिया नहीं हैं । इनके सम्बन्धमे तो यह नियम है कि जब कोई एक २६ प्रकृतियों की सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है तब वह प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके पहले समयमें मिथ्यात्वके तीन भाग कर देता है जिन्हें क्रमसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व सत्ता प्राप्त होती है । पर ऐसे जीवके आयु कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्माँका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व अन्त कोडाकोडी सागरसे अधिक नहीं होता है इसलिये ऐसे जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्माँका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व सम्भव नहीं । अतः ऐसा जीव जब मिथ्यात्व में चला जाता है और वहा सक्लेशरूप परिणामों के द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् पुनः वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है तब उसके मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे सक्रमण हो जाता है और इस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण प्राप्त होती है । यहा इतना विशेष समझना चाहिये कि मिथ्यात्वमें जाकर जिस जीवने मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है उसे सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धता प्राप्त करनेके लिये अन्तर्मुहूर्त से कम काल नहीं लगता है इसलिये यहा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिमें से अन्तर्मुहूर्त काल कम किया है । तथा ऐसा जीव वेदकसम्यक्त्वको ही प्राप्त कर सकता है प्रथमोपशम सम्यक्त्वको नहीं, क्योंकि प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके अन्तःकोडाकोडी सागर से अधिक स्थिति नहीं होनी चाहिये ऐसा नियम है ।

✽ सोलसण्ड कसायाणमुक्कस्सद्विदिविहसो चत्तालीससागरोयम कोडाकोडीओ पडिबुण्णाओ ।

§ ३६३ कुदो ? मिच्छाहट्ठिणा सक्कस्ससंकिन्दिहेण षट्ठकम्मइयवगाणक्कत्तपाणं सोलसकसायमक्कणेण परिणयाण सयत्तजीवपदेसुवगयाणं समयादियचचारिवाससइस्स माविं कादूण जाव चालीससागरोयमकोडाकोडीओ धि कम्मभावेण अवहाणुक्कत्तमादो । एदेसिं कम्माणं मिच्छतुक्कस्सद्विदीए समाणा द्विदी किण्ण जादा ? ण, वंसण चरिचविरोहीणं पयडीणं सणीए समाणराविरोहान्दो । अविराहे वा एगा चेव पयडी होअ; तासिं भेदकारणाभावादो । ण च एवं; कोहमाणमापालाहादिकक्कमेएण पयडीणं पि मवसिदीदो ।

✽ एव णवणोकसायाणं । णवरि आवलिऊणाओ ।

§ ३६४ कुदो, सोलसकसायाणमुक्कस्सद्विदिं वंधिय वंधावस्थियकालं बोलाविप आवस्थियूणचालीससागरोयमकोडाकोडमेचमोमकसायद्विदीए णवणोकसायसु सकंताए

✽ सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विमर्षित पूरी चालीस कोडाकोड़ी सागर है ।

§ ३६२ शृङ्गा—सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पूरी चालीस कोडाकोड़ी सागर क्यों है ?

समाधान—जब कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट संवत्सेशरूप परिचामोंके द्वारा कामस

कर्मसात्त्विकोंको बांधकर सोलह कपायत्पसे परिणत करके समस्त जीवमर्शोंमें प्रसन्न कर लेता है तब एक समय अधिक बार हजार वर्षसे लेकर चालीस कोडाकोड़ी सागर तक उन सालह कपायोंके कर्मरूपसे अवस्थान पाया जाता है, इससे सिद्ध होता है कि सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोडाकोड़ी सागर है । तात्पर्य यह है कि सोलह कपायोंके उत्कृष्ट स्थितिवत्त चालीस कोडाकोड़ी सागर प्रमाण होता है ।

शृङ्गा—इन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समान क्यों नहीं होती है ?

समाधान—नहीं क्योंकि इष्टानमोहनीय और पारित्रमाहनीय परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ

हैं अतः उनकी दृष्टिको समान माननमें विरोध आता है । यदि इनमें अधिकार माना जाव ता वे दोनों एक ही प्रवृत्ति हो जायगी, क्योंकि अविविरोध मानने पर हममें अन्धका अहंकार ही रहता है । परन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि कार्य मान माया और साम आदि रूप कार्यके भ्रमे प्रवृत्तियोंमें भी परस्पर भेद सिद्ध है अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समान सालह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती है ।

✽ इसी प्रकार नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति है । किन्तु इवनी विग्रहता है कि इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आनन्दीकम चालीस कोडाकोड़ी सागर है ।

§ ३६४ शृङ्गा—ना नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आपत्ताकम चालीस कोडाकोड़ी सागर प्रमाण क्यों है ?

समाधान—सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर बार कथावलि प्रमाण कथाका

विशार एक आपत्ती कम चालीस कोडाकोड़ी सागर प्रमाण साम कथावली स्थितिके ना नोकपायों

तेसिमावलियूणकसायुकस्सट्ठिदिदंसणादो । णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंखाण-मुक्कस्ससंकिलेसेण बंधपाओग्गाणं सोलसकसायाणं व चत्तालीससागरोवमकोडाकोडी-मेत्तो द्विदिवंधो किरण होदि ? ण, कसायणोकसायाणं पुधभूदजादीणं द्विदिभेदे संते विरोहाभावादो । इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणं पडिहग्गकालम्मि वज्झमाणानं कथमावलि-यूणा कसायाणमुक्कस्सट्ठिदी होदि ? ण, पडिहग्गपढमसमए चेव वज्झमाणेसु चदुसु कम्मेसु बंधावलियादिककंतकसायकम्मकखंधाणमावलियूणउक्कस्सट्ठिदीणं संकंतिदंस-णादो । एदाणि चत्तारि वि कम्माणि उक्कस्ससंकिलेसेण किण्ण वज्झंति ? ण, साहावियादो ।

में संक्रान्त हो जाने पर नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर देखी जाती है, अतः नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति उक्त प्रमाण बन जाती है ।

**शंका**—उत्कृष्ट संक्लेशसे बधनेके योग्य जो नपुसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा प्रकृतिया हैं उनका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सोलह कषायोंके समान पूरा चालीस कोड़ाकोड़ी सागर क्यों नहीं होता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि कषाय और नोकषाय ये पृथक् जातिकी प्रकृतियाँ हैं, इसलिये इनके स्थिति भेदके रहनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

**शंका**—प्रतिभग्न कालमें बधनेवाली स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रति इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कैसे हो सकती है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि, प्रतिभग्न कालके पहले समयमें ही बधनेवाली इन चार प्रकृतियोंमें बन्धावलिके सिवा शेष कर्मस्कन्धोंकी एक आवली कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण देखा जाता है, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण हो जाती है ।

**शंका**—ये स्त्रीवेद आदि चारों कर्म उत्कृष्ट संक्लेशसे क्यों नहीं बधते हैं ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेशसे नहीं बधनेका इनका स्वभाव है ।

**विशेषार्थ**—बन्धसे स्त्रीवेदकी १५ कोड़ाकोड़ी सागर, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और नपुसकवेदकी २० कोड़ाकोड़ी सागर तथा हास्य, रति और पुरुषवेदकी १० कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है किन्तु जब कषायों की उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकषायरूपसे संक्रमण होता है तब इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिकम ४० कोड़ाकोड़ी सागर हो जाती है । तत्काल बधे हुए कर्मका एक आवलि काल तक सक्रमण नहीं होता अतः ४० कोड़ाकोड़ी सागरमें से एक आवलि कम कर दी गई है ! किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट संक्लेशसे होनेवाले कषायकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय नपुसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पांच प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है, अतः बन्धकालके भीतर ही इनमें एक आवलिके पश्चात् कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण प्रारम्भ हो जाता है । तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिका बन्ध उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे नहीं होता अतः कषायकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धके उपरत होने पर एक आवलिके पश्चात् इनमें कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण होता है क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंके निवृत्त होने के पहले समयसे ही इन स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंका बन्ध होने लगता है और इसलिये एक

० एवं सध्यासु गदीसु जेपय्यो ।

§ ३६५ जहा ओयेण अद्याष्टेदो परुविदो तहा सम्पासु गदीसु जेदय्या चि ।  
एवं जहासहाहरिएण सम्पासु मगगणासु मूषिदमुकस्सद्विदिमदच्छन्दमुधारणाहरिएण  
मंदमुदिमणाण्णगहमेसुरेस परुविदं वचइस्सामो ।

§ ३६६ तं जहा—सत्तण्हं पुडवीणं तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०  
पञ्च०-पंचि०तिरिक्खनाणिणी-मणुसुत्तिप०-द्वय भवणादि जाव सइस्सार०-पंचिदिय  
पंचि०पञ्च०-तस-तसपञ्च० पंचमण०-पचवचि०-कायजोगि०-भारालिय० वडभिय०  
तिणिवेद०-वचारिकसाय-मदि-मुदअण्णाण-विहंग०-अममद०-चक्खु०-अवक्खु०-  
पंचलस्ता० भवसिद्धि० अमवसिद्धि०-मिच्छाह०-सण्णि-आहारीणमोपमंगा ।

§ ३६७ पंचिदियतिरिक्खअपञ्चअणु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुकस्स

आवलि के पञ्चान् इनमें कपायकी वस्तु स्थिति के संक्रमित होने में कोई बाधा नहीं आती है । यहाँ इतना और विशेष जानना चाहिए कि बन्धावलि के पाद वचपि कपायकी वस्तु स्थिति का नौ नाक-पायरूपसे संक्रमण पा होता है पर वचवचलिप्रमाण नियकों का बाइकर रूपसे नियकों में स्थित कमपरमाणुका ही संक्रमण होता है । इस प्रकार कपायलि और वचवचलि इन दो अवलिप्रमाण नियक असंक्रमित ही रहते हैं । इसलिये संक्रमणकी अपवाह नौ नाकपायोंकी वस्तु स्थिति का आवलिक्क बालीस कोइलाष्टेदी सागरप्रमाण और मत्त्वकी अपवाह एक आवलिक्क बालीस काइलाष्टेदी सागरप्रमाण पाव जाती है, क्योंकि जिस समय कपायोंकी वस्तु स्थिति का संक्रमण होता है उस समय वचवचलिप्रमाण नियकोंसे बाइकर संक्रमण होता है । पर नौ नाकपायोंकी सत्ता संक्रमणके पक्ष में थी अतः पूर्वसत्ताके वचवचलि प्रमाण नियकों का भिन्ना वन पर एक आवलिक्क बालीस काइलाष्टेदी सागरप्रमाण स्थिति प्राप्त हो जाती है ।

० इसी प्रकार सभी गतियोंमें जानना चाहिये ।

§ ३६८ जिस प्रकार आपसे माहमीयकी अष्टाश्रम ग्रहणियोंका अद्याष्टेद वदा है वही प्रकार सभी गतियोंमें जानना चाहिये । इस प्रकार यतिहृम आपायन को मणूण सामायाधर्मों वस्तु स्थिति का प्रमाण सूचित किया है जिसका कि प्रत्यक्ष उधारणाचार्यने मणुवृद्धिद्वीक अनुग्रहक तिव इमी प्रकारमें किया है वन बगल है ।

§ ३६९ पर इस प्रकार है—सालो परक, सामाज्य नियक पंचेन्द्रिय नियक पंचेन्द्रिय नियक पपाय, पचन्द्रिय नियकचानिमनी सामाज्य मनुष्य पपाय मनुष्य मनुष्यनी, मायाय देव, भवनवासियों का सहर महाराज स्वर्गगतक देव पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पपाय, वन वन पपाय, पांचों मनायागी, पांचों वचनयागी, काययागी, आहरिदकाययागी, वैदिककाययागी, नीनों बदवाले पाते कपायवाले, मारवाले वनवाले विमंगलानी अमंगल वस्तुपानी, अचक्रुइनी, वृष्टादि पांच वृष्टापाय अष्ट, अमज्य मिष्याहपि, गेडी और आहारक वीरों का पाक सामान संग है । अतः आपसे जिस प्रकार माहमीयकी अष्टाश्रम ग्रहणियोंकी स्थिति का वन कर आप है वही प्रकार इन पूर्वोक्त सामाज्यधर्मों में भी जानना चाहिये ।

§ ३७० पंचेन्द्रिय नियक अपवायनों में मिष्याह, मणवसव आर मण्यमिष्यत्त वमंडी

द्विदिश्रद्धाछेदो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ । सोलसकसाय-णव-  
णोकसायाण उकस्सअद्धाछेदो चत्तालीससागरोवमकोडाकोडीओ अतोमुहुत्तूणाओ ।  
एवं मणुसअपज्ज-वादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिटिय-पचिंदिय-  
अपज्ज०-वादरपुढविअपज्ज० - सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त - वादरआउअपज्ज० - सुहुमआउ-  
पज्जत्तापज्जत्त-सव्वतेउ०-सव्ववाउ०-वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-सुहुमवणप्फदि०-  
पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगोद-तसअपज्ज०-आभिणि० सुद०-ओहि०-ओहिदंस०-सुकलेस्सा-  
सम्मादि०-वेदय०-सम्माभिच्छादिदि ति ।

§ ३६८ आणटादि जाव सव्वद० सव्वपयडीणमुक्क० अद्धाछेदो अंतोकोडा-  
कोडी० । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-  
परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद० - संजदासंजद-खइय-उवसम० - सासणसम्मा-  
दिदि ति ।

§ ३६९ एइंदिएसु मिच्छत्तुक्क० सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ समऊणाओ ।  
सम्मतसम्माभिच्छत्तणवणोकसायाणमोघ । सोलसक० उक्क० चत्तालीस० कोडाकोडीओ  
समयूणाओ । एवं वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्ज०-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-  
आउ०-वादरआउ०-वादरआउपज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेय०-वादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-

उत्कृष्ट स्थिति अन्तमु हूर्त कम सत्तर कोडाकोडी सागर है । तथा सोलह कपाय और नौ नोक-  
फपायोकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तमु हूर्त कम चालीस कोडाकोडी सागर है । इसी प्रकार मनुष्य  
अपर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय  
अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवी-  
कायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, वादर जलकायिक  
अपर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तक, सब अग्नि-  
कायिक, सब वायुकायिक, वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पति, सूक्ष्म वनस्पति  
पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्तक, सब निगोद, त्रस अपर्याप्तक, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी,  
अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३६८ आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सभी भक्तियोंकी उत्कृष्ट स्थिति  
अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी,  
अपगतवेदी, अकपायी, मन-पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-  
शिशुद्विस्मयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम-  
सम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३६९ एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम सत्तर कोडाकोडी सागर  
है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति ओघके समान है । तथा  
सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम चालीस कोडाकोडी सागर है । इसी प्रकार  
वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक  
पर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर,

भौराभि०-येउभियमि०-कम्माइय०-असणि०-अणाहारि च ।

एवमुक्तस्तद्विदिग्गजभेदो समथो ।

भारत बमस्वर्गि प्रत्येकभरि पयाप्त भौराहारिदिग्गजभेदयोगी वैदिकिदिग्गजभेदयोगी कम्माइय काययोगी अरुंभी और अणाहारक जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

**विशेषार्थ** यहाँ पहले बोधके अनुसार जिन मार्गाणोंमें १८ प्रकृतियोंका अज्ञात्वेर है उनका मूलमें उत्पन्न करने जिन मार्गाणोंमें विवेचना १ उनका अज्ञातमे निर्देश दिया है । सुशामा इस प्रकार है—जिसमे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति का वच किया है वह एक अज्ञातु हर्तके बाद ही स्थितिपात किन्तु बिना पंचेति च निर्वच लक्षणपयाप्तकीमें उत्पन्न हो सकता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच लक्षणपयाप्तकीके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थिति सरस्वती अज्ञातु हर्तकम सत्तर कोइकोई सागर बड़ा है । इसी प्रकार पंचेति च तिर्यच लक्षणपयाप्तकीके सम्बन्ध और सम्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अज्ञातु हर्तकम सत्तर काइकोई सागर ज्ञाननी चाहिये क्योंकि जिस जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति का वच करके वेदक सम्बन्धको प्राप्त है । १ यह जीव अब अति लघुगणके द्वारा हीन कर मिथ्यात्वमें आना है और स्थितिपात किन्तु बिना मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यच लक्षणपयाप्तकीमें उत्पन्न होना है तब हमने पंचेति च निर्वच लक्षणपयाप्तक अज्ञातमे सम्बन्ध और सम्मिथ्यात्वकी अज्ञातु हर्तकम सत्तर कोइकोई सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति देली जाती है । यहाँ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिवशमे लेकर पुनः मिथ्यात्वमें आकर पंचेन्द्रिय तिर्यच लक्षणपयाप्तकीमें उत्पन्न होने तकके कालका जोइ अज्ञातु हर्त ही लेता चाहिये तभी पंचेन्द्रिय तिर्यच लक्षणपयाप्तकीके सम्बन्ध और सम्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति उक्त प्रमाण बन सकती है । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच लक्षणपयाप्तकीके जीवके जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रतिष्ठित करके सिद्ध आते हैं वही प्रकार सोइइ कपाय और नौ मोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अज्ञातु हर्तकम ज्ञानीस कोइकोई सागर प्रतिष्ठित कर लेनी चाहिये । किन्तु इसकी विशेषता है कि सोइइ कपायों की उत्कृष्ट स्थिति वचकी अपेक्षा और नौ मोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति संक्रमकी अपेक्षा प्रतिष्ठित करनी चाहिये । मूलमें मनुष्य अपर्णातक आवि और जितनी समोपाय गिनार्ह हैं उनमें भी इसी प्रकार सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति ज्ञाननी चाहिये । किन्तु सम्बन्धजनसे सम्बन्ध रखनेवाली आभिनिमोचिकांनी आवि जितनी मार्गाणों गिनार्ह हैं उनमें सम्बन्ध सम्मिथ्यात्व और नौ मोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति करते समय वेदकसम्बन्धसे पुनः मिथ्यात्वमें नहीं ले जाना चाहिये । किन्तु वेदकसम्बन्धके प्राप्त ज्ञानके पहले समयमें ही उनके साथ कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति ज्ञानी चाहिये । हाँ सम्मिथ्यात्वकी जीवके वेदकसम्बन्धसे अतिशीघ्र सम्मिथ्यात्वको प्राप्त कराके पहले समयमें साथ कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । आगतादि बार कर्मोंमें यदि अचिराती उत्पन्न होता है ताँ इच्छासिद्धि सुनि ही उत्पन्न होता है । यही बात नौ धर्मयोंकी भी है अतः इनके सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति अज्ञातुकोइकोई सागरसे अधिक नहीं होती । मूलमें आहारककाय योगी अग्नि और जितनी मार्गाणों गिनार्ह हैं उनमें उत्कृष्ट स्थिति अज्ञातुकोइकोई सागरसे अधिक नहीं होती यह स्पष्ट ही है । हाँ सूक्ष्मात्मिका और यथाक्यावसंतके जो उत्कृष्ट स्थिति अज्ञातुकोइकोई सागर वतलाई है वह कपशमकी अपेक्षा ज्ञाननी चाहिये । जिसने मिथ्यात्व का सोइइ कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति का वच किया है वह दूसरे समय में मर कर मूलमें लौट गई पंचेन्द्रियादि मार्गाणोंमें उत्पन्न हो सकता है अतः उक्त मार्गाणोंमें मिथ्यात्वकी एक समब कर्म सत्तर कोइकोई सागर और सोइइ कपायों की एक समब कर्म



## ❀ एत्तो जहण्णयं ।

§ ३७०. एदम्हादो उवरि जहण्णयमद्वाच्छेदं वत्तइस्सामो त्ति मंदमेहाविजण-

चालीस कोडाकोडी सागर उत्कृष्ट स्थिति वन जाती है । किन्तु एकेन्द्रियसे लेकर वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त तक मार्गणाओंमें और असङ्गी मार्गणामें देव पर्यायसे च्युत हुए जीवको उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । औदारिक मिश्रकाययोगमें देव और नारक पर्यायसे च्युत हुए जीव को उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मनुष्य और तिर्यं च पर्यायसे च्युत हुए जीवको नरकमें उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । कर्मण्णकाययोग और अनाहारकमें उत्कृष्ट स्थिति कहते समय चारों गतिसे मरे हुए जीवको तिर्यं च और नारकियोंमें उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । तथा इतनी और विशेषता है कि इन सब मार्गणाओंमें भवके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व होगा । तथा एकेन्द्रियसे लेकर वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्तक तक उपर्युक्त मार्गणाओंमें और असङ्गी मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व इस प्रकार घटित कर लेना चाहिये कि भवनत्रिक व सौधर्म कल्पतक के किसी एक जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया । पुन अति लघु कालके द्वारा वह मिथ्यात्वमें गया और बड़ा अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थिति काण्डकघात किये बिना एकेन्द्रियादिक उक्त मार्गणाओंमें से किसी एकमें उत्पन्न हो गया तो उसके उत्पन्न होनेके पहले समय में सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होता है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि देव और नारक पर्यायसे वेदकसम्यक्त्वके साथ आकर जो औदारिक-मिश्रकाययोगी होता है उसके ही भवके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व होता है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व कहते समय मनुष्य और तिर्यं च पर्यायसे नारकियोंमें उत्पन्न कराकर भवके पहले समयमें ही कहना चाहिये । किन्तु ऐसे जीवको तिर्यं च और मनुष्य पर्यायमें रहते हुए वेदकसम्यक्त्व उत्पन्न कराकर मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिये और तब नरकमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ उत्पन्न कराना चाहिये । तथा कर्मण्णकाययोग और अनाहारक मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व औदारिकमिश्रकाययोगके समान घटित कर कहना चाहिये । तथा नौ नोकपायों का उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व मिथ्यात्व और सोलह कपायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके समान घटित करके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व उस मार्गणा में भवके पहले समयसे लेकर एक आवलिकाल तक प्राप्त हो सकता है, क्योंकि जिस जीवने सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाधकर एक आवलि कालके पश्चात् मरण किया उसके भवके पहले समयमें नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होगा और जो दूसरे समयमें मर गया उसके एक आवलिकालके पश्चात् उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होगा । इसीप्रकार एक समयसे लेकर आवलितकके मध्यम विकल्प जानने चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिअच्छाच्छेद समाप्त हुआ ।

\* इसके आगे जघन्य स्थिति अद्वाच्छेदको बतलाते हैं ।

§ ३७० इस उत्कृष्ट स्थितिअद्वाच्छेदके आगे जघन्य स्थिति अद्वाच्छेदको बतलाते हैं ।

संभालनद्व' पस्विदमेदं ।

• मिच्छत्त-सम्प्राप्तिच्छत्त-भारसकसायाणं जहण्णाद्विदिग्विहरी पगा  
द्विदी दुसमयकालद्विदिया ।

§ ३७? इतो ? असंनदसम्प्राप्तिद्विद्विहरी नाव अप्यमत्तसजदो चि एदे वंसण  
मोहस्त्ववणाए पामोगा । एदसिं चदुण्हं गुणहाणाणमण्णदरेण पुब्बमेव त्वविद्वअणंठाणुर्वापि  
चत्तकेण वंसणमोहस्त्ववणाए अस्सुद्विदेण अपापवत्तकरखदाए अत्तसगुणाए विसी-  
हीए वद्विद्ववगएण अप्यसत्याणं कम्मार्णं समणत्तरादीद्वअणुभागवर्षं पटुच्च वद्वअणं  
गुणहीणाणुभागोण पसत्याणं कम्माखमणत्तरादीद्वअणुभागवर्षादो वद्वअणंठाणुभा-  
गोण द्विदिअणुभागखंडयपावविचक्षणएण वंसणमोहणीयस्त्ववणाए गुणसेविपदेस-  
णिअत्तस्सुद्वेण अपुब्बकरखदाए पढमसमए आहत्तद्विदिअणुभागखंडयपादेण तत्त्वेवाहत्त-  
पदेसगुणसेविणिअरेण वंचविरविद्वअप्यसत्त्वमिच्छत्त-सम्प्राप्तिच्छत्ताणमाहत्तगुणसंकमेण  
अपुब्बकरखदाए संत्सेअसहस्सद्विदिक्कंडयासि द्विदिक्कंडएहिंतो एत्सेअगुणाणुभागकंड-  
यासि च पादिय संत्सेअसहस्सद्विदिक्कंडोसरणाहि ओसरिय गुणसेविणिअराए कम्म  
क्कंडे गाल्लिय अणियद्विक्करणं पविट्ठेण तत्तय चि अपियद्विअदाए द्विदिक्कंडयमणुभाग-

यह सूत्र मन्त्रबुद्धि जनोक्ति सम्हालनेके लिये कहा है ।

• मिथ्यात्व, सम्प्रतिमिथ्यात्व और चारह कपायोंकी एक स्थिति जपम्य  
स्थितिविमक्ति होती है, जिसका स्थितिकाल दो समय है ।

§ ३७१ श्रुंका—एक मिथ्यात्वादि कर्मोंकी दो समय अवस्थाकी एक स्थिति जपम्य  
स्थितिविमक्ति क्यों होती है ?

समाधान—असंयतसम्बन्धिते लंकर अमत्तसंयत तक ये चार गुणस्वान्तर्गत बीष  
वर्षनमोहनीयकी जपस्थाने योग्य होते हैं । इनमेंसे पहले जिसने अन्तर्गतगुणकी वद्वअण  
कर दिया है ऐसा इन चार गुणस्वान्तर्गमें रहनेवाला कोई एक बीष जब वर्षनमोहनीयकी जपस्थाने  
लिये कथित होता है तब वह अमत्तसंयतकरखके कालमें अन्तर्गतगुणकी विस्तृतिके द्वारा वृद्धिके प्राप्त होता  
हुआ अमत्तसंयत कर्मोंके अनुभागको आपने पूर्वसमवर्ती अनुभागवन्धकी अपेक्षा अन्तर्गतगुण हीन  
बनता है और प्रसस्त कर्मोंके अनुभागको आपने पूर्व समवर्ती अनुभागवन्धकी अपेक्षा अन्तर्-  
गतगुण अधिक बनता है । पर इसके बहाँ स्थितिकण्डकपात और अनुमागकण्डकपात नहीं  
हाते हैं और न वर्षनमोहनीयकी जपस्थाने होनेवाली गुणमेखी कर्मसे कर्मप्रदेशोंकी निर्धरा ही  
होती है । तथा जब वह अपूर्वकरखका प्राप्त होता है तब वह उसके पहले समयमें ही स्थिति-  
कण्डकपात और अनुमागकण्डकपातका आरम्भ कर देता है । तथा यहीसे कर्मप्रदेशोंकी गुण-  
मेखी निर्धरा चालू हो जाती है और जिसका कर्म नहीं होता ऐसे मिथ्यात्व और सम्प्रतिमिथ्यात्व  
इन दो अमत्तसंयत कर्मोंका गुणसंक्रमण आरम्भ हो जाता है । तथा इस बीषके अपूर्वकरखके कालमें  
संभ्रात द्वारा स्थितिकण्डकपात और स्थितिकण्डकपातोंसे संभ्रातगुणसे अनुमागकण्डकपात  
हात है तथा संभ्रात द्वारा स्थितिकण्डकपातगुण होते हैं । इस प्रकार वह बीष गुणमयी निर्धराके  
द्वारा कर्मस्त्वर्णोक्त नाश करता हुआ अनित्यत्विकरणमें प्रवेश करता है । वहाँ अनित्यत्विकरणके

कंडयसहस्साणि घादिय समयं पडि अमंखेज्जगुणाए सेठीए कम्मसखंधे गालिय अणियट्ठिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु मिच्छत्तचरिमफालिं पलिटोमस्स असखेज्जदि-  
भागमेत्तमुदयावलियादो वाहिरिल्लयं घेत्तूण सम्भत्तसम्भामिच्छत्तेसु संकामंतेण उव्वरा-  
विदसमज्जणुदयावलियमेत्तद्विदीसु थिउक्कमंकेमेण संकमंतीसु मिच्छत्तेयणिसेयणिसंय-  
द्विदीए दुसमयकालद्विदीए उवलंभादो । कथमणंताणं परमाणुणं ठिट्ठिवएसो ? ण,  
आहारे आहेओवयारादो । कथमेयत्तं ? ण, दुसमयकालावहाणेण समाणाणमेयत्ता-  
विरोहादो ।

§ ३७२. एवं सम्भामिच्छत्तवारसकसायाणं पि वत्तव्व । एवरि अप्पप्पणो  
चरिमफालीओ परसरुवेण संछुहिय उदयावलियपविट्ठणिसंयद्विदीओ थिउक्कमंकेमेण  
संकामिय एयणिसंयद्विदीए दुसमयकालाए सेसाए जहण्णद्विदिविहत्ती होटि त्ति वत्तव्वं ।  
एदेसिं सव्वकम्माणं सगसगअणियट्ठिअद्धासु संखेज्जेसु भागेसु गदेसु चरिमफालीओ  
पदंति । अणंताणुवधिउक्कस्स पुण अणियट्ठिअद्धाए चरिमसमए चरिमफाली पददि

कालमें भी यह जीव हजारों स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंका घात करके प्रतिसमय  
असंख्यातगुणी श्रेणी रूपसे कर्मस्कन्धोंका नाश करता है और इस प्रकार जब यह जीव अनि-  
वृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभागको व्यतीत कर देता है तब वह पल्योपमके असंख्यातवें भाग  
प्रमाण मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिको उदयावलि के बाहरसे ग्रहण करके सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वमें संक्रान्त करता है और उदयावलिप्रमाण जो निपेक शेष रहे हैं उनमेंसे एक समय कम  
उदयावलिप्रमाण स्थितिको भी स्तिबुक्कक्रमणक द्वारा ( सम्यक्त्वप्रकृतिमे ) संक्रान्त कर देता है ।  
तब इस जीवके मिथ्यात्वके एक निपेककी दो समयप्रमाण निपेकस्थिति प्राप्त होती है ।

**शंका—**अनन्त परमाणुओंको स्थिति सज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

**समाधान—**आधारमें आधेयके उपचारसे अनन्त परमाणुओंको स्थितिसज्ञा प्राप्त  
हो जाती है ?

**शंका—**ये एक कैसे हो सकते हैं ?

**समाधान—**नहीं क्योंकि दो समय काल तक रहनेके कारण इनमें समानता है, इसलिये  
इनको एक माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

§ ३७२ जिस प्रकार मिथ्यात्वकी एक जघन्य स्थिति दो समय प्रमाण कही उसी प्रकार  
सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कपार्योंकी भी कदनी चाहिये । इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी  
अन्तिम फालिको पररूपसे सक्रामित करके तथा उदयावलिमें स्थित निपेकोंकी स्थितिको स्तिबुक्क  
संक्रमणके द्वारा सक्रामित करके जो दो समय प्रमाण एक निपेककी स्थिति शेष रहती है वह उक्त  
कर्मोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है प्रकृतमें ऐसा कथन करना चाहिये । इन सभी कर्मोंकी  
अपने अपने अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभाग व्यतीत होने पर अन्तिम फालियोंका  
पतन होता है । परन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अन्तिम फालिका पतन अनिवृत्तिकरणके कालके

चि वेत्तन् । ह्रदो ? साहायियादो । सम्मामिच्छत्तस्स उब्बेस्सणाए चि महण्णहिदि विहरी होदि । चरिमुब्बेन्लणकंइयचरिमफासीए पविदाए तत्थ चि दुसमयकाखेग गिसेगहिदीए चक्खंभादो ।

\* सम्मत्त-लोहसंजलण-इत्थि णवु सयवेदार्ण जहण्णहिदिविहरीए एगा हिदी एगसमयकालहिदिया ।

§ ३७३ सम्मत्तस्स एगा हिदी एगसमयकालपमाळा जहण्णहिदिविहरी होदि चि नं सुत्ते मणिवं तत्त विवरणं कत्तामो । तं जहा-सम्मामिच्छत्तचरिमफाखियाए सम्मत्तम्मि संकामिदाए सम्मत्तस्स अट्टवत्तहिदिसंतकम्म होदि । पुणो एवविहदिदि संतकम्ममंतोपुहुत्तमेचहिदिकंइयपमाणेण पादयमाणो सम्मत्तस्स अणुसुपयमोहनं च कुसमाळो ताव गच्छदि जाव संत्तज्जहिदिकंइयसहत्ताणि गदाणि चि । तदो तेसु गदेसु सम्मत्तचरिमफाखिमागाएवो फट्ठकरणिज्जकालमेत्ताओ हिदीओ मोत्तण आगाएदि । पुणो तं पेत्तण गुणसेविगिक्खेवण भिक्षित्थे अणियट्ठिकरणं समपदि । तदो अणुसमय मोहणं करेमाओ उदपावस्सियपविहदिहरीओ ताव गाखेदि खाव एगा हिदी एगसमय कालपमाळा उदपम्मि हिदा चि । ताव सम्मत्तस्स जहण्णहिदिविहरी होदि । सम्मा

अन्तिम समयमें प्राप्त होता है एसा था। ग्रहण करता चाहिये क्योंकि इनका पसा स्वभाव है । तथा सम्मामिच्छात्वकी घट्टेनानामें भी जपन्व स्थिति विमर्श होती है, क्योंकि अन्तिम घट्टेनाना-काण्डकी अन्तिम फालिके पतन होने पर वहाँ भी एक निपेककी जो समय प्रमाण स्थिति पाई जाती है ।

\* सम्मत्त, लोमसंनवस्तन सीवेद और नपुंसकवेदकी एक स्थिति जपन्व स्थिति विमर्श होती है, जिसका स्थितिकाल एक समय है ।

§ ३७३ सम्मत्तकी एक स्थिति एक समय प्रमाण काल तक रहनेवाली जपन्व स्थिति विमर्श होती है इस प्रकार का सूत्रमें कहा है जब वसका विवरण करेंगे । जो इस प्रकार है—जब सम्मामिच्छात्वकी अन्तिम फालिका संक्रमण सम्मत्तमें होता है तब सम्मत्तका पाठ वर्ष प्रमाण स्थिति स्रग्म होता है । पुनः यह जीव सम्मत्तके इस प्रकार स्थित स्थितिसूत्रके अन्तर्गत प्रमाण स्थितिकाण्डके द्वारा पाठ करता हुआ और प्रत्येक समयमें अपवर्तन करता हुआ तब तक जाता है जब जाकर संक्रमांत हुआर स्थितिकाण्ड व्यतीत हो जाय हैं । तदनन्तर वन संक्रमांत हुआर स्थितिकाण्डको व्यतीत होने पर यह जीव सम्मत्तकी अन्तिम फालिका प्राप्त होता हुआ वसमेंसे वृत्तव्यवस्थाके कास प्रमाण स्थितियोंका जाइकर खेदमे ग्रहण करता है । पुनः इसका वृत्तव्यवस्था कासप्रमाण स्थितियोंको जोइकर और खेदज ग्रहण करके एकत्र गुह्यमेधिरूपसे निक्षेप कर वेग पर अनिच्छितिरूप समाप्त होता है । तदनन्तर वनज प्रत्येक समयमें अपवर्तन करता हुआ ज्वाबलिमें स्थित स्थितियोंकी तब तक निजत करता है जब जाकर वर्यमें स्थित एक स्थिति एक समय काल प्रमाण प्राप्त होती है । और इसी समय सम्मत्तकी जपन्व स्थिति विमर्श होती है ।

मिच्छतादीणं जहण्णट्ठिदी एगसमयकालपमाणा त्ति ऋण्ण परुचिदं ? ण, मिच्छत्त-  
सम्मामिच्छत्त-वारसकसायाणं सम्मत्तस्सेव सोदएण कववणाभावाढो ।

§ ३७४. सपहि लोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदी बुचदे । तं जहा—अप्पणो वादर-  
किट्ठीओ वेदिय तदो तदियकिट्ठिं वेदयमाणो सुहुमसांपराइयअद्दाए मंखेज्जे भागे गंतूण  
लोभचरिमफालिमागाएंतो मुहुमसांपराइयअद्दाए सेसं सगद्दाए मंखेज्जदिभागं मोत्तूण  
आगाएदि । पुणो तं चरिमफालिदब्बं वेत्तूण गुणसेद्विक्कमेण उदयादि णिक्खिविय  
तदो जहाकमेण सेसगोबुच्छाओ गालिय एगट्ठिदीए उदयगदाए एगसमयकालपमाणाए  
सेसाए लोभसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि ।

§ ३७५ इत्थिवेदस्स एगा ट्ठिदी एगसमयकालपमाणा जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि  
त्ति जं भणिदं तस्स विवरणं कस्सामो । तं जहा—इत्थिवेदोदएण खवणसेदिं चडिय  
तदो विदियट्ठिदीए ट्ठिदिमत्थिवेदचरिमफालिं दुचरिमसमयसवेदएण वेत्तूण पुरिसवेद-  
सरूवेण संकामिदे सवेदियचरिमसमयम्मि एगा ट्ठिदी एगसमयकालपमाणा सुद्धा  
अवचिहदि ताथे इत्थिवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि ।

§ ३७६ सपहि णवुंसयवेदस्स बुचदे । तं जहा—णवु सयवेदोदएण जो खवण-

**शका—**सम्यग्मिथ्यात्व आदिककी जघन्य स्थिति एक समय कालप्रमाण क्यो नहीं कही ?

**समाधान—**नहीं, क्योंकि मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और वारह कपायोंका सम्यक्त्वके  
समान स्वादयसे क्षण नहीं होता, इसलिये उनकी जघन्य स्थिति एक समय कालप्रमाण  
नहीं कही ।

§ ३७४. अब लोभसञ्चलनकी जघन्य स्थिति कहते हैं । वह इस प्रकार है—लोभसञ्चलन-  
वाला जीव अपनी वादर कृष्टियोंका वेदन करके तदनन्तर तीसरी कृष्टिका वेदन करता हुआ  
सूक्ष्मसापरायिकगुणस्थानके कालमें सरूपात् बहुभागप्रमाण कालका व्यतीत करके लोभकी अन्तम  
फालिको ग्रहण करता हुआ सूक्ष्मसरायके कालमें अपने कालकं अर्थात् लाभकी अन्तम फालिके  
कालके सख्यातवें भागप्रमाण निपेकोंको छोड़कर शेष निपेकोंको ग्रहण करता है । पुन. उस अन्तिम  
फालिके द्रव्यको ग्रहण करके और उसे गुणश्रेणीक्रमसे उदय कालसे लेकरके निक्षिप्त करके तदनन्तर  
यथाक्रमसे शेष गोपुच्छको गलाता है तब जाकर उदय प्राप्त एक स्थितिकी एक समय कालप्रमाण  
स्थितिके शेष रहने पर लोभसञ्चलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ३७५. अब स्त्रीवेदकी एक स्थिति एक समय कालप्रमाण जघन्य स्थितिविभक्ति होती  
है यह जो पहले कह आये हैं उसका विवरण करेंगे । वह इस प्रकार है—

स्त्रीवेदके उदयसे क्षणकश्रेणी पर चढ़कर तदनन्तर सवेदक जीवके द्वारा द्विचरम समयमें  
द्वितीय स्थितिमें स्थित स्त्रीवेदकी अन्तिम फालिका पुरुषवेदरूपसे संक्रमण कर देने पर जब सवेद  
भागके अन्तिम समयमें एक समय कालप्रमाण एक स्थिति शुद्ध शेष रहती है तब स्त्रीवेदकी  
जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

। ३७६. अब नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति कहते हैं । वह इस प्रकार है—जो नपुसकवेदके

सेहिमारुहो तेण सपेदियबुचरिमसमए इत्थिणबुसयनेदचरिमफासीसु सध्वसंक्रमेण पुरिसपेदे संक्रामिदासु तदो समयियचरिमसमए णबुंसयपदस्स एगा हिदी एगसमय कालपमाणा पचोदया सुद्धा पिहदि । तापे णबुंसयनेदस्स जहण्णहिदिबिहरी होदि ।

✽ कोइसजलणस जहण्णहिदिबिहरी बे मासा अंतोमुहुच्छूणा ।

१३७७ सूत्रो ! चरित्तमोहकस्यएण कोपसंमलणपेकिहीओ स्वयिय कोष तदियकिहि स्वबेमाणेण तिस्से पइमहिदीए समयारियाबस्मियाए सेसाए कोपसंमलणस्स जहण्णपेवे संपुण्णवेमासमेत्ते पबदे तापे समयूणदोआवस्मियमेत्ता समयपबद्धा सुद्धा कोइस्स पिहदि । तस्मि समए उप्पादाणुअदेणेण कोइविराणसंतकम्मचरिमफासीए पिस्सेसविभासुक्खंभादो । तदो बंधावस्मियाए वदिकताए समऊणावस्मियमेत्तफासीसु परसकवेण संक्रामिदासु इत्थमयूणदोआवस्मियमेत्तसमयपबद्धेसु तिस्सेसं परसकवेण गदेसु तापे समयूणदोआवस्मियाहि ऊणवेमासमेत्ता कोषचरिमसमयपबद्धस्स हिदी वक्कदि; तापे कोपसंमलणस्स जहण्णहिदिदंसणदो । समयूणदोआवस्मियाहि ऊण वेमासमेत्ता कोपजहण्णहिदिबिहरी होदि पि अमणिय वेमासा अंतोमुहुच्छूणा पि यमिदं कयमेदं पबदे ? ण, वेमासमम्मंतरआवाहाए अंतोमुहुत्तपमाणाए कम्मणिसेगा-

वयसे उपक्रमेयी पर बड़ा है वह जब सर्वत्र भागके द्विचरम समयमें स्त्रावेर और नतुसकवेरकी अन्तिम फालियोंका सर्वसंक्रमणके द्वारा पुरुषवेरमें संक्रमण कर देता है तब सर्वत्र भागके अन्तिम समयमें नतुसकवेरकी अन्तगत एक स्थिति एक समय कालप्रमाण सुद्ध सेप रखती है और तभी नतुसकवेरकी अपन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

✽ कोपसंमलणकी अपन्य स्थितिबिभक्ति अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना है ।

१३७८ शृंका—कोपसंमलणकी अपन्य स्थितिबिभक्ति अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना क्यों है ?

समाधान—चारिअमोहनीयके सबके साथ कोपसंमलणकी दो कटिपोंका दय करके कोपकी तीसरी कटिका दब करत हुए उसकी प्रथम स्थितिके एक समय अचिक आवली प्रमाण सेप रखने पर कोपसंमलणका अपन्य कल्प पूरा हो महीना होता है और उस समय कोपके केवल एक समय कम दो आवली काक प्रमाण समयप्रबद्ध सेप रखते हैं । तथा उसी समय उत्पादाणुअदे की अपेक्षा कोपकी प्राथम सत्तामें स्थित अन्तिम फालिका पूरा बिनाश प्राप्त होता है । तदनन्तर कणावलिसे व्यतीत होन पर एक समय कम आवलि प्रमाण फालिबेकि पररूपसे संक्रमित होन पर तथा दो समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रबद्धके पूरी तरह पररूपसे प्राप्त होने पर उस समय एक समय कम दो आवलिबोसे न्यून हो महीना प्रमाण कोपके अन्तिम समयप्रबद्धकी स्थिति सेप रखती है, क्योंकि इसी समय कोपसंमलणकी अपन्य स्थिति देखी जाती है ।

शृंका—कोपसंमलणकी एक समय कम दो आवलिबोसे न्यून हो महीना प्रमाण अपन्य स्थिति होती है देसा न कइकर जो अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना अपन्य स्थिति करी है सो यह कैसे बन सकती है ?

भावेण अंतोमुहुत्तूणं वेमासत्तु ववत्तीदो । कथं णिसेयाणं द्विदिववएसो ? ण, णिसेयादो पुधभूदकालाभावेण णिसेयाणं द्विटिच्चाविरोहादो । एत्थ कालो पहाणो किण्ण कदो ? ण, कम्मपरूवणाए कालस्स पहाणत्ताभावादो । जहा सम्मामिच्छत्तस्स एगा द्विदी दुसमयकालपमाणा जहण्णद्विदिविहत्ती होदि त्ति भणिदं तथा एत्थ वि अंतोमुहुत्तूण-वेमासमेत्ताद्विदीओ समयूणवेआवलिऊणवेमासकालपमाणाओ त्ति किण्ण परूविदं ? ण, चरिमणिसेय मोत्तूण सेसणिसेयाणमेम्महंतकालाभावादो । उवदेसेण विणा वि णिसेयाणं कालो अवगम्मदि त्ति वा सुत्ते ण भणिदो ।

\* माणसंजलणस्स जहण्णद्विदिविहत्ती मासो अंतोमुहुत्तूणो ।

§ ३७८ कुदो ? माणवेकिट्टीओ खविय तदियकिट्टि वेदयमाणस्स तस्स तदियकिट्टीपढमद्विदीए समयाहियावलियमेसाए माणचरिमद्विदिवंधो माममेत्तो । तत्तो उवरि समऊणदोआवलियमेत्तद्धाणे चडिदे चरिमसमयपवद्धद्विदीए अंतोमुहुत्तूणमास-मेत्तणिसेगाणमुवलंभादो । जदि णिसेगद्विदीओ चेव घेत्तूण जहण्णद्विदिविहत्ती बुच्चदि-

**समाधान—**नहीं, क्योंकि दो मास प्रमाण स्थितिके भीतर अन्त मुहूर्तप्रमाण आवाधा-कालमें कर्मनिपेक नहीं होनेसे जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्तकम दो महीना बन जाती है ।

**शंका—**निपेकोंकी स्थिति संज्ञा कैसे हो सकती है ?

• **समाधान—**नहीं, क्योंकि निपेकोंसे काल पृथग्भूत नहीं पाया जाता है अतः निपेकोंकी स्थिति संज्ञा होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

**शंका—**यहाँ पर कालको प्रधान क्यों नहीं किया है ?

**समाधान—**नहीं, क्योंकि कर्मोंकी प्ररूपणामें कालको प्रधानता नहीं प्राप्त होती है ।

**शंका—**जिस प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी दो समय कालवाली एक स्थिति जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ऐसा कहा है उसी प्रकार यहाँ भी अन्तमुहूर्त कम दो महीना प्रमाण स्थितियाँ एक समय कम दो आवलियोंसे न्यून दो महीना काल प्रमाण होती हैं ऐसा क्यों नहीं कहा ?

**समाधान—**नहीं, क्योंकि अन्तिम निपेकको छोड़कर शेष निपेकोंका इतना बड़ा काल नहीं पाया जाता है । अथवा उपदेशके बिना भी निपेकोंका काल जाना जाता है इसलिये सूत्रमें नहीं कहा है ।

\* मान संज्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्ति अन्तमुहूर्त कम एक महीना है ।

§ ३८८ **शंका—**मानसंज्वलनकी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त कम एक महीना क्यों है ?

**समाधान—**मानकी दो कृष्टियोंका क्षय करके तीसरी कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके उस तीसरी कृष्टिकी प्रथम स्थिति एक समय अधिक आवलीप्रमाण शेष रहने पर मानका अन्तिम स्थितिबन्ध एक महीना प्रमाण होता है । तदनन्तर एक समय कम दो आवली प्रमाण स्थान जने पर अन्तिम समयप्रारब्धकी स्थितिके निपेक अन्तमुहूर्त कम एक महीना प्रमाण पाये जाते हैं ।

तो चरिमसमयमाणावदयमि अहण्णसामिच्च किण्ण पक्खिज्जदि। अतोमुहुत्तुत्तं पदि विसेसामावादो ? य, तस्य समयाहियभाषस्त्रियमत्तणिसेगद्धिदीणं पढमद्विदीपं चवत्तमादो । पढमद्विदिणिसेगं गणिवेसु किण्ण दिक्खे ? य, तस्य हेहा चदकम्माणं चरिमसमयद्विदिबंभादो हेहा यि तणिसगाणह्णवत्तमादो । तम्हा समयूणदोभाष स्त्रियमेवदार्णं गंतूय चेष अहण्णद्विदिबिहृती हादि ।

॥ मायासंजलणस्स जहण्णद्विदिबिहृती अहमासो अतोमुहुत्तुत्तं ।

§ ३७९ जेण मायासमजलणचरिमद्विदिबंभस्स णिसेया अतोमुहुत्तुत्तं अह मासमेत्ता तेण समज्जणदोभाषस्त्रियमेवदयमत्तमयपपद्वेस गणिवेसु अतोमुहुत्तुत्तं मासमेवणिसेयद्विदीभो अहमंति तम्हा तस्य अहण्णद्विदिबिहृती हादि । सेसं सुगमं, कोपमाणसंमज्जणेसु पक्खित्तादो ।

॥ पुरिसवेदस्स जहण्णद्विदिबिहृती अहवत्तायि अतोमुहुत्तुत्तं ।

§ ३८० हृदो ? चरिमसमयसवेदणं वंभद्विदिबंभो अहवत्तमेत्तो ।

शंका—यदि निष्कोकी स्थितिको प्रत्यक्ष करके जपन्य स्थितिबिमर्षि कही जाती है तो मान वेदनके अन्तिम समयमें जपन्य स्थितिका स्वाभाविक क्यों नहीं कहा क्योंकि दोनों जगह दो महीनामें अन्तमु हुते कम है इसकी अपेक्षा दोनों जगह काई विस्तृता नहीं है ?

समाधान—नहीं क्योंकि मानवदनके अन्तिम समयमें प्रथम स्थितिके निष्कोकी भी एक समान आधिक आवश्यकता प्रमाण स्थिति पाई जाती है अतः वहाँ मानकी जपन्य स्थिति नहीं हो सकती है ।

शंका—तो फिर जिसने प्रथम स्थितिके निष्कोका गत्ता दिया है वह जपन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं माना जाता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि वहाँ पहले वंभे हुए कमोंकी अपेक्षा अन्तिम समयमें जो स्थिति कम होता है उसके नीचे भी इनके निष्को पाये जाते हैं । अतः एक समय कम दो आवश्यकता प्रमाण स्वान बाकर ही मानकी जपन्य स्थितिबिमर्षि होती है ।

॥ मायामन्वजनकी जपन्य स्थितिबिमर्षि अन्तर्मुहूर्त कम आधा महीना है ।

§ ३८६ चूंकि मायामन्वजनके अन्तिम स्थितिबिमर्षके निष्को अन्तर्मुहूर्त कम आधा महीना प्रमाण होते हैं इसलिये एक समय कम दो आवश्यकता प्रमाण नूतन समकालिकीके गत्ता देने पर अन्तमें निष्कोकी स्थितिभी अन्तमु हुते कम वर्षमास प्रमाण प्राप्त होती है इसलिये वहाँ जपन्य स्थितिबिमर्षि होती है। शय कम सुगम है, क्योंकि इसका कवन क्रोध और मान संवसनकी जपन्य स्थितिका कवन करते समय कर आये हैं ।

॥ पुरुषवेदकी जपन्य स्थितिबिमर्षि अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण होती है ।

§ ३८० शंका—पुरुष वेदकी जपन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण क्यों होती है ?

समाधान—क्योंकि सबेराभागके अन्तिम समयमें पुरुषवेदका जपन्य स्थितिबिमर्ष आठ वर्षप्रमाण



एणसेयट्टिदीओ पुण अतोमुहुत्तूणअट्टवस्समेत्ताओ; अंतोमुहुत्तावाहाए एणसेयरयणा-  
भावादो । पुणो समयूणदोआवलियमेत्तमद्वाणमुवरि गंतूण अंतोमुहुत्तूणअट्टवस्समेत्त-  
एणसेयट्टिदीणमुवलंभादो । सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीए जदि सत्तवाससहस्समेत्ता-  
वाहा लब्भदि तो अट्टण्ह वस्साणं किं लभामो त्ति पमाणेणिच्छाणुणिदफले ओवट्टिदे  
जेण एगसमयस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि तेण अट्टणं वस्साणमावाहा अंतो-  
मुहुत्तमेत्ता त्ति ण घट्ठे ? ण एस दोसो, ससारवत्थं मोत्तूण खवगसेठीए एवंविह-  
णियमाभावादो । त पि कुदो एव्वदे ? अट्टवस्साणि अतोमुहुत्तूणाणि पुरिसवेदस्स  
जहण्णट्टिदिविहत्ती होदि त्ति सुत्तादो । एदमत्थपदमण्णत्थ वि वत्तव्वं ।

❀ छण्णोकसायाणं जहण्णट्टिदिविहत्ती संखेज्जाणि वस्माणि ।

§ ३८१ एदस्स अत्थो बुच्चदे, अण्णदरवेदकसायाणमुदएण खवगसेठ्ठिं चडिय  
तदो जहाकमेण णवुंसयवेदमित्थिवेदं च खविय तदो छण्णोकसायखवणकालचरिम-  
समए चरिमट्टिदिकंडयचरिमफालीए संखेज्जवस्सपमाणए सैसाए छण्णोकसायाणं  
जहण्णट्टिदिविहत्ती होदि ।

होता है । परन्तु निषेकोंकी स्थितियों अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण ही होती हैं, कारण कि अन्त-  
र्मुहूर्त प्रमाण आवाधामें निषेकोंकी रचना नहीं पाई जाती है । पुनः एक समय कम दो आवाली  
प्रमाण काल ऊपर जाकर निषेकोंकी स्थितियों अन्तर्मुहूर्तकम आठ वर्ष प्रमाण पाई जाती हैं ।

शंका—सत्तर कोडाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिकी यदि सात हजार वर्ष प्रमाण आवाधा पाई  
जाती है तो आठ वर्षप्रमाण स्थितिकी कितनी आवाधा प्राप्त होगी, इस प्रकार त्रैराशिक विधिके  
अनुसार इच्छाराशिसे फलराशिको गुणित करके उसमें प्रमाणाशिका भाग देने पर चूँकि एक  
समयका असंख्यातवा भाग आता है, इसलिये आठ वर्षकी आवाधा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती  
है यह कथन नहीं बनता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि संसार अवस्थाको छोड़कर क्षपकश्रेणीमें इस  
प्रकारका नियम नहीं पाया जाता है ।

शंका—यह भी किस प्रमाणसे जाना जाता है ।

समाधान—‘पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष प्रमाण है’ इस  
सूत्रसे जाना जाता है ।

यह अर्थपद अन्यत्र भी कहना चाहिये ।

\* छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यात वर्षप्रमाण होती है ।

। ३८१ अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—किसी एक वेद और किसी एक कषायके उदयसे  
क्षपकश्रेणी पर चढ़कर तदनन्तर यथाक्रमसे नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका क्षय करके तदनन्तर छह  
नोकपायोंके क्षय करनेके अन्तिम समयमें उनके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिकी  
संख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिके शेष रहने पर छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

ॐ गदीसु अणुमगिद्वयम् ।

§ ३८२ गदीसु चि देसामासियवर्ण । सेख गदियादिसु चोइसममग्नहायेसु अणुमगिद्वयमिदि यणिदं होदि । एवं अइवसहारिणण सुबिदस्त अत्थस्त उचारणा-  
रिणण पक्खिदवक्खाणं भणिस्तामो । उचारणीयो अइवसहोयेण समाणो चि ए  
तत्थ वक्खमत्थि ।

§ ३८३ मणुस०-मणुसपञ्च०-पंचिदिय-पंचि०-पञ्च तस-तसपञ्च०-पंचमण-पंच  
वधि०-कायमोगि०-भोरासिय०-लोमकसाय-आमिणि०-सुद० मोहि०-सजद० वक्खु०  
अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक्क० भवसिद्धि०-सम्मादिद्धि०-सण्णि आहारीयमोयमंगो । णमरि  
मणुसपञ्च० इत्थिपेद० अह० मद्दाअ्हेदो पक्खिदो० असंखे० भागा । लोमकसाय० दोणं  
सजलणाणं अह० द्विदिअद्दा० अहाकमेण मद्द वस्ताणि चचारि मासा च अंतोमुहुचूणा ।

§ ३८४ आदेसेण णेरइएसु मिच्छन्त-वारसकसाय-भय-दुगुंदाणं अइण्णद्विदि  
विहारी सागरोवमसइत्थस्तस सच सचभागा चचारि सचभागा पक्खिदो० 'संखे० भागो  
ऊणा । तं अहा—मिच्छन्तस्त ताव चअदे । असण्णिपंचिद्विओ इदसमुप्पयियकमेण  
द्विदिपादं कादूण कयमइण्णमिच्छन्तद्विदिसंतकम्मो विग्गहगदीए णेरइएसु उववण्णो

● इसी प्रकार गतियोंमें अनुसन्धान करके समझना चाहिये ।

§ ३८२ सूत्रमें आया हुआ 'गदीसु' वह वचन देसामपक है, इत्थसिदे गति आदिक चौरह  
मार्गस्यास्थानोंमें अनुसन्धान करके समझना चाहिये यह एक सूत्रका अभिप्राय होता है । इस  
प्रकार यत्किन्पुन आचारिके द्वारा सुचित अर्थका उच्चारणाचार्यके द्वारा जो व्याख्यान किया गया  
है उसे चढ़ेंगे । उसमें भी उच्चारणाका ओष यत्किन्पुनके आचारे समान है अतः उच्चारणाके  
ओषका ज्ञान नहीं करेंगे ।

§ ३८३ इसमें भी सामान्य मनुष्य, मनुष्यपक्ष पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पक्षात् अत अत  
पक्षात्, पांचों मनोयोगी पांचों वचनयोगी काययोगी औरारिकपक्षयोगी, लोमकपायी आमिनि-  
वाधिकज्ञानी भूतज्ञानी, अवधिज्ञानी संयत अकुदधेनी अचकुदधेनी, अवचिदधेनी दुक्क-  
सेवबाबाले मग्ग सम्मन्धि, संघी और आहारक जीविके आचारे समान मंग है । इतनी  
विशेषता है कि मनुष्यपक्षात्के स्वावेष्टक अणुम स्थितिकान्तर पर्योयमके अंतकथातर्क  
मागयमाय है और लोमकपायबाले जीविके वा संखलताका जन्य स्थितिकान्तर क्रमसे  
अन्तमुहूर्त कम आठ वर्ष और अन्तमुहूर्तकम चार मास है ।

§ ३८४ आदेसकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वकी अवस्था स्थितिविपक्षिद्वार सागरके  
सात मार्गोंमेंसे पर्योयमके संख्यातर्क मागमे म्यून सातों मागयमाय है और वाद कथाय मव तथा  
जुगुप्साकी अवस्थास्थितिविपक्षिद्वार सागरके सात मार्गोंमें से पर्योयम संख्यातर्क मंग कम  
चार भागयमाय है । सुज्ञासा इस प्रकार है । इसमें पहले मिथ्यात्वको अवस्था स्थिति कहते  
हैं—जिसने इतसमुत्पत्तिक्रमसे स्थितिपाठ करके मिथ्यात्वका अवस्थास्थिति स्वरूप कर लिया

तस्स विदियसमये णेरइयस्स सागरोवमसहस्सस्स सत्त मत्तभागा पल्लिदो० संखे० भागेण ऊणा जहण्णट्ठिदिअद्वाछेदो होदि । णेरइओ सण्णिपचिंदिओ संतो अंतोकोडा-कोडिट्ठिदिं भिच्छत्तस्स किण्ण वंधदि ? सरीरे गहिदे पढमसमयप्पहुडि अंतोकोडा-कोडिट्ठिदिं चेव वंधदि, किं तु विग्गहगदीए असण्णिट्ठिदिं चेव वंधदि, पंचिंदियपाओग-जहण्णट्ठिदीए तत्थ संभवादो असण्णिपचिंदियपच्छायदत्तादो वा ।

§ ३८५. एवं वारसकसाय-भय-दुगुंछाणं वि वत्तव्वं । णवरि सागरोवम-सहस्सस्स चत्तारि सत्तभागा पल्लिदोवमस्स संखे० भागूणा । एवं सत्तणो कसायाण । इत्थिवेदस्स जहण्णट्ठिदिदो ताव वुच्चदे । तं जहा—जो असण्णिपंचिंदिओ हदसमुप्पत्तियकमेण कयतत्थतणजहण्णट्ठिदिसंतकम्मो तेण वंधावलिआदिवक्त-कसायट्ठिदिसतकम्मे सागरोवमसहस्सस्स चत्तारि सत्तभागमेचे पल्लिदो० संखे० भागेणूणे इत्थिवेदम्मि संकाभिय णेरइयेसुप्पण्णपढसमए इत्थिवेदवंधवोच्छेदे कदे कसायट्ठिदी इत्थिवेदम्मि ण संकमदि; वंधाभावेण पडिग्गहत्ताभावादो । तदो अंतोमुहूत्तकालं पुरिस-

है ऐसा कोई एक असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव जब विग्रहगतिसे नारकियोमे उत्पन्न होता है तब उस नारकीके दूसरे समयमें हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्यके सख्यातवें भागसे न्यून सातों भाग प्रमाण जघन्यस्थिति होती है ।

शंका—नारकी संज्ञी पंचेन्द्रिय है, अतः वह मिथ्यात्वकी अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण स्थितिको क्यों नहीं बाँधता है ?

समाधान—नारकी जीव शरीर ग्रहण करने पर प्रथम समयसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी प्रमाण स्थितिको ही बाँधता है किन्तु वह विग्रहगतिमें असंज्ञीकी स्थितिको बाँधता है, क्योंकि पंचेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिका पाया जाना नारकी विग्रहगतिमें संभव है । अथवा वह असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायसे लौटकर आया है, इसलिये भी वहाँ असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थिति पाई जाती है ।

§ ३८५ इसी प्रकार बारह कषाय, भय और जुगुप्साका भी कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमें से पत्यका सख्यातवों भाग कम चार भाग प्रमाण होती है । इसी प्रकार शेष सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है । उनमेंसे पहले स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति कहते हैं । वह इस प्रकार है—जिस असंज्ञी पंचेन्द्रियने हतसमुत्पत्तिकक्रमसे असंज्ञीके योग्य जघन्यस्थिति सत्कर्मको प्राप्त कर लिया है वह वन्धावलिके व्यतीत होने पर हजार सागरके सात भागोंमें से पत्योपमके सख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण कषायके स्थितिसत्कर्मका स्त्रीवेदमें सक्रमण करके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उत्पन्न होने पर पहले समयमें स्त्रीवेदकी वन्धव्युच्छिन्ति होनेसे उसके कषायकी स्थितिका स्त्रीवेदमें सक्रमण नहीं होता, क्योंकि स्त्रीवेदका वन्ध नहीं होनेसे उसमें प्रतिग्रह शक्ति नहीं रहती । ऐसा जीव तदनन्तर अन्तमुहूर्त काल तक पुरुषवेदका वन्ध करके पुनः अन्तमुहूर्त

वेदं धंधिय पुणो अंतोमुहुत्तफासं णवुसयवेदं धंधदि । णवुसयवेदं धंधगदाधरिमसमए  
इत्थिवदस्स महण्णादाध्देदी होदि । एवं पुरिसवेद-णवुसयवेद-इस्स रदि अरदि-सोगार्ण ।  
णनरि असन्निधरिमसमए इच्छिदणोकसाय धंधाविय तत्थेव धंधवोच्छेदं फाण्ण जेरइ  
एमुप्पण्णपइयसमयप्पहुदि अंतोमुहुत्तफासपडिवत्तपयवीओ धंधाविय पडिवत्तपयडि  
धंधगदाधरिमसमए इच्छिदणोकसायस्स महण्णादाध्देदी होदि ।

§ ३८६ एत्थ पडिवत्तपयडिधंधयदानं माहण्णानावणठ णोकसायदाण-  
मप्पावहुगं उच्चदे । त जहा—सम्बत्तोषा पुरिसवेदधंधगदा २ । इत्थिवेदधंधगदा  
संत्थेस्सगुणा ४ । इस्स-रदिधंधगदा संत्थे० गुणा १६ । अरदि-सोमधंधगदा संत्थे० गुणा  
३२ । णवुसयवेदधंधगदा विससाहिया ४२ । तिरिक्कगइ-मणुस्सगईस्स देव खिरय  
मईस्स च एसो अदप्पावहुआलाओ वत्तप्पो । एसो उच्चारणाइरियाणमहिप्पाओ ।

§ ३८७ अण्णे पुण कस्सात्थाइरिया एवं मण्णति—ओषप्पावहुमालाओ तिरिक्क  
मणुसगईस्स चेव होदि । थिरयमई पुण अण्णहा । तं जहा—सम्बत्तोषा पुरिस  
धंधगदा० ३ । इत्थिवधंधगदा संत्थे० गुणा ६ । इस्स-रदिधंधगदा विसे० ११ ।  
णवुसयधंधगदा संत्थे० गुणा २२ । अरदि-सोमधंधगदा विसेसाहिया २३ । देवगइए  
थिरयमईमो । इद्विधधंधगदधंधरिमधंधगदध्मि सोहिदे सुदसेसं विसेसपमाणं होदि ।

कल्ल ठक नपु सज्जेवका कम्म करता है अठा उसके नपु सज्जेवके वन्ध ज्ञानके अन्तिम समयमें  
स्त्रीवेदकी कम्म स्थिति होती है । इसी प्रकार पुरुषवेव नपु सज्जेव ज्ञान रति, अरति और  
मोक्षकी कम्म स्थिति करनी चाहिये । परन्तु इतनी विवेका है कि असंतीके अन्तिम समयमें  
इच्छित नोक्याकल्ल कम्म कराकर और वहीं उसकी कम्मव्युत्पत्ति कराके नारकियोंमें उत्पन्न होनेके  
पहले समयसे लेकर अण्णमु हुते कल्ल ठक पठिपक्क प्रकृतियोंका कम्म कराकर प्रतिपक्क प्रकृतियोंके  
वन्धकालके अन्तिम समयमें इच्छित नोक्याकल्ल की कम्म स्थिति करनी चाहिये ।

§ ३८६ अब यहाँ प्रतिपक्क प्रकृतियोंके वन्ध कल्लके वीपत्तक ज्ञान करानेके लिए अथान्  
एत्तु वन्धकल्ल वत्तज्ञानेके लिये नोक्यायोंके कल्लके अस्पवहुत्वको कहते हैं । यह इस प्रकार है—  
पुरुषवेवका कम्मकल्ल सबसे बोझा २ है । इससे स्त्रीवेवका कम्मकल्ल संत्थातगुणा ४ है । इससे  
ज्ञान और रतिका कम्म कल्ल संत्थातगुणा १६ है । इससे अरति और आकल्ल कम्मकल्ल  
संत्थातगुणा ३० है । इससे नपुसक कल्ल कम्मकल्ल विशेष अधिक ४२ है । जिनकी धर्मसंरुद्धि  
कमका २, ४ १६ ३२ और ४२ है । यह अस्पवहुत्व तिर्यग्गति, मनुज्यगति, देवगति और  
नरकगतिमें करना चाहिये । यह उच्चारणवर्षका अभिप्राय है ।

§ ३८७ परन्तु अग्य कम्मसमानात्थाय इस प्रकार ध्यान करत हैं—ओष अन्नवहुत्वात्ताप  
तिर्यग्गति और मनुज्यगतिमें ही होना है । परन्तु नरकगतिमें अग्य मफ्फरते होता है । यह इस  
प्रकार है—पुरुषवेवका कम्मकल्ल सबसे बोझा ३ है । इससे स्त्रीवेवका कम्मकल्ल संत्थातगुणा ६ है ।  
इससे ज्ञान और रतिका कम्मकल्ल विशेष अधिक ११ है । इससे मणुसकवेवका कम्मकल्ल संत्थात-  
गुणा २२ है । इससे अरति और आकल्ल कम्मकल्ल विशेष अधिक २३ है । जिनकी धर्मसंरुद्धि  
कमका ३ ६ ११, २२ और २३ है । तथा देवगतिमें नरकगतिसे समान मंग है । यहाँ नीचेके  
कम्मकल्लको करके कम्मकल्लमेंसे पढा देने पर जो शेष रहता है वह विशेषका प्रमाण है । य

ही है। सात नोकपायोंकी यद्यपि जघन्य स्थिति एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्यके संख्यातवें भाग कम चार भागप्रमाण ही प्राप्त होती है पर यह स्थिति विग्रहके दूसरे समयमें न प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् प्राप्त होती है। यथा—वेद तीन हैं और ये प्रतिपत्त प्रकृतियाँ हैं। इनमेंसे किसी एकका बन्ध होते समय शेष दोका बन्ध नहीं होता। अब यदि कोई असंज्ञी जीव स्त्रीवेदके जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर पुरुषवेदका बन्ध करने लगा। पुनः पुरुषवेदके स्थानमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक नपुसकवेदका बन्ध करने लगा तो उस नारकीके नपुसकवेदके बन्ध होनेके अन्तिम समय तक स्त्रीवेदकी उक्त प्रमाण जघन्य स्थितिके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अपस्तन निपेकोंका और गलन हो जायगा किन्तु स्थितिमें वृद्धि नहीं होगी, अतः नरकमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्व नपुसकवेदके बन्धके अन्तिम समयमें प्राप्त हुआ। तथा पुरुषवेद, नपुसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकके विषयमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु हास्यादिकी जघन्य स्थिति एक अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् कहनी चाहिये, क्योंकि इनकी प्रतिपत्तभूत एक एक प्रकृतियों होनेसे एक अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः इनका बन्ध होने लगता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमेंसे जिनका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना हो उनका असंज्ञीके अन्तिम समयमें बन्ध कराकर नरकमें उत्पन्न होने पर उनकी प्रतिपत्तभूत प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्तकाल तक बन्ध कहना चाहिये और इस अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समयमें उस उस प्रकृतिका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना चाहिये। तथा सम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति एक समय और सम्यग्मिध्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति दो समय ओघके समान नरकमें भी बन जाती है, क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके कृतकृत्यवेदके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजना करनेवाले नारकीके अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें बन जाती है। किन्तु सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनामें ही बनेगी, क्योंकि सम्यग्मिध्यात्वकी क्षण मनुष्यगतिको छोड़कर अन्यत्र नहीं होती। सामान्य नारकियोंके जो मिथ्यात्वादि कर्मोंकी जघन्य स्थिति कही है इसी प्रकार पहले नरकके नारकी, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी जानना चाहिये, क्योंकि इनमें भी असंज्ञी जीव मर कर उत्पन्न होते हैं। किन्तु भवनवासी और व्यन्तरोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते, अतः इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय न कहकर सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिके समान दो समय कहनी चाहिये, क्योंकि उद्वेलनाकी अपेक्षा इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति दो समय बन जाती है। द्वितीयादिक पाँच नरकोंमें न तो असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होता है और न सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होता है, अतः वहाँ मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी जघन्य स्थिति ऊपर कहे अनुसार नहीं बन सकती। फिर वह किस प्रकार बनती है आगे इसीका खुलासा करते हैं—कोई एक जीव द्वितीयादिक नरकोंमें अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् वह उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करना चाहता है। ऐसी हालतमें उसने मिथ्यात्वकी स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिघात किया और उसे इतनी रखी जो उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके कमसे कम हो सकती है। पुनः उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके साथ उत्कृष्ट स्थितिघात किया। यहाँ वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण कराकर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना इसलिये नहीं कही, क्योंकि वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके स्थितिघात करनेका कोई नियम नहीं है। पुनः वह जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहा और इस प्रकार मिथ्यात्वकी अधःस्थितिके एक एक निषेकको गलाता

॥ ३९० ॥ तिरिक्खेसु मिच्छत्त-वारसकमाय-गणणोक्तायाणं महण्णद्विदिशद्वा  
 धेदो सामरोपमस्स[सत्त]सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा पस्सिदो० असंखे० भागेय ऊणया ।  
 सम्मत्त-सम्मामि० अणुताणुवधियज्जकाणमोयं । पंचि० तिरिक्ख-पंचि० तिरि० पज्ज०  
 पंचि० तिरिक्खमोणिणीसु मिच्छत्त-वारसकसाय-अय दुमुद्धानं महण्ण० सागरोपम  
 सइस्सस्स सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा ये सत्तभागा पस्सिदो० संखे० भागेय  
 ऊणया । सत्तलोक्तायाणं सागरोपमस्स चत्तारि सत्तभागा पस्सिदो० असंखे० भागेय  
 पविक्खत्तवंधगद्धादियऊणया । सेसं तिरिक्खोयं । णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० सम्मा  
 मिच्छत्तमंगो । पंचि० तिरि० अपज्ज० पंचि० तिरि० जोणिणीमंगो । एवरि अणुताणु० ४  
 वारसक० मंगो ।

एह। इस प्रकार अपनी आयुके अन्तिम समयमें उसके मिथ्यात्वकी वचन्य स्थिति होगी ।  
 इसी प्रकार स्त्रीपक्ष और तदुल्लेखकी वचन्यस्थिति कहनी चाहिये क्योंकि सम्मत्तल्लिके इन दोनों  
 पक्षोंका वन्ध नहीं होता अतः इनकी एक प्रकारसे वचन्य स्थिति बन जाती है । तथा इनके  
 सम्मत्त सम्ममिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी बहुपक्षकी वचन्य स्थिति हो समय होती है जिसका  
 सुज्ञासा भवनासारिके इनकी वचन्यस्थिति करते समय कर जाये हैं । तथा सातवें तरुमें जो  
 विशेषता है उसका सुज्ञासा मूलमें ही कर दिया है ।

॥ ३९६ ॥ तिर्येयोमि मिध्यात्वका वचन्य स्थितिअज्ञात्वेव एक सागरके सात मार्गोंमेंसे पस्वो  
 पमके असंख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है । बारह कपाय और नौ नोक्कायोंका एक  
 सागरके सात मार्गोंमेंसे पस्वोपमके संख्यातवें भागसे न्यून बार भागप्रमाण है । सम्मत्त  
 सम्ममिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी बहुपक्ष वचन्य स्थितिकाल जोपके समान है । पंचेन्द्रियतिर्येय  
 पंचेन्द्रियतिर्येयपर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्येय योनिमयी जीवोंमें मिध्यात्वका वचन्यस्थिति सत्त्वकाल  
 एक हजार सागरके सात मार्गोंमेंसे पस्वोपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है । बारह  
 कपायोंका वचन्यस्थिति सत्त्वकाल एक हजार सागरके सात मार्गोंमेंसे पस्वोपमके संख्यातवें भागसे  
 न्यून बार भागप्रमाण है और अय तथा अणुताणुका वचन्यस्थिति सत्त्वकाल एक हजार सागरके  
 सात मार्गोंमेंसे पस्वोपमके संख्यातवें भागसे न्यून दो भागप्रमाण है । सात नोक्कायोंका  
 वचन्यस्थिति सत्त्वकाल एक सागरके सात मार्गोंमेंसे अपनी प्रतिपक्ष प्रकृतिबोधे वचन्यस्थिति  
 और पस्वके असंख्यातवें भागसे न्यून बार भागप्रमाण है । शेष अयम सामान्य तिर्येयोंके समान  
 है । इतनी विशेषता है कि योनिमयी तिर्येयोंमें सम्मत्तल्लिके भेग सम्ममिध्यात्वके समान है ।  
 पंचेन्द्रियतिर्येय अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रिय तिर्येय योनिमयीके समान भेग है । इतनी विशेषता है कि  
 अनन्तानुबन्धी बहुपक्ष भेग बारह कपायोंके समान है ।

विशेषार्थ—तिर्येयोंमें पंचेन्द्रिय भी सम्मिलित हैं, अतः पंचेन्द्रियोंकी जो वचन्य स्थिति  
 है वही पक्ष मिध्यात्व बारह कपाय और नौ नोक्कायोंकी सामान्य तिर्येयोंके वचन्यस्थिति  
 जाननी चाहिये किन्तु अनन्तानुबन्धीकी विसंबोबना संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त ॥ करता है,  
 अतः अनन्तानुबन्धी बहुपक्षकी वचन्य स्थिति जोपके समान हो समय जानना । सम्मत्त  
 की वचन्यस्थिति इतदुल्लेखके समान एक समय जानना । किन्तु कर्मकी कितनी वचन्य  
 स्थिति है यह मूलमें बतलाया ही है । पंचेन्द्रियतिर्येय पंचेन्द्रियतिर्येय पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्येय  
 योनिमयी जीवोंके मिध्यात्व और बारह कपायकी वचन्य स्थिति वसंज्ञियोंकी वचन्य स्थितिके

एदाओ वंधगद्धाओ चदुगदिजहण्णअद्धाच्छेदस्स साहणीओ होंति ।

§ ३२८ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुवंधिचउक्काणं ओघभंगो । एवरि सम्मत्तं एणिएसुप्पण्णकदकरणिज्जस्स चरिमसमए जहण्णं होदि । सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लणाए वत्तव्वं । एवं पढमाए भवण०-वाण० । एवरि भवणवासिय-वाणवेंतरेसु सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो । विद्यादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्तस्स जहण्णद्विदिअद्धाच्छेदे भण्ण-माणे मिच्छाइही अण्णप्पणो एणिएसु उप्पज्जिय पज्जत्तयदो होदूण उवसमसम्मत्तं गेण्हाणेण जेण सव्वुकस्सओ द्विदिघादो कदो, पुणो अंतोमुहुत्तं गतूण अणंताणुवंधि-चउक्कं विसंजोएयाणेण जेण उक्कस्सओ द्विदिघादो कदो तस्स सगसगुक्कस्साउअमेत्त-द्विदीओ अंधाद्विदिगलणाए गालिय सगाउअचरिमसमए वट्टमाणस्स अतोकोडाकोडी-सागरोवममेत्तद्विदीओ मिच्छत्तस्स जहण्णओ अद्धाच्छेदो । एवं इत्थि-एवु सयवेदाणं । सम्मत्त सम्मामिच्छत्त-अणंताणुवंधिचउक्काणमोघभंगो । एवरि सम्मत्तस्स भवण०भंगो; उव्वेल्लणाए जहण्णअद्धाच्छेदग्गहणादो । वारसकसाय-सत्तणोकसायाणं उवसमसम्मत्त-ग्गहणकाले सव्वुकस्सयं द्विदिघादं कादूण पुणो अणताणुवंधिचउक्कस्स विसंजोयणं

बन्धकाल चारों गतियोंके जघन्य कालके साधक होते हैं । अर्थात् इनसे चारों गतियोंका जघन्य स्थितिअद्धाच्छेद निकाला जाता है ।

§ ३२८ नारकियोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति ओघके समान है । पर इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें उत्पन्न हुए कृतकृत्यवेदकके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति होती है । तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलनाके समय जघन्यस्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, भवनवासी और व्यन्तरोके कथन करना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि भवनवासी और व्यन्तरोके सम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति सम्यग्मिथ्यात्वके समान होती है । दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तक मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अद्धा-च्छेदका कथन करनेपर जो मिथ्यादृष्टिजीव अपने अपने नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ पर्याप्त होकर जिसने उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए सबसे उत्कृष्ट स्थितिघात किया पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल व्यतीत करके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके हेतु जिसने उत्कृष्ट स्थितिघात किया वह अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण स्थितियोंको अधःस्थितिगलनाके द्वारा गलाता हुआ जब अपनी आयुके अन्तिम समयमें विद्यमान रहता है तब उसके अन्तःकोडाकोडी सागरप्रमाण मिथ्यात्वका जघन्यस्थितिअद्धाच्छेद होता है । इसी प्रकार स्त्रीवेद और नपुमकवेदका जघन्यस्थिति काल कहना चाहिये । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग आघके समान है । इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति भवनवासियोंके समान है, क्योंकि यहाँ उद्देलनाके द्वारा प्राप्त होनेवाले जघन्य स्थिति अद्धाच्छेदका ग्रहण किया है । उपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके समय सर्वोत्कृष्ट स्थितिघात करके पुनः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना

कुणमाणदाए वि सन्धुहस्सय द्विदिपाद कादण पुणो जहस्साठअमणुपास्सिय छिप्पिय माणसम्माइद्विचरिमसमए अंतोकोदाकोदीसामरोवममेचहिदीओ जहणमदाच्छेदो । एवरि एनुसयवद मोचूण अण्णासिं सन्धपयवीण परोदएण जहणमदाच्छेदो वचन्वो । कुदो ? उदयद्विदीए विपुहसंकमेण गवाए जहणसु मवपीदा ।

१३८६ एव सत्तमाए वि वचन्व । जवरि मिच्छत्तस्स जहणमदाच्छेदे मण्णमाणे पइयसम्मत्तमाहणअ अणतात्तुर्धमिचत्तकविंसंयोगणाए च सन्धुहस्सयं द्विदिपाद कादण सम्मत्तेण सह तत्तीससागरावमणुपास्सिय तदा अंतोसुहुचावसेसे आठए मिच्छत्तं गदूण अंतोसुहुचकात्तं संतस्स हेहा वंधिय पुहा । संतसमाणद्विदि वंध माणवरिमसमए अंतोकोदाकादिसागरापममेचहिदीओ वचूण जहणमदाच्छेदो हावि । एवं सोलसकसाय मय-इगुंजाण । सत्तणोकसायार्ण पि एवं चेव । जवरि मिच्छत्तं गदूण जहणमद्विदिसंतसमाणबंधे संनादे अप्यप्पणो पडियक्खपपगद्धाओ बंधाविय तासि चरिमसमए जहणमदाच्छेदो वचन्वो ।

करनेके समय मी सर्वोत्कृष्ट स्थितिघात करके पुनः उत्कृष्ट आमुका पासम करके दो सम्मदृष्टि नरकसे निकलना चाहता है उससे नरकसे निकलनेके अन्तिम समय में पाद कपाय और सात नोकपायोका अन्तःकर्मकोही सागरप्रमाण जपम्यस्थिति अद्याच्छेद होता है । इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदको छोड़कर अन्य सभी प्रकृतियोंका परोक्षसे जपम्य स्थितिअद्याच्छेद कहना चाहिये, क्योंकि स्तिबुद्धस्तेकमणक द्वारा जपस्थितिके कम हो जाने पर जपम्यपना वन जाता है ।

१३८७ इसी प्रकार सातवीं पृष्ठीमें मी कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी जपम्य स्थितिका कवन करत समय जो प्रथम सम्मत्त्वका प्रत्य करमेसे और अन्तस्तुबन्धी जपुष्ककी विस्तारब्रमा करमेसे सर्वोत्कृष्ट स्थितिघात करके सम्मत्त्वके सात ठठीस सागर आमुका पासम करके तत्पन्तर आमुके अन्तस्तु हुत कालप्रमाण सात खम पर मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सप्तार्थे स्थित कर्मसे कम स्थितिघात कर्मकर बन्ध करके पुनः सप्तार्थे स्थित कर्मके समान स्थितिघाते कर्मका बन्ध करता है उसक अन्तिम समयमें अन्तःकोदाकोही सागरप्रमाण स्थितिकी अपका जपम्यस्थिति अद्याच्छेद होता है । इसी प्रकार सोलह कपाय मय और जुगुप्ताका जपम्यस्थिति अद्याच्छेद कहना चाहिये । तथा इसी प्रकार सात नोकपायोका मी कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जपम्य स्थिति सत्त्वके समान बन्धके होन पर अपनी अपनी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध करके उनके पञ्चकसके अन्तिम समयमें सात नोकपायोका जपम्यस्थिति अद्याच्छेद कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो अष्टमी बीज मिथ्यात्व पाद कपाय मय और जुगुप्ताके जपम्यस्थिति सत्त्वके सात नरकमें उपम हुआ है उसके विपक्षके दूसरे समयमें एक कर्मोकी जपम्य स्थिति विपक्षि हाती है । विपक्षगतिके दूसरे समयमें बहनेका कारण यह है कि शरीरप्रत्यक्ष करनके पश्चात् इसके तीनों पञ्चन्द्रियक योग्य स्थितिका बन्ध होन लगता है । किन्तु विपक्षगतिमें ऐसा बीज अष्टमीके योग्य स्थितिका ही बन्ध करता है । मिथ्यात्वाविधी जपम्य स्थिति मूलमें वचसार्थ



ही है। सात नोकपायोंकी यद्यपि जघन्य स्थिति एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्थके संख्यातवें भाग कम चार भागप्रमाण ही प्राप्त होती है पर यह स्थिति त्रिग्रहके दूसरे समयमें न प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चान् प्राप्त होती है। यथा—वेद तीन है आर ये प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। इनमेंसे किसी एकका वन्ध होते समय ग्रेप दोका वन्ध नहीं होता। अब यदि कोई असजी जीव स्त्रीवेदके जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर पुरुषवेदका वन्ध करने लगा। पुनः पुरुषवेदके स्थानमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक नपुसकवेदका वन्ध करने लगा तो उस नारकीके नपुसकवेदके वन्ध होनेके अन्तिम समय तक स्त्रीवेदकी उक्त प्रमाण जघन्य स्थितिके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अधस्तन निषेकोका और गलन हो जायगा किन्तु स्थितिमें वृद्धि नहीं होगी, अतः नरकमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्व नपुसकवेदके वन्धके अन्तिम समयमें प्राप्त हुआ। तथा पुरुषवेद, नपुसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकके विषयमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु हास्यादिकी जघन्य स्थिति एक अन्तर्मुहूर्तके पश्चान् कहनी चाहिये, क्योंकि इनकी प्रतिपक्षभूत एक एक प्रकृतियों होनेसे एक अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः इनका वन्ध होने लगता है। किन्तु इतनी विवेकता है कि इनमेंसे जिनका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना हो उनका असजीके अन्तिम समयमें वन्ध कराकर नरकमें उत्पन्न होने पर उनकी प्रतिपक्षभूत प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्तकाल तक वन्ध कहना चाहिये और इस अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समयमें उस उस प्रकृतिका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना चाहिये। तथा सम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति एक समय और सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति दो समय ओषके समान नरकमें भी वन जाती है, क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके कृतकृत्यवेदके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजना करनेवाले नारकीके अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें वन जाती है। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें ही वनेगी, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य मनुष्यगतिको छोड़कर अन्यत्र नहीं होती। सामान्य नारकियोंके जो मिथ्यात्वादि कर्मोंकी जघन्य स्थिति कही है इसी प्रकार पहले नरकके नारकी, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी जानना चाहिये, क्योंकि इनमें भी असजी जीव मर कर उत्पन्न होते हैं। किन्तु भवनवासी और व्यन्तरोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते, अतः इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय न कहकर सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके समान दो समय कहनी चाहिये, क्योंकि उद्वेलनाकी अपेक्षा इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति दो समय वन जाती है। द्वितीयादिक पाँच नरकोंमें न तो असजी जीव मरकर उत्पन्न होता है और न सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होता है, अतः वहाँ मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी जघन्य स्थिति ऊपर कहे अनुसार नहीं वन सकती। फिर वह किस प्रकार वनती है आगे इसीका खुलासा करते हैं—कोई एक जीव द्वितीयादिक नरकोंमें अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् वह उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करना चाहता है। ऐसी हालतमें उसने मिथ्यात्वकी स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिघात किया और उसे इतनी रखी जो उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके कमसे कम हो सकती है। पुनः उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके साथ उत्कृष्ट स्थितिघात किया। यहाँ वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण कराकर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना इसलिये नहीं कही, क्योंकि वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके स्थितिघात करनेका कोई नियम नहीं है। पुनः वह जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहा और इस प्रकार मिथ्यात्वकी अधःस्थितिके एक एक निषेकको गलाता

§ ३९० विरिक्तेषु मिच्छन्त-भारसकसायण णवगोक्तसायण जहण्णद्विदिग्धा  
 धरो सागरीवमस्त[सच]सचमाणा चचारि सचमाणा पस्सिदो० अस्तसे० भागेण ऊणया ।  
 सम्मच्च सम्मामि० अण्णताणुवंधिचक्रकाणमोच । पंचि० विरिक्त्व-पंचि० विरि० पञ्च०  
 पंचि० विरिक्त्वमोणिणीसु मिच्छन्त-भारसकसाय-भय-दुग्गुणार्ण जहण्ण० सागरीवम-  
 सस्तसस्त सच सचमाणा चचारि सचमाणा वे सचमाणा पस्सिदो० सखे० भागेण  
 ऊणया । सचणोक्तसायण सागरीवमस्त चचारि सचमाणा पस्सिदो० अस्तसे० भागेण  
 पस्सिद्वत्त्वमण्णद्विदिग्धाहियऊणया । सेस विरिक्त्वोच । एववि मोणिणीसु सम्मच्च० सम्मा  
 मिच्छन्तमंगो । पंचि० विरि० अपञ्च० पंचि० विरि० मोणिणीमंगो । एववि अण्णताणु० ४  
 भारसक० मंगो ।

या । इस प्रकार अपनी प्राप्ति के अन्तिम समयमें उसके मिथ्यात्वकी जपन्य स्थिति होगी ।  
 इसी प्रकार स्त्रीवद और नृपुंसकवदेकी जपन्यस्थिति करने की चाहिने क्योंकि सम्यग्दर्शिके इन दोनों  
 वैशेषिक बन्ध नहीं होता अतः इनकी एक प्रकारसे जपन्य स्थिति बन जाती है । तथा इनके  
 सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तालुब्धकी चतुष्पक्षी जपन्य स्थिति हो समय होती है जिसका  
 सुवासना मग्नतासर्वोके इनकी जपन्यस्थिति करते समय कर आये हैं । तथा सातवें नरकमें जो  
 विशेषता है उसका सुवासना मूलमें ही कर दिया है ।

§ ३९० तिर्यचोर्मि मिथ्यात्वका जपन्य स्थितिब्रह्मण्डे एक सागरके सात भागोंमेंसे पत्थो  
 पमके असंख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है । बाह्य कपाय और नौ नोकपायोका एक  
 सागरके सात भागोंमेंसे पत्थोपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है । सम्यक्त्व,  
 सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तालुब्धकी चतुष्पक्षी जपन्य स्थितिकाल जोयके समान है । पंचेन्द्रियतिर्यच  
 पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच योगिनती बीजोंमें मिथ्यात्वका जपन्यस्थिति सत्त्वकाल  
 एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्थोपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है । बाह्य  
 कपायोका जपन्यस्थिति सत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्थोपमके संख्यातवें भागसे  
 न्यून चार भागप्रमाण है और अब तथा सुगुणका जपन्यस्थिति सत्त्वकाल एक हजार सागरके  
 सात भागोंमेंसे पत्थोपमके संख्यातवें भागसे न्यून दो भागप्रमाण है । सात नोकपायोका  
 जपन्यस्थिति सत्त्वकाल एक सागरके सात भागोंमेंसे अपनी प्रतिपक्ष प्रवृत्तियोंके कथकाससे  
 और पत्थके असंख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है । शेष कबल सामान्य तिर्यचोंके समान  
 है । इतनी विशेषता है कि योगिनती तिर्यचोंमें सम्यक्त्वका और सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।  
 पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यच योगिनतीके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि  
 अनन्तालुब्धकी चतुष्पक्षी भंग बाह्य कपायोके समान है ।

विशुद्धार्थ—तिर्यचोर्मि पंचेन्द्रिय भी सम्मिश्रित हैं अतः पंचेन्द्रियोकी जो जपन्य स्थिति  
 है वही पक्ष मिथ्यात्व बाह्य कपाय और नौ नोकपायोकी सामान्य तिर्यचोंके जपन्यस्थिति  
 जाननी चाहिने किन्तु अनन्तालुब्धकी विसंयोजन संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त ही करता है,  
 अतः अनन्तालुब्धकी चतुष्पक्षी जपन्य स्थिति जोयके समान हो समय जानना । सम्यक्त्व  
 की जपन्यस्थिति इतइत्येवैक सम्यग्दर्शिके समान एक समय जानना । किन्तु कर्मकी दृष्टिनी जपन्य  
 स्थिति है यह मूलमें बतलाया ही है । पंचेन्द्रियतिर्यच पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच  
 योगिनती बीजोंके मिथ्यात्व और बाह्य कपायकी जपन्य स्थिति असंखिकोंकी जपन्य स्थितिके

§ ३६१, मणुसिणि० एनुंसयवेद० जहण्ण० पन्निदो० अमंखे० भागो । पुरिस० जह० संखेज्जाणि वस्साणि । संपपयडीणमोघभंगो । मणुसअपज्ज० पंचि०तिरि०अपज्जत्तभंगो ।

समान जानना । भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्यके सख्यातवें भाग कम दो भागप्रमाण होती है । इसका कारण यह है कि ये दोनों वृक्षजिनी प्रकृतियाँ हैं । अब यदि कोई एकेन्द्रिय जीव उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उसने पहले समयमें असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थितिका ग्रन्थ किया तो उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण ही प्राप्त होगी । यदि कहा जाय कि इस जीवके उस समय सोलह कपायोंकी जघन्य स्थिति भय और जुगुप्सारूपसे संक्रमित हो जायगी, अतः भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति भी सोलह कपायोंकी जघन्य स्थितिके समान प्राप्त हो जायगी तो भी बात नहीं है, क्योंकि नवीन वन्धका एक आचलिके बाद ही अन्य प्रकृतिरूपसे मक्रमण होता है और यह जीव एकेन्द्रिय पर्यायसे आया है, अतः इसके सोलह कपायोंकी असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थिति उसी समय प्राप्त हुई है, अतः उसका संक्रमण नहीं हो सकता । तथा सात नोरुपाय प्रतिपत्त प्रकृतियाँ हैं अतः जो एकेन्द्रिय उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ है उसके समान नोरुपायोंकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंकी जघन्य स्थितिके समान होती है । किन्तु दृष्टनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थिति कहते समय अपनी अपनी प्रतिपत्त प्रकृतियोंके वन्धकालको और घटा देना चाहिये, क्योंकि प्रतिपत्त प्रकृतियोंका वन्ध होते समय शेष सजातीय प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता और उसके अधःस्थितिगलनारूपसे प्रतिपत्त प्रकृतियोंके वन्धकाल प्रमाण निपेक्ष गल जाते हैं । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिश्रयात्वकी जघन्य स्थिति सामान्य तिर्यचोंके समान क्रमसे दो समय, एक समय और दो समय प्रमाण वन जाती है । तुलासा सामान्य नारकियोंके समान जानना । किन्तु योनिमती तिर्यचोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता अतः वहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय नहीं बनती । अतः जिस प्रकार उद्वेलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिश्रयात्वकी दो समय जघन्य स्थिति कही उसी प्रकार योनिमतियोंके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कहनी चाहिये । पचेन्द्रियतिर्यच लब्धपर्याप्तकोके अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़कर शेष सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति यानिमती तिर्यचोंके समान वन जाती है । किन्तु अनन्ताबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति शेष बारह कपायोंकी जघन्य स्थितिके समान होती है, क्योंकि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती ।

§ ३६१ मनुष्यनियोंमें नपुसकवेदका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण है । पुरुषवेदका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल सख्यात वर्ष है । तथा शेष प्रकृतियोंका ओघके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान भग है ।

विशेषार्थ—मनुष्यनियोंके नपु सकवेद और पुरुषवेदको छोड़कर सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान वन जाती है, क्योंकि इनके क्षाधिक सम्यग्दर्शन और क्षपकश्रेणीकी प्राप्ति सम्भव है । किन्तु इनके क्षपकश्रेणीमें जिस समय नपुसकवेदकी द्वितीय स्थितिके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेदमें संक्रमण होता है उस समय उसकी पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण स्थिति पाई जाती है, अतः इनके नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण जाननी चाहिये । तथा इनके पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति सख्यात वर्ष प्रमाण होती है, क्योंकि मनुष्यनियोंके पुरुषवेदका क्षय छह नोरुपायोंके साथ होता है, इसलिये जब यह जीव पुरुषवेदके साथ छह नोरुपायोंके अन्तिम फालिका संक्रमण क्रोधसंज्वलनमें

१३६२ देवाणं गिरमोषं । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि आव  
चनरिमगणजे चि विदियपुढविभंगो । जवरि दोभारसुवसमसहिं चडाविय उहस्त  
द्विदिपार्द कराविय पुणो ओदरिय दंसणमोहणीय स्वइय अप्पिदवेषु उहस्ताठिदी-  
एसुप्पाइय विप्पिदमाणदवचनरिमसमण जहणजडादेदो वचम्भो । सम्मचस्त देवोषं ।  
मणुदिसादि जाय सम्मदसिद्धि चि एयं चेय । जवरि सम्मामिच्छचस्त मिच्छचमंगो ।

करता है उस समय पुरुषत्वकी द्वितीय स्थितिमें स्थित अन्तिम कासिकी स्थिति संस्थात वर्ष  
प्रमाण पाई जाती है । सूर्यपरायाप्तक मनुष्योंके सब कर्मोंकी अपन्य स्थिति पंचेन्द्रिय तिर्यक्  
सूर्यपरायाप्तकोंके समान बतानेका कारण यह है कि जो एकत्रिय जीव अपने स्थिति कर्मके  
बोध्य स्थितिके साथ सूर्यपरायाप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होता है उसके यथायोग्य समयमें सब  
कर्मोंकी सूर्यपरायाप्तक तिर्यकोंके समान अपन्य स्थिति बन जाती है । किन्तु सम्पत्त्व और  
सम्बन्धितत्वकी अपन्य स्थिति दो समय बट्टेसनाकी अपेक्षा कइनी चाहिये ।

१३६२ देवोंमें सामान्य नारिक्योंके समान अपन्य स्थिति है । ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके  
समान संग है । सौधमें स्वर्गसे लेकर उपरिम मैत्रेयक तक दूसरी पृथिवीके समान संग है । इतनी  
विशेषता है कि जो दो बार उपसमनेयी पर पहुँच और उल्टा स्थितिपात करके पुनः उतर कर  
और बट्टेसनाहनीयका वय करके उल्टा आमुवाले विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके बट्टेस  
निरुक्तके अन्तिम समयमें बाह्य काराग और नो नोकरावका अपन्य स्थिति सत्त्वकल्ल करना  
चाहिये । सम्पत्त्वका सामान्य देवोंके समान अपन्य स्थिति सत्त्वकल्ल है । अनुदिससे लेकर  
सवावसिद्धितक भी इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि सम्पत्त्वमिच्छात्वका स्थितिसत्त्वकल्ल  
मिच्छात्वक समान है ।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंमें सामान्य नारिक्योंके समान अपन्य स्थिति कहनेका कारण  
यह है कि असंखी जीव भी देवोंमें उत्पन्न होते हैं अतः इस अपेक्षासे देवोंमें नारिक्योंके समान  
मिच्छात्व बाह्य काराग और नो नोकरावोंकी अपन्य स्थिति पटित हो जायगी । तथा विसंबो-  
बनाकी अपेक्षा अनन्तसुखकी अनुपककी, ज्योतनाकी अपेक्षा सम्बन्धितत्वकी और कृतकृत्यवेदक  
सम्पत्त्वकी अपेक्षा सम्पत्त्वकी अपन्य स्थिति भी नारिक्योंके समान देवोंके बन जाती है । तथा  
ज्योतिषियोंमें असंखी जीव मर कर उत्पन्न नहीं होता अतः इनके दूसरी पृथिवीके समान मिच्छा-  
त्वादिककी अपन्य स्थिति पटित करके कइनी चाहिये । विशेषता इतनी है कि इनके अपनी कृत  
आमुवा विचार करके ही कथन करना चाहिये । परापि सौधमस्वर्गसे लेकर भी मैत्रेयक तक मिच्छा-  
त्वादिककी अपन्य स्थिति दूसरी पृथिवीके समान बन जाती है पर सौधमस्वर्गमें सम्पत्त्व  
जीव भी उत्पन्न होता है, अतः यहाँ द्वितीय पृथिवीके नारिक्योंके अपन्य स्थितिक कथनसे कुछ  
विशेषता है जो मूलमें बटलाह है अतः समक अनुसार इनक अपन्य स्थिति पटित करके जानना  
चाहिये । किन्तु यहाँ कृतकृत्यवेदक सम्पत्त्व जीव भी उत्पन्न होता है अतः यहाँ सम्पत्त्वकी  
अपन्य स्थिति द्वितीय मरकके समान न जानकर सामान्य नारिक्योंके समान जाननी चाहिये ।  
अनुदिससे लेकर सवावसिद्धि तक सम्पत्त्व ही उत्पन्न होता है अतः इनक सम्पत्त्वमिच्छात्वकी  
अपन्य स्थिति दो समय नहीं बन सकती है वर इतलिय इनक सम्पत्त्वमिच्छात्वकी अपन्य स्थिति  
मिच्छात्वकी अपन्य स्थितिक समान जाननी चाहिये । तथा क्षर कर्मोंकी अपन्य स्थिति सौधमस्वर्ग  
स्वर्गके समान जानना ।

§ ३६३ एइदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक० जह० सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा पलिदो० अमखे० भागेण ऊणा । सम्मत्त-सम्पामिच्छत्त० जह० एया द्विदी दुसमयकाला । एवं सव्वएइदिय-पंचकाय-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णा०-तिणिणलेस्सा०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । णवरि ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-काउलेस्सा-अणाहारि० सम्मत्तमोव० । तिसु लेस्साणु अणंताणुवंधिचउकमोव० ।

§ ३६४ विगलिदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंदा० ज० पणुवीससागराणं पण्णारससागराणं सदसागराणं सत्त मत्तभागा चत्तारि सत्तभागा वं सत्तभागा पलिदोवमस्स सखेज्जदिभागेण ऊणा । सत्तणोकसायाणं ज० सागरोवमस्स चत्तारि

§ ३६३. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है । सोलह कषाय और नौ लोकपायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी एक स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल दो समय है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्त्वज्ञानी, श्रुताज्ञानी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असजी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, कपोतलेश्या वाले और अनाहारक जीवोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओषधके समान है । तीन लेश्याओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओषधके समान है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियादिक मार्गणाओंमें जो मिथ्यात्व, मोलह कषाय और नौ लोकपायोंकी जघन्य स्थिति बतलाई है वह वहा सम्भव जघन्य स्थितिसत्त्वकी अपेक्षासे जानना । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय उद्वेलनाकी अपेक्षा जानना । किन्तु औदारिक मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, कपोत लेश्यावाले और अनाहारक इन मार्गणाओंमें कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि भी उत्पन्न हो सकता है और इनके रहते हुए उसका काल भी पूरा हो सकता है, अतः इन भागणाओंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति ओषधके समान एक समय भी बन जाती है । तथा कृष्णादि तीन लेश्याओंके रहते हुए अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना भी होती है अतः इन तीन लेश्याओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति ओषधके समान दो समय बन जाती है ।

§ ३६४. विकलेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दोइन्द्रियोंमें पच्चीस सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण, तीन इन्द्रियोंमें पचास सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण और चौइन्द्रियोंमें सौ सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है । सोलह कषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दोइन्द्रियोंमें पच्चीस सागरके तेइन्द्रियोंमें पचास सागरके और चौइन्द्रियोंमें सौ सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है । तथा भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दो इन्द्रियोंमें पच्चीस सागरके, तेइन्द्रियोंमें पचास सागरके और चौइन्द्रियोंमें सौ सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून

सप्तमाया पञ्चिदी० अस्तंवे० भागेण ऊणा । सम्यक्-सम्मापिच्छत्त० पइदियमंभो ।  
पंविदियअपञ्ज० पंवि०तिरि०अपञ्जचर्मगो । तसअपञ्ज० वेइदियअपञ्जचर्मगो ।

‡ ३६५ वेउम्बि० सख्खदर्मगो । एवरि सम्म०-सम्मापि० जोदिसिय०भंगो ।  
वेउम्बियमिस्स० पिच्छत्त सोल्लसक०-अय-दुगुंख० अइ० मंतोकोडाकोडीसागरावमाणि ।  
सम्मत्त-सम्मापि० साइम्ममंगो । सत्तणोक्क० अइ० सागरोपमसइस्सत्त चत्तारि  
सप्तमाया पञ्चिदीवमस्स सखेअदिभागेण ऊणा । आहार०-आहारमिस्स० सखपयडीणं  
अइ० मंतोकोडाकोडीसागरावमाणि ।

हो भागप्रमाण है । सात नोकपायोंका अथवा स्थितिसत्त्वकाल एक सागरक सात  
भागोंमें से पञ्चोपमके अस्तंवेयातवे भागसे मूल बार भागप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और  
सम्बन्धिमिध्यात्वका एकेन्द्रियोंके समान भंग है । पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें पंचन्द्रियतिथय अपर्या-  
प्तकोंके समान भंग है । त्रस अपर्याप्तकोंमें हो इन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भंग है ।

विशुपार्य—अब कोई एक एकेन्द्रिय बीज विकलत्रयोंमें कल्प होता है तो यह क्या कल्प  
हानके पहले समयमें ही कमसे कम विकलत्रयोंके योग्य अथवा स्थितिका कल्प करने लगता है अतः  
विकलत्रयके मिध्यात्व, सोल्लह कपाय तथा मय और जुगुप्साकी अथवा स्थिति मूलमें वतसाई  
अनुसार ही प्राप्त होगी । किन्तु सात नोकपाय प्रतिपन्नमूत प्रकृतियाँ हैं अतः विकलत्रयोंके  
इनकी अथवा स्थिति एकेन्द्रियोंके समान भी बन जाती है । तथा सम्यक्त्व और सम्बन्धिमिध्यात्वकी  
अथवा स्थिति वल्लताकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंके समान हो समय जानती बाहिर । पंचेन्द्रिय  
अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रिय तियत्र अपर्याप्तकोंके समान तथा त्रस अपर्याप्तकोंके हीन्द्रिय अपर्याप्तकोंके  
समान अथवा स्थिति जाननेकी जो मूलमें सूचना की सो उसका कारण स्पष्ट ही है ।

‡ ३६८ वैक्खियकअयोगियोंमें सर्वाभिसिद्धिके समान भंग है । इतनी बिरोधता है कि  
इनमें सम्यक्त्व और सम्बन्धिमिध्यात्वका अथवा स्थितिसत्त्वकाल ज्योतिषियोंके समान है ।  
वैक्खियकमिश्रकअयोगियोंमें मिध्यात्व सोल्लह कपाय मय और जुगुप्साका अथवा स्थितिसत्त्वकाल  
अन्तःकोडाकोडी सागर है । सम्यक्त्व और सम्बन्धिमिध्यात्वका अथवा स्थितिसत्त्वकाल लौहरीके  
समान है । तथा सात नोकपायोंका अथवा स्थितिसत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमें  
से पञ्चोपमके संस्कारार्थ भागसे मूल बार भागप्रमाण है । आहारकअवसागी और आहारक-  
मिश्रकअयोगी बीजोंके सभी प्रकृतियोंका अथवा स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है ।

विशुपार्य—ऐस वैक्खियकअयोगी भी होते हैं अतः वैक्खियकअयोगियोंमें सर्वाभिसिद्धिक  
समान सब धर्मोंकी अथवा स्थिति बन जाती है । किन्तु वैक्खियकअयोगियोंमें कलत्रयवत्क  
सम्यक्त्व नहीं पाया जाता अतः इसमें सम्यक्त्व और सम्बन्धिमिध्यात्वकी अथवा स्थिति ज्योतिषियोंके  
समान हो समय जानता । ऐसा नियम है कि शरीर ग्रहण करनेके पदचाल सेन्दी बीज पंचेन्द्रियके  
योग्य स्थितिका ही कल्प करता है अतः वैक्खियकमिश्रकअयोगियोंमें मिध्यात्व सोल्लह कपाय मय  
और जुगुप्साकी अथवा स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर कही है । किन्तु सात नोकपाय प्रतिपन्न-  
मूत प्रकृतियाँ हैं । इनका कल्प एक साथ नहीं होता अतः वैक्खियकमिश्रकअयोगियोंके रहते हुए भी  
इनकी अथवा स्थिति अस्तंवीके योग्य प्राप्त हो जाती है जो मूलमें वतसाई ही है । तथा वैक्खियक  
मिश्रकअयोगियोंमें कलत्रयवत्क सम्यक्त्व भी पाया जाता है, अतः इसमें सम्यक्त्वकी अथवा स्थिति

§ ३६६ इत्थिवेदे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माधि०-वारसक०-इत्थिवेदाणमोघं ।  
णवुंस० ज० पल्लिदो० असंखे० भागो । सत्तणोक०-चत्तारिसजल० संखेज्जाणि वास-  
सहस्साणि । एवं णवुंस० । णवरि इत्थि० जह० पल्लिदो० असंखे० भागो । पुरिस०  
इत्थि-णवुंसयवेद० ज० पल्लिदो० अमंखे० भागो । पुरिस-चत्तारिक० जह० संखेज्जाणि  
वस्साणि । सेसं मूलोघं । अवगद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माधि०-अट्ठक०-इत्थि-णवुंस०  
जह० अंतोकोडाकोडीसागरोवभाणि । सत्तणोक०-चत्तारिसज० ओघं ।

एक समय और उद्वलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति दो समय घन जाती हैं जो सौधर्म स्वर्गमें भी सम्भव है। छठे गुणस्थानमें सालह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण होती है, अतः आहाररुकाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें इनकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है। तथा आहाररुकाययोग और आहारकमिश्रकाययोगके रहते हुए दर्शनमोहनीयकी क्षणिका प्रारम्भ नहीं होता है और जिसने दर्शनमोहनीयकी क्षणिका प्रारम्भ किया है उसके उक्त दोनों योग नहीं होते, अतः उक्त दोनों योगोंमें तीन दर्शन मोहनीयकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण ही होती है।

§ ३६६ स्त्रीवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है। नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा सात नोकपाय और चार संज्वलनोका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल सख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार नपुसकवेदमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विवेकता है कि इसमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पुरुषवेदमें स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पुरुषवेद और चार कपायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल सख्यात वर्ष है। तथा शेष मूलोघके समान है। अपगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कपाय, स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है। तथा सात नोकपाय और चार संज्वलनोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और स्त्रीवेदकी क्षणिका सम्भव है, अतः स्त्रीवेदकी इनकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है। तथा स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए नपुसकवेदकी क्षणिका भी हो जाती है पर जिस समय ऐसे जीवके नपुसकवेदके अन्तिम काण्डरुकी अन्तिम फालिका पुरुषवेद रूपसे सक्रमण होता है उस समय उसकी जघन्य निषेक स्थिति पत्युके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः स्त्रीवेदकी नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है। तथा जिस समय स्त्रीवेदका प्रथम स्थितिमें विद्यमान अन्तिम निषेक रवोदयसे क्षयको प्राप्त होता है उस समय सात नोकपाय और चार संज्वलनका जघन्य स्थितिसत्त्व सख्यात हजार वर्ष प्रमाण पाया जाता है, अतः स्त्रीवेदकी उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है। नपुसकवेदकी भी इसी प्रकार सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति जानना। किन्तु क्षणिक नपुसकवेदी जाव अपने उपान्त्य समयमें स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डरुकी अन्तिम फालिका पुरुषवेदरूपसे संक्रमण करता है और उस समय अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति पत्युके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः नपुसकवेदकी स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है। तथा पुरुषवेदकी जब स्त्रीवेद और नपुसकवेदके

१३७ कोप० चत्वारिक० अह० चत्वारि वस्साणि । सप्तं मूसोर्षं । एवं माण० । णवरि तिप्पि० संख० अह० वं वस्साणि । सप्तमोष । एव माया० । एवरि दो संख० अह० वस्तं । सप्तमोषं । अकसा० सम्मपयणीं ख० अतोकोटाकादी । एवं महावत्साद० ।

अन्तिम अण्डककी अन्तिम अलिका सर्वसंक्रमण द्वारा पुरुषवैवरूपसे संक्रमण होता है उस समय वन अन्तिम अलियोंकी अण्व्य निपेक्षित्वि पत्यके असंख्यातमें भागप्रमाण्य पार्श्व जाती है अतः पुरुषवैरुपके स्त्रीवेद और नपुंसकवैरुपकी अण्व्य स्थिति उक्तप्रमाण्य कही है । पुरुषवैरुपके अन्तिम समयमें बार संखलनोंकी स्थिति संख्यात वर्षप्रमाण्य पार्श्व जाती है अतः पुरुषवैरुपके बार संखलनोंकी अण्व्य स्थिति उक्त प्रमाण्य कही है । तथा पुरुषवैरुपके शेष प्रकृतियोंकी अण्व्य स्थिति ओषके समान प्राप्त होती है अतः उनकी अण्व्य स्थिति ओषके समान कही है । तथा दो द्वितीयोपक्रम सम्मपयसे उपक्रमवेष्टी पर चढ़ा है इसीके अपगतवेष्टके रहते हुए मिष्यात्य, सम्मपय सम्ममिष्यात्य सम्मकी आठ कपाय स्त्रीवेद और नपुंसकवैरुपका सत्त्व प्राप्त जाता है । किन्तु उपक्रमवेष्टीमें सब प्रकृतियोंकी अण्व्य स्थिति अन्तःकोटकोटकी सागर प्रमाण्य होती है, अतः अपगतवेष्टीके उक्त प्रकृतियोंकी अण्व्य स्थिति अन्तःकोटकोटकी सागर प्रमाण्य कही है । तथा सात नोक्तयम् और बार संखलनका सत्त्व कपाय अपगतवेष्टीके भी होता है अतः अपगतवेष्टीके इनकी अण्व्य स्थिति ओषके समान कही है । अपगतवेष्टीके अमन्तालुवन्धी अणुपञ्च सत्त्व तो होता ही नहीं, अतः इसके अमन्तालुवन्धी अणुपञ्चकी अण्व्य स्थिति नहीं कही । [ बिना आन्तःकोटके मत्तसे अमन्तालुवन्धीकी बिना विस्तृतबना किये भी बीच उपक्रमवेष्टी पर चढ़ सकता है उनके मत्तनुसार अपगतवेष्टीके अमन्तालुवन्धी अणुपञ्चकी अण्व्य स्थिति अन्तःकोटकोटकी सागर प्रमाण्य होगी जिसका यहाँ उल्लेख न करनेका कारण यह है कि कपायप्राप्तके मत्तनुसार पेसी बीच उपक्रमवेष्टीपर आरोहण नहीं करता ।

१३८ ओषमें बार कपायोंका अण्व्य स्थिति सत्त्वकाल बार वर्ष है । शेष मूसोषके समान है । इसी प्रकार मानमें जानना चाहिये । इतनी विवेचता है कि इसके तीन संखलनका अण्व्य स्थिति सत्त्वकाल हो वर्ष है । तथा शेष ओषके समान है । इसी प्रकार मायामें जानना चाहिये । पर इतनी विवेचता है कि इसके दो संखलनोंका अण्व्य स्थिति सत्त्वकाल एक वर्ष है । तथा शेष ओषके समान है । अकपायी बीजोंमें सब प्रकृतियोंका अण्व्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोटकोटकी सागर है । इसी प्रकार अन्तःकोटकोटसंयत बीजोंके जानना चाहिये ।

विशारपार्य—ओषकपायीके ओष कपायके वेदन करनेके अन्तिम समयमें बार संखलनोंकी अण्व्य स्थिति बार वर्ष प्रमाण्य होती है । मातृकपायीके मान कपायके वेदन करनेके अन्तिम समयमें मानवि तीन संखलनोंकी अण्व्य स्थिति दो वर्षप्रमाण्य होती है । तथा मायाकपायीके माया कपायके वेदन करनेके अन्तिम समयमें माया आवि दो संखलनोंकी अण्व्य स्थिति एक वर्ष प्रमाण्य होती है अतः इन ओषावि कपायप्राप्ति बीजोंके उक्त कपायोंकी अण्व्य स्थिति उक्त प्रमाण्य कही है । इनके शेष प्रकृतियोंकी अण्व्य स्थिति ओषके समान जानना क्योंकि इन्हींसे किसी भी कपायके जन्मके रहत हुए वृक्षमोहनीय और वारिप्रमोहनीयकी कपाया सम्भव है अतः इन कपायबालोंके शेष प्रकृतियोंकी अण्व्य स्थिति ओषके समान बन जाती है । उपरान्त कपाय गुणस्थानमें अकपायी बीजोंके अमन्तालुवन्धी अणुपञ्च ओष कर शेष सब प्रकृतियोंका सत्त्व सम्भव है और उपक्रमवेष्टीमें सब प्रकृतियोंकी अण्व्य स्थिति अन्तःकोटकोटकी सागर



§ ३६६ इत्थिवेदे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माप्ति०-वारसक०-इत्थिवेदाणमोघं ।  
णवुंस० ज० पल्लिदो० असंखे० भागो । सत्तणोक०-चत्तारिसजल० संखेज्जाणि वास-  
सहस्साणि । एवं णवुंस० । णवरि इत्थि० जह० पल्लिदो० असंखे० भागो । पुरिस०  
इत्थि-णवुंसयवेद० ज० पल्लिदो० असंखे० भागो । पुरिस-चत्तारिक० जह० संखेज्जाणि  
वस्साणि । सेसं मूलोघं । अवगद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माप्ति०-अट्ठक०-इत्थि-णवुंस०  
जह० अंतोकोडाकोडीसागरोवमाणि । सत्तणोक०-चत्तारिसंज० ओघं ।

एक समय और उद्वलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति दो समय बन जाती है जो सौधर्म स्वर्गमें भी सम्भव है । छठे गुणस्थानमें सोलह कषाय और नौ नोकरायोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण होती है, अतः आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें इनकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है । तथा आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगके रहते हुए दर्शनमोहनीयकी क्षणका प्रारम्भ नहीं होता है और जिसने दर्शनमोहनीयकी क्षणका प्रारम्भ किया है उसके उक्त दोनों योग नहीं होते, अतः उक्त दोनों योगोंमें तीन दर्शन मोहनीयकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण ही होती है ।

§ ३६६ स्त्रीवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है । नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा सात नोकषाय और चार संज्वलनोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल सख्यात हजार वर्ष है । इसी प्रकार नपुसकवेदमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । पुरुषवेदमें स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । पुरुषवेद और चार कषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल संख्यात वर्ष है । तथा शेष मूलोघके समान है । अपगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है । तथा सात नोकराय और चार संज्वलनोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और स्त्रीवेदकी क्षणका सम्भव है, अतः स्त्रीवेदीके इनकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है । तथा स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए नपुसकवेदकी क्षणका भी हो जाती है पर जिस समय ऐसे जीवके नपुसकवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेद रूपसे सक्रमण होता है उस समय उसकी जघन्य निषेक स्थिति पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः स्त्रीवेदीके नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है । तथा जिस समय स्त्रीवेदका प्रथम स्थितिमें विद्यमान अन्तिम निषेक स्वोदयसे क्षणको प्राप्त होता है उस समय सात नोकषाय और चार संज्वलनका जघन्य स्थितिसत्त्व सख्यात हजार वर्ष प्रमाण पाया जाता है, अतः स्त्रीवेदीके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है । नपुसकवेदोंके भी इसी प्रकार सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति जानना । किन्तु क्षणक नपुसकवेदी जीव अपने उपान्त्य समयमें स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेदरूपसे सक्रमण करता है और उस समय अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः नपुसकवेदीके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है । तथा पुरुषवेदीके जब स्त्रीवेद और नपुसकवेदके

§ ४०० स्वयं० एकावीसपयडीयमोघर्मगो । वेदयसम्मा० परिहार०र्मगो ।  
चयसम० अकसाहर्मगो । सम्मामिच्छस० सोलसक०-गमणोक० अ० अंतोकोडाकोवि  
सागरोधमाणि । सम्मच०-सम्मामि० जह० सागरोधमपुष्पार्थ । सासण० अकसाहर्मगो ।

परिहारविमुक्ति संवमके रहते हुए वर्णनमोहनीयकी उपस्था और अनन्तलुब्धकी वस्तुष्ककी  
विसंयोजनता सम्भव है अतः इसके इन प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति ओषके समान करी । तथा  
यह संयम सातवें गुणस्थान तक ही होता है और सातवें गुणस्थानमें होप कर्मोंकी अपन्य स्थिति  
अन्तःकोडाकोवि सागर प्रमाणा पाई जाती है अतः इसके होप कर्मोंकी अपन्य स्थिति सौधर्म  
करके समान करी । यहाँ सौधर्म करके समान अपन्य स्थिति करनेसे यह प्रयोजन है कि जिस  
प्रकार सौधर्म स्तरोंमें एक कर्मोंकी अपन्य स्थिति प्राप्त करनेके लिये विशेषतया कथन किया है  
वही प्रकार यहाँ भी जानना । तथा ओष और पक्ष लेख्यात्मक तथा संयतासंयतोंके परिहारविमुक्ति  
संयतोंके समान अपन्य स्थितिका कथन करना चाहिये । उपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तमें  
सूक्ष्म क्षोमकी अपन्य स्थिति एक समय यह जाती है जो उस समय लब्धकम होती है अतः इस  
संयमबालेके क्षोमकी अपन्य स्थिति एक समय करी । तथा अनन्तलुब्धकी वस्तुष्ककी झीड़ कर होप  
प्रकृतियोंका सत्त्व सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें उपक्रममेणीकी अपेक्षासे पाया जाता है अतः जिस  
प्रकार अकषायी जीवोंके होप प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति बतला आवे वही प्रकार सूक्ष्मसंयत  
संयमबाले जीवोंके जानना । असंयतोंमें एकेन्द्रिय त्रियस मुख्य है और कर्मोंके मिथ्यात्वको छोड़कर  
होप सब प्रकृतियोंकी असंयतोंकी अपेक्षा अपन्य स्थिति सम्भव है, अतः असंयतोंके मिथ्यात्वके  
बिना होप सब प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति सामान्य त्रियोंके समान करी । किन्तु असंयत मनुष्य  
भी होते हैं और मनुष्य असंयत वर्णनमोहनीयकी उपस्था भी करते हैं अतः असंयतोंके मिथ्या  
त्वकी अपन्य स्थिति ओषके समान एक समय करी ।

§ ४०० चाविकसम्यग्दृष्टिओंके इकावीस प्रकृतियोंका ओषके समान भंग है । वदक  
सम्यग्दृष्टिओंके परिहारविमुक्तिसंयतोंके समान भंग है । उपक्रमसम्यग्दृष्टिओंके अकषायी जीवोंके  
समान भंग है । सम्यग्मिथ्यात्वमें सोलह कषाव, जो नोकषावोंका अपन्य स्थितिसत्त्वकल अन्तः  
कोडाकोवि सागर है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अपन्य स्थितिसत्त्वकल सागर  
पूवक्त्व है । सासादनसम्यग्दृष्टिओंके अकषायी जीवोंके समान भंग है ।

विशुधार्थ—चाविकसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतियाँ ही पाई जाती हैं और उपक वदक अपिकारी  
पड़ी है अतः इसके २१ प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति ओषके समान बन जाती है । वेदकसम्यग्दृ  
ष्टिओंमें विमुक्तिकी अपेक्षा परिहारविमुक्तिसंयत मुख्य है अतः इनके सब प्रकृतियोंकी अपन्य  
स्थिति परिहारविमुक्तिसंयतोंके समान करी । इसी प्रकार उपक्रम सम्यग्दृष्टिओंमें अकषायी जीव  
मुख्य हैं अतः इनके सब प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति अकषायी जीवोंके समान करी । किन्तु  
इनके अनन्तलुब्धकी अपन्य स्थिति ओषके समान जानना, क्योंकि यहाँ पर विसंयोजनता संभव  
है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवक सातह कषाव और जी नोकषावोंकी अपन्य स्थिति अन्तः कोडाकोवि  
सागर प्रमाणा ही होती है । किन्तु जिसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अपन्य स्थितिसत्त्व  
सागरपूवक्त्व है वह मिथ्यादृष्टि ओष भी सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका प्राप्त हो सकता है, अतः  
सम्यग्मिथ्यादृष्टिके इन जानोंकी अपन्य स्थिति पूवक्त्व सागर करी । तथा वा अकषायी जीव  
आकर सासादनसम्यग्दृष्टि होता है उसके सब प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति अन्तः कोडाकोवि

§ ३६८ विहग० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० ज० अंतोकोडाकोडीसागरो-  
वमाणि । सम्मत्त०-सम्मापि० एड्ढियभंगो । गणपज्ज० ओघं । एवरि इत्थि०-  
एणु स० ज० पल्लिदो० असंखे०भागो ।

§ ३६९, सामाड्य-छेदो० ओघं । एवरि लोभमज्ज० ज० अंतोमुहुत्तं । परिहार०  
सम्मत्त० मिच्छत्त०-सम्मापि०-अणंताणु० ओघं । सेसाणं सोहम्मभंगो । एवं तेउ-पम्म-  
संजदासंजदाणं । सुहुमसंप० लोभ० ज० एया द्विदी एयममड्या । सेसाणमकसाहभंगो ।  
असज्जद० तिरिवखोघं । एवरि मिच्छत्तस्सोवभंगो ।

कम नहीं होती, अतः अक्रपायी जीवोंके सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण कही है । तथा अक्रपायी जीवोंके समान यथास्त्रातसयत जीवोंके भी सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति घटित कर लेनी चाहिये ।

§ ३६८ विभगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल अन्तःकोडाकोडी सागर है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल एकेन्द्रियोंके समान है । मन पर्ययज्ञानमें ओघके समान है । पर इतनी विरोधता है कि इसमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल पत्योपसके असख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—विभगज्ञान सत्री पंचेन्द्रिय जीवने पर्याप्त अवस्थामें ही होता है और पर्याप्त अवस्थामें सत्री मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तःकोडाकोडी सागरसे कम जघन्य स्थितिसत्त्व नहीं होता, अतः विभगज्ञानियोंके मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण कही है । तथा विभगज्ञानी भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वलना करते हैं, अतः इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंके समान दो समय कही है । यद्यपि मन-पर्ययज्ञानके रहते हुए क्षात्रिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति और क्षपकश्रेणी पर आरोहण बन सकता है, अतः इसके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको छोड़ कर शेष सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान बन जाती है । किन्तु स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवके मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति सम्भव नहीं, अतः जिस प्रकार पुरुषवेदी जीवके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति पत्योके असख्यातवें भाग प्रमाण घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार मनःपर्यायज्ञानीके भी जानना ।

§ ३६९ सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें ओघके समान है । पर इतनी विशेषता है कि इनके लोभसंज्वलनका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । परिहारविशुद्धिमयतके सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुगन्धी चतुष्कका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है । तथा शेषका सौधर्मके समान है । इसी प्रकार पीत, पद्म लेश्यावाले और सयतासंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसापरायिकसयतोंके लोभकी एक स्थितिका जघन्य काल एक समय है । तथा शेषका अक्रपायी जीवोंके समान भग है । असयतोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान भग है । पर इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्वका ओघके समान भग है ।

**विशेषार्थ**—सामायिक सयम और छेदोपस्थापना संयमके रहते हुए भी दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणा होती है, अतः इनके संज्वलन लोभको छोड़कर शेष सत्र प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है । किन्तु ये दोनों सयम नौवें गुणस्थान तक ही पाये जाते हैं और क्षपक नौवें गुणस्थानके अन्तमें लोभकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होती है, अतः इन दोनों संयमोंमें लोभकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कही है ।



## एवमद्वाच्चेदो समतो ।

§ ४०१, सव्वट्ठिदिविहत्ति० णोसव्वट्ठिदिविहत्ति० । सव्वाओ द्विटीओ सव्व-  
ट्ठिदिविहत्ती । तदूणं णोसव्वट्ठिदिविहत्ती । एव णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ४०२ उक्कस्स०विहत्ति-अणुक्कस्स०विहत्तिअणुगमेण दुविहो० । ओघे० सव्वु-  
क्कस्सट्ठिदी उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती । तदूणमणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती । उक्कस्सट्ठिदिविहत्ति-  
सव्वट्ठिदिविहत्तीणं को भेदो ? ण, सव्वणिसेगट्ठिदीण ममुदायां सव्वट्ठिदिविहत्ती  
णाम । उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती पुण उक्कस्सकालुवलक्खिओ चरिमणिसेओ एक्को चेव ।  
तेण दोण्हमत्थि भेओ । उक्कस्सट्ठिदिणिसेयवटिरित्तसव्वणिसेया अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती  
णाम । सव्वणिसेयट्ठिदीसु अण्णदरणिसेगे अवणिदे सेसट्ठिदीओ णोसव्वट्ठिदिविहत्ती  
णाम । तेण ए पुणरुत्तदोसो त्ति सिद्धं । एव णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ४०३, जहण्ण-अजहण्णट्ठिदी० दुवि० । ओघे० सव्वजहण्णट्ठिदी जहण्णट्ठिदि-  
विहत्ती तदुवरि अजहण्णट्ठिदिविहत्ती । उक्कस्मअद्वाच्चेदे उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती ऋण्ण

सागर प्रमाण होते हुए भी कमसे कम पाई जाती है, अतः सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सव प्रकृति-  
योंकी जघन्य स्थिति अकपायी जीवोंके सामान कही ।

इस प्रकार अद्वाच्चेद समाप्त हुआ ।

§ ४०१ सर्वस्थितिविभक्ति और नोसर्वस्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो  
प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सव स्थितिया सवस्थिति-  
विभक्ति हैं और सव स्थितियोंसे न्यून स्थितिया नोसर्वस्थितिविभक्ति हैं । इसी प्रकार अनाहारक  
मार्गणातक ले जाना चाहिये ।

§ ४०२ उत्कृष्टस्थितिविभक्ति और अनुत्कृष्टस्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो  
प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सबसे उत्कृष्ट स्थिति  
उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति है और इससे न्यून अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति है ।

शंका—उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति, और सर्वस्थितिविभक्तिमें क्या भेद है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सव निपेकोंकी स्थितियोंके समुदायका नाम सर्वस्थितिविभक्ति है  
परन्तु उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति उत्कृष्ट कालसे उपलब्धित एक अन्तिम निपेक कहलाता है, अत इन  
दोनोंमें भेद है ।

उत्कृष्ट स्थितिवाले निपेकोंके सिवा शेष सव निपेक अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कहलाते हैं । तथा  
सब स्थितिवाले निपेकोंमें से किसी एक निपेकके निकाल देने पर शेष स्थितिया नोसर्वस्थिति-  
विभक्ति कहलाती हैं । इस लिये इनके कथनमें पुनरुक्त दोष नहीं है यह सिद्ध होता है । इसी  
प्रकार अनाहार मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४०३ जघन्य स्थितिविभक्ति और अजघन्य स्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश  
दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सबसे जघन्य स्थितिको  
जघन्य स्थितिविभक्ति कहते हैं और इसके ऊपर अजघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

अद्याप्येदो पुण उक्तस्सकालुपल्लविसयपगणितेगाविगाभाविसम्भणितेयकसामो तेण  
[ ग ] पविसदि सि चेत्तम्भ । एवं जहण्णाहिदि-अहण्णाहिदिअद्याप्येदो पिय मेदो पर-  
वेदव्यो । एवं वेदव्यं ज्ञान अणाहारण सि ।

१४०४ सादि-अणादि पुन अद्य पाणुगमेण वुविहो गिहेसो-ओपेण आवेसेण  
य । सत्थ ओपेण मिच्छस-वाससक०-अवणोक्त० उक्त०-अणुपक० अह० किं सादि०४ ।  
सादि अद्युं । अमह० किं सादि० ४ ? अणादिओ पुनो अद्युं वा । सम्मत्त  
पविस्सदि ? ए उक्तस्सकालुपल्लविसयपगणितेगाविगाभाविसम्भणितेयकसामो उक्तस्स

संका-उक्त अद्याप्येदो उक्त स्थिति विमर्शिका अन्तर्मात्र क्यों नहीं होता है ?

समाधान-हाँ, क्योंकि उक्त कालसे उल्लिखित एक निर्येकके उक्त स्थितिविमर्शिका  
कृत है परन्तु उक्त अद्याप्येदो उक्त कालसे उल्लिखित एक निर्येकके अविनामायी समस्त  
निर्येकके समुदायका नाम है, इसलिये उक्त अद्याप्येदो उक्त स्थितिविमर्शिका अन्तर्मात्र नहीं  
होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार अपन्य स्थिति और अपन्य स्थिति अद्याप्येदोके  
मेवका भी कथन करना चाहिये । इसी प्रकार अनन्तरक माग्यात्मक ज्ञानता चाहिये ।

विशेषार्थ-किसी एक मनुष्यके चार बेटे हैं । उनमेंसे सबसे बड़ा बेटा अष्ट या उक्त,  
द्वेय अनुक्त, सबसे छोटा बेटा ज्ञु या अपन्य और दोय अत्रपन्य बड़े बड़े जायेंगे । यही बात  
स्थितिके विषयमें भी जाननी चाहिये । अर्थात् उक्त स्थितिसे सबसे अन्तिम निर्येककी स्थिति  
ही जायगी । अनुक्त स्थितिसे अन्तिम निर्येककी स्थितिके जोड़कर दोय सब निर्येककी स्थितिवा  
ही जायगी । अपन्य स्थितिसे सबसे कम स्थिति ही जाती है तथा अत्रपन्य स्थितिसे सबसे कम  
स्थितिके जोड़ कर दोय सब स्थितिवा ही जाती है । इस प्रकार इस कथनसे यह भी जाना जाता है  
कि इन चारों प्रकारके स्थिति मेंसे अधिकतम सुखता है समुदायकी नहीं । अतः सब स्थितिमें  
समुदायकालसे सब स्थितिपोंका ग्रहण हो जाता है और मोक्षस्थितिमें अविवक्षित किसी एक  
या एकसे अधिक निर्येककी स्थितिपोंको जोड़ कर दोय स्थितिपोंका ग्रहण हो जाता है । यहाँ यह  
संका की जा सकती है कि यद्यपि उक्त स्थिति अविवक्षित प्रमाण है अतः उससे सर्वस्थिति भिन्न  
सिद्ध हो जाती है पर अनुक्त और अत्रपन्य स्थितिसे नासर्व स्थिति कैसे भिन्न सिद्ध हो सकती  
है क्योंकि इन तीनोंमें कम स्थितिपों का ही ग्रहण किया गया है । पर ठीक तथ्यसे विचार करने  
पर यह शंका निमूल हो जाती है क्याकि जिस प्रकार अनुक्त स्थितिमें केवल उक्त स्थिति  
और अत्रपन्य स्थितिमें केवल अपन्य स्थितिका प्रमाण है वह बात मोक्षस्थितिकी नहीं  
है किन्तु इसमें अविवक्षित किसी भी निर्येककी स्थितिका प्रमाण है । अत्रपन्यके लिये ऊपरके  
मनुष्यसे क्या जान कि तुम अपन उक्त बेटोंको बुलाओ तो वह किसी भी बेटेको बुलानसे जाइ  
सकता है । यही बात नासर्व स्थितिके विषयमें जानना चाहिये । इस प्रकार ओप और आवेदकी  
अपेक्षा यहाँ जो स्थिति सम्भव हो जानकर उसका कथन करना चाहिये ।

१४४ सादि अणादि पुन और अणुव अणुगमकी अपेक्षा निर्वेदो प्रमाण है—  
ओपनिर्वेद और आवेदनिर्वेद । उनमेंसे ओपकी अपेक्षा मिच्छात्मक वास्तव्य और नो नो-  
पापोंकी उक्त, अनुक्त और अपन्य स्थिति विमर्शिका क्या सादि है, क्या अनारि है क्या पुन  
है या क्या अणुव है ? सादि और अणुव है । अत्रपन्य स्थितिविमर्शिका क्या सादि है, क्या

सम्पामि० उक्क० अणुक० जह० अजह० किं सादि०४ ? सादिओ अद्दुवो । [ अण-  
ताणुवंधिचउक्क० उक्क० अणुक० जह० किं सादि०४ ? सादि अद्दुवं ] अज०  
किं सादि०४ ? सादिओ अणादिओ वा धुवो अद्दुवो वा । एवमचक्खु० भवसि० ।  
णवरि भवसिद्धिएसु धुवं एत्थि । सेसाणं मग्गणाणं उक्क० अणुक० जह० अजह०  
किं सादि०४ ? सादिया अद्दुवो वा ।

अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या  
अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी  
उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या  
अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या  
ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले  
और भव्योंके जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि भव्योंके ध्रुवभग नहीं होता  
है । शेष मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है,  
क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है ।

**विशेषार्थ—**मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति कादाचित्क है

तथा जघन्य स्थिति अपने अपने क्षय कालके अन्तिम समयमें ही प्राप्त होती है, अतः ये तीनों  
स्थितियाँ सादि और अध्रुव हैं । किन्तु सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके विषयमें विशेषता है  
जिसका खुलासा निम्न प्रकार है—यह तो हम पहले ही बतला आये हैं कि जघन्य स्थितिको  
छोड़कर शेष सब स्थितिविकल्प अजघन्य कहे जाते हैं, क्योंकि जघन्यके प्रतिपेक्ष मुलसे  
अजघन्यमें जघन्यको छोड़कर शेष सबका ग्रहण हो जाता है । प्रकृतियोंके विषयमें दूसरी यह  
बात ज्ञातव्य है कि मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका  
क्षय होनेके पहले तक निरन्तर सत्त्व पाया जाता है और क्षय होनेके बाद पुनः इनका बन्ध नहीं  
होता । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अनादि मिथ्यादृष्टिके तो निरन्तर सत्त्व है किन्तु जिसने सम्य-  
ग्दर्शनकी प्राप्त कर लिया है उसके इसकी विसयोजना भी हो जाती है और ऐसा जीव जब  
मिथ्यात्वमें आता है तो पुनः उनका बन्ध होने लगता है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व  
सादि ही हैं यह स्पष्ट ही है । इन सब विशेषताओंको ध्यानमें रखकर जब इन प्रकृतियोंकी  
अजघन्य स्थितिके सादित्व आदिका विचार करते हैं तो मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ  
नोकषायोंकी अजघन्य स्थिति अनादि ध्रुव और अध्रुव प्राप्त होती है, क्योंकि अनादि कालसे  
इनकी अजघन्य स्थिति चली आरही है इसलिये अनादि है । तथा भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव और  
अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थिति सादि, अनादि, ध्रुव  
और अध्रुव चारों प्रकारकी प्राप्त होती है, क्योंकि विसयोजनासे जघन्य स्थितिके प्राप्त होनेके  
पहले तक वह अनादि है । विसयोजना के पश्चात् पुनः बन्ध होनेपर सादि है तथा अभव्योंकी  
अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतियाँ  
मूलतः ही सादि हैं अतः इनकी अजघन्य स्थिति भी और स्थितियोंके समान सादि और अध्रुव  
है । अचक्षुदर्शनमार्गणा छद्मस्थ अवस्थाके रहने तक और भव्य मार्गणा संसार अवस्थाके रहने  
तक निरन्तर पाई जाती है, अतः इसमें उक्त ओघप्ररूपणा बन जाती है । किन्तु भव्योंके ध्रुव

एवं अद माणुगमो समचो ।

⊗ एयजीवेण सामिच ।

§ ४०५ सामिचालुगमेण सामिचं दुपिहं—महण्णमुक्कस्स थ । उक्कस्स पयदं ।  
दुबिहो णिदेसो—ओपेण भादेसण थ । तत्थ ओपण उक्कस्ससामिचं मञ्चामि चि  
पइन्नामुत्तमेदं सुगमं ।

⊗ मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहरी कस्स ? उक्कस्सद्विदिं बंधमाणस्स ।

४ ६ एदस्स अइरसहाइरियमुहकमलशिणिगयस्स सामिचमुत्तस्स अत्थपक्क  
वण कस्सामो । तं जहा, मिच्छत्तस्स चि णिदेसो सत्तपयविपदिसेहफलो । उक्कस्स  
द्विदिविहरीणिदेसो सत्तद्विदिविहरीपदिसहफलो । कस्से चि पुब्बा सयस्स कणारत्त  
पदिसहफला । उक्कस्सद्विदिं बंधमाणस्से चि वणं अणुक्कस्सद्विदिबंधेण सह उक्कस्स  
द्विदिसंतपदिसहफलं । अणुक्कस्सद्विदीए बंधमाणए चि उक्कस्सद्विदिण्णियाण  
मपद्विदिगलणा एत्थि चि उक्कस्सद्विदिविहरी किण्ण हादि ? न, चरिमणिसेयस्स  
उक्कस्सकात्तुबलत्तियस्स उक्कस्सद्विदिसण्णिदस्स अपद्विदिगलणाए एगद्विदीए

बिक्कल्य नही बनता । इन वा मागणाओंके अतिरिक्त और कितनी मार्गणाए हैं उनमें बाटों  
मकरकी स्थितियां छवि और अग्रु ब हैं, क्योंकि एक वा मार्गणाए परिवर्तनशील हैं और  
इससे सब मार्गणाओंमें क्यायोग्य और उच्छ्रित स्थिति आदि न प्राप्त होकर आदेश उच्छ्रित  
स्थिति आदि प्राप्त होती हैं ।

इस प्रकार अग्रु बलुगम समाप्त हुआ ।

⊗ अब एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वानुगमको कहते हैं ।

§ ४०६ स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा स्वामित्व वा मकरका है—अपम्य और उच्छ्रित । उनमेंसे  
पहले उच्छ्रित स्वामित्वका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्देश वा मकरका है—ओप और आदेश ।  
उनमेंसे आपकी अपेक्षा उच्छ्रित स्वामित्वका कहते हैं इस प्रकार यह प्रतिग्रहमूल्य सरल ॥

⊗ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्टस्थितिका  
बोधनेवाला जीवक होती है ।

§ ४०७ अब प्रतिग्रहम आचार्यके मुगम निष्पन्न हुए इस स्वामित्वमूलक अपेक्षा कथन  
कहते हैं वा इस प्रकार है—सूत्रमें मिथ्यात्व परक देनका कथ शर प्रकृतियोंका निराप करना है ।  
उच्छ्रित स्थितिबिभक्ति पर देनका कथ शर स्थिति विभक्तिबोध निराप करना है । किमक शर्ती  
है ? इस प्रकार सूत्रात्म आशय स्पष्टोत्तरका प्रतिपप करना है । उच्छ्रित स्थिति का बोधनवान  
जीवक इस कथनके देनका कथ अनुगृह्य स्थितिबोधक साथ उच्छ्रित स्थितिबोधका प्रतिपप  
करता है ।

शुद्धा—अनुगृह्य स्थिति का कथ हाथ हुआ भी उच्छ्रित स्थिति निरापेक्ष अपास्थितिगतन  
नही होता है, अतः अनुगृह्य स्थितिबोधक समय उच्छ्रित स्थितिबिभक्ति क्यों नहीं होती है ।

समाधान—नहीं क्योंकि जिसकी उच्छ्रित स्थिति पर गल्ला है एसे उच्छ्रित कातस इतद्वि



गलिदाए वि उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिविणासादो । अहवा उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिदस्स एदं  
सामिच्चं, सो च कालणिसेगपहाणो, तेण अणुक्कस्सट्ठिदिवि वंधमाणस्स उक्कस्सट्ठिदिवि-  
हत्ती ण होदि किं तु उक्कस्ससंक्किलेसेण उक्कस्सट्ठिदिवि वंधमाणस्स चेवे त्ति ।

※ एव' सोलसकसायाणं ।

§ ४०७ जहा मिच्छत्तस्स उक्कस्ससामिच्चं पस्सिदं तहा सोलसकसायाणं  
पि पस्सवेद्वं; मिच्छादिद्विम्मि तिच्चसंक्किलेसम्मि उक्कस्सट्ठिदिवि वंधमाणम्मि चेव एदे-  
सिमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तीए सभवादो ।

अन्तिम निपेककी अधस्थिति गलनाके द्वारा एक स्थितिके गलित होजानेपर भी उत्कृष्ट  
स्थितिबिभक्तिका विनाश हो जाता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति  
नहीं होती है ऐसा समझना चाहिये । अथवा यह उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिका स्वामित्व न होकर  
उत्कृष्ट स्थितिअद्वान्छेदका स्वामित्व है और वह कालनिर्णय प्रधान होता है, अतः अनुत्कृष्ट  
स्थितिको बाधनेवाले जीवके उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति नहीं होती है किन्तु उत्कृष्ट मन्त्रेणसे उत्कृष्ट  
स्थितिको बाधनेवाले जीवके ही उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है ।

※ इसी प्रकार सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये ।

§ ४०७ जिस प्रकार मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्वामित्व कहा है उसी प्रकार सोलह कपायोंका  
भी कहना चाहिये, क्योंकि तीव्र संक्लेशनाले और उत्कृष्ट स्थितिको बाधनेवाले मिथ्यादृष्टि  
जीवके ही उन सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति संभव है ।

विशेषार्थ—चूणिसूत्रमें यह बतलाया है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके ही  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसपर शंकाकारका कहना है कि जो प्रथमादि समयोंमें  
उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर द्वितीयादि समयोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगता है उसके  
उत्कृष्ट स्थितिके निपेकका अधःस्थिति गलन नहीं होता अतः अनुत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय  
भी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । इस शंकाका वीरसेन स्वामीने दो प्रकारसे समाधान किया है ।  
पहले समाधानका तात्पर्य यह है कि जिस अन्तिम निपेककी सत्तर कोड़ाकोडी सागर प्रमाण  
स्थिति पड़ी है उस निपेककी उत्कृष्ट स्थिति संज्ञा है किन्तु द्वितीयादि समयोंमें उस निपेककी  
सत्तर कोड़ाकोडी सागर प्रमाण स्थिति न रहकर एक समय, दो समय आदि रूपसे कम हो  
जाती है, अतः अनुत्कृष्ट स्थिति बन्धके समय उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती किन्तु जिस समय  
उत्कृष्ट स्थिति बन्ध होता है उसी समय उत्कृष्ट स्थिति होती है । इस समाधानपर यह शंका  
होती है कि जब स्थिति निपेकप्रधान होती है और द्वितीयादि समयोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंज्ञावाले  
निपेकोंका गलन ही नहीं हुआ तब अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय उत्कृष्ट स्थिति क्यों न मानी  
जाय ? इस शंकाका विचार करके वीरसेन स्वामी ने दूसरा समाधान किया है । उसका  
सार यह है कि उत्कृष्ट स्थिति कालकी प्रधानतासे कही गई है निपेकोंकी प्रधानतासे नहीं, अतः  
अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती, क्योंकि उस समय  
उत्कृष्ट काल सत्तर कोड़ाकोडी सागरमेंसे एक, दो आदि समय कम हो जाते हैं । इसी प्रकार  
सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये ।

\* सम्मत्त-सम्मामिच्छताणमुक्कस्सहिदिविहरी कस्स ?

§ ४०८ सुगममेदं पुञ्जासुत्तं ।

\* मिच्छत्तस्स उक्कस्सहिदि बंधिदूण अंतोमुहुत्तद पडिमग्गो जो हिदिपादमकावूण सम्मल्लुसम्मत्त पडिबण्णो तस्स पदमसमयवेदयसम्मा दिहस्सि ।

§ ४०९ अदि वि एत्थ अहापीससत्तकम्मियग्गहणं ए कर्दं तो वि अहापीससत्त कम्मियो चि णम्बदे; बद्दगसम्मत्तमहाणम्महाजुवपचीदो । सो वि मिच्छादिहि चि णम्बदे; अण्णगुणहाजम्मि मिच्छत्तस्स बंधाभावादो । सो तिप्पसंक्खिसेसो चि उक्कस्स हिदिबंधण्णहाजुवपचीदो णम्बदे । एदम्मादो चेष ए सुचो जग्गतो चि णम्बदे, मुत्तम्मि तम्मंधासंमवादो । उक्कस्सहिदि बंधतो पडिहमापडमादिसमएसु सम्मत्तं ण मेम्भदि चि आणावण्डमंसीमुहुत्तदं पडिमग्गो चि मणिदं । पडिमग्गो उक्कस्सहिदि बंधुक्कस्ससंक्खिसेसेहि पडिणियसो हीदूण निसोहीए पडिदो चि मणिदं होदि । हिदिपादं कावूण वि वेदगसम्मत्तं के वि जीवा पडिबज्जति तप्पडिसेहद हिदिपादमकाउणे चि

\* सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति किसके होती है ?

§ ४०८ यह पृञ्जासूत्र सुगम है ।

\* मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी बांधकर जिस उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे निहत्त हुए मन्तर्मुहूर्त हो गया है और जो स्थितिका घात न करके अतिशीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उस वेदक सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति होती है ।

§ ४०९ यद्यपि सूत्रमें 'अहापीससत्तकम्मिय' पक्कम प्रहण नहीं किया है तो भी ऐसा जीव अहाप्राप्त प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है यह जाना जाता है क्योंकि अन्यथा बंधकसम्यक्त्वका प्रहण नहीं बन सकता है । और यह भी मिध्यादृष्टि ही होता है यह जाना जाता है क्योंकि अन्य गुणस्वानमें मिध्यात्वका बन्ध नहीं हो सकता है । तथा यह मिध्यादृष्टि भी तीव्रसंक्लेशवाला होता है यह जाना जाता है, अन्यथा मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं हो सकता है । इसीसे यह जीव सोता हुआ नहीं है किन्तु आगता हुआ है यह बात भी जानी जाती है क्योंकि सोते हुएके मिध्यात्वका उत्कृष्ट बन्ध नहीं हो सकता । उत्कृष्ट स्थितिके बांधनवाला जीव उत्कृष्ट स्थितिवन्धसे च्युत होकर प्रथमादि समकोमें सम्यक्त्वको प्रहण नहीं करता है इस बातका ज्ञान करणके लिये त्रिसे उत्कृष्ट स्थितिवन्धसे निहत्त हुए मन्तर्मुहूर्त हो गया है' ऐसा कहा है । प्रतिभग्न संवत्स्र कार्य उत्कृष्ट स्थिति बन्धके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे प्रतिनिहत्त होकर विमुक्तिका प्राप्त हुआ जाता है । फलने ही जीव स्थितिका घात करके भी वेदक सम्यक्त्वका प्राप्त करते हैं यतः इसके प्रतिपन्न करनेके लिये सूत्रमें स्थितिका घात न करके यह कहा है । बहुतसे जीव ऐसे हैं जो स्थितिघात

भणिदं । द्विदिधादमकुणमाणा वि दीहकालेण सम्मचं पडिवज्जंता अत्थि तप्पडिसेहदं सव्वलहुग्गहणं कदं । विदियादिसमएसु अधद्विदिगलणाए गलिदेसु उक्कस्सद्विदिसंतं ण होदि त्ति पढमसमए वेदगसम्मादिद्विस्से त्ति परुविद । मिच्छाइट्ठिणा अट्ठावीससंत-कम्मिण तिव्वसकिलेसेण सागार-जागारउवजुचेण वद्धमिच्छत्तुक्कस्सद्विदिसंतकम्मेण तत्तो परिवदिय अंतोमुहुत्तद्धं तप्पाओग्गविसोहीए अवद्विदेण अकदद्विदिधादेण सव्व-लहुएण कालेण वेदगसम्मत्तग्गहणपढमसमए मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए सम्मत्तसम्माभिच्छ-चोसु संकामिदाए सम्मत्तसम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्सद्विदिविहती जायदि त्ति भणिदं होदि । अवधपयडीसु वंधपयडी कथं सकमइ ? ए एस दोसो; वधपयडीणं चेव वंधे थक्के पडिग्गहत्तं फिट्ठिदि णाबंधपयडीणं, अण्णहा अवंधपयडीए सम्मत्तादीणमभावो हज्ज । ए च एवं मोहणीयस्स अट्ठावीसपयडिसंतुवएसेण सह विरोहादो ।

नहीं करके दीर्घकालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होते हैं, अतः इसका प्रतिषेध करनेके लिये सूत्रमें सर्वलघु पदका ग्रहण किया है । सम्यक्त्व ग्रहण होनेके अनन्तर दूसरे आदि समयोंमें अधः-स्थिति गलनाके द्वारा स्थितिके गलित हो जाने पर उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व नहीं रहता है, अतः सूत्रमें वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें ऐसा कहा है । जो मिथ्यादृष्टि जीव अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला है, जो जाग्रत रहते हुए साकार उपयोगसे उपयुक्त है, जिसने तीव्र संक्लेशसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति बाधकर उसकी सत्ता प्राप्त करली है वह जब तीव्र सक्लेशरूप परिणामोंसे च्युत होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिके साथ अवस्थित रहता हुआ स्थितिघात न करके सबसे लघु कालके द्वारा वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसके पहले समयमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें सक्रमण कर देता है तब उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिक्ति होती है यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

**शका-बन्धप्रकृति अवन्ध प्रकृतियोंमें सक्रमणको कैसे प्राप्त होती है ?**

**समाधान-**यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि बन्ध प्रकृतियोंके ही बन्धके रुक जाने पर उनमें प्रतिग्रहशक्ति नष्ट हो जाती है अवन्ध प्रकृतियोंकी नहीं, अन्यथा सम्यक्त्वादिक अवन्ध प्रकृतियों का अभाव हो जायगा । परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर उक्त कथनका मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्वके प्रतिपादक उपदेशके साथ विरोध आता है । अतः जिन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता किन्तु जो सक्रमण द्वारा ही अपने सत्त्वको प्राप्त होती हैं उनमें बन्ध प्रकृतिका सक्रमण हो सकता है इसमें कोई दोष नहीं है ।

**विशेषार्थ-**ऐसा नियम है कि जिस समय किसी प्रकृतिका बन्ध होता है उसी समय अन्य सजातीय प्रकृतिका उस बधनेवाली प्रकृतिरूपसे सक्रमण होता है, क्योंकि तभी वह बधने वाली प्रकृति प्रतिग्रह या पतद्ग्रहरूप होती है । और इसीका नाम परप्रकृति सक्रमण है । यह सक्रमण मूल प्रकृतियोंमें और चारों आयुओंमें परस्पर नहीं होता । तथा इस प्रकारका संक्रमण दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीयमें और चारित्रमोहनीयका दर्शनमोहनीयमें भी नहीं होता । तथा इस प्रकारका सक्रमण होते समय संक्रमित होनेवाली प्रकृतिका स्थितिघात या अनुभागघात नहीं होता और न स्थिति तथा अनुभागमें वृद्धि ही होती है, क्योंकि स्थितिघात और अनुभागघात-

✽ यवयोक्तसायाणमुक्तस्तद्विदिबिहती कस्त ?

१४१० मुगममेद ।

✽ कसायाणमुक्तस्तद्विदि बंभिदूण आवलिपावीदस्त ।

१४११ किमदमावलिपावीदस्तुक्तस्तद्विदि दिअदि ? य; अचसावलिपमेच कावं बदसोस्तकसायाणमुक्तस्तद्विदीए योक्तसायसु संकमाभावादो । कुदो एसो

का सम्बन्ध अपकर्मसे तथा स्थितिद्विधि और अनुमाणाद्विधि सम्बन्ध अर्कपणसे है और अपकर्मसे तथा अकर्मसे एक ही प्रकृतिके कर्म परमाणुओंमें परस्पर होते हैं । इस नियमके अनुसार यह संकल्पना यह जानना है कि सम्बन्ध और सम्बन्धिमध्यात्व स्वरूप प्रकृतियाँ नहीं जानसे उनमें प्रतिप्रहपना नहीं पाया जाता अतः मिध्यात्वका सम्बन्ध और सम्बन्धिमध्यात्वरूपसे संक्रमण नहीं होना चाहिये । इस संकल्पना कीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका धार यह है कि जो बंधनेवाली प्रकृतियाँ हैं उनका यदि बन्ध नहीं हो रहा है तो अकर्मकालमें उनमें ही प्रतिप्रहपना नहीं रहता है । अतएव संक्रमण के लिये अब साताका बन्ध होता है तभी यह प्रतिप्रहपना है और तभी उसमें असाधारण कर्मपुंज संक्रमणको प्राप्त होता है । किन्तु अब साताका बन्ध नहीं होता तब उसका प्रतिप्रहपना नष्ट हो जाता है और उसी क्षणमें असाधारण कर्मपुंज सातारूपसे संक्रमणको नहीं प्राप्त होता । किन्तु सम्बन्ध और सम्बन्धिमध्यात्व वे दोनों अकर्म प्रकृतियाँ हैं अतः इनके विषयमें संक्रमणका उक्त नियम लागू नहीं है । इनमें जो प्रतिप्रहपना बन्धके बिना भी पाया जाता है और इसलिये इनमें मिध्यात्वक कर्मपुंजके संक्रमण जानेमें कोई आपत्ति नहीं है । पर इतनी विशेषता है कि सम्बन्धविहीनके ही मिध्यात्वका कर्मपुंज इन दो प्रकृतियोंमें संक्रमित होता है । अब कहा इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति बतलाना है अतः अहर्हस प्रकृतियोंकी उत्पत्तिले जिस मिध्याद्विधि विहीन मिध्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके और संकल्पपरिणामोंसे निवृत्त होकर तथा मिध्यात्वका स्थितिक्रमकपाठ किये बिना अन्तमुहूर्त काष्ठमें वेदकसम्बन्ध को प्राप्त कर लिया है उसके वेदकसम्बन्धके प्राप्त करनेके पहले समयमें अन्तमुहूर्त कम मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्बन्ध और सम्बन्धिमध्यात्वमें संक्रमण हो जाता है अतः इस समय सम्बन्ध और सम्बन्धिमध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । ये बातोंका सुतासा मूलमें किया ही है ।

✽ नी नोक्पायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ।

१४१० यह सूत्र मुगम है ।

✽ जिसने कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर एक आपत्तीप्रमाण कास व्यतीत कर दिया है उसके नी नोक्पायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है ।

शुद्धा-जिम्न कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर एक आपत्ती प्रमाण कास व्यतीत कर दिया है वही नी नोक्पायोंके उत्कृष्ट स्वामित्वका अधिष्ठात्री क्यों है ?

समाधान—नहीं क्योंकि वही नुह सातह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अचक्षापत्ती काजतक नी नोक्पायोंमें संक्रमण नहीं होता है, अतः सोलह कपायोंके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति के बाद एक आपत्ती कास व्यतीत होते पर ही नी नोक्पायोंका उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त होता है ।

णियमो ? साहावियादो । जदि एोकसायाणमण्णेसिं कम्माणमात्रलिउणुवकस्स-  
द्विदिसंकमेण उक्कस्सद्विदिविहत्ती होदि तो पिच्छत्त वक्कस्सद्विदिं सत्तगिसागरोवम-  
कोडाकोडिपमाणं एोकसाएसु मंकाभिय उक्कस्सद्विदिविहत्ती किण्ण पस्विज्जदे ? ए,  
दंसणमोहणीयस्स चरित्तमोहणीयसंकमाभावादो । कसायाणं एोकसाएसु एोकसा-  
याणं च कसाएसु कुदो संकमो ? ण एस दोसो, चरित्तमोहणीयभावेण तेसिं पचा-  
सत्तिसंभवादो । मोहणीयभावेण दंसणचरित्तमोहणीयाणं पचासत्ती अत्थि त्ति अण्णोण्णेसु  
संकमो किण्ण इच्छदि ? ए, पढिमेउक्कमाणदंसणचरित्ताणं भिएणजाटित्ताणेण तेमिं  
पचासत्तीए अभावादो । एवं जइवसहाइरियपस्विदउक्कस्ससामित्तं देमामभियभावेण  
सुचिदादेसं भणिय संपहि उच्चारणाइरियवक्खाणं पुणरुत्तामएण ओध मोत्तूण आदेस-  
विसयं वत्तइस्सामो ।

§ ४१२ सत्तसु पुढवीसु तिरिक्ख-पंचिन्द्रियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०-

शंका-विवक्षित समयमें वधे हुए कर्मपुलका अचलावली कालके अनन्तर ही पर प्रकृतिरूप  
से सक्रमण होता है ऐसा नियम क्यों है ?

समाधान-स्वाभावसे ही यह नियम है ।

शंका-यदि अन्य कर्मोंकी एक आवली कम उत्कृष्ट स्थितिके सक्रमणसे नोकपायोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति होती है तो सत्तारकोडाकोड़ी सागर प्रमाण मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको नोकपायोंमें  
संक्रमित करके उनकी उत्कृष्ट स्थिति आवलिकम सत्तारकोडाकोड़ी सागर प्रमाण क्यों नहीं कही  
जाती है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीयमे सक्रमण नहीं होता है ।

शंका-कपायोंका नोकपायोंमें और नोकपायोंका कपायोंमें सक्रमण किस कारणसे होता है ?

समाधान-यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वे दोनों चारित्रमोहनीय हैं, अतः उनकी परस्पर-  
में प्रत्यासत्ति पाई जाती है इसलिये उनका परस्परमे सक्रमण हो सकता है ।

शंका-दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये दोनों मोहनीय हैं । इस रूपसे इनकी  
भी प्रत्यासत्ति पाई जाती है, अतः इनका परस्परमें सक्रमण क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि परस्परमें प्रतिपेध्यमान दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के  
भिन्न जाति होनेसे उनकी परस्परमें प्रत्यासत्ति नहीं पाई जाती है, इसलिये उनका परस्परमें  
संक्रमण नहीं होता है ।

इस प्रकार जिसके द्वारा देशामर्षक भावसे आदेशकी सूचना मिलती है ऐसे यतिवृषभ-  
आचार्यके द्वारा कहे गये उत्कृष्ट स्वामित्वको कहकर अब पुनरुक्त दोषके भयसे उच्चारणाचार्यके  
द्वारा व्याख्यात ओघ स्वामित्वको छोड़कर आदेशविषयक स्वामित्वको कहते हैं—

§ ४१२. सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच

तिरि० जोगिणी-मनुस्सतिप०-द्वं-मषणादि जाव सहस्तर०-पंचिदिय-पंचि०-पञ्ज०  
तस०-तसपञ्ज०-पंचमण०-पंचनवि०-कायजोगि-ओरासि०-वेउम्बि०-विण्णिवेद-वचा-  
रिक्क०-असंमद०-वक्खु०-अवक्खु०-पंचवेस्सा-मवसिद्धि०-सथिण-आहारीणमोपमंगो ।

॥ ४१३ ॥ पंचि०-तिरि०-अपञ्ज मिच्छद-सोमस्सक०-एवणोक्क०-उक्क०-कस्स ?  
अण्ण०-ओ तिरिक्खो मनुस्सा वा उक्कस्सद्विदि पंचिदण्ण द्विदिपादमकाऊण पंचि०  
तिरिक्खमपञ्जपण्ण पडमसमयउवण्णो तस्स उक्कस्सद्विदिनिहरी । सम्मच-सम्मामि०  
उक्क०-कस्म ? अण्ण०-तिरिक्खो मनुस्सो वा उक्कस्सद्विदि पंचिदण्ण अंतोमुदुचेण  
सम्मच पडिण्णो सम्मरोण सह सव्वलहु काममण्णिय मिच्छदं गदो मिच्छचेण  
द्विदिपादमकाऊण पंचि०-तिरि०-अपञ्जपण्ण उवण्णो तस्स पडमसमयउवण्णस्स  
उक्कस्सद्विदिनिहरी । एवं मणुसअपञ्ज०-बादरेदिपअपञ्ज०-सुहुमेदिपअपञ्जचा  
पञ्जच-सम्भविगल्लिदिय-पंचि०-अपञ्ज०-बादरपुडवि०-अपञ्ज०-सुहुमपुडविपञ्जचापञ्जच  
बादरमाअपञ्ज०-सुहुममाठ०-पञ्जचापञ्जच-बादरतठ०-पञ्जचापञ्जच-सुहुमवतउपञ्जचा

पचात, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, सामान्य मनुष्य, पचात मनुष्य मनुष्यिनी सामान्य देव, मन्व-  
वासिर्षेसे लेकर सहस्तर कस्पतकके देव, पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पचात त्रस त्रस पचात, पौर्षो  
मनोयोगी पौर्षो वचनयोगी, काययोगी, ओहारिक काययोगी वैद्विदिक काययोगी, तीनों वेदवाले,  
चातों कयापचात असंयत चक्षुरक्षेत्रवाले अचक्षुरक्षेत्रवाले छप्पादि पौर्व क्षेत्रवाचाले, मध्य, संक्षी  
और आहारक जीवोंके ओपके समान जग है ।

विशुपार्य-ऊपर भित्ती मार्गवाप गिनार्ह हैं उनमें मिथ्यात्व आदि सब कमौकी  
रहूत स्थिति ओपके समान बन जाती है, अतः इनकी प्रकृषथाको ओपके समान कहा है ।

॥ ४१३ ॥ पंचेन्द्रिय तिर्यच लक्ष्मपचातकोमि मिथ्यात्व, साहज कपाय और नौ लोकपायोंकी  
अरुण्ड स्थितिबिम्बिक क्लिप्त होती है ? जो कोई एक तिर्यच वा मनुष्य अरुण्ड स्थिति बाँपकर  
और स्थितिपात न करके पंचेन्द्रिय तिर्यच लक्ष्मपचातकोमि कल्पन हुआ है उसके कल्पन ज्ञानके  
पहले समझमें एक कमौकी अरुण्ड स्थितिबिम्बिक होती है । सम्मत्त्व और सम्मग्मिप्यात्वकी  
अरुण्ड स्थितिबिम्बिक क्लिप्त होती है ? जो कोई एक तिर्यच वा मनुष्य अरुण्ड स्थिति बाँपकर  
अन्तमु हुतेकलक डाप सम्मत्त्वका प्राप्त हुआ तथा सम्मत्त्वके साथ अतिशय कलतक रहकर  
मिथ्यात्वकी प्राप्त हुआ । पुनः मिथ्यात्वके साथ रहते हुए स्थितिपात न करके पंचेन्द्रिय तिर्यच लक्ष्म-  
पचातकोमि कल्पन हुआ उसके कल्पन ज्ञानके पहले समझमें सम्मत्त्व और सम्मग्मिप्यात्वकी अरुण्ड  
स्थिति होती है । इसी प्रकार लक्ष्मपचातक मनुष्य, बाहर पंचेन्द्रिय अपचात, सूक्ष्म पंचेन्द्रिय, सूक्ष्म  
पंचेन्द्रिय पचातक, सूक्ष्म पंचेन्द्रिय अपचातक, सब विच्छन्निद्रिय पंचेन्द्रिय लक्ष्मपचातक, बाहर  
पृथिवीकायिक अपचातक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पचातक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक  
अपचातक, बाहर जलकायिक अपचातक, सूक्ष्म जलकायिक सूक्ष्म जलकायिक पचातक, सूक्ष्म  
जलकायिक अपचातक, अग्निकायिक, बाहर अग्निकायिक पचातक बाहर अग्निकायिक अपचातक, सूक्ष्म  
अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पचातक, सूक्ष्म अग्निकायिक अपचातक, वायुकायिक, बाहर  
वायुकायिक पचातक, बाहर वायुकायिक अपचातक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पचातक,

पज्जत्त-वादरवाउपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवाउ० पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय० अपज्ज०-  
सुहुमवणप्फदि० पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिओद-तसअपज्जत्ता त्ति ।

§ ४१४. आणदादि जावुवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०  
णवणोक्क० उक्क० ? अण्ण० जो दव्वलिङ्गी तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पढम-  
समयउववण्णो तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्व-  
पयडीणमुक्क० कस्स ? अएण० जो वेदय०ट्ठि तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ  
पढमसमयउववण्णो तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती ।

§ ४१५. एइदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो देवो उक्कस्स-  
ट्ठिदि वंधमाणो एइदिएसु पढमसमयउववण्णो तस्स० उक्क० विहत्ती । सम्मत्त०

सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पति-  
कायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक, सब निगोद और  
त्रस अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जिस मनुष्य या तिर्यंचने मिथ्यात्व या सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिवध  
किया है ऐसा जीव अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् उस उत्कृष्ट स्थितिके साथ मर कर पंचेन्द्रिय तिर्यंच  
लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हो सकता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके भवके पहले समयमें  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकर्म सत्तर कोडाकोड़ी सागर और सोलह कपायोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकर्म चालीस कोडाकोड़ी सागर कहीं हैं तथा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति  
उस लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचके होती है जिसने पूर्व भवमें सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध  
करके और एक आवलिके पश्चात् उसका नौ नोकपायरूपसे सक्रमण करके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त  
कालके बाद पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें जन्म लिया है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका खुलासा मूलमें ही किया है । मूलमें और जितनी मार्गणाएँ गिनाई  
हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना ।

§ ४१४ आनत कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयकतक मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व,  
सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? आनतादिके योग्य  
उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई एक द्रव्यलिङ्गी मुनि मरकर आनतादिकमें उत्पन्न हुआ  
उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । अनुदिशसे  
लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ?  
अनुदिशादिकके योग्य उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनुदिश  
आदिमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्ति होती है ।

§ ४१५. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके  
होती है ? उत्कृष्ट स्थिति बौधनेवाला जो कोई एक देव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न  
होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-

सम्पामि० उक्क० कस्म० ? अण्ण० जो तिगदिओ उक्कस्सहिदिं बंभिदण अंतोसुहुषा पडिहगमो सतो वेदगसम्मणं पडिबण्णो तेण सम्मणेण सह सम्मभुअमंतोमुहुसदमच्चिय मिच्छसं गयो । तवो मिच्छाणं हिदिभादमकादण पढमसमयपरिदिआ भादो तस्स उक्क० बिहरी । णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्णवरस्स जो देवो उक्कस्सहिदिं पपमाणा काणं कादण एर दिओ भादो पढमसमयपरिदिं कादण जीव आवलियउम-वणस्स तस्स उक्क० हिदिबिहरी । पढमेइ दियपज्ज -वाटरपइदिय-भादरेइदिय पज्ज० पुढवि०-वाटरपुढवि०-वाटरपुढविपज्ज० आठ०-वाटरआठ०-वाटरआठपज्ज०-वणप्फदि०-वाटरवणप्फदि०-वाटरवणप्फदिपज्ज०-वाटरवणप्फदिपरोप० वाटरवणप्फदि परोपपज्ज० अस्सणि चि । ओराखियमिस्स० एरं चेव । णवरि देव गेरइयपज्जा यदाणं कादणं ।

की उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि किसके होती है ? तीन गतिबोका जा काई एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बौध्दर अस्तु हुत कालमें प्रतिमन होकर तथा सम्यक्त्वके योग्य विद्युत्तिका प्राप्त होकर वैश्वसम्बन्धत्वको प्राप्त हुआ । पुनः अतिलगु कालतक वद्वसम्बन्धत्वके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । तदनन्तर मिथ्यात्वके साथ स्थितिपाठ न करके एकेन्द्रिय हुआ । इसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्बन्धिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि होती है । नौ मोक्षप्राप्तियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि किसके होती है ? जो कोई एक देव कथायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-को बौध्दर मरा और एकेन्द्रिय हुआ । इससे उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर एक आवासी मेमात्र कालके भीतर नौ मोक्षप्राप्तियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि होती है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय पर्याप्तक, वाटर एकेन्द्रिय वाटर एकेन्द्रिय पर्याप्तक धृषिबीकायिक, वाटर धृषिबीकायिक वाटर, धृषिबीकायिक पर्याप्तक, जलकायिक, वाटर जलकायिक, वाटर जलकायिक पर्याप्तक, वनस्पति-कायिक, वाटर वनस्पतिकायिक, वाटर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, वाटर वनस्पतिकायिक प्रत्यक-सरीर, वाटर वनस्पतिकायिक प्रत्येक सरीर पर्याप्तक और अस्ती जीवोंके जानना चाहिये । औदारिक मिमकाययोगी जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विवेचना है कि जो देव और नारक पद्यायसे बापिस आकर औदारिक मिमकाययोगी हुए हैं उनके उत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि कहनी चाहिये ।

विशुद्धार्थ—मूलमें एकेन्द्रिय आदि घसी मार्गवाप गिनत हैं जिनमें देव पर्यायसे आकर जीव उत्पन्न हो सकते हैं, अतः इन सबमें एकेन्द्रियोंके समान सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति बन जाती है । किन्तु औदारिकमिमकाययोगमें उत्कृष्ट स्थिति कदाव समय देव और नारक पद्यायसे आकर वा औदारिकमिमकाययोगी हुए हैं उनके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । यहां यह टीका की जा सकती है कि जो कुछ मार्गवापोंमें देव पर्यायसे आकर उत्पन्न हुए हैं और औदारिकमिमकाययोगमें देव वा नारक पद्यायसे आकर उत्पन्न हुए हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति क्यों प्राप्त होती है या तिर्बन या मनुष्य पद्यायसे आकर एक मार्गवापोंमें उत्पन्न हुए हैं उनके उत्कृष्ट स्थिति क्यों नहीं प्राप्त होती है । सा इसका समाधान यह है कि अतिमंजुसे मरा हुआ तिर्यक और मनुष्य नारक पद्यायमें उत्पन्न हागा अतः यहां देव और नारक पर्यायसे पद्यायाम् उत्पन्न कराकर ही एक मार्गवापोंमें उत्कृष्ट स्थिति बड़ी है ।



§ ४१६ वेउव्वियमिस्स० मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदि वधमाणो मदो णेरइएसु पढमसमयउव-  
वण्णो तस्स उक्क०विहत्ती । सम्मत्त-सम्मामि० पंचिं०तिरिक्खअपज्जत्तभंगो । एव-  
णोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदि वंधिदूण कालं  
गदो णेरइएसु उववण्णो पढमसमयमादि कादूण जाव आवलियउववण्णस्स तस्स  
उक्क०विहत्ती ।

§ ४१७ आहार० सव्वपयडीणमुक्क० कस्स ? अएण० जो वेदय०दिट्ठी उक्कस्स-  
ट्ठिदिसत्तकम्मिओ पढमसमयपज्जत्तयदो तस्स उक्क०विहत्ती । एवमाहारमिस्स० । णवरि  
पढमसमयआहारमिस्सयस्स ।

§ ४१८ कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो चदुगदिओ  
उक्कस्सट्ठिदि वंधमाणो कालं गदो समयाविरोहेण तिरिक्ख-णेरइएसु पढमसमयकम्मइय-  
कायजोगी जादो तस्स उक्क०विहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामि० ओरालियमिस्सभंगो ।  
णवरि चदुसु गदीसु सम्मत्तं दादव्व । णवणोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो चदुगदिओ  
उक्क०ट्ठिदि० वधमाणो कालं गदो जहासंभवं तिरिक्ख-णेरइएसु पढमविदयसमयउव-

§ ४१६ वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर मरा और  
नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति  
होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है । नौ  
नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट  
स्थितिको बांधकर मरा और नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर  
एक आवलीप्रमाण कालके भीतर नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति होती है ।

§ ४१७ आहारककाययोगियोंमें सव प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति किसके होती है ?  
उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारककाययोगी हुआ उसके पर्याप्त  
होनेके पहले समयमें सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति होती है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाय-  
योगी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगके पहले  
समयमें उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति होती है ।

§ ४१८ कर्मणकाययोगियोंमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति  
किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जो कोई चार गतिका जीव मरा और यथानियम  
तिर्यंच और नारकियोंमें उत्पन्न होकर कर्मणकाययोगी हो गया उसके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके  
समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वको चारों गतियोंमें देना चाहिये । अर्थात्  
उसकी उत्कृष्टस्थिति विभक्ति चारों गतियोंमें कर्मणकाययोगियोंके होती है । नौ नोकपायोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति-विभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जो कोई एक चारों  
गतियोंका जीव मरा और यथायोग्य तिर्यंच तथा नारकियोंमें पहले और दूसरे समयमें उत्पन्न

बण्णो तस्स उक्क०विहरी ।

§ ४१६. अवगद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभि०-मारसक०-णवणोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पइमसमयअवगदवेदो आदो तस्स उक्क० विहरी । एवमकसा०-मुहुम० जहापस्वादसंजदे चि ।

§ ४२० यदि-मुदअण्णा० मिच्छत्त-सोत्तसक०-णवणोक्क० ओपमंगो । सम्मत्त-सम्माभि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छत्तउक्कस्सट्ठिदिं वधिय अंतोमुहुचेण सम्मत्त पडिबण्णो । पुणो सम्मत्तेण सम्मत्तमुअर्मतोमुहुत्तदमच्चिय मिच्छत्तं गदो तस्स पइम समय उक्क०विहरी । एवं विहंग० ।

§ ४२१ आमिणि०-मुद० ओरि० सअपयवीणमुक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाईही देवो जेरइओ वा उक्क०ट्ठिदिं वंधिदूण ट्ठिदिपादमकादूण अंतोमुहुचेण सम्मत्तं पडिबण्णो तस्स पइमसमयसम्माइहिस्स उक्क० विहरी । एवमोहिदंस० सम्मादि०-वदय०दिदि चि । मणपअइ० सम्मपपडि उक्क० कस्स ? अण्ण० वेदय० णिही उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ तस्स पइमसमयमखपअवणाणिस्स उक्कस्सट्ठिदि विहरी । एवं संजद०-सामाइय-वेदो०-परिहार०-संबदासंजदे चि ।

हुआ उसके उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित होती है ।

§ ४१६ अण्णोत्तवर्गमें मिध्यात्व, सम्पत्त्व सम्ममिध्यात्व आदि कथाय और नौ नोकापायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वमयात्मा को कोई भी अण्णोत्तवर्गवाला हो गया उसके पहले समयमें एक कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति बिम्बित होती है । इसी प्रकार अण्णोत्तवी सूक्ष्मसांप्रतिकर्षय और यथावयवसंबन्धके जानना चाहिये ।

§ ४२० नत्तयानी और नुत्तयानी बीधोंमें मिध्यात्व सोलह कथाय और नौ नोकापायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित ओषके समान है । सम्पत्त्व और सम्ममिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित किसके होती है ? वा कोई भी मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको धारण कर अण्णोत्तवर्गमें प्राप्त हुआ । पुनः सम्पत्त्वके साथ सबसे जगु अण्णोत्तवर्गमें प्राप्त एक रह कर मिध्यात्वमें गया उसके पहले समयमें एक कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित होती है । इसी प्रकार विमंगलानिबोके जानना चाहिये ।

§ ४२१ आमिणिवोधिअण्णोत्तवी और अवधिअण्णोत्तवी बीधोंमें सब प्रकृतियों की उत्कृष्टस्थिति बिम्बित किसके होती है ? जो कोई मिध्यात्वि देव या नारकी भी उत्कृष्ट स्थितिको धारण और स्थितिपात न करके अण्णोत्तवर्गमें प्राप्त हुआ उस समयमें अण्णोत्तवी बीधके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित होती है । इसी प्रकार अवधिअण्णोत्तवी, सम्मत्तवि और वदकसम्मत्तवि बीधोंके जानना चाहिये । मत्तपवेयअण्णोत्तवी बीधोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वमयात्मा को कोई वेदक सम्मत्तवि भी है इसके मत्तपवेयअण्णोत्तवी प्राप्त होमके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित होती है । इसी प्रकार संबन्ध समाधिकर्षयत जेवोपवनापनासंयत, परिहारविपुलिसंयत और संवत्सर्षयतके जानना चाहिये ।

संभवो तद्वा दंसणमोहणीयक्खवणाए तत्थ किं संभवो अत्थि णत्थि त्ति संदेहेण घुलंत-  
हियस्स सिस्ससंदेहविणासणद्धं मणुस्सस्स मणुस्सणीए वा त्ति भणिदं । खविज्ज-  
माणयं ति वुत्ते मिच्छत्तस्स गहणं, अण्णस्सासंभवादो । आवलियं ति वुत्ते उदयावलि-  
याए गहणं; मिच्छत्तचरिमफालियाए परसरूवेण गदाए उदयावलियपविट्ठणिसेगे मोत्तूण  
अण्णेसिमवट्ठाणाभावादो । एत्थ जमावलियं पविट्ठं खविज्जमाणयं मिच्छत्त अधट्ठिदि-  
गलणाए गलिय जाधे तं दुसमयकालट्ठिदिगं सेस ताधे तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि  
त्ति संबंधो कायव्वो । कथं सुत्तम्मि असंताणं पदाणमज्झाहारो कीरदे ? ण, सुत्त-  
स्सेव अवयवभूदानं सुगमत्तणेण तत्थ अणुच्चारिज्जमाणानं तत्थ अभावविरोहादो ।

इसी प्रकार अप्रशस्त वेदके उदयमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा क्या संभव है या नहीं है इस प्रकार  
सन्देहसे जिसका हृदय घुल रहा है उस शिष्यके सन्देहको दूर करनेके लिये सूत्रमें 'मणुस्सस्स  
मणुस्सणीए वा' यह पद कहा है । सूत्रमें 'खविज्जमाणय' ऐसा कहने पर उससे मिथ्यात्वका ग्रहण  
करना चाहिये, यहा अन्यका ग्रहण नहीं हो सकता है । सूत्रमें 'आवलिया' ऐसा कहने पर उससे  
उदयावलिका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पररूपसे संक्रमित हो  
जाने पर उदयावलिमें प्रविष्ट हुए निषेकोंको छोड़कर अन्य निषेकोंका सद्भाव नहीं पाया जाता है ।  
यहाँ पर जो उदयावलिमें प्रविष्ट होकर क्षयको प्राप्त होनेवाला मिथ्यात्व कर्म है वह अध स्थिति-  
गलना रूपसे गलित होकर जब दो समय काल स्थितिप्रमाण शेष रहता है तब उसकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति होती है ऐसा सम्बन्ध कर लेना चाहिये ।

**शंका**—जो पद सूत्रमें नहीं है उनका अध्याहार कैसे किया जा सकता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि जो सूत्रके ही अवयवभूत हैं पर सुगम होनेसे जिनका वहा  
उच्चारण नहीं किया है उनका अस्तित्व यदि वहाँ नहीं स्वीकार किया जाता है तो विरोध आता है ।

**विशेषार्थ**—यद्यपि ऐसा नियम है कि स्त्रीवेदवाले और नपुंसकवेदवाले मनुष्यके मनः-  
पर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसयम, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगकी प्राप्ति नहीं  
होती फिर भी क्षाधिकसम्यक्त्व और क्षाधिकचारित्रकी प्राप्ति तीनों वेदोंके रहते हुए हो सकती  
है, इसी बातका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमे मनुष्य और मनुष्यिनी इन दोनों पदोंका ग्रहण किया  
है । यहा मनुष्य पदसे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये और मनुष्यिनी  
पदसे स्त्रीवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार जब इन तीन वेदवालोंमेंसे कोई एक  
वेदवाला मनुष्य दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता हुआ मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिमें स्थित उदयावलि-  
प्रमाण निषेकोंको गलाता हुआ अन्तमें दो समय स्थितिवाला एक निषेक शेष रखता है तब उसके  
मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है । मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके प्रतिपादक उक्त चूर्णिसूत्रका  
समुदायार्थ कहते समय वीरसेन स्वामीने 'अधट्ठिदिगलणाए गलिय' इतना पद और जोड़ा है । इस  
पर शंकाकारका कहना है कि ये पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें तो पाये नहीं जाते, अतः यहा इनका अध्याहार  
कैसे किया जा सकता है, क्योंकि अध्याहार तो उन्हीं पदोंका होता है जो पूर्ववर्ती सूत्रोंमें  
आ चुके हैं । इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका सार यह है कि कोई  
पद यदि पूर्ववर्ती सूत्रोंमें न आया हो तो भी उसका अध्याहार करनेमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि

⊗ सम्मत्तस्त जहण्णद्विविहसी कस्स ।

‡ ४२७ सुगममेव ।

⊗ चरिमसमयअक्खीणव सणमोहणीयस्स ।

‡ ४२८ चरिमसमयअक्खीणवसम्पत्तस्स चि वत्तब्बं तेनेत्य अहियारादो ण चरिमसमयअक्खीणवसणमोहणीयस्से चि । ण एस दोसो, मिच्छत्त-सम्माभिच्छरो स्वय पच्छा सम्पत्तां सुविज्जदि चि कम्माण वसनणकमजाणावणठ चरिमसमय अक्खीणवसणमोहणीयस्से चि छिदेसादो । मिच्छत्त-सम्माभिच्छरोसु कं पुब्बं सुविज्जदि । मिच्छत्तां । कुदो, अत्तवसुहत्तादो । असुहत्तस्स कम्मस्स पुब्बं वेव स्ववर्ण होदि चि कुदो गणवद । सम्मत्तस्स छोहसंनवणस्स य पच्छा स्वपण्णहाणुवत्तीदो ।

येसा कोई निवम नहीं है कि जो पर पूर्ववर्ती सुत्रोंमें आये हो जहाँका केवल अभ्याहार किया जा सकता है । किन्तु सरल होनेसे आ पर सुत्रमें नहीं आये गये हों पर जिनके कथन करनेसे अर्थ बोधमें सुगमता बाठी हो ऐसे पूर्वोक्तों अग्रसे भी बोझा जा सकता है क्योंकि अभ्याहारका अर्थ भी यही है कि जिस वाक्यका अर्थ अस्पष्ट हो उसे अष्टान्तरकी कम्पना द्वारा स्पष्ट कर देना चाहिये । अब यदि ऐसे पर पूर्ववर्ती सुत्रोंमें मिला बात है तो अच्छा ही है और यदि नहीं मिलते हैं तो कम्पनाद्वारा उन्हें अग्रसे भी बाझा जा सकता है ।

⊗ सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिबिमक्ति किसके होती है ?

‡ ४२९ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ जिसने दर्शनमोहनीयका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके दर्शनमोहनीयके ज्ञय होनेके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिबिमक्ति होती है ।

‡ ४२८ शंका—सुत्रमें 'जिसने दर्शनमोहनीयका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' यह न कहकर 'जिसने सम्यक्त्वका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि सम्यक्त्वका यही अधिकार है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि मिथ्यात्व और सम्मगिमिथ्यात्वको दूर करके अन्ततः सम्यक्त्व का ज्ञय करता है इस प्रकार कर्मोंके जपणके कर्मका ज्ञान करनेके लिये 'जिसने कथन मोहनीयका ज्ञय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' यह कहा है ।

शंका—मिथ्यात्व और सम्मगिमिथ्यात्वमें पहले किसका ज्ञय होता है ?

समाधान—पहले मिथ्यात्वका ज्ञय होता है ।

शंका—पहले मिथ्यात्वका ज्ञय किस कारणसे होता है ?

समाधान—क्योंकि मिथ्यात्व अत्यन्त अशुभ प्रकृति है ।

शंका—अशुभ कर्मका पहले ही ज्ञय होता है वह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्यथा सम्यक्त्व और शीघ्र क्षयजनक पश्चात् ज्ञय वन नहीं सकता है, इस प्रमाणसे जाना जाता है कि अशुभ कर्मका ज्ञय पहले होता है ।

§ ४२२. मुक्कले० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाइही उक्कस्सट्ठिदिं वंधिय द्विदिघादमकाऊण लेस्सापरावचिं गदो तस्स उक्क० विहत्ती । सम्मत्त० सम्मामि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० जो मिच्छाइही उक्क०ट्ठिदिं वंधिय अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो अंतोमुहुत्तेण लेस्सापरावचिं गदो तस्स पढमसमए उक्क०विहत्ती ।

§ ४२३. अभविय० देवोघं । णवरि सम्म०-सम्मामि० णत्थि । ग्वइय० वार-सक०-णवणोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्क०ट्ठिदिसंतक्कम्मिओ पढमसमय-खीणदंसणमोहणीओ जादो तस्स उक्क०विहत्ती । उवसम० सव्वपयडि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्क०ट्ठिदिसंतक्कम्मिओ पढमसमयउवमंतदंसणमोहणीओ जादो तस्स उक्क०विहत्ती । सासण० सव्वपयडि० उक्क० कस्स ? अण्ण० तस्सेव पढम-समयसासणं गदस्स तस्स उक्कस्स०विहत्ती । सम्मामि० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक्क० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाइही उक्क०ट्ठिदिं वंधिदूण द्विदिघाद-मकाऊण अंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो तस्स उक्क०विहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छत्तउक्कस्सट्ठिदिं वंधिदूण द्विदिघादमकाऊण

§ ४२२ शुक्ललेश्यामे मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? जो मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर और स्थितिघात न करके लेश्या-परावृत्तिसे शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बाध कर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है । पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा लेश्यापरावृत्तिसे शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति हाती है ।

§ ४२३ अभव्योंके सामान्य देवोंके समान कथन जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सन्यग्मिथ्यात्व कर्म नहीं होते हैं । ज्ञायिक सम्यग्दृष्टियोंमें बारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो जीव क्षीणदशनमोह हो गया है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो जीव उपशान्तदशनमोहनीय हो गया है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? जो कोई वही पूर्वोक्त जीव सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति हाती है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर और स्थितिघात न करके अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति बाधकर और स्थितिघात

सम्मचं पडिपण्णो सम्मचेण सम्यक्सङ्गममद्गमविद्वय विद्विधादमकाऊण सम्मामिच्छत्तं  
गदो तस्स पढमसमपसम्माभिच्छादिहिस्स उक्क०विहृती । अछाहारीणं कम्मइयमंगो ।

एवमुक्कस्ससामिचं समचं ।

⊗ एतो जहण्णय ।

§ ४२४ जहण्णसामिचं मणामि चि सिस्ससमाऊण कवमेवेण सुरोण । तस्स  
दुनिहो छिरेसो—ओपेस आदेसेण य चेदि । तस्य ओपेण परुवणठ अइसहाइरिओ  
उत्तरसुरां मणदि—

मिच्छत्तस्स जहण्णविद्विहृती कस्स ?

§ ४२५ सुगममेवं

⊗ मणुसस्स वा मणुसिणीए वा अविज्जमाणपमावखिय पविट्ठं जाये  
दुसमपकासविदिग सेस ताये ।

§ ४२६ मणुस्सो चि बुत्ते पुरिसणवु सपवेदीवइण्णाणं गहणं । मणुस्सिणि चि  
बुरो इत्थिवेदोदयनीणाणं गहणं । महा अणसत्पवेदोदयण मणपस्सवखाणादीणं प

न करके सम्यक्सत्त्वको प्राप्त हुआ है । पुनः सम्यक्सत्त्वके साथ अठितानु कला तक रहकर और स्थिति-  
पाठ न करके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके पहले समर्थमें  
उक्त स्थिति विभक्ति होती है । अगाधारकोंका कर्मवृत्तव्योक्तिसे समान स्वामित्व ज्ञानना  
पावित्वे ।

इस प्रकार उक्त स्वामित्व समाप्त हुआ ।

⊗ इसके आगे जयन्य स्वामित्वको कहते हैं ।

§ ४२७ अब जयन्य स्वामित्वको कहते हैं । इस प्रकार इस सूत्र द्वारा शिष्योंकी सम्ज्ञा  
की है । इस जयन्य स्वामित्वकी अपेक्षा निर्लेख दो प्रकारका है—ओपनिर्लेख और आषेधनिर्लेख ।  
अन्तेसे ओपके कथन करनेके लिये यतिशुभ आत्माके आगेका सूत्र कहते हैं—

⊗ मिथ्यात्वकी जयन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४२८ अब सूत्र सुगम है ।

⊗ मनुष्य या मनुष्यिनीके उदयावस्थामें पविष्ट होकर जयको प्राप्त होता हुआ  
को मिथ्यात्व कर्म है उसकी जब दो समय प्रमाण स्थिति शेष रहती है तब जयन्य  
स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४२९ सूत्रमें मनुष्य ऐसा कहने पर उससे पुरुषत्व और नपुंसकत्वके जयवाले मनुष्यों  
का ग्रहण होता है । मनुष्यिनी ऐसा कहने पर उससे स्त्रीत्वके जयवाले मनुष्य स्त्रीको ग्रहण  
होता है । जिस प्रकार अमणुस्य वेदके जयके साथ मनुष्यव्ययानाविक्रमा होमा संभव नहीं है

संभवो तहा दंसणमोहणीयक्खवणाए तत्थ किं संभवो अत्थि णत्थि त्ति मंदेहेण पुलंत-  
हियस्स सिस्ससंदेहविणासणट्ठं मणुस्सस्स मणुस्सणीए वा त्ति भणिदं । खविज्ज-  
माणयं ति वुत्ते मिच्छत्तस्स गहण, अण्णस्सासंभवादो । आवलियं ति वुत्ते उदयावलि-  
याए गहणं; मिच्छत्तचरिमफालियाए परसरूवेण गदाए उदयावलियपविट्ठणिसेगे मोत्तूण  
अण्णेसिमवट्ठाणाभावादो । एत्थ जमावलियं पविट्ठं खविज्जमाणयं मिच्छत्त अधट्ठिदि-  
गलणाए गलिय जाधे तं दुसमयकालट्ठिदिगं सेस ताधे तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि  
त्ति संवंधो कायव्वो । कथं सुत्तम्मि असंताणं पढाणमज्झाहारो कीरदे ? ण, सुत्त-  
स्सेव अवयवभूदाणं सुगमत्तणेण तत्थ अणुच्चारिज्जमाणानं तत्थ अभावविरोहादो ।

इसी प्रकार अप्रशस्त वेदके उदयमें दर्शनमोहनायकी क्षपणा क्या संभव है या नहीं है इस प्रकार  
सन्देहसे जिसका हृदय घुल रहा है उस शिष्यके सन्देहको दूर करनेके लिये सूत्रमें 'मणुस्सस्स  
मणुस्सणीए वा' यह पद कहा है । सूत्रमें 'खविज्जमाणय' ऐसा कहने पर उससे मिथ्यात्वका ग्रहण  
करना चाहिये, यहा अन्यका ग्रहण नहीं हो सकता है । सूत्रमें 'आवलिय' ऐसा कहने पर उससे  
उदयावलिका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पररूपसे सक्रमित हो  
जाने पर उदयावलिमें प्रविष्ट हुए निपेकोंको छोडकर अन्य निपेकोंका सद्भाव नहीं पाया जाता है ।  
यहाँ पर जो उदयावलिमें प्रविष्ट होकर क्षयको प्राप्त होनेवाला मिथ्यात्व कर्म है वह अध स्थिति-  
गलना रूपसे गलित होकर जब दो समय काल स्थितिप्रमाण गेप रहता है तब उसकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति होती है ऐसा सम्बन्ध करनेना चाहिये ।

**शंका—**जो पद सूत्रमें नहीं है उनका अध्याहार कैसे किया जा सकता है ?

**समाधान—**नहीं, क्योंकि जो सूत्रके ही अवयवभूत हैं पर सुगम होनेसे जिनका वहा  
उच्चारण नहीं किया है उनका अस्तित्व यदि वहाँ नहीं स्वीकार किया जाता है तो विरोध आता है ।

**विशेषार्थ—**अद्यपि ऐसा नियम है कि स्त्रीवेदवाले और नपुंसकवेदवाले मनुष्यके मतः-  
पर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसयम, आहारकफाययोग और आहारकमिश्रकफाययोगकी प्राप्ति नहीं  
होती फिर भी त्वायिकसम्बन्ध और त्वायिकचारित्रकी प्राप्ति तीनों वेदोंके रहते हुए हो सकती  
है, इसी बातका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें मनुष्य और मनुष्यिनी इन दोनों पदोंका ग्रहण किया  
है । यहा मनुष्य पदसे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये और मनुष्यिनी  
पदसे स्त्रीवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार जब इन तीन वेदवालोंमेंसे कोई एक  
वेदवाला मनुष्य दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता हुआ मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिमें स्थित उदयावलि-  
प्रमाण निपेकोंको गलाता हुआ अन्तमें दो समय स्थितिवाला एक निपेक शेष रखता है तब उसके  
मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है । मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके प्रतिपादक उक्त चूर्णिसूत्रका  
समुदायार्थ कहते समय वीरसेन स्वामीने 'अधट्ठिदिगलणाए गलिय' इतना पद और जोड़ा है । इस  
पर शंकाकारका कहना है कि ये पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें तो पाये नहीं जाते, अतः यहा इनका अध्याहार  
कैसे किया जा सकता है, क्योंकि अध्याहार तो उन्हीं पदोंका होता है जो पूर्ववर्ती सूत्रोंमें  
आ चुके हैं । इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका सार यह है कि कोई  
पद यदि पूर्ववर्ती सूत्रोंमें न आया हो तो भी उसका अध्याहार करनेमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि

⊗ सम्मत्तस्स जाहण्णट्टिविविहसी कस्स ?

§ ४२७ सुगमयेदं ।

⊗ चरिमसमयअक्खीणव सणमोहणीयस्स ।

§ ४२८ चरिमसमयअक्खीणसम्मत्तस्स चि पचत्थं तणेत्थ अरियारादो ण चरिमसमयअक्खीणदसणमोहणीयस्स चि ? ण एस दोसो, मिच्छस-सम्मामिच्छो सइय पच्छा सम्मत्तं सुविज्झदि चि कम्माण वत्तवणकमनाणावणट्ठ चरिमसमय अक्खीणदसणमोहणीयस्से चि णिहेसादो । मिच्छस-सम्मामिच्छसु कं पुब्बं सुविज्झदि ? मिच्छरां । कुदो अक्खसुहादो । असुहस्स कम्मस्स पुब्बं पव स्वर्णं होदि चि इदा पव्वद ? सम्मत्तस्स सोहसंजसणस्स य पच्छा सयण्णहाणुवचीदो ।

एसा कोइ निचम नहीं है कि जो पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें आये हों कहींका केवल अभ्याहार किया जा सकता है । किन्तु सरल होनेसे जो पद सूत्रोंमें नहीं कह गये हों पर जिनके कथन करनेसे अर्थ बोधमें सुगमता जाती हा ऐसे पदोंको ऊपरसे भी जाड़ा जा सकता है, क्योंकि अभ्याहारका अर्थ भी यही है कि जिस वाक्यका अर्थ अस्पष्ट हो उसे स्पष्टान्तरकी कल्पना द्वारा स्पष्ट कर देना चाहिये । अब यदि ऐसे पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें मिल जाते हैं तो अच्छा ही है और यदि नहीं मिलते हैं तो कल्पनाद्वारा उन्हें ऊपरसे भी जाड़ा जा सकता है ।

⊗ सम्पत्त्वकी जपन्य स्थितिविमक्ति किसके होती है ?

§ ४२७ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ जिसन दर्शनमोहनीयका जप नहीं किया है ऐस जीवके दर्शनमोहनीयके क्षय होकर अन्तिम समयमें सम्पत्त्वकी जपन्य स्थितिविमक्ति होती है ।

§ ४२८ शंका—सूत्रमें 'जिसन दर्शनमोहनीयका जप नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' यह न कहकर 'जिसने सम्पत्त्वका जप नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' ऐसा कहना चाहिये क्योंकि सम्पत्त्वका यहाँ अभिधार है ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्व और सम्बन्धिमिथ्यात्वको जप करके अनन्तर सम्पत्त्व का जप करता है इस प्रकार क्योंकि जपणके क्रमका ज्ञान करनेके सिधे 'जिसने दर्शन मोहनीयका जप नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' यह कहा है ।

शंका—मिथ्यात्व और सम्बन्धिमिथ्यात्वमें पहले किसका जप होता है ?

समाधान—पहले मिथ्यात्वका जप होता है ।

शंका—पहले मिथ्यात्वका जप किस क्रमसे होता है ?

समाधान—क्योंकि मिथ्यात्व असत्यत आद्यतम प्रकृति है ।

शंका—आद्यतम कर्मका पहले ही जप होता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्यथा सम्पत्त्व और सोम संवत्सरका परचाह जप नग नहीं सकता है, इस प्रमाणसे जाना जाता है कि आद्यतम कर्मका जप पहले होता है ।



\* सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४२६, सुगममेदं ।

\* सम्मामिच्छत्तं खविज्जमाणं वा उव्वेल्लिज्जमाणं वा जस्स दुसमय-  
कालट्ठिदियं सेसं तस्स ।

§ ४३० खवेंतस्स वा उव्वेल्लतस्स वा जस्स दुसमयकालट्ठिदियं सम्मामिच्छत्तं  
सेसं तस्सेव जीवस्स जहण्णसामित्तं होदि त्ति वयणेण सेससम्मामिच्छत्तसत्तकम्मियाणं  
पडिसेहो कदो । एवकारेण विणा कधमेसो णियमो अवगम्मडे ? ण एस दोसो,  
एवकाराभावे वि तदट्ठो तत्थ अत्थि त्ति सावहारणअवगमुप्पत्तीए विरोहाभावादो ।  
एगसमयकालट्ठिदियमिदि किण्ण वुच्चे ? ए, उदयाभावेण उदयणिसेयट्ठिदी  
परसरूवेण गदाए विदियणिसेयस्स दुसमयकालट्ठिदियस्स एगसमयावट्ठाणविरोहादो ।  
विदियणिसेओ सम्मामिच्छत्तसरूवेण एगसमय चेव अच्छदि उवरिमसमए मिच्छत्तस्स  
सम्मत्तस्स वा उदयणिसेयसरूवेण परिणामुवलंभादो । तदो एससमयकालट्ठिदियसेसं

\* सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४२६ यह सूत्र सुगम है ।

❧ जिसके ज्ञयको प्राप्त होते हुए व उद्वेलनाको प्राप्त होते हुए सम्यग्मिध्यात्वकी  
दो समय काल प्रमाण स्थिति शेष रहती है उसके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति-  
विभक्ति होती है ।

§ ४३० ज्ञय करनेवाले या उद्वेलना करनेवाले जिस जीवके दो समय काल स्थिति प्रमाण  
सम्यग्मिध्यात्व शेष रहता है उसी जीवके जघन्य स्वामित्व होता है । इस वचनके द्वारा शेष  
सम्यग्मिध्यात्व सत्कर्मवाले जीवोंका प्रतिषेध कर दिया है ।

शंका—एवकारके बिना यह नियम कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि एवकारके नहीं रहने पर भी एवकार शब्दका अर्थ  
सूत्रमें अन्तर्निहित है इसलिये अवधारण सहित अर्थके ज्ञानके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका—सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति एक समय काल प्रमाण क्यों नहीं कही जाती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकृतिका उदय नहीं होता उसकी उदय निषेकस्थिति  
उपान्त्य समयमें पररूपसे संक्रमित हो जाती है अतः दो समय कालप्रमाण स्थितिवाले  
दूसरे निषेककी जघन्य स्थिति एक समय प्रमाण माननेमें विरोध आता है ।

शंका—सम्यग्मिध्यात्वका दूसरा निषेक सम्यग्मिध्यात्व रूपसे एक समय काल तक ही  
रहता है, क्योंकि अगले समयमें उसका मिध्यात्व या सम्यक्त्वके उदय निषेकरूपसे परिणामन  
पाया जाता है अतः सूत्रमें 'दुसमयकालट्ठिदियसेसं' के स्थान पर 'एक समयकालट्ठिदियसेसं' ऐसा  
कहना चाहिये ?

ते पचष्वं ? या, एगसमयकालहिदिप गिसेग संते विदियसमए चेव तस्स गिसेगस्स भविण्णफलस्स भकम्मसरूपेण परिणामपसंगादो । ण च कम्मं सगसरूपेण परसरूपेण वा भदत्तफलमकम्मभावं गच्छदि, विरोहादो । एगसमयं सगसरूपेणच्छिय विदियसमए परपयडिसरूपेणच्छिय तदियसमए भकम्मभावं गच्छदि चि दुसमयकालहिदिगिहेसो कदो ।

❖ अणुताणुबंधीणां जहण्णहिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३१ सुगममेदं ।

❖ अ ताणुबंधी जेण विसजोह्व आवलिय पविठ दुसमयकालहिदिग सेतं तस्स ।

समाधान—नहीं क्योंकि इस निपटके यदि एक समय कास प्रमाण स्थितिवाला मान लेते हैं तो दूसरे ही समयमें उसे फल न देकर अकर्मरूपसे परिणामन करनेका प्रसंग प्राप्त होता है । और कर्म स्वरूपसे या पररूपसे फल बिना विवे अकर्मभावको प्राप्त होते नहीं क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है । किन्तु अनुवच रूप प्रकृतिबोधे प्रत्येक निपेक एक समय तक स्वरूपसे रहकर और दूसरे समयमें पर प्रकृतिरूपसे रहकर तीसरे समयमें अकर्मभावको प्राप्त होते हैं ऐसा नियम है अतः सुगम हो समय कासप्रमाण स्थितिका निर्देश किया है ।

विश्लेषार्थ—यहां यह शंका उत्पन्न हुई है कि जिस कर्मका स्वरूपसे सच नहीं होता उसका अन्तिम निपेक क्यास्य समयमें ही पर प्रकृतिरूप हो जाता है अतः अनुवचरूप प्रकृतिकी अपन्य स्थिति एक समय ही कही जाहिचे । इस शंकाका बीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि यद्यपि ऐसा निपेक क्यास्य समयमें ही परप्रकृतिरूप हो जाता है पर यह कर्मरूपसे ही समय तक रहता है और तीसरे समयमें ही अकर्मभावको प्राप्त होता है अतः उस निपेककी अपन्य स्थिति दो समय कहना ही युक्त है । यदि उसकी स्थिति एक समय मानी जाती है तो दूसरे समयमें बिना फल विवे उसे अकर्मरूप हो जाना चाहिये । पर ऐसा होता नहीं क्योंकि कोई भी कर्म फल देने बिना अकर्मरूप होता नहीं और क्यास्य समय उसका अवकाश नहीं है अतः क्यास्य समयमें यह फल है नहीं सकता । इसलिये यही निश्चित होता है कि जो निपेक बितने कास तक कर्मरूपसे रहता है उसकी अन्ती स्थिति होती है । स्थितिका विचार करते समय यह नहीं देखा जाता कि यह अमुक समयमें अन्य प्रकृतिरूप होनेवाला है इसलिये इसकी स्थिति अन्य प्रकृतिरूप होनेसे पहले तक हो । किन्तु जिस समय जिस कर्मकी बितनी स्थिति कही जाती है उस समय उस कर्मरूप परणमे निपेकके सञ्ज्ञावस्तुको देक कर ही यह स्थिति कही जाती है । अब यदि वे निपेक उसी समय या अन्य समयमें अन्य प्रकृतिरूप होते हों तो हो जाने इससे वम कर्मकी स्थितिका कथन करनेमें कोई बाधा नहीं आती ।

❖ अनन्तानुबन्धीकी सघन्य स्थितिविमक्ति किसके होती है ?

§ ४३१ यह सूत्र सुगम है ।

❖ जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है और तदनन्तर उद्यावसीमें प्रविष्ट होकर अब उसकी ही समय कास प्रमाण स्थिति शेष रहती है तब उसकी अपन्य स्थितिविमक्ति होती है ।

§ ४३२. अणंताणुवंगी जेण खविदं ति अभणिय जेण विमंजोइदं ति किमट्टं वुच्चे ? ण, जस्स कम्मस्स परसरूवेण गयस्स पुणरुप्पत्ती णत्थि तस्स कम्मस्स विणासो खवणा णाम । ए च अणंताणुवंधीणमट्टकसायाणं व पुणरुप्पत्ती णत्थि; पुणो वि परिणामवसेण सासणादिसु वधुवलभादो । तम्हा अणताणुवंधी जेण विसंजोइदं ति सुहासियमेदं; तस्स पुणरुप्पत्तिजाणावणट्ट परुविदत्तादो । जदि अणंताणुवंधिचउक्कं विसजोइदं तो तेण जीवेण अणंताणुवंधिचउक्कं पडि णिस्संतकम्मेण होदच्चं ण तत्थ जहण्णसामित्तस्म संभवो; अभावे भावविरोहादो ति ? ण एस दोसो, चरिमट्टिदिसंडय-चरिमफालियाए परसरूवेण गदाए समाणिट्ठअणियट्ठिरणस्स विसंजोइदत्ताविरोहादो । अणंताणुवंधिकम्मक्खथे सेसकसायसरूवेण परिणामंतओ विमंजोएंतओ णाम । ए च एवंविहा विसंजोयणा आवल्लियपविट्ठणिसेयाणमत्थि; तैसि संकमाभावादो । तम्हा अणंताणुवंधी जेण विमंजोइदं ति सुहासियमेदं । जमुदयावल्लियपविट्ठमणंताणुवंधिचउक्क-मंतकम्मं तं जाथे दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं ताथे तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती ।

§ ४३२ शंका—सूत्रमें 'जिसने अनन्तानुबन्धीका ज्ञय कर दिया है' ऐसा न कह कर 'जिसने उसकी विसंयोजना कर दी है' ऐसा किसलिये कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पररूपसे प्राप्त हुए जिस कर्मकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है उस कर्मके विनाशको क्षपणा कहते हैं । पर जिस प्रकार आठ कपायोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती उस प्रकार चार अनन्तानुबन्धीकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती यह बात तो है नहीं किन्तु परिणामोंके वशसे सासनादिकमें इसका पुनः वन्य पाया जाता है अतः जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है यह सूत्रमें उचित कहा है क्योंकि उसकी पुनः उत्पत्तिका ज्ञान करानेके लिये ऐसा कथन किया है ।

शंका—यदि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हो गई तो उस जीव को अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा कर्मरहित हो जाना चाहिये, अतः ऐसे जीवके जघन्य स्वामित्व संभव नहीं है, क्यों कि अभावमें भावके माननेमें विरोध आता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पर-रूपसे प्राप्त हो जानेपर अनिवृत्तिकरणको प्राप्त हुए जीवके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजित भाननेमें कोई विरोध नहीं आता है । अनन्तानुबन्धीके कर्मस्कन्धोंको शेष कपायरूपसे परिमाणवाला जीव विसंयोजक कहलाता है । पर इस प्रकारकी विसंयोजना आवली प्रविष्ट कर्मोंकी तो होती नहीं, क्योंकि उनका सक्रमण नहीं होता है, अतः सूत्रमें 'जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है' यह योग्य कहा है । जो उदयावलिमें प्रविष्ट अनन्तानुबन्धी चतुष्क सत्कर्म है वह जिससमय दो समय स्थितिप्रमाण शेष रहता है तब उसकी जघन्य स्थितिभिक्कि होती है । -

विशेषार्थ—यहां विसंयोजना और क्षपणामें अन्तर बतलाते हुए यह लिखा है कि-पर प्रकृतिरूपसे संक्रमणको प्राप्त हुए जिस कर्मकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती उस कर्मके विनाशका नाम क्षपणा है और जिस कर्मकी पुनः उत्पत्ति हो सकती है उस कर्मके विनाशका नाम विसंयोजना है

सो इसका यह तर्क है कि जो कम स्वायत्तसे जगको भरी प्राप्त होते हैं उनके द्वितीय स्थितिमें स्थित कर्मपुत्रका उस समय बचनेवाली अपनी संप्राप्तीय प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता रहता है और जो कर्मपुत्र उद्योगशक्तिमें स्थित है उसके प्रत्येक अंशितम नियोजन स्थितिके संक्रमणके द्वारा स्वतन्त्र समयमें उद्योगगत सञ्जातीय प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता रहता है और इस प्रकार उस कर्मकी रूपणा होती है। रूपणाका यह सञ्चालन परोक्षसे जिन प्रकृतियोंका रूप होता है उनके रूपमें ही पणित होता है। अनन्तानुबन्धी कृत्यकी रूपणा भी इस प्रकारमें आ जाती है फिर भी उसके रूपको रूपणा न करके विसंयोजन इसलिये कहा है क्योंकि अनन्तानुबन्धी कृत्यकी यद्यपि इस प्रकारसे रूपणा हो जाती है फिर भी परिणामोंके वृत्तसे साक्षात् और मिथ्यात्व गुणस्वान्तमें उसकी पुनः उत्पत्ति देखी जाती है। अब यहां बोला इस बातका विचार कर लेना भी आवश्यक है कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धी कृत्यकी विसंयोजन कर ही है ऐसा जीव क्या साक्षात् गुणस्वान्तकी भी प्राप्त हो सकता है? जिस जीवने अनन्तानुबन्धी कृत्यकी विसंयोजन नहीं करी है किन्तु केवल दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी उपश्रमना की है ऐसा प्रबोधप्रसक्तसम्पत्ति जीव साक्षात् गुणस्वान्तको प्राप्त होता है इसमें किसीके विचार नहीं। हां जिस वेदकसम्पत्ति अनन्तानुबन्धी कृत्यकी विसंयोजन करके दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी उपश्रमना की है ऐसा द्वितीयोपश्रमसम्पत्ति जीव उपश्रमकेवृत्तिसे व्युत्पन्न होकर साक्षात् गुणस्वान्तको प्राप्त हो सकता है इसमें अवश्य विचार है। यद्यपि कल्पसामित विषयकाण्डमें वतलाया है कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धी कृत्यकी विसंयोजन की है ऐसा जीव यदि मिथ्यात्व में आता है तो उसके एक आवाशिकात् तब अनन्तानुबन्धी कृत्यमेंसे किसी एक प्रकृतिका रूप नहीं होता है। इसका यह अग्रिमार्थ है कि ऐसा जीव यदि मिथ्यात्वमें आता है तो उसके पहले समस्त ही यद्यपि अनन्तानुबन्धी कृत्यका वन्ध होने लगता है और अन्य प्रकृतियोंका अनन्तानुबन्धी रूपसे संक्रमण होने लगता है किन्तु कल्याण और संक्रामावृत्ति करके अयोग्य होती है इस नियमके अनुसार एक आवाशि प्राप्तक ॥ तो बंधे हुए कर्मोंका ही रूप हो सकता है और न उसके साथ संक्रमणको प्राप्त हुए कर्मोंका ही एक आवाशि प्राप्त तब रूप हो सकता है। अब मिथ्यात्व गुणस्वान्तकी यह स्थिति है तब ऐसा जीव साक्षात् गुणस्वान्तको कैसे प्राप्त कर सकता है क्योंकि साक्षात् गुणस्वान्त अनन्तानुबन्धी कृत्यमेंसे किसी एक प्रकृतिकी वरीणा हुए बिना होता नहीं। पर जब अनन्तानुबन्धीका स्वर ही नहीं और कल्याण बिना अन्य प्रकृतियां अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमणको नहीं प्राप्त हो सकती तथा अनन्तानुबन्धी का वन्ध मिथ्यात्व और साक्षात् गुण प्राप्त किये बिना हो नहीं सकता। अतः यह मान लिया जाय कि जिस समस्त ऐसा जीव साक्षात् गुणस्वान्तको प्राप्त हो करी समय अनन्तानुबन्धीका वन्ध होने लगे और क्षेत्र कल्प और मोक्षका अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमित होकर वरीणाको प्राप्त हो जाय तो ऐसे जीवके भी साक्षात् गुणस्वान्त वग आरगा सो भी प्राप्त नहीं है क्योंकि ऐसा कि हम पहले कहता आये हैं कि इस नियमके अनुसार संक्रमित कर्मपुत्र भी एक आवाशिके परमाणु ही वरीणित हो सकता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि पञ्चलगायामके अग्रिमार्थानुसार ऐसा जीव साक्षात् गुणस्वान्तको नहीं प्राप्त होता है। श्वेतान्तरेके यहां मक्षि कर्म प्रकृतिमें वतलाया है कि ऐसा जीव साक्षात् गुणस्वान्तको भी प्राप्त होता है। पर इसकी वीक्षमें इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है कि जिन आचार्योंके मतसे अनन्तानुबन्धी कृत्यकी उपश्रमना होती है उनके मतानुसार उपश्रमकेवृत्तिसे व्युत्पन्न हुआ जीव साक्षात् गुणस्वान्तको भी प्राप्त होता है। टीकाकारने मूलका इस प्रकार अर्थ विवक्षित है। किन्तु मूलकारका यही अग्रिमार्थ रहा होगा यह कहना बरा कठिन है क्योंकि सो कमप्रकृतिके प्रकृतिकाल संक्रमण नामक प्रकृतिको देखनेसे मालूम

❀ अट्टण्हं कसायाणं जहण्हद्विदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३३, सुगममेदं ।

\* अट्टकसायक्खवयस्स दुसमयकालद्विदियस्स तस्स ।

§ ४३४, द्विदी णिसेओ त्ति एयट्ठो, दुसमओ कालो जिस्से सा दुसमयकाला, दुसमयकालद्विदी जस्स अट्टकसायक्खवयस्स सा दुसमयकालद्विदियस्स अट्टकसायाणं जहण्हद्विदिविहत्ती । चारित्तमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिय अथापवत्तकरण-अप्पुव्वकरण-द्धाओ जहाविद्विदिसिद्धाओ परिवाहीए गमिय अणियट्ठिकरणं पविसिय द्विदिअणुभाग-पदेसाणं बहुवाणं घादं कादूण अणियट्ठिअद्धाए संखे०भागे गदे अट्टकसायाणं खवण-मादविय आढत्तपढमसमयादो असंखेज्जगुणाए सेदीए कम्मपदेसक्खं गालयंतेण

होता है कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्कमी विसंयोजना की है ऐसा जीव भी सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है। वहा वतलाया है कि इक्कीस प्रकृतिक सक्रमस्थानका इक्कीस प्रकृतिक पतद्ग्रहमें भी संक्रमण होता है। विचार करके देखनेसे यह स्थिति सासादन गुणस्थानमें ही प्राप्त होती है, अन्यत्र नहीं, क्योंकि मोहनीयका इक्कीस प्रकृतिक बन्ध सासादनमें ही होता है, अतः यह निश्चित हुआ कि जिस जीवने अनन्ताबन्धी चतुष्कमी विसंयोजना कर ली है ऐसा जीव जब सासादनको प्राप्त होता है तब उसके एक आवलिकाल तक अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सक्रमण नहीं होता है। परन्तु जो बारह कपाय और नौ नोकपाय अनन्तानुबन्धीरूपसे सक्रमित होती हैं, उनकी पहले समयसे ही उदरीणा होने लगती है। इस व्यवस्थाको मानलेनेपर सक्रमावलि सकल करणोंके अयोग्य है यह बात नहीं रहती है ? कर्मप्रकृतिका यह विवेचन कपायप्राभृतके विवेचनसे मिलता हुआ है। अतः चूर्णिसूत्रकारने भी अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना किये हुए जीवके दूसरे गुणस्थानमें जाने का विधान किया है।

\* आठ कषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ?

§ ४३३ यह सूत्र सुगम है।

❀ आठ कषायोंका क्षय करनेवाले जिस क्षपक जीवके दो समय कालप्रमाण स्थिति शेष रह गई है उसके उनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है।

§ ४३४ स्थिति और निपेक ये दोनों एकार्थवाची शब्द हैं। जिस स्थितिको दो समय काल है उसको दो समय कालवाली स्थिति कहते हैं। आठ कषायोंकी क्षपणा करनेवाले जिस जीवके दो समय कालप्रमाण स्थिति होती है वह दो समय काल प्रमाण स्थितिवाला कहलाता है। उसके आठ कषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है।

कोई जीव जिसने चारित्रमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ किया अनन्तर जिसने जिसकी जैसी विशेषता वतलाई है उसके अनुसार अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणके कालको क्रमसे व्यतीत करके अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश किया और बड़ा बहुतसी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका घात करके अनिवृत्तिकरणके सख्यातवें भाग कालके व्यतीत होने पर आठ कषायोंके क्षयका प्रारम्भ किया और इस प्रकार आठ कषायोंके क्षयका आरम्भ करनेके प्रथम समयसे लेकर

ससेज्जहिदि अणुभागकंठ्याणि पादिदाणि । एवं पादिय अहकसापार्ण चरिम-  
हिदिमणुभागकंठ्याणि पेचमाहत्ताणि । तेसि चरमफाणीसु खिबदिदासु उदया  
बसियम्मठरे समयूजावसियमेत्ता णिसंया सत्थंति, उदयाभाषण पढमणिसेयस्स परसख्येय  
गदस्स अहकसापसख्येण अभावादो । तेसु गितंगसु अहाकमेण अपहिदीए  
गल्लमाणेसु भाप वस्स एया हिदी दुसमयकासा संसा ताप तस्स अहण्णहिदिबिहरी  
हीदि चि वेचम्भं । एसो एवस्यो ।

\* कोवसंजलस्यस्स जहण्णहिदिबिहरी कस्स ?

§ ४३५ सुगमयेदं ।

\* खवपस्स चरिमसमयमणिस्सेविदे कोहसंजलयो ।

§ ४३६ स्वयस्से चि ण वचम्भं, पढेसेज्जमाभावादो । खोवसामय  
पढेसेहह; तस्स कोहसंजलस्यस्स भिन्नेवचामावादो । तस्मा चरिमसमयमणिस्सेविदे  
कोहसंजलस्ये चि एसिय चव वचम्भं ? ण एस दोसो, कोहसंजलस्यस्स भिन्नेवचो  
स्ववमो चेव ए उवसाममो चि जाणावणहं स्ववपस्सं चि णिहेसादो । ए च सुचमंठरेण

असंस्वातगुणी भेय्येके द्वारा कर्मपदेकस्वर्णको गालन करता हुआ हवातों स्थितिकाण्डक और  
अनुमागकाण्डको का पतन किया । इस प्रकार हवातों काण्डको का पतन करके आठ कयायोंके  
अन्तिम स्थिति और अनुमाग काण्डको पात करन का प्रारम्भ किया और इस प्रकार कनकी  
अन्तिम स्थितियोंका पतन हो जान पर उपायवसि के नीचे एक समय कम आवाही प्रमाण नितेक  
प्राप्त होते हैं क्योंकि उदय न होनेके कारण प्रथम नितेक परमस्वरूप हो जाता है अतः इसका  
आठ कयायस्वसे अभाव हो जाता है । अनन्तर उन उपायवसियोंमें प्रविष्ट नितेकोंका यथा क्रमसे  
अप्रस्थितिके द्वारा गालन होते हुए जिस समय एक स्थिति हो समय अन्तप्रमाण सेप जाती है  
उस समय उसके अपन्य स्थितिभिन्नि होती है एसा वहाँ मध्य करना चाहिये । यह एक सूत्रका  
समुदायार्थ है ।

\* कोपसंजलस्यकी अपन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४३७ एव सूत्र सुगम है ।

\* कोपसंजलस्यकी सत्त्वगुणधितिके अन्तिम समयमें विद्यमान रूपका वीषके  
कोपसंजलस्यकी अपन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४३८ शंका—सूत्रमें 'अपन्य' यह नहीं कहना चाहिये क्योंकि प्रतिपेय करने योग्य  
कोई और वृत्त नहीं है । यदि कहा जाय कि उपशामकका प्रतिपेय करनेके लिये कुछ पद दिया  
है सो भी बात नहीं है क्योंकि उपशामक कोपसंजलस्यका अभाव नहीं होता है । अतः  
'चरिमसमयमणिस्सेविदे कोहसंजलस्य' इतना ही कहना चाहिये ।

समाधान—एव कोई दोष नहीं है क्योंकि कोपसंजलस्यका अभाव करनेवाला अपन्य ही  
जाता है उपशामक नहीं । इस बातका ज्ञान करनेके लिये सूत्रमें उपशामक पदका निर्वेच किया

एसो अत्यो णव्वदे; तहाणुत्तलभादो । चरिमसमयअणिल्लेविदस्सेवे त्ति किमट्ठं वुच्चदे ?  
ण, दुचरिमादिसमएसु बंधद्विदीणं गालणट्ठं तदुत्तीदो । कोहसंजलणं चरिमसमयअणिल्ले-  
विदे संते जो खवओ ताए अवत्थाए वट्टमाणो तस्स जहण्णाट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति  
संवंधो कायव्वो । वे मासा अंतोमुहुत्तूणा त्ति जहण्णाट्ठिदिपमाणमेत्थ किण्ण परुविदं ?  
ए ; जहण्णाट्ठिअट्ठाच्छेदे परुविदस्स परुवणाए फलाभावादो ।

\* एवं माण-मायासंजलणणं ।

§ ४३७ जहा कोहसजलणस्स जहण्णसामित्तं वुत्तं तहा माणमायासजलणणं  
वत्तव्वं । चरिमसमयअणिल्लेविदे माणसंजलणे जो खवओ तस्स माणसंजलणजहण्ण-  
ट्ठिदिविहत्ती । चरिमसमयअणिल्लेविदे मायासंजलणे जो खवओ तस्स मायासजलण-  
जहण्णट्ठिदिविहत्ति त्ति भण्णिदं होदि । अंतोमुहुत्तूणमासद्धमासट्ठिदिपमाणपरुवणा  
एत्थ ण कायव्वा । कुदो ? अट्ठाच्छेदपरुवणाए तत्थ वावारादो ।

है । परन्तु सूत्रके बिना यह अर्थ जाना नहीं जाता है, क्योंकि सूत्रके बिना इस प्रकारके अर्थका  
ज्ञान होना शक्य नहीं ।

शंका-सूत्रमें 'चरिमसमयअणिल्लेविदस्स' यह किसलिये कहा है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि द्विचरम आदि समयोमे बन्धस्थितियोंके गालन करनेके लिये  
'चरिमसमयअणिल्लेविदस्स' यह पद कहा है ।

क्रोधसंज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयके प्राप्त होनेपर जो क्षपक उस अवस्थामें  
विद्यमान है उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है इस प्रकार उक्त सूत्रका सम्वन्ध करना चाहिये ।

शंका-यहाँ पर जघन्य स्थितिका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना है ऐसा क्यों  
नहीं कहा ?

समाधान-नहीं, क्योंकि जघन्य स्थितिके प्रमाणका जघन्य स्थिति अट्ठाच्छेद प्रकरणमें  
कथन कर आये हैं, अतः यहाँ उसका पुन कथन करनेसे कोई लाभ नहीं है ।

\* इसी प्रकार उस क्षपकके संज्वलन मान और संज्वलन मायाकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति होती है ?

§ ४३७ जिस प्रकार क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्वामित्व कहा है उसी प्रकार मान और  
माया संज्वलनका जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये । जो क्षपक मान संज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके  
अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके मान संज्वलनकी जघन्य स्थिति बिभक्ति होती है । तथा जो  
क्षपक मायासंज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके माया संज्वलनकी  
जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है, यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

यहाँ पर मानसंज्वलनकी अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना और मायासंज्वलनकी अन्तर्मुहूर्त  
कम आधा महीना प्रमाण स्थितिका कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसे अट्ठाच्छेदकी प्ररूपणा-  
में बतला आये हैं ।

❖ ओहसंजळणस्स जहण्णट्टिविहसी कस्स ?

§ ४३८ सुगममेव ।

❖ अवयस्स अरिमसमयसकसायस्स ।

§ ४३९ दुचरिमादिसमयपडिसेहो दोचरिमादिसमयसकसायणिहेसो ।। किमदं पण्डितेहो कीरदे ? दोतियिणमादिगिसेसु डिदेसु जहण्णट्टिविहसी ण होदि सि आणानपड । अरिमसमयसुहमसांपरायस्स अभट्टिदिगल्लाए गासिदुचरिमादि गिसेयस्स डिदिक्कयपदेण पादिदासेसववरिमट्टिदिगिसेयस्स एगोदयगिसेगे बट्टमाणस्स जहण्णट्टिविहसी सि गणिदं होदि ।

❖ इत्थिबेदस्स जहण्णट्टिविहसी कस्स ?

§ ४४० सुगमं ।

❖ अरिमसमयइत्थिबेदोदयअवयस्स ।

§ ४४१ दुचरिमसमयसबेदो किण्ण जहण्णट्टिविसामियो ? ण, पडमट्टिदीए

❖ सोमसंन्यस्तकी अपन्य स्थितिबिमक्ति किसके होती है ?

§ ४४२ यह सूत्र सुगम है ।

❖ कपायसरित् स्रवक जीवके अन्तिम समयमें सोमसंन्यस्तकी अपन्य स्थिति बिमक्ति होती है ।

§ ४४३ द्विचरमसमय आदिष्व निषेध करने लिये सूत्रमें 'अरिमसमयसकसायस्स' पदका निर्देश किया है ।

शुद्धा—द्विचरमसमय आदिका निषेध किसलिय किया है ?

समाधान—सो, तीन आदि नियमोंके स्थित रहनपर अपन्य स्थितिबिमक्ति मही होती है इस बातका हान करनेके लिये द्विचरमसमय आदिका निषेध किया है ।

जिसने द्विचर आदि नियमोंको अकारस्थिति गलतका द्वारा गलित कर दिया है, जिसन स्थितिअपन्यकपायके द्वारा अपन्यके समस्त स्थितियिगमोंका भात कर दिया है और आ एक उदय रूप नियमों विद्यमान है उस सूत्रमसांपराधिकमयन जीवके अन्तिम समयमें अपन्य स्थिति बिमक्ति होती है यह कथ सूत्रका अभिप्राय है ।

❖ स्त्रीबेदकी अपन्य स्थितिबिमक्ति किसके होती है ?

§ ४४० यह सूत्र सुगम है ।

❖ स्रवक जीवके स्त्रीबेदके उदयके अन्तिम समयमें स्त्रीबेदकी अपन्य स्थिति बिमक्ति होती है ।

§ ४४१ शुद्धा—द्विचरमसमयवाला स्रवक जीव अपन्य स्थितिवा स्वामी क्यों मही हात है ?



दोण्हमिस्थिवेदणिसेयाणं विदियद्विदीए वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-  
णिसेयाणं चरिमफालिसरूवेण अवट्ठिदाणं तत्थुवलंभादो । अण्णवेदोदयक्खवयस्स  
जहण्णसामिच्चं किण्ण दिज्जदे ? ण, उदयाभावेण पढमद्विदिविरहियस्स विदियद्विदीए  
चेव अवट्ठिदस्स पलिदो० असंखेज्जदिभागमेत्तणिसेगेसु इत्थिवेदस्स चरिमफालीए  
अवट्ठाणुवलंभादो । एगाए णिसेगद्विदीए उदयगदाए सुद्धपुव्वुत्तरासेसणिसेगाए वट्ठ-  
माणो जहण्णद्विदिसामि त्ति भणिद होदि ।

\* पुरिसवेदस्स जहण्णद्विदिविहत्ती कस्स ?

§ ४४२. सुगमं० ।

\* पुरिसवेदखवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदपुरिसवेदस्स ।

§ ४४३. जस्स पुव्वमेत्थेव भवे पुरिसवेदो उदयमागदो सो जीवो पुरिसवेदो;  
साहचज्जादो । तस्स पुरिसवेदक्खवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदपुरिसवेदस्स जहण्ण-  
सामिच्चं होदि; तत्थ अंतोमुहुत्तूणअट्ठवस्समेत्तद्विदीए उवलंभादो । इत्थिवेदस्स भण्ण-

**समाधान**—नहीं, क्योंकि द्विचरम समयमें स्त्रीवेद सम्बन्धी प्रथम स्थितिके दो निषेक  
पाये जाते हैं और द्वितीय स्थितिके भी अन्तिम फालिरूपसे पत्न्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण  
निषेक पाये जाते हैं अतः द्विचरम समयवाला सवेद जीव जघन्य स्थितिका स्वामी नहीं  
होता है ।

**शंका**—अन्य वेदके उदयमें स्थित क्षपक जीवको स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी  
क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि ऐसे जीवके स्त्रीवेदका उदय नहीं होता अतः उसकी प्रथम स्थिति  
नहीं पाई जाती किन्तु केवल द्वितीय स्थिति ही पाई जाती है पर उसकी अन्तिम फालिके निषेकों  
का प्रमाण पत्न्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है, अतः अन्य वेदके उदयमें स्थित क्षपक जीव  
स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी नहीं हो सकता ।

जो स्त्रीवेदी क्षपक जीव स्त्रीवेदके पूर्वोत्तर सत्र निषेकोंसे रहित है और उदय प्राप्त एक  
निषेक स्थितिमें विद्यमान है वह स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी होता है यह उक्त सूत्रका  
तात्पर्य है ।

\* पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति किसके होती है ?

§ ४४२ यह सुगम है ।

\* जिसके पुरुषवेदका अभाव नहीं हुआ है ऐसे पुरुषवेदी क्षपक जीवके अन्तिम  
समयमें पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

§ ४४३ जिसके पहले इसी भवमें पुरुषवेद उदयको प्राप्त हुआ है वह जीव पुरुषवेदके  
साहचर्यसे पुरुषवेदी कहलाता है । उस पुरुषवेदी क्षपक जीवके पुरुषवेदके सत्त्वके अन्तिम समयमें  
जघन्य स्वामित्व होता है, क्योंकि वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त कम आठवर्ष प्रमाण स्थिति पाई  
जाती है ।

भाषे नहा इतिवेदोदयस्वयगस्ते चि परुषिदं तहा पुरिसवेदोदयस्वयगस्ते चि किञ्च परुषिदं ? ए, अत्रादवेदकास्त्रमसरे दुसमऊणदोभाषलिपयेचकाखं गतूण द्विदमहण्ण-  
द्विदिसामियस्स सवेदधविरोहादो ।

● गणुसयवेदस्स जहण्णाद्विदिविहसी कस्स ?

§ ४४४ सुगमं ।

● चरिमसमयणहुंसयवेदोदयस्वयगस्स

§ ४४५ कुदो ? चरिमसमयणहुंसयवेदस्स गासिदुचरिमादिसयस्सगुणसदि

णिसेयस्स सवेदियदुचरिमसमय इतिवेदचरिमफासीए सए परसरुबेण संक्रामिदस्सगुणसय वेदविदियद्विदिसयस्सणिसेयस्स पयदयगोबुधुवर्त्तभादो ।

● जणोक्साघाणं जहण्णाद्विदिविहसी कस्स ?

§ ४४६ सुगमं० ।

● स्वययस्स चरिमे द्विदिव जए वहमाणस्स

शुंका—स्त्रीवेदका जघन्य स्वामित्व कहे समय जिस प्रकार स्त्रीवेदके जघनको

मात्र जघनको उसका स्वामी बतलाया है उसी प्रकार पुरुषवेदके जघनको मात्र जघनको पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं क्योंकि अपगतवत् कालके भीतर जो समय कम वा आबसी प्रमाण कम बाकर जो पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी विद्यमान है उसे स्ववेद कहनेमें विरोध आता है ।

● नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविमक्ति किसके होती है ?

§ ४४४ यह सूत्र सुगम है ।

● जघन जीवके नपुंसकवेदके जघनके अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविमक्ति होती है ।

§ ४५ शुंका—जघन जीवके नपुंसकवेदके जघनके अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विमक्ति क्यों होती है ?

। समाधान—जिसने नपुंसकवेद सम्बन्धी द्विचरम आदि सम्पूर्ण गुणश्रेणीके निरुपेक्षोंको गहा दिया है और जिसने सबेह भागके द्विचरम समयमें स्त्रीवेदकी अन्तिम फलिके साथ द्वितीय स्थितिमें स्थित नपुंसकवेदके समस्त नियुक्तोंका पररूपसे संक्रमण कर दिया है उसके अन्तिम समयमें एक जघनरूप गोपुण्य पाया जाता है अतः नपुंसकवेदके जघनके अन्तिम समयमें उसकी जघन्य स्थिति विमक्ति होती है ।

● यह नोक्तपायोंकी जघन्य स्थितिविमक्ति किसके होती है ।

§ ४४५ यह सूत्र सुगम है ।

● यह नोक्तपायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान जघन जीवके उनकी जघन्य स्थिति विमक्ति होती है ।

§ ४४७. कुदो ? तत्थ संखेज्जवाससहस्समेत्तचरिमफालिद्विदीए उवलंभादो ।

§ ४४८. एव मणुस०-मणुसपज्ज०-पंचिंदिय०-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि० ओरालिय०-लोभकसाय०-चक्खु०-अचक्खु०-सुकले०-भवसि०-आहारए त्ति । एवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जण्णद्विदिविहत्ती खवगस्स चरिमद्विदिविहत्ती वट्टमाणस्स ।

\* गिरयगईए ऐरइएसु सम्मत्तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती कस्स ।

§ ४४९. सुगमं० ।

\* चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ ४५०. कुदो ! मणुस्समिच्छाइद्विस्स तिव्वारंभपरिणामेहि गिरयगईए सह

§ ४४५. शंका—अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान क्षपक जीवके छह नोकपायोंकी जघन्य स्थिति विभक्ति क्यों होती है ?

समाधान—क्योंकि वहाँ पर अन्तिम फालिकी संख्यात हजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थिति पाई जाती है ।

§ ४४८. इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकपायी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य और आहारकके जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि मनुष्यपर्याप्तमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति स्त्रावेदके अन्तिम काण्डकमें विद्यमान क्षपक जीवके होती है ।

विशेषार्थ—मूलमें जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें ओघके समान प्ररूपणा वन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है । किन्तु मनुष्यपर्याप्तके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति एक समय नहीं होती, क्योंकि जो जीव स्त्रीवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है वही जीव स्त्रीवेदके उदयके अन्तिम समयमें एक सययवाली जघन्य स्थितिका स्वामी होता है । किन्तु जो पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है वह जीव जब स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिकी पुरुषवेदरूपसे सक्रमित करता है तब उसके स्त्रीवेदकी पर्ययके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य स्थिति विभक्ति होती है इससे कम नहीं और इसलिये मनुष्य पर्याप्तको स्त्रीवेदकी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिरूप जघन्य स्थिति विभक्तिका स्वामी कहा है ।

\* नरकगतिमें नारकियोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्ति किसके होती है ।

§ ४४९ यह सूत्र सुगम है ।

\* जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है उसके दर्शनमोहनीयके क्षय करनेके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

§ ४५० शंका—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्ति क्यों होती है ?

बद्धिरियाठअस्स पब्बा तित्थयरपादमूलमुबळमिय सम्मचं घेत्तूण भंतोमुहुत्तापसेसे  
आउए भवापवत्तापुआणियट्टिकरणाणि काट्ठण मिच्छत्तसम्माभिच्छत्ताणि अणियट्टि  
कम्ममंतरे त्वविय अणियट्टिकरणद्धाए परिमसमयम्मि सम्मतचरिमट्टिदिसुडयचरिम-  
फालिं घेत्तूण उदयादिगुणसदिसरूपेण घेत्तिय ट्टिदस्स कट्ठकरणिज्जे पि सण्णा कया;  
सेसदंसणमोहकत्ववणाविसयकज्जत्तादो । तस्स कट्ठलेस्स परिणमिय पडमपुडवीए  
उप्यञ्जिय अट्टिदिगल्लणाए परिमगोवुब्बं मोत्तूण गल्लिदासेसमोवुब्बस्स एगसमय  
कालगट्टिदिदंसणादो ।

❖ सम्मामिच्छत्तस्स जइण्णट्टिदिविहृती कस्स ?

§ ४५१ सुगमं ।

❖ चरिमसमयवब्बेहमाणस्स ।

§ ४५२ इदो ? सम्मादिट्टिआ मिच्छत्तं गत्तूण भंतोमुहुत्तमञ्जिय सम्मत  
सम्माभिच्छत्ताणमुब्बेत्तणमाउविय पस्सिदोवमस्स असखेज्जदिभागमेचट्टिदिसुडयाणि  
महाकमेण पाडिय उअरन्निदसम्मचेण पुणो सम्मामिच्छत्तस्स पडिदो० असखे० भाग-  
मेचट्टिदिकट्ठए पादिय चरिममुब्बकज्जणकट्ठयस्स चरिमफालीए पादिदाए समज्जणा

समाधान—जो मिध्याएट्टि मनुष्य जीव तीन आरम्भरूप परिणामोंके द्वारा नरकगतिके  
सत्य नरकायुक्त बन्ध करनेके अनन्तर तीर्थकरके पावमूलको प्राप्त होकर और सम्बन्धको प्रक्षय  
करके आलुके अन्तमु हुत होय रहने पर अथर्ववृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनित्यवृत्तकरूप  
परिणामोंके करके तथा अनित्यवृत्तकरके कालके मीतर मिध्यात्व और सम्ममिध्यात्वका उदय  
करके अनित्यवृत्तकरके कालके अन्तिम समयमें सम्बन्धवर्ती अन्तिम स्थिति काण्डको अन्तिम  
फालिके प्रक्षय करके और ज्यसे लेकर गुणमेवीरूपसे वसका निशेष करके स्थित है वसे  
कट्ठकत्व यह संज्ञा प्राप्त होती है क्योंकि इसका कार्य होय वसेनमोहनीयकी वृत्त्या है । अनन्तर  
जिसने कापोठलेखासे परिणत होकर और पहली वृत्तिवर्ती वृत्त्यन होकर अथर्वस्थिति गलनाके  
द्वारा अन्तिम गोपुष्पको जोडकर बाकीके समस्त गोपुष्पको गला दिया है उसके एक समय  
कालममात्र एक स्थिति देखी जाती है । अतः प्रतीत होता है कि नारकीके वृत्त्यनमोहनीयकी  
वृत्त्याके अन्तिम समयमें सम्बन्धवर्ती अवस्थ स्थितिबिभक्ति होती है ।

❖ नारकियोंमें सम्ममिध्यात्वकी जयन्त्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ?

§ ४५१ अथ सुव सुगम है ।

❖ सम्ममिध्यात्वकी उद्देक्षनाके अन्तिम समयमें सम्ममिध्यात्वकी वृत्त्यन  
स्थितिबिभक्ति होती है ।

§ ४५२ श्रुक्ता—उद्देक्षनाके अन्तिम समयमें अथर्व स्थितिबिभक्ति क्यों होती है ?

समाधान—कोई एक सम्ममट्टि मिध्यात्वको प्राप्त हुआ और वहाँ अन्तमु हुत करत एक  
एकर वसने सम्बन्ध और सम्ममिध्यात्वकी उद्देक्षनाकर आरम्भ करके पर्यापमके असंख्यातवें  
भाग प्रमात्र स्थितिकाण्डकोका यथाक्रमसे पठन करके सम्बन्धवर्ती उद्देक्षना कर ली । पुनः उसके  
सम्ममिध्यात्वके पक्षोपमके असंख्यातवें भाग प्रमात्र स्थिति काण्डकोका पठन करके अन्तिम

वलयमेत्तगोवुब्धाओ चिट्ठ ति । पुणो तामु दुसमऊणाअणियमेत्तामु अधट्टिदिगल-  
णाए गालिदामु दुसमयकालेगणिसेयट्टिट्टिदंसणादो ।

\* अणताणुवधीणं जहण्णट्टिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४५३ सुगमं० ।

\* जस्स विसजोइदे दुसमयकालट्टिदियं सेस तरस्स ।

§ ४५४ सुगममेदं; ओघम्मि पस्सुविट्ठत्तादो ।

\* सेस जहा उदीरणाए तहा कायव्व ।

§ ४५५ एदस्स अत्यो वुब्बदे-मिच्छत्त-वारसकसाय-भय-दुगुंदाणं जहण्णट्टिदि-  
विहत्ती कस्स ? जो असण्णिपंचिदिओ सागरोवमसहस्समेत्तउक्कस्सट्टिदिवंधादो पलिदो-  
वमस्स संखेज्जदिभागेण जहाऊणं होदि उक्कस्मट्टिट्टिसंतक्कम्मं तहा यादिय जहण्णट्टिदि-  
संत करिय पुणो जहण्णसंतादो हेहा अतोमुट्ठत्तकालं संखे० भागहीणं पुव्वं बंधमाणो  
अच्छिदो जहण्णट्टिदिसंतकदसमए चेव जहण्णट्टिदिमत्तसमाणं बंधिय तदो से काले  
जहण्णट्टिदिसंतं बोलेदूण बंधिहिट्टि ति तावणियरगदीएदुसमयविग्गहं काऊण णेरइ-  
एसुअवण्णो तत्थ दोसु वि विग्गहममएमु असण्णिपंचिदियट्टिट्टिं चेव बंधदि असण्णि-  
उद्वेलना काण्हककी अन्तिम कालिके पतन करने पर एक समय कम आबलिप्रमाण गापुच्छ शेष  
रहते हैं । पुन. उसके दो समय कम आबलिप्रमाण उन गोपुच्छोके अध.स्थितिगलनाके द्वारा  
गला देने पर एक निपेककी दो समय कालप्रमाण स्थिति देखी जाती है । इससे प्रतीत होता  
है कि अपनी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यग्मिध्यात्तकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

\* नारकियोंमें अनन्तानुबन्धिचतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके  
होती है ?

§ ४५३ यह सूत्र सुगम है ।

\* विसंयोजना करने पर जिस नारकीके अनन्तानुबन्धीकी दो समय काल  
प्रमाण स्थिति शेष है उसके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

§ ४५४ यह सूत्र सरल है, क्योंकि इसका कथन ओघप्ररूपणामें कर आये हैं ।

॥ नारकियोंके उपर्युक्त प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति जिस प्रकार उदीरणामें होती है उस प्रकार कहनी चाहिये ।

§ ४५५ अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति किस नारकीके होती है ? जो असंज्ञी पचेन्द्रिय जीव हजार सागर प्रमाण उत्कृष्ट  
स्थितिवन्धमें से पल्योपमका सख्यातवर्ग भागप्रमाण कम जिस प्रकार होवे उस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति  
सत्कर्मका घात करके जघन्य स्थिति सत्कर्मको प्राप्त करता है । तथा जघन्य स्थिति सत्कर्मके  
नीचे पहले अन्तर्मुहूर्त कालतक पल्योपमके सख्यातवर्ग भाग प्रमाण कम स्थितिको बाधता  
हुआ स्थित है पुनः जघन्य स्थितिसत्त्वके होनेके समय ही जघन्य स्थितिसत्त्वके समान स्थितिको  
बाधकर उसके अनन्तर कालमें जब जघन्य स्थितिसत्त्वको उल्लघकर बाधेगा तब दो समयका  
विग्रह करके नरकगतियें नारकियोंमें उत्पन्न हुआ । पर वहा विग्रहके दोनों ही समयोंमें असंज्ञी

पंषिदियपञ्चायदस्स सण्णिपंषिदियपञ्चपसु उज्जययि अमाहिदसरीरस्स अंतोकोडा-  
कोदिहिदिबंषणसरीए अमायादो । तस्य दोसु विग्गाहसमपसु असण्णिपंषिदियनहण्ण  
हिदिसवादो सरिसमहियमूर्णं पि बबदि । तस्य एसो जहण्णहिदिसंतदो हेहा बंया-  
बेदव्वो । एवं पंषिय विदियविग्गहे बहमाणस्स मिञ्चत्त-बारसकसाय प्रय-दुग्गुज्जाणं जहण्ण  
हिदिबिहरी । यवरि मिञ्चत्तस्स सागरोबमसहस्सं पखिदो० संखे० भागेखूणं ।  
सेसाणं सागरीबमसहस्सं चचारि सत्तमागा पखिदो० संखे० भागेखूणा । सरीरे  
महिदे जहण्णसामिचं किण्ण दिज्जदि ? ए, तस्य अंतोकोडाकोडिसागरोबममेचहिदि  
बंघुबर्त्तमादी । सत्तणोक्कसायाण्णमेवं चेव । यवरि असण्णिपंषिदियचरिमसमए सागरो  
बमसहस्सं चचारि सत्तमागो पखिदो० संखेज्जदिभागेखूणो बंघात्तस्मिदिक्कंत-  
समए चेव कसायहिदिसंतकम्मं असण्णिपंषिदियवामोग्गमहण्णो पडिञ्चिय पुणो तस्येव  
बंघोञ्छेत्तं करिय खिरपसुप्यण्णपडमसमयपडुडि पडिक्कत्तपयडीओ बंघाविय पुणो  
अप्यप्यणो पडिवत्तपयविबंघगद्धाणं चरिमसमए जहण्णहिदिबिहचिसामिचं होदि ।  
तिरिक्खगद्धपडिक्कत्तपयविबंघगद्धामो तिरिक्कत्तेसु चेव यात्तिय गेरूपसुप्यण्णपडमसमए

पंचेन्द्रियकी स्थितिका ही बांधता है क्योंकि जो अचंडी पंचेन्द्रिय पर्यायसे आकर चंडी  
पंचेन्द्रियमें उत्पन्न होता है उसके शरीर मध्य करनेके पूर्वसमय तक अन्तःकोडाकोडी स्थितिके  
बन्ध करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती है । फिर भी वहाँ विग्रहके दो समयमें अचंडी पंचेन्द्रियके  
अपन्य स्थितिसत्त्वके समान या उससे हीन या अधिक स्थितिका भी बन्ध करता है पर इसके  
अपन्य स्थितिसत्त्वसे हीन स्थितिका बन्ध करना चाहिये । इस प्रकार बांधकर जो दूसरे विग्रहमें  
स्थित है उस नारकीके मिथ्यात्व बाध कराय, मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थितिबिम्बित होती  
है । इतनी विवेचना है कि मिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिबिम्बित पद्विके संस्कारार्थे भागसे न्यून  
हजार सागरप्रमाण होती है । तथा शेष कर्मोंकी हजार सागरके सात भागमेंसे पद्वोपमक  
संस्कारार्थे भागसे न्यून बार भागप्रमाण होती है ।

शंका—जिस नारकीने शरीरको ग्रहण कर लिया है उसे अपन्य स्थितिका स्वामी क्यों  
नहीं कहा ?

समाधान—नहीं क्योंकि नारकीयोंके शरीरके ग्रहण करने पर अन्तः कोडाकोडी सागर  
प्रमाण स्थितिबन्ध पाया जाता है ।

सात नोकरायोंकी अपन्य स्थितिबिम्बित इसी प्रकार होती है । किन्तु इतनी विवेचना है  
जिसमें अचंडी पर्यायके रहते हुए एक हजारके सात भागमेंसे पद्वोपमके संस्कारार्थे भागसे न्यून  
बार भाग प्रमाण कयावकी अपन्य स्थितिका बन्ध किया । पुनः बन्धवर्त्तमान्ण कयावके व्यतीत  
होनेके पश्चात् उत्पन्न समयमें ही अचंडी पंचेन्द्रियके योग्य कयावके अपन्य स्थितिसत्त्वक  
विबद्धित नाकरायमें संक्रमण किया पुनः जो उस विबद्धित ग्रहणकी वही अचंडी पंचेन्द्रिय  
पर्यायके अन्तिम समयमें बन्धव्युत्पत्ति करके नारकीयोंमें उत्पन्न हुआ । वह यदि वहाँ उत्पन्न  
होनेके पहले समयसे लेकर प्रतिपक्ष ग्रहणियोंको बाँधता है तो उसके अपनी-अपनी प्रतिपक्ष  
ग्रहणियोंके बन्धकाजके अन्तिम समयमें अपन्य स्थितिबिम्बितका स्वयंमित्र प्राप्त होता है ।

शंका—तिर्यचगति सम्बन्धी प्रतिपक्ष ग्रहणियोंके बाधकाजकी विषयोंमें ही विग्रहक का

जहण्णद्विदिसामिच्चं किण्ण दिज्जदि ? ए, तिरिक्खगइ पडिक्खवंगद्धाहिंतो एिरयगइ पडि-  
क्खवंगद्धाणां बहुवत्तादो । तेसिं बहुअणं कुदो एण्वदे ? एदम्हादो चेअ जहण्ण-  
सामिच्चुआरणादो । एवं पढमपुढवि-देव०-भवण०-वाण०-देवे त्ति । णवरि भवण०-  
वाण० सम्मत्तस्स सम्मामिच्चत्तभंगो ।

❀ एवं सेसासु गदीसु अणुमग्गिदन्वं ।

§ ४५६ एवं जइवसहाइरिएण सूचिदअत्थस्स उच्चारणाइरियक्खवाणं वत्त-  
इस्सामो । ओघो ण बुच्चदे चुण्णिमुत्तेण परुविदत्तादो भेदाभावादो च ।

§ ४५७ विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्चत्त-वारसकसाय-एवणोक० ज०  
कस्स ? अण्णदरस्स जो उक्कस्साउट्ठिदीए उवण्णो अंतोमुहुत्तेण पढमसम्मत्तं पडि-  
वज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अणताणुवधिचउक्कं विसंजोइय सम्मत्तेणैव अप्पणो  
उक्कस्साउअमणुपालिय चरिमसमयणिप्पिदमाणसम्मादिट्ठी तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती ।  
सम्मामि०-अणंताणु०४ एिरओघ । सम्मत्तस्स सम्मामिच्चत्तभंगो ।

नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही विवक्षित प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका स्वामित्व क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि तिर्यचगति सम्बन्धी प्रतिपन्न प्रकृतियोंके बन्धनकालसे नरकगति सम्बन्धी प्रतिपन्न प्रकृतियोंका बन्धक काल बहुत है ।

**शंका**—नरकगति सम्बन्धी प्रतिपन्न प्रकृतियोंका बन्धकाल बहुत है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

**समाधान**—इसी जघन्य स्वामित्वसम्बन्धी उच्चारणसे जाना जाता है ।

इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्-मिथ्यात्वके समान है । अर्थात् भवनवासी और व्यन्तर देवोंके सम्यक्त्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें उसकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ।

❀ इसी प्रकार शेष गतियोंमें विचार कर समझना चाहिये ।

§ ४५६ इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित अर्थका जो उच्चारणाचार्यने व्याख्यात किया है, उसे बताते हैं फिर भी यहाँ पर उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये ओघका कथन नहीं करते हैं, क्योंकि उसका कथन चूर्णिसूत्रके द्वारा किया जा चुका है तथा उससे इसमें कोई भेद भी नहीं है ।

§ ४५७ दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवीतक मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायों की जघन्य स्थिति विभक्ति किसके होती है ? जो उत्कृष्ट आयुको लेकर द्वितीयादिक पृथिवियोंमें उत्पन्न हुआ है और अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके सम्यक्त्वके साथ ही अपनी-अपनी उत्कृष्ट आयुका पालन करके नरकसे निकला है उस सम्यग्दृष्टिके नरकसे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति विभक्ति होती है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति-विभक्ति सामान्य नारकियोंके समान है । तथा सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।





जो वट्टमाणो तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्काणं  
णिरओघं ।

§ ४६०. पंचिंदियतिरिक्ख - पंचि०तिरिक्खपज्जत्त - पंचि०तिरि०जोणिणीसु  
मिच्छत्त-वारसक०-भय-दुगुंछाणं ज० कस्स ? अण्ण० जो वादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तिय-  
कम्मेण पंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो तस्स पढमविदियविग्गहे वट्टमाणस्स जहण्ण-  
द्विदिविहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्त०-अणंताणु० चउक्काणं तिरिक्खोघं । सत्ताणोक०  
ज० कस्स ? अण्ण० जो वादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तियकम्मेण पंचिंदियतिरिक्खेसु उव-  
वण्णो एवमुववज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय से काले अप्पणो वंधमाढविहदि चि तस्स  
जहण्णद्विदिविहत्ती । एवरि पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्त-  
भगो । पंचि०तिरि०अपज्ज० पंचि०तिरि०जोणिणीभंगो । एवरि अणंताणु० चउक्कस्स  
मिच्छत्तभंगो । एव मणुसअपज्ज०-सन्वविगलंदिय-पंचि०अपज्ज०-तसअपज्जत्ते चि ।

§ ४६१ मणुसिणीसु अट्ठणोक० ज० कस्स ? अण्ण० अणियट्ठिक्खवयस्स  
चरिमद्विदिखंडए वट्टमाणस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । सेसमोघं ।

§ ४६२. जोइसि० विदियपुढविभगो । सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जो चि  
मिच्छत्त० ज० कस्स ? अण्ण० जो दो बारे कसाए उवसामेदूण चउवीससतकम्मिओ

के अन्तिम समयमें जो विद्यमान है उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मि-  
ध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्ति सामान्य नारकियोंके समान है ।

§ ४६०. पचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंमें  
मिध्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? जो कोई  
एक बादर एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्ति कर्मके साथ पचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ ।  
पहले और दूसरे विग्रहमें विद्यमान उस जीवके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।  
सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्ति सामान्य तिर्यचोंके  
समान है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक बादर  
एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ पचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ इस  
प्रकार उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहूर्त कालतक वहाँ रहकर तदनन्तर कालमें अपने बन्धका  
आरम्भ करेगा उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय योनिमती  
तिर्यचोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है । पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें  
पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी  
चतुष्कका भंग मिध्यात्वके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सष विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय  
अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये ।

§ ४६१. मनुष्यनिर्योमें आठ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? अन्तिम  
स्थितिकाण्डकर्म विद्यमान किसी अनिवृत्तिकरण क्षणके होती है । शेष कथन ओघके समान है ।

§ ४६२. ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है । सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम  
प्रवेयक तकके जीवोंमें मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? दो बार कषायोंको

सकससावद्विद्विहारी अप्यप्यणो विमाणेषु उचरपय चरिमसमयमपिपिद्विहारी तस्त  
 जहणद्विद्विहारी । सम्मच-सम्मापि० मर्जताण० चरककाणं थिरओपमंगो । बारसक०  
 जपणोक० ज० कस्त ? मण० जो संजदो जहासंमवेण जपसमसेहिं बहिय हेठा  
 ओपरिब दसणमोहणीयं खुबिय उचरकससावण अप्यप्यणो विमाणेषु जपमणो तस्त  
 चरिमसमयमपिपिद्विहारी तस्त जहणद्विद्विहारी । मणुहिसादि ज्ञान सम्पद्दे हि परं  
 चेव । जवरि सम्मापि० मिच्छचर्मंगो ।

§ ४६३ एइ दिपसु मिच्छच-बारसकसाय-भय-दुगु ज्ञा-सम्मापिच्छचार्णं  
 तिरिक्खोयं । अणुताणु चरक० मिच्छचर्मंगो । सत्तणोक० ज० कस्त ? ओ  
 एइदिओ इदसमुत्पत्तिं काण्ण समहिं विंभिय भंतोमुहुचमच्छिय से काले अप्यप्यणो  
 वंममाववेहदि चि तस्त जहणद्विद्विहारी । सम्मच० सम्मापिच्छचर्मंगो । एव  
 सम्पएइ दिप-वंचकाए चि ।

§ ४६४ ओराखियमिस्स० तिरिक्खोयं । जवरि अणुताणु० चरक० मिच्छच  
 र्मंगो । वेरुच्चिय० सोहम्मर्मंगो । जवरि सम्मचस्त सम्मापिच्छचर्मंगो ।

§ ४६५ वेरुच्चियमिस्स० मिच्छच० ज० कस्त ? मण० जो जहासंमवेण

जपमा कर जो कोई बीच चौबीस क्रमोंकी सत्तावासा होता हुआ कुछ आसुकर लकर अपने  
 अपने विमानोंमें उत्पन्न हुआ उसके बाह्ये निकलनेके अन्तिम समयमें जपम्य स्थितिबिम्बित  
 होती है । सम्मत्त्व सम्मगिमिच्छात्व और अनन्तानुबन्धी अतुच्छका मंग सम्मत्त्वके सामान्य  
 नायकियोंके समान है । बारह कपाल और नौ नोकपावोंकी जपम्य स्थितिबिम्बित किसके होती  
 है ? जो कोई संयत ध्यातंसम जपमयेवी पर चक्र और नीचे उतर कर तथा दर्शनमोहनीयका  
 चक्र करके उत्पन्न आसुके साथ अपने अपने विमानोंमें उत्पन्न हुआ उसके बाह्ये निकलनेके  
 अन्तिम समयमें जपम्य स्थितिबिम्बित होती है । अनुचितसे लेकर सर्वविधितक इसी प्रकार  
 करने करा चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्मगिमिच्छात्वका मंग मिच्छात्वके  
 समान है ।

§ ४६३ एकेन्द्रियों मिच्छात्व, बारह कपाल मय पुण्यता और सम्मगिमिच्छात्वकी जपम्य  
 स्थितिबिम्बित सामान्य विशेषोंके समान है । अनन्तानुबन्धी अतुच्छका मंग मिच्छात्वके समान  
 है । सात नोकपावोंकी जपम्य स्थितिबिम्बित किसके होती है ? जो एकेन्द्रिय इदसमुत्पत्तिक  
 होकर, समान स्थितिकी बीचकर और अन्तमु हर्त काम तक रह कर तदन्तर समयमें अपने अपने  
 पन्धके आरम्भ करेगा उसके जपम्य स्थिति बिम्बित होती है । सम्मत्त्वका मंग सम्मगिमिच्छात्वके  
 समान है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय और पाँच स्वावरकाव बीबोंके जानना चाहिये ।

§ ४६४ औदारिकमिमक्रमयोगी बीबोंके जपम्य स्थितिबिम्बित सामान्य विशेषोंके समान  
 है । इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी अतुच्छका मंग मिच्छात्वके समान है । वैश्विक  
 क्रमयोगमें सोधमेंके समान मंग है । इतनी विशेषता है कि इसमें सम्मत्त्वका मंग सम्मगिमिच्छात्व  
 के समान है ।

§ ४६५ वैश्विक मिमक्रमयोगी बीबोंमें मिच्छात्वकी जपम्य स्थितिबिम्बित किसके होती

उवसमसेहिं चडिदूण देवेसु उववण्णो से काले सरीर पज्जत्तिं गाहिदि त्ति तस्स जहण्ण-  
द्विदिविहत्ती । अणंताणु० चउक्क० ज० कस्स ? अण्ण० जो अट्ठावीससंतकम्मओ  
संजदो देवेसुववण्णो से काले सरीरपज्जत्तिं गाहिदि त्ति तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती ।  
वारसक०-भय-दुगुंळ० मिच्छत्तभंगो । एवरि खइयसम्माइठी देवेसु उप्पाएदव्वो ।  
सम्मत्त-सम्मामि०-सत्ताणोक० पढमपुढविभंगो ।

§ ४६६ आहार० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० ज० कस्स ? अण्ण० जो चउवीस-  
संतकम्मओ चरिमसमयआहारसरीरो तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । एवं वारसक०-एव-  
णोक० । एवरि खइयसम्मादिट्ठिस्स वत्तव्वं । अणंताणु० ४ ज० कस्स ? अण्ण०  
अट्ठावीससंतकम्मयस्स । एवमाहारमिस्स० । एवरि से काले सरीरपज्जत्तिं गाहिदि त्ति  
तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती ।

§ ४६७ कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-एणणोक० ज० कस्स ? अण्ण०  
जो बादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तियकम्मएण विदियं विग्गह गदो तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती ।  
सम्मत्त-सम्मामि० ओघं । एवरि सम्मायि० उव्वेल्लणाए कायव्वं ।

§ ४६८ वेदाणुवादेण इत्थिवेदे मणुस्सिणीभंगो । एवरि सत्ताणोक०-चत्तारि

है ? जो यथासभव उपशमश्रेणी पर चढ़कर देवोंमें उत्पन्न हुआ और तदनंतर कालमें शरीर पर्याप्ति  
को प्राप्त हागा उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति  
बिभक्ति किसके होती है ? अट्ठाईस सत्कर्मवाला जो कोई एक संयत जीव देवोंमें उत्पन्न होकर तदनंतर  
समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । इनके बारह कषाय,  
भय और जुगुप्साका भग मिथ्यात्वके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति कहते समय ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि जीवको देवोंमें उत्पन्न कराना चाहिये । तथा  
सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकषायोंका भग पहली पृथिवीके समान है ।

§ ४६६ आहारककाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? जो चौवीस सत्कर्मवाला जीव आहारकशरीरी हुआ उसके  
अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । इसी प्रकार बारह कषाय और नौ नोकषायोंका  
कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन कर्मोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति ज्ञायिक-  
सम्यग्दृष्टि जीवके कहनी चाहिये । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्ति किसके होती  
है ? अट्ठाईस सत्कर्मवाले किसी एक जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्ति  
होती है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
जो तदनन्तर कालमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त करेगा उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है ।

§ ४६७ कर्मण काययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक बाहर एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ  
द्वितीय विग्रहको प्राप्त हुआ है उसके जघन्य स्थितिबिभक्ति होती है । इसके सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्य-  
ग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति उद्वेलनामें कहनी चाहिये ।

§ ४६८ वेद मार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें मनुष्यनीके समान भंग है । किन्तु इतनी

संमलण० जह० कस्त ? अण० अणियद्विस्वयस्स सर्वद्वपरिमसमए बहमाणस्स  
 जहणद्विदिविहरी । एवं णसु स० । एवरि इत्थिबेद० परिमद्विद्विखंडए बहमाणस्स ।  
 पुरिस० पंथिदियमंगो । एवरि पचारिसमलण-पुरिस० ज० कस्त ? अण० सवेद  
 परिमसमए बहमाणस्स जहणद्विदिविहरी । इत्थि-एसु स० ज० कस्त ? अण०  
 अणियद्विस्वयस्स परिमद्विद्विखंडए बहमाणस्स । अवगद० मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०  
 ज० कस्त ? अण० ओ चरबीससुतकम्मिओ उवसमसद्विमारुहिय ओयरमाणो स  
 कन्हे सवेदी होइदि चि तस्स जहणद्विदिविहरी । एवमद्वकसाय इत्थि०-णसु स० ।  
 एवरि स्वइय० दिद्विस्स वचव्वं । सत्तखोक०-पचारिसंम० ओयं ।

§ ४६९ कसापाणुवादेय कोषक० ओयं । एवरि अणियद्विस्मि परिमसमय  
 कोषकसायमि अदुप्पं संमलणायं जहणद्विदिविहरी । एवं माण० । एवरि तिण्  
 संमलणायं परिमसमयमाणवेदयस्स जहणद्विदिविहरी । एवं माय० । एवरि दोण्  
 संमलणायं परिमसमयमायवेदयस्स जहणद्विदिविहरी । अकसा० मिच्छ०-सम्मत्त  
 सम्मामिच्छत्त० जह० क० ? अण० चरबीससुतकम्मिओ ओ स काशे सकसामी

विशेषता है कि सात नोकपाय और चार संमलनकी अपन्य स्थितिबिमिति किसके होती है ? सवेद  
 भागके अन्तिम समयमें विद्यमान अन्यतर अनित्यत्तिकरण रूपके अपन्य स्थितिबिमिति होती है ।  
 इसी प्रकार नपुंसकबोलीके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अन्तिम स्थितिअण्वर्द्धन  
 विद्यमान बोलीके अन्तिमकी अपन्य स्थितिबिमिति होती है । पुरुषबोलीके पंचेन्द्रिकके समान भाग है ।  
 किन्तु इतनी विशेषता है कि चार संमलन और पुरुषबोलीके अपन्य स्थितिबिमिति किसके होती  
 है ? सवर्द्ध भागके अन्तिम समयमें विद्यमान किसी बोलीके अपन्य स्थितिबिमिति होती है ।  
 स्त्रीबोली और नपुंसकबोलीके अपन्य स्थितिबिमिति किसके होती है ? अन्तिम स्थितिअण्वर्द्धन  
 विद्यमान अन्यतर अनित्यत्तिकरण रूपके अपन्य स्थितिबिमिति होती है । अपगतबर्द्धन मिथ्यात्व,  
 सम्यक्त्व और सम्मगिमिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिबिमिति किसके होती है ? बोलीस सत्कर्म  
 बाधा जो कोई बोली उपश्रमप्रवृत्ति पर अद्वार और उत्तरता हुआ उपरन्तर कर्ममें सवेदी होगा  
 उसके अपन्य स्थितिबिमिति होती है । इसी प्रकार आठ कयाव अन्तिम और नपुंसकबोली  
 अपन्य स्थितिबिमिति जाननी चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी अपन्य स्थितिबिमिति  
 वायिकसम्प्रादिकके बहनी चाहिये । तथा सात नोकपाय और चार संमलनकी अपन्य स्थिति-  
 बिमिति ओषके समान है ।

§ ४७६ कयावमार्गवाके अनुवादे कोषकसायमें अपन्य स्थितिबिमिति ओषके समान  
 है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनित्यत्तिकरणमें ओष कयावके अन्तिम समयमें चार संमलनों  
 की अपन्य स्थितिबिमिति होती है । इसी प्रकार मानकसायमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि मानबोलीके अन्तिम समयमें तीन संमलनोंकी अपन्य स्थितिबिमिति होती है ।  
 इसी प्रकार भावा कयावमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि दायावर्द्धनके अन्तिम  
 समयमें दो संमलनोंकी अपन्य स्थितिबिमिति होती है । अकपायी बोलीमें मिथ्यात्व सम्यक्त्व  
 और सम्मगिमिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिबिमिति किसके होती है ? जो कोई एक बोली बोलीस

होहदि त्ति तस्स जह० द्विदिविहत्ती । एव वारसक०-एवणोक० । एवरि खइय०दिट्ठीसु वत्तव्वं । एवं जहाक्खाद० ।

§ ४७०. मदि-सुदअण्णाणीणं तिक्खोघ । एवरि सम्मत्त-अणंताणु०-चउक्क० एइंदियभंगो । एवमसण्णि० । विहंगणाणीसु मिच्छत्त०-सोलसक०-एवणोरु० ज० कस्स ? अण्णद० जो उवरिमगेवज्जम्मि मिच्छत्तं गदो चरिमसमयणिप्पिडमाणओ तस्स जहण्णद्विदिविहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामि एइंदियभंगो ।

§ ४७१. आभिणि०-सुद०-ओहि० ओघं । एवरि सम्मामि० जह० खवणाए दायव्वं । एवं संजद०-ओहिदंस०-सम्मादिट्ठि त्ति । मणपज्जव० एव चेव । एवरि इत्थि०-एवुंस० पुरिस०भंगो ।

§ ४७२. सामाइय-छेदो० ओहिभंगो । एवरि लोहसजल० जह० कस्स ? अण्ण० चरिमसमयम्मि अण्णियट्ठिक्खवयस्स । परिहार० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंता-णु०-चउक्क० ओहिभंगो । वारसक०-एवणोरु० जह० क० ? जो खइयसम्मादिट्ठी जहासंभवेण उवसमसेहिं चट्ठिय ओयरिय परिणामपच्चएण परिहार० जादो से काले सत्कर्मवाला तदनन्तर कालमें सत्पायी हागा उसके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति जाननी चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थितिविभक्ति ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोंके कहनी चाहिये । इसी प्रकार यथाख्यातसयतोंके जानना चाहिये ।

§ ४७० मत्त्यज्ञानी और श्रुताज्ञानीके सामान्य तिर्यचोंके समान जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति एकेन्द्रियोंके समान होती है । इसी प्रकार असह्य पचेन्द्रियके जानना चाहिये । विभगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक उपरिमग्रैवेयकमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके वहासे निकलनेके अन्तिम समयमें उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग एकेन्द्रियोंके समान है ।

§ ४७१ आभिनवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति केवल क्षपकके कहनी चाहिये । इसी प्रकार सयत, अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मन पर्ययज्ञानमें भी इसी प्रकार कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके स्त्रीवेद और नपुसकवेदका भग पुरुषवेदके समान है ।

§ ४७२ सामायिक और छेदोपस्थापना समयमें अवधिज्ञानके समान भग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें लोभसंञ्चलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी अनिवृत्ति-करण क्षपक जीवके अन्तिम समयमें लोभ संञ्चलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । परिहार विशुद्धिसमयमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति अवधिज्ञानियोंके समान होती है । तथा बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि जीव यथायोग्य उपशमश्रेणी पर चढ़कर और उतरकर परिणामोंके अनुसार परिहारविशुद्धिसयत हो गया और तदनन्तर कालमें क्षपक



कस्स ? अण्ण० दसणमोहजवसामयस्स से काले वेदयं पडिवज्जहिदि त्ति तस्स ज० द्विदिविहती । अधवा विसजोएमाणस्स एयद्विदिदुसमयकालमेत्ते सेसे ।

§ ४७६. सासण० सच्चपयडीणं जहण कस्स ? अण्ण० जो चारित्तमोहजव-  
सामओ सासणं पडिवण्णो से काले मिच्छत्तं गाहदि त्ति तस्स ज० द्विदिविहती ।  
सम्मामिच्छा० मिच्छत्त-वारसक०-एवणोक्क० ज० कस्स ? अण्ण० चउवीससंतकम्मियस्स  
सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णस्स चरिमसमयसम्मामिच्छादिद्विस्स । सम्मत्त-सम्माभि० जह०  
कस्स ? अण्ण० सागरोवमपुधत्तसंतकम्मेण सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय जो चरिमसमय-  
सम्मामिच्छादिद्वी जादो तस्स० जह० विहती । अणंताणु० चउक्क० ज० कस्स ?  
अण्ण० अट्ठावीससंतकम्मिओ चरिमसमयसम्मामिच्छादिद्वी तस्स ज० विहती ।  
मिच्छादि० एइ दियभंगो । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

❀ [ कालो । ]

§ ४७७. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण—

उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? दर्शनमोहनीयका उपशमक जो कोई जीव तदनन्तर कालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होगा उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अथवा विसं योजना करनेवाले जीवके एकस्थितिके दो समय कालप्रमाण शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४७६ सासादन सम्यक्त्वमे सव प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? चारित्रमोहनीयकी उपशमना करनेवाला जो कोई जीव सासादनको प्राप्त हुआ है और तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होगा उसके सव प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यग्-मिथ्यात्वमें मिथ्यात्व, चारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम समयमें उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? सागरपृथक्त्वप्रमाण सत्कर्मवाला जो कोई जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जो अन्तिम समयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि है उसके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो कोई जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो गया है उसके सम्यग्मिथ्या वके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । मिथ्यादृष्टिके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । अनाहारकोंके कार्मेणकाययोगियोंके समान भंग है ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

❀ कालका अधिकार है ।

§ ४७७ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।

उनमेंसे ओघकी अपेक्षा—

⊗ मिच्छत्तस्स ठक्कस्सद्विदिसंतकम्मिओ केवपिरं काळावो होदि ?

§ ४७८ एस्य मिच्छत्तमाहणेण सेसपयविपदिसेहो कयो । उक्कस्समाहणेण जहण्णद्विदिसेहो कयो । सेस सुगमं ।

⊗ जहण्णेण एगसममओ ।

§ ४७९ इदो ! एगसमयमुक्कस्सद्विदिं भविष्य विदियसमए पविहगस्स उक्कस्स द्विदीए एगसमयकल्लुकलमादो । विदियसमए द्विदिखंडयमादेख विखा कयमुक्कस्सच किइदि ? ख अचद्विदिगल्लुखाए एगसमए गल्लिदे उक्कस्सचामादो । उक्कस्सद्विदि समयपणदस्स एयो वि बिसेगो ख गल्लिदो; सचवाससहस्समेचमावाहाए उवरि वस्स अचद्विदिमादो । गल्लिदिणिसेगो वि विराखसतकम्मस्स । उम्हा माय द्विदिखंडमां या पद्वि वाय उक्कस्सद्विदिसतकम्म्येख होइअमिदि ? न एस दोसो, जहण्णद्विदिअन्दाअेदो खिसेगपहाणो । तं कथं गम्भदे ? काचसंभज्जणस्स जहण्णद्विदिअन्दाअेदो वेमासा मंतोमुहुच्छा वि सुचणिदेसावो । उक्कस्सद्विदी पुण काळपहाणा तेण भिसेगेण विणा एगसमए गल्लिदे वि उक्कस्सच किइदि । तवो जहण्णकास्स सिद्धमेगसमयच ।

⊗ मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मबलसे जीवका किसना काल है ?

§ ४७८ यहाँ सूत्रमें मिध्यात्व पक्षके प्रत्यक्ष करनेसे शेष प्रकृतियोंका निषेध कर दिया है । उत्कृष्ट पक्षके प्रत्यक्ष कर्मसे अचान्य स्थितिका निषेध कर दिया है । शेष कथन सुगम है ।

⊗ अचान्य काल एक समय है ।

§ ४७९ शंका—अचान्य काल एक समय क्यों है ।

समाधान—क्योंकि एक समयतक उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर दूसरे समयमें उत्कृष्ट संस्कारसे व्युत्पन्न प्राप्त हुए जीवके उत्कृष्ट स्थितिका एक समय प्रमाण कहल जाता है ।

शंका—दूसरे समयमें स्थितिकाप्रकृतात्के बिना स्थितिके उत्कृष्टत्वका मास कैसे हो जाता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि अजास्थितिगल्लमाके द्वारा एक समयके गल्ल जाने पर स्थितिमें अस्तित्व नहीं रहता है ।

शंका—उत्कृष्टस्थितिप्रमाण समयप्रमाणका एक ही निषेध नहीं गल्ल है, क्योंकि सात हजार वर्षप्रमाण आधाभाके बाद निषेध पाया जाता है और जो निषेध गल्लायी है वह सत्तामें स्थित प्राचीन सत्कर्माके है अतः अचान्य स्थितिकाप्रकृतात्के पतन नहीं होता है तबतक उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मा होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई शेष नहीं है, क्योंकि अचान्य स्थितिअज्ञानसे निषेधप्रधान है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—कोय संजलनअ अचान्य स्थितिअज्ञानसे अन्तमु हर्तं कम् हो गहीना प्रमाण है इस सूत्रके निर्देशसे जाना जाता है । किन्तु उत्कृष्ट स्थिति अज्ञानप्रधान है, इसलिय निषेधके बिना एक समयके गल्ल जाने पर भी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्टत्वका मास हो जाता है, अतः उत्कृष्ट स्थितिका अचान्यकाल एक समय है यह बात सिद्ध होजाती है ।



\* उक्त्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ४८० कुदो ? दाहद्विदिं वंधमाणो उक्त्सेसदाहं गंतूण उक्त्सेसद्विदिं वंधदि;  
तिससे वंधकालस्स उक्त्सेण अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो ।

\* एवं सोलसकसायाण ।

§ ४८१ मिच्छत्तस्सेव सोलसकसायाणमुक्त्सेसद्विदिकालो जहण्णेण एगसमओ,

**विशेषार्थ—**यहा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति जपन्य रूपसे कितने काल तक पाई जाती है इसका विचार किया है । वात यह है कि जब कोई एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट स्थितिके वन्धके योग्य उत्कृष्ट सकलेशरूप परिणामोंसे च्युत होकर विशुद्धि को प्राप्त होने लगता है तो उसके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व एक समय तक देखा जाता है, क्योंकि दूसरे समयमें उसमेंसे एक समय कम हो जाता है, इसलिये उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता है । इस विषयमें शंकाकारका कहता यह है कि एक तो स्थितिकाण्डकघातसे स्थिति कम होती है और दूसरे प्रथमादि निपेकोंके गल जानेसे स्थिति कम होती है । किन्तु मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके वन्ध होनेके दूसरे समयमें न तो उसका स्थितिकाण्डकघात ही होता है, क्योंकि वन्धावल सकल करणोंके अयोग्य होती है ऐसा नियम है और न प्रथमादि निपेक ही गलते हैं, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आवाधाकाल सात हजार वर्ष है और आवाधाकालमें निपेक रचना नहीं होती, अतः सात हजार वर्षके समयोंको छोड़ कर ही प्रथमादि निपेकों का सद्भाव पाया जाता है । यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय और वादमें निपेक गलते हैं पर वे नवीन स्थितिवन्धके न होकर प्राचीन सत्कर्म के होते हैं, अतः जिस समय मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होता है उस समय उसकी उत्कृष्ट स्थितिका न तो स्थितिकाण्डक घात ही हो रहा है और न प्रथमादि निपेक ही गलते हैं यह सच है, फिर भी उत्कृष्ट स्थिति निपेकप्रधान न होकर कालप्रधान होती है, अतः दूसरे समयमें सत्तार कोडाकोड़ी सागर में से एक समय कम होजानेके कारण उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता । हा जघन्य स्थिति अवश्य निपेकप्रधान होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो क्रोधसज्जलनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना नहीं बन सकती है, क्योंकि यह क्रोधसज्जलनके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिकी स्थिति है जो कि उसी समय मान सज्जलनरूपसे सक्रमित हो जाती है । अतः कालकी अपेक्षा वह क्रोधरूप एक ही समय रही पर उस समय उस अन्तिम फालिमें निपेक अवश्य अन्तर्मुहूर्त कम दो माहके समय प्रमाण होते हैं और इसलिये इस अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम दो माह कही जाती है । उक्त कथनका सार यह है कि उत्कृष्ट स्थितिमें कालकी प्रधानता है और जघन्य स्थितिमें निपेकोंकी । अतः सत्तार कोडाकोड़ी सागरमें से एक समयके घट जाने पर भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं रहती ।

\* उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ४८०. शंका—उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

**समाधान—**क्योंकि, दाहस्थितिको बौधनेवाला जीव उत्कृष्ट सकलेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करता है तब उस उत्कृष्ट स्थितिके वन्धकालका उत्कृष्ट प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है ।

\* इसी प्रकार सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल जानना चाहिये ।

§ ४८१ मिथ्यात्वके समान सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय

उक्तस्तेण अंतोमुद्रुत्तमेचो; परपयबीयो संकतहिदीए बिणा सगुक्कम्सबर्बं पय अस्सिदूण चक्कस्सहिदिगारणादो ।

✽ णयुसयवेद-अरवि-सोग भय-बुगुद्धाणमेव येय ।

§ ४८२. एगसपयमेचअरण्णकात्तण अंतोमुद्रुत्तमचुक्कस्सकात्तण च सोमस कसाएहिंतो मेदामावादो । कसाएउक्कस्सहिदीए बंधाबद्धियादिबन्धाए अप्पप्पणो ववरि सकंठाए चक्कस्सहिदि पदिभजमाणार्ण णोक्कसायाणं कय कात्तण समाणदा ? ए, उक्कस्सर्बपेण सह अयिरुद्धबर्बाणं बंधकयणेव पदिच्छिद्दचक्कस्सहिदिसत्तकम्माण कात्तेण समाणचाबिरोहादो ।

आर अरुद्धकल अन्तमुद्रुत्तममाय ह। क्योंकि यहाँ पर प्रकृतिसे संक्रमण हाकर प्राप्त होनवाली स्थितिको छोड़कर अपने अरुद्ध बन्धकी अपेक्षा ही अरुद्ध स्थितिका प्रमाण किया है।

विशेषार्थ—पहले मिथ्यात्वकी वस्तु स्थितिके अरुद्ध कालका निर्देश करत समय जो टीकामें बह ब्रह्म आत्मा है वह संकलेशरूप परिणामोंके अर्चमें आया है। ब्रह्मका मुख्यताप या संताप होता है जो कि संस्कारके होने पर होता है अतः यहाँ ब्रह्मसे संकलेशरूप परिणामों का प्रमाण किया है। वस्तु स्थितिके बन्धके प्रयासक पक्ष संकलेशरूप परिणाम अधिकसे अधिक अन्तमुद्रुत्त कालक ही हात हैं अतः वस्तु स्थितिका काल अन्तमुद्रुत्त कहा है। चूंकि अरुद्ध संकलेशरूप परिणाम कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक अन्तमुद्रुत्त पाल तक होते हैं, अतः सोलह कथायोंकी वस्तु स्थिति अल्पमयस एक समय और अरुद्धकल अन्तमुद्रुत्त कहा है। यहाँ इतना विषय जानना चाहिये कि मिथ्यात्व और सातह कथायोंकी वस्तु स्थिति कल्पसे ही प्राप्त होती है संक्रमणसे नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमें संश्रुत ज्ञानवाणी सम्प्रत्य और सम्प्रतिमिथ्यात्वकी वस्तु स्थिति यदि भ्रष्ट कथाकोही सागर हो और सोलह कथायोंमें संक्रमित ज्ञानवाली अन्य प्रकृतियोंकी स्थिति वास्तव काङ्काङ्की सागर हो तो संक्रमणसे मिथ्यात्वकी वस्तु स्थिति सारा काङ्काङ्की सागर और सातह कथायोंकी वस्तु स्थिति वाणीस काङ्काङ्की सागर प्राप्त हो सकती है पर अन्य प्रकृतियोंकी सत्ता और वाणीस काङ्काङ्की सागरमें कम ही स्थिति जानी है अतः इन मिथ्यात्व आदिककी कल्पकी अपेक्षा ही वस्तु स्थिति जाननी चाहिये।

✽ नपुंसकवेद, अरवि, शोक, भय आर लुपुप्ताकी वस्तु स्थितिका काल इसी प्रकार होता है।

§ ४८२. क्योंकि एक समय प्रमाण लपय कान और अरुद्धमुद्रुत्त प्रमाण वस्तु अन्तकी अपेक्षा सातह कथायोंसे इनक कासम काह भेद नहीं है।

टीका—कथायोंकी वस्तु स्थिति कथापक्षिका प्यशीन वरक जो नाकथायोंमें संक्रान्त जानी है और तब बाहर भा माकथसे वस्तु स्थितिका प्राप्त होनी है अतः इनकी अन्तकी अपेक्षा कथायोंके माप समानता कम हो सकती है।

समाधान—नहीं क्योंकि वस्तु कल्प माप जिनका रूप अधिक है तथा कल्पक्रममें ही ग्रहण वस्तु स्थिति मरुमध्य प्राप्त कर लिया है हमरी बातकी अपेक्षा कथायोंके माप समानता मानने का विरोध नहीं आता है।

\* उक्त्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ४८० कुदो ? दाहद्विदिं वंधमाणो उक्त्सदहं गंतूण उक्त्सद्विदिं वंधदि;  
तिस्से वंधकालस्स उक्त्सेण अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो ।

\* एवं सोलसकसायाणं ।

§ ४८१ मिच्छत्तस्सेव सोलसकसायाणमुक्त्सद्विदिकालो जहण्णेण एगसमओ,

**विशेषार्थ—**यह मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति जघन्य रूपसे कितने काल तक पाई जाती है इसका विचार किया है। बात यह है कि जब कोई एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके योग्य उत्कृष्ट सकलेशरूप परिणामोंसे च्युत होकर विशुद्धि को प्राप्त होने लगता है तो उसके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व एक समय तक देखा जाता है, क्योंकि दूसरे समयमें उसमेंसे एक समय कम हो जाता है, इसलिये उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता है। इस विषयमें शंकाकारका कहना यह है कि एक तो स्थितिकाण्डकघातसे स्थिति कम होती है और दूसरे प्रथमादि निषेकोंके गल जानेसे स्थिति कम होती है। किन्तु मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होनेके दूसरे समयमें न तो उसका स्थितिकाण्डकघात ही होता है, क्योंकि बन्धावलि सकल कारणोंके अयोग्य होती है ऐसा नियम है और न प्रथमादि निषेक ही गलते हैं, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आवाधाकाल सात हजार वर्ष है और आवाधाकालमें निषेक रचना नहीं होती, अतः सात हजार वर्षके समयोंको छोड़ कर ही प्रथमादि निषेकों का सद्भाव पाया जाता है। यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय और वादमें निषेक गलते हैं पर वे नवीन स्थितिबन्धके न होकर प्राचीन सत्कर्म के होते हैं, अतः जिस समय मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है उस समय उसकी उत्कृष्ट स्थितिका न तो स्थितिकाण्डक घात ही हो रहा है और न प्रथमादि निषेक ही गलते हैं यह सच है, फिर भी उत्कृष्ट स्थिति निषेकप्रधान न होकर कालप्रधान होती है, अतः दूसरे समयमें सत्कार कोड़ाकोड़ी सागर में से एक समय कम होजानेके कारण उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता। हा जघन्य स्थिति अवश्य निषेकप्रधान होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो क्रोधसज्जलनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना नहीं बन सकती है, क्योंकि यह क्रोधसज्जलनके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिकी स्थिति है जो कि उसी समय मान सज्जलनरूपसे सक्रमित हो जाती है। अतः कालकी अपेक्षा वह क्रोधरूप एक ही समय रही पर उस समय उस अन्तिम फालिमें निषेक अवश्य अन्तर्मुहूर्त कम दो माहके समय प्रमाण होते हैं और इसलिये इस अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम दो माह कही जाती है। उक्त कथनका सार यह है कि उत्कृष्ट स्थितिमें कालकी प्रधानता है और जघन्य स्थितिमें निषेकोंकी। अतः सत्कार कोड़ाकोड़ी सागरमें से एक समयके घट जाने पर भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं रहती।

\* उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ४८० शंका—उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

**समाधान—**क्योंकि, दाहस्थितिको बंधनेवाला जीव उत्कृष्ट सकलेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तब उस उत्कृष्ट स्थितिके बन्धकालका उत्कृष्ट प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है।

\* इसी प्रकार सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल जानना चाहिये ।

§ ४८१ मिथ्यात्वके समान सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय

§ ४८५ सुगम ।

✽ जहणणेण एगसमअ ।

§ ४८६ कुदो ? कसापाणमेगसमयमावळियमेचकाले वा उक्कस्सहिदिं बंधिप पदिहमापदमसमए पदिहगावलिपाए वा इच्छिदुखोकसाय बंधाभिय गलिदसेसकसा युक्कस्सहिदीए तत्य संकमिदाए एदासिं चदुणं पयडीणमुक्कस्सहिदिकास्स एगसमय दंसणादो ।

✽ वक्कस्सेण आवलिपा ।

§ ४८७ कुदो ? पदिहगाकाले चेव एदासिं चदुणं पयडीणं बंधणियमादो । उक्कस्सहिदिर्वपकाले एदाओ किण्ण वक्कंति ? अथसुहचामावाओ साहाविपादो वा । अरियो फानो किण्ण सन्मदि ? ए, बंधगदावरिमावलिपाए वद्धसमयपवदानं चेव तत्युक्कस्सजुवर्लमादो ।

§ ४८८ यइ सउ सउ ह ।

✽ जपन्य काव एक समय हे ।

§ ४८९ श्रुंका—इनका जपन्य काव एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि जिसने कथाओंकी एक समय तक अथवा एक आवलीप्रमाण काव तक उत्कृष्ट स्थितिको बांधा है उसके प्रतिमग्न होनेके पहले समयमें अथवा प्रतिमग्न होनेके आवली प्रमाण फलके भीतर इच्छित नोकपायका कल्प करके अगस्त्यर गतकर क्षेत्र रही कथावली उत्कृष्ट स्थितिके इच्छित नोकपायमें संक्रमण करने पर इन बातों प्रवृत्तियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका फल एक समय देगा जाता है ।

✽ उत्कृष्ट काव एक आवली है ।

§ ४९० श्रुंका—उत्कृष्ट काव एक आवली क्यों है ?

समाधान—क्योंकि प्रतिमग्न फलके भीतर ही इन बात प्रवृत्तियोंके वग्नक नियम है ।

श्रुंका—उत्कृष्ट स्थितिके वग्नक्रममें ये बातों प्रवृत्तियाँ क्यों नहीं बंधनी हैं ?

समाधान—क्योंकि ये प्रवृत्तियाँ अव्यक्त आश्रम नहीं हैं इसलिय हम कावमें इनका वग्न नहीं होता । अथवा उस समय नहीं बंधनेवा इनका स्वभाव है ।

श्रुंका—उत्कृष्ट काव अधिक क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि वग्नकथावली अनिम आवलीमें बंध हुए समयप्रवृत्तियोंकी ही इन बातों प्रवृत्तियोंमें संक्रमण होनेके कावमें उत्कृष्टता पाई जाती है, इसलिय हमकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काव एक आवलीसे अधिक नहीं हो सकता ।

विशुद्धार्थ—स्त्रीवद पुत्रवद इत्येव आर रतिही उत्कृष्ट स्थिति एक आवलीकम बाणीग कथावाली सागर है और इनका वग्न कथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिकल्पके समय होता नहीं है। जिस समय उत्कृष्ट संक्रमण परिणामोंमें जीव निरुण हान लगता है इसी समयमें होता है, यथा : इनकी उत्कृष्ट स्थितिका वग्नक वग्नमान काव एक समय और उत्कृष्ट

\* सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुकस्सट्ठिदिविहत्तीओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४८३ सुगमं ।

\* जहण्णुकस्सेण एगसमओ ।

§ ४८४ कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मिएण मिच्छादिट्ठिणा तिव्वसंफिलेसेण चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अतोकोडाकोडिमेत्तदाहट्ठिदिं वयमाणेण उकस्सट्ठिदिं वंधिय अंतोमुहुत्तपडिभग्गेण वेदगसम्मत्ते गहिदे तग्गहणपढमममए चेव सम्मत्त-सम्मा-मिच्छत्ताणमुकस्सट्ठिदिदसणादो ।

❀ इत्थिवेद-पुरिसवेद-हस्स-रदीणमुकस्सट्ठिदिविहत्तीओ केवचिरं कालादो होदि ?

विशेषार्थ—भय और जुगुप्सा तो भ्रुवबन्धिनी प्रकृतियों हैं, अतः उनका बन्ध तो सर्वदा होता रहता है। किन्तु नपुसकवेद, अरति और शोक, इन नोकपायोंका बन्ध अन्य समयमें हाता भी है और नहीं भी होता है परन्तु उत्कृष्ट स्थितिवन्धके समय अवश्य होता है। अब किसी जीवने कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय तक बन्ध किया और वह जीव कपायकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धके पश्चात् एक आवलि कालतक इन पाच नोकपायोंका बन्ध करता रहा तो उसके एक आवलिके पश्चात् कपायोंकी वह उत्कृष्ट स्थिति पाच नोकपायोंमें संक्रमित हो जाती है और इस प्रकार उक्त पाँच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय काल तक पाई जाती है। तथा किसी अन्य जीवने अन्तर्मुहूर्त काल तक सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बंधी और वह जीव कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धके पश्चात् एक आवलि कालतक उक्त पाँच नोकपायोंका बन्ध करता रहा तो उसके कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवन्धके प्रारम्भ होनेके एक आवलि कालसे लेकर बन्ध समाप्त होनेके एक आवलि काल तक सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाच नोकपायोंमें संक्रमित होती रहती है और इस प्रकार पाच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अवस्थानकाल कपायोंके समान अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है।

❀ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति वालेका कितना काल है ?

§ ४८३ यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ४८४ शंका—इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय क्यों है ?

समाधान—जो अट्ठाईस कर्मोंकी सत्तावाला है और जो तीव्र सकलेशरूप परिणामोंके कारण चतुःस्थानिक यथमध्यके ऊपर अन्तः कोड़ाकोडी प्रमाण दाहस्थितिका बन्ध कर रहा है ऐसा कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर और उत्कृष्ट सकलेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालतक विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ जब वेदक सम्यक्त्वको स्वीकार करता है तब उसके वेदक सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है। अतः इन दोनोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है।

\* स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालेका कितना काल है ?

§ ४८५ सुगर्भ ।

\* जहण्णेण एगसममो ।

§ ४८६ कुदो ? कसायाणमेगसमयमावसियमेसकालं वा उक्कस्सदिदिं बंधिय पदिहग्गपहमसमए पदिहग्गावसियाए वा इच्छिदणोकसाय बंधाविय गस्सिदसेसकसा पुक्कस्सदिदीए तत्थ संकमिदाए एवासिं चहुण्ह पयदीणमुक्कस्सदिदिक्कास्स एगसमय दंसणादो ।

\* उक्कस्सेण भावसिपा ।

§ ४८७ कुदो ? पदिहग्गकाले चव एदासि चहुण्ह पयदीणं बंधणियमादो । उक्कस्सदिदिवंकाले एदाओ किण्ण वग्गंति ? अक्खसुहचामावादो साहावियादो वा । अरियो कालो किण्ण लब्धमदि ? ए, बंधगद्धावरिमावसियाए वद्धसमयपवद्धाणं वेव तत्पुक्कस्सचुक्कमादो ।

§ ४८८ यह सूत्र सरल है ।

\* अपन्य काल एक समय है ।

§ ४८९ शंका—इनका अपन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि जिसने कगारोंकी एक समय तक अथवा एक आबलीप्रमाण काल तक उच्छृष्ट स्थितिको बोधा है उसके प्रतिमग्न होनेके पहले समबर्ष अथवा प्रतिमग्न होनेके आबली प्रमाण कालके भीतर इच्छित मोक्षप्राप्तिका कर्म करकर अनन्तर गलतकर होय वही कगारोंकी उच्छृष्ट स्थितिके इच्छित मोक्षप्राप्तमें संक्रमण करान पर इन चारों प्रवृत्तियोंकी उच्छृष्ट स्थितिका काल एक समय देना जाता है ।

\* उच्छृष्ट काल एक आबली है ।

§ ४९० शंका—उच्छृष्ट काल एक आबली क्यों है ?

समाधान—क्योंकि प्रतिमग्न कालके भीतर ही इन चार प्रवृत्तियोंके कर्मका नियम है ।

शंका—उच्छृष्ट स्थितिक कर्मकालमें ये चारों प्रवृत्तियाँ क्यों नहीं बँधती हैं ?

समाधान—क्योंकि ये प्रवृत्तियाँ अत्यन्त अद्भुत नहीं हैं इसलिये उस कालमें इनका बंध नहीं होता । अथवा उस समय नहीं बँधनेका इनका स्वभाव है ।

शंका—उच्छृष्ट काल अधिक क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि कर्मकालकी अन्तिम आबलीमें बंध हुए समयप्रवृत्तियोंकी ही इन चारों प्रवृत्तियोंमें संक्रमण होनेके कालमें उच्छृष्टता पाई जाता है, इसलिये इनकी उच्छृष्ट स्थितिका उच्छृष्ट काल एक आबलीसे अधिक नहीं हो सकता ।

विशुद्धार्थ—स्त्रीवत् पुंगवत् शम्भु और रतिवती उच्छृष्ट स्थिति एक आबलीप्रमाण चारोंमा कोशिकाकी समार है और इनका कर्म कगारोंकी उच्छृष्ट स्थितिकर्मक समय देना नहीं किन्तु जिस समय उच्छृष्ट संक्रमण परिलक्ष्यमें बांध निरुद्ध होने लगता है वही समयमे होता है, अतः इनकी उच्छृष्ट स्थितिका अपन्य अवस्थान काय एक समय और उच्छृष्ट

ॐ एवं सन्वासु गदीसु ।

§ ४८८ जहा ओघम्मि उक्कस्मट्टिदिकालपरवणा कदा तहा सन्वासिं गदीण-  
मोघम्मि परवणा कायच्चा एण आदेसम्मि, तत्थ ओघादो विसेमदंमणादो ।

§ ४८९, एवं चुण्णिमुत्तपरवणं काऊण मंपहि एदेण मृचिदत्तजानावणद-  
मुच्चारणाइरियक्कवाणमोघादो चेव भणिम्मामो ।

§ ४९०, कालाणुगमेण दुव्विहो णिदेमो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण  
मिच्छत्त-सोलकसायाणमुक्क० जह० एगसमयो, उक्क० अंतोमुदुत्त० । पंचणोरुमायाण-  
मुक्क० जह० एगममओ, उक्क० अंतोमु० । कुदो ? सोलसरुमाय-णवुंम०-अरदि-  
सोग-भय-दुगुंझाणं सरिसं मंकिसेसं पूरेदूण उक्कस्मट्टिदिं वंगट्टि । ताधे कसायाण

अवस्थान काल एक आवलि प्राप्त होता है, क्योंकि जो एक समय तक कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाधकर और दूसरे समयसे इन स्त्रीवेद आदिका बन्ध करने लगता है उसके एक आवलीके पश्चात् एक आवलिकम कपायकी उत्कृष्ट स्थिति स्त्रीवेद आदि रूपसे मरुमित हो जाती है । तथा जो एक आवलि या एक आवलिसे अधिक काल तक कपायकी उत्कृष्ट स्थिति बाध कर पश्चात् स्त्रीवेद आदिका बंध करने लगता है उसके एक आवलिके पश्चात् एक आवलि काल तक ही एक आवलिकम कपायकी उत्कृष्ट स्थिति स्त्रीवेद आदि रूपसे मरुमित होती है । इसके पश्चात् बाधी हुई कपायकी उत्कृष्ट स्थिति का स्त्रीवेद आदिमें संक्रमण होने पर भी उसमें एक एक समय उत्तरोत्तर कम होता जाता है, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थिति जवन्म रूपसे एक समय तक और उत्कृष्ट रूपसे एक आवली कालतक पाई जाती है ।

❖ इसी प्रकार सभी गतियोंमें ज्ञानना चाहिये ।

§ ४८८ जिस प्रकार ओघमें उत्कृष्ट स्थितिके कालकी प्ररूपणा की है उसी प्रकार सभी गतियों की प्ररूपणा ओघमें ही करनी चाहिये आदेशमें नहीं, क्योंकि आदेशमें ओघकी अपेक्षा विशेषता देखी जाती है ।

विशेषार्थ—यहा चूर्णिसूत्रकारने सब गतियोंमें काल सम्बन्धी ओघप्ररूपणाको स्वीकार किया है । इसका यह तात्पर्य है कि कालसम्बन्धी उपर्युक्त ओघप्ररूपणा चारों गतियोंमें वन जाती है, अतः चारों गतियोंमें कालसम्बन्धी प्ररूपणा ओघप्ररूपणा ही है । आदेशप्ररूपणा तो वह है जिसमें ओघसे कुछ विशेषता हो, किन्तु चारों गतियोंमें कालसम्बन्धी प्ररूपणा ओघप्ररूपणासे कुछ भी विशेषता नहीं रखती, अतः चारों गतियोंमें कालसम्बन्धी प्ररूपणा भी ओघ प्ररूपणा ही है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

§ ४८९, इस प्रकार चूर्णिसूत्रोंका कथन करके अब इनके द्वारा सूचित अर्थका ज्ञान करानेके लिये उच्चारणाचार्यके व्याख्यानका ओघकी अपेक्षा ही कथन करते हैं ।

§ ४९० कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पांच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, क्योंकि समान सक्लेशको प्राप्त होकर जीव सोलह कपायोंकी तथा नपुंसकवेद, अरति, शोक,





एगसमओ, उक्क० सन्वासिमणंतकालमसखेज्ज। पोग्गलपरियट्ठा । सम्पत्त-सम्पामिच्छ-  
त्ताणमुक्क० जहणुक्कस्सेण एगसमओ । अणुक्क० ज० अतोमुहुत्तं, उक्क० वेत्तावट्ठि-  
सागरोवमाणि सादिरेयाणि । एवं अचक्खु०-भवसि० ।

§ ४९२ आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलक०-एवणोक्क० उक्क० ज०  
एगसमओ, उक्क० अतोमुहुत्तं । एवरि इत्थि-पुगिस-हस्स-रदीणमावलिया ।।

है तथा नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति का उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जिस का प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ वत्तीस सागर है । इस प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो जीव उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट सक्तेस परिणामोंसे निवृत्त हो गया है उसे पुनः उन परिणामोंको प्राप्त करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और इस मध्यके कालमें इस जीवके मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका ही बन्ध होगा, अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । यदि कोई जीव एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर परिभ्रमण करता रहे तो वह वहा अनन्त काल तक रह सकता है और एकेन्द्रियके मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता, इसलिये इसके नौ नोकपायोंकी भी उत्कृष्ट स्थिति नहीं पाई जा सकती, अतः उक्त २६ प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा । जब कोई एक जीव एक एक समयके अन्तरसे क्रोधादिककी एक समय आदि कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है और उसका उसी प्रकारसे नौ नोकपायोंमें संक्रमण करता है तब नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । जो जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताको प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्तमें उनकी क्षपणा कर देता है उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है । तथा जो जीव उद्वेलना कालके अन्तर्में सम्यक्त्वको प्राप्त होता है और ध्यामठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रह कर पुनः मिथ्यात्वमें जा कर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करने लगता है तथा उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः एक आवलिक्रम ध्यामठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रहता है तथा अन्तर्में मिथ्यात्वमें जाकर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ वत्तीस सागर पाया जाता है । चूर्णिसूत्रोंमें चारों गतियोंमें उत्कृष्ट स्थितिकी काल प्ररूपणा ओघके समान कही है और उच्चारणमें चारों गतियोंकी आदेश प्ररूपणामें ले लिया है । इसका कारण यह है कि उच्चारणमें उत्कृष्ट स्थितिके कालके साथ अनुत्कृष्ट स्थितिका काल भी सम्मिलित है, अतः यहाँ चारों गतियोंमें ओघ प्ररूपणा नहीं वनती । यही कारण है कि उच्चारणमें चारों गतियोंकी आदेश प्ररूपणामें परिगणित किया है । किन्तु उच्चारणकी ओघ प्ररूपणा अचक्षुदर्शन और भव्य मार्गणामें घटित हो जाती है, अतः उच्चारणमें इनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है । यद्यपि इन दोनों मार्गणामें चूर्णिसूत्रोंकी ओघ प्ररूपणा भी वन जाती है फिर भी चूर्णिसूत्रका 'एव सव्वासु गदीसु' यह वचन देशामर्पक है, अतः वहा अन्य मार्गणाएँ नहीं गिनाई हैं ।

§ ४९२ आदेशकी अपेक्षा नारकियों मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । किन्तु इतनी

अणुचक्र० जह० एगसमगो, उचक्र० सगुचक्रस्तद्विदी । कस्य वि देसुषा चि मणति;  
कस्य पविसिय अणुचक्रस्तद्विदीए आदिकरबादो । सम्मच-सम्माचि० उचक्र०  
सगुचक्र० [ एगसमगो । अणुचक्र० ] जह० एगसमगो, उचक्र० समद्विदी । पइमादि  
साव सचमा चि पर्व चेत । गवरि सगसगुचक्रस्तद्विदी वचम्मा ।

विशेषता है कि स्त्रीवेद पुरुषवेद, हास्य और रसिकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आशक्ति  
प्रमाण है । तथा एक सच प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका वचम्मा काल एक समय और उत्कृष्ट  
काल नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । यहाँ पर कुछ आत्मायें नारकियोंकी अनुकूल  
स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे कुछ कम है ऐसा कहते हैं सो यहाँ पर नरकमें  
प्रवेश करके अनुकूल स्थितिका प्रारम्भ किया है ऐसा जानना चाहिये । सम्मचल और सम्मचि-  
प्यात्सकी उत्कृष्ट स्थितिका वचम्मा और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुकूल स्थितिका वचम्मा  
काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । यहाँ प्रविष्टीसे लेकर  
सातवीं प्रविष्टीतक इसी प्रकार कवन करना चाहिये । किन्तु इसी विशेषता है कि सब कर्मोंकी  
अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल करते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण  
करना चाहिये ।

विशेषार्थ-मिध्यात्व आदि सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके वचम्मा और उत्कृष्ट कालका  
कुलासा जिस प्रकार बोधमें कर जाने हैं उसी प्रकार नारकियोंके कर लेना चाहिये । तथा जिसने  
अपने सबके वपात्स समयमें मिध्यात्व और सोलह कथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिका वचम्मा करके  
अन्तिम समयमें अनुकूल स्थितिका कन्म किया उस नारकीके मिध्यात्व और सोलह कथाओं  
की अनुकूल स्थितिका वचम्मा काल एक समय पाया जाता है । तथा जो पूरी पर्यायमें अनुकूल  
स्थितिकी वचता है उसके मिध्यात्व और सोलह कथाओंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल  
नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण पाया जाता है । तथा जिस नारकीने सबके वपात्स समयमें एक  
समयतक नौ नोकथाओंमें सोलह कथाओंकी एक आत्मनिकम उत्कृष्ट स्थितिका उल्लेख किया है  
उस नारकीके सबके आन्तम समयमें नौ नोकथाओंकी अनुकूल स्थितिका वचम्मा काल एक समय  
पाया जाता है । अथवा जिस प्रकार बोधमें नौ नोकथाओंका वचम्माकाल पठित किया है उसी प्रकार  
यहाँ भी जानना चाहिये । तथा जिसके पूरी पर्यायमें मिध्यात्व और सोलह कथाओंकी उत्कृष्ट स्थिति  
का कन्म नहीं हुआ और न पूर्ण पर्यायमें मरते समय एक आशक्ति कालके भीतर एक प्रकृतियोंका  
उत्कृष्ट स्थितिका हुआ उस नारकीके नौ नोकथाओंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी  
स्थितिप्रमाण पाया जाता है । यहाँ मूलमें मिध्यात्व सोलह कथाएँ और नौ नोकथाओंकी अनुकूल  
स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण यहाँ है सो इसका कारण यह बताया  
है कि कर्ममें प्रवेश करके अनुकूल स्थितिका प्रारम्भ करना चाहिये । जो मिध्यात्वका उत्कृष्ट  
स्थितिका करके अन्तमु हुँतमें वेदकसम्पत्त्वको प्राप्त करता है उसके वेदकसम्पत्त्वको प्राप्त  
करके प्रथम समयमें सत्यत्व और सम्मचिप्यात्सकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है, अतः यहाँ  
इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वचम्मा और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । जो बीच  
नरकमें कर्म होते ही सम्पत्त्व या सम्मचिप्यात्सकी ज्ञेयता कर लेता है उसके नरकमें सम्पत्त्व  
और सम्मचिप्यात्सकी अनुकूल स्थितिका वचम्माकाल एक समय पाया जाता है । तथा जो प्रारम्भके  
और अन्तके अन्तमु हुँत कथाको छोड़कर जीवन भर वेदक सम्पत्त्वके साथ रहा है । या जिसने  
सम्पत्त्व और सम्मचिप्यात्सकी ज्ञेयता होमके मध्य या अन्तमें पुनः पुनः वचयोग्य सम्पत्त्वको  
प्राप्त किया है उसके सम्पत्त्व और सम्मचिप्यात्सकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी

§ ४६३. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० जह० एग-समओ, उक्क० अंतोमुहुत्त' । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अणतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्ठा । णवणोक्क० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० एगावलिया । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखे० पोगलपरियट्ठा । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ४९४. पंचिदियतिरिक्ख०-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक्कसाय० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० जहण० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि । एवं मणुसतिय० ।

उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पाया जाता है । इसी प्रकार प्रथमादि पृथिवियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितियोंका काल कहना चाहिये । किन्तु सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये ।

§ ४६३. तिर्यचगतिमे तिर्यचोमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और नपुंसकवेद आदि पाँचका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और स्त्रीवेद आदि चारका उत्कृष्ट काल एक आवलि प्रमाण है । तथा नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है ।

§ ४६४. पचेन्द्रियतिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओघके समान है । तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यच गतिमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान घटित कर लेना चाहिये । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल जिस प्रकार नारकियोंमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये । हों अनुत्कृष्ट स्थिति के उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । तिर्यच पर्यायमें निरन्तर रहनेका उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है, अतः मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल भी इतना ही प्राप्त होता है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पत्य है, क्योंकि पचेन्द्रिय तिर्यचोंमें रहनेका उत्कृष्ट काल पृथक्त्व पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है अतः उस कालमें पुनः पुनः सम्यक्त्व के होनेसे सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वका

१ ४६४ पंचि० तिरि० अपज० मिप्यात्त-सोससक०-पवणोक०-सक०-ब्रह्मणक०  
 एगसमओ । अणुक० ब० सुरामवगाएण समरुण; सक० अंतोसु० ।  
 सम्मच०-सम्मायि० उक्क०-भरुणक०-एगसमओ । अणुक०-भइ०-एगस०, उपक०  
 अंतामु० । एवं मणुसअपज०-पंचि०-अपज० तसअपजजत्तणं ।

समय बना रहता है । अतः समयकत्व व समयमिप्यात्वकी अनुकूल स्वतिका उत्कृष्ट काष्ठ प्रयत्न पूर्वकोटि अधिक तीन पक्ष का है । पंचमित्रपयाप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यक योनिमाती बीषोंके सब कर्मोंकी अनुकूल स्थितिसे उत्कृष्ट कालका बोधकर शेष सब काल पूर्ववत् है । किन्तु मिप्यात्त सोलह कयाम और नौ नोकयामोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । यहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यकोंकी पंचानने पूर्वकोटि अधिक तीन पक्ष, पंचेन्द्रिय तिर्यक पयाप्तकी सैतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पक्ष और पंचेन्द्रिय तिर्यक योनिमातीकी पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पक्ष उत्कृष्ट कायस्थिति जाननी चाहिये । तथा समयकत्व और समयमिप्यात्वका अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल साधक तीन पक्ष है जिसका सुझावा पहले किया ही है । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पयाप्त और मनुष्यनीके इसी प्रकार कवन करना चाहिये । किन्तु इनके मिप्यात्त भाषिकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल करते समय क्रमसे सैतालीस पन्द्रह और सात पूर्वकोटि अधिक तीन पक्ष उत्कृष्ट काल कहना चाहिये ।

१ ४६५ पंचेन्द्रिय तिर्यक अपयाप्तकोंमें मिप्यात्त, सोलह कयाम और नौ नोकयामोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुकूल स्थितिका अपन्य काल एक समयक्रम सुहृत्तमपहस्यप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है । समयकत्व और समयमिप्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुकूल स्थितिका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है । इसी प्रकार मनुष्य अपयाप्त पंचेन्द्रिय अपयाप्त और त्रस अपयाप्त बीषोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-जो सभी पंचेन्द्रिय पयाप्त मिप्यात्त और सोलह कयामोंकी उत्कृष्ट स्थिति बोधकर और स्थितिपात न करके अन्तमुं हूत कालके पंचान् पंचेन्द्रिय तिर्यक स्रक्ष्यपयाप्तकोंमें उत्पन्न होता है उसके पहले समयमें एक प्रकृतिबोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है अतः पंचेन्द्रिय तिर्यक स्रक्ष्यपयाप्तकोंमें एक प्रकृतिबोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय का है । इसी प्रकार नौ नोकयामोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय जानना चाहिये पर यह संक्रमणसे प्राप्त होता है । तथा इस एक समयको बोधकर शेष सुरामवगाएण प्रमाण काल एक सब प्रकृतिबोंकी अनुकूल स्थितिका अपन्य काल है और स्रक्ष्यपयाप्त अवस्था-में रहनेका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत है । अब यदि कोई जीव उत्कृष्ट स्थितिके बिना ही पंचेन्द्रिय तिर्यक स्रक्ष्यपयाप्त हुआ और अपने उत्कृष्ट कालतक रहने वह पर्याय न बहती, पुनः पुनः पक्षीमें उत्पन्न होता रहा तो उसके एक सब प्रकृतिबोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत पाया जाता है । इसी प्रकार सबके प्रथम समयमें समयकत्व और समयमिप्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय घटित कर लेना चाहिये । तथा अनुकूल स्थितिका अपन्य काल एक समय उत्प्रेक्षाकी अपेक्षा और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जानना चाहिये । मूलमें और श्रितनी मार्गवापे गिनार्थ हैं उनमें भी इसी प्रकार सब प्रकृतिबोंकी उत्कृष्ट और अनुकूल स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये ।

§ ४९६. देवेसु एगिअओघं । भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव । णवरि  
अण्णप्पणो उक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति मिच्छत्त-  
वारसक०-एवणोक० उक्क० जहण्णुक० एगस० । अण्णुक० जह० सगसगजहण्णा-  
उअं समऊणं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । अण्णंताणुवंधिचउक्क० उक्क० जह-  
एण्णुक० एगस० । अण्णुक० ज० अंतोमु० एयसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी ।  
सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक० एगसमओ । [ अण्णुक० जह० एगससओ ]  
उक्क० सगट्ठिदी । अण्णुदिसादि जाव सवट्ठे त्ति मिच्छत्त-सम्मामि०-वारसक-एवणोक०  
उक्क० जहण्णुक० एगसमओ । अण्णुक० जह० जहण्णट्ठिदीए समयूणा, उक्क०  
उक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त० उक्क० जहण्णुक० एगस० । अण्णुक० जह० एगस०,  
उक्क० सगट्ठि० । अण्णंताणु०चउक्क० उक्क० जहण्णुक० एगस० । अण्णुक० जह०-  
अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी ।

§ ४९६ देवोंमें सामान्य नारकियोंके समान कथन है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार  
स्वर्गतकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अनुकृष्ट  
स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । आनत  
कल्पसे लेकर उवरिम प्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय  
कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण  
है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।  
अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट  
स्थितिप्रमाण है । सम्यक्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल  
एक समय है । अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिध्यात्व,  
बारह कषाय और नौ नौकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा  
अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी  
अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
स्थितिप्रमाण है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—सामान्य देव तथा भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें सब कर्मों-  
की उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य नारकियोंके समान है,  
किन्तु अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपने-अपने कल्पकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण  
कहना चाहिये । आनतसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देवोंमें भवके पहले समयमें ही मिथ्यात्व,  
बारह कषाय और नौ नौकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और  
उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम अपने-अपने कल्पकी

॥ ४९७ ॥ इदियाणुनादेण पइदिपसु मिच्छत्त-सोत्तसकं चक्कं जहणुक्कं  
 एगसममो । अणुक्कं जं सुवामवग्गहणं, उक्कं अणत्तकालमसस्सेज्जा पोग्गल  
 परियट्ठा । णवणोक्कं चक्कं जं एगसं, उक्कं आपत्तिमा । अणुक्कं  
 जं एयसं, चक्कं अणत्तकालमसस्से पोग्गल परियट्ठा । सम्मत्तं—सम्मामिं  
 उक्कं जहणुक्कं एगसममो । अणुक्कं जं एयसं, उक्कं पत्तिदो  
 असस्से भागो । एवं वादरेइदियाणं । यत्थरि अणुक्कसुक्कस्समंगुलस्स असस्सेज्जादि

[illegible]

§ १६७ इन्द्रियमार्गोंके अनुबाधसे ऐनेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व और सोचने कर्मायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बाधन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिके बाधन्य कमसे कम मध्यमत्वमत्मा और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। नौ लोकायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बाधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आधुनिक प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके बाधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। सम्मत्त्व और सम्मतिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बाधन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिके बाधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पक्षोपगमके असंख्यातत्वे प्रमाणप्रमाण है। इसी प्रकार बाहर ऐनेन्द्रियोंके बान्ता बाहिर। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट काल अनुगमके असंख्यातत्वे प्रमाणप्रमाण

§ ४९६. देवेषु णिरथोधं । भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव । णवरि  
अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति मिच्छत्त-  
वारसक०-एवणोक० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० सगसगजहण्णा-  
उअं समऊणं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । अणंताणुवंधिचउक्क० उक्क० जह-  
एणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० अंतोमु० एयसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी ।  
सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । [ अणुक्क० जह० एगससओ ]  
उक्क० सगट्ठिदी । अणुहिसादि जाव सवट्ठे त्ति मिच्छत्त-सम्मामि०-वारसक-एवणोक०  
उक्क० जहणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० जहण्णट्ठिदीए समयूणा, उक्क०  
उक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० एगस०,  
उक्क० सगट्ठि० । अणंताणु०चउक्क० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० जह०-  
अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी ।

§ ४९६ देवोमे सामान्य नारकियोंके समान कथन है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार  
स्वर्गतकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अनुकृष्ट  
स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । आनत  
कल्पसे लेकर उवरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय  
कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण  
है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।  
अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट  
स्थितिप्रमाण है । सम्यक्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल  
एक समय है । अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व,  
वारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा  
अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी  
अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
स्थितिप्रमाण है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक  
समय है और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ-**सामान्य देव तथा भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें सब कर्मा-  
की उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य नारकियोंके समान है,  
किन्तु अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपने-अपने कल्पकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण  
कहना चाहिये । आनतसे लेकर उवरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें भवके पहले समयमें ही मिथ्यात्व,  
वारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और  
उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुकृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम अपने-अपने कल्पकी

§ ४६६ पंचिदिय-पंचि० पञ्च०-तस-तसपञ्च० मिच्छाच-सोखसक०-गयसोक०

सक० ज० एगस०, सक० अंतोमु० एगावसिया । अशुभ० ज० एमस० सक०  
सगसगुक्तसिद्धि । सम्मच-सम्मायि० सक० अहण्युक्त० एगस० । अशुक्त०

प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती, अतः अगुक्त स्थितिका उत्कृष्ट काल असंभवात्  
पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा । जो येव सोलह कथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय तक  
व्यपकरके एक आबली कालके भीतर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकथाओंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका अपन्य काल एक समय पाया जाता है और जो येव एक आबली या इससे अधिक  
काल तक सोलह कथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिका व्यप करके अनन्तर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके  
नौ नोकथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आबली प्रमाण पाया जाता है । तथा जिस  
देवने सोलह कथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिका व्यप किया और एक आबलीमें एक समय छेप रहने पर  
बह सर कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके सबसे पहले समयमें नौ नोकथाओंकी अनुकृष्ट स्थिति  
और दूसरे समयमें उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, अतः नौ नोकथाओंकी अनुकृष्ट स्थितिका अपन्य  
काल एक समय कहा । तथा नौ नोकथाओंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल मिष्यात्वा आदि  
समान ज्ञानता चाहिये । सम्मत्त्व और सम्ममिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल सबसे  
पहले समयमें होता है अतः एकेन्द्रियोंमें इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और  
उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें जिसने सम्मत्त्व और  
सम्ममिष्यात्वकी उद्देखना कर ली है उसके सम्मत्त्व और सम्ममिष्यात्वकी अनुकृष्ट स्थितिका  
अपन्य काल एक समय कहा । तथा उद्देखनाके कालकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें सम्मत्त्व और सम्म-  
मिष्यात्वकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उसके असंभवात्वे मया प्रमाण कहा । बाहर  
एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका काल ज्ञानता । किन्तु  
एक बीबका निरन्तर बाहर एकेन्द्रिय पर्यायमें रहनेका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंभवात्वे मागप्रमाण  
है अतः इनके मिष्यात्व सोलह कथा और नौ नोकथाओंकी अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल  
अंगुलके असंभवात्वे मागप्रमाण कहा । बाहर एकेन्द्रिय पर्यायकोके अपनी पर्यायमें रहनेका अपन्य  
काल अष्टमु हुत और उत्कृष्ट काल संख्यात इबार बय है अतः इस अपेक्षासे इनके अनुकृष्ट  
स्थितिके अपन्य और उत्कृष्ट कालमें एकेन्द्रियोंके विवेकता या जाती है । छेप कवन एकेन्द्रियोंके  
समान ज्ञानता । बाहर एकेन्द्रिय कल्पपर्याय सूक्ष्म एकेन्द्रिय कल्पपर्याय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय  
पर्यायकोके पंचेन्द्रिय अपर्यायकोके समान काल कहना चाहिये । किन्तु सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायकोके  
अपनी पर्यायमें रहनेका अपन्य काल अष्टमु हुत है अतः इनके अनुकृष्ट स्थितिका अपन्य काल  
अष्टमु हुत कहना चाहिये । तथा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें पञ्चात और अपर्याय दोनों प्रकारके बीब  
गमित है अतः इनके अनुकृष्ट स्थितिका अपन्य काल एक समय कम कुरा स्वप्नप्रमाण  
कहना चाहिये । छेप कवन सुगम है । इसी प्रकार विहसत्रियोंमें बया सम्मत्त्व वनकी स्थितिका  
विचार करके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल पटित कर लेना चाहिये ।

§ ४६६, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याय जस और जसपर्याय बीबोंमें मिष्यात्व सोलह कथा  
और नौ नोकथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल मिष्यात्व और  
सोलह कथाओंका अष्टमु हुत और नौ नोकथाओंका एक आबलीप्रमाण है । तथा अनुकृष्ट स्थिति  
का अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्मत्त्व  
और सम्ममिष्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकृष्ट  
स्थितिका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आपके समान है । इसी प्रकार पुद्गलदेवता,



भागो असंखेज्जाओ ओसपिणिउस्सपिणीओ । बादरेइंदियपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-  
णवणोको० उक्क० एइंदियभंगो । अणुक्क० ज० अतोमु० णवणोकोसायाणं एगसमओ,  
उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एग-  
समओ । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । बादरेइंदियअपज्ज० सुहुमेइंदिय-  
पज्जत्तापज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो । णवरि सुहुमेइंदियपज्जत्ताणं अणुक्क० ज०  
अंतोमुहुत्तं । सुहुम० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोको० उक्क० जहणुक्क० एगस० ।  
अणुक्क० जह० खुद्दामवग्गहणं समयूणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सम्मत्त-  
सम्मामि० एइंदियभंगो ।

§ ४६८. सन्धविगलंदिय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोको० उक्क० जहणुक्क०  
एगस० । अणुक्क० ज० खुद्दामवग्गहणं अंतोमु० समऊणं, उक्क० सगट्ठिदी ।  
सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगसम० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क०  
सगट्ठिदी ।

है जिसका प्रमाण असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी होता है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके कालका भग एकेन्द्रियोंके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है पर नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाम-  
वग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वका भग एकेन्द्रियोंके समान है ।

§ ४६८ सब विक्लेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दामवग्रहण प्रमाण और एक समय अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्व और सोलह कपायकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही होती है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । पर यह उत्कृष्ट स्थिति पर्याप्त एकेन्द्रियोंके ही प्राप्त होती है और इस अपेक्षासे लब्धपर्याप्तकोंके उक्त कर्मोंकी सब स्थिति अनुत्कृष्ट कही जाती है, अतः सामान्य एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल खुद्दामवग्रहण प्रमाण कहा । तथा एकेन्द्रिय पर्यायर्म जीव असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक लगातार रह सकता है और ऐसे जीवके बीचमें उक्त

§ ४६६ पंचिद्वि-पंचि-पञ्च-तस-तसपञ्च-मिध्व-सोस-सक-गणशोक-

उनक-३० एगस-०, उकक-० अंतीगु-० एगानलिया । अणुपक-० ज-० एगस-० उकक-०  
सगसगुकस्सहिदी । सम्मच-सम्मामि-० उकक-० जहणुपक-० एगस-० । अणुपक-०

प्रकृतियोंकी एकत्र स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती, अतः अनुकृत स्थितिका एकत्र काल असंख्यात पुराल परिवर्तन प्रमाण कहा । जो देश सोलह कपायोंकी एकत्र स्थितिका एक समय तक बन्धकरके एक भावली कालके भीतर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकयायोंकी एकत्र स्थितिका अपन्य काल एक समय पाया जाता है और जो देश एक भावली या इससे अधिक काल तक सोलह कपायोंकी एकत्र स्थितिका बन्ध करके अनन्तर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकयायोंकी एकत्र स्थितिका एकत्र काल एक भावलि प्रमाण पाया जाता है । तथा जिस देशने सोलह कपायोंकी एकत्र स्थितिका बन्ध किया और एक भावलीमें एक समय छेप रहने पर वह मर कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके पहले समयमें नौ नोकयायोंकी अनुकृत स्थिति और दूसरे समयमें एकत्र स्थिति पाई जाती है, अतः नौ नोकयायोंकी अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय कहा । तथा नौ नोकयायोंकी अनुकृत स्थितिका एकत्र काल मिध्वत्व आदिके समान जानना चाहिये । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्वत्वकी एकत्र स्थितिका एकत्र काल भवके पहले समयमें होता है अतः एकेन्द्रियोंमें इन दोनों प्रकृतियोंकी एकत्र स्थितिका अपन्य और एकत्र काल एक समय कहा । तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें जिसन सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्वत्वकी उद्भवन कर ही है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्वत्वकी अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय कहा । तथा उद्भवनाके कालकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्वत्वकी अनुकृत स्थितिका एकत्र काल पक्षके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । बाहर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी एकत्र और अनुकृत स्थितिका काल जानना । किन्तु एक बीजका निरन्तर बाहर एकेन्द्रिय पयायमें रहनेका एकत्र काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः इनके मिध्वत्व सोलह कपाय और नौ नोकयायोंकी अनुकृत स्थितिका एकत्र काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । बाहर एकेन्द्रिय पयायमेंके अपनी पयायमें रहनेका अपन्य काल अन्तमु हुत और एकत्र काल संख्यात इबार बर्य है अतः इस अपेक्षाके इनके अनुकृत स्थितिके अपन्य और एकत्र कालमें एकेन्द्रियोंके विशेषता आ जाती है । शेष कथन एकेन्द्रियोंके समान जानना । बाहर एकेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्त सूरम एकेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्त और सूरम एकेन्द्रिय पर्याप्तके पंचेन्द्रिय अपर्याप्तके समान काल कहना चाहिये । किन्तु सूरम एकेन्द्रिय पर्याप्तके अपनी पर्याप्तमें रहनेका अपन्य काल अन्तमु हुत है अतः इनके अनुकृत स्थितिका अपन्य काल अन्तमु हुत कहना चाहिये । तथा सूरम एकेन्द्रियोंमें पयाय और अपर्याप्त दोनों प्रकारके बीज धर्मित है अतः इनके अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय कम गुहा भयान्त्र प्रमाण कहना चाहिये । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार विरुजत्रयोंमें पञ्च सम्यक् उनकी स्थितिका विचार करके एकत्र और अनुकृत स्थितिका अपन्य और एकत्र काल पटित कर सत्य चाहिये ।

§ ४६६ पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त त्रस और त्रसपर्याप्त बीजोंमें मिध्वत्व सातह कपाय और नौ नोकयायोंकी एकत्र स्थितिका अपन्य काल एक समय और एकत्र काल मिध्वत्व और सोलह कपायोंका अन्तमु हुत और नौ नोकयायोंका एक भावलीप्रमाण है । तथा अनुकृत स्थिति का अपन्य काल एक समय और एकत्र काल अपनी अपनी कृत स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्वत्वकी कृत स्थितिका अपन्य और एकत्र काल एक समय और अनुकृत स्थितिका अपन्य काल एक समय और कृत काल आपके समान है । इसी प्रकार पुरुरेयान्,

ज० एगस०, उक्क० ओघभंगो । एवं पुरिस०-चक्खु-सण्णि त्ति ।

§ ५००. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-वादरवणप्फदिपत्तेय० मिच्छत्त-सोलसक०-एवण्योक० उक्क० एइंदियभंगो । अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्ता-सम्माप्पि० एइंदियभंगो । वादरपुढवि०-वादरआउ० एवं चेव । णवरि अणुक्कस्सुक्कस्सं सगट्ठिदी । वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज० वादरेइंदिय-पज्जत्तभंगो । एवं वादरवणप्फदिपत्तेयसरिरपज्जत्ताणं । वादरपुढविअपज्ज०-वादर-आउअपज्ज०-तेउ०-वादरतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फ-दिपत्तेयसरिरअपज्ज०-णिगोद०-वादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सव्वसुहुमाणं छव्वीसं पय-डीणं उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं समऊणं,

चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५००. कायमार्गणके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक और वादर प्रत्येक वनस्पति-कायिक जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भग एकेन्द्रियोंके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अपेक्षा खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा एक समय है तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग एकेन्द्रियोंके समान है । वादर पृथिवीकायिक और वादर जलकायिक जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

**विशेषार्थ-**पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके उद्देलनाकी अपेक्षा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है । भय जुगुप्सा, अरति शोक व नपुंसक वेदकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त भी जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है । ऊपर पुरुषवेदी आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिये । तथा पृथिवीकायिक वादर पृथिवीकायिक और वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त आदिके अपनी-अपनी पर्यायमें निरन्तर रहनेके कालका विचार करके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । शेष कथन सुगम है, क्योंकि इसका पहले अनेक बार खुलासा किया जा चुका है, अतः यहाँ व आगे भी उसका विचार करके यथासम्भव कथन करना चाहिये ।

वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और वादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंका भग वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार वादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्नि-कायिक, वादर अग्निकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, निगोदजीव, वादरनिगोद, वादरनिगोद पर्याप्त जीव, वादर निगोद अपर्याप्तजीव और सब सूक्ष्म जीवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है

उक्त० सगसगुक्तस्तद्विदी । सम्मत्त-सम्मायि० उक्त० ब्रह्मण्युक्त० एगस० । भणुक्त०  
 ब्र० एगसमो उक्त० पस्तिदो० अस्तस्वेष्टदिमागो । खपरि वादरपुहविष्मादिमपक्षपाणं  
 स्रष्टमपुहविष्मादिपक्षपाणं च सगद्विदी यत्तथा ।

१५०१ पञ्चमण० पञ्चमणि० मिष्टान्न-सोलसक०-शाम्भोजसाय० एक० पञ्चि  
दियमंगो । अणुक० न० एगसमओ, एक० अंतोमुहुरा । सम्मन-सम्माभि० एक०  
नहणुक० एगसमओ । अणुक० न० एगसमओ, एक० अंतोमु० । ओरासिय०  
पर्व चेब एवरि सगहिदी बसन्त्या ।

५५२ कायओगि० मिच्छत्त-सोत्तसक०-णवणोक० उक्क० ओप० । अणुक्क०  
अ० एगस०, उक्क० पइदियमंगो । सम्मत्त-सम्मापि० पइदियमंगो । ओरात्थिय  
मिस्स० मिच्छत्त-सोत्तसक०-णवणोक० उक्क० अणुक्क० पइदियमंगो । मिच्छत्त  
सोत्तसक० अणुक्क० अह० सुवाभवगार्हणं तिसमकण्ठं । णवणोकसाय० अह० एय  
समओ, उक्क० अंतोपहुणं । सम्मत्त-सम्मापि० पंथिदियअपत्तत्तमंगो । एयं वेद  
विजय० णवरि मिच्छत्त-सोत्तसक० अणुक्क० अ० एगसमओ उक्क० अंतोप्प० ।

तथा कृत्यक्रम अपनी अपनी कृत्य स्थितिप्रमाण है। तथा सम्बन्धित श्री( सम्मर्गिभ्यात्मक) कृत्य स्थितिप्रमाण और कृत्य क्रम एक सम और अतुल्य स्थितिप्रमाण अपने क्रम एक सम और कृत्य क्रम प्रत्येकमेक असम्बन्धित प्रमाण है। किन्तु इतनी विवेचना है कि बाहर प्रविष्टिकायिक आदि अपर्याप्त बीधोंकी तथा सूक्ष्म प्रविष्टिकायिक आदि पर्याप्त और अपर्याप्त बीधोंकी अतुल्य स्थितिप्रमाण कृत्य क्रम अपनी स्थिति प्रमाण कृत्य बाधिते।

§ १ पाँचों मनोयोगी और पाँचों बचनयोगी जीवोंके मिथ्यापक्ष, साहज कथन और नौ नोकयावोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संग पञ्चमिथ्याके समान है। तथा अनुकूल स्थितिका अपम्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्गुह्य है। तथा सम्बन्ध और सम्मग्नध्यात्मकी उत्कृष्ट स्थितिका अपम्य और उत्कृष्टकाल एक समय और अनुकूल स्थितिका अपम्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्गुह्य है। भौतिककालयोगी जीवोंके इसा प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतना बिधेरता है कि इनके अनुकूल स्थितिका उत्कृष्टकाल अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये।

**विद्युत्पार्ष-पाशो** भनायाग और पाशो बन्धयोगार्थ अस्मत् कस्त अस्तमु हृतं तथा औदारिक्याय योगका वृत्त्य काष्ठ अस्तमु हृतं कम बाईस हजार थप है, अथः इन्के अनुसार अनुकृत्य सिद्धिका वृत्त्य काष्ठ करना चाहिये । सेर कपन मुगम है ।

§ ५ २ कर्मयोगिबोधे मिथ्यात्व, सोलह कथाएं और नौ मोक्षप्राप्तोद्दी कृत्य स्थिति विमर्शिका काल बोधके समान है। तथा अनुकूल स्थितिका अप्रपञ्चकाल एक समय और कृत्य काल प्रवेष्टिपक्षके समान है। तथा सम्बन्ध और सम्प्रतिमिथ्यात्वका भी प्रवेष्टिपक्षके समान है।

औद्योगिक मित्र कार्यवागियोंमें मिथ्यात्व, सासाह कयाव और नौ मोक्यावोंकी उत्कृष्ट स्थिति का ब्रह्म और उत्कृष्टतम धर्मियोंके समान है। तथा मिथ्यात्व और सासाह कयावोंकी अमृतकृष्ट स्थिति का ब्रह्मका तीन समवक्य धुरासमयप्रमाण है और नौ मोक्यावोंका ब्रह्मका एक समय है तथा सबकी प्रकृतकृष्ट स्थिति का उत्कृष्टतम अमृतकृष्ट है। तथा सम्पत्ति और सम्पत्तिमिथ्यात्व का भी धर्मियों का समान है। इस प्रकार वैदिक कर्मयोगी शीर्षोंके ज्ञान का वादिये। किन्तु इतनी विवेचना है कि इनमें मिथ्यात्व और सासाह

वेउन्वियमिस्स० मिच्छत्त० सोलसक० एवणोक० उक्क० एइदियभंगो । अणुक्क० जहणुक्क० अंतोमु० । एवरि णवणोकसाय० अणुक्क० जह० एयसमओ । सम्पत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । एवरि अणुक्क० जह० एयसमओ ।

§ ५०३. आहार० सव्वपयडीणमुक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ उक्क० अंतोमुहुत्त । एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्खादसंजदेत्ति । आहारमिस्स० सव्वपयडीणमुक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० जहणुक्क० अंतोमु० । एवमुवसम०-सम्मामि० ।

§ ५०४. कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-सम्पत्त०-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । एवणोकसाय० उक्क० ज० एगस०, उक्क० वेसमया । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । एवमणाहार० ।

कपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्यिक मिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलहकपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भग एकेन्द्रियोंके समान है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग मिथ्यात्वके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है।

§ ५०३. आहारक काययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेद वाले, अकपायी, सूक्ष्मसाम्परायिकसयत और यथाख्यात-सयत जीवोंके जानना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ ५०४. कर्मणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। तथा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंके एक काययोग ही होता है, अतः काययोगमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। औदारिक मिश्रका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें मिथ्यात्व और सोलह कपाय की अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहा भी जानना। शेष कथन सुगम है। तथा जिस वैक्यिककाययोगीने वैक्यिककायोग के उपान्त समयमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और अन्त समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध

§ ४०५ वेदाशुभादेण इत्यिवेदेसु मिच्छत्-सोमसक्त०-शवणोक्त० उक्त० ओषं ।  
अणुक्त० ज० एगसमभो उक्त० सगदिदी । सम्पत्-सम्पामि० उक्त० मण्डपुक्त०  
एगस० । अणुक्त० ज० एगसमभो, उक्त० पणवणपलितो० सादिरेयाणि ।  
अणु स० मिच्छत्-सोमसक्त० शवणोक्त० उक्त० ओषं । अणुक्त० ज० एगस०,

किया उसके मिथ्यात्व और सोलह कथाओंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा वैकल्पिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहृत है अतः यहाँ अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहृत पाया जाता है क्षेत्र कवन पूर्ववत् जानना । वैकल्पिकमिथ्याकाययोगका जपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहृत है अतः इसमें मिथ्यात्व और सोलह कथाओंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य काल अन्तमुहृत तथा नौ नोकराव मिथ्यात्व और सोलह कथाओंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहृत होता है । नौ नोकरावकी अनुकूल स्थितिका जपन्य काल पूर्ववत् जानना । क्षेत्र कवन सुगम है । आहारक काययोगके पहले समयमें ही सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्पन्न है अतः यहाँ सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जो जोष एक समय तक आहारक काययोगके साथ रहे और दूसरे समयमें मर गये या मूल शरीरमें प्रविष्ट हो गये उनके सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा आहारक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहृत है अतः इनके सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहृत कहा । अपगतवेष्टी, अक्यावी, सूक्ष्मसाम्पद्यिक संयत और पयाक्यातसंयत बीरोंके आहारककाययोगियोंके समान काल जानना । क्योंकि ब्रह्म श्रेष्ठकी अपेक्षा एक सागणायामोंमें एक काल दान जाता है । आहारकमिथ्याकाययोगीका जपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहृत है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकूल स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहृत बन जाता है । तथा ब्रह्मसम्पद्यिक और सम्पद्यिमिथ्याकाय योगियोंके भी इसी प्रकार कवन करना चाहिये । कर्मसंकाय योगका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । अतः इसमें नौ नोकरावकी छोड़कर दोष सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय बन जाता है । किन्तु नौ नोकरावकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विद्यता है । बात यह है कि नौ नोकरावकी उत्कृष्टस्थिति अपयाप्त अवस्थामें एक भावसिद्धता तक भी पाई जासकती है परन्तु भीष अधिकसे अधिक । विपश्ये ही कल्प होता है, अतः इसके कामकाययोग का समय पाया जाता है और इसीविधे कर्मकाययोगमें नौ नोकरावकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल का समय कहा है । नौ नोकरावकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य काल एक समय तो रहता ही है । तथा अनाहारक बीरोंके इसी प्रकार जानना क्योंकि संसार अवस्थामें यहाँ प्रमणकाययोग जाता है यहाँ अनाहारक अवस्था पाई जाती है ।

§ ४०६ वेदमगशाके अनुशास्त्रे स्त्रीविरियोंमें मिदुपार, साधककाय और नौ नोकरावकी उत्कृष्ट स्थितिका कवन आपके समान है । तथा अनुकूल स्थितिका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अगनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्पत्त्व और सम्पद्यिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुकूल स्थितिका जपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अधिक पचपन पश्य है । नपुंसकविरियोंमें मिथ्यात्व साधककाय और नौ नोकरावकी उत्कृष्ट स्थितिका काल आपके समान है । तथा अनुकूल स्थितिका जपन्य काल

उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोगगलपरियट्ठा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०, अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीस साग० सादिरेयाणि । असंजद० एबुंसयभंगो णवरि मिच्छ० सोलसक० अणुक्क० जह० अतोमु० ।

§ ५०६. चत्तारि कसाय० मणजोगिभंगो । मदिसुदअण्णा० ओघं । एवरि सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० उक्क० एइंदियभंगो । एवं मिच्छादि० । अभव० एवं चेव एवरि सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि । विहंग० सत्तमपुढविभंगो । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमेइंदियभंगो ।

एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । असंयत सम्यग्दृष्टियोंका भंग नपुसकोंके समान है । किन्तु विशेषता इतनी है कि इनमें मिध्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ—**स्त्रीवेदका उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्व है, अतः इसमें उपर्युक्त छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण जानना चाहिये । जो अट्ठाईस या चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव पूर्व पर्यायमें स्त्रीवेदी है और वहासे मरकर तथा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिध्यादृष्टि होकर पचवन पल्यकी उत्कृष्ट आयुके साथ देवपर्यायमें स्त्रीवेदी हुआ उसके साधिक पचवन पल्य तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति पाई जासकती है, अतः स्त्रीवेदमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पल्य कहा है । शेष कथन सुगम है । एक जीव निरन्तर नपुसकवेदके साथ अनन्त काल तक रह सकता है अतः नपुसकवेदमें मिध्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा । तथा जो पूर्व पर्यायमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला नपुसकवेदी है और वहा से च्युत होकर तेतीस सागरकी आयुवाले नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके साधिक तेतीस सागर काल तक सम्यग्मिध्यात्वकी सत्ता पाई जा सकती है अतः इन दो प्रकृतियों की अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है शेष कथन सुगम है । असंयतों का सब कथन नपुसकोंके समान है किन्तु मिध्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि जिस नारकीने भवके उपान्य समयमें उक्त प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति बाधी अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थिति बाधी उसके नपुसकवेदमें उक्त प्रकृतियों की अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है पर ऐसा जीव मरकर भी असंयत ही रहता है, अतः असंयतके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ५०६. चार कषायवालोंका भग मनोयोगियोंके समान है । मत्यज्ञानी और श्रुतान्नानियोंके ओघके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान है । इसी प्रकार मिध्यादृष्टिजीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व नहीं हैं । विभगज्ञानियोंका भंग सातवीं पृथिवीके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है ।

**विशेषार्थ—**एक समय और अन्तर्मुहूर्त सामान्यकी अपेक्षा चारों कषायों और मनोयोगका काल समान है, अतः चारों कषायोंमें मनोयागके समान कथन करनेकी सूचना की । मत्यज्ञानी

१५०७ आमिणि०-सुद०-मोहि० मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अर्णाताणु०  
 पउक्क०-वारसक०-एवणीक० उक्क० जइणुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज०  
 मंतोसु०, उक्क० ज्वाहिसागरा० सादिरयाणि । अर्णाताणु० चउक्क० देसूणाणि वा ।  
 एवमोहिदंस०-सम्मदि० । पडय० एवं चेव । एवरि सम्म०-वारसक० [एवणोक्क०]  
 ज्वाहिसाग० पडिपुग्गाणि । संसाणं दग्गाणि । मणपज्ज० सम्बपयदीणमुक्क०  
 जइणुक्क० एवस० । अशुक्क० ज० अतोमुहुत्त, उक्क० पुम्भकोदी दग्गा । एवं  
 संमद०-परिहार०-संमदासमद० । सामाएयदेदो० एवं चेव । एवरि चउत्रीसप०  
 अणुक्क० जइ० एगस० ।

और बुद्धिमान्नी जीवके सम्बन्ध और सम्मिध्यास्वका सत्त्व पदके अस्वभावमें भागप्रमाण  
 काज तक ही पाया जाता है अतः इनके लक्ष्णों प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थिति का लक्ष्ण  
 एकैत्रिणोंके समान कहा । सेप कम्यन सुगम है । अमम्भोंमें भी लक्ष्णीय प्रकृतियोंकी लक्ष्ण और  
 अनुकूल स्थिति का जप्य और लक्ष्ण काज ओषके समान बन जाता है । इनके सम्बन्ध और  
 सम्मिध्यास्वकी सत्ता नहीं होती यह स्पष्ट ही है । विमंगलानमें साधनों धर्मिकोंके समान  
 और सब प्रकृतियोंकी लक्ष्ण और अनुकूल स्थिति का जप्य और लक्ष्ण काज ता बन जाता है  
 किन्तु सम्बन्ध और सम्मिध्यास्वकी अनुकूल स्थिति का लक्ष्ण काज नहीं बनता क्योंकि  
 विमंगलान मिध्यालक्षिके हाता है और मिध्यालक्षिके इन दो प्रकृतियोंकी सत्ता पदके अस्वभावमें  
 भागप्रमाण काज तक ही पाई जाती है ।

१५०८ आमिनिवाधिक्यानी बुद्धिमान्नी और अविद्यानी जीवोंमें मिध्यास्व सम्बन्ध  
 सम्मिध्यास्व अन्तःसत्त्वकी अनुकूल बाह्य कपाय और नौ मोक्षार्थोंकी लक्ष्ण स्थिति का  
 जप्य और लक्ष्ण काज एक समय है । तथा अनुकूल स्थिति का जप्य कम्यन अन्तमु हुते और  
 लक्ष्ण काज साधिक ज्वासठ सागर है अथवा अमन्तानुबन्धी अनुकूल काज कम ज्वासठ  
 सागर है । इसी प्रकार अविद्यानी की सम्मिध्या जीवोंके ज्ञानता परिह । वरकमन्मयलक्षिके  
 जीवोंके भी इसी प्रकार ज्ञानता चाहिये । किन्तु इतनी विवेचना है कि इनमें सम्बन्ध बाह्य  
 कपाय और नौ मोक्षार्थोंकी अनुकूल स्थिति का लक्ष्ण काज पूरा ज्वासठ सागर है शेष काज कम  
 ज्वासठ सागर है । मन्तव्यमशानियोंमें सब प्रकृतियोंकी लक्ष्ण स्थिति का जप्य और  
 लक्ष्ण काज एक समय तथा अनुकूल स्थिति का जप्य काज अन्तमु हुत और लक्ष्ण काज कम  
 पूरकलक्षिके है । इसी प्रकार संयम परिहारविहासिसंयत और मन्तव्यमशानियोंके ज्ञानता चाहिये ।  
 सामासिकसंयत और ज्ञेयवस्थापनामयण जीवोंके इसी प्रकार ज्ञानता चाहिये । किन्तु इतनी  
 विवेचना है कि इनमें जीवोंकी प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थिति का जप्य कम एक समय है ।

विद्वेषाद्यु-सम्मिध्या जीवके सम्बन्ध प्रमाण करके पहल समयमें ही सब प्रकृतियोंकी  
 लक्ष्ण स्थिति पाई जाती है अतः भविष्यानी, जगन्नानी और अविद्यानी जीवके सब प्रकृतियोंकी  
 लक्ष्ण स्थिति का जप्य और लक्ष्ण काज एक समय कहा । तथा इन मार्गार्थोंका जप्य काज  
 अन्तमु हुत और लक्ष्ण काज साधिक ज्वासठ सागर है, अतः सबकी अनुकूल स्थिति का जप्य  
 काज अन्तमु हुते और लक्ष्ण काज साधिक ज्वासठ सागर कहा । किन्तु अमन्तानुबन्धी अनुकूल  
 अनुकूल स्थिति का लक्ष्ण काज कम ज्वासठ सागर भी प्राप्त हाता है क्योंकि वरकमन्मयलक्षिके  
 क क समय से मिध्यास्व आदि तीन प्रकृतियोंके जप्य काज काज पडा इन पर आर अमन्तानुबन्धी  
 अनुकूलके विमंगलान काज काज मिता देन पर देना ज्वासठ सागर प्राप्त हाता है । अब यदि



१ ५०८. किण्ह-णील-काउ० तेउपम्मलेस्सामु मिच्छत्त०-सोलसक०-एवणोक० उक्क० ओघं, अणुक्क० जह० एगस० । णवरि किण्हणीलकाउ० मिच्छ० सोलस० अतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । सुक्कले० मिच्छत्त-सोलमऊ०-णवणोक० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० अतोमु० । अणंताणु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी ।

इसमें प्रारम्भ में हुए उपशम सम्यक्त्वके कालको मिला दिया जाता है तो साधिक छ्यासठ सागर प्राप्त हो जाते हैं और यही सबब है कि अवधिज्ञानी आदि मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर भी स्वीकार किया है । अवधिदर्शन अवधिज्ञानका अविनाभावी है अतः अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानके समान व्यवस्था जानना । तथा सम्यग्दृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार जानना । वेदकसम्यक्त्वमें यद्यपि इसी प्रकार जानना पर इसके सम्यक्त्व और वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पूरा छ्यासठ सागर होता है क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व तक वेदक सम्यक्त्वका काल पूरा छ्यासठ सागर है और उक्त प्रकृतियोंका यहा तक सत्त्व पाया जाता है । इससे यह भी तात्पर्य निकल आया कि उक्त प्रकृतियोंको छोड़ कर वेदकसम्यक्त्वमें शेष प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम छ्यासठ सागर है । मन पर्ययज्ञानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि है । अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है शेष कथन सुगम है । ऊपर संयत आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं इनमें भी इसी प्रकार जानना । यद्यपि सामायिक और छेदोपस्थापनामें काल सन्बन्धी उक्त व्यवस्था घन जाती है पर जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर और नौवें गुणस्थानमें एक समय तक रह कर मर जाता है उसके सामायिक और छेदोपस्थापना समयमें चौबीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है ।

१ ५०८ कृष्ण, नील कापोत पीत और पद्म लेश्याओंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंमें मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उपर्युक्त सभी लेश्याओंमें उपर्युक्त सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । शुक्ल-लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अनन्तानुबन्धीका एक समय भी है । और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—कृष्णादि पाच लेश्याओंके रहते हुए मिथ्यात्व और सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो सकता है तथा सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकपायोंमें संक्रमण हो

१५०६ स्वयं० भासक०-णवणाक० [ उक्क० ] जहण्णुक्क० एगस० ।  
अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० तेथोस सागरोवमाणि सादिरयाणि । सासण०  
सव्वपयदी० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० ब्राह्मि-  
याभो । असण्णी० एइ दिपयंभो ।

सकृदा इ अतः इन्तर्गम्यार्याणि ब्रह्मास प्रकृतियोंकी उक्त स्थितिका जपन्य और उक्त  
काश भाषके समान कहा है । जो पीत और पद्मशेखरायणा जाय मर कर तिर्यगोमें उत्पन्न  
होता है यदि वह मरनेके पहले क्वात्स्य समयमें मि वात्स्य भाषिकी उक्त स्थितिको प्राप्त करके  
अन्तर्गम्य अनुकृत स्थितिका प्राप्त करता है तो उसके पीत और पद्म क्षेत्रात्स्य अनुकृत स्थितिका  
जपन्य काल एक समय पाया जाता है । किन्तु कृष्णादि तीन अष्टम क्षेत्रात्स्य मरनेके पश्चात् भी  
एक अन्तर्गम्य हुते काल तक बनी रहती है, अतः इन्तर्गम्य प्रकृतियोंकी अनुकृत स्थितिका जपन्य  
काल अन्तर्गम्य हुते ही प्राप्त होता है । तथा पाँचों क्षेत्रात्स्योंमें एक प्रकृतियोंकी अनुकृत स्थितिका  
उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थिति प्रमाण है यह सुगम है । सम्मत्स्य और सम्मगिमध्या  
त्वकी उक्त स्थिति बद्ध सम्मत्स्यके प्रमाण करनेके पक्ष समयमें ही हो सकती है अतः पाँचों  
क्षेत्रात्स्योंमें एक बानों प्रकृतियोंकी उक्त स्थितिका जपन्य और उक्त काल एक समय पड़ा है ।  
तथा उल्लेखके अन्तिम समयमें जो कृष्णादि क्षेत्रात्स्योंको प्राप्त होता है उनके कृष्णादि क्षेत्रात्स्योंमें  
सम्मगिमध्यात्वकी अनुकृत स्थितिका जपन्य काल एक समय पाया जाता है । पर सम्मत्स्यकी  
अनुकृत स्थितिका जपन्य काल एक समय कृष्ण और नीला क्षेत्रात्स्य उल्लेखकी अपेक्षा और  
कपोत आदि तीन क्षेत्रात्स्योंमें उक्तक्षेत्रात्स्य सम्मत्स्यकी अपेक्षा बानता बाह्य । तथा एक  
दोनों प्रकृतियोंकी अनुकृत स्थितिका उक्त काल उक्त स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।  
उक्तक्षेत्रात्स्योंमें मिध्यात्व आदि ब्रह्मीस प्रकृतियोंकी उक्त स्थिति पक्ष समयमें ही सम्भव है,  
अतः इसमें एक प्रकृतियोंकी उक्त स्थितिका जपन्य और उक्त काल एक समय कहा है । तथा  
उक्त क्षेत्रात्स्य जपन्य काल अन्तर्गम्य हुते है अतः इसमें एक उल्लेख प्रकृतियोंकी अनुकृत  
स्थितिका जपन्य काल अन्तर्गम्य हुते कहा है । तथा अन्तर्गम्यकी अनुकृत प्रकृतियोंकी विवर्णना किया  
हुआ जो उक्तक्षेत्रात्स्योंका जाय मिध्यात्स्य हो गया और दूसरे जनय उसकी क्षया पक्ष गई  
उसके अन्तर्गम्यकी अनुकृतकी अनुकृत स्थितिका जपन्य काल एक समय भी पाया जाता है ।  
तथा अनुकृत स्थितिका उक्त काल उक्त स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । तथा सम्मत्स्य  
और सम्मगिमध्यात्वकी उक्त और अनुकृत स्थितिका जपन्य और उक्त काल पूषण पक्षित  
कर लेना बाह्ये उससे इसमें कोई निश्चयता नहीं है ।

१५०६. धार्मिक सम्मत्स्यका नाम बारह कयाय और ना नाट्यार्थाका उक्त स्थिति  
जपन्य और उक्त काल एक समय और अनुकृत स्थिति जपन्य काल अन्तर्गम्य हुते और उक्त  
काल साधिक वेदास सागरप्रमाण है । सासादन सम्मत्स्यार्थोंमें सब प्रकृतियोंकी उक्त स्थितिका  
जपन्य और उक्त काल एक समय और अनुकृत स्थितिका जपन्य काल एक समय और  
उक्त काल बारह भाषिकीप्रमाण है । असंख्यार्थ प्रकृतियोंके समान भग है ।

विशेषार्थ-धार्मिक सम्मत्स्यक नाम बानक पक्ष समयमें ही बारह कयाय और ना  
मात्रात्स्योंकी उक्त स्थिति सम्भव है अतः इसमें एक प्रकृतियोंकी उक्त स्थितिका जपन्य  
और उक्त काल एक समय कहा है । तथा धार्मिक सम्मत्स्यक संसार्य जपन्य काल अन्तर्गम्य हुते  
और उक्त काल साधिक वेदास सागर है अतः इसमें अनुकृत स्थितिका जपन्य काल  
अन्तर्गम्य हुते और उक्त काल साधिक वेदास सागर पड़ा है । सासादन सम्मत्स्यक पक्ष

§ ५१० आहारि० मिच्छत्त सोलसक०-णवणोक० उक्क० ओघ । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त सम्मामि० उक्क० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० वेळावट्ठिसागरो० सादिग्ग्याणि ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

\* जहणाट्ठिदिसंतकम्मियकालो ।

§ ५११, अहियारसंभालणवक्कमेदं सुगमं ।

\* मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सोलसकसाय-तिवेदाणं जहणुक्कस्सेण एगसमओ ।

§ ५१२, कुदो ? जहणाट्ठिदिसत्तुप्पणविदियसमए चेत्त एदासि पयडीणं जहणाट्ठिदीए विणासुवलंभादो । सो वि ए अजहणाट्ठिदिगमणेण विणासो; विदिय-समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा भासादनसम्यक्त्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि है अतः इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि प्रमाण कहा है । अमज्ञियोंमें एरेन्द्रिय प्रधान हैं अतः असं-ज्ञियोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल एरेन्द्रियोंके समान कहा है ।

§ ५१० आहारकोंमें मिथ्यात्व, सोलह क्पाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल माधिक दो बार छयासठ सागर है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि छव्वीस प्रकृतियोंकी ओघके सम न उत्कृष्ट स्थिति आहारक जीवोंके ही हो सकती है अतः आहारकोंके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है । जो उपान्त्य समयमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करके अन्तसमयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है और तीसरे समयमें अनाहारक हो जाता है उस आहारकके उक्त छव्वीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब जघन्य स्थितिसत्कर्मका काल कहते हैं ।

§ ५११ अधिकारके सम्हालनेके लिए यह सूत्र वाक्य आया है । जो कि सरल है ।

\* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह क्पाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थिति सत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ५१२, शका—इनका जघन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—जघन्य स्थितिसत्त्वके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें ही इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका विनाश हो जाता है । यह विनाश भी अजघन्य स्थितिको प्राप्त करनेसे नहीं होता ।



हृण्णोकसायजहृण्णद्विदीए अंतोमृदुत्तकालुवदेसादो । पुत्रिज्जलवक्खाणं ण भदयं  
सुत्तविरुद्धतादो । ण, वस्साणभेदमटारिमणटं तप्पवृत्तीदो पडिक्खवणयणिरायरण-  
मुहेण पउत्तएओ ण भदयो । ए च एत्थ पडिक्खवणिरायरणमत्थि तम्हा वे वि-  
णिरवज्जे त्ति घेतच्च । द्विदि-द्विदिअद्धच्छेदाणं वित्तिमुत्तकत्ताराणमहिप्पाएण कथ-  
मेदो ? वुच्चदे-सयलणिसेयगयकालपहाणो अद्वाछेदो, सयलणिसंगपहाणा द्विदि त्ति  
ण दोहं पुणरुत्तदा । एवं चुण्णिमुत्तोघं परुविय संपट्ठि जहृण्णाजहृण्णद्विदीणं काल-  
परुवणट्टमुच्चारणाइरियवक्खाणं भणिससामो ।

§ ५१४. जहृण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो--ओघेणादेसेण य । मिच्छत्त-वारसक-  
तिणिणवेद० ज० के० ? जहृण्णक्क० एगसमओ । अजहृण्ण० केव० ? अणादि-  
अपज्ज० अणादिसपज्जवसिदा । सम्मत्त-सम्मामि० जह० अहृण्णक्क० एगसमओ ।  
अज० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० वे छागदिसागरो० सादिरियाणि । अणंताणु० चउक्क०  
[ जह० ] जहृण्णक्क० एगसमओ । अजह० केव० ? अणादिअपज्जवसिदा अणादि-  
सपज्जवसिदा सादिसपज्जवसिदा । जो सो सादिसपज्जवसिदो भंगो तस्म इमो णिहेसो-  
कार और उच्चारणाचार्यका यह अभिप्राय नहीं है, क्योंकि उन्होंने ब्रह्म नोऽपार्योका जघन्य  
स्थितिका काल अन्तमुहूर्त कहा है ।

शका--पूर्वोक्त व्याख्यान समीचीन नहीं है, क्योंकि वह सूत्रविरुद्ध है ।

समाधान--नहीं, क्योंकि व्याख्यानभेदके दिखलानेके लिये पूर्वोक्त व्याख्यानकी प्रवृत्ति  
हुई है । जो नय प्रतिपक्षनयके निराकरणमे प्रवृत्ति करता है वह समीचीन नहीं होता है । परन्तु  
यहाँ पर प्रतिपक्ष नयका निराकरण नहीं किया है, अतः दोनों उपदेश निर्दोष हैं ऐसा प्रकृतमे  
ग्रहण करना चाहिये ।

शंका--नो फिर वृत्तिसूत्रके कर्त्ताके अभिप्रायानुसार स्थिति और स्थितिअद्वाच्छेदमें भेद  
कैसे हो सकता है ?

समाधान--सर्वनिपेकगत कालप्रधान अद्वाच्छेद होता है और सर्वनिपेकप्रधान स्थिति  
होती है इसलिये दोनोंके कथनमें पुनरुक्त दोष नहीं आता है ।

इस प्रकार चुण्णिसूत्रकी अपेक्षा आधका कथन उनके अब जघन्य और अजघन्य स्थितियोंके  
कालका कथन करनेके लिये उच्चारणाचार्यके व्याख्यानको कहते हैं--

§ ५१४ अब जघन्य स्थितिके कालका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है--  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमे से ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, वारह कपाय और तीन  
वेदोंकी जघन्य स्थितिका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य  
स्थितिका काल कितना है ? अनादि-अनन्त और अनादि सान्त काल है । सम्यक् और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य स्थिति-  
का जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर हैं । अनन्तानुबन्धी  
वतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य स्थितिका काल  
कितना है ? अनन्तानुबन्धी की अजघन्य स्थितिके कालके अनादि अनन्त, अनादि-सान्त और  
सादि सान्त ये तीन विकल्प होते हैं । इनमे जो सादि-सान्त भग है उसकी अपेक्षा यह प्रकृतमें

जहण० मंतोमु०, उक्त० अद्योगगसपरियह वेसण । छण्णोऊसायाण मर०  
सहण्णुऊ० मंतोमु । ममह० कप० ? अणादिअपज्जनसिदा अणादिसपञ्चसिदा ।  
एयं मनसि० । गवरि अणादिअपज्जव० णत्थि ।

१५१५ अत्थसेण पेत्थपसु मिञ्चत्त०-वारस० भय दुग्गुत्ताणं न० जहण्णुऊ०  
एगस० । अत्त० न० एगस०, उक्त० सगहिदी । सम्मत्त-सम्मायि० जह० जहण्णुऊ०

कपन किया जा रहा है । अथवा काल अन्तमु हूत और उक्त काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-  
प्रमाण है । यह नोकरायोंकी अपम्य स्थितिका अपम्य और उक्त काल अन्तमु हूत है । तथा  
अथवा स्थितिका कितना काल है ? अनादि-अनन्त और अनादि सप्त काल हैं । इसी प्रकार  
मर्त्योंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विवेचना है कि इनके किसी भी प्रकृतिका अनादि अनन्त  
काल नहीं है ।

विशेषार्थ-मिथ्यात्व, सम्ममिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कथय और तीन वेदोंकी अपम्य  
स्थितिका अपम्य और उक्त काल एक समय है इसका सुझावा पहले किया ही है । तथा सम्यक्त्व  
और सम्ममिथ्यात्वका जोड़कर इनकी अथवा स्थिति अनादि अनन्त और अनादि सप्त होती है  
क्योंकि अमर्त्योंके उक्त प्रकृतियोंकी अथवा स्थिति अनादि-अनन्त काल तक पाई जाती है । तथा  
जिन्होंने ज्ञानतोहनीय और चारित्र्यतोहनीयकी कृपा करत हुए उक्त प्रकृतियों की अपम्य स्थितिको  
प्राप्त कर लिया है उनके उक्त प्रकृतियोंकी अथवा स्थितिका काल अनादि-सप्त है । किन्तु  
अनन्तानुबन्धी चतुष्कका काल सादि-सप्त भी पाया जाता है । जिसमें सम्यक्त्व और सम्म-  
मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त करके अन्तमु हूत कालमें उनकी कृपा कर ही है उसके सम्यक्त्व और  
सम्ममिथ्यात्वकी अथवा स्थितिका अपम्य काल अन्तमु हूत पाया जाता है । तथा सम्यक्त्व  
और सम्ममिथ्यात्वका उक्त सत्त्वकाल पर्यवे तीन असेक्यातबे भागोंसे अधिक एकसौ बचोस  
समर है अतः इनकी अथवा स्थितिका उक्त काल उक्त प्रमाण समझना चाहिये । अनन्तानु-  
बन्धी चतुष्ककी अथवा स्थितिका काल अनादि अनन्त अनादि-सप्त और सादि-सप्त इस  
सब तीन प्रकारमें पहले कतलाया ही है । हा अनादि कालमें अनन्त अवतल मिथ्यात्वमें पड़ा है  
इसके अनादि अनन्त काल पाया जाना है । जिन्होंने अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करत हुए अपम्य  
स्थिति प्राप्त कर ली इसके अनादि-सप्त काल पाया जाता है । तथा जिन्होंने विसंयोजनाक पहचान  
पुनः अनन्तानुबन्धीका भस्व प्राप्त कर लिया इसके सादि सप्त काल पाया जाता है । इन्में से  
सादि-सप्त कालकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीकी अथवा स्थितिका अपम्य काल अन्तमु हूत है,  
क्योंकि अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त ज्ञान पर एक अन्तमु हूतके भीतर विसंयोजना प्राप्त पुनः  
इसका सब किया जा सकता है । तथा अनन्तानुबन्धीकी अथवा स्थितिका उक्त काल कुछ  
कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है यह स्पष्ट है । यह नोकरायोंकी अपम्य स्थितिका अपम्य  
और उक्त काल अन्तमु हूत है यह पहले बतला ही था है । तथा मिथ्यात्व आदिक समान यह  
नोकरायोंकी अपम्य स्थितिका काल अनादि-अनन्त और अनादि सप्त पण्ठ कर लेना चाहिये ।  
यह सब व्यवस्था मर्त्योंके बन जाती है । इसलिय इनके कथनका आपके समान करा ।  
किन्तु इतनी विवेचना है कि मर्त्योंके सब प्रकृतियोंकी अथवा स्थितिका अनादि अनन्त यह  
विकल्प नहीं पाया जाना ।

१५१६ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व बरह कथय भय और दुग्गुत्ताकी  
अपम्य स्थितिका अपम्य और उक्त काल एक समय है । तथा अथवा स्थितिका अपम्य काल  
एक समय और उक्त काल अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्ममिथ्यात्वकी

एगस०, अज० ज० एगस० । उक्क० सगट्टिदी । सत्तणोक० ज० जहण्णुक्क० एयस० ।  
अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि । अणंताणु० जह० जहण्णुक्क०  
एयस० । अज० जह० अंतोमु० एयसमयो वा, उक्क० सगट्टिदी । एवं पढमाए । णवरि  
सगट्टिदी० ।

जघन्य स्थितिवा जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्पदीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार पहली पृथिवामे जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये ।

**विशेषार्थ**—जो असह्य अपने योग्य जघन्य स्थितिके साथ दो मोडे लेकर नरकमें उत्पन्न होता है उसके दूसरे मोड़में मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति पाई जा सकती है अतः नरकमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इसके पहले मोड़में अजघन्य स्थिति पाई जाती है अतः उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा है । तथा जो उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके साथ नरकमें उत्पन्न होता है उसके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पाया जाता है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति नारकीके कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वके अन्तिम समयमें और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः नारकियोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा जिसके कृतकृत्यवेदकके कालमें दो समय शेष हैं ऐसा जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा जिसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें दो समय शेष हैं ऐसा जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । इन दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । नरकमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् एक समयके लिये प्राप्त हो सकती है, अतः सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इसके पहले अन्तर्मुहूर्त काल तक अजघन्य स्थिति होती है, अतः सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति विसयोजनाके अन्तिम समयमें होती है, अतः नरकमें इसकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा जिसने विसयोजनाके पश्चात् पुनः अनन्तानुबन्धीकी सत्ता प्राप्त कर ली है और अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर पुनः उसकी विसयोजना कर दी है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । तथा विसयोजना किया हुआ जो जीव सासादनमें जाकर और दूसरे समयमें अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है । तथा उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । पहले नरकमें इसी प्रकार

१५१६ विदियादि भाव अदि चि मिच्छस चारसक०-णवणो० ज० ब्रह्मणु०  
एगस । अत्रहण्य० [ ब्रह्मणु० ] ब्रह्मणु०स्सद्विदी फापव्वा । सम्मच-सम्मामि० ज०  
ब्रह्मणु० एगस० । अत्र ज० एगम०, उक्क० सगद्विदी । अण्ठाणु०चउक्क०  
अह० ब्रह्मणु० एगस० । अम० ज० मताणु० एगसमभा वा, उक्क० सगद्विदी ।  
सत्तमाप मिच्छस-चारसक०-मय-दुग्धा० अह० ज० एगस० उक्क० अतोमु० । अम०  
ज० अतोमु०, उक्क० सगद्विदी । [सम्मच] सम्मामि० गिरमार्थ । अण्ठाणु०-सत्त  
णाक० अह० ब्रह्मणु० एगस० । अम० अह० अतोमु०, उक्क० सगद्विदी ।

ज्ञानना चाहिये । किन्तु अत्राप्य स्थितिका उत्तम काज उत्तम समय ६से पहले नरककी उत्तम  
स्थितिप्रमाण कहना चाहिये ।

१५१६ दूसरी से लेकर सठौं पृथिवी तक के नारकियोंमें मिथ्यात्व चारह कपाय और नौ  
नाकपायोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्तम काज एक समय है और अत्राप्य स्थितिका  
अपन्य और उत्तम काज अपन्य और उत्तम स्थिति प्रमाण करना चाहिये । सम्मत्त्व और मय  
मिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्तम काज एक समय है । तथा अत्राप्य स्थितिका  
अपन्य काज एक समय और उत्तम काज अपनी अपनी उत्तम स्थितिप्रमाण है । अन्तस्तानुबन्धी  
वस्तुकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्तम काज एक समय है । तथा अत्राप्य स्थितिका  
अपन्य काज अन्तमु हुत वा एक समय है और उत्तम काज अपनी अपनी उत्तम स्थिति प्रमाण  
है । सत्तमी पृथिवीमें मिथ्यात्व चारह कपाय, मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थितिका अपन्य काज  
एक समय और उत्तम काज अन्तमु हुत है । तथा अत्राप्य स्थितिका अपन्य काज अन्तमु हुत  
और उत्तम काज अपनी उत्तम स्थितिप्रमाण है । सम्मत्त्व और सम्मत्त्वमिथ्यात्वकी स्थितिका काज  
सामान्य नारकियोंके समान है । अन्तस्तानुबन्धी वस्तुके और सत्त नौकपायोंकी अपन्य स्थितिका  
अपन्य और उत्तम काज एक समय तथा अत्राप्य स्थितिका अपन्य काज अन्तमु हुत और  
उत्तम काज अपनी उत्तम स्थिति प्रमाण है ।

विशुद्धार्थ-द्वितीयादि पृथिवियोंमें मिथ्यात्व, चारह कपाय और नौ नाकपायोंकी अपन्य  
स्थिति अन्तिम समयमें ही प्राप्त हो सकती है अतः यहाँ उक्त प्रवृत्तियोंकी अपन्य स्थितिका  
अपन्य और उत्तम काज एक समय कहा । पर वह अपन्य स्थिति इसा जीवक होती है जिससे  
उत्तम आयुके साथ नरकमें उत्तम होकर पहाय अन्तमु हुत कामके मीतर उपशम सम्मत्त्व प्राप्त  
कर लिया है और अन्तस्तानुबन्धी विसंयाजना करके वा जीवन भर बड़े सम्मत्त्व वना रहा  
है । शय जीवोंके हा एक कामकी अपन्य स्थिति ही होती है, अतः द्वितीयादि नरकोंमें एक  
कामकी अपन्य स्थितिका अपन्य काज अपनी अपनी अपन्य स्थितिप्रमाण और उत्तम काज  
अपनी अपनी उत्तम स्थितिप्रमाण कहा । यहाँ सम्मत्त्व और सम्मत्त्वमिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिका  
अपन्य और उत्तम काज एक समय तथा अत्राप्य स्थितिका अपन्य काज एक समय उल्लानाकी  
अपन्य पटित कर लेना चाहिये । शय कम सुगम है क्योंकि इससे पहले शुद्धता कर पाय है  
वही प्रकर कहा भी कर लेना चाहिये । सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व चारह कपाय, मय और  
जुगुप्साकी अपन्य स्थिति पयायक अन्तिम एक समय तक वा अन्तमु हुत काज तक प्राप्त हो  
सकती है अतः इससे ७७ प्रवृत्तियोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य काज एक समय और उत्तम काज  
अन्तमु हुत कहा । अन्तस्तानुबन्धी अपन्य स्थिति विमंसाजनाके अन्तिम समयमें तथा सात  
नाकपायोंकी अपन्य स्थिति अन्तिम अन्तमु हुतका आतः प्रतिपक्ष प्रवृत्तियोंके अन्तकातः



§ ५१७. तिरिक्खेसु मिच्छत्त-वारसक-भय-दुगुंझा जह० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० अमखेज्जा लोगा । सम्पत्त०-सम्माभि० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि सादिरियाणि । अणताणु० च उक्क० [ ज० ] जहणुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु० एगसमओ वा, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । सत्तणोक० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० खुदाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालमसंखे० पो० परियट्ठा ।

§ ५१८. पंचिदियतिरिक्ख-पंचि० तिरि० पज्ज०-पंचि० तिरि० जोणिणीसु मिच्छत्त०-वारसकसाय-भय-दुगुंझ० जह० ज० एगस०, उक्क० वेममया । अज० ज० खुदाभवग्गहणं [ अंतोमुहुत्तं ] विसमऊणं एगमओ वा, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुव्व-कोटिपुत्तेण० भहियाणि । सम्पत्त०-सम्माभि० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । अणताणु० च उक्क० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । एवं सत्तणोकसायाणं । णवरि अणताणु० अज० ज० एगसमओ वा ।

अन्तिम समयमें प्राप्त होती है अतः इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५१७ तिर्यचोमे मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असख्यात लोक प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ५१८ पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतिर्योमे मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल दो समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण, दो समय कम अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि ग्रथक्त्व अधिक तीन पल्य है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । इसी प्रकार सात नोकषायोंका जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी है ।

१५१६ पंचिदियतिरिखुमपञ्च० मिन्धत्त०-सोससक० भय-दुर्गुणार्ण भइ०  
 स० एगस०, उक्क० पे समया । अञ्च० ज० सुहाभयगार्ण दुसमऊर्ण एयसमओ  
 वा, उक्क० मंतोमु० । सम्मत्त-सम्मायि० अइ० जहणुक्क० एगस० । अञ्च० ज०  
 एगस०, उक्क० मंतोमु० । सत्तणो० ज० जहणुक्क० एगस० । अञ्च० जहणुक्क०  
 मंतोमु० । एव मणुसअपञ्च० पंचिदियमपञ्च०-ससमपञ्चत्तार्ण ।

१५१६ पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तिकोमि मिध्यात्व मोलह कयाय मय और न्युप्ताकी  
 अपर्याप्त स्थितिका अपर्याप्त कात्त एक समय और उत्कृष्ट कात्त दो समय है । तथा अपर्याप्त स्थितिका  
 अपर्याप्त कात्त दो समय कम सुहाभयगार्ण प्रमाण या एक समय और उत्कृष्टकात्त अन्तमु हूत है ।  
 सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अपर्याप्त स्थितिका अपर्याप्त और उत्कृष्ट कात्त एक समय तथा  
 अपर्याप्त स्थितिका अपर्याप्त कात्त एक समय और उत्कृष्ट कात्त अन्तमु हूत है । मात नोकयायोकी  
 अपर्याप्त स्थितिका अपर्याप्त और उत्कृष्टकात्त एक समय तथा अपर्याप्त स्थितिका अपर्याप्त और  
 उत्कृष्ट कात्त अन्तमु हूत है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त  
 जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोमि मिध्यात्व चारह कयाय मय और न्युप्ताकी अपर्याप्त स्थिति बाहर  
 एकेन्द्रियोमि कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमु हूत कात्त तक प्राप्त होती  
 है अतः इनमें एक प्रकृतियोंकी अपर्याप्त स्थितिका अपर्याप्त कात्त एक समय और उत्कृष्ट कात्त  
 अन्तमु हूत कहा है । तथा जो तिर्यञ्च अपर्याप्त स्थितिके पञ्चान् एक समय तक एक प्रकृतियोंकी  
 अपर्याप्त स्थितिके साथ रहा और दूसरे समयमें मर कर अन्य गतिमें उत्पन्न हो गया उसके एक  
 प्रकृतियोंकी अपर्याप्त स्थितिका अपर्याप्त कात्त एक समय होता है । तिर्यञ्चोमि एक प्रकृतियोंकी  
 अपर्याप्त स्थितिके साथ रहनेका उत्कृष्ट कात्त असंख्यात लोक है, क्योंकि सूत्रम एकेन्द्रियोमि अपर्याप्त  
 स्थिति नहीं होती और सूत्रम एकेन्द्रियोमि रहनेका उत्कृष्ट कात्त असंख्यात लोक है, अतः एक  
 प्रकृतियोंकी अपर्याप्त स्थितिका उत्कृष्ट कात्त असंख्यात लोक कहा । सम्यक्त्व और सम्यग्मि  
 ध्यात्वकी अपर्याप्त और अपर्याप्त स्थितिका कात्त नास्तिकियोंके समान जानना । किन्तु अपर्याप्त  
 स्थितिके उत्कृष्ट कात्तमें विद्येता है । जान यह है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके साथ कोई  
 जीव तिर्यञ्चपर्याप्तोमि अधिकसे अधिक साधिक (पूर्वकोटि एवमत्त्व अधिक) तीस पक्ष तक रह सकता है,  
 अतः इनमें एक दो प्रकृतियोंकी अपर्याप्त स्थितिका उत्कृष्ट कात्त साधिक तीन पक्ष कहा ।  
 तिर्यञ्चपर्याप्तोमि अमन्तलुब्धकी अपर्याप्त स्थितिके साथ निरन्तर रहनेका कात्त असंख्यात  
 पुद्गल परिवर्तन है अतः इनमें अमन्तलुब्धकी अपर्याप्त स्थितिका उत्कृष्ट कात्त एक प्रमाण  
 कहा । अमन्तलुब्धकी अपर्याप्त दोष कम सामान्य नास्तिकियोंके समान जानना । या कयायोकी  
 अपर्याप्त स्थितिका कम करके पञ्चान् प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका तिर्यञ्चत्त एक कथ्य करता है उसके  
 प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके कथ्यके अन्तिम समयमें सात नोकयायोकी अपर्याप्त स्थिति होती है, अतः सात  
 नोकयायोकी अपर्याप्त स्थितिका अपर्याप्त और उत्कृष्ट कात्त एक समय कहा । तथा तिर्यञ्च पर्याप्तोमि  
 रहनेका अपर्याप्त कात्त सुहाभयगार्ण प्रमाण और उत्कृष्ट कात्त असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण  
 है अतः मात नोकयायोकी अपर्याप्त स्थितिका अपर्याप्त कात्त सुहाभयगार्ण प्रमाण और उत्कृष्ट  
 कात्त असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिके पक्षे और दूसरे  
 पक्षके समय अपर्याप्त स्थिति हो सकती है अतः इनके मिध्यात्व बाह्य कयाय मय और  
 न्युप्ताकी अपर्याप्त स्थितिका अपर्याप्त कात्त एक समय और उत्कृष्ट कात्त दो समय कहा । तथा

§ ५२०. मणुस-मणुपपज्जत्त-मणुस्सिणीसु मिच्छत्त-वारमक०-णवणोरु० जह० ओघं० । अज० ज० खुद्दाभवग्रहणं अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० पंचिदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो । अणंताणु०चउत्त० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अजह० ज० अंतोमु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० छण्णोकसायभंगो । मणुसिणीसु अट्ठणोक० जह० जहणुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ५२१ देवाणं णेरइयभंगो । भरण०-वाणवेंतराणमेत्तं चेत्त । एवरि सगट्ठिदी ।

इन दो समयोंको घटा देने पर पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके दो समय कम खुदाभवग्रहण प्रमाण और शेष दो प्रकारके तिर्यचोंके दो समय कम अन्तमुहुत्त अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । तथा जिस पंचेन्द्रियतिर्यच त्रिकेके भवके दूसरे समयमें जघन्य स्थिति हुई उसके पहले समयमें अजघन्य स्थिति होता है अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी सम्भव है । शेष कथन सुगम है । इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यचके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल उद्देलनाकी अपेक्षा ही घटित करना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तिर्यचोंके समान घटित कर लेना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त अवस्थामें रहनेका उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्त है, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्त कहा । शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल पूर्वमें कहे हुए कालको ध्यानमें रखकर घटित कर लेना चाहिये । मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंकी स्थिति और पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान है अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ५२०. मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोगे मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल सामान्य मनुष्योंमें खुदाभवग्रहणप्रमाण और शेष दोमें अन्तमुहुत्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्तकोंके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहुत्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका भग छह नोकपायोंके समान है और मनुष्यनियोगे आठ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्त है ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण तथा पर्याप्त और मनुष्यनियोगेका जघन्य काल अन्तमुहुत्त है, अतः सामान्य मनुष्योंमें मिथ्यात्व आदि बारहस प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण और पर्याप्त तथा मनुष्यनियोगेमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहुत्त कहा । तथा मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डके शेष रहने पर जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल छह नोकपायोंके समान अन्तमुहुत्त कहा । इसी प्रकार मनुष्यनियोगे आठ कपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्त जानना । शेष कथन सुगम है ।

§ ५२१. देवोंमें नारकियोंके समान जानना चाहिये । भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी

मोदिसियादि आद्य उदरिमगेष्योऽपि मिच्छन्-वारसक० एषणोक० अह० जहणुक०  
 एगस० । अज० ज० जहणुहिदी, उक० उकस्सहिदी । सम्मच-सम्माभि०-अर्णताणु०  
 चउकाणं देवोपमंगो । एवरि अव्यण्णो उकस्सहिदी वतम्मा । मणुविसादि आद्य  
 मवराबिद० मिच्छन्-सम्माभि०-वारसक०-एषणोक० अ० जहणुक० एगस० ।  
 अज० अह० ज० हिदी, उक० उकस्सहिदी कायम्मा । सम्मच-अर्णताणु० चउक० देवोप० ।  
 एवरि अर्णताणु० अज० एयसमयो एत्थि । सम्मह० मिच्छन्-सम्माभि०-वारसक०  
 एवणोक० अह० जहणुक० एयसमयो । अज० अह० तेवीसं सागरोव० समउखाणि,  
 उक० तेवीसं सागरोवमाणि सणुणाणि । सम्मच० अर्णताणु० अह० जहणुक०  
 एयस० । अज० अह० एयसमयो अंतोसु०, उक० तेवीसं सागरो० ।

इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी बिरोधता है कि इनके अपनी स्थिति खानी चाहिये ।  
 व्योतिषियोंसे लेकर उपरिम मैथेयकतकके देवोंमें मिथ्यात्व बाराह कयाव और नौ नोकयावोंकी  
 अक्षय्य स्थितिका अपन्य और उक्त काल एक समय तथा अक्षय्य स्थितिका अपन्य काल  
 अपन्य स्थितिप्रमाण और उक्त काल उक्त स्थितिप्रमाण है । सम्मत्त्व, सम्मत्त्वित्वात् और  
 अनन्तलुब्धकी अनुष्ण मंग सामान्य देवोंके समान है । किन्तु इतनी बिरोधता है कि अपनी  
 अपनी उक्त स्थिति खानी चाहिये । अनुविधिसे लेकर अपराधित तकके देवोंमें मिथ्यात्व,  
 सम्मत्त्वित्वात् बाराह कयाव और नौ नोकयावोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उक्त काल एक  
 समय है । तथा अक्षय्य स्थितिका अपन्य काल अपन्य स्थितिप्रमाण और उक्त काल उक्त  
 स्थितिप्रमाण करना चाहिये । सम्मत्त्व और अनन्तलुब्धकी अनुष्ण काल सामान्य देवोंके  
 समान है । किन्तु इतनी बिरोधता है कि इनके अनन्तलुब्धकी अनुष्ण अक्षय्य स्थितिका  
 अपन्य काल एक समय नहीं है । सर्वाधिसिद्धिमें मिथ्यात्व सम्मत्त्वित्वात् बाराह कयाव और  
 नौ नोकयावोंकी अक्षय्य स्थितिका अपन्य और उक्त काल एक समय है तथा अक्षय्य स्थितिका  
 अपन्य काल एक समय कम तेवीस सागर और उक्त काल पूरा तेवीस सागर है । सम्मत्त्व  
 और अनन्तलुब्धकी अनुष्ण अपन्य स्थितिका अपन्य और उक्त काल एक समय तथा  
 अक्षय्य स्थितिका अपन्य काल सम्मत्त्वका एक समय और अनन्तलुब्धकी अनुष्ण अनन्त हर्त  
 और उक्त काल दोनोका तेवीस सागर है ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार सामान्य नारिकोंक सब प्रकृतियोंकी अपन्य और अक्षय्य  
 स्थितिका अपन्य और उक्त काल बतला जाये हैं वसी प्रकार सामान्य देवोंके जानना । तथा  
 मन्त्रवासी और व्यन्तर देवोंके भी इसी प्रकार जानना । विशेष बात इतनी है कि इनके अक्षय्य  
 स्थितिका उक्त काल अपनी-अपनी उक्त स्थितिप्रमाण जानना चाहिये । व्योतिषियोंसे लेकर  
 उपरिम मैथेयक तक के देवोंके मिथ्यात्व बाराह कयाव और नौ नोकयावोंका अपन्य स्थिति मन्त्रके  
 अन्तिम समझों सम्मत्त्व है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उक्त  
 काल एक समय कहा । पर यह अपन्य स्थिति उक्त स्थितिवाले सम्मत्त्व देवोंके सम्मत्त्व है,  
 अतः उक्त कर्मोंकी अक्षय्य स्थितिका अक्षय्य काल अपनी अपनी अक्षय्य स्थितिप्रमाण और  
 उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण कहा । शेष कवन सुगम है । अनुविध आदिमें  
 इसी प्रकार जानना चाहिये । पर इनके सम्मत्त्वित्वात्की अक्षय्य स्थितिका काल मिथ्यात्वके समान  
 पठित करके कहा चाहिये क्योंकि अनुविधिसे लेकर उपरके सब देव सम्मत्त्व ही होते हैं,

§ ५२२. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० भय-दुगुंछाणं [जह०] जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सम्मत्त-सम्मापि० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखेज्ज० भागो । सत्तणोक० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं सुहुमेइंदियाणं । बादरेइंदियाणमेवं चेव । णवरि सगट्ठिदी । बादरेइंदियपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० एगस०; उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । सम्मत्त-सम्मापि० उक्कस्सभंगो । सत्तणोक० जह० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । बादरेइंदियपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० ज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मापि०-सत्तणोक० ज० जहण्णुक० एगमगओ । अज० ज०

अतः इनके सम्यग्मिध्यात्वकी उद्देलना सम्भव नहीं । तथा जो उपशमसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनावाला जीव भवके अन्तमें सासादनमें जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । पर यहाँ कोई भी जीव सम्यक्त्वसे च्युत नहीं होता अतः यहाँ अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय सम्भव नहीं । सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और उत्कृष्ट आयुका भेद नहीं ! तथा वहाँ भवके अन्तिम समयमें मिध्यात्व आदि वेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः वहाँ जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इस एक समयको कम कर देने पर अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर प्राप्त होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५२२. एकेन्द्रियोंमें मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपजके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये । बादर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतना विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिये । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिध्यात्व, सालह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भग उत्कृष्ट स्थितिके समान है । सात नाकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष हैं । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट

एगसमभो, उक्त० अंतोमु० ।

१५२३ सम्बन्धितिविद्य० मिच्छन्-सोससक मय-दुगु ख० ज० ज० एगसमभो, उक्त० बसमया । अज० ज० सुखामवगहणं अंतोमुहुत्तं भित्तमऊणं एयसमया वा, उक्त० अप्पप्यजो उक्तस्सहिदी । सम्पत्त-सम्पामि० मह जहण्णुक्त० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्त० सगहिदी । सत्तणोक्त० ज० जहण्णुक्त० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्त० सगहिदी ।

१५२४ पचिदिय-पचि० पञ्ज०-तस-तसपञ्ज० मिच्छन्-वारसक०-एवणोक्त०

फल एक समय तथा अजपम्य स्थितिक अथवा काल एक समय और उक्त काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, बाहर एकेन्द्रिय पयाप्त तथा अपर्याप्त, सुख एकेन्द्रिय और सुख एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त बीबीके अपनी अपनी उक्त स्थितिका विचार करके सब प्रकृतियों की अजपम्य स्थितिका उक्त काल काल करना चाहिये । परन्तु एकेन्द्रियोंमें अथवा स्थिति केवल बाहर पर्याप्तके ही होती है सुखके अथवा नहीं होती और सुखोंका उक्त काल असंख्यात लोक है अतः एकेन्द्रियोंमें अजपम्यका उक्त काल असंख्यात लोक कहा है । वर्यापि एकेन्द्रियोंमें अजपम्यकी उक्त स्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है, फिर भी इनके सम्बन्ध और सम्बन्धितप्यात्वकी अजपम्य स्थितिका उक्त काल पत्तके असंख्यातके भागप्रमाण ही प्राप्त होता है क्योंकि मिच्छाद्वि बीबीके इससे अधिक काल तक इनकी सत्ता नहीं पाई जाती । तथा इन पूर्वोक्त एकेन्द्रियादि बीबीमें आ जपम्य स्थितिके पहचान एक समय तक अजपम्य स्थितिके साथ रहा और दूसरे समयमें मर गया इसके सम्बन्ध और सम्बन्धितप्यात्वके बिना छेप सय प्रकृतियोंका अजपम्य स्थितिका अथवा काल एक समय प्राप्त होता है । तथा इनके सम्बन्ध और सम्बन्धितप्यात्वकी अथवा स्थितिका अजपम्य और उक्त काल तथा अजपम्य स्थितिका अथवा काल एक समय अज्ञानकी अपेक्षा कहा है । तथा मिच्छात्व, साक्षात् कयाव, मय और जुगुप्साकी अथवा स्थितिका अथवा काल एक समय और उक्त काल अन्तर्मुहूर्त तथा साठ नाकगवाकी अथवा स्थितिका अथवा काल और उक्त काल एक समय सामान्य विचाराक समान अपनी अपनी पर्याप्तमें पठित करके जानना चाहिये ।

१५२५ सब भिन्नान्द्रियोंमें मिच्छात्व साक्षात् कयाव मय और जुगुप्साकी अथवा स्थितिका अथवा काल एक समय और उक्त काल वा समय है तथा अजपम्य स्थितिका अथवा काल पर्याप्तकोक जाण कर छेपमें वा समय कम सुखामवगहण प्रमाण और पर्याप्तकोक वा समय कम अन्तर्मुहूर्त अथवा एक समय और उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है । सम्बन्ध और सम्बन्धितप्यात्वकी अथवा स्थितिका अथवा काल और उक्त काल एक समय तथा अजपम्य स्थितिका अथवा काल एक समय और उक्त काल अपनी स्थितिप्रमाण है । साठ नोकवाबीकी अथवा स्थितिका अथवा काल एक समय तथा अजपम्य स्थितिका अथवा काल अन्तर्मुहूर्त और उक्त काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—भिन्नान्द्रियोंमें मिच्छात्व साक्षात् कयाव, मय और जुगुप्साकी अथवा स्थितिका अथवा काल एक समय और उक्त काल दो समय तथा अजपम्य स्थितिका अथवा काल दो समय कम सुखामवगहण प्रमाण और वा समय कम अन्तर्मुहूर्त या एक समय एकेन्द्रिय तिर्यक त्रिकके समान पठित कर लेना चाहिये । तथा अजपम्य स्थितिका उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । छेप कम सुख है ।

१५२६ एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियपयाप्त अस और अस पयाप्त बीबीमें मिच्छात्व साक्षात् कयाव

ज० ओघं । अज० ज० खुदाभयगहनं अंतोमु०, उक्क० मगट्टिदी । मम्मत्त-मम्मामि०  
ज० जहणणुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० वे द्वागट्टिसागरो० सादिरेयाणि ।  
अणताणु० चउक्क० ज० जहणुक्क० एगम० । अज० ज० अंतोमु० [ एगममओ वा ],  
उक्क० मगट्टिदी । एवं चक्खु०-सण्णि त्ति ।

§ ५२५. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-गाउ०-वणप्फदि०-णिगोद०

और ना नोकपायोकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल पर्याप्तकोंके विना ओघमें खुदाभयग्रहणप्रमाण और पर्याप्तकोंमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्त ओर सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो द्वासाठ सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार चतुर्दशनवाले और सँझी जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोरुपायोकी जघन्य स्थितिका काल जो ओघमें कहा है वह पचेन्द्रियादिकी प्रधानतासे कहा है, अतः इन चारोंमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान जानना । तथा पचेन्द्रिय और त्रसोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुदाभयग्रहण प्रमाण और पचेन्द्रिय पर्याप्त तथा त्रस पर्याप्तकोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त हागा । तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होगा । इनमें पचेन्द्रियोंका कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक हजार सागर, पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी कायस्थिति सौ पृथक्त्व सागर, त्रसकायिकोंकी कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रस पर्याप्तकोंकी कायस्थिति दो हजार सागर है । अतः इतने काल तक उक्त जीवोंको उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिके साथ रहनेमें कोई बाधा नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कृतकृत्य वेदके अन्तिम समयमें हागा । तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट एक समय काल उद्वेलना और कृतकृत्यवेदक इन दानोंकी अपेक्षा हो सकता है । तथा इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व साधिक एक सौ बत्तीस सागर तक रह सकता है अतः उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर कहा । विसयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है और उक्त चारों प्रकारके जीवोंके अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना हो सकती है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है ऐसा जीव यदि मिथ्यात्वमें जाय और वहा अतिलघु काल तक रह कर और पुन वेदक सम्यक्त्वकी प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना कर ले ता उसे ऐसा करनेमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है अतः अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । परन्तु आयुके अन्तिम समयमें एक समय कालवाला सासदन हुआ और मरकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले किसी भी चौबीसमी सत्तावाले पचेन्द्रिय या त्रसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी प्राप्त होता है । तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५२५. कायमार्गणके अनुवाकसे सभी पृथिवीकायिक, सभी जलकायिक, सभी अग्नि-

प्रदियमंगो । एवरि सगसगुक्कस्सहिदी यत्तम्मा ।

१ ५२६ पंसयण०-यत्तवधि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मापि० सोलसक०-अण्णोक्क०  
ज० अ० । एवरि अण्णोक्क० ज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मसिमम०  
ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । ओगमि० एवं धव । एवरि सगहिदी । एव  
वेवम्मिय० । एवरि अण्णोक्क० म० ज० अण्णोक्क० एयस० । अयमोगि० मिच्छत्त-  
सोलसक०-अण्णोक्क० अ० मणजोगिमंगो । अम० ज० एगस०, उक्क०  
अर्जतकालो । सम्मत्त-सम्मापि० प्रदियमंगो । ओराक्षियमिस्स० बादरेइ दिय  
अपज्जत्तमंगो । एवरि सत्तणोक्क अम० ज० अंतोमु० । वेवम्मियमिस्स०  
मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मापि०-सोलसक०-अण्णोक्क० ज० ज० अण्णोक्क० एगस० । अज०  
अण्णोक्क० अंतोमु० । एवरि सम्मत्त-सम्मापि० अज० ज० एगसमओ । एवमाहार  
मिस्स० । एवरि सम्मत्त सम्मापि अज० अण्णोक्क० अंतोमु० । आहार० वेवम्मियमंगो ।  
एवमकसाय-सुद्धुम०-जहाक्खादसअवे पि । कम्मत्त० मिच्छत्त-सोलसक०-अण्णोक्क० अ०

काविक सभी वास्तुकाविक और सभी निगाह जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । इतनी  
विशेषता है कि इनके अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य काल अपनी अपनी अज्ञपण्य स्थिति प्रमाण बनना  
बाहिये । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार एकेन्द्रियोंके सब प्रवृत्तियोंकी अज्ञपण्य और अज्ञपण्य  
स्थितिका काल बनना आते हैं वही प्रकार इनके अज्ञपण्य काल बनना बाहिये ।

१ ५ ६ पाँचों मनोबोगी और पाँचों अज्ञपण्यजीवोंमें मिथ्यात्व सम्मत्त्व, सम्मत्ति-  
ध्यात्व सोलह कयाव और नौ नोकयावोंकी अज्ञपण्य स्थितिका काल ओषके समान है । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि यह नोकयावोंकी अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य काल एक समय और अज्ञपण्य काल  
अज्ञपण्य काल है तथा सभी प्रवृत्तियोंकी अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य काल एक समय और अज्ञपण्य  
काल अज्ञपण्य काल है । औदारिककाययोगी जीवोंके भी इसी प्रकार जानना बाहिये । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि यहाँ अपनी स्थिति बननी बाहिये । इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगी जीवोंके जानना  
बाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यह नोकयावोंकी अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य और अज्ञपण्य काल  
एक समय है । अज्ञपण्यजीवोंमें मिथ्यात्व सोलह कयाव और नौ नोकयावोंकी अज्ञपण्य स्थितिका  
भंग मनोबोगियोंके समान है । तथा अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य काल एक समय और अज्ञपण्य  
अज्ञपण्य काल है । सम्मत्त्व और सम्मत्तिध्यात्वकी एकेन्द्रियोंके समान भंग है । औदारिकमिमकाय-  
योगियोंमें बाहर एकेन्द्रिय अपर्याप्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सात  
नोकयावोंकी अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य काल अज्ञपण्य काल है । वैक्रियिकमिमकाययोगियोंमें  
मिथ्यात्व सम्मत्त्व सम्मत्तिध्यात्व सोलह कयाव और नौ नोकयावोंकी अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य  
और अज्ञपण्य काल एक समय तथा अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य और अज्ञपण्य काल अज्ञपण्य काल है ।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्मत्त्व और सम्मत्तिध्यात्वकी अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य काल  
एक समय है । इसी प्रकार आहारकमिमकाययोगियोंमें जानना बाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है  
कि इनके सम्मत्त्व और सम्मत्तिध्यात्वकी अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य और अज्ञपण्य काल अज्ञपण्य काल  
है । आहारकमिमकाययोगियोंमें वैक्रियिककाययोगियोंके समान भंग है । इसी प्रकार अज्ञपण्य  
सुप्तसंयमिकाययोगियों और यत्तवधिवत्तवत्त जीवोंके जानना बाहिये । अज्ञपण्यकाययोगियोंमें  
मिथ्यात्व, सोलह कयाव भंग और अज्ञपण्यकी अज्ञपण्य स्थिति और अज्ञपण्य स्थितिका अज्ञपण्य



जहण्णट्टिदि० अजहण्णट्टिदि० च जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । सम्मत्त-  
सम्माभि०-सत्तणोक० ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगसमओ, उक्क०  
तिण्णि समया । एवमणाहारि० ।

काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना ।

**विशेषार्थ**—पाचों मनोयोग और पाचों वचनयोगोंमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय तथा सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय योग परिवर्तनकी अपेक्षा कहा है । शेष कथन सुगम है । औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम चाईस हजार वर्ष है । अतः औदारिक काययोगमें सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है । शेष कथन मनोयोगके समान जानना । जो देव दो बार उपशम श्रेणी पर चढ़कर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होनेवाले भवके अन्तिम समयमें वैक्रियिककाययोगी होता है उसीके वैक्रियिक काययोगमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः वैक्रियिककाय-योगमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इसके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति उद्वेजनासे ही प्राप्त होगी क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि देव या नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके वैक्रियिक मिश्रकाययोगके कालमें ही कृतकृत्यवेदकका काल समाप्त हो जाता है । काययोगका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुण्डल परिवर्तन प्रमाण है अतः इसमें मिथ्यात्व आदि छव्वीस प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । काय-योगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल एकेन्द्रियोंके समान कहा इसका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण वन जाता है उसी प्रकार काय-योगमें भी जानना । औदारिकमिश्रकाययोगमें सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय न कहकर अन्तर्मुहूर्त बतलाया है उसका कारण यह है कि यह जघन्य स्थिति उस जीवके होती है जो कोई वादर एकेन्द्रिय जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ पचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्त काल तक अपने अपने प्रतिपक्ष बन्धक कालमें रहकर प्रतिपक्ष बन्धक कालके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके औदारिकमिश्रमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति होती है । औदारिकमिश्रका काल प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्ध कालसे बहुत अधिक है । जघन्य स्थितिसे पूर्व व पश्चात् काल अन्तर्मुहूर्त होता है अतः सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति वैक्रियिक मिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें सर्वार्थसिद्धिमें सम्भव है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति अपनी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालक अन्तिम समयमें प्रथम नरकमें सम्भव है तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति किसी भी समय सम्भव है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा जिस वैक्रियिकमिश्रकाययोगी दूमरे समयमें सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । शेष कथन सुगम है । आहारकमिश्रकाययोगमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी न तो उद्वेजना होती है और न क्षणा, अतः

॥ ५२७ वेदाणुवादेण इत्यिवेदपसु मिज्जत्त-अट्ठकसाय अट्ठणोकसाय चत्तारि संभल्लण० सह० अहण्णुक्क० एयस० । अम० अ० एगस०, उक्क० सगहिदी । एनं पवु स० । वावरि सह० अहण्णुक्क० अंतोसु० । सम्मत्त० सम्मामि० सह० अहण्णुक्क० एगस० । अम० अ० एयस०, उक्क० पणवण्णपस्सिदोवमाणि सादिरेयाणि । अपताणु० वत्तक्क० अ० अहण्णुक्क० एगस० । अज० अ० अंतोसु० एयसमयो वा, उक्क० सगहिदी ।

इन्के लक्ष दो प्रकृतियोंकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्ते कहा है । तथा इनकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल एक समय पर्याप्त योग होनेके पूर्ववर्ती समयमें होगा । अष्टादशकालयोगमें वैकल्पिक कार्ययोगके समान सब प्रकृतियोंकी स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । मूलमें अक्षपाय आदि और चित्तनी मार्गद्वारे गितार्थ हैं जन्में भी इसी प्रकार जानना चाहिये । कामैय अक्षपायका अजपम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है अतः इसमें मिथ्यात्व आदि जमीस प्रकृतियोंका अजपम्य और उत्कृष्ट काल एक प्रमाण बन जाता है । जो कृतकृत्यवेदके सम्बन्धित जीव कामैयकावयोगके रहते हुए वाकिक-सम्बन्धित हो जाता है उसके कामैयकावयोगमें सम्बन्धितकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल एक समय पत्था जाता है । तथा जिसमें कामैयकावयोगमें सम्बन्धितकी अजपम्य स्थिति होती है उसके लक्ष प्रकृतियोंकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है । सात लोकपायोंकी अजपम्य स्थिति कामैयकावयोगके दूसरे समयमें प्राप्त होती है अतः इनकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा कामैय अक्षपायमें लक्ष नौ प्रकृतियोंकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कामैयकाव योगके अजपम्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा बन जाता है । माहनीवकी सत्ताबाले जो जीव कामैयकावयोगी होते हैं वे ही अनन्तरक होत हैं अतः अनाहारकमें सब प्रकृतियोंकी अजपम्य और अजपम्य स्थितिका अक्ष कामैयकावयोगियोंके समान कहा ।

॥ ५२८ वरमार्गवाले अनुवादे जीवेदवालोंमें मिथ्यात्व, आठ काल आठ लोकपाय और चार संभल्लनकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजपम्य स्थितिका अजपम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार नृपुंसक-वक्षान जानना । किन्तु इतनी विवेचना है कि इसकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा सम्बन्धित और सम्बन्धितकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजपम्य स्थितिका अजपम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक पञ्चवन पत्थ है । अन्तर्मुहूर्तकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजपम्य स्थितिका अजपम्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जीवेदवाले जीवोंके मिथ्यात्वकी अजपम्य स्थिति मिथ्यात्वकी अपादके अन्तिम समयमें और आठ कपायोंकी अजपम्य स्थिति आठ कपायोंकी अपादके अन्तिम समयमें तथा आठ लोकपाय और चार संभल्लनकी अजपम्य स्थिति सवेदमागके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है अतः इनकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जीवेदी जीव जब नृपुंसक वेदके अन्तिम कावककाल पतन करता है तब उसके नृपुंसकवेदकी अजपम्य स्थिति होती है पर इसका उत्कीर्यकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसके नृपुंसकवेदकी अजपम्य स्थितिका अजपम्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । जो जीव वपञ्चमवेदीसे उत्तर कर एक समय तक जीववेदके लक्षके साथ रहा और

§ ५२८. पुरिस० मिच्छत्त-वारसक०-पुरिस० ज० जहणुक्क० एयस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त०-सम्मापि० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगस०, उक्क० वे छावट्टिसागरो० सादिरैयाणि । अट्ठणोक्क० ज० जहणुक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । अणंताणु० जह० जहणु० एयस० । अज० जह० अंतोमु० एयसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी ।

दूसरे समयमें मरकर देव हो गया उसके उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । स्त्रीवेदके साथ निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल सौ पत्यप्रयत्नत्व प्रमाण है । अतः यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसे यही काल लेना चाहिये । जो स्त्रीवेदी जीव दर्शनमोहनीय की क्षण कर रहा है उसके अपनी अपनी क्षणके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । इसी प्रकार विसंयोजनाकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय जानना । जो द्वितीयोपगम सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर एक समय तक स्त्रीवेदके साथ रहा और दूसरे समयमें देव हो गया उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । एक जीव स्त्रीवेदके रहते हुए निरन्तर वेदकसम्यक्त्वके साथ कुछ कम पचवन पत्य काल तक रह सकता है । अब यदि कोई जीव पचवन पत्यकी आयुके साथ देवी हो गया और वहाँ उसने वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्य पाया जाता है । जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यात्वमें जाकर अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यग्दृष्टि हो कर पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर लेता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । तथा जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला स्त्रीवेदी जीव जीवनके अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त होता है और दूसरे समयमें मर कर अन्यवेदी हो जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिकी उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५२८ पुरुषवेदवालोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो छायासठ सागर है । आठ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—पुरुषवेदवाले जीवोंके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति मिथ्यात्वकी क्षणके अन्तिम समयमें, आठ कपायोंकी जघन्य स्थिति आठ कपायोंकी क्षणके अन्तिम समयमें तथा चार संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति सवेदभागके अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियों-

§ ५२९ गनु स० मिच्छत अहक०-अहणोक्त०-पचारिसंश्रुत० ज० महण्युक्त०  
एवम० । अम० ज० एगस०, उक्त० अणतकात्मसंश्रुत्या पो०परिपक्षा । सम्पत्  
सम्पामि० बह० महण्युक्त० एगस० । अम० ज० एगस०, उक्त० वेचीस सागरो०  
सादिरैयाणि । अणतासु० पचक० बह० महण्युक्त० एगस० । अम० ज० अतोसु०

ही अथप्य स्थितिका अथप्य और अहक का एक समय कहा । कोई मनुष्य अपसममेयीसे  
छतर कर एक समयके लिये पुरुषवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर बह देव हो गया तो भी  
बह पुरुषवेदी ही रहता है अतः पुरुषवेदीमें उक्त प्रकृतियोंकी अथप्य स्थितिका अथप्य कहा  
एक समय नहीं बनता । किन्तु जो अपसममेयीसे छतर कर और पुरुषवेदी हो कर अन्तर्मुहूर्तमें  
अपसमवेदी पर बहकर उक्त प्रकृतियोंकी अथप्य स्थितिको प्राप्त कर लेता है उसके उक्त प्रकृतियोंकी  
अथप्य स्थितिका अथप्य कहा अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । इसी प्रकार आठ मोक्षार्थोंकी  
अथप्य स्थितिका अथप्य कहा अन्तर्मुहूर्त पटित कर लेना चाहिये । यद्यप्यमोहनीयकी अप्या  
करनेवाले जायके अन्तिम समयमें सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिध्यात्वकी अथप्य स्थिति प्राप्त होती  
है अतः इसके सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिध्यात्वकी अथप्य स्थितिका अथप्य और अहक का एक  
समय कहा । तथा सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिध्यात्वकी अथप्य स्थितिका अहक का जिस प्रकार  
चोपमें पटित करके बतलाया जाये है उसी प्रकार यहाँ पटित कर लेना चाहिये । जो बीच अपसममेयीसे  
छतर कर और पुरुषवेदी होकर अन्तर्मुहूर्तमें अणतमोहनीयकी अप्या कर देता है उसके सम्पत्त्व  
और सम्पत्तिमिध्यात्वकी अथप्य स्थितिका अथप्य कहा अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । या जिसने  
छोड़नाके बाद अन्तर्मुहूर्तमें साधिरैयसम्पत्तिनका प्राप्त किया है उसके भी अथप्य स्थितिका  
अथप्य कहा अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । अतः यहाँ यहाँ नहीं करना चाहिये किन्तु छोड़ना  
करता हुआ जो कोई बीच अपसम समयमें पुरुषवेदी हो गया उसके सम्पत्त्व व सम्पत्ति  
मिध्यात्वकी अथप्य स्थितिका अथप्य कहा एक समय प्राप्त होता है । पुरुषवेदी बीचके आठ  
मोक्षार्थोंकी अथप्य स्थिति अन्तिम काण्डके समय प्राप्त होती है और उसका उत्कीर्णक  
अन्तर्मुहूर्त है अतः यहाँ आठ मोक्षार्थोंकी अथप्य स्थितिका अथप्य और अहक का अन्तर्मुहूर्त  
कहा । जिसने छोड़नाके अन्तिम समयमें अणतलुब्धकी अथप्य स्थिति प्राप्त होता है अतः इसकी  
अथप्य स्थितिका अथप्य और अहक का एक समय कहा । चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावासा  
की पुरुषवेदी बीच मिध्यात्वमें गया और अन्तर्मुहूर्त में सम्पत्ति हो कर पुनः अन्तर्लु-  
ब्धकी विसर्गबन्ता कर लेता है उसके अन्तर्लुब्धकी अथप्य स्थितिका अथप्य कहा  
अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । तथा जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावासा अपसमसम्पत्ति साक्षात्पन्न  
प्राप्त हुआ और दूसरे समय में मरकर अणतवेदी होगया उस पुरुषवेदी अन्तर्लुब्धकी  
अथप्य स्थितिका अथप्य कहा एक समय भी पाया जाता है । चौबीसों में भी इस प्रकार  
एक समय कहा प्राप्त किया जा सकता है । सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिध्यात्वके जायकर दोष सब  
प्रकृतियोंकी अथप्य स्थितिका अहक का अपनी अहक स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५२९ नपुंसकवेदवाक्यों में मिध्यात्व आठ कथा आठ मोक्षार्थ और बार संश्रुतार्थ  
अथप्य स्थितिका अथप्य और अहक का एक समय तथा अथप्य स्थितिका अथप्य कहा  
एक समय और अहक अणत कहा है जो अणतयात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । सम्पत्त्व और  
सम्पत्तिमिध्यात्वकी अथप्य स्थितिका अथप्य और अहक का एक समय तथा अथप्य स्थितिका  
अथप्य का एक समय और अहक का साधिरैय वेचीस सागर है । अन्तर्लुब्धकी अनुपपत्ति  
अथप्य स्थितिका अथप्य और अहक का एक समय तथा अथप्य स्थितिका अथप्य कहा

§ ५२८. पुरिस० मिच्छन्त-वारसक०-पुरिस० ज० जहणुक्क० एयस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्पत्त०-सम्मामि० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगस०, उक्क० वे छावट्टिसागरो० सादिरेयाणि । अट्ठणोक० ज० जहणुक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । अणंताणु० जह० जहणु० एयस० । अज० जह० अंतोमु० एयसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी ।

दूसरे समयमें मरकर देव हो गया उसके उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । स्त्रीवेदके साथ निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल सौ पत्युपत्यक्त्व प्रमाण है । अतः यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसे यही काल लेना चाहिये । जो स्त्रीवेदी जीव दर्शनमोहनीय की कृपणा कर रहा है उसके अपनी अपनी कृपणाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । इसी प्रकार विसयोजनाकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय जानना । जो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर एक समय तक स्त्रीवेदके साथ रहा और दूसरे समयमें देव हो गया उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । एक जीव स्त्रीवेदके रहते हुए निरन्तर वेदकसम्यक्त्वके साथ कुछ कम पचवन पत्यु काल तक रह सकता है । अब यदि कोई जीव पचवन पत्युकी आयुके साथ देवी हो गया और वहाँ उसने वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पत्यु पाया जाता है । जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यात्वमें जाकर अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यग्दृष्टि हो कर पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना कर लेता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । तथा जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला स्त्रीवेदी जीव जीवनके अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त होता है और दूसरे समयमें मर कर अन्यवेदी हो जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५२८ पुरुषवेदवालोंने मिथ्यात्व, वारह कपाय और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो छायासठ सागर है । आठ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—पुरुषवेदवाले जीवोंके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति मिथ्यात्वकी कृपणाके अन्तिम समयमें, आठ कपायोंकी जघन्य स्थिति आठ कपायोंकी कृपणाके अन्तिम समयमें तथा चार संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति सवेदभागके अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियों-

१५३१ गाणाजुसलेण यदि-मुदअण्णा० मिच्छत्त-सोत्तसक० मय-दुग्गंजा० ज०  
 नह० एयसममो, उक्क० अतोमु० । अज० जह० अतोमु०, उक्क० असलेज्जा सोगा ।  
 सत्तणोक्क० नह० जहएणुक्क० एगस० । अज० नह० अतोमु० उक्क० अण्णतफात्तमसं पो०  
 परि० । सम्मत्त-सम्मापि० नह० जहएणुक्क० एगस० । अज० ज० अतोमु०, उक्क०  
 पत्तिओ० असंसे० मागो । बिहंग० मिच्छत्त-सोत्तसक० णवणोक्क० जह० जहएणुक्क०  
 एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सेचीसं सागरो० वेसुणाणि । सम्मत्त-सम्मापि०  
 एदियमगो ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार मनोयोगी जीवके मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंकी अपन्य और  
 अज्ञापन्य स्थितिका काल घटित करके बरखा आते हैं वही प्रकार चारों कयायवास जीवोंके  
 घटित कर लेना चाहिये । जो आधादि कयायवास जीव आठ कयाय और नौ नोकयायोंकी  
 अपन्य कर रहे हैं उनके एक प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति होती है अतः इनके एक  
 प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और एकत्र काल जोपके समान रहा । जोषकयायोंके  
 जोषवेदक कालके अन्तिम समयमें चार संवत्सनोंकी, मानकयायोंके मानवेदक कालके अन्तिम  
 समयमें तीन संवत्सनोंकी, मायाकयायवासके मायावेदक कालके अन्तिम समयमें दो संवत्सनोंकी  
 और लोमकयायवासके जीवके लोमकयायवेदक कालके अन्तिम समयमें लोमसंवत्सनकी अपन्य स्थिति  
 होती है । तथा मातादि कयायवासके जीवोंके छेप कयायोंकी अपन्य स्थिति अपनी-अपनी अपन्यके  
 अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके चार संवत्सनोंकी अपन्य स्थितिअ अपन्य और एकत्र  
 काल जोषके समान एक समय रहा । तथा जोषादि कयायवासके जीवोंका अपन्य और एकत्र  
 काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके एक सब प्रकृतियोंकी अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य और एकत्र  
 काल अन्तर्मुहूर्त रहा ।

१५३१ ज्ञान मत्तोयाके अनुवाहसे मत्तजानी और भुताजानी जीवोंमें मिथ्यात्व सोलह  
 कयाय मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थितिका अपन्य काल एक समय और एकत्र काल अन्त-  
 र्मुहूर्त है । तथा अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य काल अन्तर्मुहूर्त और एकत्र काल असंख्यात जोष-  
 प्रमास्य है । सात नोकयायोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और एकत्र काल एक समय तथा अज्ञापन्य  
 स्थितिका अपन्य काल अन्तर्मुहूर्त और एकत्र अमत्त काल इ जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन  
 प्रमास्य है । सम्मत्त और सम्मगिमिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिका अपन्य और एकत्र काल एक समय  
 तथा अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य काल अन्तर्मुहूर्त और एकत्र काल पन्चोपमक असंख्यातमें  
 मागप्रमास्य है । विमंगजानिधोमें मिथ्यात्व, सासह कयाय और नौ गौ पायोंकी अपन्य स्थितिअ  
 अपन्य और एकत्र काल एक समय तथा अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य काल एक समय और एकत्र  
 काल कुछ कम होतीस सागर है । सम्मत्त और सम्मगिमिथ्यात्वका योग एकेन्द्रियोंके समान है ।

विशेषार्थ—मत्तजान और भुताजान एकेन्द्रियोंसे लेकर संधी एकेन्द्रिय तक सब  
 मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्पत्ति जीवोंके होत हैं । किन्तु यहाँ अपन्य स्थितिका प्रकरण है  
 अतः मुख्यतः एकेन्द्रियोंकी स्थितिका ग्रहण किया है । एकेन्द्रियोंमें भी सबसे कम बाहर एकेन्द्रियों  
 की अपन्य स्थिति होती है । जिसका अपन्य काल एक समय और एकत्र काल अन्तर्मुहूर्त है,  
 अतः मत्तजानी और भुताजानी जीवोंके मिथ्यात्व सोलह कयाय मय और जुगुप्साकी अपन्य  
 स्थितिका अपन्य काल एक समय और एकत्र काल अन्तर्मुहूर्त रहा । मिथ्यात्व जुगुप्सानका  
 अपन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके एक प्रकृतियोंकी अज्ञापन्य स्थितिका अपन्य काल

एगसमओ वा, उक्क० अणंतकालमसखेज्जा पो०परियट्ठा । इत्थि० जह० जहणुक्क० अंतोमु० । अज० जह० एगसमओ, उक्क० अणंत०कालमसं०पो०परि० । अवगदवेद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभि०-वारसक०-णवणोक० जह० ओघ । अज० जह० [ एगस०, ] उक्क० अंतोमु० ।

§ ५३०. कसायाणुवादेण सञ्चकसाईसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभि०-अणताणु०-चउक्क० मणजोगिभंगो । वारसक०-णवणोक० ज० ओघं । अज० जहणुक्क० अंतोमु० ।

अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अपगत-वेदवालोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ—**नरकमें जीव सम्यग्दर्शनके साथ कुछ कम तेतीस सागर काल तक रह सकता है । अब यदि कोई अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ताशाला नपुसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ कुछ कम तेतीस सागर काल तक सम्यग्दर्शनके साथ रहा तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर पाया जाता है । तथा इनके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि नपुसकवेदका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण है । यहाँ सब प्रकृतियोंकी जघन्य आदि स्थितियोंका शेष काल स्त्रीवेदियोंके समान घटित कर लेना चाहिये । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका काल कहते समय वह नपुसकवेदीके स्त्रीवेदके अन्तिम काण्ड-कथातेके समय प्राप्त होता है जिसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । जो अपगतवेदी जीव उपशमश्रेणी से उतर कर अवैदभागके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है अतः इसके उक्त तीन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा । जो अपगतवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर अपगतवेदके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके स्त्रीवेद, नपुसकवेद और आठ कपायोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा । तथा जो अपगतवेदी जीव छह नोकपायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें तथा पुरुषवेद और चार सञ्चलन की क्षणान्तके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान पाया जाता है । अपगतवेदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः अपगतवेदमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है ।

§ ५३० कपाय मार्गणके अनुवादसे सब कपायवालोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मनोयोगियोंके समान है । वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

५५३१ पाणाणवत्तेण मदि-मुदअण्णा० मिच्छत्त-सोमसक० भय-दुगुंझा० अ०  
 नह० एयसममो, उक्क० अतोमु० । अज० नह० अतोमु०, उक्क० अससेज्जा सोगा ।  
 सत्तणोक० नह० अहण्णुक० एगस० । अज० नह० अतोमु०, उक्क० अणत्तफासमसं० पो०  
 परि० । सम्मत्त-सम्मापि० नह० अहण्णुक० एगस० । अज० अ० अतोमु०, उक्क०  
 पस्सिदो० असंसं० भगो । विहंग० मिच्छत्त-सोससक० जवणोक० नह० अहण्णुक०  
 एगस० । अज० अ० एगस०, उक्क० तेचीसं सागरो० देयणाणि । सम्मत्त-सम्मापि०  
 एहंदिपमंगो ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार मनोबोगी बीबके मिष्यात्वादि सात प्रकृतियोंकी ब्रह्म्य और  
 अब्रह्म्य स्थितिका काल पठित करके बतला जाये हैं वही प्रकार चारों कथाबाले बीबके  
 पठित कर लेना चाहिये । जो कथादि कथाबाले बीब आठ कथाय और नौ नोकथायोंकी  
 कथाय कर रहे हैं उनके उक्त प्रकृतियोंकी ब्रह्म्य स्थिति होती है अतः इनके उक्त  
 प्रकृतियोंकी ब्रह्म्य स्थितिका ब्रह्म्य और उक्त काल ओषके समान कहा । कोषक्याबीके  
 कोषवेदक कालके अन्तिम समयमें चार संवत्सनोंकी, मानक्यापीके मानवेदक कालके अन्तिम  
 समयमें तीन संवत्सनोंकी, मायाक्यापयबालेके मायावेदककालके अन्तिम समयमें दो संवत्सनोंकी  
 और छोमक्यापयबाले बीबके छोमक्यापयवेदककालके अन्तिम समयमें छोमसंवत्सनोंकी ब्रह्म्य स्थिति  
 होती है । तथा मानादि कथाबाले बीबके छेप कथायोंकी ब्रह्म्य स्थिति अपनी-अपनी कथायके  
 अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके चार संवत्सनोंकी ब्रह्म्य स्थितिका ब्रह्म्य और उक्त  
 काल ओषके समान एक समय कहा । तथा कोषादि कथाबाले बीबके ब्रह्म्य और उक्त  
 काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके उक्त सब प्रकृतियोंकी अब्रह्म्य स्थितिका ब्रह्म्य और उक्त  
 काल अन्तर्मुहूर्त कहा ।

५५३१ ज्ञान मर्गाणाके अनुवाहसे मत्स्यजानी और भुताजानी बीबमें मिष्यात्वा सोलह  
 कथाय मय और सुगुप्ताकी ब्रह्म्य स्थितिका ब्रह्म्य काल एक समय और उक्त काल अन्त-  
 र्मुहूर्त है । तथा अब्रह्म्य स्थितिका ब्रह्म्य काल अन्तर्मुहूर्त और उक्त काल असंख्यात लोक-  
 प्रमाण है । सात नोकथायोंकी ब्रह्म्य स्थितिका ब्रह्म्य और उक्त काल एक समय तथा अब्रह्म्य  
 स्थितिका ब्रह्म्य काल अन्तर्मुहूर्त और उक्त अन्तर्मुहूर्त काल इ जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन  
 प्रमाण है । सम्पत्त्व और सम्मगिमिष्यात्वकी ब्रह्म्य स्थितिका ब्रह्म्य और उक्त काल एक समय  
 तथा अब्रह्म्य स्थितिका ब्रह्म्य काल अन्तर्मुहूर्त और उक्त काल पस्वोपमके असंख्यातर्षे  
 मागप्रमाण है । विमंगजानिबोंमें मिष्यात्वा सोलह कथाय और नौ नौःपायोंकी ब्रह्म्य स्थितिका  
 ब्रह्म्य और उक्त काल एक समय तथा अब्रह्म्य स्थितिका ब्रह्म्य काल एक समय और उक्त  
 काल कुछ कम तेरीस सागर है । सम्पत्त्व और सम्मगिमिष्यात्वका रस एकेन्द्रियके प्रधान है ।

विशेषार्थ—मत्स्यजान और भुताजान एकेन्द्रियोंसे लेकर खड़ी एकेन्द्रिय तक सब  
 मिष्यावृद्धि और साक्षात्तसम्पत्त्व बीबके होते हैं । किन्तु चारों ब्रह्म्य स्थितिका प्रकट है  
 अतः मुख्यतः एकेन्द्रियोंकी स्थितिका ग्रहण किया है । एकत्रियोंमें भी सबसे कम चार एकेन्द्रियों  
 की ब्रह्म्य स्थिति होती है । जिसका ब्रह्म्य काल एक समय और उक्त काल अन्तर्मुहूर्त है,  
 अतः मत्स्यजानी और भुताजानी बीबके मिष्यात्वा सोलह कथाय, मय और सुगुप्ताकी ब्रह्म्य  
 स्थितिका ब्रह्म्य काल एक समय और उक्त काल अन्तर्मुहूर्त कहा । मिष्यात्वा सुगुप्ताका  
 ब्रह्म्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अब्रह्म्य स्थितिका ब्रह्म्य काल



६५३२. आभिणि०-सुद०-ओहि० उक्कस्सभंगो । एवरि छण्णोरु० जह० जहण्णुक० अंतोमु० । एवं मंजद० सामाढय-व्हेदो०-परिहार०-संजदासजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खड्य०-वेदय० । एवरि खवगसेहिम्मि छण्णोरु० ज० ओवं । मणपज्ज० अट्ठणोक० पुरिस०भंगो । सेम० उक्कस्सभंगो ।

अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा सूक्ष्म एगान्द्रिय पर्यायमें निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके मत्तज्ञान और श्रुताज्ञानकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थिति होती है अतः मत्तज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा । जो वादर एकेन्द्रिय जीव जघन्य स्थितिके वन्धकालमें मरकर पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके अपनी प्रतिपत्त प्रकृतिके वन्धकालके अन्तिम समयमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः मत्तज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अब कोई जीव इतने कालतक निरन्तर एकेन्द्रिय पर्यायमें रहा और अन्तमें वादर एकेन्द्रिय हुआ तथा वहाँ सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका वन्ध व सत्त्व करके पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ अपनी प्रतिपत्त प्रकृतिके वन्धकालके अन्तमें सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिकी प्राप्त हुआ । इस प्रकार इस जीवके उक्त काल तक सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः मत्तज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवके सात नोकपायों की अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्बलनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके एक दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा मिथ्यात्वमें उक्त दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही पाया जाता है, अतः इनके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । जो उपरिम प्रवेयकका जीव अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त हो जाता है उसके विभंगज्ञानके रहते हुए मिथ्यात्व आदि छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः विभंगज्ञानीके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा उपरिम प्रवेयकके देवकी छोड़ कर अन्य देव तथा नारकी जीवके अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त होने पर विभंगज्ञानमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । विभंग ज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल एक प्रमाण कहा । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जिस प्रकार एकेन्द्रियोंके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ५३१ आभिनिबोधिकज्ञानी, अतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें जघन्य स्थितिका भंग उत्कृष्ट स्थितिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सयत, सामायिकसयत, व्हेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, संयतासयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि और वेदक-सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि क्षपकश्रेणीमें छह नोकपायोंका जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है । मनःपर्ययज्ञानियोंमें आठ नोकपायोंका भंग पुरुषवेदके समान है । शेष प्रकृतियोंका भग अपनी उत्कृष्ट स्थितिके समान है ।

१५३३ असंयत० मिथ्यात्व० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अज०  
केवचिरं ? अणादिमपज्जवसिदो, अणादिसपज्जवसिदो सादिसपज्जव । जो सो  
सादिसपज्जवसिदो तस्स इमो णिहेसो—जह० अतोमु०, उक्क० उक्कपोग्गसपरियह ।  
सम्मव०-सम्मामि० जह० जहणुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगस० अतोमु०,  
उक्क० संघीसं साग० सादिरयाणि । अणताणु० पठक्क० ओषं । वारसक०  
पनण्येक० पदि० पंगो । अयक्खु० ओषं ।

विशेषार्थ—उपक्रमेणामिं जब जह भोक्तायोका अन्तिम क्षणक प्राप्त होता है तब उनकी  
जपन्य स्थिति होती है और इसका काल अन्तर्मुद्रित है, अतः आभिनविशेषिकाली मुद्रितानी और  
अवधिजानी कीलकि जह भोक्तायोकी जपन्य स्थितिका जपन्य और उक्कस काल अन्तर्मुद्रित बहा ।  
छेप कवन सुगम है । इसी प्रकार संयत आवि मार्ग्याओमें जानना । इसका यह तात्पर्य है कि  
इन मार्ग्याओमें जिस प्रकार उक्कस और अनुक्कस स्थितिका काल बह जाये हैं वही प्रकार यहाँ  
जपन्य और अजपन्य स्थितिका काल बहना चाहिये, क्योंकि इनमें परस्पर कालकी अपेक्षा  
समानता देखी जाती है । किन्तु इनमेंसे जिन मार्ग्याओमें उपक्रमेणी सम्भव हो वहीमें जह  
भोक्तायोकी जपन्य स्थितिका जपन्य और उक्कस काल ओषके समान जानना चाहिये छेपमें  
मही । मतःपरमैयज्जान पुरुषवेदी बीबक ही होता है अतः इनके आठ भोक्तायोका जपन्य और  
अजपन्य स्थितिका जपन्य और उक्कस काल पुरुषविशेषके समान बहा । छेप सुगम है ।

१५३३ असंयतमें मिथ्यात्वकी जपन्य स्थितिका जपन्य और उक्कस काल एक समय  
है । तथा अजपन्य स्थितिका कितना काल है ? अनादि-अनन्त, अनादि-साम्त और सादि-साम्त  
इस प्रकार तीन तरहका काल है । जन्में वा सादि-साम्त काल है उसका यह कवन है । वह  
जपन्यसे अन्तर्मुद्रित और उक्कससे जपाने पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । सम्भव और सम्प-  
मिथ्यात्वकी जपन्य स्थितिका जपन्य और उक्कस काल एक समय तथा अजपन्य स्थितिका  
जपन्य काल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुद्रित है और उक्कस काल साधिक वहीस सागर है ।  
अनन्तपुद्गली पटुक्कका काल ओषके समान है । वारह जपान और नौ भोक्तायोका काल  
मत्स्यजानिबोके समान है । अयक्खुइनमें ओषके समान है ।

विशेषार्थ—जो असंयत मिथ्यात्वकी जपना कर रहा है उसके मिथ्यात्वकी जपनाके  
अन्तिम समयमें जपन्य स्थिति होती है अतः असंयतके मिथ्यात्वकी जपन्य स्थितिका जपन्य  
और उक्कस काल एक समय बहा । मूलमें असंयतके मिथ्यात्वकी अजपन्य स्थितिक अनादि  
अनन्त अनादिसाम्त और सादिसाम्त ये तीन भेग बह हैं सा वास्तवमें ये असंयतत्वक साथ  
मिथ्यात्वकी अजपन्य स्थितिके तीन भेग हैं अतः इसके सम्बन्धसे मिथ्यात्वकी अजपन्य  
स्थितिके तीन भागोंमें बाँट दिया है क्योंकि ऐसा दिख बिना असंयतके मिथ्यात्वकी  
अजपन्य स्थितिका जपन्य और उक्कस काल पतलाना कठिन था । इनमेंसे सादि-साम्त  
असंयतका जपन्य काल अन्तर्मुद्रित है और उक्कस काल पुद्गल काल अर्थात्पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है,  
अतः असंयतके मिथ्यात्वकी अजपन्य स्थितिका जपन्य और उक्कस काल एक समय बहा ।  
असंयतके अपनी अपनी जपनाके अन्तिम समयमें सम्भव और सम्पमिथ्यात्वकी जपन्य  
स्थिति होती है तथा सम्पमिथ्यात्वकी तल्लानाके अन्तिम समयमें भी जपन्य स्थिति होती है,  
अतः इसके उक्त वानों प्रकृतियोकी जपन्य स्थितिका जपन्य और उक्कस काल एक समय बहा ।  
वह कोई संयत इन्द्रियवेदके कालमें वा समय होत रहन पर असंयत का जाता है तब

§ ५३४ लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउ० मिच्छत्त-वारसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । सत्तणोक्क० जह० जहएणुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । अणंताणु०चउक्क० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी ।

§ ५३५ तेउ-पम्म० मिच्छत्त सोलसक०-एवणोक्क० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु० अणंताणु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त०-सम्मामि० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । सुक्क०

उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा असयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । कोई जीव असयतभावके रहते हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके साथ अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल तक ही रह सकता है अतः असयतके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । जो असयत अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना कर रहा है उसके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति होती है अतः असयतके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा । इसी प्रकार ओघमें बताये अनुसार असयतके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका काल भी घटित कर लेना चाहिये । तथा असयत जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल मत्यज्ञानियोंके समान वन जाता है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल मत्यज्ञानियोंके समान कहा । छद्मस्थ जीवोंके अचक्षुदर्शन निरन्तर रहता है अतः अचक्षुदर्शनमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान कहा ।

§ ५३४ लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें मिध्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

§ ५३५ पीत और पद्म लेश्यामें मिध्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । शुक्ल-

मकस्सर्ममो । गवरि अम्मोक्कं अहं अहण्णुनकं अतोमुं । अमयं मदिंमंगो ।  
वरि सम्मत्त-सम्मातिं णत्थि ।

सूर्याम ऊर्ध्व स्थितिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वह नोकियाओंकी अपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश और उर्ध्व काल अन्तर्मुहूर्त है । अमय्योमें मत्स्यानियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्प्रसरण और सम्प्रगमिण्यात्वा ये दो प्रकृतियाँ नहीं हैं ।

**विशेषार्थ—**एकेश्वरियोंके कृष्णादि तीनों लेश्यामें सम्भव हैं अतः जिस प्रकार एकेश्वरियोंके मेध्यात्व वारह कपाय मय और जुगुप्साकी अपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश काल एक समय और उर्ध्व काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश काल एक समय बतला भावे हैं उसी प्रकार कृष्णादि तीन लेश्याओंमें पण्डित कर लेना चाहिये । किन्तु इनके अजपभ्रंश स्थितिके उर्ध्व कालमें विशेषता है । बात यह है कि कृष्णलेश्याका उर्ध्व काल साधिक तृतीया सागर, नील लेश्याका उर्ध्व काल साधिक सत्रह सागर और कापोत लेश्याका उर्ध्व काल साधिक सात सागर हैं, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजपभ्रंश स्थितिका उर्ध्व काल उक्त प्रमाण ही प्राप्त होगा । उक्त तीनों लेश्याओंमेंसे कोई एक लेश्यावाला जो वारर एकेश्वर और अजपभ्रंश स्थितिके साथ पंचेश्वरोंमें अग्रज होता है उसके प्रत्यक्ष प्रकृतियोंके अजपभ्रंशके अन्तर्में सात नोकियाओंकी अपभ्रंश स्थिति होती है अतः कृष्णादि तीनों लेश्याओंमें सात नोकियाओंकी अपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश और उर्ध्व काल एक समय कहा । अब यदि उक्त जीव हमारे समयमें अजपभ्रंश स्थितिके साथ रहा और तीसरे समयमें इसके विचक्षण लेश्या बदल गइ तो उक्त लेश्याओंमें सात नोकियाओंकी अपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश काल एक समय प्राप्त होता है इस अपेक्षासे उक्त तीन लेश्याओंमें सात नोकियाओंकी अपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश काल एक समय कहा । तथा उर्ध्व काल स्पष्ट ही है । कृष्ण और नील लेश्यामें सम्प्रसरण और सम्प्रगमिण्यात्वाकी वृत्तलनाकी अपेक्षा तथा कापोत लेश्यामें सम्प्रसरणकी वृत्तलनाके सम्प्रसरणकी अपेक्षा और सम्प्रगमिण्यात्वाकी वृत्तलनाकी अपेक्षा अपभ्रंश स्थिति प्राप्त होता है जिसका काल एक समय है, अतः उक्त तीनों लेश्याओंमें सम्प्रसरण और सम्प्रगमिण्यात्वाकी अपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश और उर्ध्व काल एक समय कहा । जिस जीवके सम्प्रसरण और सम्प्रगमिण्यात्वाकी वृत्तलनामें दो समय होय रहने पर कृष्णादि तीन लेश्याएँ प्राप्त होती हैं इसके कृष्णादि तीन लेश्याओंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजपभ्रंश स्थिति एक समय उक्त पाई जाती है, अतः इसके उक्त दो प्रकृतियोंकी अजपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश काल एक समय कहा । किन्तु इतनी विशेषता है कि कापोत लेश्यामें एक समय उक्त सम्प्रसरणकी अपभ्रंश स्थिति वृत्तलना के एकेश्वरके दो अन्तिम समयकी अपेक्षा पण्डित करने चाहिये । तत्पर्ये यह है कि सम्प्रसरणकी अपभ्रंशके दो अन्तिम समयमें कापोत लेश्या प्राप्त करावे और इस प्रकार कापोत लेश्यामें सम्प्रसरणकी अपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश काल एक समय कहे । तथा उर्ध्व काल स्पष्ट ही है । ब्रह्मदेवनाके अन्तिम समयमें अन्तानुबन्धीकी अपभ्रंश स्थिति प्राप्त होती है वा तीनों लेश्याओंमें सम्भव है अतः इनके अन्तानुबन्धीकी अपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश और उर्ध्व काल एक समय कहा । तथा उक्त लेश्याओंके अपभ्रंश और उर्ध्व कालकी अपेक्षा इनमें अन्तानुबन्धीकी अपभ्रंश स्थितिका अपभ्रंश काल अन्तर्मुहूर्त और उर्ध्व काल अपनी अपनी उर्ध्व स्थितिप्रमाण कहा । जो दार्ष्टिकसम्यग्दर्श और अग्रजमण्डलीसे उत्तर कर नील और पद्मलेश्याका प्राप्त हुआ है यह यदि तदनन्तर दुष्कलेश्याका प्राप्त हुआ अजपभ्रंशपर बड़ ता इसके पीत और पद्मलेश्याके अन्तिम समयमें वारह कपाय और नौ नोकियाओंकी अपभ्रंश स्थिति होती है ।

§ ५३६. उवसम० मिच्छत्त-सोलसक०-एवणोक० जह० जहणुक्क० एगस० ।  
 अज० जहणुक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहणुक्क० एगस० । अज०  
 जहणुक्क० अंतोमु० । एवं सम्मामि० । सासण० सव्वपयदीणं जह० जहणुक्क०  
 एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० छावलियाओ । मिच्छादिही० मदि० भगो ।  
 असण्णि० तिरिक्खोषं । एवरि अणताणु० चउक्क०-सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो ।

तथा इन दोनों लेश्यावाले जीवोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति इनकी क्षपणाके अन्तिम समयमें और अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति अनन्तानुबन्धीकी विसयोजनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । यहा इतना विशेष जानना कि उक्त लेश्याओंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाकी अपेक्षा भी प्राप्त होती है । तथा उक्त लेश्याओंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इनमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा । किन्तु चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव पीत और पद्मलेश्याके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो सकता है अतः इनमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी कहा । जो जीव कृतकृत्यवेदकके उपान्त्य समयमें और उद्वेलनाके उपान्त्य समयमें पीत और पद्मलेश्याको प्राप्त होते हैं उनके क्रमसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः उक्त लेश्याओंमें उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । शुक्ल लेश्यामें छह नोकषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय उनकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जो अन्तर्मुहूर्त काल तक रहती है, अतः इसके छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५३६ उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलीप्रमाण है । मिथ्यादृष्टियोंमें मत्यज्ञानियोंके समान भग है । असंक्षियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंक्षियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग एकेन्द्रियोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—जो उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीसे उतर कर अनन्तर वेदकसम्यग्दृष्टि होनेवाला है उसके अन्तिम समयमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः उपशम सम्यग्दृष्टिके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा उपशमसम्यक्त्वके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । किन्तु इतनी विशेषता है कि उपशमश्रेणीमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः जो प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि जीव तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति होती है । या जिन आचार्योंके मतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानु-

५५३७ आहारीसु मिश्रदत्त-सम्पत्त-सम्पामि-वारसक-गवणोक-वह-  
भोष । अम- वह- सुशामवगाहणं तिममऊण, उरक- सगहिदी । सम्पत्त-  
सम्पामि- पर्विदियभंगो । अणताणु-चतक- जह- अहणुक्क- एगस- । अम-  
जह- मंतोमु- एगसमयो वा, चक- सगहिदी ।

एवं आहारीसुगमो समसो ।

पन्थी अनुष्ठी की विसंयोगना करता है उसके विसंयोगनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुष्ठी-  
की अपन्य स्थिति होती है । जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ताबला सम्पत्तिप्यात्व गुणस्थान-  
को प्राप्त होता है उसके अन्तिम समयमें मिप्यात्व, बारह कपाय और नौ नाकपायोंकी  
अपन्य स्थिति होती है, अतः सम्पत्तिप्यात्वकी बीसके एक प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति-  
का अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । सम्पत्त और सम्पत्तिप्यात्वकी पृथक्त्व  
सागर स्थितिकी सत्ताबला वा मिप्यात्वकी बीस सम्पत्तिप्यात्वको प्राप्त होता है उसके अन्तिम  
समयमें सम्पत्त और सम्पत्तिप्यात्वकी अपन्य स्थिति होती है अतः सम्पत्तिप्यात्वके  
इन्की अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । अनन्तानुष्ठीकी अपन्य  
स्थिति अन्तर्गत प्रकृतियोंकी सत्ताबला सम्पत्तिप्यात्वके अन्तिम समयमें होती है, अतः इसके  
अनन्तानुष्ठीकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इनके सब  
प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्गत होता है यह स्पष्ट ही  
है । वा अपन्यस्थितिसे गिरकर सासादनम्यको प्राप्त होता है इसके सासादनके अन्तिम समयमें  
सब प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति होती है, अतः सासादनम्यके सब प्रकृतियोंकी  
अपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा सामान्य गुण  
स्थानके अपन्य और उत्कृष्ट कालकी अपन्य सब प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य काल  
एक समय और उत्कृष्ट काल वह आपक्षिप्रमात्र कहा । मिप्यात्वकी सब प्रकृतियोंकी  
अपन्य और अपन्य स्थितिका काल मत्तकानिषोंके समान होता है यह स्पष्ट ही है । अन्तर्ग-  
तिर्यक्त ही होता है अतः सामान्य तिर्यक्तोंके समान अन्तर्गतिर्यक्तोंके सब प्रकृतियोंकी अपन्य और  
अपन्य स्थितिका काल आगना आदिय । किन्तु सामान्य तिर्यक्तोंमें सही तिर्यक्त भी सम्मिश्रित  
हैं और इनके अनन्तानुष्ठीकी विसंयोगना भी होती है तथा उनमें अन्तर्गतत्ववत्क सम्पत्तिप्या-  
त्त भी उत्पन्न होता है अतः अन्तर्गतिर्यक्तोंमें सम्पत्तिप्यात्व सहित एक वह प्रकृतियोंकी अपन्य और  
अपन्य स्थिति सामान्य तिर्यक्तोंके समान नहीं बन सकती है, फिर भी यहाँ अपन्य और  
अपन्य स्थितिके कालकी सुषयता है वा यथावाग्य यरेन्द्रियोंके सम्मिश्र दे, अतः अन्तर्गतिर्यक्त एक  
प्रकृतियोंके अपन्य और अपन्य स्थितिका काल अन्तर्गतिर्यक्तोंके समान कहा ।

५५३८ आहारीसु मिप्यात्व सम्पत्त सम्पत्तिप्यात्व बारह कपाय और नौ नाकपायों  
की अपन्य स्थितिका काल आपक्षिप्रमात्र कहा । तथा अपन्य स्थितिका अपन्य काल तीन समय  
काल सुशामवगाहणमात्र और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिमात्र है । सम्पत्त और सम्पत्तिप्यात्व  
की अपन्य स्थितिका मंग पंथियोंके समान है । अनन्तानुष्ठी अनुष्ठीकी अपन्य स्थितिका  
अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अपन्य स्थितिका अपन्य काल अन्तर्गतिर्यक्त या एक समय  
और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिमात्र है ।

विशेषार्थ—आपक्षि मिप्यात्व, सम्पत्त, सम्पत्तिप्यात्व, बारह कपाय और नौ नाकपायोंकी

❀ अंतरं । मिच्छुत्त-सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिगं अंतरं जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ५३८. कुदो ? भण्णिकम्ममाणमुक्कस्सट्ठिदिं वंधमाणो जीवो अणुक्कस्सवधओ होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो एदेसिं कम्ममाणमुक्कस्सट्ठिदिवंधुवलंभादो । दोण्हमुक्कस्सट्ठिदाणं विच्चालिअणुक्कस्सट्ठिदिवंधकालो तासिमंतरं ति भण्णिदं होदि । एगसमओ जहणंंतरं किण्ण होदि ? ण, उक्कस्सट्ठिदिं वधिय पडिहग्गस्स पुणो अंतोमुहुत्तेण विणा उक्कस्सट्ठिदिवंधामंभवादो ।

जघन्य स्थिति आहारकोंके ही सम्भव है, अतः आहारकोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका काल ओषधके समान कहा । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति अनाहारकोंके भी होती है यहाँ इतना विशेष जानना । आहारकोंका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभवप्रमाण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अगुलके असख्यातासख्यात अवसर्पणी उत्तमर्पणी कान प्रमाण है, अतः इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर उक्त मत्र प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम खुदाभवप्रमाण प्रमाण आर उत्कृष्ट काल अगुलके असख्यातवे भागप्रमाण कहा । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जिस प्रकार पंचेन्द्रियोंके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार आहारकोंके जानना, क्योंकि उसमे इसमें कोई विशेषता नहीं है । आहारक अवस्थामें ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हाती है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । अनन्तानुबन्धीका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव जीवनके अन्तिम समयमें सासादन हुआ और दूसरे समयमें मरकर अनाहारक हा गया ता उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थिति एक समय भी पाई जायगी, अतः आहारक के अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी कहा । तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल आहारकके उत्कृष्ट काल प्रमाण होता है यह स्पष्ट है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब अन्तरका प्रकरण है । उसमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५३८ शंका—उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

समाधान—क्योंकि चूर्णिसूत्रमें कहे हुए कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला जो जीव अनुत्कृष्ट स्थितिका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध करता है उसके अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः पूर्वोक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध पाया जाता है । इस कथनका यह तात्पर्य है कि दोनों उत्कृष्ट स्थितियोंके मध्यमें जो अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन्धकाल है वह उन दोनों उत्कृष्ट स्थितियोंका अन्तरकाल है ।

शंका—जघन्य अन्तर एक समय क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर उससे द्युत हुए जीवके पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके विना उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं हो सकता, अतः जघन्य अन्तर एक समय नहीं होता ।

ॐ उक्तस्समसंखेजा योगक्षपरियट्टा ।

§ ५३९ कृदो? उक्तस्सहिदि बंधिय पडिहंगा होदण अणुक्कस्सहिदि बंधमाणा ताव अण्णदि जाव अणुक्कस्सहिदिबधमाणा उक्तस्सियाए परिमसममा सि । तदो एइ दिएसुबधजिय असस्सजाणि पागमरियट्टाणि तत्थ परिममिय पुणो वंधिदिय तसाअणपसु उण्णजिय पज्जसयदो होदण उक्तस्सदाइ गंतूण उक्तस्सहिदीए पवट्टाए आवलियाए असंस्सज्जिमागपमाणयोगक्षपरियट्टाणमंतरणुबलभादो ।

ॐ एवं स्वय्योक्तसापारण । एवमरि जहयणेण पगसममो ।

§ ५४० एवणोक्तमायाणमुक्तस्सहिदीए अंतरकासो मिच्छतादीणमुक्तस्सहिदि अंतरकालेण सरिसा किंहु जहणंतरकासो एगसममो । कृदो ? कसाएमु अण्णदुरक्सापस्स उक्तस्सहिदियगसमय बंधिदण पुणो बिदियसमए सन्नेसिं कसाया णमणुक्कस्स हिदि बंधिय तदियसमए उक्तस्सहिदि बंधिय एवमगादो अगगा य उक्तस्स हिदिमंतमग्गे अणुक्कस्सहिदिमंत कादण बंधाअभियादिवकंतकसापहिदीए णोक्क सापसु मक्काए उक्तस्सहिदीए आदी भादा । कदो बिदियसमए अणुक्कस्सहिदीए

ॐ उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरि वर्तनममाण है ।

§ ५४१ संक्षेप—उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गल पारवतनप्रमाण क्यों है ।

समाधान—हिमी एक जीवम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध क्रिया अनन्तर कृष्ट स्थितिक बन्धक आरम्भून उत्कृष्ट संकलनरूप परिणामोसे निम्न हाकर कमन अनुकृष्ट स्थितिक बन्ध क्रिया आर यह बन्ध अनुकृष्ट स्थितिक उत्कृष्ट बन्धकसक अभिमत समय तक करता रहा । तदनन्तर यह जीव एकेग्रियमें उत्तरन हुआ और बर्रा अक्षय्यान पुद्गल परिवर्तन काय तक परिभ्रमय करके पुनः एकेग्रिय ब्रह्म पपातकोमें उत्तरन हुआ और पपात हाकर उत्कृष्ट संकलनरूप परिणामोका प्राप्त हुआ तब हाकर इसक कृष्ट स्थितिक बन्ध हागा है और इवनिध उत्कृष्ट स्थितिक उत्कृष्ट अन्तर आवनीके आरम्भयानवे भागक श्रितन समय हो उनन पुद्गल पारवतनप्रमाण पपात हागा है ।

ॐ इसी प्रकार मा नाकपायोका अन्तर है । किन्तु इवनी विग्रयता है कि इनकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य अन्तर एक समय है ।

§ ५४० नौ भाकपायोकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाय मिध्यागारिहरी उत्कृष्ट स्थितिक अन्तरातक समान है । किन्तु जपन्य अन्तरकाय एक समय है ।

शंका—नौ नाकपायोकी उत्कृष्ट स्थितिका जपन्य अन्तर काय एक समय क्यों है ?

समाधान—हिम जीवन सातह कपायोमस हिमी एक कपायोकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय तक रहीं पुनः दूसर समयमें सब कपायोकी अनुकृष्ट स्थितिका रहीं और तीसरा समयमें चण्य कपायोकी उत्कृष्ट स्थितिको रहीं इस प्रकार का जीव भागे भाग कपायोकी उत्कृष्ट स्थितिकरक मायमें कपायोकी अनुकृष्ट स्थितिकरक करता है । तदनन्तर हिमक कपायतिह परचाय कपायोकी उत्कृष्ट स्थितिक मोकयादोमें संकलन हान कर नाकपायोकी उत्कृष्ट स्थितिका



अंतरिय पुणो तदियसमए गोकसाएसु बंधावलिआइक्कंतकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकंताए एगसयमेचंतखवलंभादो ।

❀ सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्साणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मियंतरं जह-  
रणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ५४१. कुदो ? मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढम-  
समए सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मं कादूण विदियसमए अणुक्कस्स-  
ट्ठिदिं गंतूणतरिय सव्वजहण्णसम्मत्तकालमच्छिय मिच्छत्तेण परिणमिय पुणो उक्कस्स-  
ट्ठिदिं वधिय अंतोमुहुत्त पडिहग्गो होदूणच्छिय वेदगसम्मत्तपाओग्गमिच्छत्तुक्कस्स-  
ट्ठिदिसंतकम्मेण वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे सम्मत्तसम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्म-  
मुवगयस्स उक्कस्सट्ठिदीए अंतोमुहुत्तमेत्तजहण्णंतखवलंभादो ।

❀ उक्कस्समुवड्ढुपोग्गलपरियट्ठं ।

§ ५४२. तं जहा - एगो अणादियमिच्छाइट्ठी छव्वीससतकम्मियो उवसम-  
सम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गतूण उक्कस्स-  
ट्ठिदिं वधिय पडिहग्गो होदूण ट्ठिदिघादमकरिय वेदगसम्मत्तं घेतूण सम्मत्त-

प्रारम्भ हुआ । तथा जो दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको अन्तरित करके पुनः तीसरे समयमें  
बन्धावलिके पश्चात् कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको नोकषायोंमें संक्रान्त करता है उसके नौ नोकषायोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्रमाण पाया जाता है ।

\* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर  
अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५४१ शंका—जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कैसे है ?

समाधान—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले किसी एक जीवने वेदकसम्यक्त्वको  
प्राप्त करके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म किया । तदनन्तर  
वह दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हुआ और इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका अन्तर  
करके सबसे जघन्य सम्यक्त्वके कालतक वहाँ रहा । तदनन्तर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहाँ  
पुनः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और सकलेश परिणामोंसे च्युत हो विशुद्धिको  
प्राप्त होता हुआ अन्तर्मुहूर्त कालतक वहाँ रहा । तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वके  
उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला वह जीव जब वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है तब पुनः उसके  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है और इस प्रकार उस जीवके सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

\* उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ५४२. वह इस प्रकार है—छव्वोस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि  
जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुन वह उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त कालतक  
रहकर मिथ्यात्वमें गया और वहाँ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और सकलेश परिणामोंसे  
च्युत होकर स्थितिघात न करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः वहाँ सम्यक्त्व और सम्य-

सम्माभिच्छाजमुक्कस्सद्धिदिसंतकम्मं काट्ठण सम्मथेण अंतोमुहुत्तमच्चिय मिच्छत्त  
गत्तुण देवणदपोमासपरियट्ठं परिममिय पुणो तिणिणि नि करणाणि करिय पढमसम्मत्त  
पदिबज्जिय मिच्छत्त गत्तुणुक्कस्सद्धिदिं वधिय अंतोमुहुत्तेण वेदगसम्मत्तमुपगयपढम-  
समप मिच्छत्तुक्कस्सद्धिदीए सम्मत्तसम्माभिच्छत्तेसु सकताए लद्धमंतरे होदि । एवं  
पुम्मिस्संतिस्सअंतोमुहुत्तेणमद्धपोगलपरियट्ठमुक्कस्सत्तरं । छणमद्धपोगलपरियट्ठ  
उववुपोमासपरियट्ठ ति यत्तम्भं ।

§ ५४३ संपदि पुण्णिमुत्तपक्खणं काट्ठण विसेमावल्लि पट्ठत्त पुणरुत्तमयं  
वदिय सोपमुत्तारणं मण्णिस्सामो । अंतरं दुबिह—अहण्णाणुक्कस्सं व । उक्कस्स पयदं ।  
दुबिहो छिइवेसो—ओषेण आवेसण य । तत्त ओषेण मिच्छत्त-वारसकं उक्कं  
ज० अंतोमु०, उक्कं अणंतकालं । अणुक्कं ज० एगसमथो, उक्कं अंतोमु० ।  
सम्मत्त-सम्माभि० उक्कं ज० अंतोमु०, उक्कं उववुपोमासपरियट्ठं । अणुत्तक  
ज० एगस०, उक्कं उववुपो०परियट्ठं । अणंताणु०चउक्कं उक्कं अंतरं क्वनिरं ?  
ज० अंतोमु०, उक्कं अणंतकालं । अणुक्कं ज० एगस०, उक्कं बंधावद्धिसागरा  
वमाणि देवणाणि । पंचणो० उक्कं ज० एगस०, उक्कं अणंतकालं । अणुक्कं

मिध्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वमैका करके तथा सम्मत्त्वके साथ अन्तमु हुत कालतक रहकर  
मिध्यात्वमें गया । पुनः वह मिध्यात्वक साथ कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन कालतक परिभ्रमण  
करके पुनः तीनों करण करके प्रथम सम्मत्त्वका प्राप्त हुआ । तदनन्तर उसने मिध्यात्वमें जाकर  
और वहाँ मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी बाँधकर अन्तमु हुते कालके द्वारा वेदकसम्मत्त्वके प्राप्त  
करके प्रथम समयमें मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्मत्त्व और सम्मत्तिमिध्यात्वमें संक्रमण  
किया । तब जाकर उसके सम्मत्त्व और सम्मत्तिमिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त  
होता है । इस प्रकार सम्मत्त्व और सम्मत्तिमिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर पहलेके  
और अन्तके अन्तमु हुतसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण प्राप्त होता है । यहाँ सूत्रमें जो वचार्थ  
पुद्गल परिवर्तन पदका प्रमाण किया है सो वससे कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनरूप कालका  
प्रमाण करना चाहिये ।

§ ५४३ इस प्रकार सूत्रका कथन करके अब विशेष ज्ञान कराने के लिये पुनरुक्त वाच-  
के मयकी जोकर ओषसहित उक्ताएणाअ कथन करते हैं—अन्तर वा प्रकारका इ—अपन्य  
अन्तर और उत्कृष्ट अन्तर । उनमेंसे उत्कृष्ट अन्तरका प्रकार है । वसकी अपवा निर्वेश हो  
प्रकारका है—ओषनिर्वेश और आवेशनिर्वेश । उनमेंसे आषकी अपेक्षा मिध्यात्व और वार  
कपायोकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर अन्तमु हुते और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । अनु-  
रुद्ध स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हुते है । सम्मत्त्व और  
सम्मत्तिमिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर अन्तमु हुते और उत्कृष्ट अन्तर वचार्थ पुद्गल  
परिवर्तन काल है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वचार्थ  
पुद्गल परिवर्तनकाल है । अनन्तामुक्कथो वत्तुक्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर प्रितना है । अपन्य  
अन्तर अन्तमु हुते और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकसी वतीस सागरप्रमाण है । पाँच नोकपायोकी

ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । चत्तारिणोक० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अणंत-  
काल० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एगावलिया । एसो चुणिसुत्तवएसो ।  
उच्चारणाए पुण वे उवएसो—एगावलिया आवलियाए असंखेज्जदिभागो चेदि । पडि-  
हगसमए चेव जे आइरिया चदुणोकसायाणं वधो होदि त्ति भणति तेसिमहिप्पाएण  
एगावलयमेत्तो चदुणोकसायाणमणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्संतरकालो । पडिहगपढम-  
समयप्पहुडि आवलियाए असंखेज्जेसु भागेषु गदेषु अमंखे० भागावसेसे चदुणोकमाया  
वज्झंति त्ति जे आइरिया भणंति तेसिमहिप्पाएण अणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्संतरं  
आवलियाए असंखे० भागो । एवमचक्खु०-भवसिद्धि० ।

उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हूर्त है । चार नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक आवली काल है । चार नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल एक आवलीप्रमाण है यह उपदेश चूर्णिसूत्रके अनुसार है । उच्चारणाकी अपेक्षा तो दो उपदेश पाये जाते हैं । एक उपदेश एक आवली कालका है और दूसरा उद्देश आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका है । जो आचार्य उत्कृष्ट स्थिति-  
बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट सकलेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर तदनन्तर समयमें ही चार नोकपायोंका बन्ध होता है ऐसा कहते हैं उनके अभिप्रायानुसार चार नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल एक आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । तथा जो आचार्य उत्कृष्ट स्थिति-  
बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट सकलेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर पहले समयसे त्कर आवलिके असंख्यात बहुभाग कालको वितारकर असंख्यातवें भागप्रमाण कालके शेष रहन पर चार नोकपायोंका बन्ध होता है ऐसा कहते हैं उनके अभिप्रायानुसार चार नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । इसी प्रकार चतुर्दशनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**मिथ्यात्व आदि सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका खुलासा मूलमे किया ही है, अत यहा अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और, उत्कृष्ट अन्तरका खुलासा किया जाता है । जब किसी जीवके एक समय तक मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है तब उसके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । तथा जब किसीके मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध अन्तर्मुहूर्तकाल तक होता है तब उसके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । जो जीव सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके तीसरे समयमे उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । तथा जो जीव अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें जाकर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता है । पुनः अर्धपुद्गल परिवर्तन कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल उपार्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है । जिसने अनन्ता-

१५४४ आदेसेण गेरुएसु मिञ्चव-वारसक० उक० जह० अंतोमु०, उक०  
वेचीसं सागरो० देवणाणि । अणुक० ओपं । सम्मच-सम्मामि० उक० जह० अंतोमु०,  
उक० वेचीसं सागरो० देवणाणि । अणुक० एपं पेय । पवरि जह० एगस० । मर्ण  
तामु० उक० उक० ज० अंतोमु०, उक० सगहिदी देवणा । अणुक० जह० एगस०,  
उक० सगहिदी देवणा । पंचणोक० उक० जह० एगस०, उक० सगहिदी देवणा ।  
अणुक० जह० एगस०, उक० अंतोमु० । चचारिणोक० उक० जह० एगस०, उक०  
सगहिदी देवणा । अणुक० जह० एगस०, उक० आसिपिअ अंसले० मागो एगा-

मुष्मतीकी बिस्वावना की है पता दीज यदि पुनः मिथ्यात्वमें आवे तो उसे मिथ्यात्वमें आनेके  
क्षिपे कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कास और अधिकसे अधिक कुछ कम एकदूसी पत्तीस सगर कास  
सगता है अतः अन्तर्मुहूर्तकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम एकदूसी पत्तीस  
सगर प्राप्त होता है । अनुसन्धेय, अरुणित शोक, मय और कुप्यायी उत्कृष्ट स्थितिका ब्रह्म कास  
एक समय और उत्कृष्ट कास अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनकी अनुकूल स्थितिका ब्रह्म अन्तर एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । तथा छेप बार नोक्यायीकी उत्कृष्ट स्थितिका  
ब्रह्म कास एक समय और उत्कृष्ट कास एक आबली है । अतः इनकी अनुकूल स्थितिका ब्रह्म  
अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक आबलि है । यहाँ बार नोक्यायीकी अनुकूल स्थितिका  
एक आबलिप्रमाण जो उत्कृष्ट अन्तर कछाया है वह पूर्वसूत्रके उपदेशानुसार बतलाया है ।  
परन्तु इस बिषयमें ब्याख्यामें हा उपदेश पाये जाते हैं । पहले उपदेशका सार यह है कि सोलह  
क्यायोंके उत्कृष्ट स्थितिकयके दो कुक्कने दूसरे समयसे ही बार नोक्यायीका ब्रह्म होने लगता  
है । तथा दूसरे उपदेशका सार यह है कि सोलह क्यायोंके उत्कृष्ट स्थितिकयके दो कुक्कने परचात  
दूसरे समयसे बार नोक्यायीका ब्रह्म नहीं होता किन्तु जब आबलिका अस्त्वेवात्ता भाग कछ  
छेप रह जाता है तब बहाते ब्रह्म होता है । इनमेंसे पहले उपदेशके अनुसार बार नोक्यायीकी अनु-  
कूल स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर एक आबलि प्राप्त होता है और दूसरे उपदेशके अनुसार आबलीका  
अस्त्वेवात्ता भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है । अचक्षुष्य और मम्मममोका ब्रह्मत्व  
बीचके सर्वदा पाई जाती है अतः इनमें बीचके समान सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकूल  
स्थितिका ब्रह्म और उत्कृष्ट अन्तर बन जाता है ।

१५४५ आदेश निर्लेखी अपेका मारकियोंमें मिथ्यात्व और बारह क्यायोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका ब्रह्म अन्तर कास अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम वेचीस सगर है ।  
तथा अनुकूल स्थितिका अन्तर कास ओपके समान है । सम्मच और सम्ममिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका ब्रह्म अन्तर कास अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम वेचीस सगर  
है । तथा अनुकूल स्थितिका अन्तर कास भी इसी प्रकार है । किन्तु इतनी बिसेष्टता है कि इसका  
ब्रह्म अन्तर कास एक समय है । अन्तर्मुहूर्तकी अनुकूल उत्कृष्ट स्थितिका ब्रह्म अन्तर कास  
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुकूल स्थितिका  
ब्रह्म अन्तर कास एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । पाँच  
नोक्यायीकी उत्कृष्ट स्थितिका ब्रह्म अन्तर कास एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम  
अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुकूल स्थितिका ब्रह्म अन्तर कास एक समय और उत्कृष्ट  
अन्तर कास अन्तर्मुहूर्त है । बार नोक्यायीकी उत्कृष्ट स्थितिका ब्रह्म अन्तर कास एक समय  
और उत्कृष्ट अन्तर कास कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुकूल स्थितिका ब्रह्म

वलिा वा । एत्थ उवएसं लद्धूण एगयरणिण्णओ कायवो । पढमादि जाव सत्तमि  
त्ति एवं चेव । एवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा त्ति वत्तव्वं ।

§ ५४५ तिरिक्ख० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० ओघं । सम्मत्त-सम्मामि०  
उक्क० अंतरं जह० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोगलपरियट्ठं देसूण । अणुक्क० एवं चेव ।  
णवरि जह० एगस० । अणंताणु०चउक्क० उक्क० ओघं । अणुक्क० अंतरं ज०  
एगस०, उक्क० तिण्ण पलिदो० देसूणाणि । पंचिदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण अथवा ए- आवली हैं ।  
यहाँ पर उपदेशको प्राप्त करके किसी एकका निर्णय करना चाहिये । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं  
पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम  
अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये ।

**विशेषार्थ—**जिसने नरकमें उत्पन्न होकर और पर्याप्त होकर मिथ्यात्व और वारह  
कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया । अनन्तर जो अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता रहा किन्तु  
नरकसे निकलनेके पहले जिसने पुन उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया उसके उक्त  
प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है । अनन्तानु-  
बन्धा चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । जिसने  
नरकमें उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानु-  
बन्धीकी विसंयोजना कर दी वह यदि नरकमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर मिथ्यात्वको  
प्राप्त होता है तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस  
सागर पाया जाता है । जिसने पर्याप्त होकर और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मु-  
हूर्त कालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया उसके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके समय सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । अनन्तर जो नरकमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष  
रह जाने पर पुनः इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है  
उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर  
पाया जाता है । जिस नारकीने नरकमें उत्पन्न होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उद्बलना  
करके अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर किया । अनन्तर नरकमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर  
जिसने उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिको  
प्राप्त किया उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर  
पाया जाता है । तथा वारह कषायोंके समान नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ  
कम तेतीस सागर घटित कर लेना चाहिये । सब प्रकृतियोंकी शेष स्थितियोंका उत्कृष्ट और  
जघन्य अन्तर जो ओघमें वतला आये हैं उसी प्रकार जानना चाहिये । तथा प्रथमादि नरकोंमें  
अपने अपने नरककी विशेष स्थितिका ख्याल करके इसी प्रकार कथन करना चाहिये ।

§ ५४६ तिर्यचोमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-  
का अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्त-  
र्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर  
भी इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर एक समय है । अनन्तानुबन्धी  
चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्थ है । पचेन्द्रियतिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त

पर्वि० तिरि० भोगिणीसु मिच्छन्त-वारसक० उक्क० अ० अंतोसु०, उक्क० पुम्बकोदि  
पुपर्च । अणुक्क० अ० एगस०, उक्क० अंतोसु० । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क०  
अंतरं अ० अंतो० उक्क० पुम्बकोदिपुपर्च । अणुक्क० अ० एगस०, उक्क० तिणि  
पल्लिवो० पुम्बकोदिपुपर्चोणम्महिपाणि । अणुतापु० उक्क० उक्क० मिच्छन्तभंगो ।  
अणुक्क० अ० एगस०, उक्क० तिणि पल्लिवोपाणि देवणाणि । पपणोक्क० उक्क०  
अ० एगस०, उक्क० पुम्बकोदिपुपर्च । अणुक्क० अ० एगस०, उक्क० अंतोसु० ।  
पचारिणोक्क० उक्क० अ० एगस०, उक्क० पुम्बकोदिपुपर्च । अणुक्क० अ० एगस०,  
उक्क० आनसि अससे० भागा एगावसिया या । एवं मणुसतिय० ।

और पंचमित्रतिर्यक् धानिमती जीवोंमें मिथ्यात्व और वास्तविकताओंकी उत्कृष्ट स्थितिका ब्रह्म  
अन्तर अन्तर्गुह्य और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपुष्पत्वं है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका ब्रह्म अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्गुह्य है । सम्मत्त और सम्मामिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
ब्रह्म अन्तर अन्तर्गुह्य और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपुष्पत्वं है । अनुकृष्ट स्थितिका ब्रह्म  
अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपुष्पत्वं अधिक तीन पक्ष है । अन्तर्गुह्यकी  
वस्तुस्थिति उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर मिथ्यात्वके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका ब्रह्म  
अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पक्ष है । पंच भोग्यापोंकी उत्कृष्ट स्थितिका  
ब्रह्म अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपुष्पत्वं प्रमाण है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका  
ब्रह्म अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्गुह्य है । वार भोग्यापोंकी उत्कृष्ट स्थितिका  
ब्रह्म अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपुष्पत्वं है । तथा अनुकृष्ट स्थितिका  
ब्रह्म अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर आबलीके असंख्यातवै भगवत्प्रमाण अथवा एक  
आबली है । इसी प्रकार अर्थात् पंचमित्र आदि एक ही प्रकारके तिर्यक्को समान सामान्य  
मनुष्य पक्षात् मनुष्य और मनुष्यकी जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जिस तिर्यक्चन अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहलके देखे रहने पर ब्रह्म  
सम्पत्त्वकी प्राप्त किया पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका ब्रह्म करके  
अन्तर्गुह्य कहलमें बेहक सम्पत्त्वका प्राप्त करके सम्पत्त्व और सम्मामिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी  
प्राप्ति किया । पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर पक्षके असंख्यातवै भाग प्रमाण कहलके द्वारा सम्पत्त्व  
और सम्मामिथ्यात्वकी श्रद्धा की । अन्तर जो अर्धपुद्गल परिवर्तन कहलके अन्तर्गुह्य अन्तर्गुह्य  
कहलके होय रह जाने पर ब्रह्मसम्पत्त्वकी प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें जाकर तथा मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका ब्रह्म करके अन्तर्गुह्यमें बेहकसम्पत्त्वदि होकर सम्पत्त्व और सम्मामिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिकी प्राप्त करता है उसके सम्पत्त्व और सम्मामिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर  
कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन का प्रमाण पाया जाता है । तथा इसी प्रकार अनुकृष्ट स्थितिका  
उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त करित कर लेना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यह अन्तर ब्रह्मना  
कहलके अन्तर्गुह्य होता है और अन्तर्गुह्य ब्रह्मसम्पत्त्वकी प्राप्त करके समय समान होता है ।  
कोई एक जीव भागभूमिके तिर्यक्चोंके अल्प हुआ और जो मात्र गरीमें रहा । अन्तर गरीमें निकल  
कर अन्तर्गुह्यमें जिसने बेहकसम्पत्त्वकी प्राप्त करके अन्तर्गुह्यकी जिसपावना की ।  
पश्चात् जीव सर अन्तर्गुह्यकी जिसकोजनाके प्राप्त रह कर अन्तर्गुह्य मिथ्यात्वकी प्राप्त होकर  
अन्तर्गुह्यकी ब्रह्म किया । उसके अन्तर्गुह्यकी वस्तुस्थिति अनुकृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर

§ ५४६ पंचि०तिरि०अपज्ज० मि०ञ्जत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णव-  
 पोक० उक्क० अणुक० णत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज० अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ०-  
 सव्वएइ०दिय-सव्वविगल्लिंदिय-पंचि०अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स-  
 वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-  
 सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०-  
 संजदासंजद०-ओहिंदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-  
 [ असण्णि- ] अणाहारि त्ति । णवरि एइंदिय-वादरेइंदियपज्ज०-पुढवि०-आउ० तेसि वादर  
 पज्ज०-वादरवणप्फदिपत्तेय०-तप्पज्जत्त-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-असण्णि०

कुछ कम तीन पल्य प्रमाण पाया जाता है । भोगभूमिमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंका जो उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य बतलाया है उसमें भोगभूमिका काल भी सम्मिलित है अतः इससे तीन पल्य कम कर देने पर जो पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण काल शेष बचता है वह उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें मिथ्यात्व आदि अट्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल जानना चाहिये । यहा किस तिर्यचके पूर्वकोटि पृथक्त्वसे कितनी पूर्वकोटियोंका ग्रहण करना चाहिये इसका कथन अन्यत्र किया है, इसलिये वहासे जान लेना चाहिये । उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें जिस तिर्यचने अपनी पर्यायके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की अनन्तर वह अपनी अपनी कायस्थितिके उत्कृष्ट कालतक मिथ्यागृष्टि रहा पर अन्तमें उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त कर ली उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य प्रमाण पाया जाता है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरका कथन जिस प्रकार सामान्य तिर्यचोंके कर आये हैं उसी प्रकार इन तीन प्रकारके तिर्यचोंके कर लेना चाहिये । इसका प्रमाण कुछ कम तीन पल्य है । शेष कथन ओषके समान जानना चाहिए । सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोंके भी उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंके समान अन्तर काल जानना चाहिये । किन्तु पूर्वकोटिया जिसकी जितनी हों उतनी कहनी चाहिये ।

§ ५४६ पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाचों स्थावर काय, प्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, आभिनि-  
 बोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदशैतवाले, सम्य-  
 ग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यागृष्टि, असज्जी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियकमिश्रकाययोगी और

जबजोह० उह० ज० एगसमझो, उह० आबखिया दुसमयूणा । अणु० अर०  
एगस०, उह० आबखिया समयूणा ।

§ ५४७ देवगदि० मिच्छन्त-बारसक० उह० ज० अंतोमु०, उह० अहारास  
सागरो० सादिरयाणि । अणुसक० ज० एगस०, उह० अंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मापि०  
उह० ज० अंतोमु०, उह० अहारास साग० सादिरयाणि । अणुसक० ज० एगम०,  
उह० एकरुपीस सागरो० देसूणाणि । अगंसाणु० अउह० उह० मिच्छन्तयंगो ।  
अणुसक० ज० एगस०, उह० एकरुपीस सागरो० देसूणाणि । जबजोह० उह० ज०  
एगस०, उह० अहारास सागरो० सादिरयाणि । अणुसक० ओघ । भवणादि जाब  
सहस्सार चि एवं चेव । जबरि सगहिदी देसूणा । आणदादि जाब उवरिममवज्जो चि  
मिच्छन्त-बारसक०-जबजोह० उह० अहाराससागुसक० एतिय अंतरं छिरंतरं । सम्मत्त

असंखी बीबेसि नौ नोकयायोकी उह० स्थितिका जपम्य अन्तर कस एक समय और उह०  
अन्तर कस हो समय कम आबखिमाम्य है । तथा अनुत्तु स्थितिका जपम्य अन्तर कस एक  
समय और उह० अन्तर कस एक समय कम आबखिमाम्य है ।

विशेषार्थ—पकेन्द्रिय तिर्यक् कण्ठ्यपर्वात् और अनुत्तु कण्ठ्यपर्वात्से लकर मूलमें और  
बितनी मार्ग्यापे गिनार्ह हैं उनमें सब प्रकृतियोंकी उह० और अनुत्तु स्थितिका अन्तर नहीं  
पमा जाता । इतका करण यह है कि इनके प्रथम समयमें उह० स्थिति हावी है अतः कस  
कस पयावके रहते हुए वा बार उह० स्थिति नहीं पमा हावी । किन्तु पकेन्द्रिय आदि मूलमें गिनार्ह  
हुए कुछ पेसी मार्ग्यापे हैं जिनमें नौ नोकयायोकी उह० और अनुत्तु स्थितिका अन्तर सम्भव  
है । कपपि उह० स्थितिकम्यके विषयमें सामान्य नियम तो यह है कि जिस कर्मका उह०  
स्थितिकम्य रुक जाता है उसका यदि पुनः उह० स्थितिकम्य हो तो अन्तर्मुहूर्त कसके परचाल  
ही हो सकता है परन्तु कयायोकी बरल बरल कर कस एक वा एकसमयसे अधिक कालके  
अन्तरसे भी उह० स्थितिकम्य हो सकता है । अब यदि किसी बीबेसि इस प्रकार कयायकी  
उह० स्थिति बांधी और वह पकेन्द्रियादिक उह० मार्ग्यापेमेंसे किसी एक मार्ग्यापे कयाय हुआ  
तो उसके नौ नोकयायोकी उह० स्थितिका जपम्य अन्तर एक समय और उह० अन्तर वा समय  
कम एक आबखिकम्य प्रमाण बन जाता है । और इसके विपरीत अनुत्तु स्थितिका जपम्य अन्तर  
एक समय और उह० अन्तर एक समय कम आबखि प्रमाण भी बन जाता है ।

§ ५४८ देवगतिमें मिच्छन्त और बार कयायोकी उह० स्थितिका जपम्य अन्तर  
अन्तर्मुहूर्त और उह० अन्तर साधिक अठारह सागर है । तथा अनुत्तु स्थितिका जपम्य अन्तर  
एक समय और उह० अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्भव और सम्मगिम्यात्तकी उह० स्थितिका  
जपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उह० अन्तर साधिक अठारह सागर है । तथा अनुत्तु स्थितिका  
जपम्य अन्तर एक समय और उह० अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अमस्तासुबन्धो  
अनुत्तुकी उह० स्थितिके अन्तरका संग मिच्छन्तक समान है । तथा अनुत्तु स्थितिका जपम्य  
अन्तर एक समय और उह० अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । नौ नोकयायोकी उह०  
स्थितिका जपम्य अन्तर एक समय और उह० अन्तर साधिक अठारह सागर है । तथा अनुत्तु  
स्थितिका अन्तर ओपके समान है । मयनवसिबोसे लकर सहस्वार कर तकके बाकि इसी  
प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र कुछ कम अपनी स्थिति कदनी चाहिये ।



सम्मामि० उक्क० एत्थि अंतरं । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देसूणा ।  
अणंताणु० चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क०  
सगट्टिदी देसूणा ।

§ ५४८ पंचिं०-पंचिं० पज्ज०-तस-तमपज्ज० मिच्छत्त०-वारसक० उक्क०  
अंतरं ज० अतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । सम्पत्त-सम्मामि०  
उक्क० ज० अतोमु० । उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० एवं चेव । णवरि जह०  
एगस० । अणताणु० चउक्क० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा ।  
अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० वेद्धावट्टिसागरो० देसूणाणि । एवणोक्क० उक्क० ज०  
एगस०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० ओघ । एवं पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति ।

आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है किन्तु पूर्वोक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका काल निरन्तर है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—देवोंमें सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंके ही मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध और सक्रमण सम्भव है, अतः सामान्यसे देवोंमें मिथ्यात्व आदि अट्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा । तथा नौ ग्रैवेयक तकके देव मिथ्यात्वमें जा सकते हैं और सम्यग्दृष्टि भी हो सकते हैं अतः सामान्य देवोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा । शेष कथन ओघके समान है । तथा भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंमें अपनी अपनी स्थितिका विचार करके इसी प्रकार अन्तर काल जानना चाहिये । आनतसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंके मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल तो होता ही नहीं, क्योंकि इनके पर्यायके प्रथम समयमें ही उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । हाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उद्वेलनाकी अपेक्षा और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका विसयोजनकी अपेक्षा अन्तरकाल सम्भव है जो मूलमें बतलाया ही है ।

§ ५४८ पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व और बारह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है । नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण

५ ५४९ पंचमण -पंचमचि० सप्तक० गतिय अंतरं । णवरि पंचणोक्क० [ अ० ]

एयसमम्, उक्क० अंतोमुहुर्यं । चदुणोक० [उक्क०] ज० एगस०, उक्क० आवसिया  
दुसमच्छा । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० आवसि० अस्संखे० भागो  
एगावसिया वा । एवं कयमोहि०-मोरासिय०-मेठन्निय० चत्तारिकसाए चि ।

६। तथा अनुकूल स्थितिमें अन्तर आपके समान है। इसी प्रकार पुरुषवर्गवाले पशुवर्गवाले और संघी जीवोंके जानना चाहिये।

विशुद्धार्थ—जैसे भी जीव पंचगिरि पंचेन्द्रिय पयात त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंकी कषपस्विति प्रमाणा काल तक मिथ्यात्व सोलह कषप और मौ नोकषायोंकी अनुकृत स्थितिके साथ रह सकता है पर यहाँ इनकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल वतज्ञाना है, अतः इनके प्रारम्भ और अन्तमें एक प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता और नम प्रकार एक प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल से आये जो एक जीवोंकी कुछ कम कषपस्वितिप्रमाण होता है। सम्बन्ध और सम्बन्धितत्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतने काल तक लगातार सम्बन्ध और सम्बन्धितत्वका सख सम्बन्ध प्राप्ति की अपेक्षा बन सकता है, अम्भ्या मन्थमें इनकी वृद्धिना भी है। कायगी। विसन अनन्तलुब्धकी वतुष्टकी विसंयोजन की है ऐसा जीव यदि पुन अनन्तलुब्धकी सख प्राप्त करे ता वह अनन्तलुब्धकी वतुष्टके बिना अधिकसे अधिक कुछ कम एकमे वतीस सागर तक रह सकता है अतः एक जीवोंके अनन्तलुब्धकी वतुष्टकी अनुकृत स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पक्षी वतीस सागर का है। शेर कमन ओपके समान है। पुरुषवो वतुष्टकी और वृद्धी जीवोंकी उत्कृष्ट कषपस्विति प्रमाणा सी सागर पृथक्त्व, दो हजार सागर और सा सागर पृथक्त्व है, अतः इनमें भी एक क्रमसे अन्तर काल बन जाता है।

§ ५५६ पाँचों मनायोगी और पाँचों बचनयोगी बीषोंमें उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है। किन्तु इतनी विवेचता है कि इनमें पाँच भाषणार्थोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुद्रित है। चार लोकार्थोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कम एक आशक्ति है। तथा सब प्रवृत्तियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार भाषणार्थोंके सिवा शून्य अन्तर्मुद्रित तथा चार लोकार्थोंके आशक्तिके असीत्पातार्थें भागप्रमाण अवस्था एक आशक्तिप्रमाण है। इसी प्रकार काव्यागी, ओदारिककाव्यागी, वैदिककाव्यागी और चारों कथाव्यास बीषोंके जानना पार्य्य।

विशेषार्थ—प्राची मनासाग और प्राची बपनयागोमें भी नाकपायोका प्रादुर्भाव था सब प्रकृतियोंकी उत्पत्ति स्थितिका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता। इसका कारण यह है कि इन योगोंका काल प्रादुर्भाव अतः इनमें वा बार उत्पत्ति स्थितिका प्राप्त होना सम्भव नहीं है। किन्तु सातह कपायोका बहुत बहुत कर अन्तरमें भी उत्पत्ति स्थितिका प्राप्त होता है अतः इनके संक्रमणकी अपेक्षासे भी नाकपायोमें उत्पत्ति और अनुत्पत्ति स्थितिका उत्पत्ति और अप्रत्यक्ष अन्तर बन जाता है जो मूलमें बलशाली ही है। इसी प्रकार यहाँ शरीर प्रकृतियोंकी अनुत्पत्ति स्थितिका भी अन्तर परित कर लेना चाहिये। मूलमें कपयागी आदि जिनकी मात्रा, गुण बलता है उनमें भी यथायाम्य जानना चाहिये। यद्यपि कपयागका उत्पत्ति काल असंख्यात पुरुषगत परिचयन प्रमाण है और औदारिक कपयागका काल कुछ कम बादम हजार वर्ष प्रमाण है पर यह काल पृथ्वी और पृथ्वीकायिक जीवोंके ही प्राप्त होता है, अतः इनमें भी उत्पत्ति स्थितिका अन्तरकाल

§ ५५० इत्थि० पंचिंदियभंगो । णवरि मगट्टिदी देसूणा । अणंताणु० चउक्क० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० पणवण्ण पल्लिदोवमाणि देसूणाणि । णवु सओघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० अणुक्क० [ उक्क० ] तेत्तीस सागरो० देसूणाणि ।

§ ५५१ मदि० सुदअण्णा० ओघं । एवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । अणंताणु० चउक्क० वारसकसायभंगो । विहंग० सत्तमपुढविभंगो । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । अणंताणु० चउक्क० वारसक-सायभंगो । असंजद० णवु० स० भंगो ।

सम्भव नहीं ।

§ ५५० स्त्रीवेदवालों में पंचेन्द्रियों के समान भग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पत्य है । नपुसकवेदमें ओघके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ—**स्त्रीवेदीकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पत्य पृथक्त्व प्रमाण है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम सौ पत्य पृथक्त्वप्रमाण प्राप्त होता है । तथा स्त्रीवेदी जीव सम्यक्त्वके साथ कुछकम पचवन पत्य तक रह सकता है और कुछकम इतने कालतक उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना पाई जा सकती है, अतः इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पत्य प्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है । नपुसकवेदमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तर कालको छोड़ कर शेष सब कथन ओघके समान बन जाता है । किन्तु नपुसकवेदी लगातार कुछ कम तेतीस सागर तक ही सम्यग्दर्शनके साथ रह सकता है अतः इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण प्राप्त होता है ।

§ ५५१ मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ओघके समान अन्तर है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भग बारह कषायोंके समान है । विभगज्ञानियों में सातवीं पृथिवीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थितिके अन्तरका भंग बारह कषायोंके समान है । असंयतोंमें नपुसकों के समान भंग है ।

**विशेषार्थ—**मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना ही होती जाती है । अतः इनके इन दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार विभगज्ञानी जीवोंके भी उक्त दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं पाया जायगा । असंयतोंमें नपुसकवेद प्रधान है, अतः असंयतोंका कथन नपुसकोंके समान कहा ।

१५४२ तिप्पिखे० मिप्पय०-वारसक० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० ओष० । सम्मच-सम्मापि० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० एवं चेव । गवरि जह० एगसमओ । गवणोक० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० ओष । अणुवाणु० उक्क० उक्क० वारसकसापभगो । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगडिदी देसूणा । तेउ० पम्म० मिप्पय-वारसक० ज० अंतोमु० । उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० ओष । सम्मच-सम्मापि० अणुवाणु० उक्क० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० एवं चेव । गवरि जह० एगस० । गवणोक० उक्क० जह० एगस०, उक्क० सगडिदी देसूणा । अणुक्क० ओष । उक्क० सम्मच-सम्मापि० उक्क० पत्ति अंतरं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एककीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अणुवाणु० उक्क० उक्क० पत्ति अंतरं । अणुक्क० ज० अंतोमु० । उक्क० एककीस सा० देसूणाणि । सेस० उक्क० अणुक्क० गत्ति अंतरं ।

१५४२ कृत्त आदि तीस केसबाबाशोमि मिप्पयत्त और बारह कपायोंकी कृत्त स्थितिका बचन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और कृत्त अन्तर कृत्त कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुकृत्त स्थितिका अन्तर ओषके समान है । सम्मत्त और सम्मत्तियत्तकी कृत्त स्थितिका बचन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और कृत्त अन्तर कृत्त कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुकृत्त स्थितिका अन्तर इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुकृत्त स्थितिका बचन्य अन्तर एक समय है । नौ नोफायोंकी कृत्त स्थितिका बचन्य अन्तर एक समय और कृत्त अन्तर कृत्त कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुकृत्त स्थितिका अन्तर ओषके समान है । अन्तर्मुहूर्तकी अनुकृत्त स्थितिका अन्तरका मंग बारह कपायों के समान है । तथा अनुकृत्त स्थितिका बचन्य अन्तर एक समय और कृत्त अन्तर कृत्त कम अपनी स्थिति प्रमाण है । पीठ और पञ्चमेरबाबाशोमि मिप्पयत्त और बारह कपायोंकी कृत्त स्थितिका बचन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और कृत्त अन्तर कृत्त कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुकृत्त स्थितिका अन्तर ओषके समान है । सम्मत्त सम्मत्तियत्त और अन्तर्मुहूर्तकी अनुकृत्त स्थितिका बचन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और कृत्त अन्तर कृत्त कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुकृत्त स्थितिका अन्तर इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका बचन्य अन्तर एक समय है । नौ नोफायोंकी कृत्त स्थितिका बचन्य अन्तर एक समय और कृत्त अन्तर कृत्त कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुकृत्त स्थितिका अन्तर ओषके समान है । उक्कत्तकेसबाबाशोमि सम्मत्त और सम्मत्तियत्तकी कृत्त स्थितिका अन्तर नहीं है तथा अनुकृत्त स्थितिका बचन्य अन्तर एक समय और कृत्त अन्तर कृत्त कम एककीस सागर है । अन्तर्मुहूर्तकी अनुकृत्त स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनुकृत्त स्थितिका बचन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और कृत्त अन्तर कृत्त कम एककीस सागर है । सेव प्रकृतियोंकी कृत्त और अनुकृत्त स्थितिका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—कृत्त पाँच केसबाबाशोमि कृत्त बारह कपायों साधिक ठेतीस सागर, साधिक सगडि सागर, साधिक साठ सागर, साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है । और इनमें सब प्रकृतियोंकी कृत्त स्थिति सम्मत्त है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी कृत्त स्थितिका कृत्त अन्तर कम कृत्त कम अपनी अपनी कृत्त स्थितिप्रमाण बन जाता है । तथा

§ ५५३ अभव० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० ओघं । एवरि अणंताणु०-चउक्क० मिच्छत्तभंगो । मिच्छादि० मदि०भंगो । आहार० मिच्छत्त-वारसक० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देख्णा । अणुक्क० ओघं । सम्मत्त०-सम्माभि० पंचिदियभंगो । अणंताणु० चउक्क० उक्क० मिच्छत्तभंगो । अणुक्क० पंचिदियभंगो । णवणोक० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी देख्णा । अणुक्क० ओघं ।  
एवमुक्कस्सतराणुगमो समत्तो ।

❀ एत्तो जहणयंतरं ।

§ ५५४. सुगमं ।

सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल उद्वेलनाकी अपेक्षा और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल विसंयोजनाकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण बन जाता है । शेष कथन सुगम है । शुक्त लेश्यामें सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर नौवें प्रवेयकके समान घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५५३. अभव्योंमें मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थितिके अन्तरका भंग मिध्यात्वके समान है । मिध्यादृष्टियोंमें सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तर का भंग मत्यज्ञानियोंके समान है । आहारक जीवों में मिध्यात्व और बारह कषायों की उत्कृष्ट स्थिति का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग पंचेन्द्रियोंके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भंग मिध्यात्वके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर पंचेन्द्रियोंके समान है । नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है ।

विशेषार्थ—अभव्योंके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, अतः इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल मिध्यात्वके समान बन जाता है । आहारकका उत्कृष्ट काल अगुलके असख्यातवें भाग असख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी प्रमाण है, अतः इनमें मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थिति का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम उक्त काल प्रमाण बन जाता है । यहाँ जो लगातार आहारक होनेका उत्कृष्ट काल बतलाया है सो वह पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियके पश्चात् चौइन्द्रिय और चौइन्द्रियके पश्चात् तेइन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय जीव जितने काल तक लगातार आहारक होते रहते हैं उन सब आहारक कालोंको जोड़ कर बतलाया है । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल पंचेन्द्रियोंमें ही प्राप्त हो सकता है अन्यत्र नहीं, अतः आहारकके इनके अन्तर कालको पंचेन्द्रियोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

❀ इसके आगे जघन्य अन्तरका प्रकरण है ।

§ ५५४ यह सूत्र सरल है ।

ॐ मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसकसाय-सुबणोकसायाणं जहयण्हिदिविह  
त्तिपस्स पत्ति अंतरं ।

§ ५५५ हुदो ? खरिदकम्मार्जं पुणरुपचीए अमावादा ।

ॐ सम्मामिच्छत्त-अर्षंताणुपंचीणं जहयण्हिदिविहत्तिपस्स अंतरं  
जहयणेण अंतोमुहुणं ।

§ ५५६ सं महा—उब्बेस्सणाए सम्मामिच्छत्तस्स जहण्हिदिसंतकम्मं हुण-  
माणो सम्मत्ताहिदुदो होदूर्णतरवरिमफासीए सह उब्बेस्सणवरिमफास्मिन्नगिय ततो  
प्यहुदि मिच्छत्तपडमहिदीए समयूणावस्त्रियमेत्तममुप्पविसिय तत्त्व पपदमहण्हिदि  
संतकम्मस्सादि कादणतरिय कयेण मिच्छत्तपडमहिदिं गास्सिय पडयसम्मत्तं पडिवज्जिय  
अंतोमुहुत्तपच्चिय वेदगसम्मत्त पडिवज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अर्षंताणुपंचीवचकं  
विसंभोइय पुणो अर्षापवत्तमपुम्भकरणाणि करिय अणियहिमद्दाए संखेज्जसु मागेसु  
गवेसु मिच्छत्तं खविय पुणो अंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छत्तवरिमफास्सि परसस्सेण संका  
मिय जहाकमेण अर्षहिदिगस्सणाए उदयावस्त्रियण्णिसेमेसु गस्समाणेसु एगमिसगहिदीए  
दुसमपकाहाए सेसाए अंतोमुहुत्तपमाणं सम्मामिच्छत्तस्स जहण्हतरं होदि । एव-

ॐ मिध्यात्व, सम्पत्त्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अपन्य स्थिति-  
विमक्षिका अन्तर नहीं है ।

§ ५५७ शुंका — उक्त प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिका अन्तर क्यों नहीं होता ?

समाधान—क्योंकि जबकी प्राप्त हुए कर्मोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है और इन  
प्रकृतियोंकी अपन्य स्थिति अपन्याके अन्तर्गते ही प्राप्त होती है, अतः इनकी अपन्य स्थितिका  
अन्तर नहीं होता ।

ॐ सम्पग्मिध्यात्व और अनन्तामुपन्धीवतुण्हकी अपन्य स्थिति विमक्षिका अपन्य  
अन्तर अन्तर्गुह्य है ।

§ ५५८ यह इस प्रकार है—जो ज्ञानके द्वारा सम्पग्मिध्यात्वका अपन्य स्थितिसत्कर्म  
करनेवाला कोई एक जीव सम्पत्त्वके समुत्पन्न हुआ और इसने अन्तरकरणकी अन्तिम प्राप्तिके  
साथ जो ज्ञानकी अन्तिम प्राप्तिसे अन्य प्रकृतियोंमें किया। फिर वहाँसे लेकर मिध्यात्वकी  
स्थितिमें एक समय कम आशक्तिप्रमाण का कालकी विताकर सम्पग्मिध्यात्वके अपन्य स्थितिसत्कर्मका  
प्राप्ति किया और इस प्रकार उसका अन्तर कर दिया। फिर कमसे मिध्यात्वकी प्रथम स्थितिमें  
गताकर प्रथमोत्तम सम्पत्त्वका प्राप्त किया और वहाँ अन्तर्गुह्यत्वे रह कर वेदक सम्पत्त्वके प्राप्त  
किया। पुनः अन्तर्गुह्यत्वात्के द्वारा अनन्तमुपन्धीकी विसंबोचना की। पुनः अर्षाकरय और  
अपूर्वकरयको करके अन्तिमस्थितिकालके कालके संख्याय बहुभाग व्यतीत हो जाने पर मिध्यात्वका  
द्वय किया। पुनः अन्तर्गुह्यत्वे प्रकृतके द्वारा सम्पग्मिध्यात्वकी अन्तिम प्राप्ति परकरके संक्रमण  
करके वचनक्रमसे अर्षास्थितिकालके द्वारा अर्षावस्थितके भित्तियोंके गतावे हुए जब एक निपेक्षकी  
स्थिति हो समय कालप्रमाण होय रह जाती है तब इस जीवके सम्पग्मिध्यात्वकी अपन्य

मणंताणुबंधिचउक्कस्स वि । णवरि अंतोमुहुत्तम्भंतरे दो वारं तेसिं विसंयोजणं काउण जहणंतरं वत्तव्व ।

❀ उक्कस्सेण उवड्डुपोग्गलपरियट्ठं ।

§ ५५७. सुगममेदं । एवं चुण्णिमुत्तमस्सिदूण ओधंतरपरुवणं करिय सपहि तेण सूचिदसेसमगणाओ अस्सिदूण अंतरपरुवणाए कीरमाणाए उच्चारणमस्सिदूण कस्सामो ।

§ ५५८ जहणए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण ओदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० अजह० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० जह० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्कस्सभंगो । सम्मामि० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्ग० देसूणं । अज० अणुक्क०भंगो । अणंताणु०चउक्क० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्ग० देसूण । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० वेद्धावट्ठिसागरो० देसूणाणि । एवमचक्खु०-भवसि० ।

स्थितिका जघन्य अन्तर प्राप्त होता है जिसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर दोबार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कराके जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

\* तथा उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है ।

§ ५५७. यह सूत्र सरल है । इस प्रकार चूर्णिसूत्रका आश्रय लेकर ओघ अन्तरका कथन करके अब सभी मार्गणाओंमें इसके द्वारा सूचित होनेवाले अन्तरका कथन उच्चारणके आश्रयसे करते हैं—

§ ५५८. जघन्य अन्तरका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर प्रमाण है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शन-वाले और भव्योंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सब प्रकृतियों की जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका उल्लेख चूर्णिसूत्रों की व्याख्या करते समय किया ही है अतः यहाँ अजघन्य स्थिति के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका उल्लेख किया जाता है—उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त हो जानेके बाद उससे न्यून जितनी स्थितिया प्राप्त होती हैं उन सबको अनुत्कृष्ट स्थिति कहते हैं तथा जघन्य स्थितिके अतिरिक्त जितनी स्थितियाँ होती हैं उन्हें अजघन्य स्थिति कहते हैं । इसके अनुसार ओघसे मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितियोंका अन्तर नहीं प्राप्त

§ ५५९ आदेशण गेरहपसु मिच्छत्त-वारसक० णवणोक्क० जह० गत्थि मंतरं ।  
अम० जहण्णुक्क० एगस० । सम्मत्त० जह० गत्थि मंतरं । अम० अणुक्क० मंगो ।  
सम्माभि० जह० जह० पत्तिदो० असत्ते० मागो । अम० जह० एगस०, उक्क० दोण्  
पि तेचीस० देसूणाणि । अर्णत्ताणु० चत्तक० ज० अम० जह० अंतोमु०, उक्क०  
तेचीसं सागरो० देसूणाणि । पदमाए मिच्छत्त-वारसक० णवणोक्क० जह० गत्थि  
मंतरं । अम० जहण्णुक्क० एगस० । सम्मत्त० ज० गत्थि मंतरं । अम० जह० एगस०,  
उक्क० सगद्धिदी देसूणा । सम्माभि० जह० जह० पत्तिदो० वमस्स असं० मागो । अम०  
जह० एगस०, उक्क० सगद्धिदी देसूणा । अर्णत्ताणु० चत्तक० जह० अम० जह० जह०  
मंवा०, उक्क० सगद्धिदी देसूणा । विदियादि जाव छट्ठि पि मिच्छत्त-वारसक० णव  
णोक्क० जह० अम० गत्थि मंतरं । सम्मत्त०-सम्माभि० जह० ज० पत्तिदो० असत्ते०

होता, क्योंकि ओपसे इन प्रकृतियोंकी ब्रह्म स्थितियों ब्रह्मके अन्तर्में ही प्राप्त होती हैं और  
चप होनेके पश्चात् पुनः इनका उत्पत्ति मानी पाया जाता । किन्तु सम्पत्त्य और सम्पत्तिप्रदायक  
एतेतनाके पश्चात् सम्पत्त्यके होने पर निम्नसे उत्पत्ति हो जाता है और अन्तर्लुब्धकी वृत्त्यकी  
विसंयोजनाके पश्चात् पुनः उत्पत्ति हो जाता है अतः इन प्रकृतियोंकी ओपसे ब्रह्मस्थ स्थितियों  
का भी अन्तर पाया जाता है । अन्तर्से सम्पत्त्य और सम्पत्तिप्रदायकी ब्रह्मस्थ स्थितिके  
अन्तरका हुआसा इनके अन्तर्लुब्ध स्थितिके अन्तरके समान जानना चाहिये । तथा अन्तर्लुब्ध  
वृत्त्यकी वृत्त्यकी ब्रह्मस्थ स्थितिके ब्रह्म अन्तर अन्तर्लुब्ध है, क्योंकि अन्तर्लुब्धकी  
वृत्त्यकी विसंयोजनाके पश्चात् पुनः उत्पत्ति उत्पत्ति प्राप्त करनेमें कमसे कम अन्तर्लुब्ध कम  
है । तथा अन्तर्लुब्ध अन्तर अन्तर्लुब्ध कम एकसौ वत्तीस सागर है । क्योंकि जिसने अन्तर्लुब्धकी वृत्त्यकी  
विसंयोजना कर दी है वह यदि मिथ्यात्वमें आकर पुनः उसका उत्पत्ति प्राप्त करे तो उसे ऐसा  
करनेमें सबसे अधिक कम अन्तर्लुब्ध कम एकसौ वत्तीस सागर लगता है ।

§ ५५९ आदेशण अपेक्षा आदिमें मिथ्यात्व बाह्य कथाय और नौ नोकपयोंकी  
ब्रह्मस्थ स्थितिके अन्तर मानी है । ब्रह्मस्थ स्थितिके ब्रह्मस्थ और अन्तर्लुब्ध अन्तर एक समय है ।  
सम्पत्त्य प्रकृतिकी ब्रह्मस्थ स्थितिके अन्तर नहीं है । तथा ब्रह्मस्थका मग अन्तर्लुब्धके समान  
है । सम्पत्तिप्रदायकी ब्रह्मस्थ स्थितिके ब्रह्मस्थ अन्तर पञ्चोपमके अंतर्लुब्धमें माग प्रमाण है ।  
तथा ब्रह्मस्थ स्थितिके ब्रह्मस्थ अन्तर एक समय है और दोनों स्थितियोंका अन्तर्लुब्ध अन्तर  
अन्तर्लुब्ध कम तेतीस सागर है । अन्तर्लुब्धकी वृत्त्यकी ब्रह्मस्थ और ब्रह्मस्थ स्थितिके ब्रह्मस्थ  
अन्तर अन्तर्लुब्ध और अन्तर्लुब्ध अन्तर अन्तर्लुब्ध कम तेतीस सागर है । पहली प्रविष्टिमें मिथ्यात्व  
बाह्य कथाय और नौ नोकपयोंकी ब्रह्मस्थ स्थितिके अन्तर मानी है । तथा ब्रह्मस्थ स्थितिके  
ब्रह्मस्थ और अन्तर्लुब्ध अन्तर एक समय है । सम्पत्त्यकी ब्रह्मस्थ स्थितिके अन्तर नहीं है । तथा  
ब्रह्मस्थ स्थितिके ब्रह्मस्थ अन्तर एक समय और अन्तर्लुब्ध अन्तर अन्तर्लुब्ध कम अपनी स्थितिप्रमाण  
है । सम्पत्तिप्रदायकी ब्रह्मस्थ स्थितिके ब्रह्मस्थ अन्तर पञ्चोपमके अंतर्लुब्धमें माग प्रमाण है ।  
तथा ब्रह्मस्थ स्थितिके ब्रह्मस्थ अन्तर एक समय है और दोनोंका अन्तर्लुब्ध अन्तर अन्तर्लुब्ध कम  
अपनी स्थितिप्रमाण है । अन्तर्लुब्धकी वृत्त्यकी ब्रह्मस्थ और ब्रह्मस्थ स्थितिके ब्रह्मस्थ  
अन्तर अन्तर्लुब्ध और अन्तर्लुब्ध अन्तर अन्तर्लुब्ध कम अपनी स्थितिप्रमाण है । दूसरी प्रविष्टिमें सेकर  
छठी प्रविष्टि तकके नारिकोंमें मिथ्यात्व बाह्य कथाय और नौ नोकपयोंकी ब्रह्मस्थ और ब्रह्मस्थ



भागो । अज० ज० एगस०, उक्क०, सगट्टिदी देसूणा । अणंताणु० चउक्क० जह०  
 अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । सत्तमाए मिच्छत्त-वारसक०-भय-  
 दुगुं० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सत्तणोक०  
 जह० णत्थि अंतरं । अज० जहणुक्क० एगस० । सम्मामि०-अणंताणु० णिरओधं ।  
 सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो ।

स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और दोनों जघन्य अजघन्यका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । सातवीं पृथिवीमें मिध्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग सामान्य नारकियोंके समान है । तथा सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ—**नरक में मिध्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति दूसरे विग्रहके समय एक वार ही प्राप्त हो सकती है, अतः यहाँ जघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं कहा । किन्तु इस जीवके पहले विग्रहमें और तृतीयादि समयों में अजघन्य स्थिति रहेगी अतः नरकमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय कहा है । नरकमें उत्पन्न हुए कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवके ही सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः इसकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं । तथा इसकी अजघन्य स्थितिका अन्तर काल अनुत्कृष्ट स्थितिके समान घटित कर लेना चाहिये । जिस नारकीने उद्वेलना करके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्ति की है वह उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिध्यात्वमें आकर पुनः उद्वेलना करके यदि पुनः उसकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करे तो उसे ऐसा करनेमें पत्यका असंख्यातवा भागप्रमाण काल लगता है, अतः सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा । जिस नारकीने सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिके बाद जघन्य स्थितिको प्राप्त किया और तीसरे समयमें उपशमसम्यक्त्वी होकर पुनः अजघन्य स्थितिको प्राप्त कर लिया उसके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । जो नारकी नरक में उत्पन्न होनेके पहले समयमें और अपनी आयुके अन्तिम समय में उद्वेलनाद्वारा सम्यग्मिध्यात्व की जघन्य स्थितिको प्राप्त करता है उसके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होता है । तथा जिस नारकीने उत्पन्न होनेके बाद दूसरे समयमें सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलना कर दी और अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया उसके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है । तथा नरकमें सम्भव विसंयोजनाके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर प्रमाण प्राप्त होता है । प्रथम नरकके कथनमें सामान्य नारकियोंके कथनसे कोई विशेषता नहीं है । किन्तु जहां सामान्य नारकियोंके कथनमें कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थिति कही हो वहां प्रथम नरककी कुछ कम उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिये । दूसरेसे लेकर छठे नरक

१५६० विरिक्तेषु मिच्छन्त-वारसक० भय-दुर्गुणा० जह० ज० अंतोम०,  
उक्क० असंसेखा सोगा । अम० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मच० जह०  
पत्ति अंतरं । अम० अणुक्कस्समंगो । सम्मापि० जह० ज० पत्तिदो० असंसे० मागो ।  
मम० ज० एगस०, उक्क० ओषं । अणुताणु० उक्क० जह० ओषं । अम० जह०  
अंतोमु०, उक्क० विग्गि पत्तिदो० देसूजाणि । सचजोक्क० ज० ज० पत्तिदो० असंसे०  
मागो, उक्क० अणुताणुसमसंसेखा पोग्गसपरियहा । अम० जहणुक्क० एगस० ।

उक्के मात्किंको मिच्छात्वा वारह क्वाय और नौ नोक्कायोंकी जपन्य स्थिति अन्तिम समयमें ही  
प्राप्त हो सकती है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जपन्य और अजपन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं  
प्राप्त होता । द्वितीयादि प्रकृतियोंमें कृतकृत्यवेदक सम्बन्धित नहीं उत्पन्न होता है अतः वहाँ  
सम्बन्ध और सम्मिध्यात्वाकी जपन्य स्थितिके अन्तरका काल समान है । वह सामान्य  
मात्किंको समान वहाँ भी घटित कर लेता चाहिये । शेष काल सुगम है । सातवें नरकमें मिच्छात्वा  
वारह क्वाय मय और जुगुप्साकी जपन्य स्थिति अन्तके अन्तमुद्धृतमें कम से कम एक समय उक्त  
और अधिक से अधिक अन्तमुद्धृत काल तक प्राप्त हो सकती है । अब जिसने इस अन्तमुद्धृतके  
मध्यमें एक समयके विषे जपन्य स्थिति प्राप्त की उसके अजपन्य स्थितिका जपन्य अन्तर एक  
समय पाया जाता है । तथा जिसने अन्तमुद्धृत उक्त जपन्य स्थिति प्राप्त करके अन्तमें अजपन्य  
स्थिति प्राप्त की उसके अजपन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्धृत पाया जाता है । तथा सात  
नोक्कायोंकी जपन्य स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है, अतः इनकी  
अजपन्य स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय प्राप्त होता है । शेष काल ओषके समान  
है । किन्तु वहाँ भी कृतकृत्यवेदक सम्बन्धित उत्पन्न नहीं होता अतः वहाँ सम्बन्धका काल  
सम्मिध्यात्वाके समान जानना ।

१५६१ तिर्यचोर्णि मिच्छात्वा वारह क्वाय मय और जुगुप्साकी जपन्य स्थितिका जपन्य  
अन्तर अन्तमुद्धृत है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । तथा अजपन्य स्थितिका  
जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्धृत है । सम्बन्धकी जपन्य स्थितिका अन्तर  
नहीं है । तथा अजपन्य स्थितिका मंग अन्तुत्कृष्ट स्थितिक समान है । सम्मिध्यात्वाकी जपन्य  
स्थितिका जपन्य अन्तर पद्मोपमक असंख्यातवें मागप्रमाण और अजपन्य स्थितिका जपन्य  
अन्तर एक समय तथा दोनोका उत्कृष्ट अन्तर ओषके समान है । अनन्तसुखी बहुजकी  
जपन्य स्थितिका अन्तर ओषके समान है । तथा अजपन्य स्थितिका जपन्य अन्तर अन्तमुद्धृत  
और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीग पक्ष है । सात नोक्कायोंकी जपन्य स्थितिका जपन्य अन्तर  
पद्मोपमके असंख्यातवें मागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्धृत काल है जो असंख्यात पुद्गल  
परिवर्तनप्रमाण है । तथा अजपन्य स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ—पहले तिर्यचोर्णि मिच्छात्वा वारह क्वाय, मय और जुगुप्साकी अजपन्य  
स्थितिका जपन्य काल अन्तमुद्धृत और उत्कृष्टकाल असंख्यात लोकप्रमाण बतला आये है अतः  
वही वहाँ इनके उक्त प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिका जपन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये ।  
तथा पहले इनके उक्त प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिका जपन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल  
अन्तमुद्धृत बतला आये हैं अतः वही वहाँ इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजपन्य स्थितिका जपन्य और  
उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । तिर्यचोर्णि सम्बन्धकी जपन्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्बन्धितके  
प्राप्त होती है अतः इनके सम्बन्धकी जपन्य स्थितिके अन्तरकालका नियम दिया है । तिर्यचोर्णि

§ ५६१. पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त-  
वारसक०-भय-दुगुंछ० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एयस० । सम्म० जह०  
णत्थि अंतरं । अज० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुच्चकोटिपुधत्तेण-

सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण वतला आये हैं उसी प्रकार यहा उसकी अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिये । किसी एक तिर्यचने उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया । पुनः वह दूसरे समयमें उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया तो उसे मिध्यात्वमें जाकर उद्वेलनाके द्वारा पुनः सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करनेमें पल्यका असंख्यातवा भाग प्रमाण काल लगता है, अतः तिर्यचके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर-काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । जो तिर्यच सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिके साथ एक समय तक रहा और दूसरे समयमें वह उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया उसके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय कहा । तथा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान जानना, क्योंकि ओघमें कहा गया उत्कृष्ट अन्तरकाल तिर्यचोंके ही घटित होता है । एक अन्तर्मुहूर्तमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना दो बार प्राप्त हो सकती है और ओघसे विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति होती है जो तिर्यचोंके भी सम्भव है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर-काल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त कहा । तिर्यचोंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका उत्कृष्ट अन्तर-काल अर्ध पुद्गलपरिवर्तन है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल ओघके समान कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन कहा । तथा तिर्यचोंके चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा तिर्यचोंके चौबीस प्रकृतिक स्थानका सत्त्वकाल कुछ कम तीन पल्य है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य कहा । जो एकेन्द्रिय जीव सोलह कषायोंकी जघन्य स्थितिके साथ पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बन्ध कालके अन्तिम समयमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है । अब यदि दूसरी बार यह जीव इसी स्थितिको प्राप्त करना चाहे तो उसे कमसे कम पल्यका असंख्यातवा भाग प्रमाण काल लगेगा, क्यों कि किसी एकेन्द्रियको पचेन्द्रियके योग्य स्थितिका घात करके एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिको प्राप्त करनेमें पल्यका असंख्यातवा भाग प्रमाण काल लगता है, अतः तिर्यचोंके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । तथा एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है । अब यदि किसी एकेन्द्रियने उक्त कालके प्रारम्भ और अन्तमें पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया तो उसके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका उक्त काल प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर काल पाया जाता है । तिर्यचोंके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति एक समयके लिये प्राप्त होती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा ।

§ ५६१. पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमत्तियोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वसे

अहियाणि । सम्मायि० अह० अ० पक्षिदो० अरुत्से० मागी । अज० अ० एगसमओ,  
 उक्क० तिणि पस्सिदो० पुक्ककोडिपुपत्तेपम्माहियाणि । अणत्ताणु० पउक्क० अ० म०  
 अतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अम० अह० अतोमु०, उक्क० तिणि पस्सिदोव  
 माणि देसूणाणि । सत्तणोक्क० अह० अत्थि अंतरं । अज० अहण्णुक्क० एगस० । गवरि  
 पविदियतिरिक्कवओगिणीसु सम्मत्त० सम्मायिप्यत्तर्यगो ।

अधिक तीन पक्षप्रमाण है । सम्मामिध्यात्वकी अक्षय्य स्थितिका अक्षय्य अन्तर पक्षोपमके  
 अक्षय्यप्रमाणे मगप्रमाण है । तथा अक्षय्य स्थितिका अक्षय्य अन्तर एक समय और दोनोका  
 उक्क अन्तर पूर्वकोटि पूर्ववत्से अधिक तीन पक्ष है । अन्तस्तुवम्भी क्कुप्पकी अक्षय्य  
 स्थितिका अक्षय्य अन्तर अन्तमु हुत्त और उक्क अन्तर उक्क कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा  
 अक्षय्य स्थितिका अक्षय्य अन्तर अन्तमु हुत्त और उक्क अन्तर उक्क कम तीन पक्ष है । सात  
 नाक्यायोकी अक्षय्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अक्षय्य स्थितिका अक्षय्य और उक्क अन्तर  
 एक समय है । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनिमतिर्योमें सम्मत्त्वका मग  
 सम्मामिध्यात्वके समान है ।

विशेषार्थ—एक तीन प्रकारके तिर्यक्के मिध्यात्व, बाह्य कयाव, मय और कुप्यात्की  
 अक्षय्य स्थितिका अन्तरकाल पंचेन्द्रिय तिर्यक्, पंचेन्द्रिय तिर्यक् पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यक्  
 योनिमती पयायके रहते हुए नहीं प्राप्त होता क्योंकि वा बाहर पंचेन्द्रिय इत सम्मत्त्वप्रमाणसे एक  
 तीन प्रकारके तिर्यक्के उत्पन्न होता है उसीके इनकी अक्षय्य स्थिति पर्य्य जाती है अतः इनके  
 एक प्रवृत्तियोंका अक्षय्य अन्तर काल नहीं कहा । इनके सात मोक्षायोंकी अक्षय्य स्थितिके अन्तरके  
 नहीं होमेका भी यही कारण जानना चाहिये । तथा इनके एक प्रवृत्तियोंकी अक्षय्य स्थिति एक समयके  
 लिय होती है, अतः अक्षय्य स्थितिका अक्षय्य और उक्क अन्तरकाल एक समय कहा । तिर्यक्के  
 सम्मत्त्वकी अक्षय्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्मत्त्वके होती है और ऐसे बीचके पुनः सम्मत्त्वका उत्पन्न  
 नहीं पाया जाता अतः अन्तिम मेवके जोड़कर एक दो प्रकारके तिर्यक्के सम्मत्त्वकी अक्षय्य स्थितिका  
 अन्तरकाल नहीं कहा । जिस तिर्यक्के सम्मत्त्वकी छोड़ना करके एक समयके अन्तरकालसे उपर्य्य  
 सम्मत्त्वको प्राप्त किया है उसके सम्मत्त्वका अन्तर एक समय पाया जाता है, अतः विशिष्ट  
 तिर्यक्के सम्मत्त्वकी अक्षय्य स्थितिका अक्षय्य अन्तर एक समय कहा । एक तीन प्रकारके  
 तिर्यक्के उक्क कम पूर्वकोटि पूर्ववत्से अधिक तीन पक्ष है । अब यदि किसीने अपने कालके  
 प्रारम्भमें सम्मत्त्वकी छोड़ना की और अन्तमें अक्षय्य सम्मत्त्वको प्राप्त करके सम्मत्त्वकी अक्षय्य  
 स्थितिके प्राप्त किया तो उसके एक काल तक सम्मत्त्वका अन्तर पाया जाता है अतः एक  
 तीन प्रकारके तिर्यक्के सम्मत्त्वकी अक्षय्य स्थितिका उक्क अन्तर काल एक प्रमाण कहा । तथा  
 सम्मामिध्यात्वकी अक्षय्य स्थितिका अक्षय्य और उक्क अन्तरकाल सम्मत्त्वके समान पटित  
 कर लेना चाहिये और सामान्य तिर्यक्के सम्मामिध्यात्वकी अक्षय्य स्थितिका अन्तरकाल जिस  
 प्रकार पटित करके लिख गये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये, इसलिये इसका अक्षय्यसे  
 कुतासा नहीं किया । किन्तु कहा इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यक्के सम्मत्त्वकी अक्षय्य  
 स्थितिका अन्तरकाल सम्मामिध्यात्वके समान ही प्राप्त होता है, क्योंकि इन्हीं कृतकृत्यवेदक  
 सम्मत्त्वके बीच नहीं उत्पन्न होता । एक तीनों प्रकारके तिर्यक्के अन्तस्तुवम्भीकी अक्षय्य स्थिति  
 बिसंबोझाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है और जिसने अन्तस्तुवम्भीकी बिसंबोझा की  
 है ऐसा जोड़ मिध्यात्वमें बाहर और सम्मत्त्वको प्राप्त करके पुनः बिसंबोझा करने तो कमसे कम

§ ५६२. पचि०तिरि० [ अ ] पज्ज० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० पचि०-तिरिक्खभंगो । अणंताणु०चउक० मिच्छत्तभंगो । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णा-जहण्ण० णत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज०-सन्धविगलिटिय-पंचिंदियअपज्ज०-त्तस-अपज्जने ति ।

§ ५६३. मणुसतिय० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० अज० णत्थि अतरं । सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि सम्मामि० जह० ओधं ।

अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंका जो उत्कृष्ट काज पूर्वोद्दिष्टव्यक्त्यसे अधिक तीन पल्य बतला आये हैं सो इसके आदि और अन्तमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करावे और इस प्रकार उभयत्र अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति ले आवे, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहा । किसीने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके अन्त समयमें अजघन्य स्थितिका अन्तर किया और अन्तर्मुहूर्तके बाद मिथ्यात्व में जाकर उसने पुनः अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थिति प्राप्त करली तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है इसीलिये उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है यह स्पष्ट ही है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः इनके सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा ।

§ ५६२ पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंका भग पंचेन्द्रियतिर्यचोंके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मिथ्यात्वके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और व्रस अपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके मिथ्यात्व आदि २२ प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है और यह सब व्यवस्था पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है, अतः इस कथनको पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान करनेकी सूचना की । पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरके सम्बन्धमें यही व्यवस्था जाननी चाहिये, अतः इसके कथनको मिथ्यात्वके समान कहा । पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना तो होती है पर इसी पर्यायके रहते हुए पुनः इनकी प्राप्ति नहीं होती, अतः इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं बनता । मूलमें मनुष्य लब्धपर्याप्त आदि और जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ५६३. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । शेष प्रकृतियोंका भग पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर ओघके समान है ।

**विशेषार्थ**—मनुष्य त्रिकके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दर्शनमोहनीयकी क्षणिके समय

१५६४ देव० मिच्छन्त-वारसक०-गणणोक्त० अह० गतिथि अतरं । अज० अहणन्क० एयस० । सम्मच० अह० गतिथि अतरं । अज० अह० एयस०, उक्त० एकचीसं सागरोबमाणि देवणाणि । सम्मामि० अह० अह० पसिन्धो० असंखे० भागो । उक्त० एकचीससागरो० देवणाणि । अमह० अह० [ एयसममो, ] उक्त० एकचीस सागरोबमाणि देवणाणि । अगंताणु० ज० अम० अ० अंतोमु०, उक्त० एकचीस० देवणा० ।

तथा धातु कथ्य और नौ नोकपायोंकी अथर्व स्थिति आरिजमोहनीयकी सम्पत्तिके समब प्राप्ति होती है तथा इसके बाद इनका पुनः सत्त्व सम्पन्न नहीं अतः इनकी अथर्व और अजयम् स्थितिका अन्तरकात्त नहीं कहा । अब होय आ कह प्रकृतियां बबती हैं सो इनकी अथर्व और अजयम् स्थितिके अन्तरके विषयमें जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यक्के लुप्तासा कर भाव हैं वही प्रकार यहां भी सुसासा कर लेता चाहिये । किन्तु इनके सम्ममिध्यात्वकी अथर्व स्थितिका अथर्व अन्तरकात्त ओषके गन्तव्य वन जाता है, क्योंकि इनके सम्ममिध्यात्वकी अथर्वस्थानके समान सम्पत्ति भी पाई जाती है ।

१५६४ देवोमि मिध्यात्व धातु कथ्य और नौ नोकपायोंकी अथर्व स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजयम् स्थितिका अथर्व और अहृष्ट अन्तर एक समय है । सम्पत्त्वकी अथर्व स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजयम् स्थितिका अथर्व अन्तर एक समय और अहृष्ट अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है । सम्ममिध्यात्वकी अथर्व स्थितिका अथर्व अन्तर पस्मोपमके असंख्यातवर्गे भागप्रमाण है और अहृष्ट अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है । तथा अजयम् स्थितिका अथर्व अन्तर कात्त एक समय और अहृष्ट अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है । अन्तःप्राप्तकी अथर्व अथर्व और अजयम् स्थितिका अथर्व अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अहृष्ट अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है ।

विशुद्धार्थ—जो अक्षरी दो मोड़ा लेकर देवोमि उत्पन्न होता है उसके दूसरे बिम्बके समब ही मिध्यात्व, धातु कथ्य, मम और जुगुप्साकी अथर्व स्थिति सम्पन्न है । तथा इसी बीजके प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके लक्ष्यकात्तके अन्तमें सात नोकपायोंकी अथर्व स्थिति सम्पन्न है, अतः सामान्य देवोमि अहृष्ट प्रकृतियोंकी अथर्व स्थितिका अन्तर कात्त नहीं कहा । तथा इनके अहृष्ट प्रकृतियोंकी अथर्व स्थिति एक समय तक पाई जाती है अतः इनके अहृष्ट प्रकृतियोंकी अथर्व स्थितिका अथर्व और अहृष्ट अन्तरकात्त एक समय कहा । देवोमि अहृष्टप्रकृतिके सम्ममिध्यात्व बीज उत्पन्न होता है अतः इनके सम्पत्त्वकी अथर्व स्थितिका अन्तरकात्त सम्पन्न नहीं है । कारण स्पष्ट है । जिस देवोमि अहृष्टप्रकृतिके एक समयके अन्तरकात्तके लक्ष्य सम्पत्त्वकी प्राप्ति होती है उसके सम्पत्त्वकी अथर्व स्थितिका अन्तर एक समय पाया जाता है अतः सामान्य देवोमि सम्पत्त्वकी अथर्व स्थितिका अथर्व अन्तरकात्त एक समय कहा । देवोमि अथर्व मेषयक तकके देव ही मिध्यात्व होते हैं । अब जिस देवोमि अहृष्टप्रकृतिके पहले समयमें सम्पत्त्वकी अहृष्टता करके अजयम् स्थितिका अन्तर किया और अन्तर्मुहूर्तकात्तके होय रद वान पर लक्ष्य सम्पत्त्वकी प्राप्ति करके सम्पत्त्वकी अथर्व स्थितिको प्राप्त किया इसके सम्पत्त्वकी अथर्व स्थितिका अन्तरकात्त कुछ कम इच्छीस सागर पाया जाता है, अतः सामान्य देवोमि अहृष्ट प्रकृतिकी अथर्व स्थितिका अहृष्ट अन्तरकात्त एक प्रमाण कहा । इसी प्रकार सम्ममिध्यात्वकी अथर्व और अजयम् स्थितिका अहृष्ट अन्तरकात्त पठित कर लेना चाहिये । किन्तु इसी विवेचना है कि

§ ५६५ भवण०वाण० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० जह० अज० देवोर्ध० ।  
 सम्मत्त०-सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०भागो । उक्क० सगट्ठिदी देसूणा ।  
 अज० ज० एयस०, उक्क० सग० देसूणा । अणंताणु०चउक्क० जह० अज० ज०  
 अंतोष्ठ०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । जोइसियादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-  
 वारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त ज० णत्थि अंतरं । अज०  
 अणुक्कस्सभंगो । सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०भागो । उक्क० सगसगु-  
 क्कस्सट्ठिदी देसूणा । अज० अणुक्कस्सभंगो । अणंताणु०चउक्क० ज० अज० ज०

जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त करते समय जीवनमें पत्युके असंख्यातवें भाग कालके शेष रह जाने पर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करावे और वहासे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति प्राप्त करावे । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल पत्युके असंख्यातवें भाग प्रमाण जिस प्रकार तिर्यचके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके घटित कर लेना चाहिये । तथा जिस देवने सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनाके पहले समयमें सम्यक्त्वकी प्राप्त कर लिया है उसके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है, अतः देवोंके सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय कहा । अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके जघन्य अन्तरकालको जिस प्रकार तिर्यचोंके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके घटित कर लेना चाहिये । एक देव है जिसने जीवनके प्रारम्भमें विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया अनन्तर वह मिध्यात्वको प्राप्त हो गया और जब जीवनमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रह जाय तब वह पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करे तो उसके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका अन्तर कुछकम इकतीस सागर बन जाता है, अतः सामान्य देवोंके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा । तथा जिस देवने प्रारम्भमें विसंयोजना द्वारा विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका अन्तर किया और जीवन भर वह सम्यक्त्वके साथ रहा । पुनः जीवनके अन्तिम समयमें वह मिध्यात्वको प्राप्त हुआ तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका अन्तर कुछकम इकतीस सागर पाया जाता है, अतः इसका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा ।

§ ५६५. भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें मिध्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर सामान्य देवोंके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिमत्रैवेयक तकके देवोंमें मिध्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है तथा अजघन्यका भंग अनुकृष्टके समान है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अजघन्यका भंग अनुकृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम

मंतो०, ठक्क० सगहिदी देसूणा । गवरि जोइसिएसु सम्पच० सम्मामिच्छचर्मंगो । मणुरिसादि बाव सुव्वह० सव्वपयदीणं म० अज० गरिथ अंतर । कम्मइय आहार० आहारमिस्स०-अकाद० अकसा० आमिणि०-सुव्व०-ओहि०-मणपज्ज०-विहंग०-संजद० सामाइय-वेदो० परिहार०-सुहुम०-बहाक्साद० संमदासज्जद०-ओहिदस०-सम्मादि०-सइय० वेदय०-जवसम०-सासण०-सम्मामि०-अणाहारए ति गतिय अंतर ।

§ ५६६ पइदिपसु मिच्छत्त-साससक० मय-दुगुब्ब० जह० न० मंतोसु०, ठक्क० मसंसेज्जा सोगा । अज० ज० पगस०, ठक्क० मंतोसु० । सम्पच०-सम्मामि० न० अज० पत्ति० मंतर । सचणोक्क० ज० न० मंतोमु०, ठक्क० असंसेज्जा सोगा । अज० नइप्पुक्क० पगस० । एवं सुहुम० । बादराणमेव येव । गवरि सगहिदी देसूणा । एवं बादरपज्जचा

अपनी स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विवेकता है कि ज्योतिषियोंमें सम्पत्त्वका मंग सम्पत्ति प्राप्त करने के समान है । अनुविशसे लेकर सर्वाधिसिद्धि तक पूर्वोंमें सब प्रकृतियोंकी अपन्य और अवपन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार कर्मव्यवहारयोगी आहारकप्रयोगी आहारकमित्र व्यवयोगी, अपगतवेदी, अकवायी, आमिनिवाधिकाज्ञानी, लुत्तज्ञानी, अवधिकाज्ञानी मन्त्रपयज्ञानी, विम्वज्ञानी, संवत्, सामासिकसंवत् वेदोपस्थापनासंवत्, परिश्रमविहङ्गसंवत्, सूक्ष्मसांपराधिक-संवत्, वधाक्यातसंवत् संवत्तासंवत्, अवधिवर्द्धनवाक्के, सम्पत्ति, वायिकसम्पत्ति, वेदकसम्पत्ति, उपक्रमसम्पत्ति, सासावनसम्पत्ति, सम्पत्तिप्राप्ति और जनाहारक जीवोंके सब प्रकृतियोंकी अपन्य और अवपन्य स्थितिका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—अनन्तवासी और अन्तरदेवोंमें कृतकृत्यवेदक सम्पत्ति जीव नहीं उत्पन्न होते अतः इनके वहाँ सम्पत् सम्पत्त्वकी अपन्य स्थितिका अन्तरकाल बन जाता है, क्योंकि एक बार सम्पत्त्वकी अपन्य स्थितिको प्राप्त करके पुनः वही स्थितिको प्राप्त करनेमें पत्त्वके असंख्यातमें भागप्रमाण काल लगता है । सेप कवन सुगम है । ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिम प्रियेक तकके देवोंके मिष्ठात्व, बाह्य कपाय और नौ नोकपायोंकी अपन्य स्थितिका प्राप्त होना जीवनके अन्तिम समयमें सम्भव है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अपन्य और अवपन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं पाया जाता । ज्योतिषियोंमें कृतकृत्यवेदक सम्पत्ति जीव नहीं उत्पन्न होता, अतः इनके सम्पत्त्वकी अपन्य स्थितिका अन्तरकाल अनन्तवासियोंके समान बन जाता है, सेपके नहीं । अनुविशारिकमें सम्पत्ति जीव ही उत्पन्न होते हैं, अतः वहाँ किसी भी प्रकृतिका अन्तरकाल सम्भव नहीं है । इसी प्रकार आहारकप्रयोगसे लेकर सम्पत्तिप्राप्ति तकके जीवोंमें अपन अपन कालके अन्तिम समयमें अपन्य स्थिति होनेके कारण अन्तर संभव नहीं है । कर्मव्यवहारयोग और अनन्तरक ऐसी मार्गवाप हैं जिनमें सम्भव सब प्रकृतियोंकी अपन्य और अवपन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं, क्योंकि वहाँ अन्तरकालके साथ दो बार अपन्य या अवपन्य स्थिति नहीं पाई जाती ।

§ ५६६ एकेत्रिजोंमें मिष्ठात्व, सोहह कपाय मय और सुगुप्ताकी अपन्य स्थितिका अपन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उल्लस अन्तर असंख्यात लोकाप्रमाण है । तथा अवपन्य स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उल्लस अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्पत्त्व और सम्पत्ति प्राप्त करनेकी अपन्य और अवपन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सात नोकपायोंकी अपन्य स्थितिका अपन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उल्लस अन्तर असंख्यात लोकाप्रमाण है । तथा अवपन्य स्थितिका



पज्जत्ताणं । सुहुमपज्जत्तापज्जत्तासु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० जहणुक्क० अतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सत्तणोकसाय० ज० जहणुक्क० अंतोमु० । अज० जहणुक्क० एगसमओ । [सम्मत्त-सम्मा० ज० अज० णत्थि अंतरं ।]

१५६७ पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्क० भंगो । सम्मा-मि० ज० ज० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देमूणा । अणंताणु०-

जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय हैं । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये । वादर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार वादर पर्याप्तक और वादर अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—जो वादर एकेन्द्रिय मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करके पुनः उसे प्राप्त करना चाहता है उसे वैसा करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकाल लगता है अतः एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा यदि ऐसा जीव सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें अपने उत्कृष्ट काल तक परिभ्रमण करे और फिर वादर एकेन्द्रिय हो कर जघन्य स्थिति प्राप्त करे तो असंख्यात लोकप्रमाण काल लगता है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा । तथा एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । इनके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वोक्त रीतिसे ही घटित कर लेना चाहिये । किन्तु अजघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि इनके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्रमाण ही होता है, अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय प्रमाण ही प्राप्त होगा । एकेन्द्रियोंको सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती, अतः उनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं, यह स्पष्ट ही है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्वादिकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है । शेष कथन पूर्वोक्त प्रमाण ही है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है, अतः इनके उक्त सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है । शेष कथन पूर्वोक्त प्रमाण ही है ।

१५६७ पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, व्रस और व्रसपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है ।

चतुष्टय० ज० ज० अंतोमु०, चतु० सगदिदी देवणा । अम० ज० अंतोमु०, चतु० वे  
आवहिसागरो० देवणाणि । एवं पुरिस०-अवस्तु०-सणि चि ।

१५६८ कायापुवादेण पंचकाय० एद्वियमंगो । जपरि सगसगुक्कस्सहिदी  
देवणा । पंचमण०-पचवणि० मिच्छत्त-सोत्तसक०-जणपोक० ज० अम० जणिय अंतर ।  
सम्मज्ज० सम्मामि० ज० जणिय अंतर । अम० ज० एगस०, चतु० अंतोमु० । काय  
ओगि० ओरासि०-वेदविय० मणसोमियमंगो । ओरासियमिस्स० सुहुमेद्वियअपज्ज  
मंगो । जपरि सचपोक० ज० जणिय अंतर । अम० ज० एगसमंगो । वेद  
वियमिस्स० मिच्छत्त-सम्मज्ज-सम्मामि०-सोत्तसक० मय-दुग्ग० ज० अज्ज० जणिय  
अंतर । सचपोक० ज० जणिय अंतर । अज्ज० ज० एगस० ।

तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अमन्तलुक्की वगुप्की अपन्य  
स्थितिक्र अचम्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा  
अजपन्य स्थितिक्र अचम्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो व्यासठ सागर  
है । इसी प्रकार पुरुषवेदवसे अचुरणेनवासे और सीधी सीबोके जानना चाहिये ।

विशुपार्थ—पंचेन्द्रिय आदि बार मानोयाओंमें वसैन्माइनीय और बारिजेनेइनीयकी  
अपवाके समय मिच्छात्त, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अपन्य स्थिति पाई जाती है, अतः  
इन्के उक्त प्रकृतिबोकी अपन्य और अजपन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं पड़ा । तथा इनके  
उत्कृष्टवेदवके अन्तिम समय में सम्पत्त्वकी अपन्य स्थिति पाई जाती है अतः इसकी अपन्य  
स्थितिक्र अन्तरकाल भी सम्मज नहीं । जिसन सम्ममिच्छात्वकी वसैन्मा की और सम्मगृष्टि होकर  
अन्तमुहूर्त में उसकी अपवा की इसके सम्ममिच्छात्वकी अपन्य स्थितिका अपन्य अन्तरकाल  
अन्तमुहूर्त पाया जाता है, अतः इसका अपन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त पड़ा । शेष कवन सुगम है ।

१५६८ काय मानोयाके अनुवासे पांच स्वावर कायोंमें पंचेन्द्रियोंके समान मंग है ।  
किन्तु इतनी विसेयता है कि कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति पवनी चाहिये । पांचों  
मनोयोगी और पांचों मनोयोगी बीबोंमें मिच्छात्त सोसह कपाय और नौ नाकपायोंकी  
अपन्य और अजपन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्पत्त्व और सम्पगिमिच्छात्वकी अपन्य  
स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजपन्य स्थितिका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट  
अन्तर अन्तमुहूर्त है । अजपयोगी औरारकपाययोगी और वैश्वियकपाययोगी बीबोंमें मना  
योगियोंके समान मंग है । औद्धारिक मिमकाययोगियोंमें सूक्ष्म पंचेन्द्रिय अपवर्तकके समान मंग  
है । किन्तु इतनी विसेयता है कि इनके सात माकपायोंकी अपन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा  
अजपन्य स्थितिका अपन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । वैश्वियकमिमाकाययोगियोंमें  
मिच्छात्त सम्पत्त्व सम्ममिच्छात्व साहह कपाय मय और सुगुप्ताकी अपन्य और अजपन्य  
स्थितिक्र अन्तर नहीं है । सात नोकपायोंकी अपन्य स्थितिक्र अन्तर नहीं है । तथा अजपन्य  
स्थितिक्र अपन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विसेयार्थ—पांचों मनोयोगों और पांचों वचनयोगोंमें मिच्छात्त बारह कपाय और नौ  
नोकपायोंकी अपन्य और अजपन्य स्थितिका तथा सम्पत्त्वकी अपन्य स्थितिक्र अन्तरकाल नहीं है  
सो इसका सुज्ञासा पंचेन्द्रिय मार्गोयायें जिस प्रकार कर बाध हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये ।  
तथा उक्त योगोंमेंसे एक योगके छठे रूप अन्तलुक्कीकी पां बार विसंबावना सम्मज नहीं, अतः

§ ५६९. इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० ज० अज० एत्थि अंतरं । सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्क० भंगो । सम्मामि० ज० ज० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणताणु० चउक्क० ज० सम्मामिच्छत्त-भंगो । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पणवणणपल्लिदो० देसूणाणि ।

§ ५७०. एवुंस० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । सेसमोघं । णवरि अणताणु० चउक्क० अज० ज० अतोमु०, उक्क० तेत्तीमं सागरो० देसूणाणि । एवमसंजद० । णवरि वारसक०-णवणोक० तिरिक्खभंगो । चत्तारिक० मणजोगिभंगो ।

§ ५७१. मदि-सुदअण्णा० तिरिक्खोघं । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० एत्थि अंतरं । अणताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवमभव०-मिच्छा० ।

इनमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । इसी प्रकार उक्त योगोंमेंसे किसी एक योग के रहते हुए सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका दो बार प्राप्त होना सम्भव नहीं, अतः इनमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्भलनाके अनन्तर समयमें या अन्तर्मुहूर्तके बाद विघटित योगके रहते हुए उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव है अतः इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा । औदारिकमिश्रकाययोग में सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रियके एक बार ही प्राप्त होती है, अतः उसका अन्तरकाल नहीं है । किन्तु इस जघन्य स्थितिके कारण अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार वैकृतिकमिश्रकाययोगमें सात नोकपायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्रमाण वदित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५६६ स्त्रीवेदवालोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्यस्थितिके अन्तरका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पत्य है ।

§ ५७० नपुसकवेदवालोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर ओवके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । इसी प्रकार असंयतोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकपायोंका भंग त्रिचोके समान है । चारों कषायवालोंका भंग मनोयोगियोंके समान है ।

§ ५७१ मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका भग सामान्य त्रिचोके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

§ ५७२ द्विदिमिहपीए उच्छ्रयविद्विदिमिहपीए मंगविचओ ।  
मम० म० एयस०, उच्छ० मंतोमु० । सचणोक० म० नत्ति मंतरं । मज० ज०  
एयस०, उच्छ० सगदिदी देसणा । मणताणु० चत्तक० ज० अज० ज० मंतोमु०,  
उच्छ० सगदिदी देसणा । गवरि काउ० सम्मच० ज० नत्ति मंतरं । सेठ० सोहम्म  
मंगो । पम्म० सहस्तरमंगो । मुक्के० मिच्छत्त०-वारसक०-जवणोक० म० मज०  
नत्ति मंतरं । सेसमुवरिमगेवज्जमंगो । असज्जि० मिच्छादिमंगो । आहार० मोषं ।  
जवरि सगुक्कस्सदिदी देसणा ।

एवमंतराणुगमो समयो ।

● बाबाजीवेहि मंगविचओ ।

§ ५७३ एवमहियारसमाखणमुत्तं सुममं ।

● तस्य अदपर्व । तं जहा—ओ उच्छसियाए दिदीए बिहत्तिओ सो  
अणुक्कस्सियाए दिदीए या होवि बिहत्तिओ ।

§ ५७४ कुदो ? उच्छस्सदिदीए समज्जुक्कस्सदिदियाविकाअभिसेसाणममावादो ।

§ ५७५ कृष्ण जीव और कापोत श्रेयावाक्योंमें मिथ्यात्व बारह कथाओंमें और  
कुमुप्ताकी वचन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजवण्य स्थितिका वचन्य अन्तर एक समय  
और उच्छ्रय अन्तर अन्तमु हुत है । सात भोक्तव्योकी वचन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा  
अजवण्य स्थितिका वचन्य और उच्छ्रय अन्तर एक समय है । सम्मत्त्व और सम्मत्तिमिथ्यात्वकी  
वचन्य स्थितिका वचन्य अन्तर पञ्चोपमक जलसंवातमें समानमात्र और अजवण्य स्थितिका  
वचन्य अन्तर एक समय है । तथा दोनोका उच्छ्रय अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है ।  
अन्तस्तुल्यकी कृष्णकी वचन्य और अजवण्य स्थितिका वचन्य अन्तर अन्तमु हुत और उच्छ्रय  
अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कापोतश्रेयामें सम्मत्त्वकी  
वचन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । पीतश्रेयामें मंग सौधर्मक समान है । पञ्चश्रेयाका मंग  
सहस्तरके समान है । उच्छ्रयश्रेयावाक्योंमें मिथ्यात्व बारह कथाओं और नौ भोक्तव्योकी वचन्य  
और अजवण्य स्थितिका अन्तर नहीं है । शेष प्रकृतिपौष्ट्य मंग अपरिमितवैयक्यके समान है ।  
असेविजोंमें मिथ्यादिहके समान मंग है । आहारमें मोषके समान है । किन्तु इतनी विशेषता  
है कि कुछ कम अपनी उच्छ्रय स्थिति होती है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

● अब नाना जीवोंकी अपेक्षा मंगविचयका अधिकार है ।

§ ५७६ अब सूत्र अधिकारके सम्हालनेके लिये आया है जो सुमम है ।

● इस विषयमें यह अर्थपद है । यथा—ओ उच्छ्रय स्थितिबिमक्तिवासा है  
यह अनुच्छ्रय स्थितिबिमक्तिवासा नहीं होता ।

§ ५७७ हाँका—उच्छ्रय स्थितिबिमक्तिवासा अनुच्छ्रय स्थितिबिमक्तिवासा क्यों नहीं होता ?  
समाधान—क्योंकि उच्छ्रय स्थितिमें एक समय कम उच्छ्रय स्थिति इत्यादि कात विशेष

§ ५६९. इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० ज० अज० एत्थि अंतरं । सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं । अज० अणुक० भंगो । सम्मामि० ज० ज० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणताणु० चउक्क० ज० सम्मामिच्छत्त-भंगो । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पणवण्णपल्लिदो० देसूणाणि ।

§ ५७०. एवुंस० मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । सेसमोघं । णवरि अणताणु० चउक्क० अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एवमसंजद० । णवरि वारसक०-णवणोक० तिरिक्खभंगो । चत्तारिक० मणजोगिभंगो ।

§ ५७१. मदि-सुदअण्णा० तिरिक्खोघं । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० एत्थि अंतरं । अणताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवमभव०-मिच्छा० ।

इनमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । इसी प्रकार उक्त योगोंमेंसे किसी एक योग के रहते हुए सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका दो बार प्राप्त होना सम्भव नहीं, अतः इनमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा । सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनाके अनन्तर समयमें या अन्तर्मुहूर्तके बाद विवक्षित योगके रहते हुए उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव है अतः इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा । औदारिकमिश्रकाययोग में सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रियके एक बार ही प्राप्त होती है, अतः उसका अन्तरकाल नहीं है । किन्तु इस जघन्य स्थितिके कारण अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगमें सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्रमाण घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५६६ ऋग्वेदवालोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्यस्थितिके अन्तरका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पत्य है ।

§ ५७० नपुसकवेदवालोंमें मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । इसी प्रकार असंयतोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग तिर्यचोंके समान है । चारों कषायवालोंका भंग मनोयोगियोंके समान है ।

§ ५७१ मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका भग सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिध्यात्वके समान है । इसी प्रकार अभ्यन् और मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

❁ सिया अबिहसिया च बिहसिया च ।

§ ५७८ कुदो ? कम्हि बि काले तिहुअणासेसजीवेसु अणुअस्सद्विदिविहसिएसु संतेसु तस्य एगजीवस्स उअस्सद्विदिविहसिदसणादो ।

❁ सिया अबिहसिया च बिहसिया च ।

§ ५७९ कुदो ? अणतेसु अबिहसिएसु संतेसु तस्य सस्सेअणमसंसेअणं वा उअस्सद्विदिविहसिदसिआणं संमणुपवाभादो ।

❁ ३ ।

§ ५८० एत्थ तिण्मंको किं कारणं इविदो ? एवमेवे एत्थ तिप्पि चेव मंगा होति पि माणाअणइ ।

❁ अणुअस्सियाए द्विदीए सिया सक्खे जीवा बिहसिया ।

§ ५८१ कुदो, उअस्सद्विदिविहसिएदि बिणा तिहुअणासेसजीवाणमणुअस्सद्विदीए चेव अविद्वानं कम्हि बि काले उअसंमादो ।

❁ सिया बिहसिया च अबिहसिया च ।

❁ कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके अभिमन्त्रितवाले होते हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाला होता है ।

§ ५८२ शंका—येसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कलमें तीन शोकके सब जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले रहते हुए उनमेंसे एक जीव उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाला होता जाता है ।

❁ कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिअभिमन्त्रितवाले होते हैं और बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले होते हैं ।

§ ५८३ शंका—येसा क्यों होता है ?

समाधान—उत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाले अमल जीवोंके रहते हुए कलमें कदाचित् संख्यात वा असंख्यात जीव उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले पाये जाते हैं ।

❁ ३ ।

§ ५८४ शंका—यहाँ पर तीनका अंक किससिने रखा है ?

समाधान—इस प्रकार यहाँ पर ये तीन हाँ मंगा होते हैं इस बातका ज्ञान अणुअस्सद्विदिविहरीए पर तीनका अंक रखा है ।

❁ कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले होते हैं ।

§ ५८५ शंका—येसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कलमें उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले जीवोंके बिना तीन शोकके सब जीव अनुत्कृष्ट स्थितिमें ही विद्यमान पाये जाते हैं ।

❁ कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाला होता है ।

उक्कस्सट्ठिदिपडिसेहमुहेण अणुक्कस्सट्ठिदिपउत्तीदो वा ।

❀ जो अणुक्कस्सियाए ट्ठिदीए विहत्तिओ सो उक्कस्सियाए ट्ठिदीए ए होदि विहत्तिओ ।

५७५. कुदो ? परोप्परपरिहारसरूवेण उक्कस्साणुक्कस्सट्ठिदीणमवट्ठाणादो । एवमेदमेगमट्ठपदं । किमट्ठपदं णाम ? भणिस्समाणअहियारस्स जोणिभावेण अवट्ठिदअत्थो अत्थपदं णाम ।

❀ जस्स मोहणीयपयडी अत्थि तम्मि पयदं । अक्कम्मे ववहारो एत्थि ।

§ ५७६. सुगममेदं ।

❀ एदेण अट्ठपदेण मिच्छुत्तस्स सव्वे जीवा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए सिया अविहत्तिया ।

§ ५७७. एत्थ सियासदो कदाचिदित्यस्यार्थे द्रष्टव्यः, तेण कम्मि वि काले सव्वे जीवा मिच्छुत्तुक्कस्सट्ठिदीए अविहत्तिया होति त्ति सिद्धं । किमट्ठमुक्कस्सट्ठिदीए सव्वे जीवा अक्कमेण अविहत्तिया ? ण, तिव्वसंकिलेसाणं जीवाणं पाएण संभवाभावादो ।

नहीं पाये जाते । अथवा उत्कृष्ट स्थितिका प्रतिषेध करके अनुत्कृष्ट स्थितिकी प्रवृत्ति होती है, अतः जो उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला है वह उसी समय अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला नहीं हो सकता ।

❀ जो अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला है वह उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला नहीं होता ।

§ ५७८. शंका—अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला क्यों नहीं होता ?

समाधान—क्योंकि एक दूसरेका परिहार करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितियाँ रहती हैं, अतः जो अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला है वह उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाला हो सकता ।

इस प्रकार यह एक अर्थपद है ।

शंका—अर्थपद किसे कहते हैं ?

समाधान—कहे जानेवाले अधिकारके योनिरूपसे अवस्थित अर्थको अर्थपद कहते हैं ।

❀ जिसके मोहनीय प्रकृति है उसका यहाँ प्रकरण है, क्योंकि मोहनीय कर्मसे रहित जीवमें यह व्यवहार नहीं होता ।

§ ५७९ यह सूत्र सुगम है ।

❀ इस अर्थपदके अनुसार कदाचित् सव जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके अविभक्तिवाले हैं ।

§ ५८० यहाँ सूत्रमें आया हुआ 'स्यात्' शब्द 'कदाचित्' इस अर्थमें जानना चाहिये । इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी भी कालमें सव जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी अविभक्तिवाले होते हैं ।

शंका—सव जीव एक साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति के अविभक्तिवाले क्यों होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तीव्र मक्लेशवाले जीव प्रायः करके नहीं पाये जाते हैं, अतः सव जीव एक साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी अविभक्तिवाले होते हैं ।

ॐ सिया अभिहसिया च बिहसिओ च ।

§ ५७८ कुदो ? कम्हि बि काले तिहुअणासेसनीपेसु अणुअस्सद्विदिविहसिपेसु संतेसु तस्य एगबीवस्स उअस्सद्विदिविहसिअसणादो ।

ॐ सिया अभिहसिया च बिहसिया च ।

§ ५७९ कुदो ? अणतेसु अभिहसिपेसु संतेसु तस्य ससज्जाणमसंसेज्जाणं वा उअस्सद्विदिविहसिअनीपाणं संमणुअलंभादो ।

ॐ ३ ।

§ ५८० एत्थ विण्हमंको किं कारणं इविदो ? एवमेवे एत्थ सिग्णि चेव मंगा होंति सि जाणाअणह ।

ॐ अणुअस्सियाए द्विपीए सिया सअप्पे जीवा बिहसिया ।

§ ५८१ कुदो, उअस्सद्विदिविहसिपि बिणा तिहुअणासेसनीपाणमणुअस्सद्विदिवीए चेव अअदिदाणं कम्हि बि काले उअलंभादा ।

ॐ सिया बिहसिया च अभिहसिओ च ।

ॐ कदाचित् बहुत जीव मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके अभिमन्त्रितवाले होते हैं और एक जीव मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाला होता है ।

§ ५८२ शृङ्गा—येसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें तीन लोकके सब जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाला होते हुए उनमेंसे एक जीव उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाला होता जाता है ।

ॐ कदाचित् बहुत जीव मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले होते हैं और बहुत जीव मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले होते हैं ।

§ ५८३ शृङ्गा—येसा क्यों होता है ?

समाधान—उत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाले अमल जीवोंके होते हुए उनमें कदाचित् संख्यात या असंख्यात जीव उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले पाये जाते हैं ।

ॐ ३ ।

§ ५८४ शृङ्गा—यहाँ पर तीनका अंक किसलिय रखा है ?

समाधान—इस प्रकार यहाँ पर य तीन ही मंग होते हैं इस बातका शान अरानके लिय यहाँ पर तीनका अंक रखा है ।

ॐ कदाचित् सब जीव मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले होते हैं ।

§ ५८५ शृङ्गा—येसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें उत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले जीवोंके बिना तीन साधक सब जीव अनुत्कृष्ट स्थितिमें ही विद्यमान पाये जाते हैं ।

ॐ कदाचित् बहुत जीव मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिभिमन्त्रितवाले होते हैं और एक जीव मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अभिमन्त्रितवाला होता है ।



§ ५८२. कुदो ? एक्केण अणुक्कस्सट्ठिदीए अविहत्तिएण सह सयलजीवाण-  
मणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमुवलंभादो ।

❀ सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च ।

§ ५८३. कुदो ? अणंतेहि अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिएहि सह संखेज्जासंखेज्जाण-  
मुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमुवलंभादो ।

❀ एवं सेसाणं पि पयडीणं कायव्वो ।

§ ५८४. जहा मिच्छत्तस्स णाणाजीवेहि भंगविचयपरूवणा कदा तहा सेसपय-  
दीणं हि कायव्वा ।

§ ५८५. एवं जइवसहाइरियसूचिदत्थस्स उच्चारणाइरिएण वालजणाणुगहट्ठ-  
कयपरूवणं भणिस्सामो । णाणाजीवेहि भगविचओ दुविहो—जहणओ अक्कस्सओ  
चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण  
अट्ठावीसण्हं पयडीणं उक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया  
च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च । अणुक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे  
जीवा विहत्तिवा, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया

§ ५८२. शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि अनुत्कृष्ट स्थिति आविभक्तिवाले एक जीवके साथ सब जीव अनुत्कृष्ट  
स्थितिविभक्तिवाले पाये जाते हैं ।

\* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं और  
बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले होते हैं ।

§ ५८३. शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि कदाचित् अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले अनन्त जीवोंके साथ संख्यात  
या असंख्यात उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव पाये जाते हैं ।

\* इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये ।

§ ५८४ जिस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी भंगविचयपरूपणा की है उसी  
प्रकार शेष प्रकृतियोंकी भी करनी चाहिये ।

§ ५८५. इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित किये गये अर्थकी उच्चारणाचार्यने  
वालजनोंके अनुग्रहके लिये जो परूपणा की है उसे कहते हैं—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय  
दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो  
प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अविभक्तिवाले होते हैं, कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवाले  
और एक जीव विभक्तिवाला होता है । कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवाले और बहुत जीव  
विभक्तिवाले होते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विभक्तिवाले होते हैं ।  
कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला होता है । कदाचित् बहुत जीव  
विभक्तिवाले और बहुत जीव अविभक्तिवाले होते हैं । इसी प्रकार अनाहारकमार्गाणातक

ष । एवं वेदस्य बाव अणाहारए पि । णवरि मणुसअपज्ज० उक्कस्सट्ठिदीए सिया सम्मे जीवा अविहत्तिया, सिया सम्मे जीवा विहत्तिया, सिया एगो जीवो अविहत्तिमो, सिया एगो जीवो विहत्तिमो । एवमेदे चत्तारि एगसंभोगमंगा । दुसंभोगमंगा पि एत्तिया चेव । सम्मवर्गसमासो अह ८ । अणुक्कस्सस्स वि एवं चेव पक्खेदम्भं । एवं वेदअियमिस्स० आहार०-आहारमिस्स० अयगद० अकसा०-सुद्धम०-जहाक्खाद० तवसम०-सासण० सम्मायि० ।

एसमुक्कस्समो णाणाभीवेहि मंगविचयाणुगमो समचो ।

✽ जइयए मंगविचए पयदं ।

सेवाना चाहिये । किन्तु इतनी क्लिष्टता है कि मनुष्य अपयाप्तार्थमें उत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा कदाचित् सब जीव अभिमिक्षितवाले, कदाचित् सब जीव विभिक्षितवाले, कदाचित् एक जीव अभिमिक्षितवाला, कदाचित् एक जीव विभिक्षितवाला इस प्रकार ये एक संयागी बार मंग होते हैं । तथा द्विसंयोगी मंग भी इतने ही होते हैं । इस प्रकार सब मंगोंका बाढ़ बाढ होता है ८ । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा भी इसी प्रकार कम्यन करना चाहिये । इसी प्रकार वैश्विकमित्र कन्ययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमित्रकन्ययोगी अपगतवेदवाले, अकवायी, सुद्धमसां-रायिकसंयत, यथाक्यातसंयत, कण्ठमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्बग्दृष्टि और सम्मग्मिप्पादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा मंग विचयाणुगममें दो बातें ज्ञातव्य हैं । प्रथम यह कि एक जीवमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति एक साथ नहीं पर्व जाती । और दूसरी यह कि अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नाना जीव तो सर्वदा रहते हैं किन्तु उत्कृष्ट स्थिति विमिक्षितवाला क्वचिन् एक भी जीव नहीं होता कदाचित् एक होता है और कदाचित् अनेक होते हैं । इस प्रकार इन दो विशेषताओंको ध्यात्तमें रखकर यदि एक बार उत्कृष्ट स्थिति की मुख्यतस्ते और दूसरी बार अनुत्कृष्ट स्थिति की मुख्यतस्ते मंग प्राप्त किये जाते हैं तो वे दृढ़ होते हैं । यथा—कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट स्थिति विमिक्षितवाले नहीं हैं कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति अभिमिक्षितवाले और एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विमिक्षितवाला है कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति अभिमिक्षितवाले और बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति विमिक्षितवाले हैं कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विमिक्षितवाले हैं । कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विमिक्षितवाले और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति अभिमिक्षितवाला है तथा कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विमिक्षितवाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति अभिमिक्षितवाले हैं । यह ज्ञम मोहनीयकी मिप्पाला आदि सब प्रवृत्तिपोंकी अपेक्षा बन जाता है । आदेशकी अपेक्षा सब मार्गशास्त्रोंमें भी यही ज्ञम जानना चाहिये । किन्तु मनुष्य सच्छयपयम, वैश्विकमित्रकन्ययोगी आहारककन्ययोगी आहारकमित्रकन्ययोगी सुद्धमसांरायिकसंयत, कण्ठमसम्यग्दृष्टि, सासादन सम्मग्दृष्टि और सम्मग्मिप्पादृष्टि इन बाढ सांत्तर मार्गशास्त्रोंमें तथा मोहनीयक सत्त्वकी अपेक्षा जन्तुको प्राप्त हुई अपगतवेदी, अकवायी और यथाक्यातसंयत इन तीन मार्गशास्त्रोंमें एक और अनेक जीवोंके सत्त्वासत्त्वका आश्रय लेकर उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा बाढ बाढ मंग होते हैं । जो मूलमें गिनाये ही हैं ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट मंगविचयाणुगम ममाप्त हुआ ।

✽ अब जयन्त्य मंगविचयका प्रकरण है ।

§ ५८६. एदमहियारसंभालणसुत्तं सुगमं ।

\* तं चेव अट्ठपदं ।

§ ५८७ जमट्ठपदमुक्कस्सम्मि परुविदं तं चेव एत्थ परुवेयव्वं विसेसाभावादो ।

णवरि जहण्णमजहण्णं ति वत्तव्वं एत्तियो चेव विसेसो ।

❀ एदेण अट्ठपदेण मिच्छत्तास्स सव्वे जीवा जहण्णिण्याए ढिदीए सिया अविहत्तिया ।

§ ५८८. मिच्छत्तकववएहि दुसमयकालेगणिसेयधारएहि विणा मिच्छत्तअजहण्णढिदीए चेव अवट्ठिदाणं सव्वेसिं जीवाणं कयाइ दसणादो ।

\* सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च ।

§ ५८९ कुदो ? मिच्छत्तअजहण्णढिदिधारएहि सह कम्मि वि काले एकस्स जीवस्स जहण्णढिदिधारयस्सुवलंभादो ।

\* सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।

§ ५९०. कुदो ? कम्मि वि काले अजहण्णढिदिविहत्तिएहि सह संखेज्जाणं जहण्णढिदिविहत्तियाणमुवलंभादो । एवमेत्थ तिण्णि भंगा ।

§ ८६ अधिकारके सम्हालनेके लिये यह सूत्र आया है जो सुगम है ।

\* यहां भी वही अर्थपद है ।

§ ५८७ जो अर्थपद उत्कृष्टमें कहा है वही यहा कहना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट के स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिये ।

❀ इस अर्थपदके अनुसार कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं ।

§ ५८८ क्योंकि एक निषेककी दो समय काल प्रमाण स्थितिको धारण करनेवाले मिथ्यात्वके चपक जीवोंके बिना मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिमें अवस्थित सब जीव कभी भी पाये जाते हैं ।

❀ कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाला है ।

§ ५८९ शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिको धारण करनेवाले जीवोंके साथ जघन्य स्थितिको धारण करनेवाला एक जीव पाया जाता है ।

\* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं और बहुत जीव मिथ्यात्वको जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं ।

§ ५९० शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंके साथ जघन्य स्थिति विभक्तिवाले संख्यात जीव पाये जाते हैं । इस प्रकार यहा तीन भंग होते हैं ।

\* अजहयिष्याए द्वितीय सिया सब्बे जीभा विहसिया । सिया विहसिया च अविहसिओ च । सिया विहसिया च अविहसिया च ।

॥ ५६१ ॥ एवमेदाणि त्रिणि विमुखाणि मुगसाणि ।

❀ एवं लिखिष्य भंगा ।

१५९२ एवं पि सुगमम् ।

\* एवं सेसायं पयङ्गीणं कापय्यो ।

§ ५९३ जहा पिच्छचस्त नागानीमर्गविचयपरुपणा कदा तदा सप्तपयङ्गीणं  
पि र्मगविचमो कायम्भो ।

१५९४ एवं ज्ञात्वा हरिणस्य सचिदस्थानमुच्चारणाद्विष्णु मन्दबुद्धिनया  
पुनर्गृहं कपयस्त्वानं मणिस्तपो ।

१५६५ अहण्ण पयदं । बुद्धिहो सिद्धेसो—आपेण आदेसेण य । आपेण  
अद्वावीसणं पयदीणं अहण्णियाए द्विदीए सिया सम्भ जीवा अविहण्णिया, सिया  
अविहण्णिया च विहण्णिया च, सिया अविहण्णिया च विहण्णिया च । अत्रहण्णद्विदीए  
सिया सम्भ जीवा विहण्णिया, सिया विहण्णिया च अविहण्णिया च, सिया विहण्णिया च  
अविहण्णिया च । एवं सत्तम् पुट्ठीम् पण्डितियतिरिक्त्त-यंचि० तिग्नि० प० ३०-यंचि०

✽ मिथ्यात्वकी अभ्यगम्य स्थितिकी अपेक्षा कदापि सव जीव विभक्तिवाले हैं। कदापि बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और एक जीव अविभक्तिवाला है। कदापि बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और बहुत जीव अविभक्तिवाले हैं।

§ १६१ इस प्रकार ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

❁ इस प्रकार तीन मंथ हाव हैं ।

५६२ यह सूत्र भी सुगम है ।

❖ इसी प्रकार होय प्रकृतियोंकी प्रकृष्टता करनी चाहिये ।

§ ५६३ जिस प्रकार नाना जीवोंका अपना मिथ्यात्वकी संगतिबध्नकरपड़ा की है वसी प्रकार होय मनुष्योंका भी संगतिबध्न करना चाहिये ।

५ १९४ इस प्रकार पवित्रपुत्र आन्ध्यायके द्वारा सूचित किया गया अर्थात् उपाध्यायवर्गने मन्त्रपुत्रि जनके अनुग्रहके लिये श्री व्याख्यान किया है अब हमें बहते हैं —

५१६५ अथ जलस्य स्थितिश्च मन्त्रणं हे । वसन्ती अपरा निर्देशः ॥ मन्त्रणं हे—  
आपनिर्देश आर आदेशनिर्देश । आपसे आहारम बहुविधोकी जलस्य स्थितिही अपरा कदाचिन्  
सह जीव अविमण्डितान् हे । कदाचिन् बहुत जीव अविमण्डितान् हे और एक जीव विमण्डितान्  
॥ कदाचिन् बहुत जीव अविमण्डितान् हे और बहुत जीव विमण्डितान् हे । अत्राप्य स्थितिही  
अपरा कदाचिन् सह जीव विमण्डितान् हे । कदाचिन् पतत जीव विमण्डितान् हे और एक जीव  
अविमण्डितान् हे । कदाचिन् बहुत जीव विमण्डितान् हे आर पतत जीव अविमण्डितान् हे । इमी  
मन्त्रणं मन्त्रो पृथिविर्मेमं धूमराद्ये नारदी पथेन्द्रिय नियत पथेन्द्रिय नियत पथान्, पथेन्द्रिय

तिरिक्खजोणिणि - पंचि० तिरि० अपज्ज० - मणुसतिय-सव्वदेव - सव्वविगल्लिदिय० - सव्व-  
पच्चिदिय-वादरपुढविपज्ज० - वादरआउपज्ज० - वादरतेउपज्ज० - वादरवाउपज्ज० - वादरवण-  
प्फदिपत्तेयपज्ज० - सव्वतस - पंचमण० - पचविच० - कायजोगि० - ओरालि० - वेउव्विय० -  
इत्थि० - पुरिस० - एवुंस० - चत्तारिक० - विहंग० - आभिणि० - सुद० - ओहि० - मणपज्ज० -  
संजद० - सामाइय-छेदो० - परिहार० - संजदासंजद० - चक्खु० - अचक्खु० - ओहिदंस० - तेउ० -  
पम्म० - सुक्क० - भवसिद्धि० - सम्मादि० - खइय० - वेदय० - सण्णि० - आहारए त्ति ।

§ ५६६ तिरिक्खगईए तिरिक्ख० मिच्छत्त० - वारसक० - भय-दुगुंछा० ज०  
अज० णियमा अत्थि । सेसपयडीणमोघं । मणुसअपज्ज० उक्क० भंगो सव्वपयडीणं ।  
एवं वेउव्वियमिस्स० - आहार० - आहारमिस्स० - अवगद० - अकसा० - सुहुम० - जहाक्खाद० -  
उवसम० - सासण० - सम्मामि० दिट्ठि त्ति ।

§ ५६७ एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० - णवणोक० जह० अजह० णियमा अत्थि ।  
सम्मत्त-सम्मामि० ओघं । एवं वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-  
सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-पुढवि० - वादरपुढवि० - वादरपुढविअपज्ज० - सुहुमपुढवि० - सुहुम-  
पुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ० - वादरआउ० - वादरआउअपज्ज० - सुहुमआउ० - सुहुमआउपज्जत्ता-

तिर्यच योनिमती, पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त, सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी, सव देव, सव  
विकलेन्द्रिय, सव पचेन्द्रिय, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्नि-  
कायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सव त्रस,  
पाचो मनोयोगी, पाचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्री-  
वेदवाले, पुरुषवेदवाले, नपुसकवेदवाले, चारो कपायवाले, विभंगज्ञानी, आभिनिवाधिकज्ञानी,  
श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहार-  
विशुद्धिसंयत, सयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले,  
पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, सखी और  
आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५६६. तिर्यचगतिमें तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और  
अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा शेष प्रकृतियोंका कथन ओघके समान है ।  
मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सव प्रकृतियोंका भग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकायोगी,  
आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसापरायिकसंयत,  
यथाख्यातसयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना  
चाहिये ।

§ ५६७. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य  
स्थिति विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग ओघके समान  
है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय,  
सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक, वादर  
पृथिवीकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक अपर्याप्त,  
जलकायिक, वादरजलकायिक, वादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मजलकायिकपर्याप्त,

पञ्च-तेज०-बादरतेज० बादरतेज०अपञ्च०-सुहुमतेज०-सुहुमतेजपञ्चचापञ्च-बाठ०  
बादरबाठ०-बादरबाठअपञ्च०-सुहुमबाठ०-सुहुमबाठपञ्चचापञ्च-बादरबणपञ्चदि०  
गिगोद-बादर सुहुमपञ्चचापञ्च बादरबणपञ्चदिपचेयसरीरअपञ्च० ओरासियमिस्त  
मदि-सुहुमपञ्चा०-मिच्छादि०-असृष्टि चि । गबरि पुढमि-आठ०-तेठ०-बाठ०-बादर  
बणपञ्चदिहायपचेयसरीराण सगसगबादरपञ्चमगो । ओरासिमिस्तादिमु सचणो  
कसायाण तिरिक्लोप । अमव० एवं चेह । गबरि सम्मच०-सम्माभिच्छर्ष गति ।

§ ५६८ कम्मइय० सम्म०-सम्माभि० अह मंगा । सेस० अहण्य० जियमा  
अति । एवमप्याहारीण । असीअद० तिरिक्लोप । गबरि मिच्छतमोप । किण्व-प्री-  
काठ० तिरिक्लोप ।

एवं अहण्यओ पाणाजीवमंगविचयाजुगमो समचो ।

एवं पाणाजीवेहि मंगविचओ समचो ।

सूक्ष्मबलकायिकअपवर्मा, अग्निकायिक, बादरअग्निकायिक, बादरअग्निकायिकअपवर्मा, सूक्ष्म-  
अग्निकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिकअपवर्मा, सूक्ष्मअग्निकायिकअपवर्मा, वायुकायिक बादरवायुकायिक,  
बादरवायुकायिकअपवर्मा सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिकअपवर्मा सूक्ष्मवायुकायिकअपवर्मा, बादर  
बनस्पति कायिकअपवर्मा, निगोद बादरनिगोद, बादरनिगोदअपवर्मा, बादरनिगोदअपवर्मा, सूक्ष्म  
निगोद सूक्ष्मनिगोदअपवर्मा, सूक्ष्मनिगोदअपवर्मा, बादरबनस्पतिकायिकअपवर्मा, औदारिक  
मिन्नकमयोगी मत्पञ्चानी, मुत्ताञ्चानी, मिच्छादि और असीवी बीबोके जानना चाहिये । किन्तु  
इतनी विशेषता है कि पृथिवीकायिक, बलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और बादरबनस्पति-  
कायिकअपवर्मा बीबोके अपने अपने बादर पञ्चासके समान मंग है । तथा औदारिकमिन्नकम-  
योगी आदिमें छह नोक्ताओंका मंग सामान्य तिर्यकोके समान है । अस्मन्में भी इसी प्रकार  
जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यगभिप्यात्व नहीं हैं ।

§ ५६९ कम्मैयकययोगिणोंमें सम्यक्त्व और सम्यगभिप्यात्वकी अपेक्षा आठ मंग होते हैं ।  
तथा छेप प्रवृत्तियोंकी अपेक्षा अजपम्य और अजपम्य स्थितिबिम्बिष्ठतासे जीव नियमसे हैं । इसी  
प्रकार अनकारकोंके जानना चाहिये । अस्मन्में सामान्य तिर्यकोके समान जानना चाहिये । किन्तु  
इतनी विशेषता है कि इनके मिच्छात्वका मंग जोधके समान है । कृष्ण नील और अपोतसेरवा  
पान्थोंमें सामान्य तिर्यकोके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहसे जोधके अन्त और अमुक्त स्थितिकी अपेक्षा अष्ट प्रकार का मंग  
कहा जाये है इसी प्रकार अजपम्य और अजपम्य स्थितिकी अपेक्षा अष्ट मंग जानने चाहिये । तथा  
यह आठ प्ररूपका सामान्य जाणिकोंसे लेकर आहारक तक मूलमें अितनी मार्गदाए गिनार्ह हैं  
इनमें अपना अपनी अपम्य और अजपम्य स्थितिकी अपेक्षा पठित हो जाती है अतः इनकी  
प्ररूपकाओंके जोधके समान कहा । तिर्यकोमें मिच्छात्व बाह्य कयाय, भय और अगुप्ताकी  
आवेष्टसे जो अजपम्य और अजपम्य स्थिति कतहार्ह है इसकी अपेक्षा इनमें अष्ट प्रवृत्तियोंकी अजपम्य  
और अजपम्य स्थितिबिम्बे नामा जीव नियमसे हैं अतः इसमें अष्ट प्रवृत्तियोंकी अजपम्य स्थिति  
बिम्बिष्ठतासे और आचर्यस्थितासे नामा जीव नियमसे हैं । तथा अष्ट प्रवृत्तियोंकी अजपम्य स्थिति-  
बिम्बिष्ठतासे और अचर्यस्थितासे नामा जीव नियमसे हैं ये दो मंग ही बनत हैं । इन्हें इनके अतिरिक्त छेप

§ ५६६. भागाभागाणुगमो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ च । उक्कस्से पयदं ।  
दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्ठावीसण्हं पयडीणमुक्कस्स-  
द्विदिविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । अणुकं सव्वजी० के० ?  
अणंता भागा । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सव्वजी० असंखेज्जदिभागो । अणुकं  
सव्वजीवाणं असंखेज्जा भागा । एवं तिरिक्ख-सव्वएहंदिय-वणप्फदि-णिगोद-कायजोगि०-  
ओरालिय०-ओरालिय०मिस्स०-कम्मइय०-णवुंसं-वत्तारिक०-मदि-सुदअण्णा०-असं-  
जद०-अचक्खु०-किण्ह०-णील०-काए०-भवसिद्धि०-मिच्छादिद्वि-असण्णि-आहारि-  
अणाहारि त्ति । अभव० एवं चेव । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि णत्थि ।

§ ६००. आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडीणमुक्क० सव्वजी० के० ? असंखेज्जदि-  
भागो । अणुकं असंखेज्जा भागा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुस-मणुस-

प्रकृतियोंकी अपेक्षा ओघके समान छहों भंग बन जाते हैं । मनुष्य अपर्याप्तकोंसे लेकर सम्यग्मिध्या-  
दृष्टि तक जितनी भी मार्गणाए मूलमें गिनाई हैं उनमें जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी  
अपेक्षा आठ आठ भग वतला आये हैं उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा आठ  
आठ भग जानने चाहिये । एकेन्द्रियोंमें आदेशकी अपेक्षा जो उनकी जघन्य और अजघन्य स्थिति  
बतलाई है उसकी अपेक्षा मिध्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकपायोंके सामान्य तिर्यचोंके समान  
दो भंग प्राप्त होते हैं । वे दो भंग पहले वतलाये ही हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी  
अपेक्षा तो यहा भी ओघके समान छह भग ही प्राप्त होते हैं । बादर एकेन्द्रियोंसे लेकर असंखी तक  
मूलमें जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमेंसे सामान्य पृथिवी आदि पाच मार्गणाओंको छोड़कर  
शेषमें इसी प्रकार जानना चाहिये । इसी प्रकार आगे भी जिन मार्गणाओंमें जिन प्रकृतियोंकी स्थिति  
सम्बन्धी जो विशेषता बतलाई है उसको ध्यानमें रखकर भंगविचयकी प्ररूपणा करनी चाहिये ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य विचयानुगम समाप्त हुआ ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचय समाप्त हुआ ।

§ ५६६ भागाभागानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहा उत्कृष्टका प्रकरण  
है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा  
अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तर्वे भाग  
हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब जीवोंके  
असंख्यातर्वेभाग हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जाव सब जीवोंके असंख्यात बहुभाग हैं । इसी  
प्रकार तिर्यच, सब एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिक-  
मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपु सकवेदी, चारों कषायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत,  
अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, मिध्यादृष्टि, असंखी,  
आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व ये दो प्रकृतिया नहीं हैं ।

§ ६०० आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब  
जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातर्वे भाग हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव असंख्यात  
बहुभाग हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य, मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव,

अपञ्च०-देव०-भवजादि जाव अवराइद०-सम्बनिगलिदिय० सम्बपंचिदिय-वचारीकाय  
बादरवणफदिपचेयसरीर-सम्बतस-पंचमण०-पंचवधि०-वेठबि०-वेउ०-मिस्स०-इत्वि०  
पुरिस०-बिहग०-आमिणि०-सुद० ओहि०-सज्जदासंजद० चकसु० ओहि०-सेउ०-यम्म०  
सुह०-सम्मादि०-स्वइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मायि०-सणि चि । मल्लसपञ्च०  
मजुसिणीसु सम्बपयवीणसुह० सम्बजी० के० ? संखेज्जदिमागो । अणुह० सम्बजी०  
के० ? संखेज्जा भागा । एवं सम्बह०-आहार०-माहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-  
मणपवज्ज०-संजद०-सामाहय वेदो०-परिहार०-सुहुम०-महावखाद० ।

एवमुक्त्स्समो भाषाभागाणुगमो समप्तो ।

मनवासियोसे लेकर अपराजित तकके देव सब बिकलेमित्र, सब पंचेन्द्रिय चारों स्वावरकम्प, समी  
बार वनस्पतिकायिक प्रत्येकजरीर, सब व्रज, पांचों मनोजागी पांचों बचनयोगी, वैश्विक काययोगी,  
वैश्विकमित्रकाययोगी, स्वोवेरवाले, पुरुरवेरवाले, विर्मगहानी आमिनिवाधिकहानी, मृतहानी  
अवधिमानी, संयतासंयत, चक्रवर्त्तनवाले अवधिवर्त्तनवाले, पीठलेस्यावाले पल्लेस्यावाले, हुक्क  
लेरवाले सम्यग्दृष्टि, काविकसम्यग्दृष्टि वदकसम्यग्दृष्टि, उपसमसम्यग्दृष्टि, सासाइनसम्यग्दृष्टि,  
सम्यग्मिप्याहृष्टि और संखी जीवोंके जानना चाहिये । अनुप्यपर्याप्त और अनुप्यनिर्योमें सब  
प्रवृत्तिचौकी वृत्त स्थितिबिम्बितवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं ।  
तथा अनुवृत्त स्थितिबिम्बितवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । इसी  
मकर सर्वावैश्विकके देव आहारककाययोगी, आहारकमित्रकाययोगी, अपगतवेरवाले, अकथयी,  
मनःपर्ययहानी, संवत् सामायिकसंवत्, ज्ञापस्वापनासंवत् परिहृष्टिबुद्धिसंवत्, सूक्ष्मसंय  
पविकसंवत् और यमाकवातसंवत् जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—घोषसे जूझीस प्रवृत्तिचौकी सत्तावाले जीव अनन्त हैं तथा सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिप्याहृष्टकी सत्तावाले जीव असंख्यात हैं । यह तो प्रवृत्तिचौकी सत्त्वकी अपेक्षा संख्या हुई ।  
किन्तु वृत्त स्थिति और अनुवृत्त स्थितिकी अपेक्षा विचार करने पर जूझीस प्रवृत्तिचौकी वृत्त  
स्थितिवाले जीव असंख्यात प्राप्त होते हैं और अनुवृत्त स्थितिवाले अनन्त, इसलिये मागामागकी  
अपेक्षा यह बतलाया है कि जूझीस प्रवृत्तिचौकी अनुवृत्त स्थितिवालोंसे वृत्त स्थितिवाले जीव  
अनन्तवें भाग प्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्याहृष्टकी वृत्त और अनुवृत्त स्थितिवाले  
जीव प्रत्येक असंख्यात हैं फिर भी अनुवृत्त स्थितिवालोंसे वृत्त स्थितिवाले जीव असंख्यातवें  
भागप्रमाण हैं, इसलिये मागामागकी अपेक्षा यह बतलाया है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्याहृष्टकी  
सत्तावाले जितने जीव हैं उनमेंसे असंख्यातवें भागप्रमाण वृत्त स्थितिवाले हैं और असंख्यात  
बहुभाग प्रमाण अनुवृत्त स्थितिवाले हैं । मार्गणाओंकी अपेक्षा सब जीव तीन भागोंमें बँट जाते हैं  
पुनः मागणावाले जीव अनन्त हैं, पुनः मागणावाले जीव असंख्यात और पुनः मागणावाले जीव  
संख्यात । इनमेंसे अनन्त संख्यावाली जिनकी भी मार्गणाएँ हैं उनमें यह भाग प्रकटवा वन  
जाती है इसलिये इनकी प्रकटणाका घोषके समान कहा । वे मार्गणाएँ मूलमें गिमाइ ही हैं ।  
किन्तु अमर्षोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्याहृष्टका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः इनमें वृत्त  
प्रवृत्तिचौकी अपेक्षा मागामाग नहीं बहना चाहिये । अब रहों असंख्यात संख्यावाली और  
संख्यात संख्यावाली मागणाएँ सो असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें सब प्रवृत्तिचौकी अनुवृत्त  
स्थितिवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण और वृत्त स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण



§ ६०१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिइदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्चत्त-सोलसक०-णवणोक० जह० सव्वजी० के० ? अणंतिमभागो । अज० सव्वजी० के० ? अणंता भागा । सम्मत्त०-सम्मापि० उक्क०भंगो । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवु स०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ ६०२. आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडीणं जह० अज० उक्कस्सभंगो । एवं सव्वपंचि०तिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलंदिय-सव्वपंचिदिय-चत्तारिकाय-वादरवणप्फदिपत्तोय०-सव्वतस०-पचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिंदस०-तिणिले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मापि०-सण्णि त्ति ।

§ ६०३. तिरिक्ख० णारयभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्क०-सत्तणोक० ओघं ।

जानने चाहिये । तथा सख्यात सख्यावाली मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सख्यात बहुभाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सख्यात एक भागप्रमाण होते हैं । असंख्यात संख्यावाली और सख्यात संख्यावाली मार्गणाओंके नाम मूलमें गिनाये ही हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६०१ अब जघन्य भागाभागका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिभिक्त्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । तथा अजघन्य स्थितिभिक्त्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग उत्कृष्टक समान है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसक-वेदवाले, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारकोंके जानना चाहिये ।

§ ६०२. आदेशकी अपेक्षा सब नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थिति-भिक्त्तिकी अपेक्षा भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सब चार स्थावरकाय, सब वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, सब त्रस, पाचों मनायोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियायकाययोगी, वैक्रियिकमिश्र-काययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवदवाले, पुरुषवेदवाले, अपगतवेदवाले, अकषायी, विभगज्ञानी, आभिनिवाधिकज्ञाना, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यात संयत, सयतासयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिक-सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मेध्यादृष्टि और सबी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६०३. तिर्यचोंमें नारकियोंके समान भग हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें अनन्ता-नुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी अपेक्षा भंग ओघके समान है । इसी प्रकार कृष्ण, नील

एवं किम्ह०-गीस-आवलेसस चि । एईदिय०-णारयमगा । एव बणप्फदि०-णिगोद  
कम्मइय०-अणाहारि चि । आरात्तिवमिस्स०-तिरिक्खोयं । एववि मणत्ताणु०-मिच्छस  
पंगो । मदि-सुदअण्णा०-मिच्छादि०-असण्णि चि । असंमद तिरिक्खोयं । एववि  
मिच्छस०-मोयं । ममव०-दम्मीसपयदीणं मोरात्तिवमिस्सभगा ।

एवं मार्गामागणुगमो समचो ।

और अपोतलेरवाले जीवोंके जानना चाहिये । एकेन्द्रियोंमें नारकियोंके समान भोग है । इसी  
प्रकार सब वनस्पतिकार्यिक, सब निगोद जीव, कामण्डकयोगी और अनन्तारकोंके जानना  
चाहिये । औशारिकमिमकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यकोंके समान भोग है । किन्तु इतनी विशेषता  
है कि अनन्तस्तुम्भी वनस्पतिका भोग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार मत्स्यानी, बुध्यानी  
मिथ्यादि और असंख्योंके जानना चाहिये । असंख्योंमें सामान्य तिर्यकोंके समान जानना  
चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वका भोग ओषधके समान है । अमर्षोंमें  
अम्भीस प्रकृतियोंका भोग औशारिकमिमकाययोगियोंके समान है ।

विशुद्धार्थ—मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायवाले जीव अनन्त हैं । किन्तु इनमें  
आपसे अपन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं और अज्ञपन्य स्थितिवाले जीव अनन्त हैं, अतः  
भगाभागकी अपेक्षा कुछ प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिवाले जीव अनन्तमें भाग प्राप्त होत हैं और  
अज्ञपन्य स्थितिवाले जीव अनन्त बहुभाग प्राप्त होते हैं । अनन्तस्तुम्भी वनस्पतकी अपन्य  
स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं और अज्ञपन्य स्थितिवाले जीव अनन्त । फिर भी मार्गामागकी  
अपेक्षा इनका भी बड़ी कम वन जाता है या पूर्वमें मिथ्यात्व आदिकी अपेक्षा बतलाया है । तथा  
सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वकी सत्तावाले जीव असंख्यात हैं किन्तु इनमें सम्यक्त्वकी अपन्य  
स्थितिवाले जीव संख्यात और सम्बन्धित्वकी अपन्य स्थितिवाले असंख्यात हैं तथा शान्तीकी  
अज्ञपन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं । अतः यहां कह्यस के समान यह मार्गामाग वन जाता  
है कि कुछ दोनों प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिवाले जीव असंख्यातमें भगा प्रमाय और अज्ञपन्य  
स्थितिवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाय हैं । मूलमें कथवागो आदि जितनी मागसाध  
गिनाई हैं उनमें यह ओषध प्रकृष्टा पठित हो जाती है, अतः उनके कथनका आपका समान पड़ा ।  
आपकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी अपन्य और अज्ञपन्य स्थितिवालोंके मार्गामागका  
का कह्यसके समान कहा उसका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थिति-  
वाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाय हैं और कह्यस स्थितिवाले जीव असंख्यातमें भगाप्रमाय हैं इसी  
प्रकार यहां भी जानना चाहिये । तथा सब पंचन्द्रियोंसे लेकर संखी तक और जितनी मागसाध गिनाई  
हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना यह या कहा है या इसका यह तात्पर्य यही कि इनमें नारकियोंके  
समान मार्गामाग होता है किन्तु इसका यह तात्पर्य है कि इस मार्गसाधोंमें जिस प्रकार कह्यस  
और अनुकूल स्थितिकी अपेक्षा मार्गामाग कहा है इसी प्रकार अपन्य और अज्ञपन्य स्थितिका  
अपेक्षा भी मार्गामाग कहना चाहिये क्योंकि इस मार्गसाधोंमें बहुतसी मार्गसाध अनन्त  
संख्यावाली हैं, बहुतसी असंख्यात संख्यावाली हैं तथा बहुतसी संख्यात संख्यातवाली हैं  
अतः इन सबमें नारकियोंके समान मार्गामाग वन भो गयी सकना । तथा इन मार्गसाधोंन  
अपन्य और अज्ञपन्य स्थितिवालोंकी संख्याका ऐक्यसे भी बड़ी अभिन्न्य पठित होता है  
या हमने दिया है । तिर्यकगतिमें अनन्तस्तुम्भी वनस्प और सान नाकराओंका दोहर  
एव सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा मार्गामाग नारकियोंके समान है या इसका यह अभिप्राय है कि जिस

§ ६०४ परिमाणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिदेसो-  
ओघेण आदेसेण य । ओघेण छ्वीसपयडीणमुक्क० केत्तिया ? असखेज्जा । अणुक्क०  
केत्तिया ? अणता । सम्पत्त०-सम्पामि० उक्क०-अणुक्क० केत्ति० ? असखेज्जा । एवं  
तिरिक्ख-सच्चएइंदिय-वणप्फदि-णिगोद-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स-कम्म-  
इय०-णवुस० चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णा०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भग्सि०-  
मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति । एवमभवसि० । णवरि सम्म०-सम्पामि०  
णत्थि ।

प्रकार नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा अजघन्य स्थितिवाले असख्यात बहुभागप्रमाण और  
जघन्य स्थितिवाले असख्यात एक भागप्रमाण हैं उसी प्रकार तिर्यचोंमें जानना चाहिये । यद्यपि  
तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, चारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारकी  
स्थितिवाले जीव अनन्त हैं फिर भी जघन्य स्थितिवालोंसे अजघन्य स्थितिवाले जीव असख्यात-  
गुणे होनेसे उक्त व्यवस्था बन जाती है । तथा तिर्यचोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात  
नोकपायवाले जीवोंसे जघन्य स्थितिवालोंसे अजघन्य स्थितिवाले अनन्तगुणे हैं, अतः इनके  
कथनको ओघके समान कहा । कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें तिर्यचोंके समान व्यवस्था बन  
जाती है, अतः इनके भागाभागको तिर्यचोंके समान कहा । एकेन्द्रियोंमें भागाभाग संबन्धी कुल  
व्यवस्था नारकियोंके भागाभागके समान बनती है, अतः इनके भागाभागको नारकियोंके भागा-  
भागके समान कहा । वनस्पति आदि और जितनी मार्गणाए मूलमे गिनाई हैं उनमें भी नारकियोंके  
समान भागाभाग जानना । औदारिकमिश्रकाययोगमें यद्यपि भागाभाग सामान्य तिर्यचोंके समान  
है पर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका भागाभाग मिथ्यात्वकी  
जघन्य और अजघन्य स्थितिके भागाभागके समान है । अथात् तिर्यचोंमें जिस प्रकार मिथ्यात्वकी  
अपेक्षा भागाभाग कहा है उसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा जानना ।  
मूलमें जो मृत्युज्ञानी आदि मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी औदारिकमिश्रकाययोगके समान  
भागाभाग जानना चाहिए । असंयतोके सामान्य तिर्यचोंके समान जानना । किन्तु इनके मिथ्यात्वकी  
जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका भागाभाग ओघके समान कहना चाहिये । अभव्योंके छ्वीस  
प्रकृतियोंका सत्त्व है, अतः इनके छ्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग आदारिकमिश्रकाययोगके  
समान जानना चाहिए ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६०४ परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है ।  
उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा छ्वीस  
प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति-  
वाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-  
बिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी प्रकार तिर्यच, सब एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक,  
निगोद, काययोगी, औदारिककायोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपु सकवेदी,  
चारों कपायवाले, मृत्युज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, भव्य,  
मिथ्यादृष्टि, असह्यो, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । इसी प्रकार अभव्योंके  
जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं ।

॥ ६०५ ॥ अत्रेतेण गेरइएसु सव्वपयडि० उक्क० अणुक्क० केपि० ? असत्तेज्जा । एवं सव्वणेरइय०-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुसअपन्न०-देव-भयणादि भाव सहस्सार०-सव्व विगल्लिदिय-सव्वपंचिदिय चत्तारिकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेठम्बिय०-वेठम्बियमिस्स-इदि० पुरिस०-धिइग०-आमिणि०-सुव०-ओहि०-संजदासंभद०-घवसु० ओहिदंस० तिण्णिजे०-सम्मादि०-वेदय० उवसम०-सासण०-सम्माभि०-सण्णि सि ।

॥ ६०६ ॥ मणुसगईए मणुस० उक्क० केपि० ? संसज्जा । अणुक्क० केपि० ? असंखेज्जा । एवमाणदादि भाव अवरइद०-खइयदिहि सि । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० सव्वपयडीणमुक्क०-अणुक्क० केपि० ? संसज्जा । एवं सम्भद०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संभद०-सामाहय-खेदो०-परिहार०-सुहुम०-नहाक्खाद० । एवमुक्कस्सओ परिमाणाणुगमो समचो ।

॥ ६०७ ॥ आदेशकी अपेक्षा नाएकियोमि सब प्रकृतिबोकी उक्क और अनुक्क स्थितिविभक्ति-बासे जीव कितने हैं । असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रियतियेण, मनुष्यअपरांत, सामान्य देव, भयनबासियोसे लेकर सहस्सारस्वगतकने, देव सब विक्खान्दिय, सब पंचेन्द्रिय, सभी पार म्मावरकय, सब तस पांचो मनायागी, पांचो वचनयोगी, वैद्विदियकावयागी, वैद्विद्विमिम कययागी, बीजववाले, पुरुषवेववाले, विमंगझानी, आभिनिवाचिक्खानी, सुतझानी, अचचिक्खानी, संयदासंयत, चक्षुवज्जन्वाले, अचधिइसेनवाले, तीन कययावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, कयसमसम्यग्दृष्टि, सासात्तसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिप्यादृष्टि और सभी जीवोंके जानना चाहिये ।

॥ ६०८ ॥ मनुष्यगतिये मनुष्योंमें उक्क स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुक्क स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार आनतकस्ससे लेकर अपराजित तकने देव और वायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिये । मनुष्यपरांत और मनुष्य-मियोंमें सब प्रकृतिबोकी उक्क और अनुक्क स्थितिविभक्तिबासे जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वावसिद्धिके देव आहारकययावागी, आहारकमिमकावयोगी, अपगतवेववाले, अकयाबी, मनापर्ययझानी, संयत सामाधिकसंयत, जेशेपस्वाधनासंयत, परिहयविज्जुदिसंयत, सुस्ससापराधिकसंयत और यथाक्खातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—गुणस्वान अमतिपन्न सभी संसारी जीव दृष्टीस प्रकृतियोंकी सत्तावास्त हैं । किन्तु इनमें उक्क स्थितिकयक करणभूत परिणामवास्त जीव जोड़ हात हैं, अतः आपसे दृष्टीस प्रकृतियोंकी उक्क स्थितिबासे जीव असंख्यात और अनुक्क स्थितिवाले जीव अनन्त बढ़ । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्यावकी सत्ता कयसमसम्यग्दृष्टि या वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके पार्दे जाती है या जो इनसे क्युत हुए हैं उनके पार्दे जाती है । अतः भी मिप्यावमें इनका संयययस पश्यके असंख्यातवे मागप्रमाण है, अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिप्यावकी सत्तावास्त जीवोंकी सामान्यसे संख्या असंख्यात ही होगी । और इनकी उक्क और अनुक्क स्थितिबासोंम भी मत्परकी संख्या असंख्यात बन जाती है । मरीणास्थानोंमें राक्षिां तीम मरीणोंमें क्की दूर हैं इय मागप्याप अनन्त संख्यावाली बुद्ध-मारीणाप असंख्यात संख्यावाली और बुद्ध मारीणाप संख्यात संख्या-वाली हैं । इनमें जो अनन्त संख्यावाली मागणाप है उनमें आपक समान व्यवस्था बन जाती है । जो असंख्यात संख्यावाली मारीणाप है उनमें सब प्रकृतिबोकी उक्क और अनुक्क स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात ही वास्त होता है । किन्तु इनमें मनुष्यगति आदि बुद्ध

§ ६०७. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहो सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-  
वारसक०-णवणोक्क० जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अज० केत्ति० ? अणंता । सम्मत्त०  
जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अजह० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मामि० जह० अजह० के० ?  
असंखेज्जा । अणंताणु० चउक्क० जह० के० ? असंखेज्जा । अजह० के० ? अणंता ।  
एव कायजोगि०-आरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति ।

§ ६०८. आदेसेस णेरइएसु मिच्छत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक्क० जह०  
अजह० के० ? असंखेज्जा । सम्मत्त० जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अजह० के० ?  
असंखेज्जा । एवं पढमाए । विद्यादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक्क०  
जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अजह० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मत-सम्मामि०-अणंताणु०

मार्गणाए अपवाद हैं । इसका कारण यह है कि मनुष्योंमें पर्याप्त मनुष्योंके ही उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । और उनकी संख्या संख्यात है, अतः सामान्यसे मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात ही होंगे और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात । आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें और क्षात्रिकसम्यग्दृष्टियोंमें भी यही व्यवस्था जानना चाहिये, क्योंकि इनके अपनी अपनी पर्यायके प्राप्त होनेके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है पर इनमें मनुष्यगतिसे ही जीव उत्पन्न होते हैं परन्तु अच्युत स्वर्गतक सम्यग्दृष्टि तिर्यच भी उत्पन्न होते हैं और ऐसे जीवोंकी संख्या संख्यात है, अतः उक्त मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात बन जाता है । अब रहीं संख्यात संख्यावाली मार्गणाएँ सो उनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात होगा यह स्पष्ट ही है । अनन्त, असंख्यात और संख्यात संख्यावाली मार्गणाओंका मूलमें उल्लेख किया ही है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६०७. अब जघन्य परिमाणानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदी, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६०८ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ?

चउत्प० अ० अन्न० के० ? असंखेया । सचपाए उत्प० भंगो ।

§ ६०६ तिरिक्त्तगइ० मिष्कच वारसक०-मय-दुगुळ० न० अन्न० के० ? भणता । सम्मच० अ० के० ? संखेया । अन्न० के० ? असंखेया । सम्मामि० म० अन्न० के० ? असंखेया । भणतायु० चउत्प०-सचणोक० अ० के० ? असंखेया । अन्न० के० ? भणता । एव किण्ण०-णीस०-काठ० । गवरि किण्ण-णीस० सम्म० सम्मामि० भंगो । पंचिदियतिरिक्त्त-पंचि० तिरि० पञ्च०-पंचि० तिरि० भोणिणी० पढम पुढविभंगो । गवरि पंचिदियतिरिक्त्तभोणिणीसु सम्मच० सम्मामि० भंगो । पंचि० तिरि० मपञ्च० एवं चेव । एव मपुसअपञ्च०-सम्भविगळिंदिय-पंचिदियअपञ्च०-चचारि काप-[ सम्भवपञ्चदिपचेय० ] तसअपञ्च० ।

§ ६१० मणुस० सम्भपयडीणं अ० के० ? संखेया । अन्न० के० ? असंखेया । गवरि सम्मामि० अइ० असंखे० । मणुसपञ्च०-मणुसिणी० सम्भप० नइ० अन्न० संखेया ।

§ ६११ देव० शारयभंगो । भवण०-भाण० एवं चेव । गवरि सम्मच० सम्मामि० भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । साइम्मादि जाव अचराइइ० मिष्कच० वारसक०

असंख्यात हैं । सम्भक्त्व सम्भमिष्यात्वे और अनन्तलुब्धकी अपत्य और अन्नपत्य स्थितिविमर्शनासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सातषो ध्रुविनीमें उत्तुसके समान भंग है ।

§ ६०६ तिर्यचोमें मिष्कच वार वपाय, मय और दुगुप्ताकी ब्रह्म्य और अन्नपत्य स्थितिविमर्शनासे जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्भक्त्वकी अपत्य स्थितिविमर्शनासे जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अन्नपत्य स्थितिविमर्शनासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्भमिष्यात्त्वकी ब्रह्म्य और अन्नपत्य स्थितिविमर्शनासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनन्तलुब्धकी अपत्य और सात नौक्यावोंकी ब्रह्म्य स्थितिविमर्शनासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । तथा अन्नपत्य स्थितिविमर्शनासे जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार कृष्ण नील और कापोतलेखावत् जीवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नीललेखावत्तोंमें सम्भक्त्वका भंग सम्भमिष्यात्त्वके समान है । पंचेन्द्र तिर्यच, पंचेन्द्र तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्र तिर्यच आनिमती जीवोंमें पञ्चही ध्रुविनीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्र तिर्यच आनिमती जीवोंमें सम्भक्त्वका भंग सम्भमिष्यात्त्वके समान है । इसी प्रकार पंचेन्द्र तिर्यच अपर्याप्तोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब बिक्रोत्रिय पंचेन्द्र अपर्याप्त, सभी चार स्वावरकाय, सभी वनस्पतिकायिक प्रत्यक्षरीर और प्रस अपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिये ।

§ ६१० मनुष्योंमें सब प्रकृतिषोंकी ब्रह्म्य स्थितिविमर्शनासे जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अन्नपत्य स्थितिविमर्शनासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्भमिष्यात्त्वकी अपेक्षा ब्रह्म्य स्थितिविमर्शनासे जीव असंख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिषोंमें सब प्रकृतिषोंकी ब्रह्म्य और अन्नपत्य स्थितिविमर्शनासे जीव संख्यात हैं ।

§ ६११ देवोंमें आकृष्योके समान भंग है । भवजवाही और व्यस्तर देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्भक्त्वका भंग सम्भमिष्यात्त्वके समान है । भ्योतिषियोंमें इसी ध्रुविनीके समान भंग है । सौपर्य कस्पचे लेकर अपर्याप्त तकके देवोंमें

णवणोक० जह० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । सम्मत्त० एवं चेव । सम्मामि०-अणंताणु०चउक० ज० अज० के० ? असंखे० । णवरि अणुदिसादि जाव अवराइद त्ति सम्मामि० जह० संखेज्जा । सव्वह्मे० सव्वपयहि० ज० अज० के० ? संखेज्जा । एवमाहार-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाडय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

§ ६१२ एइंदिय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० के० ? अणंता । सम्मत्त-सम्मामि० ज० अज० के० ? असंखेज्जा । एवं वणप्फदि-णिगोद० ।

§ ६१३ ओरालिय०मिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु०चउक० ज० अज० के० ? अणंता । वेउव्वियमिस्स० सोहम्मभंगो । णवरि अणंताणु०४ जह० संखेज्जा । कम्मइ० एइंदियभंगो । णवरि सम्मत्त० ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा ।

§ ६१४. पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय० इत्थि०-पुरि०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-विहंग०सजदासंजद०-चक्खु०-ओहिंदंस०-तेउ०-पम्म०-सुक०-सम्मा०-वेदय० मणुसगइभंगो । णवरि विहंग०वज्जेसु अणंताणु०चउक०

मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । सम्यक्त्वकी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिये । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे लेकर अपराजित कल्प तकके देवोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव सख्यात हैं । सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें सद्य प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपराजितवेदवाले, अकपायी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिक-सयत और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६१२. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६१३. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सौधर्मके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव सख्यात हैं । कर्मणकाययोगियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं ।

§ ६१४ पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तक, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियककाययोगी स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, विभग-ज्ञानी, संयतासयत, चक्षुदर्शनवाले, श्रवणदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मनुष्यगतिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि विभंग-

जह० असंसेजा । सम्म० जह० जम्मि स्वयणा जरिष तम्मि असंसेजा । सम्मामि० सम्माइठिपवेसु संसेजा । मदि-सुदअण्णा० सम्मत्त-अणंताणु० चठक० एइंदियमगो । सेस० तिरिक्खोपं । एवं मिच्छादिदि-असण्णि चि । असण्णद० तिरिक्खोप । जवरि मिच्छत्त० ओपं ।

५६१५ अमव० जम्मीसपयढि० तिरिक्खोपं । जवरि अणंताणु० एइंदियमगो । अइय० एक्खीसपयढीणं ज० के० ? संसेजा । अज० के० ? असंसेजा । जवसम० चठपीसपयढी० ज० के० ? संसेजा । अज० के० ? असंसेजा । अणंताणु० चठक० ज० अज० के० ? असंसेजा । एवं सम्मामिच्छादिदीणं । जवरि अणंताणु० जह० संसेजा । सम्म०-सम्मामि० जह० अज० असंसेजा । सासण० अट्ठावीस० ज० के० ? संसेजा । अज० के० ? असंसेजा । सण्णि० पंथिंदियमगो । अणाहारि० कम्मइयमगो । एवं परिमाणानुगमो समचो ।

अग्निषोका जोइकर होयें अनन्तलुक्खीचतुष्पकी अण्य स्थितिबिमच्छिवाले जीव असंख्यात हैं । तथा जिस मार्गाद्यात्मानमें धर्ममोहनीयकी कृपा नहीं है उस मार्गाद्यात्मानमें सम्यक्त्वकी अण्य स्थितिबिमच्छिवाले जीव असंख्यात हैं और सम्यग्दृष्टि मार्गाद्यात्मोंमें सम्यग्मिध्यात्वकी अण्य स्थिति-वाले जीव संख्यात हैं । मत्स्यामी और जटाजानी जीवोंमें सम्यक्त्व और अनन्तलुक्खीचतुष्पकी मंग एकेन्द्रियोंके समान है । शेष प्रकृतियोंका सामान्य तिर्यचोंके समान है । इसी प्रकार मिध्यादृष्टि और अरुंधी जीवोंमें ज्ञानता चाहिये । असंयतोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान ज्ञानता चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिध्यात्वका मंग ओषके समान है ।

५६१६ अमन्त्रोंमें जम्बीस प्रकृतियोंका मंग सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तलुक्खीचतुष्पकी मंग एकेन्द्रियोंके समान है । आविष्कर्मगदृष्टियोंमें इस्कीस प्रकृतियोंकी अण्य स्थितिबिमच्छिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजण्य स्थिति-बिमच्छिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । तपश्रमसम्यग्दृष्टियोंमें बीबीस प्रकृतियोंकी अण्य स्थितिबिमच्छिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजण्य स्थितिबिमच्छिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनन्तलुक्खीचतुष्पकी अण्य और अजण्य स्थितिबिमच्छिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानता चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तलुक्खीचतुष्पकी अण्य स्थितिबिमच्छिवाले जीव संख्यात हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अण्य और अजण्य स्थितिबिमच्छिवाले जीव असंख्यात हैं । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अण्य स्थितिबिमच्छिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजण्य स्थितिबिमच्छिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । संश्रियोंमें पंचेन्द्रियोंके समान मंग है । अनाहारकोंमें कर्मयकाययोगियोंके समान मंग है

विशेषार्थ—ओषस मिध्यात्व, बाह्य कयाय और नौ नाकपायोंकी अण्य स्थिति अण्णोषोंमें और सम्यक्त्वकी अण्य स्थिति कृतकृत्यबद्धक सम्यक्त्वके अश्रित समयमें प्राप्त होती है और ऐसे जीवोंका प्रमाण संख्यात है, अतः कुछ प्रकृतियोंकी अण्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात रहा । मिध्यात्व बाह्य कयाय और नौ नाकपायोंकी अजण्य स्थितिवाले जीव अनन्त हैं यह स्पष्ट हो है । सम्यग्मिध्यात्वकी अण्य स्थिति ब्रह्मज्ञानक अश्रित समयमें और कृतकृत्यबद्धक सम्यक्त्वके उपाय समयमें प्राप्त होती है और ऐसे जीवोंका प्रमाण असंख्यात है,



§ ६१६. खेत्तं दुविहं—जहणमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयद । दुविहो णिदेसो—

ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सोलमक०-णवणोक० उक्क० केण्हि खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । अणुक्क० के० खेत्ते ? सव्वलोण । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० के० ? लोग० असंखेज्जदिभागे । एवमणतगसीणं णेयव्वं जाव अणाहारणं ति ।

§ ६१७ पुढवि०-वाटरपुढवि०-वाटरपुढविअपज्ज०-आउ०-वाटरआउ०-वाटर-आउअपज्ज०-तेउ०-वाटरतेउ०-वाटरतेउअपज्ज०-वाउ० वाटरवाउ०-वाटरवाउअपज्ज०-वाटरवणप्फदिकाइयपत्तेय०-तेसिमपज्ज०-सव्वमुहुम-तेमिं पज्जत्तापज्जत्ताणमेइंदियभंगो । सेसमंखेज्ज-असंखेज्जराणीणमुक्क० अणुक्क० केव्हि खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । एवरि वाटरवाउपज्ज० अणु० लोग० संखे०भागे ।

एवमुक्कस्सखेत्ताणुगमो समत्तो ।

अतः सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात कहा । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात है यह स्पष्ट ही है । इसी प्रकार आगे भी जघन्य और अजघन्य स्थितिके स्वामीका विचार करके जहा जो संख्या सम्भव हो उसका कथन करना चाहिये ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६१६ क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य क्षेत्र और उत्कृष्ट क्षेत्र । पहले यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओग्रनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवेंभाग क्षेत्रमें रहते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-बिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवेंभाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक अनन्त राशियोंका क्षेत्र जानना चाहिये ।

§ ६१७ पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिकअपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिकअपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिकअपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, तथा सब सूक्ष्म और उनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक जीवोंका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । शेष संख्यात और असंख्यात राशिवालोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिकपर्याप्त जीवोंमें अनुत्कृष्ट स्थिति-बिभक्तिवाले जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

विशेषार्थ—ओघ और आदेशसे जिसका जो क्षेत्र है, सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा यहा उसका वही क्षेत्र ले लिया गया है । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा तथा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्रमें विशेषता है । यात यह है कि ऐसे जीव कहीं असंख्यात और कहीं संख्यात हाते हैं । तथा जहा असंख्यात हैं भी वहा वे अतिस्वल्प हैं, अतः इनका क्षेत्र लोकका असंख्यातत्र भाग ही सर्वत्र प्राप्त होता है यह उक्त कथनका सार है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६१८. महण्य पयदं । पुर्विर्—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त  
सोस्सक०-जयप्पोक० जह० केपदि खेचे ? सोग० असखे० भागे । अज० के० स्वेचे ?  
सम्बलोप । सम्मत्त०-सम्मापि० ज० अज० के० स्वेचे ? सोग० मसस्वेज्जदिभागे । एवं  
कायमीशि० ओरासि०-अथु स० अचारिक-अथवत्तु० भवसि० आहारए पि ।

§ ६१९ आदेसेण गोरूपसु अहावीसण् पयदीणमुक्क० भगो । एवं सत्तसु पुह  
वीसु सम्मपचिंदियतिरिक्ख-सम्भमणस-सम्भदेव-सम्भविपत्तिंदिय-सम्भपंचिंदिय-बादर  
पुहपिप्पल०-बादरआउपल०-बादरतेज० पल्ल०-बादरवाउ० पल्ल०-बादरवणप्पदि० पचेय  
पल्ल०-सुवत्तस-पंचमण०-पंचवचि-वेरुम्विय०-वेउ० भिस्स० आहार० आहारमिस्स०  
इत्थि० पुरिस० अजगद० अकसा०-विहंग०-आमिण्णि०-सुद० ओहि०-मणपज्ज०-संनद०  
सामाण्य-वेदो०-परिहार०-सुदुम०-जहावत्ताद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०  
तिप्पित्तेस्सा-सम्मादि०-सख्य०-वेदप०-उरुसम०-सासण०-सम्मापि०-सण्णि पि । गवरि  
बादरवाउपल्ल० अम्मीसपयदीणं जह० अजह० सोगस्स संखेज्जदिभागे ।

§ ६२० तिरिक्ख० मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुह० ज० अज० कं स्वेचे ?  
सम्बलोप । संस० उक्खस्समंगो । एवं सम्भपयदिय० । गवरि अणंतापु०-उ-सत्तजो०

§ ६१८ अब ब्रह्म क्षेत्रा प्रकृत्य है । इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आपनिर्देश  
और आदेशनिर्देश । जनते ओषधी अपेक्षा मिष्यत्त्व, सातह कणाय और तो नोक्यात्तोंकी  
अपम्य स्थितिभिर्मत्तवाले बीच कितने क्षेत्रों रहते हैं ? लोके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।  
तथा अजपम्य स्थितिभिर्मत्तवाले बीच कितने क्षेत्रों रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । सम्भक्त  
और सम्मगिमप्यात्त्वकी अपम्य और अजपम्य स्थितिभिर्मत्तवाले बीच कितने क्षेत्रों रहते हैं ?  
लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार काययोगी औरारिककाययोगी मनुसंख्य  
वाले, चारों कणायवाले अथवृहत्संख्यवाले, मम्य और अजमय बीचके जानना चाहिये ।

§ ६१९ आदेशकी अपेक्षा नापकियोंमें अहर्तसं प्रकृतियोंका भंग कृच्छके समान है । इसी  
प्रकार सत्तों पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकी, सब पंचेन्द्रियतियैव सब मनुष्य सब देव, सब विक्रमत्रिय,  
सब पंचेन्द्रिय, बाहर पृथिवीकाविक्रमर्थात् बाहर बलकाविक्रमर्थात् बाहर अग्निकाविक्रमर्थात्, बाहर  
वायुकाविक्रमर्थात्, बाहर वनस्पतिकाविक्रम प्रत्येकछटीर पर्याप्त सब वस, पाँचों मनोयोगी पाचों  
वचनयोगी वैद्विकिकाययोगी वैद्विकिमिमकाययोगी, आहारककाययोगी आहारकमिमकाय  
योगी, अविद्वत्ते, पुरुषदेवत्वात्, अणगतदेवत्वात्, अकणायी विमगच्छान्तवाले आमिमिषीविमगच्छानी  
ब्रुतछानी अविद्वत्छानी, मनस्पयैछानी, संयत, सामागिकसंयत वेरोपस्वागतासंयत परिहार ब्रुद्वि  
संयत, सूक्ष्मसांपर्याप्तसंयत अवाक्यातसंयत संयतासंयत, अथुद्वमवाले, अविद्वत्संतवाले, तीन  
क्षेत्रवाले, सम्मत्तदि, कायिकसम्मत्तदि, वेदकसम्मत्तदि, कपमसम्मत्तदि, सासत्तमसम्मत्तदि,  
सम्मगिमप्याद्वि और छठीबीचके जानना चाहिये । किन्तु इतनी बिरोधता है कि बाहर वायुकाविक्रम  
पर्याप्त ओषधी अम्मीस प्रकृतियोंकी अपम्य और अजपम्य स्थितिभिर्मत्तवाले बीच लोकके  
संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

§ ६२० त्रियैषोमि मिष्यत्त्व बारह कणाय मम बार पुगुप्पलकी अपम्य और अजपम्य  
स्थितिभिर्मत्तवाले बीच कितने क्षेत्रों रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । तथा दोष प्रकृतियोंका भंग  
कृच्छके समान है । इसी प्रकार सब पंचेन्द्रियोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी बिरोधता है कि

जह० अज० सव्वलोए । एवं पुढवि० वादरपुढवि०-वादरपुढविअपज्ज०-आउ०-वादर  
आउ०-वादरआउअपज्ज० तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-वाउ०-वादरवाउ०-वादर-  
वाउअपज्ज०-सव्वेसिं सुहुम०-तेसिं पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय-वादरवणप्फदि-  
पत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स-कम्मइय०-  
मदि-सुदअण्णाण-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । णवरि ओरालियमिस्स०-मदि-  
सुदअण्णाण०-मिच्छादि०-असण्णि० सत्तणोकसाय० तिरिक्खोघ ।

§ ६२१. एत्थ मूलुच्चारणाहिप्पाएण तिरिक्ख० मिच्छ०-वारमक० भय-दुगुंछ०  
जह० लोग० संखे० भागे, अज० सव्वलोए, सत्थाणविसुद्धवादरेइंदियपज्जत्तएसु जहण्ण-  
सामित्ताल्लवगादो । एवमोरालियमिस्स०-मदि-सुदअण्णाण०-मिच्छादि-असण्णि त्ति ।  
एइंदिय०-वादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-तदपज्जत्तएसु छव्वीसपयडि०-  
एवं चेव । एदम्मि अहिप्पाए चत्तारिकाय-तेसिं वादर-तदपज्जत्ताणं छव्वीसपय० जह०  
लोग० असंखे० भागे । अज० सव्वलोगे । एतदणुसारेण च पोसणं णेदव्वमिदि ।  
असंजद० तिण्णिलेस्सा० तिरिक्खोघं । णवरि असंजद० मिच्छ० ओघं । अभव०

इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिकअपर्याप्त, अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिकअपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिकअपर्याप्त, इन सबके सूक्ष्म, तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव तथा इनके वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाह्लाक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, और असंज्ञी जीवोंमें सात नोकपायोंका क्षेत्र सामान्य तिर्यचोंके समान है ।

§ ६२१. यहा पर मूलोच्चारणाका ऐसा अभिप्राय है कि तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव लोकके सख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले सब लोकमें रहते हैं । सो यह कथन स्वस्थान विशुद्ध वादर-एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें जघन्य स्थितिके स्वामित्वको स्वीकार करके किया गया है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रियपर्याप्त, वादर एकेन्द्रियअपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक और वादर वायुकायिकअपर्याप्त जीवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र है । इसके अभिप्रायानुसार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, इनके वादर तथा इनके अपर्याप्त जीवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीव लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । तथा अजघन्य स्थिति बिभक्तिवाले जीव सब लोकमें रहते हैं । तथा इसीके अनुसार स्पर्शनका कथन करना चाहिये । असयत और कृष्णादि तीन लेश्यावालोंमें सामान्य-तिर्यचोंके समान क्षेत्र है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असयतोंमें मिथ्यात्वका क्षेत्र ओघके समान

अध्वीसपयडि० विरिक्खोभं । अयदि अणताणु० चसक० पण्डियमंगो ।

एवं क्षेत्राणुगमो समत्तो ।

हे । अमन्थोमि अध्वीस प्रकृतिबोका मंग सामान्य तिर्येचोके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तलुब्धकी वस्तुष्यका मंग एकेन्द्रियोंके समान है ।

**विशेषार्थ—**ओषसे मिथ्यात्व सोलह कपाय और नौ नोक्याबोंकी अध्व्य स्थितिबाले बीच अणक्येणमिं ही होते हैं, अतः इनका क्षेत्र लोके असेक्ष्मातर्ष माग प्रमाण कहा । तथा ओषसे एक प्रकृतियोंकी अणक्य स्थितिबाले बीच अनन्त हैं अतः इनका क्षेत्र सब लोक कहा । जब सामान्यसे सम्बन्ध और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताबाले बीचोका क्षेत्र लोके असेक्ष्मातर्ष मागप्रमाण है तब इतनी अध्व्य और अणक्य स्थितिबाले बीचोका क्षेत्र लोके असेक्ष्मातर्ष मागप्रमाण ही होगा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं । यह ओष प्रकृतिबाले मूलमें गिनार्ह हुई कल्पयोगी आदि कुछ मार्गाधार्योमिं अधिक बन जाती है, इसलिये उनके कर्मको ओषके समान कहा । सामान्य नारकियोंका क्षेत्र लोके असेक्ष्मातर्ष मागप्रमाण है, क्योंकि नारकियोंकी संख्याको नारकियोंकी अणगणनासे गुणित करने पर लोकका असेक्ष्मातर्ष माग ही प्राप्त होता है, अतः इनके अणक्य और अनुक्य स्थितिसे समान अध्व्य और अणक्य स्थितिकी अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र लोका असेक्ष्मातर्ष माग ही कहा । इसी प्रकार मूलमें सातों पृथिवियोंके नारकियोंसे लेकर संकीर्ण और अितनी मार्गाधार्य गिनार्ह हैं उनमें भी जानना चाहिए, क्यों कि सामान्यसे उनका वर्तमान क्षेत्र लोके असेक्ष्मातर्ष मागसे अधिक नहीं प्राप्त होता । हां केवल अनुक्यापक पक्षों बीच इसके अपवाद हैं सो इनके क्षेत्रका अनेक वगैर सुलासा दिया ही है । सामान्यसे तिर्येचोका वर्तमान क्षेत्र सब लोक है । तथा इनमें मिथ्यात्व, बाध कपाय, मय और कुगुप्ताकी अध्व्य और अध्व्य स्थितिबाले बीचोका तथा अनन्तलुब्धकी वस्तुष्य और सात नोक्याबोंकी अध्व्य स्थितिबाले बीचोका प्रमाण अनन्त बतला जाये हैं अतः तिर्येचोके एक प्रकृतियोंकी अध्व्य और अध्व्य स्थितिकी अपेक्षा सब लोक क्षेत्र बन जाता है । किन्तु क्षेत्र प्रकृतिबोकी अध्व्य और अध्व्य स्थितिकी अपेक्षा तथा अनन्तलुब्धकी वस्तुष्य और सात नोक्याबोंकी अध्व्य स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्र लोका असेक्ष्मातर्ष ही होता है । इसका कारण इनकी संख्याकी न्यूनता है । यद्यपि एकेन्द्रियोंमें सामान्य तिर्येचोके समान व्यवस्था बन जाती है किन्तु अनन्तलुब्धकी वस्तुष्य और सात नोक्याबोंकी अध्व्य स्थितिकी अपेक्षा कुछ विशेषता है । वात यह है कि सामान्य तिर्येचोके एकेन्द्रियोंमें अनन्तलुब्धकी वस्तुष्य और सात नोक्याबोंकी अध्व्य स्थिति मिल करती है । अतः इनमें एक प्रकृतिबोकी अध्व्य स्थितिबाले बीचोका प्रमाण अनन्त प्राप्त होता है और इसलिये इनका वर्तमान क्षेत्र सब लोक बन जाता है । पृथिवीकयिकसे लेकर अनन्तारक तक मूलमें और अितनी मार्गाधार्य गिनार्ह हैं उनमें भी एकेन्द्रियोंके समान व्यवस्था जानना चाहिए । किन्तु भौतिक मिथ्यात्वबोकी, मत्पक्षानी, अणगणनी मिथ्यात्व और असेक्ष्मियोंमें सात नोक्याबोंकी अध्व्य स्थितिकी अपेक्षा अपवाद है । वात यह है कि इनमें सात नोक्याबोंकी अध्व्य स्थिति एकेन्द्रियोंके अपवाद अन्तर्ग होती है । अतः अध्व्य स्थितिबाले बीचोकी संख्या एकेन्द्रियोंके समान न प्राप्त होकर सामान्य तिर्येचोके समान प्राप्त होती है अतः इस कारण इनके सात नोक्याबोंकी अध्व्य स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्र सामान्य तिर्येचोके समान होता है । यद्यपि पहले यह बतलाया है कि तिर्येचोमें मिथ्यात्व बाध कपाय, मय और कुगुप्ताकी अध्व्य स्थितिबाले बीचोका अध्व्य क्षेत्र सब लोक है फिर भी मूल अणगणना यह अभिप्राय है कि ऐसे बीचोका क्षेत्र लोके असेक्ष्मातर्ष मागप्रमाण है । सो इसका यह कारण है कि तिर्येचोमें एक प्रकृतियोंकी अध्व्य स्थिति बाध

§ ६२२. पोमणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहेसो—  
ओघेण आदेसेण० । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-मोलमक-णवणोक्क० उक्क० के० खे०  
पोसिदं ? लोग० असंखेभागो अट्ठ-तेरह चोदसभागा वा देसूणा । अथवा इत्थि-  
पुरिसवेद० उक्क० अट्ठ चोदसभागा वा देसूणा । अण्णेणाहिप्पाण वारह चोदसभागा वा  
देसूणा । अणु० सच्चलोगो । सम्म०-सम्मामि० उक्क० लोग० अमंखे०भागो अट्ठ  
चोद् देसूणा । अणुक्क० [लोग० असंखे०भागो] अट्ठ चोद् देसूणा सच्चलोगो वा । एवं  
[कायजोगि-] चत्तारिक्कसाय-मदि-मुद अण्णा०-असंजद०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छादि०-  
आहारि ति । अभव० एवं चेव । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्ज० ।

एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी ही प्राप्त होती है और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्वस्थान क्षेत्र  
लोकके संख्यातवें भागप्रमाण ही है अतः इस अपेक्षासे तिर्यचोमे उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य  
स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके मर्यातवें भागप्रमाण भी बन जाता है । और पहले जो सब  
लोक क्षेत्र वतलाया है सो इसका कारण यह है कि मारणान्तिक समुद्रातकी अपेक्षा वादर एकेन्द्रिय  
पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र सब लोक है अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले तिर्यचोंका क्षेत्र भी  
सब लोक बन जाता है । यही क्रम औदारिकमिश्रकायोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि  
और असत्ता जीवोंके भी घटित कर लेना चाहिये, क्योंकि उनके इस प्रकार घटित करनेमें कोई  
बाधा नहीं आती है । तथा इसी प्रकार एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त  
तथा वायुकायिक, वादर वायुकायिक और उनके अपर्याप्त जीवोंमें भी घटित कर लेना चाहिये ।  
किन्तु इस मूल उच्चारणके अनुसार पृथिवी आदि चार मयारकाय, इनके वादर और वादर  
अपर्याप्तकोंमें छद्मीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग-  
प्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंने वर्तमान कालमें  
लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रको ही स्पर्श किया है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार चैवानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६२२ स्पशन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहा उत्कृष्टका प्रकरण है ।  
उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा  
मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोरुपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका  
स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम  
आठ और कुछ कम तेरह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अपेक्षा  
उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका  
स्पर्श किया है । तथा अन्य अभिप्रायानुसार त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बारह भाग  
प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इन सबकी अनुत्कृष्ट स्थिति बिभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका  
स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके  
असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श  
किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके  
चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार  
काययोगी, चार कपायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, मत्स्य, मिथ्यादृष्टि  
और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर कहना चाहिये ।

१६२३ आदेशेण गेरुसु जम्मीसपयदि० उक्त० मणुक्० लोग० मत्सं० मागो

विशेषार्थ—पहले मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्वर्ग लोकके अर्धस्वातर्षे भागप्रमाण बतलाया जाये है । तबनुसार मोहनीय कर्मके अन्तर्गत भेदोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वर्ग भी लोकके अर्धस्वातर्षे भागप्रमाण ही प्राप्त होता है इससे अधिक नहीं । इसी बातकी ध्यानात् रक्तकर यहां सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्वर्ग लोकके अर्धस्वातर्षे भागप्रमाण बतलाया है । तथा असनालीके बौद्ध मार्गमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम ठेरा भाग प्रमाण स्वर्ग अतीत कालकी अपेक्षा बतलाया है क्योंकि विहारवत्सलमान, वेदना, क्लेश और वैयर्थिक पक्षसे परिष्कृत हुए उक्त बीबीमें असनालीके बौद्ध मार्गमेंसे कुछ कम आठ भाग स्वर्ग किया है और मारवाणिक समुदायसे परिष्कृत हुए उक्त बीबीने असनालीके बौद्ध मार्गमेंसे कुछ कम ठेरा भागका स्वर्ग किया है । यहां आठ भागसे नीचे वा और ऊपर द्वादश रज्जु क्षेत्रका प्रमाण करना चाहिये । तथा ठेरा भागमें नीचेका एक रज्जु धाँप देना चाहिये । एक ऐसा नियम है कि जो बीब जिस वेदवालेमें उत्पन्न होता है मरणात् समय अन्तर्मुहूर्त पक्षसे उसके वही वेदका कर्म होता है । अब अब उस नियमके अनुसार स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्वर्गका विचार किया जाता है तो वह कुछ कम ठेरा बटे बौद्ध भाग नहीं प्राप्त होता क्योंकि मनुसंघवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जो बीब मनुसंघवेदियोंमें उत्पन्न होते हैं इनकी यह स्वर्ग सम्भव है इसलिये भिन्नस्वातर्षे रूपसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वर्ग कुछ कम आठ बटे बौद्ध भाग प्रमाण बतलाया है । किन्तु कुछ आचार्योंका मत है कि वह स्वर्ग कुछ कम बाहर बटे बौद्ध भागप्रमाण प्राप्त होता है । इनके इस मतका वह कारण प्रतीत होता है कि नीचे छातमें मरक तक उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है और ऊपर विहारविककी अपेक्षा अच्युत कर्म तक उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है । अब यदि इस क्षेत्रका संकलन किया जाता है तो वह कुछ कम बाहर बटे बौद्ध भाग प्राप्त होता है । अनुकृष्ट स्थितिवाले बीब सब लोकमें पाये जाते हैं यह स्पष्ट ही है अतः यहां अनुकृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्वर्ग सब लोक बतलाया है । अब यदि सम्भव और सम्मिश्रितता प्रकृतियां सो इनकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्वर्ग लोकके अर्धस्वातर्षे भाग प्रमाण अन्य प्रकृतियोंके समान जान लेना चाहिये । तथा सम्भव और सम्मिश्रितताकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वर्ग भी कुछ कम आठबटे बौद्ध भागप्रमाण बतलाया है । बतला करण यह है कि सम्भव और सम्मिश्रितताकी उत्कृष्ट स्थिति वेदसम्बन्धितियोंके पहले समझें होती है और वेदक सम्बन्धितियोंका अतीत कालीन स्वर्ग कुछ कम आठ बटे बौद्ध भाग प्रमाण बतलाया है अतः सम्भव और सम्मिश्रितताकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका भी स्वर्ग उक्त प्रमाण प्राप्त होता है । तथा इनकी अनुकृष्ट स्थितिवालोंका स्वर्ग जो तीन प्रकारका बतलाया है सो उसमेंसे लोकके अर्धस्वातर्षे भाग प्रमाण स्वर्ग वर्तमान कालकी अपेक्षा प्राप्त होता है । कुछ कम आठ बटे बौद्ध भाग प्रमाण स्वर्ग अतीत कालीन विहारविककी अपेक्षा प्राप्त होता है और सब लोक प्रमाण स्वर्ग मारवाणिक तथा उपपाव पक्षकी अपेक्षा प्राप्त होता है । इस प्रकार यह सब प्रकृतियोंका सामान्यसे स्वर्ग हुआ । कुछ मार्गोंमें भी पंथी हैं जिनमें यह भीष प्रकृष्टता बत जाती है, अतः इनके कर्मका भीषके समान कहा है । जैसे पापों क्लेश आदि । अन्तर्गमि सम्भव और सम्मिश्रितताकी सत्ता नहीं होती । शेष सब स्वर्ग भीषके समान बत जाता है, अतः इनके भी सम्भव और सम्मिश्रितताकी बाहर शेषका स्वर्ग भीषके समान बतलाया है ।

१६२३ आदेशकी अपेक्षा मारवियोंमें जम्मीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थिति-व्यवस्थितले बीबीने लोकके अर्धस्वातर्षे भाग कर्मका और असनालीके बौद्ध मार्गमेंसे कुछ कम

छ चोद० देसूणा । अथवा इत्थि-पुरिस० उक्क० लोग० असंखे० भागो चेव । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० छ चोदस० देसूणा । पढमाए खेत्तभंगो । विदि-यादि जाव सत्तमाए सगपोसणं कायच्चं ।

§ ६२४. तिरिक्ख० मिच्छत्त-सोलसक०-पंचणोक० उक्क० लोग असंखे०-भागो छ चोद० देसूणा, अणुक्क० सच्चलोगो । चत्तारिणोकसाय० उक्क० लोग असंखे० भागो । अथवा णवणोक० उक्क० तेरह चोदस० । अणुक्क० सच्चलोगो । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० लोग असंखे० भागो, अणुक्क० लोग असंखे० भागो सच्चलोगो वा ।

छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका ही स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शनका भग क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा दूसरीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तक अपने अपने स्पर्शके समान स्पर्शन कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नरकातिमें सामान्यसे और प्रत्येक नरका जो स्पर्श बतलाया है वही यहा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नारकियोंके स्पर्श प्राप्त होता है, इसलिये तदनुसार उसका यहाँ विचार कर लेना चाहिये । किन्तु इसके दो अपवाद हैं । पहला तो यह कि विकल्प रूपसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है । इसके कारणका निर्देश पहले कर ही आये हैं । और दूसरा यह कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान ही है । कारण यह है कि इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति वेदक सम्यक्त्वके पहले समयमें उन्हीं जीवोंके सम्भव है जिन्होंने मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके अति लघुकालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है । अब यदि ऐसे नारकी जीवोंका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्पर्श देखा जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, अतः यहा उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-वालोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान बतलाया है ।

§ ६२४ तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और पाच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । चार नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंमें संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और ये ही मिथ्यात्व, सोलह कपाय और पाच नोकपायोंकी उत्कृष्ट

६२५ पंचिद्वितिरिक्त्वं०-यं०तिरि०पञ्च०-यं०तिरि०ओणिणी० मिच्छत्  
 सोससक०-यचणोक्त०-उचक० सोग० असंसे०भागो वा चोदस० देखणा । मयुचक०  
 खेग० असंसे०भागो सम्बलोगो वा । चत्वारिणोक्त० उचक० सोग० असंसे०भागो ।  
 मयवा णवणोक्त० उचक० बारस चोदस० देखणा । अयुचक० खेग० असंसे०भागो  
 [ सम्बलोगो वा । सम्मच-सम्मापि० ] तिरिक्त्वोप ।

स्वितिको प्राप्त होते हैं अतः तिर्यचोंमें इनकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमानकालीन स्पर्श एक प्रमाय्य वतलाया है । तथा इन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यच सातवें भ्रक तक मारणास्तिक समुदाय करते हैं अतएव इनका अतीतकालीन स्पर्श कुछ कम बढ़ बटे चौबह राजुप्रमाय्य वतलाया है । तथा एक कर्मोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यच सब लोकमें पाये जाते हैं यह स्पष्ट ही है, क्योंकि एक कर्मोंकी अनुकृष्ट स्थिति एकेन्द्रियादि सब तिर्यचोंके सम्मच है, अतएव एक कर्मोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका स्पष्ट सब लोक वतलाया है । हास्य, रति, स्त्रीवेद और पुत्रवेद इन चार नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श जो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाय्य वतलाया है उसका कुत्तासा जिस प्रकार मिथ्यात्व आदिके वर्तमान कालीन स्पर्श कर भाये हैं, वसी प्रकार कर होता चाहिये । किन्तु उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके जो देव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उन तिर्यचोंके भी नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त जाती है और नारिक्योंमें मारणास्तिक समुदाय करनेवाले तिर्यचोंके भी नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त जाती है । अब यदि इनके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह कुछ कम तछ बट चौबह भग प्रमाय्य प्राप्त होता है । यही कारण है कि मूलमें अबका कह कर नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम तछ बटे चौबह भाग प्रमाय्य वतलाया है । तथा चार नोक्यायोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका स्पर्श सब लोक स्पष्ट ही है । अतएव इससे पट्टे कर ही भाये हैं । सम्पत्त्व और सम्मिमिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति उन तिर्यचोंके सम्मच है जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अतिशीघ्र वेदक सम्पत्त्वको प्राप्त होते हैं पर ऐसे तिर्यचोंका स्पर्श लोकका असंख्यातवें भाग प्रमाय्य ही है, अतः यहां एक प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाय्य वतलाया है । तथा एक प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका वर्तमान स्पर्श जो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाय्य ही है, क्योंकि इन प्रकृतियोंकी सत्तावालोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता । परन्तु इनकी सब लोकमें गति और आगति सम्मच है, इत्यस्ति इनका अतीत कालीन स्पर्श सब लोक वतलाया है ।

५ ६१५ पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच ओन्मियतियोंमें मिथ्यात्व सोइ कयाव और पांच नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग चोत्रका और वसतासीके चौबह भागोंमेंसे कुछ कम बढ़ भाग प्रमाय्य चोत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक चोत्रका स्पर्श किया है । चार नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने लोकके असंख्यातवें भाग चोत्रका स्पर्श किया है । अबका नौ नोक्यायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने वसतासीके चौबह भागोंमेंसे कुछ कम बाह्य भागप्रमाय्य चोत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिम्बितवाले बीबोंने लोकके असंख्यातवें भाग चोत्रका और सब लोकका स्पर्श किया है । सम्पत्त्व व सम्मिमिध्यात्वका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान बामना चाहिये ।

विशेषार्थ—इस तीन प्रकारके तिर्यचोंमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श जो कुछ कम बढ़ बटे चौबह भाग वतलाया है उसका कुत्तासा सामान्य तिर्यचोंके समान कर लगा



छ चोद० देसूणा । अथवा इत्थि-पुरिस० उक्क० लोग० असंखे०भागो चेव । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० खेतभंगो । अणुक० छ चोदस० देसूणा । पढमाए खेतभंगो । निदि-यादि जाव सत्तमाए सगपोसणं कायव्वं ।

§ ६२४. तिखिख० मिच्छत्त-सोलसक०-पंचणोक० उक्क० लोग असंखे०-भागो छ चोद० देसूणा, अणुक० सव्वलोगो । चत्तारिणोकसाय० उक्क० लोग असंखे०भागो । अथवा णवणोक० उक्क० तेरह चोदस० । अणुक० सव्वलोगो । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० लोग असंखे०भागो, अणुक० लोग असंखे०भागो सव्व-लोगो वा ।

छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका ही स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शनका भग क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा दूसरीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तक अपने अपने स्पर्शके समान स्पर्शन कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नरकगतिमें सामान्यसे और प्रत्येक नरकका जो स्पर्श बतलाया है वही यहा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नारकियोंके स्पर्श प्राप्त होता है, इसलिये तदनुसार उसका यहां विचार कर लेना चाहिये । किन्तु इसके दो अपवाद हैं । पहला तो यह कि विकल्प रूपसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । इसके कारणका निर्देश पहले कर ही आये हैं । और दूसरा यह कि सम्ययत्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान ही है । कारण यह है कि इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति वेदक सम्यक्त्वके पहले समयमें उन्हीं जीवोंके सम्भव है जिन्होंने मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके अति लघुकालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है । अब यदि ऐसे नारकी जीवोंका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्पर्श देखा जाता है तो वह लोकके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, अतः यहा उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-वालोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान बतलाया है ।

§ ६२४ तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पाच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंमें सद्दी पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है और ये ही मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पाच नोकषायोंकी उत्कृष्ट

६२५ पंचिदियतिरिक्खं-पंचि०तिरि०पञ्च०-पंचि०तिरि०आणिणी० मिच्छत्त  
सोक्खसक०-पंचणोक्क०-उक्क० सोग० असत्त्वंभागो इ चोइस० देवणा । अणुक्क०  
सोग० असत्त्वंभागो सम्बसोमो वा । चचारिणोक्क० उक्क० सोग० असत्त्वंभागो ।  
अथवा णवणोक्क० उक्क० बारस चोइस० देवणा । अणुक्क० सोग० असत्त्वंभागो  
[ सम्बसोगो वा । सम्मत्त-सम्माभि० ] तिरिक्खोप ।

स्थितिको प्राप्त होते हैं अतः तिर्यचोंमें इन्हीं उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमानकालीन स्वरूप उक्त  
प्रमाण्य वतलाया है । तथा इन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यच सातवें नरक तक मारणप्रतिक  
समुदाय करते हैं अतएव इनका अतीतकालीन स्वरूप कुछ कम बढ़ बटे चौदह रात्रुप्रमाण्य वतलाया  
है । तथा उक्त कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यच सब लोकमें पाव जाते हैं यह स्पष्ट ही है,  
क्योंकि उक्त कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति पंचेन्द्रियादि सब तिर्यचोंके सम्भव है, अतएव उक्त कर्मोंकी  
अनुत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका स्वरूप सब लोक वतलाया है । हास्य, रति, स्त्रीवद आर पुण्यवेद  
इन चार नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वरूप जो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण्य वतलाया है  
उसका कुतासा जिस प्रकार मिथ्यात्व आदिके वर्तमान कालीन स्वरूप कम कर भाये हैं, वसी प्रकार  
कर लेना चाहिये । किन्तु उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके जो वेष पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उन  
तिर्यचोंके भी नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाव जाती है और नारकियोंमें मारणप्रतिक समुदाय  
करनेवाले तिर्यचोंके भी नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाव जाती है । अब यदि इनके स्वरूपका  
विचार किया जाता है तो वह कुछ कम तरह बट चौदह भाग प्रमाण्य प्राप्त होता है । यही कारण है  
कि मूलमें अथवा कह कर नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वरूप कुछ कम तरह बटे चौदह  
भाग प्रमाण्य वतलाया है । तथा चार नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका स्वरूप सब लोक  
स्पष्ट ही है । कारणका वस्तेज पहले कर ही भाये हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थिति उन तिर्यचोंके सम्भव है जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अतिशीघ्र वेदक सम्यक्त्वका  
प्राप्त होते हैं पर ऐसे तिर्यचोंका स्वरूप लोकका असंख्यातवें भाग प्रमाण्य ही है, अतः वहां उक्त  
प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वरूप लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण्य वतलाया है । तथा उक्त  
प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यचोंका वर्तमान स्वरूप जो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण्य ही  
है, क्योंकि इन प्रकृतियोंकी सत्तावालोंका वर्तमान स्वरूप जो लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं  
प्राप्त होता । परन्तु इनकी सब लोकमें गति और आगति सम्भव है इसलिये इनका अतीत कालीन  
स्वरूप सब लोक वतलाया है ।

६२६ पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पयास और पंचेन्द्रिय तिर्यच यानिमित्तियोंमें  
मिथ्यात्व सादृश कथन और पांच नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंन लोकके असंख्यातवें  
भाग क्षेत्रज्ञ और असंशयिके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तरह भाग प्रमाण्य क्षेत्रज्ञ स्वरूप किया है ।  
तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रज्ञ स्वरूप  
किया है । चार नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रज्ञ  
स्वरूप किया है । अथवा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने असंशयिके चौदह  
भागोंमेंसे कुछ कम तरह भागप्रमाण्य क्षेत्रज्ञ स्वरूप किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले  
जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रज्ञ और सब लोक क्षेत्रज्ञ स्वरूप किया है । सम्यक्त्व व सम्यग्मि  
थ्यात्वका स्वरूप सामान्य तिर्यचोंके सामान्य ज्ञानमा चाहिये ।

विशेषार्थ—उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्वरूप  
का कुछ कम तरह बटे चौदह भाग वतलाया है अथवा मुतासा सामान्य तिर्यचोंके सामान्य कर लेना

§ ६२६ पंचि०तिरि०अपज्ज० सव्वपयडि० उक्क० लोग० असंखे०भागो, अणुक्क० लो० असं०भागो सव्वलोगो वा । एव सव्वमणुस-सव्वविगलित्तिदिय-पंचि-दियअपज्ज०-वादरपुढविपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्जत्त-वादर-वणप्फदिकाइयपत्तेयपज्ज०-तसअपज्जत्ते त्ति । णवरि वादरपुढवि०-आउ०-वणप्फदि-पत्तेय०पज्ज० उक्क० णव चोद्दसभागा वा देसूणा ।

§ ६२७ देव० मिच्छत्त-सोलसक०-सत्तणोक० उक्क० अट्ठ-णव चो० देसूणा ।

चाहिये । तथा 'अथवा' कह कर नौ नोकपायोकी उत्कृष्ट स्थितिवालौका स्पर्श जो कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण वतलाया है वह नीचे छह राजु और ऊपर छह राजुकी अपेक्षा जानना चाहिये । नीचेके छह राजु तो स्पष्ट हैं परन्तु ऊपरके छह राजु उपपाद पदकी अपेक्षा जानना चाहिये । वात यह है बारहवें कल्पतकके देव मर कर तिर्यंच होते हैं । अब नीचेके जो देव सोलहवें कल्पतक विहार करके गये और वहासे मरकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए उनकी अपेक्षा ऊपर छह राजु प्राप्त हो जाते हैं । शेष कथन सुगम है ।

§ ६२६ पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रज्ञा स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रज्ञा और सब लोक क्षेत्रज्ञा स्पर्श किया है । इसी प्रकार सब मनुष्य, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, वादर जलकायिक, वादर जलकायिकपर्याप्त, वादरअग्निकायिक, वादर अग्निकायिकपर्याप्त, वादर वायु-कायिक, वादर वायुकायिकपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि वादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, वादर जलकायिकपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम नौ भाग क्षेत्रज्ञा स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—जो तिर्यंच या मनुष्य मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हो कर और स्थितिघात किये बिना पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । अब यदि इनके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिये यहा उत्कृष्ट स्थितिवालौका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थिति-वालौका वर्तमान कालीन स्पर्श तो लाकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इनका वर्तमान निवास लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें ही है । पर अतीतकालीन स्पर्श सब लोक बन जाता है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्वात और उपपाद पदके द्वारा इन्होंने सब लोकका स्पर्श किया है । कुछ मार्गणाए और हैं जिनमें पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श प्राप्त होता है, अतः उनके कथनको इसी प्रकार कहा है । जैसे सब मनुष्य आदि । किन्तु इनमेंसे वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त और वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त इन तीन मार्गणाओंमें कुछ अपवाद है । वात यह है कि इनमें देव मर कर भी उत्पन्न होते हैं, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थिति-वालौका स्पर्श कुछकम नौ बटे चौदह भाग प्राप्त होता है । यहाँ नौ भागसे नीचेके दो राजु और ऊपरके सात राजु लेना चाहिये ।

§ ६२७ देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले

इति पुरिसवद०-सम्यक्त०-सम्मायि० उक्त० अह घोह० देखणा । अणुक्त० अह-जव  
चो० देखणा । एवं सोहम्मीसाणदेमाण । मवण०-वाण० एवं चेव । जवरि मइधुह  
अह-जव चोहस मागा देखणा । सणक्कुमारादि जाव सहससारो सि सम्बपय० उक्त०  
अणुक्त० अह घोहस० देखणा । आणव-पाणव आरणन्नुद० सम्बपयणीर्ण उक्त० सा०  
असखे०मागो । अणुक्त० अ घोहस० देखणा । सवरि खंथमगो ।

§ ६२८ एइदिय० मिच्छत्त-सोससक०-जवणोक० उक्त० जव घोह० देखणा ।  
अणुक्त० सम्बसोगो । सम्यक्त-सम्मायिच्छत्ताणमुक्त० जव चो० । अणुक्त० ओप । एवं  
बादरइदिय-बादरइदियपक्ख०-जणप्फदि-बादरवणप्फदि-तण्णप्फत्त-कम्मइ अणाहारए च ।

जीवोंने ब्रसनालीके बौरह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया  
है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंने ब्रस  
नालीके बौरह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिम्बि-  
त्वाले जीवोंने ब्रसनालीके बौरह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका  
स्पर्श किया है । इसी प्रकार सौपर्ये और पञ्चान कल्पके देवोंके जानना चाहिये । मवन्वासी और  
अन्तर देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें ब्रसनालीके बौरह  
भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग कुछ कम आठ भाग और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका  
स्पर्श जानना चाहिये । सत्कुमारके क्षेत्र सहास्र कल्प तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट  
और अनुत्कृष्ट स्थितिबिम्बित्वालोंने ब्रसनालीके बौरह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण  
क्षेत्रका स्पर्श किया है । आन्त, प्राणव आरव और अन्मृत कल्पके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंने जोके अस्वप्नावर्षे भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट  
स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंने ब्रसनालीके बौरह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श  
किया है । इसके आगेके देवोंमें क्षेत्रके समान भेग है ।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंका या पुनश्च पुनश्च देवोंका जो स्पर्श कृतताया है वही यहां  
प्राप्त होता है अतः तदनुसार कहे यहां भी बटित कर लेना चाहिये । हा सामान्य देवोंमें स्त्रीवेद,  
पुरुषवेद, सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्थान कुछ विशेषता है । बात  
यह है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवाले देव ऐश्वर्यियोंमें आर्यान्तिक समुद्रपाव नहीं  
करते अतः इनका स्पर्श कुछ कम आठ बटे बौरह भाग ही प्राप्त होता है । तथा वेदकसम्बन्धियोंके  
पक्षे समर्थ ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । अब देवोंमें इसका  
विचार करते हैं तो ऐसे देव भीचे तीसरे तक तक और ऊपर साहस्रमें कल्प तक पाये जा सकते  
हैं अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श भी कुछ कम आठ बटे बौरह  
भाग प्राप्त होता है । यही कारण है कि यहां सामान्य देवोंमें कुछ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका  
स्पर्श कुछ कम आठ बटे बौरह भाग प्रमाण कृतताया है ।

§ ६२९ ऐश्वर्य्योंमें मिध्यात्व सोसह कपाय और नौ मोक्षार्थोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बि-  
त्वाले जीवोंने ब्रसनालीके बौरह भागोंमेंसे कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंने सब क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिबिम्बित्वालोंने ब्रसनालीके बौरह भागोंमेंसे कुछ कम या भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श  
किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिम्बित्वाले जीवोंका स्पर्श आपके समान है । इसी प्रकार  
बाहर ऐश्वर्य्य बाहर ऐश्वर्य्यपथात्त वनस्पतिकारिक, बाहर वनस्पतिकारिक बाहर वनस्पति

णवरि कम्मइय०-अणाहार० उक्क० तेरह चो० भागा वा देसूणा ।

§ ६२६, वादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-वादरपुढविअपज्ज०-सुहुम-  
पुढविपज्जत्तापज्जत्त-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-वादरतेउअपज्ज०-सुहुम-  
तेउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-  
सुहुमवणप्फदि-णिगोद-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त० उक्क० लोग० असंखे० भागो सव्व-  
लोगो वा । णवरि वादरपुढवि-तेउ-वणप्फदिअपज्ज० सव्वलोगो णत्थि । कुदो ? उक्कस्स-  
ट्टिदिसंतकम्मेण पडिणियदखेत्ते चेव एदेसिसुप्पत्तीदो । अणुक्क० सव्वलोगो । [ ओरा-  
लिय० तिरिक्खोथं । ] ओरालियमिस्स० खेत्तमंगो ।

कायिकपर्याप्त, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**—एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति उन्हींके पायी जाती है जो देव पर्यायसे च्युत होकर एकेन्द्रिय हुए हैं, अतः एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंने स्पर्श कुछ कम नौ बटे चौदह राजु वतलाया है जो उपपादपदकी प्रधानतासे प्राप्त होता है । तथा एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, अतएव अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक वतलाया है । आगे जो वादर एकेन्द्रिय आदि मार्गणाएं गिनार्ह हैं उनमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा है । किन्तु कार्मणकाययोग और अनाहारकोंमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि जो देव तद्योग्य उत्कृष्ट स्थितिके साथ एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके भी कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्था सम्भव है तथा जो तियच और मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिके साथ नारकियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके भी कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्था सम्भव है । अब यदि इन दोनोंके स्पर्शका सकलन किया जाता है तो वह कुछ कम तेरह बटे, चौदह राजु प्राप्त होता है । यही कारण है कि कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श उक्तप्रमाण वतलाया है ।

§ ६२६ वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रि-  
अपर्याप्त, वादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म  
पृथिवीकायिकअपर्याप्त, वादरजलकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिकपर्याप्त,  
सूक्ष्म जलकायिकअपर्याप्त, वादर अग्निकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक-  
पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिकअपर्याप्त, वादर वायुकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म  
वायुकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिकअपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त,  
सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व निगोद तथा इनके वादर, वादर पर्याप्त, वादर अपर्याप्त, सूक्ष्म, सूक्ष्म  
पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें  
भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वादर पृथिवी-  
पर्याप्तपर्याप्त, वादर अग्निकायिकअपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिकअपर्याप्तकोंमें सब  
स्पर्श नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मके साथ इन जीवोंकी प्रतिनियत क्षेत्रमें ही  
होती है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । औदारिक-  
पर्याप्तोंका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान है । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें स्पर्श क्षेत्रके

॥ ६३० ॥ पथिदिय-पथि०पज्ज०-तस-तसपक्ख० मिप्पत्त-सोत्तसक०-सत्तगो०  
उत्तक० ओप० । अणुत्तक० अट्ठ वो० देसूणा सम्मसोगो वा । इत्थि० पुरित्त० उत्तक  
अट्ठ-वारह वोइसमागा वा देसूणा । अणुत्तक० अट्ठ वोइस० सम्मसोगो वा । सम्मत्त  
सम्मापि० उत्तक० अट्ठ वोइ० देसूणा । अणुत्तक० सोग० असंखे० भागो सम्मसोगो  
वा । एवं पक्खु०-सण्णि-पंचमण०-पंचवत्थि० ।

**विशेषार्थ—**जो तिर्यक् या मनुष्य मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करके  
और स्थितिपात किन्ने बिना बाहर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि मार्गवाधोंमें व्यग्र होते हैं ऊनीके  
एक कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । अब यदि इनके वर्तमान क्षेत्रका विचार करते हैं तो वह  
क्षेत्रके अंतर्गतात्थमें मागसे अधिक नहीं प्राप्त होता । यही कारण है कि इन बाहर एकेन्द्रिय  
अपस्याप्त आदि मार्गवाधोंमें उत्कृष्ट स्थितिवात्तोंका स्पर्श क्षेत्रके अंतर्गतात्थमें मागप्रमाण बतलाया  
है । तथा ऐसे जीव सब साक्षमें उत्पन्न होते हैं, अतः अतीतकालीन स्पर्श सब क्षेत्र बतलाया है ।  
हां क्या इतनी विशेष बात है कि बाहर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बाहर अग्निकायिक अपर्याप्त  
और बाहर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त इनमें उत्कृष्ट स्थितिवात्तोंका अतीत कालीन स्पर्श तो सब-  
क्षेत्र नहीं प्राप्त होता कबों किन्ते जीवोंकी उत्पत्ति नियत क्षेत्रमें ही होती है, अतः इन्होंने  
सब क्षेत्रको अतीत कालमें ही स्पर्श नहीं किया है । विशेष कुलासके सिधे निम्न वा वर्त  
ध्यानमें रहनी चाहिये । पहली यह कि एक मागप्रमाणसे जीव पृथिवीकायिक आत्मयसे रहते हैं और  
दूसरी यह कि जो संघी पंचेन्द्रिय पस्याप्त तिर्यक् या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके और  
स्थितिपात किन्ने बिना इनमें उत्पन्न होते हैं ऊनीके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति  
प्राप्त होती है । अब ऐसे जीवोंके पृथिवियोंकी ओर गमन करने पर सब साक्ष नहीं प्राप्त होता,  
अतः यहां सब साक्ष स्पर्शका निषेध किया है । तथा एक सब मार्गवाधोंमें अनुत्कृष्ट स्थिति-  
वात्तोंका जो सब क्षेत्र स्पर्श बतलाया है वह स्पष्ट ही है । औदारिककर्मयोगवात्तोंका स्पर्श  
तिर्यक्को समान है, वह स्पष्ट ही है । औदारिकमिषकर्मयोगमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थिति  
ऊनी जीवोंके प्राप्त होती है जो देव और नरक पर्यायसे आकर औदारिकमिषकर्मयोगी होते हैं,  
अतः इनके स्पर्शमें क्षेत्रके अन्तर नहीं पड़ता इसीलिये इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट  
स्थितिवात्तोंका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है ।

॥ ६३० ॥ पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रियपस्याप्त त्रस और त्रस पस्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, सोत्तह कपान्ध  
और सात नाकवाधवात्तोंमें उत्कृष्ट स्थितिबिमर्शितासे जीवोंका स्पर्श ओपसे समान है तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिबिमर्शितासे जीवोंने त्रस मालीके बौरह मार्गमेंसे कुछ कम आठ मागप्रमाण क्षेत्रका  
और सब क्षेत्र स्पर्श किया है । सीधे और पुरुषत्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्शितासे जीवोंने  
त्रस मालीके बौरह मार्गमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह माग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया  
है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिमर्शितासे जीवोंने त्रस मालीके बौरह मार्गमेंसे कुछ कम आठ  
मागप्रमाण क्षेत्रका और सब साक्ष क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्मत्त और सम्मगिमिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिबिमर्शितासे जीवोंने त्रसमालीके बौरह मार्गमेंसे कुछ कम आठ माग क्षेत्रका स्पर्श किया  
है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिमर्शितासे जीवोंने क्षेत्रके अंतर्गतात्थमें माग और सब क्षेत्रका स्पर्श  
किया है । इसी प्रकार पञ्चवत्थनवाले संघी, पाँचों मनोयोगी और पाँचों वधनयोगी जीवोंके  
बतलाया चाहिये ।

**विशेषार्थ—**मिथ्यात्व आदि २५ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवात्तोंका जो ओपसे स्पर्श

छ चोदस देसूणा । एवं सुक्क० ।

§ ६३४ तिणिण ले० मिच्छत्त-सोलसक०-सत्तणोक० उक्क० छ चोद० चत्तारि चोद० वे चोद० देसूणा । अणुक्क० सञ्जलोगो । इत्थि०-पुरिस० खेत्तभंगो । अथवा णवणोक० उक्क० तेरह-एकारस-णव चोदसभागा वा देसूणा, उववादविवक्खाए तदुव-लंभादो । सम्पत्त० सम्मापि० तिरिक्खोघं । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणक्कुमार-भंगो । खइय० एकवीस० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० अट्ट चो० देसूणा । सासण० उक्क० अणुक्क० अट्ट-वारह चोद० देसूणा । असणि० एण्डियभंगो ।

एवमुक्कस्सपोसणाणुगमो समत्तो ।

कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके स्पर्श जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**अन्यत्र आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंका जो स्पर्श बतलाया है वही यहां उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका प्राप्त होता है । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । मिथ्यात्वके रहते हुए जहां जहां मनोयोग सम्भव है वहां वहां विभंगज्ञान भी सम्भव है, अतः विभंगज्ञानियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श मनोयोगियोंके समान बतलाया है । जो उत्कृष्ट स्थितिवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संयमासयमको प्राप्त होते हैं उन्हींके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः सयतासंयतोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह राजु है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सयतसयतोंने इतने क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ल-लेश्यामें भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ६३४ कृष्ण आदि तीन लेश्यावालोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । अथवा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम तेरह, कुछ कम ग्यारह और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि उपपादकी विवक्षांमें इस प्रकारका स्पर्श पाया जाता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान है । पीतलेश्यावालोंमें सौधर्म कल्पके समान भंग है । पद्मलेश्यावालोंमें सनत्कुमार कल्पके समान भंग है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । असक्षियोंमें ऐकेन्द्रियोंके समान भंग है ।

**विशेषार्थ—**कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकपायवालोंके जो क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजु, कुछ कम चार बटे चौदह राजु और कुछ कम दो बटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्श है वह नारकियोंकी मुख्यतासे बतलाया है । तथा ये तीनों

५६३४ जहणाय पयव । तुबिहो० थिहोसो—ओषेण आवेसेण य । ओषेण मिध्वत्त-वारसक०-गवणोक० जह० अग्रह० सेचमंगो । सम्मत्त जह० सेच मंगो । अज० मणुक्क०मंगो । सम्मामि० जह० मम० मणुक्क०मंगो । मणताणु० पठक्क० ज० सो० मसंखे०भागो अट्ठ पो० देसूणा । अग्र० सम्मत्तेगो । एवं कययोगि-वचारिक०-अयन्तु० यवसि० आहारि पि ।

लेखबाबले जीव सब लोकमें पाये जाते हैं अतः इनमें एक प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिवालोंका स्पष्ट सब लोक वतलाया है । स्त्रीवैद्य और पुरुषवैद्यकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव लोकके अंशक्यातवें भागमें पाये जाते हैं, जेव भी इतना ही है अतः इनका स्पष्ट क्षेत्रके समान वतलाया है । तथा विकल्परूपसे कृष्णादि तीन लेखाओंमें वपवाए पक्षी अपेक्षा नौ नोक्याओंका स्पष्ट जो कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु कुछ कम ग्याह बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु वतलाया है वह क्रमसे नीचे बह बार और दो राजु तथा ऊपर सात राजुकी अपेक्षा जानना चाहिये । कृष्णादि तीन लेखाबाबलेमें तिर्यकोंकी बहुतता है, अतः इनमें सम्मत्त और सम्मिमिध्यात्वका स्पष्ट तिर्यकोंके समान वतलाया है । क्षेत्र मार्गवाओंका स्पष्ट सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पष्टानुगम समाप्त हुआ ।

५६३५ अब अथम्य स्पष्टका प्रकर है । वस्त्री अपेक्षा निर्देय हो प्रकारका है—ओपनिर्देय और आवेष्टनिर्देय । ओपकी अपेक्षा मिध्यात्व बाह्य कयाव और नौ नोक्याओंकी अथम्य और अथम्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंका स्पष्ट क्षेत्रके समान है । सम्मत्तकी अथम्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंका स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा अथम्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंका स्पष्ट अनुकूलके समान है । सम्मिमिध्यात्वकी अथम्य और अथम्य स्थितिवाले बीबोंका स्पष्ट अनुकूलके समान है । अन्तस्तुवन्की वस्त्रकी अथम्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंमें लोकके अंशक्यातवें भाग और वसनाकीके चौदह भागमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पष्ट किया है । तथा अथम्य स्थितिबिम्बितवाले बीबोंम सब लोकका स्पष्ट किया है । इसी प्रकार कययोगी, वारों कयाववाले, अथवृष्टवत्ते, अथम्य और आहारक बीबोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मिध्यात्व बाह्य कयाव और नौ नोक्याओंकी अथम्य स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके अंशक्यातवें भागप्रमाण और अथम्य स्थितिवालोंका क्षेत्र सब लोक है । स्पष्ट भी इतना ही है, अतः इनके स्पर्शके क्षेत्रके समान वतलाया है । सम्मत्तकी अथम्य स्थिति वपपि वारों गतिके बीबोंके पार्श्व जाती है फिर भी ऐसे जीव संख्यात ही होते हैं अतः इनका स्पष्ट भी क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है । यही कारण है कि सम्मत्तकी अथम्य स्थितिवालोंका स्पष्ट अनुकूलके समान है वह स्पष्ट ही है । सम्मिमिध्यात्वकी अथम्य और अथम्य स्थितिवाले स्पष्ट क्षेत्रक समान वतलाया है । अथम्य स्थितिवालोंका स्पष्ट अनुकूलके समान सब लोक है । अन्तस्तुवन्की वस्त्रकी अथम्य स्थिति विसंयोजनके समय प्राप्त होती है । अब यदि ऐसे बीबोंके वतमान स्पष्टका विचार किया जाता है तो वह लोकके अंशक्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । यही कारण है कि वहाँ अथम्य स्थितिवालोंका स्पष्ट एक प्रमाण कहा है । तथा ऐसे बीबोंका विहार अप्रति कुछ कम आठ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रमें पाया जाता है अतः अतीत कालीन स्पष्ट एक प्रमाण कहा है । तथा अन्तस्तुवन्की वस्त्रकी अथम्य स्थितिवाले जीव सब लोकमें हैं इसलिये इनका सब लोक स्पष्ट वतलाना स्पष्ट ही है । कुछ मार्गवाए भी देखी हैं जिनमें यह ओष मरुपया अधिक पटित हो जाती है अतः इनके कन्तको ओषके समान कहा है ।



§ ६३१. वेडव्विय० मिच्छ०-सोलसक०-पचणोक० उक्क० अणुक्क० अट्ट-  
 तेरह चोदस० देसूणा । एवं हस्स-रदि०। इत्थि०-पुरिस० उक्क० अट्ट-वारह० देसूणा ।  
 अथवा बारह चोदस० णत्थि । अणुक्क० अट्ट-तेरह चो० देसूणा । सम्मत्त-सम्मामि०  
 उक्क० अट्ट चो०, अणुक्क० अट्ट-तेरह चो० । वेडव्वियमिस्स० खेत्तभंगो । एवमाहार०-  
 आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-खेदो०-परिहार०-सुहुम०-  
 जहाक्खादसजदे त्ति ।

वतलाया है वह पंचेन्द्रिय आदि पूर्वोक्त चार मार्गणाओंकी प्रमुखतासे ही वतलाया है, इसलिये  
 यहा उक्त मार्गणाओंमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श ओघके समान कहा ।  
 उक्त मार्गणाओंका विहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा  
 मारणान्तिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा स्पर्श सब लोक है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थिति-  
 वालोंका स्पर्श उक्त प्रमाण कहा । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका विहार आदिकी  
 अपेक्षा कुछकम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम  
 बारह बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्श प्राप्त होता है, इसलिये इनकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका उक्त  
 प्रमाण स्पर्श वतलाया है । तथा इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका कुछ कम आठ  
 बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्श विहारादिककी अपेक्षा वतलाया है और सब लोक स्पर्श मारणान्तिक  
 तथा उपपाद पदकी अपेक्षा वतलाया है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति-  
 वालोंका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्श विहार आदिकी अपेक्षा वतलाया है  
 और इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्श  
 वर्तमान काल आदिकी अपेक्षा तथा सब लोक स्पर्श मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदकी  
 अपेक्षा वतलाया है । चक्षुर्दर्शन आदि कुछ और मार्गणाएँ हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है,  
 अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है ।

§ ६३१ वैक्रियिकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पाच नोकषायोंकी उत्कृष्ट  
 और अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ  
 कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार हास्य और रति नोकषायकी अपेक्षा  
 जानना चाहिये । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह  
 भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अथवा त्रस  
 नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बारह भागप्रमाण स्पर्श नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति  
 वाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण  
 क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रस  
 नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट  
 स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह  
 भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी  
 प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी,  
 सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापराधिकसंयत और  
 यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—वैक्रियिकाययोगका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम  
 तेरह बटे चौदह भाग है । वही यहा मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंके प्राप्त

§ ६३२ ण्णु स० ओर्ष । जवरि अह पाह० जरि । मिच्छ-सोत्तक०  
उत्तक० अह पाह० । इरिय०-पुरिस० पंथिदियमंगो ।

§ ६३३ आभिणि० सुद०-ओहि० सम्भपयदी० उत्तक० अणुत्तक० लो०  
असंसे०-भागो अह चो० वेसूपा । एषमोहिदंस०-सम्मादि०-वेदय०-उत्तसम० सम्मा  
मिच्छादिदि पि । निहंग० मणमोमिमंगो । संजहासमद० उत्तक० सेत्तमंगो, अणुत्तक०

हावा ॥ इसलिये इसे तत्प्रमाण कहा । किन्तु पुरुषवेद और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका  
कुलकम वेदह वटे औरह रासु स्वयं न प्राप्त होकर कुलकम बाह्य वटे औरह रासु प्राप्त होता है ।  
कारणका स्त्रीकरण ओपमें कर आये हैं । अब विकल्परूपसे जो बाह्य वटे औरह रासुका  
नियेय किया है । उसका मुख्य कारण यह है कि नीचे सात नरकके नारका स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी  
उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए कदापि तिर्येच और मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्रपात करते हैं फिर भी  
उनका प्रमाण स्वयं होता है अतः कुलकम बाह्य वटे औरह भाग प्रमाण स्वयं नहीं बनता है ।  
अनुत्कृष्टका कुलासा उत्कृष्टके समान ही है । सम्भवत्त्व और सम्प्रतिष्ठात्वकी उत्कृष्ट स्थिति  
वेदकसम्प्रतिष्ठयोके पहले समर्थों होती है और वेदकसम्प्रतिष्ठयोका स्पष्ट कुलकम आठ वटे  
औरह रासु होता है अतः सम्भवत्त्व और सम्प्रतिष्ठात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पष्ट भी एक  
प्रमाण ही बतलाया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्पष्टका कुलासा मिथ्यात्व आदि की  
अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंके समान है । वैदिकविभक्तिकारणयोग और आहारककारणयोग आदि ऐसी  
मार्गबाधे हैं जिनके स्पष्टमें केवल अन्तर नहीं पड़ता, अतः उनका स्पर्शन केवलके समान कहा है ।

§ ६३१ नृपुंसकवेदवासे बीबोंमें आपके समान मंग है । किन्तु इतनी विवेकता है कि इनमें  
अस नालीके औरह भागोंमेंसे कुलकम आठ भागप्रमाण स्पष्ट नहीं है । मिथ्यात्व और सोलह  
कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकाले बीबोंने त्रसनालीके औरह भागोंमेंसे कुलकम अह भागप्रमाण  
केवलका स्पष्ट किया है । अविद्याल और पुरुषवेदवासे बीबोंमें पंचेन्द्रियतियेचोंके समान मंग है ।

विशेषार्थ—नृपुंसकवेदमें जो बीबके समान स्पष्ट बतलाया है वह अनुत्कृष्ट स्थितिकी  
अपेक्षा बतलाया है । उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा ता विवेकता है । बात यह है कि ओपसे मिथ्यात्व  
आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका विहार आदिकी अपेक्षा जो कुलकम आठ वटे औरह रासु स्पष्ट  
बतलाता है वह नृपुंसकवेदियोंके नहीं प्राप्त होता, क्योंकि वह वेदोंकी मुख्यतासे बतलाया है  
और वेदोंमें नृपुंसकवेदी बीब होते नहीं । हा मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवासे  
नृपुंसकवेदियोंने भीवेके अह रासु केवलका स्पष्ट किया है अतः इसमें एक प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिवालोंका यह स्पष्ट बन जाता है । तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पष्ट  
पंचेन्द्रियोंके समान है । इसका यह अविमिश्र है कि पंचेन्द्रियोंमें जिस प्रकार स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी  
उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पष्ट घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी पठित  
कर लेना चाहिये ।

§ ६३३ आन्तिमिषोषिकज्ञानी, मृत्शाली और अक्षयिज्ञानियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट  
और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकाले बीबोंने जोकके असंख्यातमें भाग केवलका और त्रसनालीके  
औरह भागोंमेंसे कुलकम आठ भागप्रमाण केवलका स्पष्ट किया है । इसी प्रकार अक्षयिज्ञानवासे,  
सम्प्रतिष्ठ वेदकसम्प्रतिष्ठ कथकसम्प्रतिष्ठ और सम्प्रतिष्ठात्वकी बीबोंके ज्ञानता चाहिये ।  
विमर्शज्ञानियोंमें मनोयोगियोंके समान मंग है । संवत्सरांतवर्तोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकाले बीबोंका  
स्पष्ट केवलके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकाले बीबोंने त्रसनालीके औरह भागोंमेंसे

छ चोदस देसूणा । एवं सुक्क० ।

§ ६३४ तिण्णि ले० मिच्छत्त-सोलसफ०-सत्तणोक० उक्क० छ चोद० चत्तारि चोद० वे चोद० देसूणा । अणुक्क० सव्वलोगो । इत्थि०-पुरिस० खेत्तभंगो । अथवा णवणोक० उक्क० तेरह-एकारस-णव चोदसभागा वा देसूणा, उववादविवक्खाए तदुव-लंभादो । सम्मत्त०-सम्मामि० तिरिक्खोर्ध० । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणक्कुमार-भंगो । खइय० एकवीस० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० अट्ठ चो० देसूणा । सासण० उक्क० अणुक्क० अट्ठ-वारह चोद० देसूणा । असण्णि० एहंदिभंगो ।

एवमुक्कस्सपोसणाणुगमो समत्तो ।

कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके स्पर्श जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**अन्यत्र आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंका जो स्पर्श वतलाया है वही यहां उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका प्राप्त होता है । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । मिथ्यात्वके रहते हुए जहा जहा मनोयोग सम्भव है वहा वहा विभंगज्ञान भी सम्भव है, अतः विभंगज्ञानियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श मनोयोगियोंके समान वतलाया है । जो उत्कृष्ट स्थितिवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संयमासयमको प्राप्त होते हैं उन्हींके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः संयतासयतोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह राजु है, क्योंकि सारणान्तिक समुद्रघातकी अपेक्षा सयतसयतोंने इतने क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ल-लेश्यामें भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ६३४ कृष्ण आदि तीन लेश्यावालोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । खीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । अथवा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम तेरह, कुछ कम ग्यारह और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि उपपादकी विषक्षाओं इस प्रकारका स्पर्श पाया जाता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान है । पीतलेश्यावालोंमें सौधर्म कल्पके समान भंग है । पद्मलेश्यावालोंमें सनत्कुमार कल्पके समान भंग है । ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है ।

**विशेषार्थ—**कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकपायवालोंके जो क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजु, कुछ कम चार बटे चौदह राजु और कुछ कम दो बटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्श है वह नारकियोंकी मुख्यतासे बतलाया है । तथा ये तीनों

१६३५ जहयणए पयव । कुबिहो० गिहोसो—ओघेण आवेसेष य ।  
ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-अवणो० जह० अजह० स्वधर्मगो । सम्मत्त जह० सेत  
धर्मगो । अज० अणुक्क०-धर्मगो । सम्मामि० जह० अम० अणुक्क०-धर्मगो । अणताजु०  
वत्तक० ज० सो० असले०-मागो अह घो० देसूणा । अज० सम्मत्तेमो । एवं  
कायपोधि चत्तारिक०-अवत्तु० भवसि० आहारि ति ।

ऐसावालो बीब सब लोकमें पाये जाते हैं अतः इनमें एक प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिवालोंका स्पर्ध सब लोक बतलाया है । स्त्रीवैव और पुरुषवैवकी उत्कृष्ट स्थितिवाले बीब लोकके अस्तिभावमें मागमें पाये जाते हैं, ऐव भी इतना ही है अतः इनका स्पर्ध क्षेत्रके समान बतलाया है । तथा भिक्षुरूपसे कृपादि तीन ऐसावालोंमें उपपाद परकी अपेक्षा नौ नाक्यायोंका स्पर्ध जो कुछ कम वेष्ट बटे चौदह राजु कुछ कम ग्याह बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है वह कमसे नीचे जह बार और दो राजु तथा ऊपर सात राजुकी अपेक्षा जानना चाहिये । कृपादि तीन ऐसावालोंमें तिर्यकोंकी अनुकूलता है, अतः इनमें सम्मत्त और सम्मगिमध्यात्मका स्पर्ध तिर्यकोंके समान बतलाया है । ऐव मार्गावालोंका स्पर्ध सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्धानुगम समाप्त हुआ ।

१६३६ अब अण्य स्पर्धका प्रकरण है । उत्तरी अपेक्षा निर्लेख दो प्रकारका है—  
ओषनिर्लेख और आरेखनिर्लेख । ओषकी अपेक्षा मिध्यात्म बाह्य कथाम और नौ नाक्यायोंकी अण्य और अजण्य स्थितिविभक्तिवाले बीबोंका स्पर्ध क्षेत्रके समान है । सम्मत्तकी अण्य स्थितिविभक्तिवाले बीबोंका स्पर्ध क्षेत्रके समान है । तथा अजण्य स्थितिविभक्तिवाले बीबोंका स्पर्ध अनुकूलके समान है । सम्मगिमध्यात्मकी अण्य और अजण्य स्थितिवाले बीबोंका स्पर्ध अनुकूलके समान है । अनन्तसुखकी अनुकूलकी अण्य स्थितिविभक्तिवाले बीबोंने लोकके अस्तिभावमें माग और असनालीके चौदह मार्गोंमेंसे कुछ कम आठ मार्गमात्र क्षेत्रका दावे किया है । तथा अजण्य स्थितिविभक्तिवाले बीबोंन सब लोकका स्पर्ध किया है । इसी प्रकार अण्योगी आर्य कथावाला, अण्युत्तरेणवाले, अण्य और आहारक बीबोंके जानना चाहिये ।

विशुद्धार्थ—मिध्यात्म बाह्य कथाम और नौ नाक्यायोंकी अण्य स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके अस्तिभावमें मागमात्र और अजण्य स्थितिवालोंका क्षेत्र सब लोक है । स्पर्ध भी इतना ही है, अतः इनके स्पर्धके क्षेत्रके समान बतलाया है । सम्मत्तकी अण्य स्थिति अथवा आर्य गतिके बीबोंके पार्श्व जाती है फिर भी ऐसे बीब संख्यात ही होते हैं अतः इनका स्पर्ध भी क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है । यही कारण है कि सम्मत्तकी अजण्य स्थितिवालोंका स्पर्ध अनुकूलके समान है वह स्पर्ध ही है । सम्मगिमध्यात्मकी अण्य और अजण्य स्थितिका स्पर्ध क्षेत्रके समान बतलाया है । अजण्य स्थितिवालोंका स्पर्ध अनुकूलके समान सब लोक है । अनन्तसुखकी अनुकूलकी अण्य स्थिति विस्मयजनकके समय प्राप्त होती है । अब यदि ऐसे बीबोंके अस्तिभाव स्पर्ध विचार किया जाता है तो वह लोकके अस्तिभावमें मागमात्र ही प्राप्त होता है । यही कारण है कि यही अण्य स्थितिवालोंका स्पर्ध एक प्रमाण कहा है । तथा ऐसे बीबोंका विचार अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रमें पाया जाता है अतः अतीत कालीन स्पर्ध एक प्रमाण कहा है । तथा अण्यसुखकी अनुकूलकी अजण्य स्थितिवाले बीब सब लोकमें हैं इसलिये अण्य सब लोक स्पर्ध बतलाया स्पर्ध ही है । कुछ मार्गावाले भी ऐसी हैं जिनमें यह ओष प्रकृष्टा अविफल गति हो जाती है अतः इनके अण्यको ओषके समान कहा है ।



मिच्छत्त० बह० सम्मत्तमंगो । किण्व-णीस० तिरिक्त्वमंगो । जबरि सम्मत्त० सम्मा  
मिच्छत्तमंगो । एवमोरास्मिभिस्स०-मन्त्रि-सुदम्प्याण अमय० मिच्छादि० असम्पि णि ।  
जबरि अणंताण० वत्तक्क० मिच्छत्तमंगो । अमय० सम्मत्त०-सम्माभि० णत्थि । ओरा  
स्मिभिस्स० सम्म० तिरिक्त्वोच ।

अवयवस्य स्थितिबिभक्त्याले जीवोक्तं स्वप्नो अनुकूलके समान है । इसी प्रकार कपोतलेखावले जीवोक्तं जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार असंयतोक्तं भी जानना चाहिये । किन्तु इनके इतनी विशेषता है कि मिच्छात्वकी अवयव स्थितिबिभक्त्याले जीवोक्तं स्वप्नोक्त मंग सम्बन्धके समान है । कृष्ण और नीलप्रत्यावालोमें तिर्यकोक्तं समान मंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्बन्धका मंग सम्मगमिध्यात्वके समान है । इसी प्रकार औदारिकमित्रकायवोगी, मत्प्यानी, भुतप्यानी, अमय मिच्छाद्वि और असंयती जीवोक्तं जानना चाहिये । किन्तु इतना विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीवत्तुक्त मंग मिच्छात्वके समान है । अवयवोंमें सम्बन्ध और सम्म मिध्यात्व ये दो प्रकृतियाँ नहीं हैं । तथा औदारिकमित्रकायवोगियोंमें सम्बन्धका मंग सामान्य तिर्यकोक्तं समान है ।

विशेषार्थ—तिर्यकोक्तं मिच्छात्व, बाह्य कयाय, मय और उगुप्ताकी अवयव स्थिति बाहर पकेन्द्रोक्तं होती है । जैसे तो बाहर पकेन्द्रोक्तं निवास लोके संस्कारतर्पे भाग प्रमाण क्षेत्रों ही है किन्तु मार्यान्तिक समुद्रपातकी अपेक्षा इनका स्वयं सब लोकमें पाया जाता है इसलिये इनका सब लोक स्वयं वत्तजाया है । तथा इनकी अवयव स्थितिबाह्योक्तं स्वयं सब लोक है यह स्पष्ट है । वीरसेन स्वामीने यहां एक ऐसे पाठका फलोर किया है जिसके अनुसार तिर्यकोक्तं वत्त मत्तुक्तियोंकी अवयव स्थितिबाह्योक्तं क्षेत्र और स्वयं लोके संस्कारतर्पे भाग प्रमाण प्राप्त होता है । अब यदि इस पाठके अनुसार विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मार्यान्तिक समुद्रपातके समान अवयव स्थिति नहीं होती होगी । साथ नाकपाय, अनन्तानुबन्धी वत्तुक्त और सम्बन्धकी अवयव स्थिति पकेन्द्रिय तिर्यकोक्तं होती है । यद्यपि पकेन्द्रिय तिर्यकोक्तं मार्यान्तिक समुद्रपात और उपपाद पक्षकी अपेक्षा स्वयं सब लोक है तो भी वत्त मत्तुक्तियोंकी अवयव स्थितिके समय वे पक्ष सम्मत्त नहीं इसलिये इनका स्वयं क्षेत्रके समान बन जाता है । यद्यपि सम्बन्ध मत्तुक्तियोंकी अवयव स्थितिके समय उपपाद पक्ष सम्मत्त है तो भी इससे स्वयं अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि ऐसे जीव संस्कार ही होते हैं । तथा इनकी अवयव स्थितिबाह्योक्तं स्वयं क्षेत्रके समान है इसका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार इनका क्षेत्र सब लोक है वही प्रकार स्वयं भी सब लोक है । किन्तु सम्बन्धकी अवयव स्थितिबाह्योक्तं स्वयं लोके असंस्कारतर्पे भाग और सब लोक दोनों प्रकारका प्राप्त होता है । इसकी अनुकूल स्थितिबाह्योक्तं स्वयं भी ऐसा ही है । अतः सम्बन्धकी अवयव स्थितिबाह्योक्तं स्वयं अनुकूलके समान कहा है । इसी प्रकार सम्मगमिध्यात्वकी अवयव और अवयव स्थितिबाह्योक्तं स्वयं भी अनुकूलके समान बतित कर ज्ञात चाहिये । कपोतलेखापात और असंयतसम्बन्धियोंके यह व्यवस्था बन जाती है अतः इनके कथनको वत्त प्रमाण कहा है । किन्तु असंयतोक्तं द्वायिकसम्प्राप्तकी प्राप्ति समय मिच्छात्वकी भी जरूरी होती है और इन्हींसे यहां मिच्छात्वकी ओपरूप अवयव स्थिति बन जाती है । अब यदि ऐसे जीवोक्तं स्वयंका विचार किया जाता है तो यह सम्बन्धकी अवयव स्थितिबाह्योक्तं समान लोके असंस्कारतर्पे भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिये असंयतोक्तं मिच्छात्वकी अवयव स्थितिबाह्योक्तं स्वयं सम्बन्धके समान वत्तजाया है । कृष्ण और नील क्षेत्रोंमें भी सब मत्तुक्तियोंकी अवयव और अवयव स्थितिबाह्योक्तं स्वयं तिर्यकोक्तं समान बन जाता है । किन्तु इन दोनों कथाओंमें वत्तवत्तुक्त सम्बन्धियोंकी स्थापति न



सोग० असंसे० मागो अह-जव चोइ० । सम्मामि० जइ० अज० सोग० असंसे०-  
मागो अह-जव चोइ० । अर्णताणु० चउक० जइ० सोग० असंसे० मागो अह चोइ० ।  
अज० सोग० असंसे० मागो अह-जव चोइ० । एवं सोहम्मीसाण० ।

॥ ६४० ॥ भवण०-माणवेतर०-मोदिसि० मिच्छ०-बारसक०-गवजोक० जइ०  
सोग० असंसे० मागो । सम्मसिमज० सम्म०-सम्मामि० ज० अज० सोगसस  
असंसे० मागो अह-जव चोइ० । अर्णताणु० ४ जइ० अह-जव चोइ० ।  
सजकम्पारादि जाव सहस्सार चि मिच्छ०-सम्म० बारसक०-गवजोक० जइ० सोग०  
असंसे० मागो । सम्मसिमज० सम्मामि०-अर्णताणु० जइ० अज० सोग० असंसे० मागो  
अह चोइस० । मागदादि अह-जव चि मिच्छ०-सम्म०-बारसक०-गवजोक० जइ०  
सोग० असंसे० मागो । सम्मसिमज० सम्मामि०-अर्णताणु० ४ जइ० अज० सोग०  
असंसे० मागो अह चोइ० । उरि खेचमंगो । एव वेठभियमिस्स०-आहार-आहारमि०

विमक्तिवाले जीवोंका स्वयं क्षेत्र के समान है । तथा अक्षय्य स्थिति विमक्तिवाले जीवोंने लोक के  
असंख्यातवें भाग और वसनाली के चौदह भागोंमेंसे कुछ कम भाग और कुछ कम नौ भाग क्षेत्र  
स्पर्श किया है । सम्यग्मिध्यातृकी जपम्य और अक्षय्य स्थिति विमक्तिवाले जीवोंने लोक के  
असंख्यातवें भाग और वसनाली के चौदह भागोंमेंसे कुछ कम भाग और कुछ कम नौ भाग प्रमाण  
क्षेत्र का स्पर्श किया है । अनन्तलोकस्थी जपुष्की जपम्य स्थिति विमक्तिवाले जीवोंने लोक के  
असंख्यातवें भाग और वसनाली के चौदह भागोंमेंसे कुछ कम भाग प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श किया  
है । तथा अक्षय्य स्थिति विमक्तिवाले जीवों का क्षेत्र के असंख्यातवें भाग और वसनाली के चौदह  
भागोंमेंसे कुछ कम भाग और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श किया है । इसी प्रकार  
सौचर्म और पेशाव कल्प के देवों में जानना चाहिये ।

॥ ६४० ॥ मन्त्रवासी व्यन्तर और व्योतिपी देवों में मिध्यात्व बाह्य कथा और नौ  
नोक्यायों की जपम्य स्थिति विमक्तिवाले जीवों ने लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र का स्पर्श किया है ।  
तथा सभी प्रकृतिपों की अक्षय्य तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यातृकी जपम्य और अक्षय्य  
स्थिति विमक्तिवाले जीवोंने लोक के असंख्यातवें भाग, वसनाली के चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े  
तीन कुछ कम भाग और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श किया है । अनन्तलोकस्थी  
जपुष्की जपम्य स्थिति विमक्तिवाले जीवोंने वसनाली के चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन  
और कुछ कम भाग प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श किया है । सान्तलुमारसे लेकर सहस्वार कल्प तक के  
देवों में मिध्यात्व सम्यक्त्व, बाह्य कथा और नौ नोक्यायों की जपम्य स्थिति विमक्तिवाले जीवोंने  
लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र का स्पर्श किया है । तथा सभी प्रकृतिपों की अक्षय्य और सम्यग्मि  
ध्यात्व तथा अनन्तलोकस्थी जपुष्की जपम्य और अक्षय्य स्थिति विमक्तिवाले जीवों ने लोक के  
असंख्यातवें भाग और वसनाली के चौदह भागोंमेंसे कुछ कम भाग प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श  
किया है । आन्तर से लेकर अक्षय्य कल्प तक के देवों में मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बाह्य कथा और नौ  
नोक्यायों की जपम्य स्थिति विमक्तिवाले जीवोंने लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श किया  
है । तथा एक त्व प्रकृतिपों की अक्षय्य और सम्यग्मिध्यात्व तथा अनन्तलोकस्थी जपुष्की  
जपम्य और अक्षय्य स्थिति विमक्तिवाले जीवोंने लोक के असंख्यातवें भाग और वसनाली के  
चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े भाग प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श किया है । इसका भाग के देवों में स्पर्श



§ ६३८. पंचिदियतिरिक्खतिए सत्तावीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे० भागो । अज० लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा । सम्मामि० जह० अज० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । णवरि जोणिणीसु सम्म० सम्मामि० भंगो । पंचि० तिरि० अपज्ज०-मणुसअपज्ज० जोणिणीभंगो । मणुसतिए पंचि० तिरिक्खभंगो ।

§ ६३९. देवेसु मिच्छ०-सम्म०-चारसक०-णवणोक० जह० खेतं, अज०

होनेसे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय प्रमाण नहीं प्राप्त होती और इसलिये सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका जो स्पर्श पूर्वमें बतलाया है वही यहा सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका प्राप्त होता है । यही कारण है कि उक्त दोनों लेश्याओंमें सम्यक्त्वके भगको सम्यग्मिध्यात्वके समान बतलाया है । औदारिकमिश्र आदि कुछ और मार्गणाए हैं जिनमें उक्त व्यवस्था बन जाती है इसलिये उनके कथनको उक्त प्रमाण कहा है । किन्तु इन मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती, अतः इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श मिध्यात्वके समान बतलाया है । अभव्य मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृति नहीं होती, अतः इनका निषेध किया है । औदारिकमिश्रमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्गृष्टियोंकी उत्पत्ति सम्भव है अतः इसमें सम्यक्त्वका भग सामान्य तिर्यचोंके समान बतलाया है ।

§ ६३८ पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती इन तीन प्रकारके तिर्यचोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यचोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान है । पंचेन्द्रियतिर्यचअपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तिर्यच योनिमती जीवोंके समान भग है । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान भग है ।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके जो स्वामी बतलाये हैं उन्हें देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है । अन्यत्र पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण व सब लोक बतलाया है । अब यदि इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवालोंके स्पर्शका विचार करते हैं तो वह उतना बन जाता है, इसलिये यहा इनके स्पर्शको उक्त प्रमाण बतलाया है । किन्तु उक्त तिर्यचोंमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थिति सब अवस्थाओंमें सम्भव है और इसलिये उक्त तिर्यचोंका जो स्पर्श बतलाया है वह सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी बन जाता है यही कारण है कि इनमें सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण व सब लोक बतलाया है । किन्तु योनिमती तिर्यचोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्गृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, अतः इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिध्यात्वके समान बतलाया है । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी जो जघन्य और अजघन्य स्थितिके स्वामी बतलाये हैं उसे देखते हुए इनका स्पर्श योनिमतियोंके समान बन जाता है, इसलिये इनके भंगको योनिमतियोंके समान कहा है । मनुष्यत्रिकमें पंचेन्द्रियतिर्यचोंके समान कहनेका भी यही तात्पर्य है ।

§ ६३९. देवोंमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-

सोग० असंखे० भागो अह-णव चोह० । सम्मायि० अह० अम० सोग० असंखे०  
भागो अह-णव चोह० । अर्णताणु० अह० अह० सोग० असंखे० भागो अह चोह० ।  
अम० सोग० असंखे० भागो अह-णव चोह० । एवं सोहम्मीसाण० ।

॥ ६५० ॥ मयण० माणवेतर० जोदिसि० मिच्छ० बारसक० णवणोक० अह०  
सोग० असंखे० भागो । सम्भेसिमज्ज० सम्म० सम्मायि० अ० अम० सोगस्स  
असंखे० भागो अह-णव चोह० । अर्णताणु० अह० अह-णव चोह० ।  
सणककुमारदि जाव सहस्सार चि मिच्छ० सम्म० बारसक० णवणोक० अह० सोग०  
असंखे० भागो । सम्भेसिमज्ज० सम्मायि० अर्णताणु० अह० अह० सोग० असंखे० भागो  
अह चोह० । आणदादि अणुदा चि मिच्छ० सम्म० बारसक० णवणोक० अह०  
सोग० असंखे० भागो । सम्भेसिमज्ज० सम्मायि० अर्णताणु० अह० अम० सोग०  
असंखे० भागो अह चोह० । उपरि सेचमंगो । एव वेठभियमिस्स० आहार-माहारमि०

विमिच्छित्तले जीवोंका स्वयं क्षेत्रके समान है । तथा अजपण्य स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने लोकके  
असंख्यातवें भाग और व्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग क्षेत्रका  
स्पर्श किया है । सम्मिमिच्छित्तले जीवोंका अजपण्य और अजपण्य स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने लोकके  
असंख्यातवें भाग और व्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण  
क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुगन्धी वस्तुकी अजपण्य स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने लोकके  
असंख्यातवें भाग और व्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया  
है । तथा अजपण्य स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और व्रसनालीके चौदह  
भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार  
सौम्य और प्रेक्ष्य कल्पके जीवोंने ज्ञानता चाहिये ।

॥ ६५० ॥ मयनवासी ज्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें मिच्छात्वा बाह्य कणाय और नौ  
नोकपयोंकी अजपण्य स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।  
तथा सभी प्रवृत्तियोंकी अजपण्य तथा सम्मिच्छात्वा और सम्मिमिच्छात्वाकी अजपण्य और अजपण्य  
स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, व्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े  
तीन कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुगन्धी  
वस्तुकी अजपण्य स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने व्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन  
और कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सान्तानुसारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके  
देवोंमें मिच्छात्वा सम्मिच्छात्वा, बाह्य कणाय और नौ नोकपयोंकी अजपण्य स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने  
लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा सभी प्रवृत्तियोंकी अजपण्य और सम्मिमि-  
च्छात्वा तथा अनन्तानुगन्धी वस्तुकी अजपण्य और अजपण्य स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने लोकके  
असंख्यातवें भाग और व्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श  
किया है । आमतसे लेकर अज्युत कल्पतकके देवोंमें मिच्छात्वा, सम्मिच्छात्वा, बाह्य कणाय और नौ  
नोकपयोंकी अजपण्य स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया  
है । तथा सभी प्रवृत्तियोंकी अजपण्य और सम्मिमिच्छात्वा तथा अनन्तानुगन्धी वस्तुकी  
अजपण्य और अजपण्य स्थितिबिम्बित्तले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और व्रसनालीके  
चौदह भागोंमेंसे कुछ कम अह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसके आगेके देवोंमें क्षेत्र

अवगद०-अकसाय०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्त्वाद-  
सजदे त्ति ।

§ ६४१. एहंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोरु० ज० अज० मव्वलोगो ।  
सम्मत्त-सम्मामि० ज० अज० अणुक्कस्सभगो । एव पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढवि-  
अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्त।पज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-  
सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-  
सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ-  
पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-वादरवणप्फदि०-

समान भग हैं । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी,  
अपगतवेदवाले, अकपायी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-  
विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय, नौ नोकपाय और सम्यक्त्वकी जघन्य  
स्थिति किसी खास अवस्थामें ही प्राप्त होती है और सबके सम्भव नहीं अतः इनकी जघन्य  
स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है और इसलिये इसे क्षेत्रके समान बतलाया है ।  
परन्तु अजघन्य स्थितिके लिये ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है अतः उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य  
स्थितिवालोंका वही स्पर्श प्राप्त हो जाता है जो सामान्य देवोंका बतलाया है । यही बात सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंके लिये समझ लेना चाहिये । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी  
जघन्य स्थिति विसंयोजनके समय होती है पर ऐसे समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात  
सम्भव नहीं अतः इनकी जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और कुछ  
कम आठ बटे चौदह राजु बतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें  
भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है । यह  
सामान्य देवोंमें स्पर्श हुआ । इसी प्रकार देवोंके प्रत्येक भेदमें अपनी अपनी विशेषताको जान कर  
स्पर्श जान लेना चाहिये । कहा कितना स्पर्श है इसका निर्देश मूलमें किया ही है । कोई विशेषता  
न होनेसे उसका खुलासा नहीं किया है । हा भवनत्रिकमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं  
उत्पन्न होते अतः उनमें सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श सम्यग्मिथ्यात्वके  
समान बतलाया है । यहा 'एवं' कह कर जो वैक्रियिकमिश्र आदिमें स्पर्शका निर्देश किया है सो  
उसका यह मतलब है कि जिस प्रकार नौ प्रवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान है उसी प्रकार इन  
वैक्रियिकमिश्र आदि मागणाओंमें अपने अपने क्षेत्रके समान स्पर्श जानना चाहिये ।

§ ६४१ एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य  
स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य  
और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शका भंग अनुत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार  
पृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म-  
पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादरजल-  
कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि-  
कायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्नि-  
कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक-  
अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पति-

बादरवणपक्षदिपञ्चचापञ्च—सुहुमयपक्षदि—सुहुमयणपक्षदिपञ्चचापञ्च—कम्मइय०—  
मजाहारि चि । जवरि कम्मइय० अजाहारीसु सम्मत्तस्स तिरिक्खीर्ण । सम्भविगलिंदिय  
पंचिंदियअपञ्च० तसअपञ्च० पंचिंदियतिरिक्खअपञ्चत्तमंगो । बादरपुडविपञ्च०  
बादरआठपञ्च०—बादरतेजपञ्च०—बादरपाठपञ्च०—बादरवणपक्षदिपञ्चयसरीरपञ्च०—  
तसअपञ्चसमगा । जवरि बादरपाठपञ्च० ज्वीसपय० ज० मम० सोग० संस० भागो  
सम्भसोगो वा ।

§ ६४२ पंचिंदिय—पंचि०पञ्च० तेवीसपयवी० ज० स्तेत्तं, अज० अयुक्त० मंगो ।  
सम्माभि० आपं । अणताणु० चउक्त० ज० देपोयं । अज० अयुक्त० मंगो । एवं तस

आयिक प्रत्येक करीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक करीर अपर्याप्त वनस्पतिकायिक, सभी  
निगोह, बादर वनस्पतिकायिक बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त,  
सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, काम्य  
काम्ययोगी और अनश्वरक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विवेकता है कि काम्यकाम्ययोगी  
और अनश्वरकोंमें सम्प्रत्यक्ष मंग सामान्य तिर्यचोंके समान है । सब विकलेश्रिय पंचेन्द्रिय  
अपर्याप्त और व्रस अपर्याप्त जीवोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान मंग है । बादर पृथिवी-  
कायिक पर्याप्त, बादर अक्षकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त बादर वायुकायिक पर्याप्त  
और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक करीर पर्याप्त जीवोंमें व्रस अपर्याप्त जीवोंके समान मंग है ।  
किन्तु इतनी विवेकता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें ज्वीस प्रकृतियोंकी अजन्म और  
अजन्मस्थ स्थितिभिन्नतासे जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग और सब लोक प्रमाण केवला  
स्पष्ट किया है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह क्वाय और नौ लोकपायोंकी अजन्म और  
अजन्मस्थ स्थितिवाले जीव सबैत्र पाये जाते हैं इसलिये इनका स्पष्ट सब लोक बतलाया है ।  
सम्यक्त्व और सम्ममिध्यात्वकी अजन्म और अजन्मस्थ स्थितिवालोंका स्पष्ट अनुकूलके समान  
है सो इसका झुलावा जिस प्रकार पढ़ने कर आये हैं उसी प्रकार वहाँ भी कर लेना चाहिये ।  
पृथिवीकायिक आदि मागेकाओंमें एकेन्द्रियोंके समान स्पष्ट बन जाता है, इसलिये इनके क्वायको  
एकेन्द्रियोंके समान कहा है । किन्तु काम्यकाम्ययोगी और अनश्वरकोंमें छः अक्षरेक सम्ममिध्या  
भी उत्पन्न होते हैं अतः इनमें सम्यक्त्वका स्पष्ट सामान्य तिर्यचोंके समान बन जाता है । पंचेन्द्रिय  
तिर्यच सम्मपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी अजन्म और अजन्मस्थ स्थितिवालोंके कारण स्पष्ट भी  
विवेकता प्राप्त होती है वही निरूपता सब विकलेश्रिय पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और व्रस अपर्याप्त  
जीवोंमें भी प्राप्त होती है इसलिये वहाँ इनके स्पष्टको पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान  
बतलाया है । इसी प्रकार बादर पृथिवी पर्याप्त आदिमें सब प्रकृतियोंके अजन्म और अजन्मस्थ  
स्थितिवालोंके स्पष्टको व्रस अपर्याप्तकोंके समान बतलानेका कारण जान लेना चाहिये । किन्तु बादर  
वायुकायिक पर्याप्तकोंका स्पष्ट लोकके संख्यातवें भागप्रमाण व सब लोक होमसे इनमें ज्वीस  
प्रकृतियोंकी अजन्म और अजन्मस्थ स्थितिवालोंका स्पष्ट उक्त प्रमाण बतलाया है ।

§ ६४२ पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंमें व्रस प्रकृतियोंकी अजन्म स्थितिभिन्नतासे  
जीवोंका स्पष्ट केवले समान है । तथा अजन्मस्थ स्थितिभिन्नता मंग अयुक्तके समान है ।  
सम्ममिध्यात्वका मंग जीवोंके समान है । अनश्वरानुभवीचतुष्ककी अजन्म स्थितिभिन्नतासे  
जीवोंका स्पष्ट सामान्य केवले समान है । तथा अजन्मस्थ स्थितिका मंग अनुकूलके समान है ।

तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि ति ।

१ ६४३ वेउन्विय० त्रावीमपयडी० ज० खेत्तं, अज० अणुक्क० भंगो । सम्मत्त-  
सम्मामि० ज० अज० अणुक्क० भंगो । अणंताणु० चउक्क० ज० अट्ठ चो०, अज०  
अणुक्क० भंगो । ओरालिय०-णवुंस० ओघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० ज० तिरिक्खोघं ।

१ ६४४ विहंग० छ्वीसं पयडी० ज० खेत्तभंगो, अज० अणुक्क० भंगो ।  
सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० भंगो । आभिणि०-सुद०-ओहि०-ओहिदंस०-सम्मादि०-  
वेदय० सव्वपय० जह० पच्चिदियभंगो । णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । अज० अणुक्क०-  
भंगो । सजदासंजद० सव्वपयडी० जह० खेत्तभंगो । अजह० अणुक्क० भंगो ।

इसी प्रकार ब्रस, ब्रसपर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चतुर्दर्शनवाले और सही जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्तकोमे तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति क्षणिक समय प्राप्त होती है, इसलिये इनका स्पर्श क्षेत्रके समान प्राप्त होता है । यही कारण है कि यहा स्पर्शको क्षेत्रके समान कहा है । अजघन्य स्थिति सर्वत्र सम्भव है अतः इनका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बतलाया है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका जो ओघ स्पर्श बतलाया है वह उक्त मार्गणाद्योंमें भी सम्भव है, अतः इनके स्पर्शको ओघके समान कहा है । उक्त मार्गणाद्योंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिवालोंमें देवोंकी प्रमुखता है अतः इनके स्पर्शको सामान्य देवोंके समान बतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बन जाता है, अतः इसे अनुत्कृष्टके समान बतलाया है । ब्रसकायिक आदि मार्गणाद्योंमें उक्त व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको उक्त प्रमाण कहा है ।

१ ६४३ वैक्रीयकाययोगियोंमें बाईस प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिका भग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिका भग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवाने ब्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका दर्श किया है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिका भग अनुत्कृष्टके समान है । औदारिककाययोगी और नपु सकवेदवालोंमें ओघके समान है । किन्तु इतना विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंके समान है ।

१ ६४४ विर्मगज्ञानियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिका भग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग अनुत्कृष्टके समान है । आभिनिबोधिकाज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्ट और वेदकसम्यग्दृष्ट जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंका स्पर्श पंचेन्द्रियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भग सम्यक्त्वके समान है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिका भग अनुत्कृष्टके समान है । सयतासंयतोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तित्वात् जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिका भग अनुत्कृष्टके समान है ।

॥ ६४५ ॥ तेव०-पम्प० तेवीसपयडी० जह० सेचमंगो, अत्र० अणु०मंगो । सम्मामि० ज० अज० अणु०क०मंगो । अर्णताणु०चठक० ज० पर्वि०मंगो, अम० अणु०क०मंगो । सुक० तेवीसपयडी० ज० सेचमंगो । अम० अणु०मंगो । सम्मामि० अर्णताणु०चठक० ज० अत्र० आपदमंगो ।

॥ ६४६ ॥ खइय० सम्पयडी० ज० सेचमंगो । अम० अणु०मंगो । उबसम० चठरीसपयडी० ज० सेचमंगो, अम० अणु०मंगो । अर्णताणु०चठक० ज० अज० अट्ट चोरस० । सम्मामि०-सामणसम्मा० उबसम०मंगो ।

एवं पासणाणुगमो समसो ।

ॐ अथा उहस्सट्ठिदिबंघे णाणाजीवेहि काखो तथा उहस्सट्ठिदिसंत कम्मण कायज्जो ।

॥ ६४७ ॥ उहस्सट्ठिदिबंघे जहा णाणाजीवेहि काखो पकूविदो तथा उहस्सट्ठिदिसंतकम्मस्स बि पकूवेय्यो । तं जहा—दुग्धीसपयडीणमुहस्सट्ठिदिसंतकम्मिया केव विरं कामादो होति ? खइ० एगसमज्जो; एगसमयपुकस्सट्ठिदिं बंधिय विदिममए

॥ ६४४ ॥ पीठ और फलदावाले जीवोंमें तइस प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा अत्रापन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका मंग अनुकूलके समान है । सम्मामिच्छास्वकी अपन्य और अत्रापन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका मंग अनुकूलके समान है । अनन्तलुग्घी चतुष्ककी अपन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका मंग पंचेन्द्रियोंके समान है । तथा अत्रापन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका मंग अनुकूलके समान है । सुक्खलदावालांमें तेईस प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा अत्रापन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका मंग अनुकूलके समान है । सम्मामिच्छास्व और अनन्तलुग्घी चतुष्ककी अपन्य और अत्रापन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका मंग आनन्दकल्पके समान है ।

॥ ६४६ ॥ कायिक सम्पत्तियोंमें सब प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा अत्रापन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका स्पष्ट अनुकूलके समान है । उपशम सम्पत्तियोंमें बीबीस प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका स्पष्ट क्षेत्रके समान है । तथा अत्रापन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका स्पष्ट अनुकूलके समान है । अनन्तलुग्घी चतुष्ककी अपन्य और अत्रापन्य स्थितिबिमिष्ठिवाले जीवोंका असनासने बाइह मंगानेस कुल कम्म आठ मंगप्रमाण क्षेत्रका स्पष्ट किया है । सम्मामिच्छास्व और सासादनसम्पत्ति जीवोंमें उपशम सम्पत्ति जीवोंके समान मंग है ।

इस प्रकार स्पष्टानुगम समाप्त हुआ ।

० जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिबोधमें नाना जीवोंकी अपेक्षा कमल कहा है वसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसत्कमकी अपेक्षा काष्ठा कथन करना चाहिये ।

॥ ६४७ ॥ उत्कृष्ट स्थितिबोधमें जिस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कमल कहा है वसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसत्कमकी भी काल कहना चाहिये । जो इस प्रकार है—दुग्धीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कमवाले जीवोंका कितना काल है ? अपन्य कास एक समय है, क्योंकि एक समय तक उत्कृष्ट स्थिति का बोधकर दूसरे समयमें इन सब जीवोंके अनुकूल स्थितिसत्कमको

अणुकस्सट्ठिदिसंतं सव्वजीवेसु उवगएसु तिहुवणासेसजीवाणमेगसमयं चेव उक्कस्सट्ठिदिदंसणादो । उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एकस्स जीवस्स जदि उक्कस्सट्ठिदिकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो लब्भदि तो आवलियाए असंखे० भागमेत्तजीवाणं किं लभामो त्ति फल-गुणिदिच्छाए पमाणेणोवट्ठिदाए असंखेज्जावलियमेत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकालुवलंभादो । अणुकस्सट्ठिदिसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होति ? णाणाजीवे पडुच्च सव्वद्धा । कुदो ? तिसु वि कालेसु अणुकस्सट्ठिदिसंतकम्मियजीवाणं संभवादो ।

❀ एवचरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदी जहणणेण एगसमओ ।

§ ६४८. कुदो ? उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मियमिच्छादिट्ठिणा मोहट्ठावीससंतकम्मिएण वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए चेव मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तोसु संकामिदाए एगसमयं चेव उक्कस्सट्ठिदिकालुवलंभादो । उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिय-मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छत्तं किण्ण णीदो ? ण, तत्थ दंसणमोहणीयस्स संकमाभावेण सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदीए करणुवायाभावादो ।

❀ उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

प्राप्त होने पर तीन लोकके सब जीवोंके एक समय तक ही उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । तथा उत्कृष्टकाल पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि एक जीवके उत्कृष्ट स्थितिका काल यदि अन्तमुहूर्त है तो आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके कितना काल प्राप्त होगा इस प्रकार त्रैराशिक करके इच्छाराशिको फलराशिसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसमें प्रमाणराशिका भाग देने पर असंख्यात आवलिप्रमाण काल तक उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व पाया जाता है । अनुत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है, क्योंकि तीनों ही कालोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले जीवोंका पाया जाना सभव है ।

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है ।

§ ६४८. शंका—इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—जिसके मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है ऐसा कोई एक उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके पहले समयमें ही मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें सक्रमण कर देता है, अतः उसके एक समय काल तक उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । अतः इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है ।

शंका—उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयका सक्रमण नहीं होनेसे वहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है ।

\* तथा उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

॥ ६४६ ॥ कदो ? उक्कस्सहिदियुतकम्मियमिच्छाईदीणं गिरतरं वेदयसम्मर्षं पडियजंतागमावसियाए असम्मेज्जदिमागमेत्तुपक्कमणकासुपलंभदंसणादो । एवं भइसहा इरियमुत्तपक्कणं करिय पदेण चव सुपाणं देसामासिएण सुचिदत्यागमुत्तराणाइरिय पक्कियदवक्कणं मणिस्सामो ।

॥ ६५० ॥ कालो दुविहो—जहणओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्सए पपयं । दुविहा णिदेसा—आयेण आदंसण य । तत्थ ओयेण अग्नीसपयदी० उक्क० कव० ? ख० एगसमओ, उक्क० पसिदो० असंस० भागो । अणुनक० सम्पद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० के० ? जइ० एगसमओ, उक्क० आसि० असंस० भागा । अणुनक० क० ? सम्पद्धा । एवं सम्पणिरय तिरिक्क पंचि० तिरि० तिय-देव० मवणादि माव सरस्सार० पंचिदिय-पंचि० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवधि० कायमोगि०-भोरासि०-वउ भि० तिण्णिमद-अचारिकसाय-मदि०-सुदअण्णाण-विहंग-असंसद० चक्खु०-अवक्खु० पचले० भवसि०-अमवसि०-मिच्छादिदि०-मणि० आहारि चि । जयरि अमव० सम्म०-सम्मामि० णत्थि ।

॥ ६४८ ॥ हांका—उठ वानो प्रहृतियोंकी उत्तम स्थितिका उत्तम काल आक्सीका अमेक्यातवा भाग क्यों है ?

समाधान—यदि उत्तम स्थितिसरङ्गमात्र मिथ्यादृष्टि और निरन्तर बहकसम्बन्धको प्राप्त हो तो वेदक सम्बन्धको प्राप्त होनका काल आक्सीके अमेक्यातवे मागप्रमाण ही देया जाना है । अतः उठ दोनों प्रहृतियोंकी उत्तम स्थितिका काल भी आक्सीका अमेक्यातवा भाग प्राप्त होता है । इस प्रकार यतिकृम आचार्यक सूत्रका कलन करके अब वेदसम्बन्ध रूपसे इसी सूत्रके द्वारा सूचित हुए अर्थका उच्चारणार्थने का व्याख्यान किया है इसे ध्यस्त है —

॥ ६४० ॥ काल दो प्रकारका है—अपम्य और वस्तु । प्रहृत्यमें वस्तुमे प्रमाण है । इसकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकारका है—आपनिर्देश और आदेशनिर्देश । कर्मसे आपकी अपवा दृष्टीसे प्रहृतियोंकी वस्तु स्थितिबिम्बितकाल जीर्णोका काल किन्ता है ? अपम्य एक समय और वस्तु पन्थापमक असमयानवे मागप्रमाण है । तथा अनुवस्तु स्थितिबिम्बितकाले जीर्णोका काल सक्ता है । सम्पत्त्य और सम्पत्तिमिथ्यातर्क अष्ट । स्थितिबिम्बितकाल जीर्णोका काल किन्ता है ? अपम्य एक समय और वस्तु आक्सीक असेक्यातवे मागप्रमाण है । तथा अनुवस्तु स्थितिबिम्बितकाल जीर्णोका काल किन्ता है ? सक्ता है । इसी प्रकार सब नारकी, मामान्य नियेय पंचन्द्रिय तियथ, पंचन्द्रिय तियेय पयाय पंचन्द्रिय तियेय यानिमयी, सामान्य इव अवनवामिदोम इकर सरस्सार कस्य तर्क इव पंचन्द्रिय पंचन्द्रिय पयाय, अस, अस पयाय, पाया मनायागी योर्बो वपनयागी काययागी औरारिककपयागी, वैकियकपयागी तीनों बहवान, पाये काययायन मस्यजानी धुनयायानी, विमगायानी, अमेक्य वस्तुवर्त्मकाल अक्खुद्वानपासे वृष्ट्यादि पांच सरपावात, मय्य अमम्य मिथ्यादृष्टि, संज्ञा और आहारक जीर्णोका जानना चाहिय । किन्तु इतनी विज्ञप्ता है कि अमन्त्रोमें सम्पत्त्य और सम्पत्तिमिथ्यात य वा प्रहृतियां मदी है ।

विशेष—आपसे माग जीर्णोका अपवा सब प्रहृतियोंकी वस्तु और अनुवस्तु



§ ६५१. पंचि०तिरिक्ख०अपज्ज० सव्वपयडीणमुक्क० के० ? जह० एगस०, उक्क० आवलि० असखे०भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । एवं सव्वेइंदिय-सव्वविगल्लिंदिय-पंचि०अपज्ज०-पंचकाय०-वादरमुहुपपज्जत्तापज्जत्त-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्सकाय-जोगि त्ति । णवरि जत्थ देवाणमुववादो तत्थ णवणोकसाय० उक्क० ओघभंगो ।

स्थितियोंके कालका खुलासा चूणिसूत्रोंकी टीका करते हुए स्वयं वीरसेन स्वामीने किया ही है अतः यहा उसे पुनः नहीं दुहराया गया है । इसी प्रकार सब नारकी आदि असख्यात और अनन्त सख्यावाली कुछ ऐसी मार्गणाए हैं जिनमें ओघके समान उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति तथा उनका जघन्य और उत्कृष्ट काल बन जाता है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा । किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः उनके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति तथा उनके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन नहीं करना चाहिये ।

§ ६५१ पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सवदा है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाचों स्थावर काय तथा उनके वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि जहा देवोंका उपपाद है वहा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल आघके समान है ।

**विशेषार्थ—**पहले ओघसे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बतला आये हैं । अब यदि आघसे उत्कृष्ट स्थितिवाले ये जीव पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंमे उत्पन्न हों तो उनके भी आदेश उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय ही पाया जायगा, क्योंकि द्वितीयादि समयोंमें ओघ उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका अभाव हो जानेसे पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें भी आदेश उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सम्भव नहीं, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा । तथा इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है जो इस प्रकारसे प्राप्त होता है—ओघसे उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालका कथन करते हुए बतलाया है कि नाना जीव निरन्तर यदि उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करते रहें तो आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही जीव उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होंगे तथा उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अब यदि जीवोंकी सख्यासे कालके प्रमाणको गुणित कर दिया जाता है तो उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । किन्तु ऐसे जीवोंको यदि पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें क्रमसे उत्पन्न कराया जाय तो उनमें एक एक अन्तर्मुहूर्तके बाद ही उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होगी, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त तक उत्कृष्ट स्थितिको वाधकर जो जीव पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होते हैं उनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकालके अन्तिम समयमे वधी हुई स्थिति ही उत्कृष्ट हो सकती है इसके अतिरिक्त और सब स्थितिया अनुत्कृष्ट हो जायगी, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालके अन्तिम समयमे वधी हुई स्थितिके कालसे उनका काल एक समय, दो समय आदि रूपसे और कम हो जाता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें निरन्तर ऐसे आवलिके असख्यातवें भागप्रमाण जीवोंको उत्पन्न कराना चाहिये जिन्होंने क्रमसे एक एक समय तक निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया हो । इस प्रकार

§ ६५२. मनुसतिय० अणुसपयदी० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।  
अणुक्क० सञ्जदा । सम्म०-सम्मायि० उक्क० ज० [एगस०], उक्क० ससेजा समया ।  
अणुक्क० सम्बदा । मणुसअपम० सञ्जपयदी० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क०  
आवसि० असंसे० मागो । अणुक्क० ज० सुहायवगइणं समयुणं, उक्क० पत्तिदो०  
असंसे० मागो । जपरि समत्त-सम्मायि० अणुक्क० ज० एगस । एयं वरव्वियमिस्स० ।  
जपरि अणुसपयदी० अणुक्क० ज० अंतोमु० । जवणोक्क० उक्क० ओप । एवमव

एकेन्द्रिय तिर्यय लक्ष्यपयाप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिका काल आबलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ही  
मात्र होता है अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आबलीके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा ।  
तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका फल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि वह निरन्तर मार्गाद्या है  
अतः इसमें सर्वदा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव पाये जाते हैं । सब एकेन्द्रिय आदि और जितनी  
मार्गाद्या गिनार्य हैं उनमें भी वह व्यवस्था बन जाती है अतः इनके सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और  
अनुत्कृष्ट स्थितिके लक्षण और उत्कृष्ट फलका पंचान्त्रिय तिर्यय लक्ष्यपयाप्तकोंमें समान कहा ।  
किन्तु जिन मार्गाद्याओंमें देव उत्पन्न हो सछते हैं उनमें नौ नाक्याओंकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट  
फलमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करमक दूसरे समयमें ही मर कर  
देव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो सछते हैं और नौ मोक्षियोंकी उत्कृष्ट स्थिति संक्रमणसे प्राप्त होती है  
जो बन्धावलीके बाद ही होता है । अब यदि एक एक आबलीके अन्तरालसे एक एक क्रमसे  
आबलिक असंख्यातवें भागप्रमाण हर सोलह क्वाओंकी उत्कृष्ट स्थितिका एक एक आवसि तक  
निरन्तर बन्ध करें और उत्कृष्ट स्थिति बन्धके दूसरे समयमें वे मर कर उसी क्रमसे एकेन्द्रियोंमें  
उत्पन्न होते जायें ता एकेन्द्रियोंमें नौ नाक्याओंका उत्कृष्ट फल पस्वक असंख्यातवें भागप्रमाण  
मात्र होता है, क्योंकि ऐसे दोनों प्रत्येक एक एक आबलितक नौ नाक्याओंकी उत्कृष्ट स्थिति  
पाई जायगी । जिन मार्गाद्याओंमें नौ मोक्षियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वह काल सम्भव है वे  
मात्रकाय वे हैं—एकन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथ्वीमायिक, बादर  
पृथ्वीमायिक, बादर पृथ्वीमायिक पयाप्त, अक्षमायिक बादर बलकायिक, बादर बलकायिक  
पर्याप्त, प्रत्येक वनस्पतिकायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त । किन्तु इतना बिनाप जानना चाहिये  
कि ओपमें अन्तर्मुहूर्तका आबलीक असंख्यातवें भागसे गुणा करके पस्वक असंख्यातवें भाग  
फल प्राप्त किया गया था पर वहाँ आबलिका आबलीक असंख्यातवें भागसे गुणा करके पस्वक  
असंख्यातवें भाग कात्र प्राप्त करना चाहिये ।

§ ६५३. सामान्य पर्याप्त और मनुष्यिनी इन तीन प्रकारक मनुष्योंमें दूसरीस प्रकृतियोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवाले जीवोंका जपम्य काल एक समय और उत्कृष्ट फल अन्तर्मुहूर्त है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवाले जीवोंका काल सबदा है । सम्यक्स्य और सम्बन्धिम्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति  
बिम्बितवाले जीवोंका जपम्यकाल एक समय और उत्कृष्ट फल संव्याप समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति  
बिम्बितवाले जीवोंका काल सबदा है । मनुष्य अपयप्राप्तोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवाले  
जीवोंका जपम्य काल एक समय और उत्कृष्ट फल आबलीक असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा  
अनुत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवाले जीवोंका जपम्य काल एक समय कम सुरामयपरय प्रमाण और उत्कृष्ट  
काल पस्यापमक असंख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्स्य और सम्बन्धिम  
प्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिम्बितवाले जीवोंका जपम्य काल एक समय है । इसी प्रकार वैद्विद-  
मिषकमपयागी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विचारना है कि दूसरीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट

सम०-सामण०-मम्मामि० । णवरि णणोऊ० उअऊ० ओघं णत्थि । मम्म०-मम्मामि०  
अणऊऊ० जह० अंतोमु० । सामण० मव्वपय० अणु० जह० एयम०, उअऊ० तं चेय ।

स्थितिबिभक्तिकाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्तिकाले जीवोंका काल ओघके समान है । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि  
और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें नौ नोकपायोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिकाले जीवोंका काल ओघके समान नहीं है । सम्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी  
अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिकाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें  
सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिकाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल  
वही पूर्वोक्त है ।

**विशेषार्थ—**अब कि ओघमें छत्तीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय  
है तो मनुष्यत्रिकमें इसमें अधिक कैसे हो सकता है । पर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि ओघ  
उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होनेवाले सामान्य मनुष्योंका प्रमाण सख्यात है तथा मनुष्य पर्याप्त और  
मनुष्यनियोंका प्रमाण तो सख्यात है ही । अब यदि एक समयमें प्राप्त होनेवाली मनुष्योंके उत्कृष्ट  
स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त मान लें और एक के बाद दूसरा इस प्रकार निरन्तररूपमें संख्यात  
मनुष्योंके उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त कराई जाय तो भी उस सब कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्त ही होगा । यही  
कारण है कि मनुष्यत्रिकके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा एक जीवकी अपेक्षा  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बनता आये  
हैं । अब यदि सख्यात जीव लगातार उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हों तो उनके कालका  
जोड़ सख्यात समय ही होगा, अतः मनुष्यत्रिकके उक्त नौ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल  
सख्यात समय कहा । इन नौ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय स्पष्ट ही है ।  
तथा इनके सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका काल मर्पदा है यह भी स्पष्ट है, क्योंकि ये  
निरन्तर मार्गणाएँ हैं इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव मर्पदा पाये  
जाते हैं । लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका प्रमाण असंख्यात है और उनमें आदेश उत्कृष्ट  
स्थिति होनी है, अतः उनके पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंके समान सब प्रकृतियोंकी  
उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आपलिके असख्यातवें भागप्रमाण बन  
जाता है । तथा यह मार्गणा सान्तर है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम  
खुदाभवप्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण भी बन जाता है । जघन्य  
कालमेंसे एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षासे किया है । तथा उद्वेलनाकी अपेक्षा इनके सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । वैकृतिकमिश्रकाययोग  
मार्गणा सान्तर है, अतः इसमें भी लब्धपर्याप्तक मनुष्योंके समान सब कर्मोंकी जघन्य और उत्कृष्ट  
स्थितिका काल जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इस मार्गणाका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त  
है अतः इसमें छत्तीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होगा । तथा  
इसमें प्रत्येक जीवके नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण प्राप्त हो  
सकता है, अतः नाना जीवों की अपेक्षा यहाँ भी नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल  
ओघके समान पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है । इसका विशेष खुलासा इसी  
प्रकरणमें एकेन्द्रियोंकी प्ररूपणके समय कर आये हैं अतः वहाँसे जान लेना चाहिये । उपशम-  
सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये तीन मार्गणाएँ भी सान्तर हैं, अतः इनमें  
भी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल वैकृतिकमिश्रकाययोगके समान कहा ।

१६५३ आणहावि जाव उपरिमगोपनीयसिद्धि सव्यपयदी० उक्त० ज० एगस०,  
उक्त० संलेखा समया । अणुक्त० सव्यद्धा । एममणुविसावि जाव सव्यदसिद्धि पि ।  
एव स्वयसम्मादिदीर्ण । आहार० सव्यपय० उक्त० ज० एगसमयो, उक्त० संलेखा  
समया । अणुक्त० ज० एगसमयो, उक्त० अंतोमु० । एममणगद०-भकसा०-मुहुम  
सांपराय०-महास्वादसंगे पि । एवमाहारमिस्त० । जवरि अणुक्त० ज० अंतोमु० ।  
कम्मइय० पुरंदियमंगो । जवरि सम्मच० सम्मामि० अणुक्त० सचणोक० उक्त० ज०  
एमसमयो, उक्त० आयसि० असंसं० भागो । एवमणाहारीण । आभिणि०-मुद०  
ओहि० सव्यपयदी० उक्त० ज० एगसमयो, उक्त० आयसि० असंसं० भागो ।  
अणुक्त० सव्यद्धा । एवं संनदासंगद० ओहिंस०-मुक्त०-सम्मादिदि०-वेदय०-दिदि  
पि । मणपल० सव्यपयदी० सव्यदमंगो । एवं संजद०-सामाइय-वेदो०-परिहार

किन्तु इसका कुछ अपवाद है । बात यह है कि इन तीनों मार्गोंमें एक बीजकी अपेक्षा बहुत  
स्थितिका जपम्य और बहुत कम एक समय है, अतः यहाँ इनके बहुत स्थितिका बहुत कम  
बीजके समान न प्राप्त होकर आन्तरिके अस्वभावतः मगममाय ही मग्या होगा । और इन  
मार्गोंमें सत्यत्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी वृत्तना नहीं होती है अतः यहाँ इन दोनों  
प्रवृत्तियोंकी अनुकूल स्थितिका जपम्य का एक समय न प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त प्रात होगा ।  
किन्तु साक्षात् नृसत्त्वानका जपम्य का एक समय है, अतः इसमें सब प्रवृत्तियोंकी अनुकूल  
स्थितिका जपम्य का एक समय ही प्राप्त होगा ।

१६५३ आमत कल्पसे लेकर उपरिमगोपनीय उक्तके देवोंमें सब प्रवृत्तियोंकी बहुत स्थिति  
विभक्तिकाले जीवोंका जपम्य का एक समय और बहुत कम संख्यात समय है । तथा  
अनुकूल स्थिति विभक्तिकाले जीवोंका का एक संख्या है । इसी प्रकार अनुविष्टसे लेकर सर्वार्थसिद्धि  
उक्तके देवोंके जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार सावित्रसम्पत्ति जीवोंके जानना चाहिये ।  
अज्ञानकालयगियोंमें सब प्रवृत्तियोंकी बहुत स्थिति विभक्तिकाले जीवोंका जपम्य का एक समय  
और बहुत कम संख्यात समय है । तथा अनुकूल स्थिति विभक्तिकाले जीवोंका जपम्य का एक  
समय और बहुत कम अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार जपगतवृत्तियों, अकाम्य, स्वसत्पराधिक  
संयत और दशास्वातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार ज्ञानमिध्यात्वयगियोंके  
जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सब प्रवृत्तियोंकी अनुकूल स्थिति विभक्तिकाले  
जीवोंका जपम्य का अन्तर्मुहूर्त है । कर्मण्ययगियोंमें एकत्रियोंके समान योग है । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि सम्पत्ति और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुकूल स्थिति विभक्तिकाले जीवोंका  
और सात नोकपार्योंकी बहुत स्थिति विभक्तिकाले जीवोंका जपम्य का एक समय और बहुत  
कम आन्तरिके अस्वभावतः मगममाय है । इसी प्रकार अमाहारक जीवोंके जानना चाहिये । आभिनि-  
बोधिज्ञानी, भुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सब प्रवृत्तियोंकी बहुत स्थिति विभक्तिकाले  
जीवोंका जपम्य का एक समय और बहुत कम आन्तरिके अस्वभावतः मगममाय है । तथा  
अनुकूल स्थिति विभक्तिकाले जीवोंका का एक संख्या है । इसी प्रकार मंगलसंयत अवधिज्ञानकाल  
द्वन्द्वसंयत, सम्पत्ति और वृत्तसम्पत्ति जीवोंके जानना चाहिये । अन्तर्पराधिकानियोंमें सब  
प्रवृत्तियोंकी अपेक्षा सर्वार्थसिद्धिके समान योग है । इसी प्रकार संयत सामाधिकसंयत, ज्ञान-  
स्वापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिये । अस्वभावतः मगममाय

संजदे ति । [ असण्णि० एइंदियभंगो । ]

एवमुक्कस्सओ कालाणुगमो समत्तो ।

❀ जहण्णए पयदं । मिच्छुत्त-सम्मत्त-वारसकसाय-तिवेदाणं जहण्ण-  
द्विदिविहत्तिएहि णाणाजीवेहि कालो केवडिओ ?

§ ६५४ णाणाजीवेहि जहण्णद्विदिविहत्तिएहिं छट्ठीए अत्थे तइया दट्ठ्वा ।  
अहवा कत्तारम्मि तइया घेत्तवा ; जहण्णद्विदिविहत्तिएहिं केवडिओ कालो लद्धो ति  
पदसंबंधादो । सेस सुगमं ।

❀ जहण्णेण एगसमओ ।

जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**आनतादि चार कर्तव्योंमें यद्यपि तिर्यंच भी मर कर उत्पन्न होते हैं किन्तु उनके उत्कृष्ट स्थिति नहीं पाई जाती, अतः जो द्रव्यलिंगी मनुष्य मर कर आनतादिकमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, पर लगातार उत्पन्न होनेवाले इन जीवोंका प्रमाण संख्यात ही होगा, क्योंकि ऐसे मनुष्य ही संख्यात हैं, अतः इनके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा । तथा अनुदिशादिकमें और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय होता है यह स्पष्ट ही है । यदि एक साथ अनेक जीवोंने आहारक-काययोग किया और उनके उत्कृष्ट स्थिति हुई तो आहारक काययोगमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है और यदि नाना मनुष्य प्रत्येक समयमें उत्कृष्ट स्थितिके साथ आहारक काययोगको प्राप्त होते रहे तो आहारककाययोगमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय पाया जाता है । तथा आहारककाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायिकसयत, यथाख्यातसंयत और आहारक मिश्रकाययोगी इनकी कथनीमें आहारककाययोगकी कथनीसे कोई विशेषता नहीं है अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल आहारककाययोगके समान 'घटित कर' लेना चाहिये । किन्तु आहारकमिश्रकायोगका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होगा । इसी प्रकार शेष मार्गणाओंमें भी कालका विचार कर सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका काल ले आना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

❀ अब जघन्य कालानुगमका प्रकरण है । मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और तीनों वेदोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नाना जीवोंका काल कितना है ।

§ ६५५. 'णाणाजीवेहि जहण्णद्विदिविहत्तिएहि' इन दोनों पदोंमें जो तृतीया विभक्ति है वह षष्ठी विभक्तिके अर्थमें जानना चाहिये । अथवा कर्ता अर्थमें तृतीया विभक्ति ग्रहण करनी चाहिये, क्योंकि 'जघन्य स्थिति विभक्तिवाले नाना जीवोंने कितना काल प्राप्त किया है' इस प्रकारका पदसम्बन्ध यहा विवक्षित है । शेष कथन सुगम है ।

❀ जघन्य काल एक समय है ।

§ ६५५. कुदो ? एवेति जहण्णणिसेयद्विहीण दुसमयकात्माए एगसमयकात्माए वा पयदाए विदियसमय चेव णिम्मूलविणासुवर्त्तमादो ।

⊙ उद्धस्सेय संलेखा समया ।

§ ६५६ कुदो ? जाणावीजाणमणुसमयं जहण्णद्विदि पडिपज्जंतार्ण संलेख मणुसपज्जपरिंतो आगमुवर्त्तमादो ।

⊙ सम्मामिच्छत्त • अणत्ताणुवंधीणं चउद्धस्स जहयण्णद्विविधहिंस्रपहिंसायाजीवेहि काको केवद्विओ ?

§ ६५७ सुगममेवं पुच्छासुत्त ।

⊙ जहयणेण एगसमयो ।

§ ६५८ कुदो ? एगणिसेयद्विहीण दुसमयकात्माए विदिसमय परसकवेण गमकुवर्त्तमादो । अयमणे ज सा जहण्णद्विदि; दुवादिणिसेयार्ण जहण्णचविरोदादो ।

⊙ उद्धस्सेय आबलियाए असंलेखादिमागो ।

६५९ कुदो ? सम्मामिच्छत्तमुप्पेस्संताणमणत्ताणुवंधिषउत्तकं विसंभोपंतार्ण च

§ ६५९ शंका—उक्त प्रकृतियोंकी अपन्य स्थितिवालोंका अपन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इन प्रकृतियोंके अपन्य निष्कल्पी स्थिति वाले दो समक कलबाली हो या वाले एक समय कलबाली हो तथापि दूसरे समकमें ही कलब निमूल बिनाय पाया जाता है, अतः इनका अपन्य काल एक समय कहा है ।

⊙ उत्कट काल संख्यात समय है ।

§ ६५९ शंका—उक्त काल संख्यात समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि प्रत्येक समयमें अपन्य स्थितियों प्राप्त होनेवाले नानाबीबोंका पयस मसुप्पेमेसे आगमन पाया जाता है जिनकी संख्या संख्यात है ।

⊙ सम्यग्मिध्यात्त और अनन्तानुबधी बहुष्पकी अपन्य स्थितिनिमक्तिवाले नाना बीबोंका काल कितना है ?

§ ६५९ अह पुच्छासुत्त सरत्त है ।

⊙ अपन्य काल एक समय है ।

§ ६५९ शंका—अपन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इनकी दो समय काल प्रमाण एक निष्कस्थितिज दूसरे समकमें परकपसे संक्रमण पाया जाता है । जब तक परकपसे संक्रमण नहीं होता है तब तक वह अपन्य स्थिति नहीं है क्योंकि दो आदि निष्ककोंको अपन्य माननेमें विरोध आता है ।

⊙ उत्कट काल आबलीके असंख्यातवै भागप्रमाण है ।

§ ६५९ शंका—उक्त काल आबलीके असंख्यातवै भागप्रमाण क्यों है ?

समाधान—क्योंकि सम्यग्मिध्यात्तकी बोलना करनेवाले और अनन्तानुबधी बहुष्पकी

पलिदो० असंखे० भागमेत्तजीवाणमावलियाए असंखे० भागमेत्तुवकमणकंडएसु तत्थ एगुक्कस्सकंडयकालग्गहणादो ।

❀ छरण्णोकसायाणं जहण्णद्विदिविहत्तिएहि एण्णाजीवेहि कालो केवडिओ ?

§ ६६०. सुगममेदं ।

❀ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तां ।

§ ६६१ कुदो ? चरिमद्विदिकंडयउवकीरणकालग्गहणादो । एत्थ णिसेया चेय पहाणा कया ण कालो, एगसमयं योत्तूण अंतोमुहुत्तकालपरुवणण्णहाणुववत्तीदो ।

§ ६६२. एवं जइवसहाइरियमुत्ताणं देसामासियाणं परुवणं काऊण संपहि एदेहि सूचिदत्त्याणं लिहिदुच्चारणमणुवत्तइस्सामो । जहण्णए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसक०-तिण्णिवेट० जहण्णद्विदिवि० कालो ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा । सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० ज० ज० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अज० सव्वद्धा । द्वण्णोक० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अज० सव्वद्धा । एवं सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचि-

विसयोजना करनेवाले पत्थोपमके असख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके आवलीके असख्यातवें भाग-प्रमाण उपक्रमण काण्डक होते हैं । उनमेंसे यहा एक उत्कृष्ट काण्डकका काल लिया गया है ।

\* छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले नाना जीवोंका कितना काल है ।

§ ६६० यह सूत्र सुगम है ।

\* जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ६६१ शंका—जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

**समाधान**—क्योंकि यहा अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरण कालका ग्रहण किया है । यहा पर निपेकोंकी धानता है कालकी नहीं, अन्यथा एक समयको छोड़कर अन्तर्मुहूर्त कालका कथन नहीं बन सकता था ।

§ ६६२ इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके देशामर्पक सूत्रोंका कथन करके अब इनसे सूचित होनेवाले अर्थों पर जो उच्चारणा लिखी गई है उसका अनुसरण करते हैं—जघन्य कालका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आवागनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघ की अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, वारह कपाय और तीनों वेदोंकी जघन्य स्थिति बिभक्तिवाले जीवों का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्ति वाले जीवोंका काल सर्वदा है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति-बिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाल जीवोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सौधमें कल्पसे लेकर उपरिमगेवयक तकके

दिय-पंथि० पञ्च०-तस-तसपञ्च०-पंचमण०-पंचवधि०-कायमोगि०-ओरासि०-तिणि  
वेद०-वचारिकसा०-वक्षु-अवक्षु०-तिणिले०-मयसि०-सणि०-आहारसि। अवरि  
सोइम्मीसाणादिदेवेसु इत्य-गबु स० सेठपम्भलेस्सामु च ऋणोक्तसाय० नहण्णद्विदिकालो  
वह० एगसमओ, उक्क० संसेखा समया। इत्य० गबु स० ओषं ऋणोक्त० मंगो।  
पुरिस० इत्य०-गबु स० ऋणोक्त० मंगो। गबु स० इतिवेद० ओषं ऋणोक्त० मंगो।

॥ ६६३ ॥ आदेशेण गेरइएसु सत्तापीसपयडो० ज० जह० एगस०, उक्क०  
आवसि० असंसे० मागो। अम० सम्भदा। सम्मच ओषं। एवं पढमपुडवि० पंथि०-  
तिरिक्ख-पंथि०-तिरि०-पञ्च०। पंथि०-तिरिक्खमोगिणीसु एवं वेव। अवरि सम्मचस्स

देव पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपरांत, स असपरांत, पांचों मनोपागी, पांचों बचनयोगी,  
कर्मयोगी, औचारिककर्मपागी तीनों देवबाले चारों कयामबाले, चबुइसनवाले, अवचुइसनवाले  
तीन लेखवावाले, मग्ग, संखी और भाषारक बीबोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी  
बिछोपता है कि सौधमें और ऐशान आदि कर्मक देवोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवर्गमें तथा  
पीत और पद्मलेखावालोंमें वह नोकपायोंकी अपम्य स्थितिविमर्शितासे बीबोंका अपम्य  
काल एक समय और उक्त काल संख्यात समय है। स्त्रीवेदवालोंमें नपुंसकवर्गकी अपम्य और  
अत्रापम्य स्थितिविमर्शितावालोंका काल ओषके समान है किन्तु इतनी बिछोपता है कि अपम्य  
स्थितिका काल ओषसे वह नोकपायोंके समान है। पुरुषवर्गवालोंमें स्त्र वेद आर नपुंसकवर्ग  
मंग वह नोकपायोंके समान है। नपुंसकवर्गवालोंमें स्त्रीवर्गकी अपम्य और अत्रापम्य स्थितिका काल  
ओषके समान है। किन्तु इतनी बिछोपता है कि अपम्य स्थितिका काल ओषसे वह नोकपायोंके  
समान है।

विशेषार्थ—यहां त्रिम मार्गेषाओंमें सब प्रकृतियोंकी अपम्य स्थितिका काल ओषके  
समान बतलाया है इनमें सौधमेंसे लेकर ऊपरिम मैवक तक देव पीत और पद्मलेखावालों तथा  
तीनों देवबाल बीब भी सम्मिलित हैं परन्तु इन मार्गेषाओंमें कुछ प्रकृतियोंकी अपम्य स्थितिके  
कालमें कुछ बिछोपता बतलाई है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—जात यह है कि पुरुषवेदकी  
झोड़ कर इन पूर्वोक्त मार्गेषाओंमें एक बीबकी अपेक्षा वह नोकपायोंकी अपम्य स्थितिका अपम्य  
काल अन्तर्मुहूर्त है होकर एक समय है जात। यहां नाना बीबोंकी अपेक्षा वह नोकपायोंकी अपम्य  
स्थितिका अपम्य काल एक समय और उक्त काल संख्यात समय ही प्राप्य होगा। तथा  
स्त्रीवेदियोंके नपुंसकवर्गकी अपम्य स्थिति पुरुषवर्गियोंके स्त्री और नपुंसकवर्गकी अपम्य स्थिति  
तथा नपुंसकवर्गियोंके स्त्री वेदकी अपम्य स्थिति अन्तिम स्थिति कालके पतनके समय जाती है  
जात। इन तीनों बद्बाल बीबोंके एक प्रकृतियोंकी अपम्य स्थितिका अपम्य और उक्त काल ओषसे  
वह नोकपायोंके समान करा है। तथा अत्रापम्य स्थितिका काल सर्वज्ञ है यह स्पष्ट ही है।

॥ ६६३ ॥ आदेशाय अपेक्षा नायकियोंमें सत्तासप्त प्रकृतियोंकी अपम्य स्थितिविमर्शितासे  
बीबोंका अपम्य काल एक समय और उक्त काल जावलीके असंख्यातर्ष भागप्रमाण है। तथा  
अत्रापम्य स्थितिविमर्शितासे बीबोंका काल सर्वज्ञ है। सम्यक्त्वकी अपेक्षा आचके समान  
काल है। इसी प्रकार पद्मली शृङ्खली, पंचेन्द्रियतियक और पंचभ्रियतियक पयाप्रक्षेमें जानना चाहिए।  
पंचेन्द्रियतियक यातिमर्शियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी बिछोपता है कि इनमें



सम्माभिच्छत्तभंगो ।

§ ६६४. विदियादि जाव छट्टि त्ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोरु० ओघं । ओघम्मि छण्णोकसायाण जहण्णट्टिदिक्कालो जहण्णुक्कस्सेण चुण्णिमुत्तम्मि वप्पदेवा-इरियलिहिदुच्चारणाए च अतोमुहुत्तमिदि भणिदो । अम्हेहि लिहिदुच्चारणाए पुण जह० एगसमओ उक्क० संखेज्जा समया त्ति परुविदो, कालपहाणत्ते विवक्खिए तहोव-लंभादो । तेण छण्णोकसायाणमोघत्तं ण विरुज्झदे । सम्मत्त-सम्माभि०-अणंताणु०-चउक्क० ज० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असखे०भागो । अज० सव्वद्धा । एवं जोइसि०-वेउव्वि०-विहंगणाणि त्ति । णवरि विहग० अणंताणु०-चउक्क० मिच्छत्तभंगो ।

सम्यक्त्वका भग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ**—नरकमे कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होते हैं, अतः यहा सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान बन जाता है । ओघ कथन सुगम है । पहली पृथिवीके नारकी आदि मूलमें और जितनी मार्गाणाए गिनाई है उनमें सामान्य नारकियोंके समान काल सम्यन्धी व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा । किन्तु योनिमती तिर्यचोमे कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, अतः वहा सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सम्यग्मिथ्यात्वके समान जानना चाहिये, क्योंकि योनिमती तिर्यचोके सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति ही प्राप्त होगी जो कि सम्यग्मिथ्यात्वके समान होती है ।

§ ६६४ दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अपेक्षा ओघके समान काल है । चूणिमूत्रमे और वणदेव आचार्यके द्वारा लिखी गई उच्चारणामें ओघका कथन करते समय छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । परन्तु हमारे द्वारा लिखी गई उच्चारणामें जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय कहा है, क्योंकि प्रधानरूपसे कालकी विवक्षा होने पर जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय बन जाता है, अतः छह नोकपायोंके कालको ओघके समान कहनेमें कोई विरोध नहीं आता है । तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार व्योतिषीदेव, वैक्रियिककाययोगी और विभंगज्ञानियोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि विभंगज्ञानियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मिथ्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ**—ओघसे मिथ्यात्व, वारह कपाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थितिका जो जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय कहा है वह दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंके भी बन जाता है, क्योंकि जो सम्यग्दृष्टि जीव इन नरकोंसे निकलकर मनुष्य पर्यायमें आते हैं उन्हींके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है किन्तु इन नरकोंमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नहीं बनता । फिर इन नरकोंमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके कालको भी ओघके समान क्यों कहा ? यह शंका है जिसे मनमें रखकर वीरसेन स्वामीने 'ओघम्मि छण्णोक-सायाण' इत्यादि वाक्यों द्वारा उसका समाधान किया है । उनके इस समाधानका भाव यह है कि

§ ६६५ सप्तमाय पुर्वीय मिथ्यात्व०-वारसक० मय-दुगुह० त्वक० मंगो ।  
सम्पत्त०-सम्प्राप्ति०-मर्णाता० चतुष्क०-सप्तजोक्त० ज० ज० एगत्त०, त्वक० आवसि०  
असंख्य०-मायो । अजह० सम्बद्धा ।

§ ६६६ तिरिक्त्व० मिथ्यात्व०-वारसक० मय-दुगुह० ज० अस० सम्बद्धा ।

चूँचिसूत्र, वपुदेवकी लिखी हुई ज्वारखा और बीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई ज्वारखा इनमेंसे प्रारम्भकी दो पोथियोंमें ओपसे ब्रह्म नोक्यायोंकी वचन्य स्थितिका वचन्य और उक्त असंख्य अन्तमुक्त निम्न है किन्तु बीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई ज्वारखामें ओपसे ब्रह्म नोक्यायोंकी वचन्य स्थितिका वचन्य काल एक समय और उक्त असंख्य संख्यात समय निम्न है और यहाँ ओपसे अनुसार कवन किया जा रहा है, अतएव द्वितीयादि नरकोंमें ब्रह्म नोक्यायोंकी वचन्य स्थितिके कालको ओपसे समान करनेमें कोई बाधा नहीं आती है। अब प्रश्न यह होता है कि अक्षिर इस मतसेवका कारण क्या है ? इसका यह समाधान है कि चूँचिसूत्र और वपुदेवके द्वारा लिखी गई ज्वारखामें ब्रह्म नोक्यायोंकी वचन्य स्थितिका काल नियेकोंकी प्रधानतासे कहा है और बीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई ज्वारखामें ब्रह्म नोक्यायोंकी वचन्य स्थितिका काल कालकी प्रधानतासे कहा है अतः इस कवनमें मतसेव न जानकर विषयामेव जानना चाहिये जिसका विस्तृत झुलासा पहले कर आये हैं । विवेकज्ञानमें अनन्तलोकस्थी वस्तुत्त्व मंग जो मिथ्यात्वके समान कहा है सो इसका कारण यह है कि विवेकज्ञानमें अनन्तलोकस्थीकी विसंबोबना नहीं होती अतः जो उपरिम प्रवेदकाल केव मिथ्यात्वका प्राप्त होकर वहाँसे व्युत् होता है उसके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व, सोलह कयाय और नौ नोक्यायोंकी वचन्य स्थिति होती है। पर ऐसे जीव संख्यात ही होंगे और यदि जगातार हों तो संख्यात समय तक ही होंगे क्योंकि पक्षित मनुष्य संख्यात हैं। अतः विवेकज्ञानमें मिथ्यात्वके समान अनन्तलोकस्थी वस्तुत्त्वकी वचन्य स्थितिका वचन्य काल एक समय और उक्त काल संख्यात समय जानना चाहिये। शेष कवन सुगम है।

§ ६६७ सातवीं पुर्विर्षमें मिथ्यात्व बारह कयाय मय और सुगुप्ताका मंग उक्तके समान है। सम्पत्त्व, सम्प्राप्ति, अनन्तलोकस्थी वस्तुत्त्व और सात नोक्यायोंकी वचन्य स्थितिबिम्बिताने जीवोंका वचन्य काल एक समय और उक्त काल आवसिर्षके अर्सेख्यातमें मागप्रमाण है। तथा अजपम्य स्थितिबिम्बितानोंका काल सर्वथा है।

विशेषार्थ—सातवें नरकों १८ जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व बारह कयाय मय और सुगुप्ताकी वचन्य स्थितिका उक्त काल अन्तमुक्त है। अब यदि आवसिर्षके अर्सेख्यातमें मागप्रमाण नामा जीव क्रमशः इन प्रकृतियोंकी वचन्य स्थितिको प्राप्त हों तो उस सब कालका जोड़ अर्सेख्यात आवसिर्षमात्र होता है वा अर्सेख्यात आवसिर्षा पर्यके अर्सेख्यातमें मागप्रमाण प्राप्त होती है। सातवें नरकों उक्त प्रकृतियोंकी उक्त स्थितिका उक्त काल भी इतना ही है अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी वचन्य स्थितिके कालको इनको उक्त स्थितिके कालके समान कहा। किन्तु सम्पत्त्व सम्प्राप्तिमिथ्यात्व और अनन्तलोकस्थी वस्तुत्त्वकी वचन्य स्थितिका वचन्य और उक्त काल एक समय है। अब यदि आवसिर्षके अर्सेख्यातमें मागप्रमाण नामा जीव क्रमशः इनकी वचन्य स्थितिको प्राप्त हों तो उस सब कालका जोड़ आवसिर्षके अर्सेख्यातमें मागप्रमाण ही होगा अतः यहाँ उक्त ब्रह्म प्रकृतियोंकी वचन्य स्थितिका उक्त काल आवसिर्षके अर्सेख्यातमें मागप्रमाण कहा। शेष कवन सुगम है।

§ ६६८ तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, बारह कयाय, मय और सुगुप्ताकी वचन्य और अजपम्य

सेसपयदीणं ज० अज० पंचि०तिरिक्खभंगो । एवं काउ० । किण्हणीन्तलेस्माणपेवं  
 चेव । णवरि मम्मत्तस्स मम्मामिच्छत्तभंगो । असंजद० तिरिक्खभंगो । णवरि मिच्छ-  
 त्तस्स सम्मत्तभंगो । ओरान्णियमिस्स० तिरिक्खोयं । णवरि अणंताणु०चउक्क० ज०  
 अज० सव्वद्धा । पंचि०तिरि०अपज० मिच्छत्त-मोळमऊ०-णवणोऊ० ज० ज०  
 एगस०, उक्क० आवलि० असखे०भागो । अज० मव्वद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० ज०  
 एगम०, उक्क० आवलि० अमंखे०भागो । अज० मव्वद्धा । एवं मव्वणिगलंठिय-  
 पंचिदियअपज०-वाटरपुदपिपज०-वाटरआउपज०-वाटरतेउपज०-वाटरवाउपज०-  
 वाटरवणफ्फदिपत्तेयपज०-तमअपज०चे ति । णवरि पंचकाय-वाटरपज० मिच्छ०  
 मोलसक०-भय-दुगुंठ० जह० ज० एगस०, उक्क० पलिढो० अमंखे०भागो ।

स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जयन्य और अजयन्य स्थिति-  
 विभक्तिवाले जीवोंका भग पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है । इसी प्रकार कापोतलेदयावाले जीवोंके  
 जानना चाहिए । कृष्ण और नीललेदयावाले जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वका भग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । असंयतोंमें तिर्यचोंके समान भग  
 है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वका भग सम्यक्त्वके समान है । आदरिकमिश्रकाय-  
 योगियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी  
 चतुष्ककी जयन्य और अजयन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका काल सर्वदा है । पचेन्द्रियतिर्यच अपर्या-  
 प्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जयन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका जयन्य काल  
 एक समय और उच्छृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजयन्य स्थितिबिभक्ति-  
 वालोंका काल सर्वदा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जयन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका जयन्य  
 काल एक समय और उच्छृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजयन्य  
 स्थितिबिभक्तिवालोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सब त्रिकेन्द्रिय पचेन्द्रियअपर्याप्त, वाटर  
 पृथिवीकायिकपर्याप्त, वाटर जलकायिकपर्याप्त, वाटर अग्निकायिकपर्याप्त, वाटर वायुकायिकपर्याप्त,  
 वाटर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त और ब्रम अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि पाचों स्थावरकाय वाटर पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, मोलहकषाय, भय और  
 जुगुप्साकी जयन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जयन्य काल एक समय और उच्छृष्ट काल पत्योपमके  
 असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यचोंका प्रमाण अनन्त है, अतः इनमें कोई न कोई जीव निरन्तर  
 मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जयन्य और अजयन्य स्थितिको प्राप्त होते रहते हैं,  
 अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जयन्य और अजयन्य स्थितिका काल सर्वदा कहा । अब शेष रह्यो  
 सात नोकषाय, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये तेरह प्रकृतियों, सो  
 सामान्य तिर्यचोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर इनकी जयन्य स्थिति पचेन्द्रिय तिर्यचोंके ही  
 प्राप्त होती है और इन सबको अजयन्य स्थिति पचेन्द्रिय तिर्यचोंके सर्वदा पाई जाती है, अतः  
 इनकी जयन्य और अजयन्य स्थितिके कथनको पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान कहा । किन्तु सम्यग्मि-  
 मध्यात्वकी जयन्य स्थितिका उच्छृष्ट काल सामान्यकी अपेक्षा भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण  
 है और पचेन्द्रिय तिर्यचोंके भी इतना ही है अतः सामान्य तिर्यचोंके इमसे अधिक नहीं प्राप्त हो  
 सकता है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वकी ओर जयन्य स्थिति सर्वत्र घनजाती है, अतः सामान्य

१ ६६७ मणुस० मिष्य० सम्म० सोमसक० तिण्णिवेद० बह० ज० पगस० ।  
उक्क० संलम्भा समया अज० सञ्चद्धा । सम्मापि० छण्णोक० ओप० । मणुसपञ्च०  
एवं चेव, जत्ररि सम्मापि० सम्मत्तमंगो । इत्थिवेद० छण्णोक० मंगो । मणुसिणी०

तियर्थोके सम्मग्मिष्यात्त्वकी अपत्य स्थितिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यर्थोके समान कहा । कापोत  
लेख्यमं वत्त सब अयवस्था बन जाती है अतः कापातलेख्याके कथनको सामान्य तिर्यर्थोके समान  
कहा । यही बात कृष्ण और नीललेख्याकी है । किन्तु कृष्ण और नील लेख्यावालोंमें कृत्तकृत्त्ववत्त  
सम्पत्ति ही नहीं उत्पन्न होते हैं अतः इनमें सम्पत्त्वकी ओय अपत्य स्थिति न प्राप्त होकर  
आदेश अपत्य स्थिति प्राप्त होती है और इसलिये इन दोनों लेख्याओंमें सम्पत्त्वकी अपत्य और  
अव्यपत्य स्थितिके कालको सम्मग्मिष्यात्त्वके समान कहा । असंयतोंके भी सब प्रकृतियोंकी अपत्य  
और अव्यपत्य स्थितिके काल सामान्य तिर्यर्थोके समान बन जाता है, क्योंकि इनका प्रमाण भी  
अन्तर्गत है । किन्तु मिष्यात्त्वकी अपत्य स्थितिके कालमें विशेषता है । बात यह है कि असंयत  
मनुष्य भी होते हैं और इस प्रकार असंयतोंके मिष्यात्त्वकी ओय अपत्य स्थिति भी बन जाती है  
अतः असंयतोंके मिष्यात्त्वकी अपत्य स्थितिका अपत्य काल एक समय और कृत्त काल संख्यात  
समय कहा जाकि सम्पत्त्वकी ओय अपत्य स्थितिके अपत्य और कृत्त कालके समान है ।  
औद्योगिकमित्रकाययोगियोंके भी सब प्रकृतियोंकी अपत्य और अव्यपत्य स्थितिके काल सामान्य  
तिर्यर्थोके समान बन जाता है क्योंकि इनका प्रमाण अन्तर्गत है । परन्तु औद्योगिकमित्रकाययोगी  
जीव अन्तर्गतानुगन्धी वस्तुओंकी विवेचना नहीं करत अतः इनके अन्तर्गतानुगन्धी वस्तुओंकी आप  
अपत्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश अपत्य स्थिति ही प्राप्त होती है और इसलिये इनमें  
इसका काल सर्वदा बन जाता है यही सब है कि औद्योगिकमित्रकाययोगमें अन्तर्गतानुगन्धी वस्तुओंकी  
अपत्य और अव्यपत्य स्थितिके काल सर्वदा कहा । पंचेन्द्रिय तिर्यर्थ लक्ष्यपयात्राओंमें भी एक  
हीवर्षकी अपेक्षा मिष्यात्त्व, सालह काय भय और जुगुप्साकी अपत्य स्थितिके कृत्त काल दो  
समय तथा दोष प्रकृतियोंकी अपत्य स्थितिके कृत्त काल एक समय बनताया है माना बीवोंकी  
अपेक्षा निरन्तर हानबाले वस कालको बहि बाधा जाय तो वह आबलिके असंख्यातमें भागसे  
अधिक नहीं होता है अतः यहाँ सब प्रकृतियोंकी अपत्य स्थितिके कृत्त काल आबलीके  
असंख्यातमें भाग प्रमाण कहा । दोष कथन सुगम है । इसी प्रकार जो सब विकृतप्रव आदि  
मार्गाण्य वतलार्थ है उनमें पणित कर लेना चाहिये । किन्तु पाँचों स्थावर काय बाहर पयात्र  
जीवोंमें एक हीवर्षकी अपेक्षा मिष्यात्त्व सालह काय भय और जुगुप्साकी अपत्य स्थितिके  
कृत्त काल अन्तर्गुह्य है । अब यदि इसे आबलिके असंख्यातमें भागसे गुणित कर दिया जाय  
तो पत्यके असंख्यातमें भागप्रमाण काल प्राप्त होता है अतः पाँचों स्थावर काय बाहर पयात्र  
जीवोंके कृत्त प्रकृतियोंकी अपत्य स्थितिके कृत्त काल पत्यके असंख्यातमें भाग प्रमाण कहा ।  
दोष कथन सुगम है ।

१ ६६८ मनुष्योंमें मिष्यात्त्व सम्पत्त्व, सोलह काय और तीन वर्गकी अपत्य स्थिति  
विमल्लिखिते जीवोंका अपत्य काल एक समय और कृत्त काल संख्यात समय है । तथा अव्यपत्य  
स्थितिबिम्बित्तवासे जीवोंका काल सबदा है । सम्मग्मिष्यात्त्व और छह नोड्यायोंकी अपत्य और  
अव्यपत्य स्थितिबिम्बित्तवाल जीवोंका काल आपक समान है । मनुष्य पयात्राओंमें इसी प्रकार  
बानना चाहिये । किन्तु इनमें विशेषता है कि सम्मग्मिष्यात्त्वका भेग सम्पत्त्वक समान है । तथा  
स्त्रीवर्गका भेग छह मासवर्षके समान है । मनुष्यनिर्वाहों सामान्य मनुष्योंके समान भेग है । किन्तु

मणुसभंगो । एणवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । पुरिस० णवुंस० छण्णोकसायभंगो ।  
 मणुसअपज्ज० मिच्छ० सम्म० सम्मामि० सोलसक० भयदुगुंद्ध० जह० ज० एगस० ।  
 उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अज० जह० एगस० । उक्क० पलिदो० असंखे०-  
 भागो । सत्तणोक० जह० ज० एगस० । उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अज०  
 जह० अंतोष्ठ० । उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।

इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिध्यात्वका भग सम्यक्त्वके समान है । तथा पुरुषवेद और नपुसक वेदका भग छह नोकपायोंके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिबिभक्तिमाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिमाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिमाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिमाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ—**सामान्य मनुष्योंके मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कपाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थिति कहते समय पर्याप्त मनुष्योंकी मुक्तता है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय कहा । छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालमें भी यही बात है, अतः इनके कालको ओघके समान कहा क्योंकि ओघमें जो छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालको घतलाया है वह पर्याप्त मनुष्योंके ही सम्भव है । किन्तु सामान्य मनुष्योंके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल लघ्यपर्याप्तक मनुष्योंकी प्रधानतासे कहा है, क्योंकि उद्वेलनाकी अपेक्षा लघ्यपर्याप्तक मनुष्योंके भी सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति सम्भव है और इसलिये सामान्य मनुष्योंके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण बन जाता है । शेष कथन सुगम है । उपर्युक्त सब कथन मनुष्य पर्याप्त जीवोंके भी बन जाता है किन्तु सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके कथनमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि मनुष्यपर्याप्त जीवोंका प्रमाण सख्यात ही है अतः इनके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल सम्यक्त्वके समान संख्यात समय ही होगा । तथा इनके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालमें भी कुछ विशेषता है, क्योंकि इनके स्त्रीवेदका स्वोदयसे क्षय नहीं होता अतः जिस प्रकार यहाँ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है उसी प्रकार यहाँ स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिये । सामान्य मनुष्योंके समान ही मनुष्यनियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल है किन्तु सम्यग्मिध्यात्व, पुरुषवेद और नपुसक-वेदकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि मनुष्यनियोंकी संख्या भी संख्यात है, अतः इनके सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके समान सख्यात समय ही होगा । तथा पुरुषवेद और नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके समान होगा, क्योंकि मनुष्यनियोंके इन दोनों वेदोंका स्वोदयसे क्षय नहीं होता है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें एक जीवकी अपेक्षा मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका

१६६८ द्वाणं गारगर्मगो । एवं यवण०-याण०, गयरि सभ्य० सम्मामि  
 अक्षमर्मगो । अनुविषादि जात यत्राहृद पि पञ्चवीस-पयवीर्ण ज० ज० एगसमभ्यो ।  
 उक्क० संस्तेजा समय । अम० सम्बद्धा । अर्णताणु० मोर्ष । सव्यद्व० सम्बपय० सव्य०  
 ठिदि० जह० एगस० उक्क० संस्तेजा समय । अम० सम्बद्धा एवं परिहार० ।  
 एवं संजद-सामाद्यवेदो०-सह्यसम्मादिदि पि । गयरि अण्णोकसाय० मोर्ष ।

उक्त काल मी एक समय ही प्राप्त होता है अतः इनके माना बीबोंकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी  
 जपन्य स्थितिका जपन्य काल एक समय और उक्त काल आशक्तिके असंस्पातर्षे भागप्रमाण  
 कहा । तथा इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजपन्य स्थितिका जपन्य काल एक समय और अन्तर  
 मार्गसा होनेके कारण उक्त काल पञ्चके असंस्पातर्षे भागप्रमाण बन जाता है । तथा इनके एक  
 बीबोंकी अपेक्षा सात नोक्याओंकी अजपन्य स्थिति कमसे कम अर्धमुहूर्त काल तक पाई जाती है  
 इसलिये सात नोक्याओंकी अजपन्य स्थितिका जपन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा शेष काल  
 पूर्वोक्त प्रकृतियोंके समान ही है ।

१६६९ देवोंके नारिक्योंके समान मंग है । इसी प्रकार मन्त्रवासी और अन्तर देवोंके  
 जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्बन्धका मंग सम्ममिप्यत्त्वके समान है ।  
 अनुविषसे लेकर अपराधित तकके देवोंमें बीबीस प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिबिम्बित्वासे बीबोंका  
 जपन्य काल एक समय और उक्त काल संस्पात समय है । तथा अजपन्य स्थितिबिम्बित्वासे  
 बीबोंका काल सर्वदा है । अनन्तशुक्ली मनुष्यकी स्थितिबिम्बित्वासे बीबोंका काल ओषक  
 समान है । सर्वायसिद्धिके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिबिम्बित्वासे बीबोंका जपन्य  
 काल एक समय और उक्तकाल संस्पात समय है । तथा अजपन्य स्थितिबिम्बित्वासे बीबोंका  
 काल सर्वदा है । इसी प्रकार परिहार विष्णुसिंघर्षके जानना । तथा इसी प्रकार संवत्, सामाविक-  
 संवत् जेजोपस्वापना संवत् और वायिकसम्बन्धित देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि इनमें बह नोक्याओंकी अपेक्षा काल ओषके समान ।

विशेषार्थ—देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिका जपन्य काल एक समय उक्त  
 काल आशक्तिके असंस्पातर्षे भागप्रमाण अजपन्य स्थितिका काल सर्वदा तथा सम्बन्धकी जपन्य  
 और अजपन्य स्थितिका काल ओषके समान बन जाता है इसलिये इनके कालके नारिक्योंके  
 समान कहा । मन्त्रवासी और अन्तरोंमें कृतकृत्यवेदक सम्बन्धित बीब करण नहीं होते इसलिये  
 इनमें सम्बन्धकी जपन्य और अजपन्य स्थितिका काल काल सम्ममिप्यत्त्वके समान है । उक्त  
 दोनों प्रकारके देवोंमें इस विशेषताको छोड़कर शेष सब काल सामान्य देवोंके समान है । अनुविष  
 आदिमें प्रकृतियोंकी जपन्य स्थिति उनके अन्तिम समयमें होती है और वे बीब मरकर मनुष्य  
 पर्वतमें ही रहने होते हैं अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिका जपन्य काल एक  
 समय और उक्त काल संस्पात समय कहा । तथा यहाँ सम्बन्ध प्रकृतिका जपन्य स्थिति कृत  
 कृत्यवेदक सम्बन्धितोंके प्राप्त होती है अतः इसकी जपन्य स्थितिका जपन्य काल एक समय और  
 उक्त काल संस्पात समय ही प्राप्त होता है, क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्बन्धित संस्पात ही होते हैं ।  
 पर यहाँ अनन्तशुक्लीकी अमरता विसर्पोदया करणाले बीब असंस्पात हैं अतः इसकी जपन्य  
 और अजपन्य स्थितिका काल ओषक समान बन जाता है । सर्वायसिद्धिके देवोंका प्रमाण  
 संस्पात ही है अतः यहाँ सब प्रकृतियोंकी जपन्य स्थितिका जपन्य काल एक समय और उक्त  
 काल संस्पात समय ही प्राप्त होगा । शेष काल सुगम है । सर्वायसिद्धिके समान परिहार विष्णु  
 संघर्षके सब प्रकृतियोंकी जपन्य और अजपन्य स्थितिका काल प्राप्त होता है क्योंकि इनका

६६६. एहंदिणसु मिच्छत्त-सोलसक०-णचणो० ज० अज० सव्वदा ।  
 मम्मत्त-मम्मामि० पंचिदिय-अपज्जत्तभंगो । एवं पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढवि०-  
 अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-  
 सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-  
 सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-आउ०वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्ज-  
 त्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपनोय०अपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्ता-  
 त्ति । मदिमुदअण्णा०-अभय०-मिच्छादि०-असण्णीसु एवं चेय, णवरि सत्तणो० जह०  
 तिरिक्खोय ।

प्रमाण भा संग्यात है । तथा संयत, सामायिकसंयत, छेदापस्थापनासंयत और चायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी सर्वायुमिद्विके देवोंके समान सम्भव सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल प्राप्त होता है, क्योंकि इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति दर्शनमोहनीयकी क्षणआदिके समय होती है और ये जीव सख्यात ही होते हैं । किन्तु इन संयत आदिके छह नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल आवेके समान है क्योंकि इनके क्षणक्षेत्राणि छह नोरूपायोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है ।

६६६. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सालह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिचिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वादर निगोद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, जीवोंके जानना चाहिये । मत्तज्ञानी श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिचिभक्तिवालेका काल सामान्य तिर्यचोंके समान है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंका प्रमाण अनन्त है इसलिये इनमें मिथ्यात्व आदि छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा वन जाता है । तथा सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव स्वरूप हैं अतः एकेन्द्रियोंमें भी इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके कालको पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान कहा । आगे जो पृथिवी आदिक मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें कईका प्रमाण तो अनन्त है और कईका प्रमाण असंख्यात होते हुए भी बहुत अधिक है अतः इनमें भी एकेन्द्रियोंके समान सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल वन जाता है । यही बात मत्तज्ञानी आदि मार्गणाओंकी है किन्तु इनके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके कालमें विशेषता है । बात यह है कि एक जीवकी अपेक्षा इनकी जघन्य स्थितिका काल

१६७० वेदविम्वयमिस्स० मिच्छत्त-सम्मत्त-सोत्तसक० भयदुग्ग० म० ख०  
एगस० । उक्क० संसेज्जा समया । अज्ज० ज० अतोमु० । उक्क० पस्सिदो० असत्ते०  
मागो । गवरि सम्म० अज्ज० ज० एयस० । सम्माभि० सत्तणोक्क० अह० पद्दमपु  
वविमंगो । अज्ज० अणुक्कस्समंगो ।

१६७१ आहार०—आहारमिस्स०—अवगद०—सुहुम०—अहावत्तादसज्जदेति उक्क-  
स्समंगो । गवरि अवगद० छण्णीक्क० अह० ओष० । कम्महय० परीविपमंगो,  
गवरि सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त० ज० ओष० । अज्ज० अणुक्क० मंगो । एवमणाहारीण० ।

एक समय ई अब परि इहे आबसिके असंख्यातवें मागसे गुणा किया अन्य ठो आबसिके  
असंख्यातवें मागप्रमाण ही प्राप्त होता है अतः इन मार्गशास्त्रोंमें सात नोकपार्योंकी अवश्य स्थितिके  
कालको सामान्य तिर्यचोक्क समान कहा क्योंकि तिर्यचोक्क भी इतना ही काल प्राप्त होता है ।

१६७० वैश्वियिक मिमकाययोगियोंमें, मिच्छात्त, सम्मत्त, सोत्तह कपाव, मय और  
कुगुप्पाकी अवश्य स्थितिबिम्बिक्कासे बीबोका अवश्य काल एक समय और उक्क काल संख्यात  
समय है । तथा अवजपम्य स्थितिबिम्बिक्कासे बीबोका अवश्य काल अन्तमुहुत्त और उक्क काल  
पस्सोपमके असंख्यातवें मागप्रमाण है । किन्तु इतनी विरोधता है कि सम्मत्तकी अवजपम्य  
स्थितिबिम्बिक्कासे अवश्य काल एक समय है । सम्मत्तमिच्छात्त और सात नोकपार्योंकी अवजपम्य  
स्थितिबिम्बिक्कासे अवश्य काल एक समय है । तथा अवजपम्य स्थितिबिम्बिक्कासे अवश्य काल  
अनुक्कके समान है ।

विशेषार्थ—अब यथायोग्य अनुस्यू संवत् बीब सरकर वैश्वियिकमिमकाययोगी होते हैं  
तब उनके मिच्छात्त सोत्तह कपाव, मय और कुगुप्पाकी अवश्य स्थिति पाई जाती है पर येसे  
बीबोका प्रमाण संवत्तासे अधिक नहीं हो सकता अतः वैश्वियिकमिमकाययोगीमें उक्त प्रकृतियोंकी  
अवश्य स्थितिका अवश्य काल एक समय और उक्क काल संख्यात समय कहा । पर अब अवजपम्य  
स्थिति अन्तिम समयमें होती है अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी अवजपम्य स्थितिका अवश्य काल  
अन्तमुहुत्त कहा क्योंकि वैश्वियिकमिमकाययोगका अवश्य काल अन्तमुहुत्त है । तथा माना बीबोका  
अपेक्षा वैश्वियिकमिमकाययोगका उक्क काल पस्सके असंख्यातवें मागप्रमाण है इसलिय इन्हीं  
उक्त प्रकृतियोंकी अवजपम्य स्थितिका उक्क काल उक्त प्रमाण कहा । परी बात सम्मत्त प्रकृतिकी  
अवश्य और अवजपम्य स्थितिके संख्यामें भी जानना चाहिये । किन्तु जिस कृतकृत्यवेदक सम्मत्तद्वि  
बीबोके सम्मत्तकी दो समय कालप्रमाण स्थिति सेप रहनपर वैश्वियिकमिमकाययोगकी प्राप्ति  
हुई है उसके सम्मत्तकी अवजपम्य स्थितिका अवश्य काल एक समय भी बन जाता है । पक्षी  
पृथिवीमें सम्मत्तमिच्छात्त और सात नोकपार्योंकी अवजपम्य स्थितिका अवश्य काल एक समय और  
उक्क काल आबसिके असंख्यातवें मागप्रमाण बतलावा है वा वैश्वियिकमिमकाययोगमें भी पटित  
हो जाता है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी अवजपम्य स्थितिके कालको पक्षी पृथिवीके समान कहा ।  
तथा इन बात प्रकृतियोंकी अवजपम्य स्थितिका काल अनुक्क स्थितिके समान है यह स्पष्ट ही है ।

१६७१ आहारकपाययोगी, आहारकमिमकाययोगी, अपगत वेदी, सूक्ष्म सांप्रत्यिकसंवत्त  
और यथाकाम संवत्तोंमें उक्कके समान मंग है । किन्तु इतनी विरोधता है कि अपगत वर्गमें उक्क  
नोकपार्योंकी अवजपम्य स्थितिबिम्बिक्कासे काल ओषके समान है । कर्मण्यकाययोगियोंमें  
एकेत्रिचोक्क समान मंग है । किन्तु इतनी विरोधता है कि सम्मत्त और सम्मत्तमिच्छात्तकी अवजपम्य  
स्थितिबिम्बिक्कासे काल ओषके समान है । तथा अवजपम्यस्थितिबिम्बिक्कासे अवश्य काल अनुक्क



§ ६६६. एहंदिणसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० सन्वद्वा ।  
 सम्मत्त-सम्मामि० पंचिदिय-अपज्जत्तभंगो । एवं पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढवि०-  
 प्रपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०-  
 सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-  
 सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-ग्राउ०वादरवाउ०-वादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्ज-  
 तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्ता-  
 त्त । मदिमुदअण्णा०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णीसु एवं चेव, णवरि, सत्तणोक० जह०  
 तिरिक्खोघ ।

प्रमाण भी सख्यात है । तथा संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी सर्वायसिद्धिके देवोंके समान सम्भव सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल प्राप्त होता है, क्योंकि इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति दर्शनमोहनीयकी क्षणआदिके समय होती है और ये जीव सख्यात ही होते हैं । किन्तु इन संयत आदिके छह नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान है क्योंकि इनके क्षणक्षणीमें छह नोकपायोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है ।

§ ६६६. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वादर निगोद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, जीवोंके जानना चाहिये । मत्त्यज्ञानी श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवालेका काल सामान्य तिर्यचोंके समान है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंका प्रमाण अनन्त है इसलिये इनमें मिथ्यात्व आदि छन्दस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा बन जाता है । तथा सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव स्वरूप हैं अतः एकेन्द्रियोंमें भी इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके कालको पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान कहा । आगे जो पृथिवी आदिक मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें कईका प्रमाण तो अनन्त है और कईका प्रमाण असख्यात होते हुए भी बहुत अधिक है अतः इनमें भी एकेन्द्रियोंके समान सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल बन जाता है । यही बात मत्त्यज्ञानी आदि मार्गणाओंकी है किन्तु इनके सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितिके कालमें विशेषता है । बात यह है कि एक जीवकी अपेक्षा इनकी जघन्य स्थितिका काल

१ ६७४ कुदो ? उअरकस्तहिदिसंतकम्मेणच्छिदसखजीवेसु अणुअरकस्तहिदिसंत-  
कम्मेण एगसमयमच्छिद तदियसमयमिह उअरकस्तहिदिषधेण परिणदेसु उअरकस्तहिदीए  
एगसमयंतखसामादो ।

❖ उअरस्तेण अंगुलस्स असंखेसुवि भागो ।

१७५ कुदो ? एकस्ते हिदीए उअरकस्तहिदिषधकाओ जदि अंतोमुहुत्तमेओ  
अम्भदि ओ सत्तेअसागरोअमकोआकोहीमेतहिदीण किं समामो वि पमाणेण फल्ल  
खिदिअप ओपहिवाए अंगुलस्स असंखेअदिभागमेपंतरकालुअरमादो । एषं  
अइसइपकविदुण्णिमुत्त वेसामासियं पकविय संपहि तेण अचिदत्तस्सुआरणाइरिय  
पकविदवक्खणं मणिस्सामो ।

१ ६७६ अंतरं दुबिहंअण्णमुअरस्स च । तत्थ उअरकस्सए पयदं । दुबिहो जिह  
देसो ओधेण आदेसेण य । तत्थ ओपेण सखपयहीणमुअरस्संतरं के० ? जह० एगस० ।  
अह० अंगुलस्स असंखेअदिभागो । अणुअर० अस्सि अंतरं । एषं सत्तसु पुअवीसु, सख  
तिरिअ०-अणुसतिय-सखवेव-सखयइदिय-सखविगलिदिय-सखपधिदिय-अकाय०-अंअ  
मण०-अंअअधि०-आयओगि० ओरासियमिस्स०-अठअविय०-सिण्णिवेद अचारि क०-अ

१ ६७४ श्लोक—अथम्य अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि अत्युच्च स्थितिस्तत्कालमें स्थित सब चीजोंके अनुत्पन्न स्थितिस्तत्काल  
रूपसे एक समय तक रह कर तीसरे समयमें उत्पन्न स्थितिकल्परूपसे परिणत होने पर उत्पन्न  
स्थितिक एक समय प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है ।

❖ उत्पन्न अन्तरकाल अंगुलके असंख्यतामें मागप्रमाण है ।

१ ६७६ श्लोक—अत्युच्च अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातमें मागप्रमाण क्यों है ?

समाधान—एक स्थितिक उत्पन्न स्थितिअन्तरकाल यदि अत्युच्चतम प्राप्त होता है तो  
संख्यात आकाशकी सी सागर प्रमाण स्थितियोंका कितना प्राप्त होगा, इस प्रकार कुछ राशिके इच्छा  
राशिके गुणित करके जो अत्युच्च आने उसमें प्रमाणराशिक माग देनेपर अंगुलके असंख्यातमें  
मागप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार यत्किपय अत्युच्चके द्वारा अने गये वेदामयक  
अत्युच्चक बन करके अब उसके द्वारा सूचित होये जाते अर्थात् जो अन्तराध्यात्मिकने ध्यात्मज्ञान  
किया है उसे कहते हैं—

१ ६७६ अन्तर हो प्रकारका है—अथम्य और अत्युच्च । हमसे पहले अत्युच्चक प्रकारका है ।  
उसकी अपेक्षा तिर्यक हो प्रकारका है—ओप और आदेस । हमसे ओपकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी  
अत्युच्च स्थितिअत्युच्चताओंका अन्तर कितना है ? अथम्य एक समय और अत्युच्च अंगुलके  
असंख्यातमें मागप्रमाण है । तथा अनुत्पन्न स्थितिअत्युच्चताओंका अन्तरकाल यही है । इसी प्रकार  
सारा प्रमाणिकोंके नारकी, सब तिर्यक सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य मनुष्यकी, सब देव, सब  
एकत्रिय सब विष्णुमैत्रिय सब वैष्णविय, जहाँ स्थानरक्षण पाँचों मनोयोगी पाँचों अन्तर्बोगी,  
अन्तर्बोगी, औदारिकमित्रकामयोगी, वैश्विककामयोगी, तीनों वेदवाले, चारों अथावासे,

§ ६७२. आभिणि० सुद० ओहि० ओघ, णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । एव-  
मोहिदंसण-सम्माइठि ति । मणपज्ज० संजदभंगो । णवरि इत्थि० एवुंस० छण्णो-  
कसायभंगो । संजदासंजद०-वेदय० अणुदिसभंगो । उवसम० चउवीसपयडी० ज०  
ज० एगसमओ । उक्क० संखेज्जा समया । अज० अणुक्क०भंगो । अणताणु०चउक्क०  
उक्क०भंगो । सम्मामि० सव्वपय० जह० ज० एगस० । उक्क० संखेज्जा समया । अज०  
अणुक्क०भंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० ज० ज० एगस० । उक्क० आवलि०  
असंखे०भागो । सासण० सव्वपयडी० ज० ज० एगसमओ । उक्क० संखेज्जा समया ।  
अज० ज० एगस० । उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

❀ णाणाजीवेहि अंतरं । सव्वपयडीणमुक्कस्सद्विदिविहत्तियाणमंतरं केव-  
चिरं कालादो होदि ।

§ ६७३. सुगममेदं ।

❀ जहण्णेण एगसमओ ।

के समान है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६७२. आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधि ज्ञानियोंमें ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिध्यात्वका भग सम्यक्त्वके समान है । इसी प्रकार अवधि दर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःस्वर्यज्ञानियोंमें संयतोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भग छह नोकपायोंके समान है । सयतासयत और वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अनुदिशके समान भग है । उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग उत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिध्यादृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगमका अधिकार है । सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ६७३. यह सूत्र सुगम है ।

\* जघन्य अन्तर काल एक समय है ।

§ ६७४ कुदो ? सकस्सट्ठिदिसंतकम्मेणच्छिदसम्बजीवेसु अणुक्कस्सट्ठिदिसंत-  
कम्मेण एगसमयमच्छिय तदियसमयमिह सकस्सट्ठिदिबंवेण परिणदेसु सकस्सट्ठिदीए  
एगसमयंतस्सलंभादी ।

❀ उक्तस्सेय अंगुलस्स असंखेत्तापि भागो ।

६७५ कुदो ? एक्किस्से ट्ठिदीए सक्कस्सट्ठिदिबंकासो जदि अंतोमुहुत्तमेसो  
कम्मदि तो सत्तेज्जसागरोमकोडाकोडीमेचट्ठिदीणं किं समामो पि पमाणस फल्ल  
खिदिन्नाए ओषट्ठिदाए अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेचंतरकालुवर्लंभादी । एवं  
अइसहपकविदुण्णिमुत्त वेसामासियं पकविय संपहि तेण अविद्वत्स्सुचारणाहरिय  
पकविद्वत्स्साणं मयिस्सामो ।

§ ६७६ अंतरं दुविहं ब्रह्मणमुक्कस्स य । तत्थ उक्कस्साए पयदं । दुविहो मिह  
देसो ओषेय्य आदेसेण य । तत्थ ओषेण सम्बपयडीणमुक्कस्संतरं क० ? जह० एगस० ।  
उक्त० अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । अणुक्क० णत्थि अंतरं । एवं सचसु पुडवीसु, सम्ब  
तिरिक्क०-मणुसत्थिय-सम्बदेव-सम्बएइदिय-सम्बविगखिंदिय-सम्बपभिंदिय-अकाय०-यंच  
मण०-यंचवणि०-कायजोगि० ओरासियमिस्स०-वेठम्विय०-तिग्णिवेद चचारि क०-म

§ ६७४ शंका—ब्रह्म अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि ब्रह्म स्थितिसत्त्वैरूपसे स्थित सब जीवोंके अनुकूल स्थितिसत्त्वै  
रूपसे एक समय तक रह कर तीसरे समयमें ब्रह्म स्थितिकल्परूपसे परिणत होने पर ब्रह्म  
स्थितिका एक समय प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है ।

❀ उक्तस्य अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण है ।

§ ६७५ शंका—ब्रह्म अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण क्यों है ?

समाधान—एक स्थितिका ब्रह्म स्थितिकल्पकाल यदि अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है तो  
संख्यात कोडाकोडी सागर प्रमाण स्थितियोंका कितना प्राप्त होगा, इस प्रकार कल रात्रिसे इच्छा  
रात्रिको गुणित करके वा सूर्य आते उसमें प्रमाणाधिक्य प्राप्त होनेपर अंगुलके असंख्यातवै  
भागप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार यद्विषय आचार्यके द्वारा कहे गये वेदामर्षक  
अद्वितीयक वचन करके अब इसके द्वारा सूचित होन वाले अर्थका जो उच्चारणाचार्यने व्याख्यात  
किया है उसे कहते हैं—

§ ६७६ अन्तर दो प्रकारका है—ब्रह्म और ब्रह्म । जन्मसे पहले ब्रह्मक प्रकरण है ।  
उसकी अपेक्षा निर्वैद्य दो प्रकारका है—ओष और आदेस । जन्मसे ओषकी अपेक्षा सब प्रवृत्तियोंकी  
ब्रह्म स्थितिबिमलित्वालोंका अन्तर कितना है ? ब्रह्म एक समय और ब्रह्म अंगुलके  
असंख्यातवै भागप्रमाण है । तथा अनुकूल स्थितिबिमलित्वालोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार  
सार्थों वृत्तिबिबोंके नारकी, सब तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पयात मनुष्य मनुष्यनी सब देव, सब  
एकत्रिय सब विष्णोत्रिय, सब पंचेन्द्रिय सबों स्वाधरकाय पाँचों मनायोगी पाँचों वचनयोगी,  
अपयोगी, ओरारिकमिहअपयोगी, वैदिकमिहअपयोगी, तीनों वेदवाले, चारों कथपवाले,

दिसुदअण्णाण०-विहंग०-आभिणि०-मुद०-ओहि०-मणपज्ज०-मंजद-सामाडय-छेदो०-  
परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०-चमसु०-अचमसु०-ओहिदंम०-छलेस्स०-भवसि०-  
अभवसि०-सम्मादि०-वेदय०-खइय०-मिच्छा०-सण्णि०-असण्णि०-आहारए ति ।

६७७. मणुसअपज्ज० सव्वपयडि० उक्क० ज० एगम० । उक्क० अंगुलस्स  
असखेज्जदि० भागो । अणुक्क० ज० एगस० । उक्क० पल्लिदो० अमंखे० भागो । एवं  
सासण० सम्माभि० दिदि ति । वेउव्वियमिस्स० सव्वपयडी० उक्क० ओवं । अणुक्क०  
ज० एगस० । उक्क० वारस० मुहुत्ता । आहार०-आहारमिस्स० उक्क० ओवं ।  
अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वासपुवत्त । कम्मइय० सम्म० सम्माभि० उक्क० ओवं ।

मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अत्रिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत,  
सामायिन्सयत, छेदोपस्थापनामयत, परिहारमिश्रद्विसयत, संयतासयत, प्रसंयत, चतुर्दर्शनवाले,  
अचतुर्दर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेख्यावाले, भन्य, प्रभन्य, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,  
चायिरुमम्यग्दृष्टि, मिध्यादृष्टि, मंजो, अमंजो और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां पर मन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जो जघन्य अन्तरकाल एक समय  
वतलाया है सो स्पष्ट ही है, किन्तु उत्कृष्ट अन्तरकाल अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण वतलावे  
हुए उसका धीरसेन स्वामीने जो खुनासा किया है उसका भाव यह है कि प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट  
बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः उस हिसाबसे सख्यात कोडाकोड़ी सागरप्रमाण सब स्थितियोंका  
बन्धकाल जोडा जाय तो कुल कालका जोड़ अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण होता है, क्योंकि  
अन्तर्मुहूर्तसे मख्यात कोडाकोड़ी सागरोंके समयोंको गुणित करनेपर जो प्रमाण प्राप्त होता है वह  
एक अगुलप्रमाण या अगुलके मख्यातवें भागप्रमाण न होकर अगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण  
ही होता है । अब यदि कुछ जीवोंने मोहनीयकी सप्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त किया,  
अनन्तर वे अन्यस्थितिविकल्पके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहें और इतने कालके भीतर  
अन्य कोई भी जीव उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त न हो तो सप्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर  
काल उक्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है । परन्तु मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट स्थितिका  
अन्तरकाल नहीं पाया जाता, क्योंकि अनुकृष्ट स्थितिवाले जीवोंका सर्वदा सद्भाव पाया जाता है ।  
ऊपर सातों पृथिवियोंके नारकी आदि और जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी यह व्यवस्था  
बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा ।

६७७ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका जघन्य  
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा  
अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्योप-  
मके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके  
जानना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका  
अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चारहमुहूर्त है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें  
उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवालों  
का जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । कर्मणकाययोगियोंमें  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है ।  
तथा अनुकृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल

ब० एगस०, उक्क० अंतोष्ट० । सेतं ओषं । एवमणाहारीणं ।

१ ६७८ अगवद० अगवीसपयदी० उक्क० ओषं । अगुक्क० न० एगस०,  
उक्क० अम्मासा । गवरि दैसणतिय०—अट्टकसा० अट्टणोक० वासपुषचं ।

अन्तर्गृह्यते हे । शेष कवन ओषके समान है । इसी प्रकार अनन्तरकालके कामना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**सम्पत्प्राप्त मनुष्य सान्तर भागीदा है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर परस्परके असंख्यातत्वे मागप्रमाण क्या, क्योंकि इस भागीदाका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर परस्परके असंख्यातत्वे मागप्रमाण है । तथा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल जिस प्रकार ओषमें पठित कर आये है उसी प्रकार यहां भी पठित कर लेना चाहिये । सासादनसम्पत्ति और सम्पत्तिप्राप्ति कीर्तिका अन्तरकाल सम्पत्प्राप्त मनुष्यके समान है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकूल स्थितिका अन्तरकाल सम्पत्प्राप्त मनुष्यके समान है । वैश्विकमित्रकामयोगका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह गुरुते है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह गुरुते है । आहारकामयोग और आहारकामिकामयोगका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषत्त्व है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषत्त्व है । शेष सब कवन सुगम है । कामयोगयोगमें सम्पत्त्व और सम्पत्तिप्राप्तकी अनुकूल स्थितिके जपन्य और उत्कृष्ट अन्तरमें ऊँच विशेषता है । शेष कवन भाषके समान है । बात यह है कि कामयोगयोगमें सम्पत्त्व और सम्पत्तिप्राप्तका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्गृह्यते होता है अतः इसमें इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका अन्तर भी उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है । यही बात अमहारक मार्गधामों जानना चाहिये क्योंकि मोहनीयकी सत्ता रखे हुए कामयोगयोगी बीच ही अनन्तरकाल होता है ।

१ ६७८ अपगतवेष्टालोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिभिन्निवालोंका अन्तर काल ओषके समान है । तथा अनुकूल स्थितिभिन्निवालोंका जपन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल बारह महीना है । किन्तु इतनी विशेषता है कि तीनों वर्तनमोहनीय, आठ कपाय और आठ नोकपायोंकी अपेक्षा अन्तरकाल वर्षपूषत्त्व है ।

**विशेषार्थ—**मोहनीयकी सत्ता रखे हुए अपगतवेष्टका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह महीना प्रमाण है अतः इसमें अन्तर्गृह्यकी अनुकूल स्थिति बिना शेष चौबीस प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह महीना प्रमाण है । किन्तु अपगतवेष्टाका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषत्त्व है अतः अपगतवेष्टाके तीन वर्तनमोहनीय और आठ कपायोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषत्त्व प्रमाण प्राप्त होगा । तथा जो मनुष्यके और स्त्रीके लिये अपगतवेष्टा या अपगतवेष्टा पर बढ़ता है उसीके अपगतवेष्टा अवस्थामें आठ नोकपायोंका सत्य पाया जाता है पर इनका भी उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषत्त्व है अतः अपगतवेष्टामें आठ नोकपायोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषत्त्व प्रमाण प्राप्त होगा । तात्पर्य यह है कि अपगतवेष्टामें पुस्तक और बार वर्तनमोहनीयकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर बारह महीनाप्रमाण और शेष चौबीस प्रकृतियोंकी अनुकूल स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूषत्त्व प्रमाण प्राप्त होता है । शेष कवन सुगम है ।

§ ६७९. अकसा० आहारभंगो । एवं जहाकवादसंजदाणं । सुहृम० एवं चेव ।  
णवरि लोसजल० अणुक० उक्क० छम्मासा । उवसम० सव्वपयडी० उक्क० ओघं ।  
अणुक० ज० एगस०, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि ।

एवमुक्कस्सओ अतराणुगमो समत्तो ।

\* एत्तो जहणयंतरं ।

६८०. सुगममेदं ।

❀ मिच्छत्त-सम्मत्त-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ति-  
अंतरं जहण्णेण एगसमत्तो ।

§ ६८१ कुदो ? पुव्विल्लसमए जहण्णट्ठिदिं कादूण तदणंतरविदियसमए अंतरिय  
पुणो तदियसमए अण्णेसु जीवेसु जहण्णट्ठिदिमवगएसु एगसमयंतरुवलंभादो ।

§ ६७६ अकषायियोंमें आहारककाययोगियोंके समान भग हैं । इसी प्रकार यथाख्यात संयतोंके जानना । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है किलोमसज्वलनकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिन रात है ।

विशेषार्थ—अकषाय अवस्थाके रहते हुए मोहनीयकी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता उपशान्त मोह गुणस्थानमें पाई जाती है और इसका जघन्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है तथा आहारककाययोगका अन्तरकाल भी इतना ही है, अतः अकषायी जीवोंके कथनको आहारककाययोगियोंके समान कहा । यही बात यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसाम्परायिक संयतोंके भी यही बात घटित हो जाती है, पर क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक संयतका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण है अतः इसमें लोभकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण जानना चाहिये । उपशमसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब इसके आगे जघन्य अन्तरानुगमका अधिकार है ।

§ ६८० यह सूत्र सुगम है ।

\* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ६८१ शंका—जघन्य अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि कुछ जीवोंने पहले समयमें जघन्य स्थिति की । तदनन्तर दूसरे समयमें अन्तराल देकर पुनः तीसरे समयमें अन्य जीव जघन्य स्थितिको प्राप्त हुए इस प्रकार जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है ।

ॐ उक्तस्तेषु क्षुम्मासा ।

§ ६८२ इदो ? सबगाणं क्षुम्मासं मोचूणं उवरि जइस्संतराणुवर्लमादो ।

ॐ सम्मामिच्छत्त-अर्णत्तणुवर्णीयं जइयसिदिविहृषिअमर्तं जइयये एणसमओ ।

§ ६८३ सुगममेदं ।

ॐ उक्तस्तेषु चत्थीसमहोरसो सादिरेगे ।

§ ६८४ इदो ? कारणाणुरुक्कज्जुवर्लमादो । तं महा-सम्मणं पटियवर्त्तता सुक्कस्संतं सादिरेगचत्थीसमहोरचाणि अहा जात्ताणि तहा पदेसि मिच्छत्तं गच्छमाणा पि उक्तस्संतं सादिरेगचत्थीसमहोरचयेत्त । मिच्छत्तं गंतूणं सम्मच्च-सम्मामिच्छत्ताणि उब्बेन्समंतानं पि एवं चेत्त उक्तस्संतं, अण्णहामावस्स कारणाभावादो । ए मर्त्तताणुवर्णियसकं विसंयोएताणं संजुज्जमाणाणं च सादिरेयचत्थीसमहोरचंतं उक्तस्सत्तं कारणं वत्तव्वं । सम्मत्तं पटियवर्त्तताणं चत्थीसमहोरचमेत्तु कस्संतरणिय इदो ? सामाविपाओ ।

ॐ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाश बह महीना है ।

§ ६८२ शृङ्गा-उत्कृष्ट अन्तरकाश बह महीना क्यों है ?

समाधान-क्योंकि कपर्दी बह महीना अन्तर काशको छोड़कर आगे उत्कृष्ट अन्तरकाश नहीं पाता जाता है ।

ॐ सम्यग्मिध्यात्वा और अनन्तानुबन्धीचतुष्कली वषण्य स्थितिविमक्तिबालों वषण्य अन्तरकाश एक समय है ।

§ ६८३ वह सूत्र सुगम है ।

ॐ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाश साधिक चौबीस दिन रात है ।

§ ६८४ शृङ्गा-उत्कृष्ट अन्तरकाश साधिक चौबीस दिन रात क्यों है ?

समाधान-क्योंकि अरण्यके अनुरूप कार्य होता है । इसका झुत्तासा इस प्रकार है—वि प्रकार सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले बीर्षोंका उत्कृष्ट अन्तरकाश साधिक चौबीस दिनरात है व प्रकार मिध्यात्वको प्राप्त होनेवाले बीर्षोंका भी उत्कृष्ट अन्तरकाश साधिक चौबीस दिनरात है मिध्यात्वको प्राप्त होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी वृत्तिया करनेवाले बीर्षोंका भी इसी प्रकार उत्कृष्ट अन्तरकाश होता है, क्योंकि इससे अन्य प्रकार होनेका और कोई कारण नहीं पा जाता । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कली विसंयोग्या करनेवाले और अनन्तानुबन्धीचतुष्क संयुक्त होने वाले बीर्षोंके साधिक चौबीस दिनरात प्रमास उत्कृष्ट अन्तरकाश के कारणका क्य करना चाहिये ।

शृङ्गा-सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले बीर्षोंका उत्कृष्ट अन्तरकाश चौबीस दिन-रात प्रमास होता है वह विषय किस कारणसे है ?

समाधान-स्वभावसे ही ऐसा नियम है ।



§ ६७९. अकसा० आहारभंगो । एवं जहाक्वादसंजदाणं । सुहुम० एवं चेव ।  
णवरि लोसंजल० अणुक० उक्क० छम्मासा । उवसम० सव्वपयडी० उक्क० ओधं ।  
अणुक० ज० एगस०, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि ।

एवमुक्कस्सओ अतराणुगमो समत्तो ।

\* एत्तो जहण्णयंतरं ।

६८०. सुगममेदं ।

❀ मिच्छत्ता-सम्मत्ता-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ति-  
अंतरं जहण्णेण एगसमओ ।

§ ६८१ कुदो ? पुब्बिल्लसमए जहण्णट्ठिदिं कादूण तदणंतरविदियसमए अंतरिय  
पुणो तदियसमए अण्णेसु जीवेसु जहण्णट्ठिदिमुवगएसु एगसमयंतरुवलंभादो ।

§ ६७६ अकषायियोंमें आहारककाययोगियोंके समान भग है । इसी प्रकार यथाख्यात संयतोंके जानना । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है किलोभसज्वलनकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाल्लोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिन रात है ।

विशेषार्थ—अकषाय अवस्थाके रहते हुए मोहनीयकी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता उपशान्त मोह गुणस्थानमें पाई जाती है और इसका जघन्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्त्व प्रमाण है तथा आहारककाययोगका अन्तरकाल भी इतना ही है, अतः अकषायी जीवोंके कथनको आहारककाययोगियोंके समान कहा । यही बात यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसांपरायिक संयतोंके भी यही बात घटित हो जाती है, पर चपक सूक्ष्मसांपरायिक संयतका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण है अतः इसमें लोभकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण जानना चाहिये । उपशमसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

\* अब इसके आगे जघन्य अन्तरानुगमका अधिकार है ।

§ ६८०. यह सूत्र सुगम है ।

\* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाल्लोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ६८१ शंका—जघन्य अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि कुछ जीवोंने पहले समयमें जघन्य स्थिति की । तदनन्तर दूसरे समयमें अन्तराल देकर पुनः तीसरे समयमें अन्य जीव जघन्य स्थितिको प्राप्त हुए इस प्रकार जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है ।

स्वयगसेविषयणवारसहस्तेहि कोषसंगणस्स संखेज्जसहस्सधयासंतरकासो किण्ण सम्पदे !  
 प, संसज्जसहस्सवरकासेसु मेस्सियेसु पि सादिरयबंधमासमेत्तपमाणचादो । त कुदो  
 गम्भदे ! एवम्हादो चेव सुचादो ।

⊗ लोमसंजलणस्स जहयण्णद्विदिविहरीरान्तरं जहयणेण एगसमयो ।

§ ६८७ सुगममेदं ।

⊗ उद्धस्सेण धम्मासा ।

§ ६८८ कुदो ! जस्स कस्स वि कसायस्स उदएण स्वयगसंदिं चदिद्वीवार्यं  
 लोमस्स जहयण्णद्विदिवसंतकम्पुण्यचोदो । ज ससाणमेसो कमा, सोदएणेव स्वयगसंदिं  
 चदिद्वीवार्यं जहयण्णद्विदिवसंतकम्पुण्यचोदो ।

⊗ इत्थि प्पबुंसयवेवार्यं जहयण्णद्विदिवि [ चिद्विस्ति ] अंतरं जहयणेण  
 एगसमयो ।

§ ६८९ सुगममेदं ।

⊗ उद्धस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि ।

शंका—यदि ऐसा है तो कमी मान, कमी मान माया और कमी मान माया लोमक  
 जयसे बीबीको हमारों बार अपकमेणीपर बहते रहनेसे कायसंजलनका संख्यात हमार बह महीना-  
 प्रमाण अन्तरकास क्यों नहीं मान जाता है ?

समाधान—यही संख्यात हमार अन्तरकासों कि मिला देने पर भी लोमसंजलनके उत्पन्न  
 अन्तरकासका प्रमाण साविक एक वर्ष ही होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है

⊗ लोमसंजलनकी जयन्य स्थितिविमक्तिबाल बीबीका जयन्य अन्तरकास  
 एक समय है ।

§ ६९० यह सूत्र सुगम है ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अन्तर बह महीना है ।

§ ६९१ शंका—उत्कृष्ट अन्तर बह महीना क्यों है ?

समाधान—क्योंकि जिस किसी भी कणवके जयसं अपकमेणी पर बड़े हुए बीबीके  
 लोमके जयन्य स्थिति उत्कृष्टकी उत्पत्ति हो जाती है । परन्तु इस कणवोंका यह कम नहीं है,  
 क्योंकि, सेव कणवोंकी अपका स्वोदयसे ही अपकमेणीपर बड़े हुए बीबीके जयन्य स्थिति उत्कृष्टकी  
 उत्पत्ति होती है ।

⊗ स्त्रीवेद और नपुंसकवत्की जयन्य स्थितिविमक्तिबाल बीबीका जयन्य  
 अन्तरकास एक समय है ।

§ ६९२ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अन्तरकास संख्यात वर्ष है ।

❀ तिण्हं संजलण-पुरिसवेदाणं जहणणट्टिदिविहृत्तिअंतरं जहणणेण एगसमओ ।

§ ६८५. सुगममेदं ।

❀ उक्कस्सेण वस्सं सादिरेयं ।

§ ६८६ कोधजहणणट्टिदीए उक्कस्सतरकालो चत्तारि छम्मासा २४ माणस्स तिण्णि छम्मासा १८ मायाए दो छम्मासा १२ जेण होदि तेण तिण्हं संजलणाणमुक्कस्संतरकालो वासं सादिरेयमिदि ण घट्ठे, किंतु पुरिसवेद-माणसंजलणाणमेदमंतरं जुज्जे; तत्थहारसमासमेत्तुक्कस्संतरखलंभादो त्ति ? होदि एसो दोसो जदि सव्वकालमुक्कस्संतराणं चेव संभवो होदि, ण पुण एवं संभवो उक्कस्संतराणमणुवद्धाणं जदि संभवो होदि तो दोण्हं चेय ण तिण्हं चट्ठण्हं वा । एवं कुदो णव्वदे ? तिण्हं संजलण-पुरिसवेदाणं वासं सादिरेयमुक्कस्संतरं भण्णमाणसुत्तादो । तेणेदेसिं चट्ठण्हं कम्माणं दोण्हं छम्मासाणमुवरि को वि जिणदिट्ठभावो कालो अहिओ त्ति वत्तव्वं । मायासंजलणाए सपुण्णवेद्धमासा चेव उक्कस्संतरं, तत्थ कथं वास सादिरेयमेत्तंतरं जुज्जे ? ण, तत्थ वि लोभोदण दो-तिण्णिआदिवारं खवगसेट्ठिं चडाविदे सादिरेयवे-छम्मासमेत्तुक्कस्संतरखलंभादो । जदि एवं तो माण-माया-लोभाणमेग-दो-तिसंयोगाणं

❀ तीन सज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर काल एक समय है ।

§ ६८५. यह सूत्र सुगम है ।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है ।

§ ६८६. शंका—चू कि क्रोधकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल चौबीस महीना, मानका अठारह महीना और मायाका बारह महीना होता है इसलिये तीन सज्वलनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष नहीं बनता, किन्तु पुरुषवेद और मान सज्वलनका साधिक एक वर्ष अन्तरकाल बन जाता है, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियोंका अठारह महीना प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है ?

समाधान—यदि सर्वथा उत्कृष्ट अन्तरकालोंका ही संभव होता तो यह दोष होता परन्तु ऐसा संभव नहीं है । क्योंकि अनुवद्ध रूपसे उत्कृष्ट अन्तरकालोंकी यदि संभावना है तो दोकी ही है, तीन और चार की नहीं ।

शंका—ऐसा किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—तीन सज्वलन और पुरुषवेदके साधिक एक वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर कालको कहनेवाले उक्त सूत्रसे ही यह जाना जाता है । अतः इन चार कर्मोंका एक वर्ष और इसके ऊपर जितना अधिक जिन भगवान् ने देखा हो उतना उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है, ऐसा कहना चाहिये ।

शंका—मायासंज्वलनका पूरा एक वर्ष उत्कृष्ट अन्तर काल है, अतः उसका साधिक एक वर्ष उत्कृष्ट अन्तरकाल कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि लोभके उदयसे दो, तीन आदि बार जीवोंको क्षणश्रेणीपर चढ़ाने पर मायाका भी साधिक एक वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है ।

स्वर्गसेविचरणवारसहस्रेहि कोधसंमल्लस्य संखेजसहस्रस्यमासंतरकालो विष्णु सम्मदे ?  
 न, संलम्बसहस्रवरकालसु मेरुदेसु वि सादिरयनक्षमासमपमानादो । सं कुदो  
 गम्भद ! एदम्हादो चेव सुपादा ।

⊗ सोमसंजलणस्स जहणणठिविचिहसिभंतरं जहणणेण एगसमपो ।

§ ६८७ सुगममेद ।

⊗ उक्कस्सेण छम्मासा ।

§ ६८८ कुदो ? जस्स कस्स वि कसायस्स उदएण स्वर्गसहिं चडिद्वीवार्णं  
 सोमस्स जहणणठिदिसंठकम्मुप्पचीदा । न ससाणमेषो कमा, सादएणेव स्वर्गसहिं  
 चडिदाणं जहणणठिदिसंठकम्मुप्पचीदा ।

⊗ इत्थि षण्णसपवेपारं जहणणठिवि [ चिहत्ति ] भंतरं जहणणेण  
 एगसमपो ।

§ ६८९ सुगममेद ।

⊗ उक्कस्सेण संखेजाणि यस्साणि ।

शंका—यदि ऐसा है तो कभी मान, कभी मान माया और कभी मान माया सामक  
 उदयसे जीवोंको हस्तों वार कपकमेणीपर चढ़ाए रहनेसे कायमरक्षणके संगत ६ बार ६६ महीना-  
 प्रमाण अन्तरकास क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, संख्याएँ हजार अन्तरकालोंकें मिली हूँ वर भी कायसंमल्लनके उत्कृष्ट  
 अन्तरकासका प्रमाण साक्षिक एक वर्ष ही होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है

⊗ सोमसन्वत्तनकी अपन्य स्थितिनिमित्तिकाल जीवोंका अपन्य अन्तरकास  
 एक समय है ।

§ ६९० यह सूत्र सुगम है ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अन्तर ६६ महीना है ।

§ ६९१ शंका—उत्कृष्ट अन्तर ६६ महीना क्यों है ?

समाधान—क्योंकि जिस ज्वरी भी कयायक रूपसे कपकमेणी पर चढ़ हुए जीवोंके  
 सामके अपन्य स्थिति सत्कर्मकी उत्पत्ति हो जाती है । परन्तु यदि कयायोंका यह क्रम नहीं है,  
 क्योंकि, यह कयायोंकी अपक्षा स्थाय्यसे ही कपकमेणीपर चढ़ हुए जीवोंके अपन्य स्थिति स्तरार्थकी  
 उत्पत्ति होती है ।

⊗ स्त्रीपद और नपुंसकपदकी अपन्य स्थितिनिमित्तिकाल जीवोंका अपन्य  
 अन्तरकास एक समय है ।

§ ६९२ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अन्तरकास सत्प्राप्त वर्ष है ।

§ ६९०. कुदो, अप्सत्थवेदानमुदण खवगसेदिं चढमाणजीवाणं पाएण संभवा-  
भावादो ।

§ ६९०. शका—उत्कृष्ट अन्तरकाल सख्यात वर्ष क्यो ह ?

समाधान—क्योंकि अप्रशस्त वेदोंके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढनेवाले जीव प्रायः नहीं पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी क्षपणके समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी, तथा चारित्र मोहनीयकी क्षपणके समय आठ कपाय और छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति नियमसे होती है और दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीयकी क्षपणका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण है अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण कहा । यद्यपि दर्शनमोहनीयकी क्षपणके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी भी जघन्य स्थिति होती है पर यह उद्वेलना प्रकृति है, अतः उद्वेलनाके समय भी इसकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसका अन्तरकाल अलगसे कहा है । ऐसा नियम है कि कोई भी जीव यदि सम्यक्त्वको प्राप्त न हो तो साधिक चौबीस दिनरात तक सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होगा । तत्पश्चात् कोई न कोई जीव सम्यक्त्वको अवश्य ही प्राप्त होगा । इस परसे निम्न चार बातें फलित होती हैं ( १ ) सम्यग्दृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वको न प्राप्त हों तो साधिक चौबीस दिन तक नहीं प्राप्त होंगे । इसके बाद कोई न कोई सम्यग्दृष्टि जीव अवश्य ही मिथ्यादृष्टि हो जायगा । ( २ ) यदि कोई भी जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ न करें तो साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ करेंगे । ( ३ ) यदि कोई भी जीव अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना न करें तो साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना करेगा । ( ४ ) जिन जीवोंने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है वे यदि मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उससे संयुक्त न हों तो अधिकसे अधिक साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं होंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उसका सत्त्व प्राप्त करेगा । इस कथनसे यह निष्कर्ष निकला कि सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात होता है तथा इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है यह तो स्पष्ट ही है । तथा सज्वलन क्रोध, सज्वलन मान, संज्वलन माया और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष बतलाया है सो उसका खुलासा इस प्रकार है—जो भी जीव क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके लोभका उदय तो अवश्य ही होता है, शेष तीनका उदय हो और न भी हो । जो मायाके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु शेष दोका उदय नहीं होता । जो जीव मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके मान, माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु क्रोधका उदय नहीं होता । तथा जो जीव क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके क्रोधादि चारोंका उदय अवश्य होता है । अब यदि पहले छह महीनामें केवल लोभके उदय वाले जीवोंको, दूसरे छह महीनामें माया और लोभके उदयवाले जीवोंको, तीसरे छह महीनामें मान, माया और लोभके उदयवाले जीवोंको और चौथे छह महीनामें चारों कपायोंके उदयवाले जीवों को क्षपकश्रेणी पर चढ़ाया जाय तो क्रमसे लोभकी जघन्य स्थितिका छह महीना उत्कृष्ट अन्तर मायाकी जघन्य स्थितिका एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर, मानकी जघन्य स्थितिका षेडू वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर और क्रोधकी जघन्य स्थितिका दो वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है । अतएव

॥ पिरयगईय सम्मामिच्छुत्त-अर्थताम्याधीर्ण जहण्णद्विदि [ विहृति ]

अतर जहण्णेण एगसमओ ।

§ ६६१ सुगममेदं ।

॥ उच्छस्स अटपीसमओत्तपो साविरेणे ।

§ ६६२ पर्दं पि सुगमं; ओघम्मि परुबिदत्तादो । नवरि ओघम्मि उचंतवरादो  
एदेणतरेण सविसेसेण होवम्भं; एगगइमस्सिदणं द्विदस्स चसगइमम्भीर्णतरेण सह  
समाणचविरोहादो ।

॥ सेसाणि जहा उवीरणा तथा येवम्भाणि ।

§ ६९३ सेसाणि पयविर्भतराणि जहा उवीरणा एवासि पयधीर्णं परुबिदाभि  
तथा परुबेदम्भं । संपहि जइवसइइहविणिग्गयज्जुम्भिसुचस्स दसामासियस्स मत्तपक्खणं  
ककण तेण सुबिदत्तस्स परुवणहं स्मिदिदुव्वारणं मणिस्तापो ।

§ ६९४ जहण्णतराजुगमेण इपिहो जिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्प

ओघ मान और माया संज्ञानकी जघन्य स्थितिका जो उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक रूप कहा है यह नहीं बन सकता है वह एक धोखा है जिसका बीरसेन स्वामीन प्रसङ्गमें उल्लेख करके उसका इस प्रकारसे समाधान किया है । बीरसेन स्वामीका कहना है कि इस प्रकार ब्रह्म ब्रह्म महीनाके अन्तरकाल लगातार नहीं प्राप्त होच हैं । क्योंकि यदि प्राप्त भी हुए तो भी अन्तरकाल प्राप्त हो सकते हैं । दो अन्तरकालोंके बीच तीसरे और चौथे अन्तरकालका प्राप्त होना तो किसी भी हासतमें सम्भव नहीं है । यदि ऐसा न माना जाय तो श्रृणुस्वरूपके जो तीन संस्कारोंका साधिक एक वर्षमात्र उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है वह नहीं बन सकता है ।

॥ नरकगतिये सम्यग्मिध्यात्वा और अनन्तानुपधीचतुष्ककी जघन्य स्थिति विमक्तिवासोंका जघन्य अन्तर एक समय है ।

§ ६६१ वह सूत्र सुगम है ।

॥ तथा उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है ।

§ ६६२, यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि इसका ओघ प्ररूपकाके समय कथन कर आये हैं ।

किन्तु इतना विशेष है कि जो अन्तर ओघमें कहा है उससे यह अन्तर कुछ अधिक होना चाहिये क्योंकि एक गतिक आगमसे जो अन्तर स्थित है उसकी चार गतिसे संबन्ध रखनवाले अन्तरके सात समानता माननेमें विरोध आता है ।

॥ शय प्रकृतियोंका अन्तरकाल, जिस प्रकार उदीरणामें अन्तर कहा है उस प्रकार जानना चाहिये ।

§ ६६३ पहले जो पाँच प्रकृतियों गिना आये हैं उन्हें जोड़कर शय प्रकृतियोंका जिस प्रकार उदीरणामें अन्तरकाल कहा है उस प्रकार उनका अन्तरकाल जानना चाहिये । इस प्रकार पतिवृत्तम आचार्यके मुखसे निकले हुए वैशाखपौर्णमासीके श्रृणुस्वरूपके श्रवणका कथन करके अब उससे सूचित होमवाले श्रवणका कथन करनेके लिये उसके ऊपर शिखी गई उच्चारणका कहते हैं ।

§ ६६४ जघन्य अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश या प्रकारका है—आपनिर्देश और

§ ६९०. कुदो, अप्ससत्त्ववेदाणमुदण खवगसेहि चडमाणजीवाणं पाएण संभवा-  
भावादो ।

§ ६९०. शका—उत्कृष्ट अन्तरकाल सख्यात वर्ष क्यों है ?

समाधान—क्योंकि अप्रशस्त वेदोंके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव प्रायः नहीं पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी, तथा चारित्र मोहनीयकी क्षपणाके समय आठ कषाय और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविमक्ति नियमसे होती है और दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीयकी क्षपणाका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण है अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण कहा । यद्यपि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी भी जघन्य स्थिति होती है पर यह उद्वेलना प्रकृति है, अतः उद्वेलनाके समय भी इसकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसका अन्तरकाल अलगसे कहा है । ऐसा नियम है कि कोई भी जीव यदि सम्यक्त्वको प्राप्त न हो तो साधिक चौबीस दिनरात तक सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होगा । तत्पश्चात् कोई न कोई जीव सम्यक्त्वको अवश्य ही प्राप्त होगा । इस परसे निम्न चार बातें फलित होती हैं ( १ ) सम्यग्दृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वको न प्राप्त हों तो साधिक चौबीस दिन तक नहीं प्राप्त होंगे । इसके बाद कोई न कोई सम्यग्दृष्टि जीव अवश्य ही मिथ्यादृष्टि हो जायगा । ( २ ) यदि कोई भी जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ न करें तो साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ करेंगे । ( ३ ) यदि कोई भी जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न करें तो साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करेगा । ( ४ ) जिन जीवोंने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है वे यदि मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उससे संयुक्त न हों तो अधिकसे अधिक साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं होंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उसका सत्त्व प्राप्त करेगा । इस कथनसे यह निष्कर्ष निकला कि सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात होता है तथा इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है यह तो स्पष्ट ही है । तथा सञ्चलन क्रोध, सञ्चलन मान, सञ्चलन माया और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष बतलाया है सो उसका खुलासा इस प्रकार है—जो भी जीव क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके लोभका उदय तो अवश्य ही होता है, शेष तीनका उदय हो और न भी हो । जो मायाके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु शेष दोका उदय नहीं होता । जो जीव मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके मान, माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु क्रोधका उदय नहीं होता । तथा जो जीव क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके क्रोधादि चारोंका उदय अवश्य होता है । अब यदि पहले छह महीनामें केवल लोभके उदय वाले जीवोंको, दूसरे छह महीनामें माया और लोभके उदयवाले जीवोंको, तीसरे छह महीनामें मान, माया और लोभके उदयवाले जीवोंको और चौथे छह महीनामें चारों कषायोंके उदयवाले जीवों को क्षपकश्रेणी पर चढ़ाया जाय तो क्रमसे लोभकी जघन्य स्थितिका छह महीना उत्कृष्ट अन्तर मायाकी जघन्य स्थितिका एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर, मानकी जघन्य स्थितिका डेढ़ वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर और क्रोधकी जघन्य स्थितिका दो वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है । अतएव

बोणिणी-भयण०-बाण०-ओदिसि०-पेरुम्भिय०-भोगे सि ।

॥ ६६६ ॥ तिरिक्कल० मिच्छत्त-बारसक० मय-डुगुळ० ख० अज्ज० णरिय अंतर ।  
सम्भय-सम्भामि० अणंठाणु० पडमपुडवीमंगो । सत्तणोक० एवं धव । पचिं०तिरि०  
अपक्ख० पचिं०तिरिक्कलमोणिणीमंगो । णयरि अणंठाणु०चउक० अपज्जतुक्खस्समंगो ।  
एवं सम्भविगस्तिंदिय-पचिं०अपज्ज०-ससअपज्जणे सि ।

हे । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्येय योनिमंगी, भवनवासी अन्तर, ज्योतिषी और वैश्वविश्वकर्मयोगी जीवोंके ज्ञानता चाहिये ।

**विश्वपार्य**—नारिक्योंके सब प्रकृतियोंकी बहुत स्थितिका ज्ञाप्य अन्तर एक समय और बहुत अन्तर अंगुलके असेव्याप्तवर्ष भागप्रमाण बतला आवे हैं तथा यह भी बतला आवे हैं कि इनकी अनुकूल स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता । इसी प्रकार यहाँ भी मिथ्यात्व बाह्य कपाय और नौ नोकपायोंकी ज्ञाप्य और अज्ञाप्य स्थितिके अन्तरकालके विषयमें ज्ञानना चाहिये । कारण जो बहुत और अनुकूल स्थितिके अन्तरके समय बतला आवे हैं वे ही यहाँ ज्ञानना चाहिये । किन्तु ऐसे प्रकृतियोंकी ज्ञाप्य स्थितिके अन्तरकालके विषयमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि नारिक्योंके कृतकृत्यवैकसम्यगदृष्टिका ज्ञाप्य अन्तर एक समय और बहुत अन्तर वर्षपूर्वकत्व है अतः यहाँ सम्यक्त्वकी ज्ञाप्य स्थितिका ज्ञाप्य अन्तर एक समय और बहुत अन्तर वर्षपूर्वकत्व प्राप्त होता है, क्योंकि सम्यक्त्वकी ओष ज्ञाप्य स्थिति कृतकृत्यवैकसम्यगदृष्टिके ही प्राप्त होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुकम्पी वस्तुच्छाकी ज्ञाप्य स्थितिका ज्ञाप्य अन्तर एक समय और बहुत अन्तर साधिक बीबीस दिन रात ज्ञानना चाहिये । इसका कारण ओष प्रकृत्यात्के समय बतला ही आवे हैं । तथा इन वहाँ प्रकृतियोंकी अज्ञाप्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता यह स्पष्ट ही है । मूलमें पहली पृथिवीके नारिकी आरिक् को और तीन मर्मापार्य गिनार्य हैं जन्में यह सब व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारिक्योंके समान कहा है । द्वितीयादि पृथिवियोंमें कृतकृत्यवैकसम्यगदृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं अतः यहाँ सम्यक्त्वकी ओष ज्ञाप्य स्थिति सम्भव न होकर आदेश ज्ञाप्य स्थिति प्राप्त जाती है जो उल्लेखान्ते समय सम्भव है और बह्वचनाका बहुत अन्तर साधिक बीबीस दिनरात होता है अतः यहाँ सम्यक्त्वकी ज्ञाप्य स्थितिका अन्तर सम्यग्मिथ्यात्वके समान कहा । यहाँ इतनी ही विशेषता है दोष सब कथन सामान्य नारिक्योंके समान है । मूलमें जो पंचेन्द्रियतियथयानिमयी आदि मार्गव्याप्य गिताय हैं जन्में दूसरी पृथिवीके सामान्य व्यवस्था बन जाती है, इसलिये उनके कथनको दूसरी पृथिवीके समान कहा ।

॥ ६६६ ॥ तिर्यचोमि मिथ्यात्व बाह्य कपाय, मय और अनुकूलकी ज्ञाप्य और अज्ञाप्य स्थितिर्विश्वकर्मयोगी जीवोंका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुकम्पी वस्तुच्छाका मंग पहली पृथिवीके समान है । साण नोरुपयोंअ मंग भी इसी प्रकार ज्ञानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तियथ अपवातक्रमे पंचेन्द्रिय तियथ यानिमनियोंके समान मंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुकम्पीवस्तुच्छाकी अपवात मंग पंचेन्द्रिय तियथ अपवातक्रमेके वस्तुच्छा समान है । इसी प्रकार सब विकल्पेन्द्रिय पंचेन्द्रिय अपवात और त्रस अपवात जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

**विश्वेपार्य**—तिर्यचोंका प्रमाण अनन्त है । जन्में मिथ्यात्व बाह्य कपाय मय और अनुकूलकी ज्ञाप्य और अज्ञाप्य स्थितिवासे जीव सर्वदा वाध जात हैं अतः इनका अन्तर काय नहीं है । तिर्यचोंमें सम्यक्त्वकी ज्ञाप्य स्थिति कृतकृत्यवैकसम्यक्त्वके समय, सम्यग्मिथ्यात्वकी ज्ञाप्य



ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-अट्ठकसाय-उ-उण्णो-क०-६-लोभसंज० ज० अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । अज० णत्थि अंतरं । सम्मामि०-अणताणु०-चउक्क० ज० ज० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि । अज० णत्थि अंतरं । इत्थि०-णवुंस० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधरां । अज० णत्थि अंतरं । तिण्णिसज०-पुरिस० जह० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० णत्थि अंतरं । एवं मणुस-मणुसपज्ज०-पंचि०-पंचि०-पज्ज०-तस-तमपज्ज०-पंचमण०-पचवचि०-कायजोगि०-ओरा-लि०-चक्खु०-अचक्खु० सुक्क०-भवसि०-सण्णि०-आहारि ति । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जह० उक्क० छम्मासा ।

§ ६९५. आदे० णेरइएसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणो-क० उक्क० भंगो । सम्मत्त० ज० जह० एगस०, उक्क० वासपुधरां । अज० णत्थि अंतरं । सम्मामि०-अणताणु०-चउक्क० ज० जह० एगस० । उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि । अज० णत्थि अंतरं । एवं पढमाए पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०-तिरि०-पज्ज० । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं पंचि०-तिरि०

आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय, छह नोकषाय और लोभसंवलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । खीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । तीन संवलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुकललेश्यावाले, मन्य, सञ्जी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें खीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है ।

§ ६९५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जावोंके जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान

बोगिणी भवज०-वाण०-जोदिसि०-येवधिय०-भोगे सि ।

॥ ६६६ ॥ तिरिक्ख० मिच्छन्-भारसक०-मय दुगु झ० ज० अज० जसि अंतर ।  
सम्मत्त-सम्मामि० अर्णताणु० पदमपुहवीमंगो । सत्तणोफ० एव वेव । पथि०-तिरि०  
अपक्ख० पथि०-तिरिक्ख-भोगिणीमंगो । गयरि अर्णताणु०-पठक० अपक्खचुक्खसमंगो ।  
एव सम्ममिद्विद्वि-पथि०-अपक्ख०-तसअपक्खो सि ।

है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनिमयी, भवन्वासी अन्तर, ज्योतिषी और वैश्वविकल्पमयोगी जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशुपार्थ**—नारकियोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अर्णताके अस्तसमाप्तके भागप्रमाण बतला आये हैं तथा यह भी बतला आये हैं कि इनकी अत्युत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता । इसी प्रकार यहां भी मिथ्यात्व, बाह्य कयाव और भी नोकरावोंकी जपम्य और अजपम्य स्थितिके अन्तरकालके विषयमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि नारकमें कृतकृत्यवेदकसम्पन्नस्थितिका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षद्वयकाल है अतः यहां सम्पन्नत्वकी जपम्य स्थितिका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षद्वयकाल प्राप्त होता है क्योंकि सम्पन्नत्वकी ओर जपम्य स्थिति कृतकृत्यवेदकसम्पन्नस्थितिके ही प्राप्त होती है । इसी प्रकार सम्पन्नमिथ्यात्व और अमन्तलुब्धकी अत्युत्कृष्टकी जपम्य स्थितिका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन रात जानना चाहिये । इसका कारण ओर प्रत्यक्षके समय बतला ही आये हैं । तथा इन जहाँ प्रकृतियोंकी अजपम्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता यह स्पष्ट ही है । मूलमें पहली पृथिवीके नारकी आदिक जो और तीन मार्गवायं गिनार्थ हैं उनमें यह सब व्यवस्था बन जाती है, अतः इनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा है । द्वितीयादि पृथिवियोंमें कृतकृत्यवेदकसम्पन्नस्थिति भी नहीं उत्पन्न होते हैं अतः यहां सम्पन्नत्वकी आप जपम्य स्थिति सम्भव न होकर आदेश जपम्य स्थिति पाई जाती है जो ब्रह्मज्ञानके समय सम्भव है और ब्रह्मज्ञानका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात होता है अतः यहां सम्पन्नत्वकी जपम्य स्थितिका अन्तर सम्पन्नमिथ्यात्वके समान कहा । यहां इतनी ही विशेषता है क्षेत्र सब कथन सामान्य नारकियोंके समान है । मूलमें जो पंचेन्द्रियतिर्यक् योनिमयी आदि मार्गवायं गिनार्थ हैं उनमें दूसरी पृथिवीके समान व्यवस्था बन जाती है, इसलिये इनके कथनका दूसरी पृथिवीके समान कहा ।

॥ ६६६ ॥ तिर्यक्में मिथ्यात्व बाह्य कयाव मय और दुगुप्ताकी जपम्य और अजपम्य स्थितिभिन्नतासे जीवोंका अन्तर नहीं है । सम्पन्नत्व सम्पन्नमिथ्यात्व और अमन्तलुब्धकी अत्युत्कृष्टका मंग पहली पृथिवीके समान है । सात नोकरावोंका मंग भी इसी प्रकार जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्तमें पंचेन्द्रिय तिर्यक् यानिमित्तियोंके समान मंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अमन्तलुब्धकी अत्युत्कृष्टकी अपेक्षा मंग पंचेन्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्तके पक्षके समान है । इसी प्रकार सब विश्वेन्द्रिय पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रिम अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—तिर्यक्कोका प्रमाण अन्तर है । इनमें मिथ्यात्व बाह्य कयाव मय और दुगुप्ताकी जपम्य और अजपम्य स्थितिबासे तीन सबैदा पाप बात हैं अतः इनका अन्तर काल नहीं है । तिर्यक्में सम्पन्नत्वकी जपम्य स्थिति कृतकृत्यवेदकसम्पन्नत्वके समय, सम्पन्नमिथ्यात्वकी जपम्य

ओषेण मिच्छत्त-सम्मत्त-अट्ठकसाय-उ-उण्णोक्क०-६-लोभसंज० ज० अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । अज० णत्थि अंतरं । सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० ज० ज० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि । अज० णत्थि अंतरं । इत्थि०-णवुंस० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । तिण्णिसज०-पुरिस० जह० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० णत्थि अंतरं । एवं मणुस-मणुसपज्ज०-पंचि०-पंचि०-पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पचवचि०-कायजोगि०-ओरा-लि०-चक्खु०-अचक्खु० सुक्क०-भवसि०-सण्णि०-आहारि त्ति । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जह० उक्क० छम्मासा ।

§ ६९५. आदे० णेरइएसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० उक्क० भंगो । सम्मत्त० ज० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० ज० जह० एगस० । उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि । अज० णत्थि अंतरं । एवं पढमाए पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज० । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं पंचि०तिरि०

आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओषधी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कपाय, छह नोकपाय और लोभसञ्चलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । ऋग्वेद और नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । तीन संव्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पंचो मनोयोगी, पंचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुकललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें ऋग्वेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है ।

§ ६९५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान

एगस०, षड० वासपुवच पक्षिदो० संस्ते० मागो ।

१६६६ एहिदिपसु मिच्छच-सोखसक०-जबणोक० ज० अम० एतिय अतर ।  
सम्मच०-सम्मायि० पधि०तिरि०अपज्जचमंगो । एधं पुढवि०-बादरपुढवि०-बादर  
पुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि०पज्जचापज्जच-आव०-बादरआव०-बादरआव  
अपज्ज०-सुहुमआठ०-सुहुमआठ०पज्जचापज्जच-सेठ०-बादरसेठ०-बादरसेठअपज्ज०-सुहुम-  
सेठ०-सुहुमसेठ०पज्जचापज्जच-माव०-बादरमाव०-बादरमावअपज्ज०-सुहुमवाव०-सुहुम-  
वाव०पज्जचापज्जच-बादरवणप्फदिपचेयअपज्ज०-वणप्फदि-गिगोदवादरसुहुमपज्जचा-  
पज्जच-कम्मइय० अणाहारि चि । गवरि पज्जिमदोपदेसु सम्मच० अह० तिरिक्खोयं । सम्म०  
सम्मायि० अज० अणुक्कस्समंगो । पवकाय०-बादरपज्ज० पधि०तिरि०अपज्जचमंगो ।

जानता बाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और अनन्तलुब्धकी वस्तुएँ की  
वचन्य स्थितिबिम्बितवालोंका जपन्य अन्तर काल एक समय और छत्तु अन्तर काल क्रमशः  
वर्षावृत्तव और पञ्चापनके संस्कारतर्षे आगममात्र है ।

**विशेषार्थ**—अनुविष्ट आधिमि अधिकसे अधिक वचपुवक्त्व काल तक कृतकृत्यवेवक  
सम्पन्मष्टि जीव अस्तन नहीं होता है और अनन्तलुब्धकी विसंयोजना नहीं होती है अथ इन्में  
सम्यक्त्व और अनन्तलुब्धकी वस्तुएँ की वचन्य स्थितिका जपन्य अन्तर एक समय और छत्तु  
अन्तर वचपुवक्त्वप्रमाण कहा । इसी प्रकार सर्वावसिद्धिमें अधिकसे अधिक पदके संस्कारतर्षे  
आगममात्र काल तक कृतकृत्यवेवक सम्पन्मष्टि जीव नहीं अस्तन होता है और अनन्तलुब्धकी  
विसंयोजना नहीं होती है इसलिये इन्में व० प्रकृतिवाँकी वचन्य स्थितिका जपन्य अन्तर एक  
समय और छत्तु अन्तर पत्यक संस्कारतर्षे आगममात्र कहा । छेप केवन लुगम है ।

१६६६, एहिदिपसु मिच्छात्त, साहव कपाय और ना नोऽप्याकी वचन्य और अवचन्य  
स्थितिबिम्बितवालोंका अन्तर काल नहीं है । तथा सम्यक्त्व और सम्पन्मिच्छात्तकी अवेष  
पथेभ्रिय तर्षे अवर्षात्तको समान भग है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, वातर पृथिवीकायिक,  
वातर पृथिवीकायिक अपवात, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पवात, सूक्ष्म पृथिवी-  
कायिक अपवात, जलकायिक, वातर जलकायिक वातर जलकायिक अपवात, सूक्ष्म जलकायिक,  
सूक्ष्म जलकायिक पवात, सूक्ष्म जलकायिक अपवात, अग्निकायिक, वातर अग्निकायिक, वातर  
अग्निकायिक अपवात, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पवात, सूक्ष्म अग्निकायिक  
अपवात, वायुकायिक, वातर वायुकायिक, वातर वायुकायिक अपवात, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म  
वायुकायिक पवात, सूक्ष्म वायुकायिक अपवात, वातर वनस्पतिकायिक प्रत्येक छरीर, वातर  
वनस्पतिकायिक प्रत्येक छरीर अपवात, वनस्पतिकायिक, निगोद, वातर वनस्पतिकायिक, वातर  
वनस्पतिकायिक पवात वातर वनस्पतिकायिक अपवात, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पति-  
कायिक पवात, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपवात, वातर निगोद वातर निगोद पवात, वातर निगोद  
अपवात, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पवात, सूक्ष्म निगोद अपवात कालकायिकापवागो और  
अन्यहारक जीवोंके जानना बाहिये । किन्तु अन्तिम ॥ पदोंमें इतना विशेषता है कि इन्में  
सम्यक्त्वकी वचन्य स्थितिबिम्बितवालोंका अन्तर काल सामान्य तर्षेको समान है और  
सम्यक्त्व और सम्पन्मिच्छात्तकी अवचन्य स्थितिबिम्बितवालोंका भग अनुरक्तके समान है ।  
पानों स्थावरकाय वातर पवात जीवोंमें पथेभ्रिय तर्षे अवर्षात्तको समान भग है ।

§ ६६७ मणुसिणीसु सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ओघं । सेस० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतं । मणुसअपज्ज० छ्वीसपयडीणं उक्कस्सभगो । सम्म०-सम्मामि० जह० अज० जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

§ ६९८ देवाणं णारगभंगो । एवं सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति । अणुहिसादि जाव सव्वहा त्ति एवं चेव । णवरि सम्म०-अणंताणु०चउक्क० जह० ज०

स्थिति उद्वेलनाके समय और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके समय पाई जाती है जिनका अन्तरकाल पहले नरकके समान यहा भी बन जाता है, अतः इनके भगको पहली पृथिवीके समान कहा तथा सात नोकपायोंकी जघन्य स्थिति, जो एकेन्द्रिय स्थितिसत्त्वके समान स्थितिको बाधवर पचेन्द्रियोंम उत्पन्न हुए हैं उनके, प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्धकालके अन्तिम समयमें होती है । अब यदि नानाजीवोंकी अपेक्षा इसका अन्तरकाल देखा जाय तो पहली पृथिवीके नारकियोंके समान यहा भी जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है इसलिये तिर्यचोंमें सात नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका भंग पहले नरकके समान कहा । पचेन्द्रियतिर्यच योनिमती जीवोंके पहले सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर दूसरी पृथिवीके समान कर आये हैं उसी प्रकार यहा पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके कर लेना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, इसलिये यहा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है और इसलिये यहा इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है जो कि इनके अनन्तानुबन्धीकी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान है । यही कारण है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिके अन्तरको अपने ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान कहा । मूलमें जो सब विकलेन्द्रिय आदि मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी यही व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको पचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ६९७ मनुष्यनियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा अन्तरकाल ओघके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थिति बिभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भग उत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—मनुष्यनियोंके दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षणका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण पाया जाता है, अतः इनमें सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीको छोड़कर शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है । मनुष्यअपर्याप्तकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ६९८ देवोंमें नारकियोंके समान भंग है । इसी प्रकार सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तक्षके देवोंके जानना चाहिये । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक्षके देवोंके भी इसी प्रकार

एगस०, सक० वासपुवच पक्षियो० संखे० भागो ।

१ ६६६ एरुदिपसु पिच्छस-सोखसक०-अपणोक० अ० अज० एसि अतर ।  
सम्मच०-सम्मामि० पंथि०तिरि०अपज्जचर्मगो । एवं पुडवि०-बादरपुडवि०-बादर  
पुडविमपज्ज०-सुहुमपुडवि०-सुहुमपुडवि०पज्जचापज्जच-आठ०-बादरमाठ०-बादरमाठ  
अपज्ज०-सुहुममाठ०-सुहुममाठ०पज्जचापज्जच-तेठ०-बादरतेठ०-बादरतेठअपज्ज०-सुहुम  
तेठ०-सुहुमतेठ०पज्जचापज्जच-माठ०-बादरमाठ०-बादरमाठअपज्ज० सुहुममाठ०-सुहुम  
माठ०पज्जचापज्जच-बादरबणप्फदिपयेअपज्ज०-बणप्फदि-गिगोदबादरसुहुमपज्जचा-  
पज्जच-कम्मइप० अणाहारि पि । जवरि पच्छिमदोपदेसु सम्मच० सह० विरिक्खोर्प । सम्म०  
सम्मामि० अम० अणुकुक्खसर्मगो । पचकाय०बादरपज्ज० पंथि०तिरि०अपज्जचर्मगो ।

जान्ता बाहिदे । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्पत्तय और अनन्तलुब्धीबन्धुकी  
अपम्य स्थितिभिन्नताओंका अपम्य अन्तर काल एक समय और एकसु अन्तर काल कमअ  
वर्षपूर्वत्व और पस्यापमके संस्कारोंमें भगप्रमाह है ।

विशेषार्थ—अनुदिष्ट आदिमें अधिकसे अधिक वर्षपूर्वत्व काल तक कृतकृत्यवेदक  
सम्पत्ति जीव इत्यन्त नहीं होता है और अनन्तलुब्धीकी विसंबोचना नहीं होती है अतः इनमें  
सम्पत्तय और अनन्तलुब्धी बन्धुकी अपम्य स्थितिका अपम्य अन्तर एक समय और एकसु  
अन्तर वर्षपूर्वत्वप्रमाह है । इसी प्रकार सहावसिद्धिमें अधिकसे अधिक परचके संस्कारोंमें  
भगप्रमाह कम तक कृतकृत्यवेदक सम्पत्ति जीव नहीं अरन्त होता है और अनन्तलुब्धीकी  
विसंबोचना नहीं होती है इसलिये इनमें उ० प्रकृतिप्राप्ति अपम्य स्थितिका अपम्य अन्तर एक  
समय और एकसु अन्तर परचक संस्कारोंमें भगप्रमाह है । छेप कथन लुगम है ।

१ ६६६ एरुदिपामे मिध्यात्व, सालह कपल और ना नो०प्याकी अरम्य और अरम्य  
स्थितिभिन्नताओंका अन्तर काल नहीं है । तथा सम्पत्तय और सम्पत्तिमप्यात्वकी अपेक्ष  
पञ्चमिष तदर्थ अपवर्तकोंके समान भग है । इसी प्रकार पुषिबीकायिक, बादर पुषिबीकायिक,  
बादर पुषिबीकायिक अपवर्त, सूक्ष्म पुषिबीकायिक, सूक्ष्म पुषिबीकायिक पयाप्त, सूक्ष्म पुषिबी-  
कायिक अपवर्त, बलकायिक, बादर बलकायिक, बादर बलकायिक अपवर्त, सूक्ष्म बलकायिक,  
सूक्ष्म बलकायिक पयाप्त, सूक्ष्म बलकायिक अपवर्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर  
अग्निकायिक अपवर्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पयाप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक  
अपवर्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपवर्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म  
वायुकायिक पयाप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपवर्त, बादर वनस्पातकायिक प्रत्वक छरीर, बादर  
वनस्पातिकायिक प्रत्येक छरीर अपवर्त, वनस्पातिकायिक, निगोद, बादर वनस्पातिकायिक, बादर  
वनस्पातिकायिक पयाप्त बादर वनस्पातिकायिक अपवर्त, सूक्ष्म वनस्पातिकायिक, सूक्ष्म वनस्पाति-  
कायिक पयाप्त, सूक्ष्म वनस्पातिकायिक अपवर्त, बादर निगाह बादर निगोद पयाप्त, बादर निगोद  
अपवर्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगाह पयाप्त, सूक्ष्म निगाह अपवर्त कामणअपयागी और  
अनाहारक जीवोंके सामान्य बाहिदे । किन्तु अन्तिम वा पर्वोंमें इतनी विशेषता है कि इनमें  
सम्पत्तयकी अपम्य स्थितिभिन्नताओंका अन्तर काल सामान्य विवेकोक समान है और  
सम्पत्तय और सम्पत्तिमप्यात्वकी अपम्य स्थितिभिन्नताओंका भग अनुरद्धक समान है ।  
पंथों स्वावरकाय बादर पयाप्त जीवोंमें पञ्चमिष तदर्थ अपवर्तकोंके समान भग है ।

§ ७००. ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० एइंदिय-  
भंगो । वेउन्वियमिस्स० सम्मत्त-सम्पामि० ज० देवोघं । सेस० उक्क० भंगो ।

§ ७०१. आहार०-आहारमिस्स० उक्क० भंगो० । एवमकसा०-जहाक्खाद-  
सजदे त्ति । इत्थि० सम्पामि०-अणंताणु० चउक्क० ओघं । मिच्छत्त-सम्मत्त-

**विशेषार्थ—**पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है तथा अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है यह पहले बतला आये हैं उसी प्रकार एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये, इसलिये एकेन्द्रियोंके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है । मूलमे सामान्य पृथिवी आदि जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिये इनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा । किन्तु कार्मणकाययोग और अनाहारकोंमे कुछ विशेषता है । बात यह है कि इनमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं अतः यहाँ सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति बन जाती है । तदनुसार यहाँ इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है जो सामान्य तिर्यचोंके इस प्रकृतिकी जघन्य स्थितिके अन्तरके समान है । अतः यहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके अन्तरको सामान्य तिर्यचोंके समान कहा । तथा इन दोनों मार्ग-  
णाओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है और यही यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट या अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल है, इसलिये यहाँ इन दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके अन्तरको अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान कहा । पौर्वा  
स्थावरकाय वादर पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान प्राप्त होता है, अतः इनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ७००. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा एकेन्द्रियोंके समान भंग है । वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका अन्तर सामान्य देवोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियों का अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है ।

**विशेषार्थ—**औदारिकमिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना नहीं होती है इसलिये इनके उक्त प्रकृतियोंकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जिसका यहाँ अन्तर नहीं पाया जाता । यही बात एकेन्द्रियोंके है । अतः औदारिक-मिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके भगको एकेन्द्रियोंके समान कहा । सामान्य देवोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है जो वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी सम्भव है अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके भंगको सामान्य देवोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०१. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्टके समान भंग है । इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिये । स्त्रीवेदवालोंमें सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओघके समान है । मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ

वासक०-भवणोक० अ० अ० एगस०, उक्क० वासपुषच । अज० गत्यि अंतर । एवं जनु सयवदान । पुरिस० मिच्छच०-सम्मच०-सम्मामि०-अणतापु०-चसक० मोघ । वासक०-भवणोक० अ० अ० एगस०, उक्क० वास सादिरेय । अज० गत्यि अंतर । भवणद० मिच्छच०-सम्मच०-सम्मामि० अहक०-अहणोक० अ० अ० एगस०, उक्क० वासपुषच । अज० एव पेव, विसेसाभानादो । सेसाणं अह० मोघ । अज० अणु क०-मंगो ।

॥ ७०२ कोच० मोघ । जवरि जवक०-जण्णोक० अ० अ० एगस०, उक्क० वास सादिरेय । अज० गत्यि अंतर । एवं माण-माय० । एवं सोम० । जवरि सोमसंजस० मोघ ।

मोक्षार्थोंकी जपन्य स्थितिबिम्बिवाल्लोक जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व प्रमाण है । तथा अजपन्य स्थितिबिम्बिवाल्लोक अन्तर नहीं है । इसी प्रकार नपुंसक-वेदबालोंकी ज्ञानता चाहिये । पुरुषवेदबालोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्ममिथ्यात्व और अनन्ता मुख्यी नपुंसकी अपेक्षा अन्तर काज ओषके समान है । तथा वास कपाय और नौ मोक्षार्थोंकी जपन्य स्थितिबिम्बिवाल्लोक जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजपन्य स्थितिबिम्बिवाल्लोक अन्तर नहीं है । अपगतवेदबालोंमें मिथ्यात्व सम्यक्त्व सम्ममिथ्यात्व आठ कपाय और आठ मोक्षार्थोंकी जपन्य स्थितिबिम्बिवाल्लोक जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजपन्य स्थितिबिम्बिवाल्लोक अन्तर मा इसी प्रकार ज्ञानता चाहिये क्योंकि इससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । तथा शेष प्रवृत्तियोंकी जपन्य स्थितिबिम्बिवाल्लोक अन्तर ओषके समान है और अजपन्य स्थितिबिम्बिवाल्लोक मंग अनुकूलके समान है ।

विशेषार्थ—इसमेंमोहनीयकी जपना और चारित्र्यमोहनीयकी जपनामें बीवेद और नपुंसकवेदके लक्ष्य जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व बतलाया है, अतः बीवेदी और नपुंसकवेदी बीबोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, वास कपाय और नौ मोक्षार्थोंकी जपन्य स्थितिज जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा । पुरुषवेदमें ज्ञानमेखीकी जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है, इसलिये इसमें वास कपाय और नौ मोक्षार्थोंकी जपन्य स्थितिज जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा । अगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्ममिथ्यात्व और आठ कपायोंकी जपन्य और अजपन्य स्थिति उपक्रमवेदीकी अपेक्षा पाई जाती है । तथा जो बीव बीवेद और नपुंसकवेदके लक्ष्यके साथ जपकप्रणीपर बहुत हैं उनके आठ मोक्षार्थोंकी जपन्य और अजपन्य स्थिति पाई जाती है । आठ मोक्षार्थोंकी अजपन्य स्थिति अगतवरी उपक्रमवेदीबालों बीबोंके भी सम्मव है पर इनकी जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है अतः अपगतवेदमें ज्ञान प्रवृत्तियोंकी जपन्य और अजपन्य स्थितिज जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । शेष कथन सुगम है ।

॥ ७०२ शेषकपायबालोंमें अन्तर ओषके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ कपाय और नौ मोक्षार्थोंकी जपन्य स्थितिबिम्बिवाल्लोक जपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजपन्य स्थितिबिम्बिवाल्लोक बीबोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मान और मायकायबालों बीबोंके ज्ञानता चाहिये । कामकायबालों बीबोंके भी इसी प्रकार



§ ७००. ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु० चउक्क० एइंदिय-  
भंगो । वेउन्वियमिस्स० सम्मत्त-सम्माभि० ज० देवोघं । सेस० उक्क० भंगो ।

§ ७०१. आहार०-आहारमिस्स० उक्क० भंगो० । एवमकसा०-जहाक्खाद-  
सजदे त्ति । इत्थि० सम्माभि०-अणंताणु० चउक्क० ओघं । मिच्छत्त-सम्मत्त-

**विशेषार्थ—**पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है तथा अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है यह पहले बतला आये हैं उसी प्रकार एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये, इसलिये एकेन्द्रियोंके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है । मूलमें सामान्य पृथिवी आदि जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिये इनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा । किन्तु कर्मणकाययोग और अनाहारकोमे कुछ विशेषता है । बात यह है कि इनमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं अतः यहाँ सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति बन जाती है । तदनुसार यहाँ इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है जो सामान्य तिर्यचोंके इस प्रकृतिकी जघन्य स्थितिके अन्तरके समान है । अतः यहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके अन्तरको सामान्य तिर्यचोंके समान कहा । तथा इन दोनों मार्ग-णाओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है और यही यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट या अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल है, इसलिये यहाँ इन दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके अन्तरको अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान कहा । पाँचों स्थावरकाय बादर पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंके समान प्राप्त होता है, अतः इनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके समान कहा ।

§ ७००. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा एकेन्द्रियोंके समान भंग है । वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका अन्तर सामान्य देवोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियों का अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है ।

**विशेषार्थ—**औदारिकमिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना नहीं होती है इसलिये इनके उक्त प्रकृतियोंकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जिसका यहाँ अन्तर नहीं पाया जाता । यही बात एकेन्द्रियोंके हैं । अतः औदारिक-मिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके भंगको एकेन्द्रियोंके समान कहा । सामान्य देवोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है जो वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी सम्भव है अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके भंगको सामान्य देवोंके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०१. आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्टके समान भंग है । इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसयत जीवोंके जानना चाहिये । स्त्रीवेदवालोंमें सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओघके समान है । मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ

१७५ परिहार० मिच्छन्-सम्पन्न०-सम्पामि० ज० ज० एगस०, उक्क०  
वासपुपत्त० । अन्न० णत्थि मंतरं । अर्णत्ताणु० चउक्क० ओघं । सेसपपटि० उक्क०  
मंगो । सुहुम० तेवोसपपट्टी० ज० अन्न० ज० एगसममो, उक्क० वासपुपत्त० ।  
ओभसंजस० अन्नगद० मंगो । संजदासंगद० मिच्छन्-सम्पन्न अर्णत्ताणु० चउक्क० ओघं ।  
सम्पामि० सम्पन्नपंगो । सेसपपटि० उक्क० मंगो । असंजद० तिरिक्खोप । पन्नरि  
मिच्छन्-सम्पन्न० श्रीपमंगो ।

१७६ काउ० तिरिक्खोप । किण्ण०-जील० एषं वेव । णवरि सम्पन्न०  
सम्पामिच्छन्नमो । तेउ०-यम्म० सम्पामिच्छन्नमोय । सेसपपटि० संजदासमदमंगो ।  
अमवसि० अन्वीसपपट्टी० ओराक्खिमिस्समंगो । खइय० एक्कवीसपपट्टी० ओघं ।

है पर उपर के मंथनी में इनका उत्कृष्ट अन्तर वर्णपुष्पक है अतः ओपमें जिनकी जपम्य स्थितिका  
जपकमंथनी में वर्णपुष्पकसे कम अन्तर समय है उनकी जपम्य स्थितिका यहां जपम्य अन्तर  
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्णपुष्पकप्रमाण जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानमें भी इसी प्रकार  
घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

१७७ परिहारविशुद्धिसंयतोमि मिध्यात्व, सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिध्यात्वकी जपम्य स्थिति-  
विमलिकाओंका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्णपुष्पक है । तथा अजपम्य  
स्थितिविमलिकाओंका अन्तर नहीं है । अनन्तलुब्धवीचपुष्पकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है ।  
तथा शेष प्रकृतियोंका मंग उत्कृष्टके समान है । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोमि तईस प्रकृतियोंकी जपम्य  
और अजपम्य स्थितिविमलिकाओंका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्णपुष्पक है ।  
तथा ओभसंजसका मंग अन्नगतवेदकाओंके समान है । संजदासंयतोमि मिध्यात्व, सम्पत्त्व और  
अनन्तलुब्धवीचपुष्पकी स्थितिविमलिकाओंका अन्तर आपके समान है । सम्पत्तिमिध्यात्वका मंग  
सम्पत्त्वके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका मंग उत्कृष्टके समान है । असंयतोमि सामान्य त्रिषों  
के समान मंग जानना चाहिये । किन्तु इतनी बिशेषता है कि इनमें मिध्यात्व और सम्पत्त्वका मंग  
ओपके समान है ।

विशेषार्थ—परिहारविशुद्धिसंयतोमि आधिकसम्पन्नसंयतोमि आधिक जपम्य अन्तर एक  
समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्णपुष्पक है, अतः यहां मिध्यात्व, सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिध्यात्वकी  
जपम्य स्थितिका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्णपुष्पक है । सूक्ष्मसांपरायिकमें  
मिध्यात्व आदि तईस प्रकृतियोंकी सम्भावना जपसममणीकी अपेक्षा है और जपसममणीका जपम्य  
अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्णपुष्पक है, अतः यहां एक प्रकृतियोंकी जपम्य और  
अजपम्य स्थितिका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्णपुष्पक है । संयतासंयतोमि  
सम्पत्तिमिध्यात्वकी वृत्तता नहीं होती, अतः यहां सम्पत्तिमिध्यात्वका मंग सम्पत्त्वके समान है ।  
असंयतके वृत्ततामाहनीयकी क्षणता होती है, अतः यहां मिध्यात्व और सम्पत्त्वका मंग आपक  
समान है ।

१७८ कापोतसेहयाकाओंमें सामान्य त्रिषोंके समान मंग जानना चाहिये । कृष्य और  
नील सेहयाकाओंमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी बिशेषता है कि इनमें सम्पत्त्वका  
मंग सम्पत्तिमिध्यात्वके समान है । पीत और पद्मलयाकाओंमें सम्पत्तिमिध्यात्वका अन्तर ओपके  
समान है तथा शेष प्रकृतियोंका मंग संयतासंयतोमि के समान है । अजपम्योमि दृग्भीष प्रकृतियोंका मंग

§ ७०३. मदि-सुदअण्णा० तिरिक्खोघं । णवरि सम्मत्त-अणंताणु० एइंदिय-भंगो । एव मिच्छादि०-असण्णि त्ति । विहग० सम्माभिच्छत्तमोघं । सेसपयडीण-मुक्क०भंगो । णवरि सम्म० सम्मामि०भंगो ।

§ ७०४. आभिणि०-सुद० ओघं । णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-सम्मादिट्ठि त्ति । ओहिणाणि०-ओहिदंसणी० एवं चेव । णवरि ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । एवं मणपज्ज० ।

जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि लोभसज्जलनको अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ।

**विशेषार्थ**—यद्यपि क्रोध कषायमें सब प्रकृतियोंका कथन ओघके समान कहा है पर ओघमें अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, प्रत्याख्यानावरण चतुष्क, लोभसज्जलन और छद्द नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छद्द महीना बतलाया है जो क्रोधमें किसी भी हालतमें सम्भव नहीं है, क्योंकि क्षपकश्रेणीमें क्रोधका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष पाया जाता है अतः यहा उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा । मान, माया और लोभमें भी यह व्यवस्था बन जाती है । किन्तु क्षपकश्रेणीमें लोभका उत्कृष्ट अन्तर छद्द महीना है अतः लोभमें लोभसज्जलनका अन्तर ओघके समान ही जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०३ मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान अन्तर है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा भंग एकेन्द्रियोंके समान है इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असही जीवोंके जानना चाहिए । विभगज्ञानियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्टके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है ।

**विशेषार्थ**—मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें न तो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होता है और न अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना ही होती है अतः इनमें इन प्रकृतियोंके भगको एकेन्द्रियोंके समान कहा । विभगज्ञानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होती है अतः इसमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान और सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०४. आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानियोंमें ओघके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है । इसी प्रकार संयत, सामायिक-संयत, छेदोपस्थापनासंयत और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें जघन्य स्थितिबिभक्ति वालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानियोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं होती, अतः यहा सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान कहा । मूलमें संयत आदि और जितनी मार्गणाए गिनार्हे हैं उनमें उक्तप्रमाण व्यवस्था बन जाती है इसलिये उनके कथनको आभिनिबोधिक-ज्ञानी आदिके समान कहा । अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें यह व्यवस्था बन तो जाती

येसम्भो न पुत्रिस्तस्यो, सवपारमवर्त्तयिष्य अवद्विदत्तादो । एवं जेद्वय वाप  
अणाहारए सि ।

एवं भावाणुगमा समत्तो ।

✽ सप्पिपासो ।

§ ७०९ सच्चदि सि एत्थ पदज्झाहारो कायज्जी, मण्णहा सुसद्दापगमाणुव  
वपीदो । कः सन्निकर्ष ? सन्निकृप्यन्ते प्रकृतयो यस्मिन् स सन्निकर्षो नामाधिकारः ।  
एदमहिपारसंभारणमुचं ।

✽ मिच्छत्तस्स उक्कस्सियाए हिदीए जो विहसिओ सो सम्मत्त  
सम्मामिच्छत्ताए सिया कम्मंसिओ सिया अकम्मंसिओ ।

§ ७१० कुदो ? अदि अणादियमिच्छाईही सादियमिच्छाईही वा उप्पेन्निद  
सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मिओ मिच्छत्तस्स उक्कस्सियं हिदिं वंपदि तो सम्मत्त  
सम्मामिच्छत्ताणमकम्मंसिओ होदि । अदि पुण सादियमिच्छाईही अणुप्पेन्निदसम्मत्त  
सम्मामिच्छत्तसंतकम्मो उक्कस्सियं हिदि वंपदि तो संतकम्मंसिओ सि दइव्वो ।  
संपहि असंतकम्मियम्मि णरिय सप्पिकासो; भावस्स अभावेण सह संवंचविरोहादो ।

यह अर्थ यहाँ पर प्रधान है ऐसा प्रवृत्त करना चाहिये पहलेका अर्थ नहीं क्योंकि वह उपचारका  
अन्त्य लेकर अवस्थित है । इसी प्रकार अनन्तारक मार्गका एक जानना चाहिये ।

इस प्रकार भाषाणुगम समझ हुआ ।

✽ अब सन्निकर्षको कहते हैं ।

§ ७११ 'सप्पिपासो' इस सूत्रमें 'उक्कस्सि' इस क्रियापदका अध्याहार करना चाहिये  
अन्त्यवा सूत्रके अर्थका ज्ञान नहीं होसकता है ।

शंका—सन्निकर्ष किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसमें प्रकृतियों सन्निकृष्ट की जाती हैं अर्थात् जिसमें प्रकृतियोंका वृक्ष  
स्थिति आदिकी अपेक्षा संयोग बतलाया जाता है वह सन्निकर्ष नामका अधिकार है ।

यह सूत्र अधिकारके सङ्घातनके लिये आया है ।

✽ जो मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्तिनासा है वह कदाचित् सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिध्यात्वके सत्कर्मबाजा होता है और कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके  
सत्कर्मबाजा नहीं होता है ।

§ ७१२ शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—यदि अर्थात् मिध्यादृष्टि बीज वा जिससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वसत्कर्म  
की वृद्धिना कर दी है ऐसा साधि मिध्यादृष्टि बीज मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बाधता है तो वह  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके सत्कर्मबाजा नहीं होता है । और जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मि  
ध्यात्व सत्कर्मकी वृद्धिना नहीं की है ऐसा साधि मिध्यादृष्टि बीज यदि मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके  
बाधता है तो वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके सत्कर्मबाजा होता है ऐसा जानना चाहिये । जिस  
बीजके कर्मकी सत्ता नहीं होती उसके सन्निकर्ष नहीं होता है, क्योंकि मात्तम अभावके

वेदय० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०—अणताणु०चउक्क० आभिणि०भंगो । सेसपयडी० उक्क०भंगो । उवसम० अणंताणु०चउक्क० ज० अज० ज० एगस०, उक्क० चउवीस-महोरत्ताणि सादिरेयाणि । सेसपयडी० उक्क०भंगो । सासाण०-सम्मामि० उक्क०भंगो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ ७०७. भावाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्कस्साणुक्कस्सपदाणं सव्वेसिं को भावो ? ओदइओ; मोहोदएण विणा तेसिमसंभवादो । ण उवसंतकसाएण वियहिचारो, तत्थ सतस्स मोहणीयस्स उदओ णत्थि चेवे त्ति णियमाभावादो । भाविम्मि भूदोवयारेण तत्थ वि ओदइयभावुवलभादो । एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ७०८. जहण्णए पयद । दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वपयडि० ज० अज० को भावो ? ओदइओ । कुदो ? सरीरणामकम्मोदएण कम्म-इयवगणकत्वंधाणं कम्मभावेण परिणामुवलभादो । एसो अत्थो एत्थ पहाणो त्ति

औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है । ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंका अन्तर ओघके समान है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन रात है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें उत्कृष्टके समान भंग है ।

विशेषार्थ—कृष्ण और नीललेश्यामें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता है अतः इनमें सम्यक्त्वके भंगको सम्यग्मिथ्यात्वके समान कहा । पीत और पद्म लेश्यामें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होती है अतः इनमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ७०७ भावानुगम दो प्रकार है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सभी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट पदोंका कौनसा भाव है ? औदायिक भाव है । क्योंकि मोहनीय कर्मके उदयके विना कोई पद नहीं होता है इसलिये सब पदोंमें औदायिक भाव है । यदि कहा जाय कि ऐसा मानने पर उपशान्तकपायके साथ व्यभिचार प्राप्त होता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि वहा पर विद्यमान मोहनीयका उदय नहीं ही होता है ऐसा नियम नहीं है क्योंकि भाविकार्यमें भूत कार्यका उपचार कर देनेसे वहा भी औदायिक भाव पाया जाता है । इसी प्रकार अनाहारके मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ७०८ अब जघन्य भावानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिवाले जीवोंका कौनसा भाव है ? औदायिक भाव है । औदायिक भाव क्यों है ? क्योंकि शरीर नामकर्मके उदयसे कर्मण वर्णास्कन्धोंका कर्मरूपसे परिणमन पाया जाता है ।

येत्तम्भो ण पुम्भिनस्त्यो, उवयारमवत्तीयिअ अवट्ठितादो । एवं नेदम्भ आअ  
मजाहारए सि ।

एवं भावाणुगमां समत्तो ।

❖ सखिण्यासो ।

§ ७०९ उच्छदि सि एत्य पदज्झाहारो कायम्भो, अण्णाहा सुचट्ठावगमाणुअ  
वत्तीदो । कः सन्निकर्यो ? सन्निकृप्यन्ते प्रकृतयो यस्मिन् स सन्निकर्यो नामाधिकारः ।  
एदमदियारसंमास्मसुत्त' ।

❖ मिच्छत्तस्स उक्कस्सियाए द्विदीए जो विहसिम्भो सो सम्मत्त  
सम्माभिच्छत्ताणं सिया कम्मसिम्भो सिया अकम्मसिम्भो ।

§ ७१० कुदो ? अदि अणादियमिच्छाईही सादियमिच्छाईही वा उच्चम्भिल्लद  
सम्मत्त-सम्माभिच्छत्तसंतकम्मिम्भो मिच्छत्तस्स उक्कस्सियं द्विदिं वंचदि तो सम्मत्त  
सम्माभिच्छत्ताणयकम्मसिम्भो होदि । अदि पुण सादियमिच्छाईही अणुब्बेम्भिल्लदसम्मत्त  
सम्माभिच्छत्तसंतकम्मो उक्कस्सियं द्विदिं वंचदि तो संतकम्मसिम्भो सि दहम्भो ।  
संपदि असंतकम्मियम्मि णत्थि सण्णिकासो ; मावस्स अभावेण सह संबंधिरोहादो ।

पर अर्थ यहां पर प्रधान है ऐसा प्रत्यक्ष करना चाहिये, परन्तु अर्थ नहीं क्योंकि वह उपचारका  
आश्रय लेकर अवस्थित है । इसी प्रकार अनाहारक मानीया तक जानना चाहिये ।

इस प्रकार भावाणुगम समस्त हुआ ।

❖ अथ सन्निकर्यको कहते हैं ।

§ ७०९ 'सखिण्यासो' इह सूत्रमें उच्छदि' इस क्रियापदका अभ्याहार करना चाहिये,  
अन्वया सूत्रके अर्थका ज्ञान नहीं होसकता है ।

शंका—सन्निकर्य' किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसमें प्रकृतियों सन्निकृत की जाती हैं अर्थात् जिसमें प्रकृतियोंका क्लृप्त  
स्थिति आदिकी अपेक्षा संयोग वतलाया जाता है वह सन्निकर्य नामका अधिकार है ।

यह सूत्र अधिकारके संग्रहणके लिये आया है ।

❖ जो मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्तिवाला है वह कदाचित् सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिध्यात्वके सत्कर्मवाला होता है और कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके  
सत्कर्मवाला नहीं होता है ।

§ ७१० शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—यदि अनादि मिध्यादृष्टि जीव या जिसमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्याद्वयसत्त्व  
की वृत्तना कर ही है ऐसा प्राणि मिध्यादृष्टि जीव मिध्यात्वकी वृत्तुष्ट स्थितिवा दांपता है तो वह  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके सत्कर्मवाला नहीं होता है । और जिसमें सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
ध्यात्व सत्त्वकी वृत्तना नहीं की है ऐसा प्राणि मिध्यादृष्टि जीव यदि मिध्यात्वकी वृत्तुष्ट स्थितिवा  
दांपता है तो वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके सत्कर्मवाला होता है ऐसा जानना चाहिये । जिस  
जीवके कर्मकी सत्ता नहीं होती वसते सन्निकर्य नहीं होगा है, क्योंकि मावस्स अभावके

तत्थ संतकम्मियस्स सण्णियासपरूवणद्वमुत्तरमुत्तं भणदि--

❀ जदि कम्मंसिओ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७११ कुदो ? मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदीए वद्धाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण-  
मुक्कस्सद्विदीए वेदयसम्मादिद्विपढमसमए चेव समुप्पज्जमाणाए उप्पत्तिविरोहादो । ण  
च पढमसमए वेदगसम्माइद्विपडिवद्धं कज्जं मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिसतकम्मियमिच्छा-  
इद्विपडिवद्धं होदि; कज्ज-कारणणियमाभावप्पसगादो । तदो णियमा अणुक्कस्सा त्ति  
सद्देयन्वं ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एगा द्विदि सि ।

§ ७१२ एदस्स सुत्तरस अत्थो वुच्चदे । तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिवंधकाले  
सम्मत्तद्विदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण समयूणा दुसमयूणा तिसमयूणा वा ण होदि; सम्मत्तु-  
क्कस्सद्विदिधारयवेदगसम्मादिद्विविदियसमए तदियसमए वा मिच्छत्तकम्मस्स वधा-  
भावादो । ण च मिच्छत्तपच्चएण वज्झमाणाणं पयदीणं तेण विणा बंधो अत्थि; अतक्क-  
ज्जत्तप्पसंगादो । तम्हा मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिवंधकाले सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तद्विदीए  
सगसगुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणियाए होदव्वं । केत्तिएणूणा ? समयूण-

साथ सम्बन्धका विरोध है, अतः सत्कर्मवालोंके सन्निकर्षका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र  
कहते हैं

❀ यदि वह जीव सत्कर्मवाला होता है तो नियमसे उसके इन दोनोंकी  
अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ ७११ क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रथम  
समयमें ही होती है, अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय उसकी उत्पत्ति माननेमें विरोध  
आता है । और वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयसे सम्बन्ध रखनेवाला कार्य मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टिके साथ सम्बद्ध नहीं होसकता, अन्यथा कार्यकारण नियमके अभावका  
प्रसंग प्राप्त होता है । इसलिये मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवालेके सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर दो समय-  
वाली एक स्थिति पर्यन्त होती है ।

§ ७१२ अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके  
बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी देखते हुए एक समय कम, दो समय  
कम या तीन समय कम नहीं होती है, क्योंकि सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके धारक वेदकसम्यग्दृष्टिके  
दूसरे या तीसरे समयमें मिथ्यात्व कर्मका बन्ध नहीं होता है । यदि कहा जाय कि मिथ्यात्वके  
निमित्तसे बधनेवाली प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके बिना भी बन्ध होता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि  
ऐसा मानने पर वह मिथ्यात्वका कार्य नहीं होगा । अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी देखते हुए अन्तर्मुहूर्त  
कम अवश्य होनी चाहिये ।

वेदगसम्पत्त नहण्णकालेण मिच्छत्त गंतुं पुक्कस्ससकिल्लेसावूरणवहण्णकालेण च । एककेण सम्पत्तसत्तकम्मिपण मिच्छाद्विदिणा उक्कस्ससत्तकिल्लेसमावूरिय पदमिच्छत्त पुक्कस्सद्विदिणा सम्पन्नहण्णपदिग्गदमिच्छिय वेदगसम्पत्तं येत्तूण कयसम्पत्तुक्कस्स द्विदिणा अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तसम्पत्तुक्कस्सद्विदिं कमेण भवद्विदि गळणाए नहण्णवेदगसम्पत्तद्विमेत्तेण ऊणियं करिय मिच्छत्तं गंतूण सम्पन्नहण्ण कालेणावूरिदुक्कस्ससत्तकिल्लेसेण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवदाए पत्तियमेत्तेमेत्त कालेयूणत्तु व र्त्तमात्तो ।

५७१३ पुनो मिच्छत्तस्स समययूक्कस्सद्विदिं वंधिय अवद्विदपदिग्गकालेण भवद्विदिगळणाए ऊण करिय वेदगसम्पत्तं येत्तूण सम्पत्तुक्कस्सद्विदि समययूक्कस्सप्राप्य अवद्विदसम्पत्तमिच्छत्तदाओ कमेण गमिय मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवदाए सम्पत्तद्विदी सत्तुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण समयारियअंतोमुहुत्तूण ऊणा होदि । एवं दुत्तमयूणमिच्छत्तुक्कस्सद्विदिं वंधिय अवद्विदपदिग्गसम्पत्तमिच्छत्तदाओ नहण्णियाओ कमेण गमिय मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पवदाए सम्पत्तद्विदीए सगुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण दुत्तमयारिय

शुद्धा—कमअ प्रमाय कित्ता है ?

समाधान—एक समय कम वेदक सम्पत्तकाल नहण्ण काल और मिच्छात्वको प्राप्त होकर उत्कृष्ट संकलनको पूर्ण करनेवाला ज्ञान्य काल ये दोनों काल वहां कम का प्रमाण है । जिसने उत्कृष्ट संकलनको करके मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको पाया है ऐसे किसी एक सम्पत्त सत्त्वमेवासे मिच्छाद्वि दीबने मिच्छात्वसे ज्युत होनेमें ज्ञानमेवासे सबसे ज्ञपत्य काल तक मिच्छात्वमें रह कर वेदक सम्पत्तको प्राप्त किया और वहां सम्पत्तकी उत्कृष्ट स्थितिको किया । अनन्तर वह बीच सम्पत्तकी अन्तर्मुखी कम सत्तर कोडाकोड़ी सागध्रमाय उत्कृष्ट स्थितिको कमसे कम स्थितिगतनाके द्वारा वेदक सम्पत्तके ज्ञपत्य काल प्रमाण कम करके मिच्छात्वमें गया और वहां उसने सबसे ज्ञपत्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संकलनको पूरा करके मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको पाया इस प्रकार वेदक सम्पत्तके पहले समयसे लेकर यहां तकका काल ही यहां कम का प्रमाण जानना चाहिये । अर्थात् इतम कालको सम्पत्तकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे बढ़ा देने पर जो स्थिति लेव रहे अधिकसे अधिक कठनी अनुत्कृष्ट स्थिति मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय समव है इससे और अधिक नहीं ।

५७१३ पुनो मिच्छात्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और अवस्थित प्रतिमन कालको अवास्थितिगतनाके द्वारा कम करके अनन्तर वेदक सम्पत्तको प्रवृत्त करके और वेदक सम्पत्तके पहले समयमें सम्पत्तकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको उत्पन्न करके तथा सम्पत्त और मिच्छात्वके अवस्थित कालोंको कमसे व्यतीत करके जो मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है उसके मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्पत्तकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुखी काल प्रमाण कम जाती है । इसी प्रकार मिच्छात्व की जो समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर तदनन्तर प्रतिमनकाल, सम्पत्तकाल और मिच्छात्वकाल इन तीनों अवस्थित ज्ञपत्य कालोंका कमसे बिता कर जो मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है उसके मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्पत्तकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट



तत्थ संतकम्मियस्स सण्णियामपरुवणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि--

❀ जदि कम्मंसिओ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७११ कुदो ? मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदीए वद्धाए सम्मत-सम्माभिच्छत्ताण-  
मुक्कस्सट्ठिदीए वेदयसम्मादिट्ठिपढमसमए चेव समुप्पज्जमाणाए उप्पत्तिविरोहादो । ण  
च पढमसमए वेदगसम्माइट्ठिपडिवद्धं कज्ज मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिमतकम्मियमिच्छा-  
इट्ठिपडिवद्धं होदि; कज्ज-कारणणियमाभावप्पसगादो । तदो णियमा अणुक्कस्सा ति  
सद्देहेयव्वं ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तणुमादिं कादूण जाव एगा ट्ठिदि सि ।

§ ७१२ एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिवंधकाले  
सम्मत्तट्ठिदी सणुक्कस्सं पेक्खिदूण समयूणा दुसमयूणा तिसमयूणा वा ण होदि; सम्मतु-  
क्कस्सट्ठिदिधारयवेदगसम्मादिट्ठिविदियसमए तदियसमए वा मिच्छत्तकम्मस्स वधा-  
भावादो । ण च मिच्छत्तपच्चएण वज्झमाणाणं पयडीणं तेण विणा बंधो अत्थि; अतक्-  
ज्जत्तप्पसंगादो । तम्हा मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिवंधकाले सम्मत-सम्माभिच्छत्तट्ठिदीए  
सगसणुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तणुणियाए होद्वं । केत्तिएणूणा ? समयूण-

साथ सम्बन्धका विरोध है, अतः सत्कर्मवालोंके सन्निकर्षका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र  
कहते हैं

❀ यदि वह जीव सत्कर्मवाला होता है तो नियमसे उसके इन दोनोंकी  
अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ ७११, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रथम  
समयमें ही होती है, अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय उसकी उत्पत्ति माननेमें विरोध  
आता है । और वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयसे सम्बन्ध रखनेवाला कार्य मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टिके साथ सम्यग्द्व नहीं होसकता, अन्यथा कार्यकारण नियमके अभावका  
प्रसंग प्राप्त होता है । इसलिये मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवालेके सम्यक्त्व और सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर दो समय-  
वाली एक स्थिति पर्यन्त होती है ।

§ ७१२ अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके  
बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम, दो समय  
कम या तीन समय कम नहीं होती है, क्योंकि सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके धारक वेदकसम्यग्दृष्टिके  
दूसरे या तीसरे समयमें मिथ्यात्व कर्मका बन्ध नहीं होता है । यदि कहा जाय कि मिथ्यात्वके  
निमित्तसे बधनेवाली प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके बिना भी बन्ध होता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि  
ऐसा मानने पर वह मिथ्यात्वका कार्य नहीं होगा । अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त  
कम अवश्य होनी चाहिये ।

उचरस्सहिदिमि ऊणाणि करिय भंभिदूण ओदारेदुब्धं । संपहि मिच्छत्तमस्सिदूण  
हेहा ओदारेदु ण मक्खे सभ्विसुद्धेण मिच्छाईहिणा धाविदसअहण्णहिदिमत्तं  
तिहि भवहिदमहण्णदाहि यूणं सम्मत्तहिदी पत्ता पि ।

॥ ७१६ ॥ संपहि सम्मत्तसंतकम्मियमिच्छाईहिमीये येत्तु शुब्बन्त्तणाए मिच्छत्तु  
कस्सहिदीए सह सम्मत्तहेदिमहिदीणं सण्णियासो पुब्बदे । तं जहा—उत्तय समया  
हियउब्बेत्तणकडयमेत्तमीये अस्सिदूण सण्णियासपक्खणं कस्सामो । एत्तय ताव समयाहिय  
कडयमेत्तमीयाणं सम्मत्तहिदीए दीहत्तं पुब्बदे—पडममीवो मिच्छशघुमहिदीवो समुत्तण्ण  
सम्मत्तपुवहिदीए उवगि समयूणुकीरणदाहियसयल्लेगुब्बेत्तणकडयधारओ विदियमीवो सम  
युशुकीरणदाहियसमयूणुब्बेत्तणकडयण अहियसम्मत्तपुवहिदिधारओ उवियमीवो समयूणु  
कीरणदाहियदूममऊणुब्बेत्तणकडयणमहियसम्मत्तपुवहिदिधारओ उवत्तमीवो समयूणु  
कीरणदाहियतिसमयूणुब्बेत्तणकडयणमहियसम्मत्तपुवहिदिधारओ पंचममीवो समयूणु  
कीरणदाहियचदुसमयूणुब्बेत्तणकडयणमहियसम्मत्तपुवहिदिधारओ एवं गेदुब्धं नाव समया  
हियउब्बेत्तणकडयमेत्तमीया पि । तत्तय एदेसु जीयेसु ओ पडममीवो तेणुब्बेत्तणएगकडय

येप धे उतना कम मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका लभ्य कएके सम्मत्त्वकी स्थितिओ पटाठ जाना  
चाहिबे । इसके आगे मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा सम्मत्त्वकी स्थितिकी ज्ञानात्मीयत्वकी  
समारसे और नीचे उतारना शक्य नहीं है क्योंकि पाठ करने पर जिसके ( संक्षी पंचेन्द्रिय पर्यायके  
बोम्ब ) मिच्छात्वकी सबसे ब्रह्मस्थ स्थितिका सत्य है ऐसे सर्वविद्युत् मिच्छात्वहिने मिच्छात्वके ब्रह्म  
स्थितिसत्यकी अपेक्षा तीन अवस्थित ब्रह्मस्थ कलासे भूत सम्मत्त्वकी स्थिति प्राप्त कर ली है ।

॥ ७१६ ॥ अब सम्मत्त्व सत्कर्मावली मिच्छात्ति जीवका आशय लेकर उद्देष्टनामें मिच्छात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिके साथ सम्मत्त्वकी प्रवृत्तिसे नीचेकी स्थितियोंका समिकर्ष करते हैं । जो इस  
प्रकार है—इस कथनमें पहले एक समय अधिक उद्देष्टनाकाण्डकप्रमाण जीवोंका आशय लेकर  
समिकर्षका प्ररूपण करेंगे । अतः वहाँ पर पहले एक समय अधिक आत्माकाण्डकप्रमाण जीवकी  
सम्मत्त्वकी स्थितिका हीर्षत्व करते हैं—मिच्छात्वकी प्रवृत्तिसे जो सम्मत्त्वका प्रवृत्ति  
व्यक्त होती है उसके ऊपर एक समय कम उत्कीरणाकाण्डसे अधिक पूरे उद्देष्टनाकाण्डकका  
धारक प्रथम शोध है । एक समय कम उत्कीरणाकाण्डको एक समय कम उद्देष्टनाकाण्डकमें  
मिला देने पर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्मत्त्वकी प्रवृत्तिधारक धारक बूझ  
जीव है । एक समय कम उत्कीरणाकाण्डको दो समय कम उद्देष्टनाकाण्डकमें मिला देनेपर जो  
प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्मत्त्वकी प्रवृत्तिधारक तीसरा जीव है । एक समय  
कम उत्कीरणाकाण्डको तीन समय कम उद्देष्टनाकाण्डकमें मिला देनेपर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे  
अधिक सम्मत्त्वकी प्रवृत्तिधारक चोथा जीव है । एक समय कम उत्कीरणाकाण्डको चार  
समय कम उद्देष्टनाकाण्डकमें मिला देने पर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्मत्त्वकी प्रवृत्ति  
स्थितिका धारक पांचवां जीव है । इस प्रकार समयाधिक उद्देष्टनाकाण्डकप्रमाण जीव प्राप्त होने  
तक इसीप्रकार कथन करते जाना चाहिये । अब इन जीवोंमें जो पहला जीव है उसके द्वारा एक  
उद्देष्टनाकाण्डकके पाठ करने पर सम्मत्त्वकी प्रवृत्तिसे एक समय कम सम्मत्त्वकी स्थिति

अतोमुहुत्तूणा होदि । एवं ति-चदुसमयादि जावावलियमुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छरादिमूणं करिय णेदन्व ।

§ ७१४. संपहि आवाधाकंडएणुणसम्मत्तट्ठिदीए इच्छिज्जमाणाए सव्वजहण्ण-सम्मत्तद्धाए सव्वजहण्णमिच्छत्तद्धाए च ऊणेण आवाहाकंडएण ऊणियं मिच्छत्तट्ठिदिं बंधाविय पुणो पडिहग्गो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिमतोमहुत्तूणसत्तरिमेत्तां पेक्खिदूण वट्ठमाणासम्मत्तट्ठिदी एगावाहा-कंडएणुणा होदि ।

§ ७१५. संपहि आवाहाकंडयस्स हेट्ठा इच्छिज्जमाणे दोहि अवट्ठिदअंतोमुहुत्तोहि ऊणावाहाकंडएण समयाहिण ऊणियं मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय अवट्ठिदजहण्ण-द्धाओ तिण्णि वि अधट्ठिदिगलणाए कमेण गालिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए सम्मत्तट्ठिदी सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण समयाहियआवाहाकंडएण ऊणा होदि । एव-मेदमत्थपदं चित्तेणावहारिय ओदारेदन्वं जाव णिव्वियप्पा अतोकोडाकोडिमेत्ता सम्मत्तट्ठिदी जादा त्ति । णवरि जत्तिय-जत्तियआवाहाकंडएहि ऊणं सम्मत्तट्ठिदि-मिच्छदि तत्तिय-तत्तियमेत्तावाहाकंडयाणि दोहि अवट्ठिदजहण्णाद्धाहि परिहीणाणि

स्थितिको देखते हुए दो समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण कम होती है । इसी प्रकार तीन और चार समयसे लेकर एक आवली, एक मुहूर्त, एक दिन, एक पक्ष, एक महीना, एक ऋतु, एक अयन, एक वर्ष आदिको कम करके सम्यक्त्व और सम्यमिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति ले आना चाहिये ।

§ ७१४. अब मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी एक आवाधा काण्डकसे कम उत्कृष्ट स्थिति इच्छित है, अतः सबसे कम सम्यक्त्वके कालको और सबसे कम मिथ्यात्वके कालको आवाधाकाण्डकमेंसे कम करके जो शेष रहे उतने आवाधाकाण्डकसे कम मिथ्यात्वकी स्थितिको बधा कर पुनः मिथ्यात्वसे निवृत्त होकर और सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अनन्तर जो मिथ्यात्वमें जा कर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाधता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बंधके समय सम्यक्त्वकी अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोडाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए वर्तमान सम्यक्त्वकी स्थिति एक आवाधाकाण्डक कम होती है ।

§ ७१५. अब मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय एक आवाधाकाण्डकसे नीचे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति इच्छित है, अतः समयाधिक आवाधाकाण्डकमेंसे दो अवस्थित अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालको कम करने पर समयाधिक आवाधाकाण्डकका जितना काल शेष रहे उतना कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बधा कर तदनन्तर तीनों ही अवस्थित जघन्य कालोंको अधःस्थितिगलनके द्वारा क्रमसे गला कर जा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाधता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक एक आवाधाकाण्डक काल प्रमाण कम होती है । इस प्रकार इस अर्थपदको अपने चित्तमें धारण करके सम्यक्त्वकी स्थितिको तब तक कम करते जाना चाहिये जब तक निर्विकल्प अन्तः कोडाकोड़ी प्रमाण सम्यक्त्वकी स्थिति प्राप्त हो । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय जहां जितने जितने आवाधाकाण्डकोंसे कम सम्यक्त्वकी स्थिति इच्छित हो वहां दो अवस्थित जघन्य कालोंको उतने उतने आवाधाकाण्डकोंमेंसे कम करने पर जो काल

अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । इत्थमयुण्णदयावस्मिमेत्तस्मिन्निद्विधारण मन्धसु-  
क्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । एवं गंतूण इत्थमपकात्तेण  
सम्मत्ताणिसेयद्विधारणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए चरिमो सण्णियासवियप्पो  
होदि । एदस्स सुत्तस्स एसा संदिही ।

|       |                                   |
|-------|-----------------------------------|
| ० ० ० | ०२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००     |
| ० ० ० | ००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००    |
| ० ० ० | ०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००   |
| ० ० ० | ००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००  |
| ० ० ० | ०००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२००० |

⊗ एवरि चरिमुब्बेस्सणकंडयचरिमफालीए ऊया ।

§ ७१= ब्रह्मा सेसुब्बेस्सणकंडयसु जाणाभीषं अस्सिदूण गिरंतरहाणाणि  
सुद्धाणि तथा चरिमुब्बेस्सणकंडयमि गिरंतरहाणाणि किण्ण सक्कमंति ? ज, चरिम  
अहय्मुब्बेस्सणकंडयादो कम्मि वि जीये समयूणादिकमेण्णचरिमुब्बेस्सणकंडयासुवर्त्तमादा ।  
उब्बेस्सणकण्डयफालीओ सण्णनीयेसु सरिसाओ किण्ण होति ? ख, तासिं सरिसत्ते संते  
सुवद्विदीए हेदा सांतरहाणुप्पत्तिप्पसंगादो । ज च एव; चरिमकंडयचरिमफालिं मोचूण  
अण्णत्त गिरंतरक्रमेण सण्णियासपक्कयसुत्तेणेत्तेण सह विरोहादो । एवं पढमपक्कया  
समत्ता ।

विकल्प प्राप्त होता है । तथा सम्यक्त्वकी दो समय कम कर्त्तव्यलिप्रमाण स्थितिको धारण करने-  
वाले बीजके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके कल्प करने पर एक अल्प सन्निकर्षविकल्प प्राप्त  
होता है । इसी प्रकार आगे जाकर सम्यक्त्वके एक निवेककी दो समय कालप्रमाण स्थितिका  
धारण करनेवाले बीजके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके कल्प करने पर अश्विप्त सन्निकल्प-  
विकल्प प्राप्त होता है । इस सूत्रकी यह संतति है । ( संतति मूलमें देखिये । )

किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सन्निकर्षविकल्प अन्तिम उद्देशनाकाण्डककी  
अन्तिम फालिसे रहित हैं ।

§ ७१= शृङ्गा—त्रिस प्रकार सेव चलेलना काण्डकमें मात्रा बीजोंकी अपेक्षा सन्निकर्षके निरन्तर  
स्वान्त प्राप्त होते हैं उसी प्रकार अन्तिम चलेलनाकाण्डकमें निरन्तर स्वान्त कयी नहीं प्राप्त होत हैं ।

समाधान—नहीं, क्योंकि कि किसी भी बीजके अन्तिम त्रयस्य चलेलनाकाण्डकसे एक समय  
कम आदि कमसे मूल अल्प अन्तिम चलेलना काण्डक नहीं उपलब्ध होता है ।

शृङ्गा—चलेलना काण्डककी फालिका सब बीजोंमें समान क्यों नहीं होती है ?  
समाधान—नहीं क्योंकि यदि इनको समान माना जाता है तो भ्रष्टस्थितिके नीचे साम्तर  
स्वान्तों की अपेक्षा प्रसंग प्राप्त होता है । परन्तु ऐसा है नहीं । क्योंकि ऐसा मानने पर अन्तिम  
काण्डककी अन्तिम फालिको छोड़ कर अल्प सब स्वान्तोंमें निरन्तर कमसे सन्निकर्ष कल्प करने-  
वाले इसी सूत्रके साथ विरोध आता है । इस प्रकार प्रथम प्ररूपणा समाप्त हुई ।

पादिदे सम्मत्तधुवट्टिदीदो समयूणा सम्मत्तट्टिदी होदि । ताधे चेव मिच्छत्तुकस्सट्टिदीए पवद्धाए अवरो सणियासवियप्पो होदि । पुणो तदणंतरविदियजीवेण उव्वेल्लणकंडए पादिदे सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो दुसमयूणा होदि । ताधे तेण मिच्छत्तुकस्सट्टिदीए पवद्धाए अण्णो सणियासवियप्पो होदि । पुणो तदियजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो तिसमयूणा । तत्थ तेण मिच्छत्तुकस्सट्टिदीए पवद्धाए अण्णो सणियासवियप्पो होदि । पुणो चउत्थजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो चदुसमयूणा । ताधे तेण मिच्छत्तुकस्सट्टिदीए पवद्धाए अण्णो सणियासवियप्पो होदि । पंचमजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे तत्थ सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो पंचहि समएहि ऊणा । एदेण कमेण चरिमजीवेणुव्वेल्लकंडए खंडिदे तत्थ सेससम्मत्तट्टिदी सम्मत्तधुवट्टिदीदो समयाहियउव्वेल्लणकंडएणूणा । ताधे तेण मिच्छत्तुकस्सट्टिदीए पवद्धाए अण्णो सणियासवियप्पो लब्भदि । एवं पढमवारपरूवणा गदा ।

§ ७१७. एदं परूवणमवहारिय विदिय-तदिय-चउत्थादि जाव पलिदोवमस्स असंखे० भागमेत्तवारेसु उव्वेल्लणकंडए पादिय मिच्छत्तुकस्सट्टिदि बंधावि यसणियासवियप्पा उप्पाएदव्वा । तत्थ चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए पादिदाए सम्मत्तट्टिदी सेसा समयूणुदयावलियमेत्ता होदि । ताधे मिच्छत्तुकस्सट्टिदीए पवद्धाए

प्राप्त होती है । और उसी समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष-विकल्प प्राप्त होता है । पुनः तदनन्तर दूसरे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके घात करने पर सम्यक्त्व की शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे दो समय कम होती है । तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है । पुनः तीसरे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुव स्थितिसे तीन समय कम होती है । तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त होता है । पुनः चौथे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे चार समय कम होती है । तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त होता है । पुनः पाचवें जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे पाच समय कम होती है । इसी क्रमसे अन्तिम जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर वहा सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे समयाधिक उद्वेलनाकाण्डकप्रमाण कम होती है । तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है । इस प्रकार प्रथमवार प्ररूणा समाप्त हुई ।

§ ७१७. इस प्रकार इस प्ररूपणाको समप्त कर आगे दूसरी, तीसरी और चौथी बारसे लेकर पत्योपमके असख्यातवें भागवार उद्वेलनाकाण्डकोंका घात कराके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सन्निकर्षविकल्प उत्पन्न कर लेने चाहिये । उसमें भी अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके घात करनेपर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति एक समय कम उदयावलिप्रमाण प्राप्त होती है । तथा उसी समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष-

अण्णो सण्णियासवियण्णो होदि । दुसमयुणुदयावसियमेचसम्मचहिदिधारण मिय्चु-  
क्कस्सहिदीए पपदाए अण्णो सण्णियासवियण्णो होदि । एवं गंतुए दुसमयफालेग  
सम्मचणिसेवहिदिधारणमिय्चुक्कस्सहिदीए पपदाए चरिमा सण्णियासवियण्णो  
होदि । एदस्स सुचस्स एसा संदिही ।

|       |                                   |
|-------|-----------------------------------|
| ० ० ० | ०२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००     |
| ० ० ० | ००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००    |
| ० ० ० | ०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००   |
| ० ० ० | ००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००  |
| ० ० ० | ०००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२००० |

❀ पावरि चरिमुब्बेस्सणकडयचरिमफालीए कया ।

१७१८ ब्रह्म सेसुब्बेस्सणकडयसु णाणाभीयं अस्सिदूण गिरंतरद्वाणाणि  
सद्दाणि तथा चरिमुब्बेस्सणकडयमि गिरंतरद्वाणाणि किण्ण सम्मति १ ण, चरिम  
जहण्णुब्बेस्सणकडयादो फमि विभीये समयूणादिकमेण्णुचरिमुब्बेस्सणकडयाशुवर्लमादो ।  
उब्बेस्सणकडयफालीमो सम्मभीवेसु सरिसामो किण्ण होति १ ए, तासि सरिसचे संत  
धुवहिदीए ब्रह्म सांतरद्वाणुप्पचिप्पसंगादो । ण च एव, चरिमकडयचरिमफालिं माचण्ण  
अण्णस्य गिरंतरक्रमेण सण्णियासपसवयसुणैणेण सह विरोहादो । एवं पडमपक्वणा  
समचा ।

विकल्प प्राप्त होता है । तथा सम्यक्त्वकी दो समय कम कथावक्तिप्रमाण स्थितिके धारण करने-  
वाले जीवके द्वारा मिथ्यात्वकी वस्तु स्थितिके बन्ध करने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त  
होता है । इसी प्रकार आगे जाकर सम्यक्त्वके एक निवेदकी दो समय कमप्रमाण स्थितिका  
धारण करनेवाले जीवके द्वारा मिथ्यात्वकी वस्तु स्थितिके बन्ध करने पर अन्तिम सन्निकर्ष-  
विकल्प प्राप्त होता है । इस सूत्रकी यह संदृष्टि है । ( संदृष्टि मूलमें हैमिय । )

किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सन्निकर्षविकल्प अन्तिम उद्देशनाकाण्डकी  
अन्तिम फालिसे रहित हैं ।

१७१९ श्रुति—इस प्रकार से पञ्चतना काण्डकेमें माता जीवोंकी अपेक्षा सन्निकर्षके निरन्तर  
स्थान प्राप्त होते हैं उसी प्रकार अन्तिम पञ्चतनाकाण्डकेमें निरन्तर स्थान कहीं नहीं प्राप्त होता है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि किमी भी जीवके अन्तिम प्रपञ्च पञ्चतनाकाण्डके एक समय  
कम भावि क्रमसे मूल अन्य अन्तिम पञ्चतना काण्डके नहीं उपलब्ध होता है ।

श्रुति—पञ्चतना काण्डकी फालियां सब जीवोंमें समान क्यों नहीं होती हैं ।

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि उनका समान माना जाता है तो भ्रष्टस्थितिके नीचे सामान्य  
स्थानों की वस्तुवैधर्म्य प्रमाण प्राप्त होता है । परन्तु ऐसा है नहीं । क्योंकि ऐसा मानने पर अन्तिम  
काण्डकी अन्तिम फालिको दाह कर अन्य सब स्थानोंमें निरन्तर क्रमसे सन्निकर्षका बन्धन करने-  
वाले इसी सूत्रके साथ विरोध आता है । इस प्रकार प्रथम प्रत्युपपत्ति समाप्त हुई ।

**विशेषार्थ—**सन्निकर्ष दो या दो से अधिक वस्तुओंके सम्बन्धको कहते हैं। प्रकृतमें मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितियोंका प्रकरण है, जिनके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चार भेद हैं। तदनुसार यहाँ मोहनीयकी किस प्रकृतिकी कौन-सी स्थितिके रहते हुए उससे अन्य किस प्रकृतिके कितने स्थिति विकल्प सम्भव हैं इसका विचार किया गया है। उसमें भी पहले मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके कितने स्थिति विकल्प किस प्रकार प्राप्त होते हैं यह बतलाया है। यद्यपि यह सम्भव है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता न हो, क्योंकि जो अनादि मिथ्या दृष्टि है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हो सकता है पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की सत्ता नहीं पाई जाती। इसी प्रकार जिसने सम्यक्त्वसे च्युत होनेके बाद सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी है उसके भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके होने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नहीं पाई जाती। पर यहाँ सन्निकर्षका प्रकरण है इसलिये ऐसे जीवका ही ग्रहण करना चाहिये जिसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता हो। अब देखना यह है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वके कितने स्थिति विकल्प सम्भव हैं। बात यह है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अपने बन्धके समय मिथ्यादृष्टिके होती है और सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदक-सम्यग्दृष्टिके पहले समयमें प्राप्त होती है जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि जिस मिथ्यादृष्टि जीवने वेदकसम्यक्त्वके योग्य कालमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है वह यदि अतिलघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त हो जाय तो उसके पहले समयमें मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थिति सम्यक्त्व प्रकृतिरूपसे सक्रमित हो जाती है जो सम्यक्त्वप्रकृतिकी अपेक्षा उसकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। पर इस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं रहती, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिमें अन्तर्मुहूर्त कम हो गया है। और हमें सर्वप्रथम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी अधिकसे अधिक कौनसा स्थिति विकल्प सम्भव है यह लाना है, अतः पूर्वोक्त सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवको अतिलघु अन्तर्मुहूर्त काल तक वेदकसम्यक्त्वमें रख कर मिथ्यात्वमें ले जाय और वहाँ अतिलघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट सकलेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे। इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती है किन्तु अनुत्कृष्ट स्थिति होती है जो अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा नियमसे पूर्वोक्त दो अन्तर्मुहूर्त कम है। इससे सिद्ध हुआ कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थिति होती है। फिर भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका केवल यही विकल्प सम्भव नहीं है किन्तु इसके नीचे सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिके दो समयवाली अनुत्कृष्ट स्थिति तक जितने भी विकल्प हो सकते हैं वे सब सम्भव हैं किन्तु कुछ अपवाद हैं जिसका उल्लेख हम यथास्थान करेंगे। इन सब स्थिति विकल्पोंको लानेके लिये आगे कही जानेवाली चार बातें ध्यानमें रखनी चाहिये। (१) मिथ्यात्वका स्थितिवन्ध (२) प्रतिभग्नकाल अर्थात् उत्कृष्ट सकलेशसे निवृत्त होकर सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिको प्राप्त होनेका काल (३) वेदकसम्यक्त्वका काल और (४) मिथ्यात्वमें जाकर उत्कृष्ट सकलेशको प्राप्त होनेका काल। अब पहले मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम, दो समय कम आदि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे अनन्तर नम्बर २ के प्रतिभग्नकालके भीतर उसे वेदकसम्यक्त्वके योग्य विशुद्धि प्राप्त करावे। इसके बाद नम्बर ३ के वेदकसम्यक्त्वके कालके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्त कम पूर्ववत् स्थितिका सम्यक्त्वमें सक्रमण करावे। परन्तु वेदक सम्यक्त्वमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक उस जीवको रखकर मिथ्यात्वमें

लेजाय और वहाँ नम्बर चारके काष्ठ द्वारा उत्कृष्ट संस्केषको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करवे और इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ सम्यक्त्वकी उत्तरोत्तर एक एक समय कम स्थितिका सन्निकर्ष प्राप्त करता जाय । वहाँ नम्बर २, ३ और ४ के काष्ठ तो अवस्थित रहते हैं वन्हीं पटा-बन्धी नहीं होती किन्तु नम्बर एकमें जो मिथ्यात्वकी स्थिति बन्धी है उसमें एक एक समय पटता जाता है और इसीप्रिये सन्निकर्षके समय सम्यक्त्वकी स्थितिमें भी एक एक समय पटता जाता है । इस प्रकार यह कम सम्यक्त्वकी नम्बर २, ३ और ४ के काष्ठसे कम अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक बजता रहता है क्योंकि संघी पंचेन्द्रिय पर्याप्तके मिथ्यात्वकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे कम स्थितिका बन्ध नहीं होता । अब सम्मर्भसे जो नम्बर २, ३ और ४ के काष्ठको कम किया है सो सन्निकर्षके समय तक इतना काष्ठ और कम हो जाता है अर्थात् उस समय सम्यक्त्वकी स्थिति इन तीन काष्ठोंसे कम अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण रहती है । मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थितिके इतने सन्निकर्ष विकल्प तो पूर्वोक्त क्रमसे प्राप्त होत हैं किन्तु आगेके सन्निकर्ष विकल्प छोड़नाकी अपेक्षासे प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि संघी पंचेन्द्रिय पर्याप्त बीजके मिथ्यात्वका स्थितिबन्ध अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरसे कम न होनेके कारण संक्रमणकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी पूर्वोक्त स्थितिसे कम स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है । फिर भी सम्यक्त्वके आगेके स्थितिबिकल्प माना बीजोंकी अपेक्षासे प्राप्त करना चाहिये क्योंकि एक-एक स्थितिकान्तरकाल उत्कीरणाकारक यद्यपि अन्तमुद्धृतप्रमाण होता है फिर भी स्थितिकान्तरकाल पाठ अन्तिम फलिके पतनके समब ही होता है इससे पहलेके उत्कीरणाकारक के समर्थमें तो स्थितिकान्तरकाल के पूरे निकोका पतन न होकर बल्के नियमित संख्या-वाले परमाणुओंका ही पतन होता है अतः एक बीजकी अपेक्षा छोड़नामें सम्यक्त्वकी स्थितिके सब सन्निकर्ष विकल्प नहीं प्राप्त हो सकते हैं और इसीप्रिये बीरसेन स्वामीने आगेके सन्निकर्ष विकल्पोंको प्राप्त करनेके लिये नाना बीजोंकी अपेक्षा कम्य किया है । उसमें भी यहाँ सब प्रथम सम्यक्त्वकी प्रवृत्तिसे एक समय कम दो समय कम आदि स्थितिबिकल्प प्राप्त करना है, क्योंकि तभी तो सम्यक्त्वके इन स्थितिबिकल्पोंके साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त किये जा सकेंगे, अतः छोड़नाके लिये यही स्थितियोंका प्रत्यक्ष करना चाहिये जिससे छोड़नाके होनेपर सम्यक्त्वकी प्रवृत्तिसे एक समय कम, दो समय कम आदि स्थितिबिकल्प प्राप्त किये जा सकें । इसी प्रकार अन्तिम स्थितिकान्तरकालकी अन्तिम फलिके पतन तक उत्तरोत्तर एक-एक समय कमके क्रमसे स्थितियोंको धटाते जाना चाहिये पर इतनी बिखेयता है अन्तिम स्थिति कान्तरकाल प्रमाण सबैक एक समान है, अतः सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिकान्तरकाल प्रमाण स्थिति-बिकल्प सन्निकर्षमें नहीं प्राप्त हो सकते हैं क्योंकि माना बीजोंकी अपेक्षा भी यह सबके एकसी ही होगी । तत्पश्चात् सम्यक्त्वकी स्थितिके एक समय कम एक आशक्तिप्रमाण स्थिति बिकल्पोंके लेव रहन पर उनकी अपेक्षा भी तत्प्रमाण सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त कर लेना चाहिये । आगे अंक-संज्ञिके पूर्वोक्त क्रमके कुछासा करनका प्रयत्न किया जाता है—यहाँ चितने भी अंक दिवे जा रहे हैं वे सब कास्यनिक हैं । उनसे केवल पूर्वोक्त क्रमके समझनेमें सहायता मिलती है अतः उनकी बोजना की गई है ।

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति

मिथ्यात्वकी प्रवृत्ति

मतिमन्त्रकाल

१०००

१००

१६

वेदकसम्यक्त्व ज्ञापन काष्ठ

उत्कृष्ट संस्केष पूरण काष्ठ

१६

१६



| मिथ्यात्वकी वन्ध-<br>स्थिति | प्र० भ०<br>काल | सक्रमणसे प्राप्त<br>सम्यक्त्वकी स्थिति | वे० सं०<br>काल | सं० पू०<br>काल | मि० की उ०स्थि० व० न<br>सं० सम्यक्त्वकी स्थि० |
|-----------------------------|----------------|--|----------------|----------------|--|
| १०००                        | १६             | ६८४                                    | १६             | १६             | ६५२  |
| ६६६                         | "              | ६८३                                    | "              | "              | ६५१  |
| ६६८                         | "              | ६८२                                    | "              | "              | ६५०  |
| ६६७                         | "              | ६८१                                    | "              | "              | ६४६  |
| ६६६                         | "              | ६८०                                    | "              | "              | ६४८  |
| ६६५                         | "              | ६७६                                    | "              | "              | ६४७  |
| ६६४                         | "              | ६७८                                    | "              | "              | ६४६  |
| ३०२                         | "              | २८६                                    | "              | "              | २५४  |
| ३०१                         | "              | २८५                                    | "              | "              | २५३  |
| ३००                         | "              | २८४                                    | "              | "              | २५२  |
|                             |                |  |                |                | सं० की ध्रुवस्थिति                           |

इतने सन्निकर्ष विकल्प सक्रमणसे प्राप्त हुए हैं। ये कुल सन्निकर्ष विकल्प ७०१ हुए। अब आगे अंकसदृष्टिसे उद्वेलनाकी अपेक्षा सन्निकर्ष विकल्पोंके खुलासा करनेका प्रयत्न किया जाता है—

नाना जीव न, स्थितिकाण्डक १६, उत्कीरणाकाल ४

| नाना जीव | सम्यक्त्वकी<br>ध्रुवस्थिति | १ समय<br>कम<br>उ० का० | उत्तरोत्तर एक<br>एक समय कम<br>उ० काण्डक | सम्यक्त्वकी<br>सत्त्वस्थिति | उत्कीरणाकाल<br>और उद्वेलना<br>काण्डकका याग | सम्यक्त्वकी<br>उद्वेलनासे<br>प्राप्त स्थिति |
|----------|----------------------------|-----------------------|---|-----------------------------|--|---|
| १ ला     | २५२                        | ३                     | १६                                      | २७१                         | २०   | २५१   |
| २ रा     | २५२                        | ३                     | १५                                      | २७०                         | २०   | २५०   |
| ३ रा     | २५२                        | ३                     | १४                                      | २६६                         | २०   | २४६   |
| ४ था     | २५२                        | ३                     | १३                                      | २६८                         | २०   | २४८   |
| ५ वॉ     | २५२                        | ३                     | १२                                      | २६७                         | २०   | २४७   |
| ६ ठा     | २५२                        | ३                     | ११                                      | २६६                         | २०   | २४६   |
| ७ वॉ     | २५२                        | ३                     | १०                                      | २६५                         | २०   | २४५   |
| ८ वॉ     | २५२                        | ३                     | ९                                       | २६४                         | २०   | २४४   |

यहाँ जो उत्कीरणाकालमें एक समय कम करके और उद्वेलनाकाण्डकमें उत्तरोत्तर एक एक समय कम करके अनन्तर इनके योगको सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिमें जोड़ा है सो नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थिति उत्तरोत्तर एक-एक समय कम बतलानेके लिये किया गया है। यहाँ उत्कीरणाकालप्रमाण स्थिति तो अधःस्थिति गलनासे गल जाती है और उद्वेलना काण्डक-प्रमाण स्थितिका उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय घात हो जाता है। यही कारण है कि सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थितिमेंसे सर्वत्र उत्कीरणाकाल और उद्वेलनाकाण्डक प्रमाण स्थितियों घटाकर बतलाई गई हैं। इसी प्रकार आगे भी उद्वेलनाकी अपेक्षा सन्निकर्ष विकल्प ले

५७१६ संपदि विदियपयारेण सणिगासपरुवणा कीरदे । तं वहा—वेदरा  
पाभोग्गमिच्छादिदिणा बह्मिच्छाचक्रकस्तदिदिणा सम्बन्धहणपदिहमाकात्मन्त्रिय  
सम्मत घेत्तूण मिच्छाचक्रिदिसंक्रमे सम्मतस्तुक्कस्तदिदिं कादूण सम्बन्धहणसम्मत  
कात्मन्त्रियेण मिच्छाचक्रं गंतूण सम्बन्धहणमिच्छाचक्रालेखुक्कस्तसंक्रियोसं पूरेत्तूण  
मिच्छाचक्रस्तदिदीए पवदाए सम्मतुक्कस्तदिदी भंतोमुहुत्तूणा होदि । तदो अण्णेज

अने चाहिये । किन्तु अन्तिम खेलेनाकाण्डके पात होनेपर अनन्त स्थितिबिहस्य नहीं प्राप्त होते  
क्योंकि अपन्य खेलेनाकाण्डका प्रमाण सब बीबोंके समान है, अतः उसका पात होनेपर सबके  
एक ही स्थिति प्राप्त होती है । यथा—

| नाना बीब | सम्बन्धकी<br>सत्य स्थिति | उत्कीरणाकाश | खेलेनाकाण्डक | खेलेनासे प्राप्त<br>सम्बन्धकी स्थिति |
|----------|--------------------------|-------------|--------------|--------------------------------------|
| १ बा     | २७                       | ४           | १६           | ७                                    |
| २ रा     | २७                       | ४           | १६           | ७                                    |
| ३ रा     | २७                       | ४           | १६           | ७                                    |
| ४ बा     | २७                       | ४           | १६           | ७                                    |
| ५ बाँ    | २७                       | ४           | १६           | ७                                    |
| ६ ठा     | २७                       | ४           | १६           | ७                                    |
| ७ बाँ    | २७                       | ४           | १६           | ७                                    |
| ८ बाँ    | २७                       | ४           | १६           | ७                                    |
|          |                          |             |              | एक समय कम ख<br>बाधसिप्रमाण नि        |

यहाँ उत्कीरणा कालप्रमाण स्थितियों को अथास्थिति गलतानेके द्वारा गलती गई है, अतः  
उनकी अपेक्षा सन्निकर्ष बिकल्प बन जाते हैं पर खेलेनाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका पात एक  
साथ हुआ है और सम्बन्धकी सत्य स्थितियोंमें विभिन्नता न होनेसे खेलेनाकाण्डकपातसे  
नाना बीबोंके स्थितियों भी एकसी ही प्राप्त हुई, अतः खेलेनाकाण्डक १६ प्रमाण स्थितियों  
सन्निकर्षसे परे हैं । तथा अन्तर्मे प्रत्येक जीवक को एक कम अवधारितप्रमाण नियेक बने हैं वे  
अथास्थितिगलतानेके द्वारा गलते जाते हैं और इस प्रकार उतने सन्निकर्षबिकल्प और प्राप्त हो  
जाते हैं । इस प्रकार खेलेनासे कुल सन्निकर्षबिकल्प २७१ - १६ = २५५ प्राप्त हुए ।

५७१६ अब इससे प्रकारसे सन्निकर्षकी प्ररूपणा करते हैं, यथा इस प्रकार है—जिसने  
मिष्पात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वर्ण किया है ऐसा कोई एक वेदकसम्बन्धके योग्य मिष्पात्व  
बीब मिष्पात्वसे अन्त होनेके सबसे अपन्य काल तक मिष्पात्वमें रहा पुनः वेदकसम्बन्धकी  
प्रत्येक वृत्तिसे पहले समझें उसने मिष्पात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण करके सम्बन्धकी उत्कृष्ट  
स्थिति की और वहा सम्बन्धके सबसे अपन्य काल तक रह कर मिष्पात्वमें प्राप्त हुआ ।  
तदनन्तर मिष्पात्वके सबसे अपन्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्रियेकी पूर्ति करके उसके मिष्पात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिके वर्ण होन पर उस समय सम्बन्धकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्गुह्य कम हाजी है ।

जीवेण वेदगसम्मत्तपाओगेण वद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा समयाहियसच्चजहण्णपडिहग्ग-  
द्धमच्छिय सम्मत्त घेत्तूण सच्चजहण्णसम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ गमिय उक्कस्समकिलेसं  
पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण संपहियसम्मत्त  
ट्ठिदी समयाहियअतोमुहुत्तेण्णा होदि । पुणो अण्णेण जीवेण वद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा  
दुसमयाहियपडिहग्गद्धमच्छिय वेदगसम्मत्तं पडिवण्णेण सच्चजहण्णसम्मत्त-मिच्छत्त-  
द्धाओ गमिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्ठिदीओ संपहियसम्मत्तट्ठिदी  
दुसमयाहियअतोमुहुत्तेण्णा होदि । एवं पडिहग्गकालं तिसमयाहिय-चदुसमया  
हियादिकमेण वट्ठाविय सेससम्मत्त-मिच्छत्तजहण्णकाले अवट्ठिदे कादूण मिच्छत्तुक्कस्स-  
ट्ठिदिं वंधाविय णेदव्वं जाव जहण्णपडिहग्गकालादो उक्कस्सेण संखेज्जगुणं पावेदि  
त्ति । तं परो मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय गेण्हदव्वं । पुणो उक्कस्सपडिहग्गकालम्मि  
जहण्णपडिहग्गकालं सोहिय सुद्धसेसमेत्तकालेण्णमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गो  
होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्त गंतूणवट्ठितिण्णिकाले अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए  
पवद्धाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण संपहियसम्मत्तट्ठिदी अंतोमुहुत्तेण पडिहग्ग-

तदनन्तर जिसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हुआ है ऐसा वेदकसम्यक्त्वके योग्य एक  
अन्य मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे च्युत होनेके समयाधिक सबसे जघन्य प्रतिभग्न कालतक  
मिथ्यात्वमें रह कर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंको  
व्यतीत करके उसने उत्कृष्ट सकलेशकी पूर्ति की तब उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने  
पर सम्यक्त्वकी सामान्य उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए इस समयकी सम्यक्त्वकी स्थिति एक समय  
अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कम होती है । तदनन्तर जिसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध  
किया है ऐसा कोई एक अन्य मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे च्युत होनेके दो समय अधिक  
जघन्य प्रतिभग्न काल तक मिथ्यात्वमें रहकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यक्त्व  
तथा मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंको व्यतीत किया और इस प्रकार उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिके बन्ध होने पर सम्यक्त्वकी ओष उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा इस समयकी सम्यक्त्वकी  
स्थिति दो समय अधिक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कम होती है । इसी प्रकार मिथ्यात्वसे च्युत होनेके  
कालको तीन समय अधिक, चार समय अधिक आदि क्रमसे बढ़ाते हुए तथा सम्यक्त्व और  
मिथ्यात्वके शेष दो जघन्य कालोंको अवस्थित करके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध  
कराते हुए तब तक कथन करते जाना चाहिये जब जाकर मिथ्यात्वसे च्युत होनेके जघन्य कालसे  
उत्कृष्ट काल सख्यात गुणा प्राप्त होवे । इस प्रकार इसके प्राप्त होने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
बन्ध कराके सम्यक्त्वकी स्थिति ग्रहण करना चाहिये । पुनः मिथ्यात्वसे च्युत होनेके उत्कृष्ट  
प्रतिभग्न कालमेंसे मिथ्यात्वसे च्युत होनेके जघन्य प्रतिभग्न कालको घटाकर जो शेष रहे उतने  
कालसे कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करके तथा प्रतिभग्न होकर और वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त  
करके अनन्तर जो मिथ्यात्वमें गया है और इस प्रकार तीन अवस्थित कालों तक तीनों स्थानोंमें  
रहा है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी ओष उत्कृष्ट स्थितिको देखते  
हुए इस समय सर्वधी सम्यक्त्वकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त और प्रतिभग्नकालविशेष प्रमाण कम होती  
है । यह सन्निकर्षविरूप पुनरुक्त है । तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वके योग्य एक अन्य मिथ्यादृष्टि

काष्ठविसेसण च ऊणा होदि । एस वियप्पो पुणरुत्तो । तवो अण्णो जीवो वेदगपाओग्ग मिच्छादिदी पडिहमाकाष्ठविसेसेणुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय समयाहिपसम्भनहण्ण पडिहमाकाष्ठमिच्छय सम्मस पडिपज्जिमय मिच्छत्त गंतूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवदाए पुब्बुत्तसम्भत्तदिदी समयुणा हादि । एसो वियप्पो अपुणरुत्तो । एव पुब्बं व दुसमयाहिय विसमयाहियादिकमेण पडिहग्गकासो वदुमयव्वो भाव जहण्णादो चक्कस्समो संसेज्जणो चि । एवं वदुमयिय पुणो पुब्बविहाणेण जहण्णपडिहग्गद मुक्कस्सपडिहमादादो सोहिय सुदससंख दुग्गेणूणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधायिय भवद्विद्वत्तामो जहण्णामो तिण्णि वि गमिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवदाए पुणरुत्तो सण्णियासवियप्पो होदि । एदेण कमेण ओदारेदूण णेदम्भं भाव णिम्भियप्पुवद्विदी पत्ता चि । पुणो पुब्बं व उब्बंल्लणमस्सिदूण णेदम्भं भाव सम्मसस्स एगा दिदी दुसमयकाष्ठपमाणा चेहिदा चि । एवमीदारिदे विदियपरुक्कणा समथा ।

॥ ७२० ॥ संपहि तदियपरुक्कणा बुबद । वं जहा—वेदगपाओग्गमिच्छादिदिणा वंमुक्कस्सट्ठिदिणा सम्भजहण्णपडिहमा-सम्मस-मिच्छत्तज्जेणुक्कस्सट्ठिदीए पवदाए पुण र्गमियप्पो होदि, तिण्णं पि अद्धानं जहण्णमावुपलंभादो । अपुणरुक्कवियप्पो इच्छिज्ज

जीव प्रतिमन्त्रकाष्ठविसेसे कम मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बांधकर भर (मिच्छात्वसे च्युत ज्ञानके एक समय अधिक सबसे अपन्य प्रतिमन्त्र काष्ठ तक मिच्छात्वमें रह कर सम्भक्तकी प्राप्त हुआ । तब पुनः मिच्छात्वकी प्राप्त करके उस जीवके मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध ज्ञान पर पूर्वोक्त सम्भक्तकी स्थिति एक समय कम जाती है । यह धर्म्मिकपरिचय अपुनरुक्त है । इसी प्रकार पहलके समान वो समय अधिक और तीन समय अधिक इरायि क्रमसे मिच्छात्वसे निवृत्त ज्ञानका काष्ठ तब तक पकाने जाना चाहिये जब तक अपन्य काष्ठसे उत्कृष्ट काम संख्यामनुज्ञा प्राप्त होवे । इस प्रकार पुनः मिच्छात्वसे निवृत्त होनेके कालमें बड़ाकर पुनः पूर्वाधिमानसुसार मिच्छात्वसे निवृत्त होनेके अपन्य काष्ठकी मिच्छात्वसे निवृत्त ज्ञानके उत्कृष्ट कालमें घटाकर वा काष्ठ छेप रहे उसके बूल काष्ठसे कम मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बांध करके और तीनों ही अपन्य अवस्थित काष्ठोंके बिठा कर मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध ज्ञान पर समिकर्पका पुनरुक्त विकल्प प्राप्त होता है । आगे इसी क्रमसे निर्बिकल्प भूवस्थितिके प्राप्त ज्ञान तक सम्भक्तकी स्थितिका घटते हुए से जाना चाहिये । तदनन्तर पहलके समान गहनताका भावय कर सम्भक्तकी वा समय काष्ठप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्भक्तकी स्थिति घटान पर दूसरी मरुपणा समाप्त हुई ।

॥ ७२० ॥ अब तीसरी मरुपणाका कथन है जो इस प्रकार है—जिसम मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी बांधा है ऐसा वेदकसम्भक्तके बांध मिच्छाट्टि जीव पुनः मिच्छात्वमे च्युत ज्ञानके सबसे अपन्य प्रतिमन्त्र काष्ठके साथ तथा सम्भक्त और मिच्छात्वके सबसे अपन्य काष्ठके साथ जब मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तब उसके मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय समिकर्पका पुनरुक्त विकल्प होता है क्योंकि यहां पर तीनों ही काष्ठ अपन्य पावे जाते हैं । अब अपुनरुक्त विकल्प इच्छित होने पर उसे इस विधिसे जाना चाहिये जो हम पहले-



१७२२ संपदि दुसंयोगेण पंचमपकवर्णं यत्तद्विस्तारो । तं महा—एकमेण पुष्पुप्पाद्दसम्मत्तेण अणिणद्धवेदगपाओगेण समयूणं मिच्छत्तु कस्सहिदिं वंभिय पदि हगद्द समयाहियमच्छिय सम्मत्त मिच्छत्तद्विस्तारो अवहिदामो अच्छिय मिच्छत्तु कस्सहिदीए पवद्दाए अपुणरुत्तभियप्पो होदि । पुष्पुत्तसम्मत्तहिदिं पेक्खिस्सद्दण एसा तद्धिदी दुसमयूणा होदि, दोणं णित्तेगाणमेगवारेण वासिद्धत्तादो । पुणो अण्णेण बीवेण दुसमज्जमिच्छत्तु कस्सहिदिं वंभिय समयाहियपदिहमद्दमवद्दिसम्मत्त मिच्छत्तद्विस्तारो अच्छिय मिच्छत्तु कस्सहिदीए पवद्दाए सम्मत्तहिदी तिसमयूणा होदि । पुणो अवरेण बीवेण वद्दित्समज्जमिच्छत्तु कस्सहिदिं विष्ठा समयाहियमहण्णपदिहमद्दमच्छिवेण सम्मत्त मिच्छत्तद्विस्तारो अवहिदामो अच्छिय मिच्छत्तु कस्सहिदीए पवद्दाए सम्मत्तहिदी वहु समयूणा हादि । एवं मिच्छत्तहिदी चदुसमयूणादिकथेण ओदारेयत्वा जाव मिच्छत्त

सम्यक्त्वकी स्थितिमें एक-एक समय कम किया गया है और इस प्रकार सम्यक्त्वकी भूवस्थिति प्राप्त होने तक सन्निकर्षके विकल्प प्राप्त किये गये हैं । आगे जिस प्रकार उल्लेखनासे प्रथम प्रकृपण्यमें सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त किये गये हैं वही प्रकार यहाँ भी प्राप्त कर लेना चाहिये । इस प्रकार दूसरी प्रकृपणा समाप्त हुई । तीसरी प्रकृपण्यमें प्रतिपन्न कालके समान सम्यक्त्वके कालमें एक-एक समय बढ़ाकर सम्यक्त्व प्रकृतिकी एक एक समय कम स्थिति प्राप्त की गई है । विज्ञेय विधि दूसरी प्रकृपणाके समान जानना चाहिये । चौथी प्रकृपण्यमें मिथ्यात्वके कालमें एक एक समय बढ़ाकर सम्यक्त्व प्रकृतिकी एक एक समय कम स्थिति प्राप्त की गई है । यहाँ भी विशेष विधि दूसरी प्रकृपणाके समान जानना चाहिये । इस प्रकार एक संयोगी प्रकृपणा समाप्त हुई क्योंकि इससे और अधिक बार एकसंयोगी प्रकृपणा संभव नहीं है ।

इस प्रकार पञ्चसंयोगी प्रकृपणा समाप्त हुई ।

१७२२ अब हो संयोगसे पाँचवीं प्रकृपणाको बतलाते हैं जो इस प्रकार है—जिसने पहले सम्यक्त्व उत्पन्न किया था और जिसका बेवक सम्यक्त्वके पतन मिथ्यात्वका काल नष्ट नहीं हुआ है ऐसा कोई एक जीव एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक अवस्थित कालको व्यतीत करके तदनन्तर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंको व्यतीत करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करता है तो उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके कालके समय सन्निकर्षका अपुनरुत्त विकल्प होता है । पूर्वोक्त सम्यक्त्वकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति वा समय कम है, क्योंकि यहाँ उसके दो निरूपक एक ही वारमें गला दिये गये हैं । पुनः अन्य कोई जीव दो समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति को बांध कर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक अवस्थित काल तक तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालों तक क्रमसे मिथ्यात्व सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमें रह कर यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करता है तो उसके उस समय सम्यक्त्वकी स्थिति पूर्वोक्त स्थितिसे देखते हुए तीन समय कम होती है । पुनः जिसने तीन समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध किया है ऐसा कोई एक जीव मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक सपन्य काल तक मिथ्यात्वमें रहा । पुनः सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंका व्यतीत करके यदि उसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध किया है तो उसके उस समय सम्यक्त्वकी स्थिति पूर्वोक्त स्थितिसे देखते हुए चार समय कम होती है । इस प्रकार बेवकसम्यक्त्वके पतन करके

माणे एदाए किरियाए आणेयव्वो । तं जहा—भिच्छत्तु कस्सट्ठिदिं वंधाविय पडिहग्ग-  
कालमवट्ठिदमच्छिय सम्मत्तकाल समयादियं भिच्छत्तकालमवट्ठिदमच्छिय सकिलेसं  
पूरेदूणकस्सट्ठिदीए पवद्धाए अपुणरुत्तवियप्पो होदि । पुणो जहा पडिहग्गकालं वड्ढाविय  
सम्मत्तट्ठिदी ओदारिदा तहा सम्मत्तकालं वड्ढाविय ओदारेदव्वा जाव णिव्वियप्प-  
धुवट्ठिदि त्ति । पुणो उव्वेल्लणमस्सिदूण ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एया ट्ठिदी  
दुसमयकालपमाणा चेट्ठिदा त्ति । एव एहीदे तदियपरूवणा समत्ता होदि ३ ।

६ ७२१ चउत्थपरूवणा संपहि वुच्चदे । तं जहा—पुणरुत्तवियपं पुव्वविहाणेण  
भणिदूण भिच्छत्तु कस्सट्ठिदिं वंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय  
समयादियभिच्छत्तद्धमच्छिदेण आऊरिदूकस्ससकिलेसेण भिच्छत्तु कस्सट्ठिदीए पवद्धाए  
अपुणरुत्तवियप्पो होदि । एवं भिच्छत्तद्धाए दुसमउत्तरादिकमेण वड्ढाविय ओदारिदे  
चउत्थपरूवणा समप्पदि ४ । एवमेगसंजोगपरूवणा गदा ।

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके मिथ्यात्वसे च्युत होनेके अवस्थित कालतक मिथ्यात्वमें  
रह कर फिर सम्यक्त्वके एक समय अधिक अवस्थित कालतक सम्यक्त्वके साथ रह कर फिर  
मिथ्यात्वके अवस्थित कालतक मिथ्यात्वमें रह कर और उसी समय उत्कृष्ट सक्लेशकी पूर्ति करके  
जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय  
सन्निकर्षका अपुनरुक्त विकल्प होता है । तदनन्तर पहले जिस प्रकार मिथ्यात्वसे पुनः च्युत होनेके  
कालको बढ़ाकर सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाया था उसी प्रकार यहा पर वेदकसम्यक्त्वके कालको  
बढ़ाकर निर्विकल्प ध्रुवस्थितिके प्राप्त होने तथा सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाना चाहिये । पुनः  
उद्वेलनाका आश्रय लेकर सम्यक्त्वकी दो समय काल प्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होनेतक उसकी  
स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थिति घटाते हुए ले जाने पर तीसरी  
प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२१ अब चौथी प्ररूपणाको कहते हैं जो इस प्रकार है—पहले पूर्वोक्त विधिसे पुनरुक्त  
विकल्पको कह ले । फिर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके फिर मिथ्यात्वसे पुनः च्युत  
होनेके अवस्थित कालतक और सम्यक्त्वके अवस्थित काल तक मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमें रहकर  
फिर जो मिथ्यात्वके एक समय अधिक अवस्थित काल तक मिथ्यात्वमें रह कर और उत्कृष्ट  
सक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिके बन्धके समय सन्निकर्षका अपुनरुक्त विकल्प होता है । इस प्रकार मिथ्यात्वके कालको दो  
समय अधिक आदि क्रमसे बढ़ाकर सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर चौथी प्ररूपणा  
समाप्त होती है ।

विशेषार्थ—दूसरी प्ररूपणामें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके और प्रतिभ्रम-  
कालमें एक-एक समय बढ़ाकर सक्रमणसे प्राप्त सम्यक्त्वकी स्थितिमें एक-एक समय कम किया  
गया है । तथा वेदक सम्यक्त्व काल और सक्लेश पूरण कालको अवस्थित रखा है । पर जब  
प्रतिभ्रमकालमें एक-एक समय बढ़ाते हुए उत्कृष्ट प्रतिभ्रमकाल प्राप्त हो गया तब उत्कृष्ट प्रतिभ्रम  
कालमेंसे जघन्य प्रतिभ्रम कालको घटाकर जो शेष बचा उससे न्यून मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
बन्ध कराया गया और पुनः जघन्य प्रतिभ्रम कालमें एक-एक समय बढ़ाते हुए संक्रमणसे प्राप्त

बंभाबिय ओदारदेव्यं जाव सम्मचस्स एमा द्विदी दुसमयकासपमाणा वेद्विदा चि ।  
एवमोदारिदे वसमर्ममपरुवणा गदा होदि १० ।

§ ७१० संपदि चत्तारि एगसंभोग मंगे च दुसंभोगमंगे च परुविय विसंभोग  
मंगपरुवणा कीरदे । ताए कीरमाणाए मिच्छच्चुक्कस्सद्विदिं समयूणादिकमेण बंभाबिय  
परिहृग-सम्मचट्ठामो परिवादीए समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण बद्धाबिय मिच्छचट्ठ  
मपट्ठिदं करिय मिच्छच्चुक्कस्सद्विदिं बंभाबिय जेदव्यं जाव सम्मचस्स एमा द्विदी  
दुसमयकास सेसा चि । एवं जीदे एक्कारसमपरुवणा विसंभोगभगम्मि परमा  
परुविदा होदि ११ ।

दोनो बगह मिप्यात्वकी क्खुत्त स्थितिक बग्य करके सम्मक्त्वकी दो समय कासप्रमाण एक  
स्थितिके प्राप्त होमे तक वस्ती स्थितिको पढते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्मक्त्वकी स्थितिके  
कमाने पर वसवें मंगकी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

विशेषार्थ—पहो दो संयोगकी अपेक्षा पाँचवीं प्ररूपणा तीन प्रकारसे की है । पहले  
प्रकारमें बतलाया है कि मिप्यात्वकी एक एक समय स्थिति कम करता जाय और प्रतिमत्र कासमें  
सर्वत्र एक समय बढ़ावे तथा दोप दो कासोंको अवस्थित रहे । दूसरे प्रकारमें यह बतलाया है कि  
सर्वत्र एक समय कम मिप्यात्वकी क्खुत्त स्थितिक बग्य करके और प्रतिमत्र कासमें एकसंयोगी  
दूसरी प्ररूपणामें वसवाई बिधिके अनुसार एक एक समय बढ़ाता जाय तथा दोप दो कासोंको  
अवस्थित रहे । तीसरे प्रकारमें यह बतलाया है कि एक बार मिप्यात्वकी स्थिति पढाव और  
दूसरी बार प्रतिमत्र कासमें एक समय बढ़ावे तथा दोप कासोंको अवस्थित रखे । इस प्रकार इन  
तीनों प्रकारोंसे सम्मक्त्वकी उत्तरोत्तर कम स्थिति प्राप्त की जा सकती है । द्विसंयोगी क्खु  
प्ररूपणामें प्रतिमत्र कासके स्थानमें सम्मक्त्वक कासमें एक एक समय बढ़ाना चाहिये । दोप सब कयन  
पाँचवीं प्ररूपणाके समान है । सातवीं प्ररूपणामें प्रतिमत्र कासके स्थानमें मिप्यात्वके कासमें एक-  
एक समय बढ़ावे । दोप सब कयन पाँचवीं प्ररूपणाके समान है । द्विसंयोगी आठवीं प्ररूपणामें  
सर्वत्र मिप्यात्वकी क्खुत्त स्थितिक बग्य करके किन्तु प्रतिमानकास और सम्मक्त्वकासमें एक-एक  
समय बढ़ाता जाय । मोची प्ररूपणामें प्रतिमत्रकास और मिप्यात्वकासको एक समय बढ़ाना  
चाहिये । तथा दसवीं प्ररूपणामें सम्मक्त्व और मिप्यात्वके कासको एक-एक समय बढ़ावे । इस  
प्रकार करनेसे सर्वत्र सम्मक्त्वकी उत्तरोत्तर कम स्थिति प्राप्त हो जाती है । चारके द्विसंयोगी मंग  
कुल यह ही होते हैं, अतः यहाँ द्विसंयोगी प्ररूपणा जह प्रकारसे की गई है ।

§ ७११ इससे पहले बार एकसंयोगी मंग और द्विसंयोगी मंगोंकी प्ररूपणा करके अब  
तीनसंयोगी मंगोंकी प्ररूपणा करते हैं । उस तीन संयोगो मंगोंकी प्ररूपणाके करने पर मिप्यात्वकी  
क्खुत्त स्थितिक एक समय कम, दो समय कम इत्यादि कमसे कम करके और मिप्यात्वसे निवृत्त  
होनेके अवस्थित कासका तथा सम्मक्त्वके अवस्थित कासको उत्तरोत्तर एक समय अधिक, दो  
समय अधिक इत्यादि कमसे बढ़ाता जावे और मिप्यात्वक कासका अवस्थित करके मिप्यात्वकी  
क्खुत्त स्थितिक बग्य करके सम्मक्त्वकी दो समय प्रमाण एक स्थितिके दोप रखन तक सम्मक्त्वकी  
स्थितिको पढाव हुय लेजाना चाहिये । इस प्रकार संज्ञामें पर वसवहीं प्ररूपणा और तीन संयोगी  
मंगमें पहली प्ररूपणाका कयन समाप्त होता है ।



एवं छट्पखवणा गदा ।

§ ७२६, संपहि सत्तमभंगे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समयूणादिकमेणो-  
दारिय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ करिय मिच्छत्तद्धं ममयादिकमेण  
वट्ठाविय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय पुण्वं च जाणिदूण ओदारेट्ठव्वं जाव सम्मत्त-  
चरिमवियप्पो ति । एवमोदारिदे सत्तमपखवणा समत्ता होदि ।

§ ७२७, संपहि अट्ठमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय पडिहग्ग-  
कालं सम्मत्तकालं च समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण वट्ठाविय मिच्छत्तद्धमवट्ठिदं  
कादूण ओदारेट्ठव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेद्विदा ति । एवमोदारिदे  
अट्ठमभंगपखवणा गदा ८ ।

§ ७२८ संपहि णवमभंगपखवणे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय  
पडिहग्ग-मिच्छत्तद्धाओ समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण परिवाडीए वट्ठाविय सम्मत्त-  
द्धमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदि वंधाविय ओदारेट्ठव्वं जाव सम्मत्तस्स एया  
ट्ठिदी दुसमयकाला ट्ठिदा ति । एव णीदे णवमभंगपखवणा समत्ता ९ ।

§ ७२९ संपहि दसमपखवणे भण्णमाणे सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ समउत्तरादि-  
कमेण परिवाडीए वट्ठाविय पडिहग्गकालमवट्ठिदं करिय उभयत्थमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं

छठ्ठी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ७२६ अव सातवें भगके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको एक समय कम  
इत्यादि क्रमसे घटाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित  
करके और मिथ्यात्वके कालको एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
बन्ध करावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिका अन्तिम विकल्प प्राप्त होने तक पहलेके समान  
जानकर उसकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर  
सातवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२७ अब आठवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके  
तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको और सम्यक्त्वके कालको एक समय अधिक और दो समय  
अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा मिथ्यात्वके कालको अवस्थित करके सम्यक्त्वकी दो समय  
कालप्रमाण एक स्थिति प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी  
स्थितिके घटाने पर आठवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२८ जब नौवें भगकी प्ररूपणा करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके  
और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा मिथ्यात्वके कालको एक समय अधिक और दो  
समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी  
स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार विधिके करने पर नौवें भगकी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२९ अब दसवीं प्ररूपणाके कथन करने पर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर  
एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके तथा

सम्पत्त-मिच्छाचक्षुःश्रामो अन्वित्य मिच्छाचक्षुःस्तद्विदीप पञ्चादार् अण्णां सण्णियासवियप्पो होदि । पुणो मिच्छाचक्षुःस्तद्विदि दुसमयूणं वंधिय पदिहग्गदु समयारियमच्छिय सम्पत्त-मिच्छाचक्षुःश्रामो अवहिदामो अन्वित्य मिच्छाचक्षुःस्तद्विदीप पञ्चादार् अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । पुणो अण्णेण वीनेण दुसमज्जमिच्छाचक्षुःस्तद्विदि वंधिय दुसमयुत्तरं जहण्णपदिहग्गदुमच्छिय सम्पत्त-मिच्छाचक्षुःश्रामो अवहिदामो अन्वित्य मिच्छाचक्षुःस्तद्विदीप पञ्चादार् अण्णो सण्णियासवियप्पो । एवमेगमारं द्विदि समयूणं बद्धाविय विवियमारं पदिहग्गकासमयए एककेण बद्धाविय ओदारेदब्बं भाव जहण्ण पदिहग्गदुवा सत्वेअण्णा जादा चि । पुणो एदेण सरुवणं जाणिण्ण ओदारेदब्बं जाव सम्पत्तस्त पगा द्विदि दुसमयकाळा वेहिदा चि । एवमण्णत्य वि एदमत्यपरुवणमव शारिय परुवेदब्बं । एव पंचमवियप्पो गदो ५ ।

§ ७२५ संपहि छद्वियप्पपरुवणा कीरवे । तं जहा—मिच्छाचक्षुःस्तद्विदि समज्ज-दुसमज्जगादिकमेण वंधाविय पदिहग्गदुमच्छिय करिय सम्पत्त-समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण बद्धाविय मिच्छाचक्षुःस्तद्विदि करिय मिच्छाचक्षुःस्तद्विदीप पञ्चादार् छद्वियप्पो होदि । एव पंचवियप्पस्तेव धीहि पयारेहि परुवणा कायणा ।

निवृत्त होनेके एक समय अधिक जपम्य काल तक मिध्यात्वमें रहा । पुनः उसके सम्यक्त्व और मिध्यात्वके सबसे जपम्य काल तक क्रमसे सम्यक्त्व और मिध्यात्वमें रह कर मिध्यात्वकी बहुत स्थितिका जन्म करने पर एक अन्य समिकर्षविकल्प प्राप्त होता है । पुनः दो समय कम मिध्यात्व की बहुत स्थितिको बांध कर कोई एक बीच मिध्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक जपम्य काल तक मिध्यात्वमें रहा । तदनन्तर उसके सम्यक्त्व और मिध्यात्वके अवस्थित कालों तक क्रमसे सम्यक्त्व और मिध्यात्वमें रहकर मिध्यात्वकी बहुत स्थितिके जन्म करने पर एक अन्य समिकर्षविकल्प प्राप्त होता है । पुनः एक अन्य बीच दो समय कम मिध्यात्वकी बहुत स्थितिका बांधकर मिध्यात्वसे निवृत्त होनेके दो समय अधिक जपम्य काल तक मिध्यात्वमें रहा । तदनन्तर उसके सम्यक्त्व और मिध्यात्वके अवस्थित कालों तक क्रमसे सम्यक्त्व और मिध्यात्वमें रहकर मिध्यात्वकी बहुत स्थितिके जन्म होने पर एक अन्य समिकर्षविकल्प प्राप्त होता है । इस प्रकार एक बार मिध्यात्वकी स्थितिको एक समय कम करके और दूसरी बार मिध्यात्वसे निवृत्त होनेके कालका एक समय बढ़ाकर सम्यक्त्वकी स्थितिको तब तक पढाते जाना चाहिये जब जाकर मिध्यात्वसे निवृत्त होनेका जपम्य काल संभ्रातगुणा हो जावे । पुनः इसी क्रम से आगे भी सम्पत्तकी दो समय कालप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको पढाते जाना चाहिये । इसी प्रकार अन्य भी इस आशेषपदा निश्चय करके जपन करना चाहिये । इस प्रकार पाचवों विकल्प समस्त हुआ ।

§ ७२६ अब छठे विकल्पकी प्रत्यक्षा करत हैं । वह इस प्रकार है—मिध्यात्वकी बहुत स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे जन्म कराके और मिध्यात्वसे निवृत्त होनेके कालका अवस्थित करके तथा सम्यक्त्वके कालको एक समय अधिक, दो समय अधिक आदि क्रमसे बढ़ाकर और मिध्यात्वके कालको अवस्थित करके मिध्यात्वकी बहुत स्थितिका जन्म करने पर छठा विकल्प होता है । यहां पर जिस प्रकार पांचवें विकल्पकी तीन प्रकारसे प्रत्यक्षा की है वसी प्रकार छठे विकल्पकी तीन प्रकारसे प्रत्यक्षा करनी चाहिये । इस प्रकार

ध्रुवद्विदिं सम्मत्तगहणपाओग्गं पत्ता त्ति । पुणो अण्णेण जीवेण बद्धमिच्छत्तध्रुव-  
द्विदिणा दुसमउत्तरपडिहग्गद्धमच्छिदेण सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय  
मिच्छत्तकुस्सट्ठिदीए पवद्धाए अण्णो अपुणरूतवियप्पो होदि । एवं सण्णियास-  
पाओग्गध्रुवद्विदिमवट्ठिदेण कमेण वधाविय पडिहग्गद्धा तिसमयुत्तरादिकमेण वट्ठा-  
वेयव्वा जाव सगजहण्णद्धादो संखेज्जगुणत्तं पत्ता त्ति । एवं वट्ठाविदे पंचमवियप्पो  
समत्तो होदि ।

§ ७२३, अथवा पंचमवियप्पो एवमुप्पाएयव्वो । तं जहा—समयूणमिच्छत्त-  
कुस्सट्ठिदिं वधाविय पडिहग्गद्धं चेव समयुत्तरादिकमेण जहण्णद्धादो संखेज्जगुणं त्ति  
वट्ठाविय पुणो पडिहग्गद्धाविससमेत्तमेगवारेण मिच्छत्तद्विदिमोदारिय पुणो तमवट्ठिदं  
कादूण समयुत्तरादिकमेण पडिहग्गद्धं चेव संखेज्जगुणं त्ति वट्ठाविय पुणो मिच्छत्तद्विदी  
अप्पिदद्विदीदो पडिहग्गद्धाविसेसमेत्तमोदारेदव्वा । एव पेयव्वं जाव तप्पाओग्गमिच्छत्त-  
ध्रुवद्विदि त्ति । एवं णीदे विदियपयारेण पंचमवियप्पो परूविदो होदि ।

§ ७२४, संपहि तदियपयारेण पंचमवियप्पस्स परूवणा कीरदे । तं जहा—  
समयूणकुस्सट्ठिदिपवद्धमिच्छादिद्विणा समयाहियपडिहग्गद्धमच्छिदेण सव्वजहण्ण-

योग्य मिथ्यात्वकी ध्रुव स्थितिके प्राप्त होने तक चार समय कम आदिके क्रमसे मिथ्यात्वकी  
स्थितिको घटाते जाना चाहिये । पुनः जिसने मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई  
एक अन्य जीव मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके दो समय अधिक अवस्थित मिथ्यात्वमें रहा । पुनः सम्य  
क्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंतक सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमें रह कर यदि उसने मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है तो उसके उस समय सन्निकर्षका एक अन्य अपुनरुक्त विकल्प प्राप्त  
होता है । इसी प्रकार आगेके विकल्प लानेके लिये जो सन्निकर्ष के योग्य ध्रुवस्थितिको अवस्थित  
करके उसका बन्ध करता है और जब तक अपने जघन्यसे उत्कृष्ट विकल्प संख्यातगुणा नहीं प्राप्त  
होता है तब तक मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके अवस्थित कालको तीन समय अधिक आदिके क्रमसे  
बढ़ाता जाता है उसके इस प्रकार उक्त कालके बढ़ाने पर पाचवा विकल्प समाप्त होता है ।

§ ७२३ अथवा पाचवा विकल्प इस प्रकार उत्पन्न करना चाहिये, जो इस प्रकार है—पहले  
एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे । तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका जो  
जघन्य काल है उसे पहली बार एक समय और दूसरी बार दो समय इस प्रकार उत्तरोत्तर जघन्यसे  
संख्यातगुणा उत्कृष्ट काल प्राप्त होने तक बढ़ाता जावे । तदनन्तर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके उत्कृष्ट  
कालमेंसे जघन्य कालको घटा कर जो शेष रहे तत्प्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको एक साथ घटा  
कर उसे अवस्थित करदे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका जो जघन्य काल है उसे पहली बारमें  
एक समय, दूसरी बारमें दो समय इस प्रकार उत्तरोत्तर जघन्यसे संख्यातगुणा उत्कृष्ट काल प्राप्त  
होने तक बढ़ाता जावे । तदनन्तर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके उत्कृष्ट कालमेंसे जघन्य कालको घटा  
कर जो शेष रहे तत्प्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको दूसरी बार घटाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वके  
योग्य मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिके प्राप्त होने तक यह विधि करते जाना चाहिये । इस प्रकार इस  
विधिके करने पर दूसरे प्रकारसे पाचवें विकल्पकी प्ररूपणा होती है ।

§ ७२४, अब तीसरे प्रकारसे पाचवें विकल्पकी प्ररूपणा करते हैं, जो इस प्रकार है—एक  
समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला एक मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे

बंघाविय ओदारेदम्बं जाव सम्मत्तस्स एगा हिदी दुसमयकासपमाणा चेहिदा प्ति ।  
एवमोदारिदे दसमयपकरुणा गवा होदि १० ।

५७३० संपदि चत्तारि एगसंभोग भंगे च दुसंभोगभंगे च परुविय तिसंभोग  
भंगपरुवणा कीरदे । ताए कीरमाणाए मिच्छत्तुककस्सहिदिं समयूणादिकमेण बंघाविय  
पडिह्म-सम्मत्तदामो परिवाहीए समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण बंघाविय मिच्छत्तद्  
मवहिदं करिय मिच्छत्तुककस्सहिदिं बंघाविय णेदम्बं जाव सम्मत्तस्स एगा हिदी  
दुसमयकासा सेसा प्ति । एवं णीदे एक्कारसमपकरुणा तिसंभोगभगम्मि पडमा  
परुविदा होदि ११ ।

दोनो बगह मिध्यात्वकी बहुत स्थितिक्रम बन्ध करके सम्मत्त्वकी हा समय कासप्रमाण एक  
स्थितिक्रम प्राप्त होने तक बसकी स्थितिक्रम पढते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्मत्त्वकी स्थितिक्रम  
पढाने पर सबसे भंगकी प्रकृष्टता समाप्त होती है ।

विशेषार्थ—यहाँ दो संभोगकी अपेक्षा पाँचवीं प्रकृष्टता तीन प्रकारसे की है । पहले  
प्रकारमें बतलाया है कि मिध्यात्वकी एक एक समय स्थिति कम करता जाय और प्रतिभक्त कालमें  
सबसे एक समय बढ़ाने तथा छेप दो कालोंको अवस्थित रखे । दूसरे प्रकारमें यह बतलाया है कि  
सबसे एक समय कम मिध्यात्वकी बहुत स्थितिक्रम बन्ध करके और प्रतिभक्त कालमें एकसंभोगी  
दूसरी प्रकृष्टतामें बतलाई विधिके अनुसार एक एक समय बढ़ाता जाय तथा छेप दो कालोंको  
अवस्थित रखे । तीसरे प्रकारमें यह बतलाया है कि एक बार मिध्यात्वकी स्थिति पढावे और  
दूसरी बार प्रतिभक्त कालमें एक समय बढ़ाने तथा छेप कालोंको अवस्थित रखे । इस प्रकार इन  
तीनों प्रकारोंसे सम्मत्त्वकी उत्तरोत्तर कम स्थिति प्राप्त की जा सकती है । द्विसंभोगी बड़ी  
प्रकृष्टतामें प्रतिभक्त कालके स्थानमें सम्मत्त्वके कालमें एक एक समय बढ़ाना चाहिये । छेप सब काल  
पाँचवीं प्रकृष्टताके समान है । सातवीं प्रकृष्टतामें प्रतिभक्त कालके स्थानमें मिध्यात्वके कालमें एक-  
एक समय बढ़ाने । छेप सब काल पाँचवीं प्रकृष्टताके समान है । द्विसंभोगी आठवीं प्रकृष्टतामें  
सबसे मिध्यात्वकी बहुत स्थितिक्रम बन्ध करके किन्तु प्रतिभक्तकाल और सम्मत्त्वकालमें एक-एक  
समय बढ़ाता जाय । नौवीं प्रकृष्टतामें प्रतिभक्तकाल और मिध्यात्वकालको एक समय बढ़ाना  
चाहिये । तथा बसकी प्रकृष्टतामें सम्मत्त्व और मिध्यात्वके कालको एक-एक समय बढ़ाने । इस  
प्रकार करनेसे सबसे सम्मत्त्वकी उत्तरोत्तर कम स्थिति प्राप्त हो जाती है । चारके द्विसंभोगी भंग  
काम बह ही होते हैं, अतः यहाँ द्विसंभोगी प्रकृष्टता बह प्रकारसे की गई है ।

५७३१ इससे पहले बार एकसंभोगी भंग और द्विसंभोगी भंगोंकी प्रकृष्टता करके अब  
तीनसंभोगी भंगोंकी प्रकृष्टता करते हैं । इस तीन संभोगी भंगोंकी प्रकृष्टता करने पर मिध्यात्वकी  
बहुत स्थितिक्रम एक समय कम, दो समय कम इत्यादि कमसे बन्ध करके और मिध्यात्वसे निवृत्त  
होनेके अवस्थित कालको तथा सम्मत्त्वके अवस्थित कालकी उत्तरोत्तर एक समय अधिक, दो  
समय अधिक इत्यादि कमसे बढ़ाता जाये और मिध्यात्वके कालको अवस्थित करके मिध्यात्वकी  
बहुत स्थितिक्रम बन्ध करके सम्मत्त्वकी दो समय प्रमाण एक स्थितिक्रम छेप करने तक सम्मत्त्वकी  
स्थितिक्रम पढते हुए से जाना चाहिये । इस प्रकार से जानने पर ग्याहृषी प्रकृष्टता और तीन संभोगी  
भंगमें पहली प्रकृष्टता कमन समाप्त होता है ।

एवं छट्पूरुवणा गदा ।

§ ७२६. संपहि सत्तमभंगे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समयूणादिकमेणे-  
दारिय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ अट्ठिदाओ करिय मिच्छत्तद्धं' समयादिकमेण  
वड्ढाविय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय पुच्चं व जाणिदूण ओदारेदच्चं जाव सम्मत-  
चरिमवियप्पो त्ति । एवमोदारिदे सत्तमपूरुवणा समत्ता होदि ।

§ ७२७. संपहि अट्ठमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय पडिहग्ग-  
कालं सम्मतकालं च समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण वड्ढाविय मिच्छत्तद्धमवट्ठिदं  
कादूण ओदारेदच्चं जाव सम्मतस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेद्विदा त्ति । एवमोदारिदे  
अट्ठमभंगपूरुवणा गदा ८ ।

§ ७२८ संपहि णवमभंगपूरुवणे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय  
पडिहग्ग-मिच्छत्तद्धाओ समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण परिवाडीए वड्ढाविय सम्मत-  
द्धमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदि वंधाविय ओदारेदच्चं जाव सम्मतस्स एया  
ट्ठिदी दुसमयकाला ट्ठिदा त्ति । एव णीदे णवमभंगपूरुवणा समत्ता ९ ।

§ ७२९. संपहि दसमपूरुवणे भण्णमाणे सम्मत-मिच्छत्तद्धाओ समउत्तरादि-  
कमेण परिवाडीए वड्ढाविय पडिहग्गकालमवट्ठिदं करिय उभयत्थमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं

छठी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ७२६. अब सातवें भंगके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको एक समय कम  
इत्यादि क्रमसे घटाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित  
करके और मिथ्यात्वके कालको एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका  
बन्ध करावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिका अन्तिम विकल्प प्राप्त होने तक पहलेके समान  
जानकर उसकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर  
सातवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२७ अब आठवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके  
तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको और सम्यक्त्वके कालको एक समय अधिक और दो समय  
अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा मिथ्यात्वके कालको अवस्थित करके सम्यक्त्वकी दो समय  
कालप्रमाण एक स्थिति प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी  
स्थितिके घटाने पर आठवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२८ जब नौवें भंगकी प्ररूपणा करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके  
और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा मिथ्यात्वके कालको एक समय अधिक और दो  
समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी  
स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार विधिके करने पर नौवें भंगकी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२९ अब दसवीं प्ररूपणाके कथन करने पर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर  
एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके तथा



§ ७३१, वारसमभंगे तिसंजोगम्मि विदिण् भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समयूणादिकमेण वंधाविय पडिहग्ग-मिच्छत्तद्धाओ समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय सम्मत्तकालमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं पुब्बं व जाणिदूण ओदारेदब्बं जाव सम्मत्तचरिमवियप्पो त्ति । एवमोदारिदे वारसमपरूवणा समत्ता होदि १२ ।

§ ७३२, संपहि तेरसमपरूवणे भण्णमाणे एक्को वेदगसम्माट्ठिदी मिच्छत्त-ट्ठिदिं समयूण-दुसमयूणादिकमेण वंधाविय सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ परिवाडीए समयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय पडिहग्गद्धमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय ओदारेदब्बं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति । एवमोदारिदे तेरसमवियप्पो समत्तो होदि १३ ।

§ ७३३, संपहि चोदसमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्त मिच्छत्तद्धाओ समयुत्तरादिकमेण परिवाडीए वड्ढाविय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधाविय ओदारेदब्बं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति । एवमोदारिदे चोदसवियप्पो समत्तो होदि १४ ।

§ ७३१, अब वारहवें भगके और तीन संयोगीमें दूसरे भगके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करावे, और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा मिथ्यात्वके कालको एक समय अधिक, दो समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ावे तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित करके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी स्थितिके अन्तिम विकल्पके उत्पन्न होने तक पहलेके समान जानकर उसकी स्थितिको घटाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर वारहवें प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७३२ अब तेरहवें प्ररूपणाके कथन करने पर एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वमें जाकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करे और सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर एक समय, दो समय इत्यादि क्रमसे बढ़ावे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करे । इस प्रकार पूर्वोक्त विधिसे सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको घटावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर तेरहवाँ विकल्प समाप्त होता है ।

§ ७३३ अब चौदहवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर एक समय, दो समय इत्यादि क्रमसे बढ़ता जावे तथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय काल प्रमाण जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थितिको घटाता जावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर चौदहवें विकल्प समाप्त होता है ।

**विशेषार्थ—**चारके तीन संयोगी भग कुल चार होते, हैं । ग्यारहवें, वारहवें, तेरहवें और चौदहवें प्ररूपणामें ये ही चार भंग बतला कर सम्यक्त्वकी स्थिति उत्तरोत्तर न्यून प्राप्त की गई है । कहीं कितने संयोगसे स्थिति क्रम प्राप्त की गई है इसका खुलासा मूलमें किया ही है, अतः यहाँ उसे पुनः नहीं दुहराया गया है ।

केव कायप्पा, न विदियादिरूपणाओ वि ! न एस दोसी, सणियासवियप्पाज्जुप्पत्ति-  
वियप्पपरुण्ड' तप्परुणणादो । एवं सम्मामिच्छास्स वि वत्थं, विससामाणादो ।

❀ सोलसकसायाणं किमुकस्ता अणुकस्ता ?

। ७३७ सुगममेद !

❀ उदस्ता वा अणुकस्ता वा ।

। ७३८ यदि मिच्छाकस्ताहिदीए वग्गमाणाए सोलसकसायाणमुकस्ताहिदि  
वंचो होव्व तो उकस्ता । अह न होऊ तो अणुकस्ता । उकस्तसंकिखसे संते किमहु

गव सन्निकर्षविकस्योद्धे ही आगेकी प्रकण्याओंमें उत्पन्न करके बताया गया है अतः पक्षी  
प्रकण्या ही करनी चाहिये द्वितीयादि प्रकण्याएँ नहीं ?

समाधान—यह कोई शंय नहीं है क्योंकि सन्निकर्षविकस्य कितने प्रकारसे उत्पन्न किये  
जा सकते हैं इसका कवन करने के लिये छन द्वितीयादि प्रकण्याओंका कवन किया है ।

इसो प्रकार सम्मगिमिच्छात्वकी अपेक्षा भी सन्निकर्षविकस्य पक्षमा चाहिये क्योंकि सम्मगत्वकी  
प्रकण्यासे सम्मगिमिच्छात्वकी प्रकण्यामें कोई विशेषता नहीं है ।

विशेषार्थ—पञ्चदशी प्रकण्या बार संयोगी है जो दो प्रकारसे बतलाई है । पहला प्रकार  
तो स्पष्ट है किन्तु दूसरे प्रकारमें कुछ विशेषता है जिसका यहाँ गुलासा किया जाता है । एक समय  
क्रम प्रवृत्तिसे न्यून मिच्छात्वकी एकस्य स्थितिसे बितने समय हों उनकी एक एक करके  
पंक्तिरूपसे स्थापना करे । अन्तर्गत अपन-अपने एकस्य कालोंमेंसे अपन कालोंके घटाने पर जो  
प्रतिमानकाल, सम्मगत्वकाल और मिच्छात्वकालके समर्थोंका प्रमाण आये उनकी भी प्रवृत्ति-  
तीन पंक्तियों करे । तदनन्तर अन्तिम पंक्तिसे समर्थोंकी गिनती कर ले । तदनन्तर तृतीय पंक्तिसे  
समर्थोंकी गिनती करे । तदनन्तर दूसरी पंक्तिसे समर्थोंकी गिनती करे । इस प्रकार गिनती करनेसे  
इन तीनों पंक्तियोंके समर्थोंकी बितनी संख्या हो जतना प्रथम पंक्तिसे समर्थोंमेंसे पटा है । तद-  
नन्तर दूसरी और तीसरी आवि बार भी यही क्रम चालू रखे । इस प्रकार इस क्रमके करनेसे  
प्रवृत्तिपर्यन्त कितने सन्निकर्ष विकस्य होते हैं उनका प्रमाण आ जाता है । तथा इसके आगेके  
शेष विकस्य नाना बीजोंकी वृत्तलमाकी अपेक्षा प्राप्त होत हैं । इस प्रकार इस प्रकण्याके द्वारा कुछ  
सन्निकर्ष विकस्य प्राप्त हो जाते हैं । सोलहवीं प्रकण्यामें सम्मगत्वकी दो समय कालप्रमाणा  
अपन स्थितिसे लेकर एकस्य स्थितिपर्यन्त प्रतिलोम क्रमसे सन्निकर्ष विकस्य उत्पन्न करके बतलाये  
गये हैं । इस प्रकार क्वापि पूर्वमें सोलह प्रकण्याएँ बतलाई हैं पर जतने सन्निकर्ष विकस्योंमें  
भूनाधिकता नहीं आती । वे प्रकण्याएँ तो केवल सन्निकर्षविकस्य कितने प्रकारसे उत्पन्न किये  
जा सकते हैं इसमें चरितार्थ हैं । इनके कवन करनेका अन्य कोई प्रयाजन नहीं है । इसी  
प्रकार सम्मगिमिच्छात्वकी स्थितिकी अपेक्षासे भी सन्निकर्ष विकस्य जानन चाहिये ।

❀ मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे समय सोलह कपायोंको क्या उत्कृष्ट स्थिति  
होती है या अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ?

। ७३९ यह सुख सुगम है ।

❀ उत्कृष्ट स्थिति भी होती है और अनुत्कृष्ट स्थिति भी होती है ।

। ७४० यदि मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्य होवे समय सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिका वन्य होता है तो उत्कृष्ट स्थिति होती है । और यदि नहीं होता है तो अनुत्कृष्ट



वि अक्खा पुच्चं व संचारिय सगसगपंतीए अतम्मि कायन्वा । एवं कदे द्विदिवधो-  
सरणेणुप्पणसव्वसण्णियासवियप्पा लद्धा होंति । पुणो सेसवियप्पे णागाजीवाणमुव्वे-  
ल्लणमस्सिदूण उप्पाएज्जो । एवमुप्पाइदे पण्णारसमपरूवणा समत्त होदि १५ ।

§ ७३६ सोलसमपरूवणे भण्णमाणे दुममयकालेगट्ठिदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तु-  
क्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए एगो सण्णियासवियप्पो । दोद्विदितिसमयसंतकम्मिएण मिच्छत्तु-  
क्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए विदियो सण्णियासवियप्पो । तिण्णिट्ठिदिचदुसमयसम्मत्तसंत-  
कम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए तदिओ मण्णियासवियप्पो । एवं गंतूण  
समयूणावलियमेत्तद्विदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए समयूणावलियमेत्ता  
सण्णियासवियप्पा लब्धंति । पुणो आवलियमभियचरिमुच्चेल्लणकंडयचरिमफालिमेत्त-  
द्विदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए आवलियमेत्ता सण्णियासवियप्पो  
होंति । इदो, पलिदोवमस्स असंग्वेज्जदिभागमंतरिदूण संपहियसण्णियासवियप्पु-  
प्पत्तीदो । एत्तो उवरिमसण्णियासवियप्पट्ठाणाणि पडिलोमेण णिरतरमुप्पाइय घेत्तव्वाणि  
जाव मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदि वंधियसव्वजहण्णपडिहरग-सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ गमिय मिच्छ-  
त्तुक्कस्सट्ठिदि वंधिय द्विदो ति । एवं णीदे सोलसमपरूपणा समत्ता होदि । एदे सण्णि-  
यासवियप्पा सव्वे वि पुणरुत्ता पढमपरूवणाए उप्पण्णाणं चेषुप्पत्तीदो । तदो पढमरूवणा

करना चाहिये । पुनः शेष तीनों ही अर्त्तोंका पहलेके समान सचार करके उन्हें अपनी अपनी पक्तिमें  
अन्तको प्राप्त कराना चाहिये । इस प्रकार करने पर स्थितिबन्धापसरणासे उत्पन्न हुए सभी  
सन्निकर्षके विकल्प प्राप्त हो जाते हैं । पुनः शेष विकल्प नाना जीवोंके उद्वेलनाका आश्रय लेकर  
उत्पन्न करना चाहिये । इस प्रकार उत्पन्न करने पर पन्द्रहवें प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७३६, अब सोलहवें प्ररूपणाके कथन करने पर सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक  
स्थितिनिषेकसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक सन्निकर्षविकल्प  
होता है । सम्यक्त्वकी तीन समय कालप्रमाण दो निषेकस्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट  
स्थितिके बन्ध होने पर दूसरा सन्निकर्षविकल्प होता है । सम्यक्त्वकी चार समयप्रमाण तीन  
निषेकस्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर तीसरा सन्निकर्षविकल्प  
होता है । इसी प्रकार आगे जाकर एक समय कम आवलीप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक समय कम आवलीप्रमाण सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होते हैं । पुनः  
एक आवली अधिक अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले जीवके  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर आवलीप्रमाण सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होते हैं, क्योंकि  
पत्थोपमके असंख्यातवें भागको अन्तरित करके वर्तमानजालीन सन्निकर्षविकल्प उत्पन्न हुए हैं ।  
इसी प्रकार आगे भी उपरिम सन्निकर्ष विकल्पस्थानोंको प्रतिलोमपद्धतिसे निरन्तर उत्पन्न करके  
तब तक ग्रहण करना चाहिये जब तक मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदन्तर  
मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके सबसे जघन्य कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके सबसे जघन्य  
कालोंको व्यतीत करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बन्ध करनेवाला प्राप्त होवे । इस प्रकार  
सन्निकर्षविकल्पोंके ले जाने पर सोलहवें प्ररूपणा समाप्त होती है ।

शुका—ये सभी सन्निकर्षविकल्प पुनरुक्त हैं, क्योंकि पहली प्ररूपणामें उत्पन्न करके बतलाये

बोध अप्रत्या, न विदियादिपक्षपादो ति ? न एस दोसो, सण्णियासवियप्पाज्जुप्पवि-  
नियप्पकम्पणद्ध तप्पकम्पणादो । एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि बत्तण्ण, विससामावादो ।

⊗ सोखसकसायाणं किमुकस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७३७ सुगममद ?

⊗ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७३८ यदि मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए बज्जमाणाए सांखसकसायाणज्जुक्कस्सद्विदि  
बंधो होख तो उक्कस्सा । अइ न होख तो अणुक्कस्सा । उक्कस्ससंकिण्ठसे सते किमिदु

गवे सन्निकर्षविकल्पोंको ही आलोकी प्रकल्पणाओंमें उत्पन्न करके बतलाया गया है अतः पक्षी  
प्रकल्पणा ही करनी चाहिये, द्वितीयादि प्रकल्पणार्थ नहीं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि सन्निकर्षविकल्प कितने प्रकारसे उत्पन्न किये  
जा सकते हैं इसका कवन करनेके लिये इन द्वितीयादि प्रकल्पणाओंका कवन किया है ।

इसी प्रकार सम्ममिच्छात्वकी अपेक्षा भी सन्निकर्षविकल्प कहना चाहिये क्योंकि सम्मत्त्वकी  
प्रकल्पणसे सम्ममिच्छात्वकी प्रकल्पणार्थ कोई विशेषता नहीं है ।

विशेषार्थ—पञ्चद्विती प्रकल्पणा बार संयोगी है जो दो प्रकारसे बतलाई है । पहला प्रकार  
तो स्पष्ट है किन्तु दूसरे प्रकारमें कुछ विशेषता है जिसका यहाँ सुझाया किया जाता है । एक समय  
कम भूतस्थितिसे न्यून मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बिचने समय हों उनकी एक एक करके  
पंक्तिरूपसे स्थापना करे । अन्तर अपने-अपने उत्कृष्ट कालोंमेंसे अप्रत्यक्ष कारणोंके बताने पर जो  
प्रतिमनकाल सम्मत्त्वकाल और मिच्छात्वकालके समयोंका प्रमाण आये उनकी भी प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष  
तीन पंक्तियाँ करे । तदनन्तर अन्तिम पंक्तिसे समयोंकी गिनती कर ले । तदनन्तर तृतीय पंक्तिसे  
समयोंकी गिनती करे । तदनन्तर दूसरी पंक्तिसे समयोंकी गिनती करे । इस प्रकार गिनती करनेसे  
इन तीनों पंक्तियोंके समयोंकी बितनी संख्या हो उतना प्रथम पंक्तिसे समयोंमेंसे घटा दे । तद-  
नन्तर दूसरी और तीसरी आदि बार भी यही क्रम चालू रखे । इस प्रकार इस क्रमसे करनेसे  
भूतस्थिति पर्यन्त कितने सन्निकर्ष विकल्प होते हैं उनका प्रमाण आ जाता है । तथा इसका आगेके  
क्षेत्र विकल्प नाना बीबोंकी उत्पत्तिका अपेक्षा प्राप्त होता है । इस प्रकार इस प्रकल्पणके द्वारा कुछ  
सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त हो जाते हैं । सोखद्विती प्रकल्पणार्थ सम्मत्त्वकी दो समय कालप्रमाण  
अप्रत्यक्ष स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त प्रतिज्ञात्मक क्रमसे सन्निकर्ष विकल्प उत्पन्न करके बतलाया  
गया है । इस प्रकार यद्यपि पूर्वमें सोखद्व प्रकल्पणार्थ बतलाई है पर उनसे सन्निकर्ष विकल्पोंमें  
न्यूनताधिकता नहीं आती । ये प्रकल्पणार्थ तो केवल सन्निकर्षविकल्प कितने प्रकारसे उत्पन्न किये  
जा सकते हैं इसमें बरिता है । इनके कवन करनेका अन्य कोई प्रयास नहीं है । इसी  
प्रकार सम्ममिच्छात्वकी स्थितिकी अपेक्षासे भी सन्निकर्ष विकल्प जानन चाहिये ।

⊗ मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोखद्व कपायोंको क्या उत्कृष्ट स्थिति  
होती है या अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ?

§ ७३९ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ उत्कृष्ट स्थिति भी होती है और अनुत्कृष्ट स्थिति भी होती है ।

§ ७४० यदि मिच्छात्वकी उत्कृष्ट स्थिति का कल्प होता है तो समय का कल्प कपायोंकी उत्कृष्ट  
स्थिति का कल्प होता है तो उत्कृष्ट स्थिति होती है । और यदि नहीं होता है तो अनुत्कृष्ट

ऊणा संक्रमदि 'बंधे संक्रमदि' ति सुत्तेण सह विरोहादो । ण च कसायट्ठिदिं सगुवरि संकतं मोत्तूण सगबंधेणेदासिं चट्ठुहं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिसत होदि; दस-पण्णारस-सागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदीणमावलिपूणचालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तविरोहादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमार्दि कादूण जाव अंतोकोडा-कोडि ति ।

§ ७४२. तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए चेव इत्थिवेदं बंधाविय बंधावलियादिककतं कसायट्ठिदिं उक्कस्समित्थिवेदम्मि संकामिदे इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तस्समए मिच्छत्तं णियमा अणुकस्सं, तत्थ तस्समुक्कस्सट्ठिदिबंधाभावादो । तदो अंतोमुहुत्तमच्छिय संकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्स-ट्ठिदीए पबद्धाए त्काले इत्थिवेदट्ठिदी अण्णो उक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा

उनमें बन्धावलिले कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण हो जायगा, सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर 'बंधे सकामदि' इस सूत्रके साथ विरोध आता है । यदि कहा जाय कि कषायकी स्थितिका इनमें संक्रमण होकर जो इनकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है उसे छोड़कर अपने बन्धसे इन चारों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व हो जायगा सो भी बात नहीं है; क्योंकि दस और पन्द्रह कोडाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितियोंके एक आवलीकम चालीस कोडाकोड़ी सागरप्रमाण होनेमें विरोध आता है ।

**विशेषार्थ—**संक्रमणके पाँच भेद हैं । इनमेंसे अधःप्रवृत्त सक्रम जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उसमें ही अन्य सजातीय प्रकृतिका होता है । किन्तु मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते समय स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अतः सोलह कषायोंका पहले उत्कृष्टस्थिति बन्ध करावे और एक आवलि बाद स्त्रीवेद आदिका बन्ध कराते हुए उनमें एक आवलि कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण करावे । पुनः अन्तर्मुहूर्तमें उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे । इस प्रकार यह सब व्यवस्था देखनेसे विदित होता है कि जिस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है उस समय स्त्रीवेद आदिकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । यहाँ बन्धकी अपेक्षा इन चारों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होनेका प्रश्न इसलिए नहीं उठता है, क्योंकि बन्धसे इनका उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व न प्राप्त होकर संक्रमणसे ही उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व प्राप्त होता है । इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना होता है और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कितना होता है यह स्पष्ट ही है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी तक होती है ।

§ ७४२ उसका खुलासा इस प्रकार है—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके समयमें ही जो स्त्रीवेदका बन्ध करके बन्धावलिले रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका स्त्रीवेदमे सक्रमण करता है उसके उस समय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धित होती है । और उस समय मिथ्यात्व नियमसे अनुत्कृष्ट होता है, क्योंकि वहा पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है । तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त ठहर कर और संक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको

होदि । एस विपण्यो सोससकसायाणमुकस्तहिदिं बंधिदुणिथियवेदमि संकामिदे  
 कदो । पुणो अण्णेण जीवेण सोससकसायाणं बद्धसमयुणुकस्तहिदिणा पडिहमा  
 समए चेव इत्थिबेदं बंधमाणेण तस्सुवरि संकामिदबचावसियादिककंतकसायहिदिणा  
 तेण इत्थिबेदस्स समयुणुकस्तहिदिधारण तथो जवरि अबहिदमंतोमुहुचमच्चिय  
 उक्कस्तसंकिसेसं पूरेदुण मिच्छत्तु कस्तहिदीए पबद्धाए एसो इत्थिबेदस्स विदियविपण्यो  
 होदि, पुम्मुत्तहिदिं पेक्खिदुण समयुणत्तादो । पुणो अण्णेण जीवेण सोससकसायाणं  
 बद्धसमयुणुकस्तहिदिणा पडिहमासमए इत्थिबेदं बंधमाणेण तदुवरि संकामिदबंधा  
 वसियादिककंतकसायहिदिणा अबहिदमंतोमुहुचमच्चिय उक्कस्तसंकिसेसं गंतुण मिच्छ-  
 तु कस्तहिदीए पबद्धाए इत्थिबेदस्स अण्णो विपण्यो होदि, पुम्मुत्तहिदिं पेक्खिदुण  
 दुसमयुणत्तादो । पुणो अण्णेण जीवेण बद्धसमयुणसोससकसायुकस्तहिदिणा  
 पडिहमासमए इत्थिबेदं बंधतण तदुवरि संकामिदबचावसियादिककंतकसायहिदिणा  
 अबहिदमंतोमुहुचमच्चिय उक्कस्तसंकिसेसं पूरेदुण मिच्छत्तु कस्तहिदीए पबद्धाए  
 इत्थिबेदस्स अण्णो विपण्यो होदि, पुम्मुत्तहिदिं पेक्खिदुण तिसमयुणत्तादो । एव चहु  
 सपयुण-बंधसमयुणादिकमेण सोससकसायाणमुकस्तहिदिं बंधाविय पडिहमासमए इत्थिबेदं  
 बंधाविय बंधावसियादिककंतकसायहिदिमित्थिबेदसरूपेण संकामिय मिच्छत्तु कस्तहिदिं

हेलते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । यह विषय सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बंधकर कसका  
 स्त्रीवेदमें संक्रमण करने पर प्राप्त होता है । पुनः जिसने सोलह कपायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट  
 स्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक बीच जब प्रतिभग्न होनेक समयमें ही स्त्रीवेदका  
 बन्ध करके उसमें बन्धावसिसे रहित कपायकी स्थितिका संक्रमण करता है तब यह स्त्रीवेदकी एक  
 समय कम उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होता हुआ इसके आगे अवस्थित अन्तर्मुहूर्त तक ठहर कर  
 और उत्कृष्ट संकलेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है । इस समय उसके  
 स्त्रीवेदका यह दूसरा विषय होता है क्योंकि पहलीकी स्थितिका हेलते हुए यह स्थिति एक समय  
 कम है । पुनः जिसने सोलह कपायोंकी दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है और प्रतिभग्न  
 होनेके समयमें स्त्रीवेदका बन्ध करते हुए उसमें बन्धावसिसे रहित कपायकी स्थितिका  
 संक्रमण किया है ऐसा कोई एक अन्य बीच अवस्थित अन्तर्मुहूर्त तक ठहर कर और उत्कृष्ट  
 संकलेशकी प्राप्त होकर यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो इस समय उसके  
 स्त्रीवेदका अन्य विषय प्राप्त होता है, क्योंकि पहलीकी स्थितिका हेलते हुए यह स्थिति दो  
 समय कम है । पुनः जिसने सोलह कपायोंकी तीन समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है और  
 प्रतिभग्न होनेके समयमें स्त्रीवेदका बन्ध करते हुए उसमें बन्धावसिसे रहित कपायकी स्थितिका  
 संक्रमण किया है ऐसा कोई एक अन्य बीच अवस्थित अन्तर्मुहूर्त ठहर कर और उत्कृष्ट संकलेशकी  
 पूर्ति करके यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो इस समय उसके स्त्रीवेदका  
 एक अन्य विषय प्राप्त होता है क्योंकि पहलीकी स्थितिको हलते हुए यह स्थिति तीन  
 समय कम है । इसी प्रकार चार समय कम पाँच समय कम इत्यादि क्रमसे पहले सोलह  
 कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर प्रतिभग्न समयमें स्त्रीवेदका बन्ध कराके और  
 बन्धावसिसे रहित कपायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे संक्रमण करके तदनन्तर अवस्थित अन्तर्मुहूर्त

सव्वकम्माणमक्कमेणुक्कस्सट्ठिदिवंधो ण होदि ? ण, सगसगविसेसपच्चएहि विणा उक्कस्स-  
संकिलेसमेत्तेण चेव सव्वपयडीणमुक्कस्सट्ठिदिवंधाभावादो । सव्वरुम्माणं जे विसेसपच्चया  
तेसिमक्कमेण संभवो किण्ण होदि ? को एवं भणदि ण होदि त्ति, किं तु कयाइ होदि,  
सव्वकम्माणमक्कमेण कम्हि वि काले उक्कस्सट्ठिदिवंधुवलंभादो । कयाइ ण होदि, कम्हि  
वि काले तदणुवलंभादो । के विसेसपच्चया ? जिणपडिमालयसंघाइरियपवयणपडिऊल-  
दादओ असंखेज्जलोगमेत्ता ।

§ ७३९, अणुक्कस्सवियप्पपदुप्पायणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि ।

\* उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमार्दि कादूण पल्लिदोवमस्स असंखे-  
ज्जदिभागेणूणा त्ति ।

§ ७४०, तं जहा—मिच्चत्तुक्कस्सट्ठिदिं वंधंतो सोलसकसायाणं समयूणुक्कस्स-  
ट्ठिदिं वंधदि । एवं गंतूण समयूणावाहाकंडएणुक्कस्सट्ठिदिं पि वंधदि । किमा-  
वाहाकंडयं णाम ? उक्कस्सावाहं विरलेऊण उक्कस्सट्ठिदिं समयंडं करिय विरलणरूवं

स्थिति होती है ।

**शंका**—उत्कृष्ट सकलेशके रहते हुए एक साथ सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध क्यों  
नहीं होता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि अपने अपने स्थितिबन्धके विशेष कारणोंको छोड़कर केवल  
उत्कृष्ट सकलेशमात्रसे सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है ।

**शंका**—सब कर्मोंके जो विशेष प्रत्यय हैं उनका एक साथ पाया जाना क्यों संभव नहीं है ?

**समाधान**—ऐसा कौन कहता है कि उनका एक साथ पाया जाना संभव नहीं है । किन्तु  
यदि सब प्रत्यय एक साथ होते हैं तो कदाचित् होते हैं, क्योंकि सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध  
किसी कालमें पाया भी जाता है । और कदाचित् सब प्रत्यय नहीं भी होते हैं, क्योंकि सब कर्मोंका  
उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसी कालमें नहीं भी पाया जाता है ।

**शंका**—वे विशेष प्रत्यय कौन हैं ?

**समाधान**—जिन प्रतिमा, जिनायल, संघ, आचार्य और प्रवचनके प्रतिकूल चलना आदि  
असंख्यात लोकप्रमाण विशेष प्रत्यय हैं ।

§ ७३६ अब अनुत्कृष्ट विकल्पोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर  
पण्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।

§ ७४० उसका खुलासा इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी बौधनेवाला जीव  
सोलह कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिकी बौधता है । इस प्रकार आगे जाकर वह जीव  
एक समय कम आवाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिकी भी बौधता है ।

**शंका**—आवाधाकाण्डक किसे कहते हैं ?

पदि दिण्ये तस्येगस्वधरिदमाबाहाकंडओ णाम । तस्य एगसमयमादिं क्कट्ठ भाव  
समयूणाबाहाकंडओ चि ताव कसायाण्यमुक्कस्सट्ठिदिसत्तयिण्यो होति । संपुण्णाबाहा  
कंडयमेया किण्ण होति ? ण, एकस्स कम्मस्स उनक्कस्सट्ठिदीए बज्झमाणाए सम्म  
कम्मार्ण बज्झमाणाणमुक्कस्साबाहाए चेव तस्य संभवादो । तं कुदो गम्भवं ? गुरुवपसादो  
टिडिदिदिहृद्वानमुत्तादो य ।

● इत्थि-पुरिस्सवेण-हस्स रवीणं थियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७४१ कुदो ? सोल्लसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिदिषे संते एवासि चट्ठुणं पयडीण  
बंधामावत्तो । ण च वंघेण विणा अट्ठिदकम्मोसु कसायाण्यमुक्कस्सट्ठिदी बंधावत्थियाए

समाधान—एकस आवापाका बिरलन करके और बिचलित राशिके प्रत्येक एक पर एकस  
स्थितिके समान कण्ड करके वेचस्वसे हे देन पर एक बिरलनके पति ओ राशि प्राप्त होती है  
उत्तेको एक आवापाकाण्डक कहते हैं ।

ऊर्मे कयामोके अनुत्तस स्थितिसत्त्वके विकस्य एक समयसे लेकर एक समय कम आवापा-  
काण्डक प्रमाण होते हैं ।

शंका—कयामोके अनुत्तस स्थितिसत्त्वके विकसन संपूर्ण आवापाकाण्डकप्रमाण क्यो  
नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं क्योंकि एक कर्मकी उत्तस स्थितिके कथ होने पर बंधनवाले सभी  
कर्मोंकी उत्तस आवापा ही वहाँ पर प्रमेव है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—गुरुवपेकसे जाना जाता है और स्थितिकम्बत्थानके प्रतिपादक सूत्रसे जाना  
जाता है ।

विशेषार्थ—पेसा नियम है कि किसी एक कर्मके उत्तस स्थितिकम्बके समय बंधनेवाले  
सब कर्मोंकी आवापा उत्तस ही होती है किन्तु स्थितिमें फरक भी रहता है । बाल यह है कि  
आवापाके एक एक विकस्यके प्रति पक्षके अर्भकवातर्भे मागयमात्र स्थितिविकस्य प्राप्त होते हैं  
अतः इस समय बंधनेवाले सब कर्मोंकी स्थिति उत्तस ही होनी चाहिये पेसा कोई नियम नहीं  
है । जिनके उत्तस स्थितिकम्बके कारण पाये जात हैं उनकी उत्तस स्थिति होती है और जिनके  
उत्तस स्थितिकम्बके कारण नहीं पाये जात हैं उनकी स्थिति अनुत्तस होती है । यह अनुत्तस स्थिति  
एक समय कम उत्तस स्थितिसे लेकर पक्षके अर्भकवातर्भे माग कम तक हो सकती है । यही  
कारण है कि जहाँ मिष्पात्वकी उत्तस स्थितिकम्बके समय सोल्लह कयामोकी स्थिति उत्तस और  
अनुत्तस दोनों प्रकारकी पतझाते है । तथा अनुत्तस स्थिति विकस्य एक समय कम आवापाकाण्डक  
प्रमाण बतसाते हैं । यहाँ आवापाकाण्डक प्रमाण विकस्योमेसे उत्तस स्थितिका एक विकस्य कम  
कर दिया है ।

● मिष्पात्वकी उत्कट स्थितिक समय सूत्रवेद पुरुषवेद, हास्य और रतिकी  
नियमसे अनुत्कट स्थिति होती है ।

§ ७४१ क्योंकि सोल्लह कयामोकी उत्तस स्थितिका कथ होते समय इन चार प्रवृत्तियोंका  
कथ नहीं जाता है । यदि कहा जाय कि जिन कर्मोंमें कथ नहीं हो रहा है किन्तु सत्तामें स्थित हैं

ऊणा संकमदि 'बंधे संकमदि' ति मुत्तेण सह विरोहादो । ण च कसायट्ठिदिं सगुवरि संकंतं मोत्त ण सगबंधेणेदासिं चट्ठहं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिसत होदि; दस-पण्णारस-सागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदीणमावलिगुणचालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तविरोहादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडा-कोडि ति ।

§ ७४२. तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए चेव इत्थिवेदं बंधाविय बंधावलिआदिक्कंतं कसायट्ठिदि उक्कस्समित्थिवेदम्मि संकामिदे इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तस्समए मिच्छत्तं णियमा अणुक्कस्सं, तत्थ तस्सुक्कस्सट्ठिदिबंधाभावादो । तदो अंतोमुहुत्तमच्छिय संकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्स-ट्ठिदीए पबद्धाए तक्काले इत्थिवेदट्ठिदी अप्पणो उक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा

उनमें बन्धावलिसे कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण हा जायगा, सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर 'बंधे संकामदि' इस सूत्रके साथ विरोध आता है । यदि कहा जाय कि कषायकी स्थितिका इनमें संक्रमण होकर जो इनकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है उसे छोड़कर अपने बन्धसे इन चारों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि दस और पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितियोंके एक आवलीकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण होनेमें विरोध आता है ।

विशेषार्थ—संक्रमणके पाँच भेद हैं । इनमेंसे अधःप्रवृत्त सक्रम जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उसमें ही अन्य सजातीय प्रकृतिका होता है । किन्तु मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते समय स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अतः सोलह कषायोंका पहले उत्कृष्टस्थिति बन्ध करावे और एक आवलि बाद स्त्रीवेद आदिका बन्ध करावे हुए उनमें एक आवलि कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण करावे । पुन अन्तर्मुहूर्तमें उत्कृष्ट सक्लेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे । इस प्रकार यह सब व्यवस्था देखनेसे विदित होता है कि जिस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है उस समय स्त्रीवेद आदिकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । यहाँ बन्धकी अपेक्षा इन चारों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होनेका प्रश्न इसलिए नहीं उठता है, क्योंकि बन्धसे इनका उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व न प्राप्त होकर संक्रमणसे ही उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व प्राप्त होता है । इनका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध कितना होता है और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कितना होता है यह स्पष्ट ही है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी तक होती है ।

§ ७४२ उसका खुलासा इस प्रकार है—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके समयमें ही जो स्त्रीवेदका बन्ध करके बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका स्त्रीवेदमें संक्रमण करता है उसके उस समय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । और उस समय मिथ्यात्व नियमसे अनुत्कृष्ट होता है, क्योंकि वहा पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है । तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त ठहर कर और संक्लेशकी पूति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको

होदि । एस बियणो सोससकसायाणमुक्कस्सहिदिं बधिद्विणितियेदम्मि संकामिदे  
 खदो । पुणो अण्णेणे जीवेण सोससकसायाणं बद्धसमयूणमुक्कस्सहिदिणा पढिहमा  
 समए पेय इत्थियेदं बंधमाणेण तस्सुवरि संकामिदबभावसियादिककतकसायहिदिणा  
 तेण इत्थियेदस्स समयूणमुक्कस्सहिदिधारएण तपो उवरि अबद्धिदमतोमुहुचमच्छिय  
 उक्कस्ससंकिलेसं पूरेद्वण मिच्छच्चुक्कस्सहिदीए पबद्धाप एसो इत्थियेदस्स विदियवियणो  
 होदि, पुष्पुत्तहिदिं पेक्खिद्वण समयूणचादो । पुणो अण्णेण जीवेण सोससकसायाणं  
 बद्धसमयूणमुक्कस्सहिदिणा पढिहमासमए इत्थियेदं बंधमाणेण तदुवरि संकामिदबंधा  
 वसियादिककतकसायहिदिणा अबद्धिदमतोमुहुचमच्छिय उक्कस्ससंकिलेसं गतुण मिच्छ  
 च्चुक्कस्सहिदीए पबद्धाप इत्थियेदस्स अण्णो वियणो होदि; पुष्पुत्तहिदिं पेक्खिद्वण  
 दुसमयूणचादो । पुणो अण्णेण जीवेण बद्धसमयूणसोससकसायुक्कस्सहिदिणा  
 पढिहमासमए इत्थियेदं बंधतण तदुवरि संकामिदबभावसियादिककतकसायहिदिणा  
 अबद्धिदमतोमुहुचमच्छिय उक्कस्ससंकिलेसं पूरेद्वण मिच्छच्चुक्कस्सहिदीए पबद्धाप  
 इत्थियेदस्स अण्णो वियणो होदि; पुष्पुत्तहिदिं पेक्खिद्वण विसमयूणचादो । एवं चदु  
 समयूण-बंधसमयूणादिकमेण सोससकसायाणमुक्कस्सहिदिं बधाविय पढिहमासमए इत्थियेदं  
 बधाविय बंधावसियादिककतकसायहिदिमितियेदसरूपेण संकामिय मिच्छच्चुक्कस्सहिदिं

बल्लवे हुए अन्तमुहुतं कम हाती है । यह विष्णु सोलह कथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर उसका  
 स्त्रीवस्त्रं संक्रमण करने पर प्राप्त होता है । पुनः जिसने सोलह कथाओंकी एक समय कम उत्कृष्ट  
 स्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक जीव जब प्रतिभन्त होनेके समयमें ही स्त्रीवस्त्रका  
 बन्ध करके उसमें बन्धावसिसे रहित कथायकी स्थितिका संक्रमण करता है तब वह जीववस्त्रकी एक  
 समय कम उत्कृष्ट स्थितिका धारक हाता हुआ इसके भागों अवस्थित अन्तमुहुतं तक ठहर कर  
 और उत्कृष्ट संकलेशकी पूर्ति करके मिष्प्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है । इस समय उसके  
 जीववस्त्रका यह वस्त्र विकस्य होता है, क्योंकि पहलेकी स्थितिका बल्लवे हुए यह स्थिति एक समय  
 कम है । पुनः जिसने सोलह कथाओंकी दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है और प्रतिभन्त  
 होनेके समयमें स्त्रीवस्त्रका बन्ध करते हुए उसमें बन्धावसिसे रहित कथायकी स्थितिका  
 संक्रमण किया है ऐसा कोई एक समय जाय अवस्थित अन्तमुहुतं तक ठहर कर और उत्कृष्ट  
 संकलेशको प्राप्त हीकर यदि मिष्प्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है ता उस समय उसके  
 स्त्रीवस्त्रका अन्य विकस्य प्राप्त हाता है, क्योंकि पहलेकी स्थितिका देवत्व हुए यह स्थिति दो  
 समय कम है । पुनः जिसने सोलह कथाओंकी तीन समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है और  
 प्रतिभन्त होनेके समयमें स्त्रीवस्त्रका बन्ध करते हुए उसमें बन्धावसिसे रहित कथायकी स्थितिका  
 संक्रमण किया है ऐसा कोई एक समय जीव अवस्थित अन्तमुहुतं ठहर कर और उत्कृष्ट संकलेशकी  
 पूर्ति करके यदि मिष्प्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है ता उस समय उसके स्त्रीवस्त्रका  
 एक समय विकस्य प्राप्त होता है क्योंकि पहलेकी स्थितिको देवत्व हुए यह स्थिति तीन  
 समय कम है । इसी प्रकार चार समय कम पाँच समय कम इत्यादि क्रमसे पहले सोलह  
 कथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर प्रतिभन्त समयमें स्त्रीवस्त्रका बन्ध करके और  
 बन्धावसिसे रहित कथायकी स्थितिका स्त्रीवस्त्ररूपसे संक्रमण करने तदनन्तर अवस्थित अन्तमुहुत



बंधाविय ओदारेदव्व जाव आवाधाकडएणूणं ति ।

§ ७४३. संपहि आवाहाकंडएणूणित्थिवेदट्टिदीए इच्छिज्जमाणाए सोलसकसा-  
याणमंतोमुहुत्तेणूणेण आवाहाकंडएणूणुक्कस्सट्टिदिं वंधिय पटिहज्जिदूणित्थिवेदे वज्झमाणा  
बंधावलियादीदकसायट्टिदिमित्थिवेदसरूवेण सकामिय अवट्टिदमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय उक्कस्स-  
संकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए पवद्धाए तक्काले इत्थिवेदमप्पणो ओघुक्कस्स-  
ट्टिदि पेक्खिदूण एगावाहाकंडएणूण होदि । संपहि एदस्सावाहाकडयस्स हेट्ठा ज  
ट्टिदिमिच्छदि तस्से ट्टिदीए उवरि सोलसकसायट्टिदिमंतोमुहुत्तव्वमहियं वधाविय  
पुव्विल्लविहाणं जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव इत्थिवेदपाओगसव्वजहणमंतोकोडाकोडि  
त्ति । एवं पुरिसवेद-इस्स-रदीणं पि परूवेदव्वं, विसेसाभावादो ।

❀ एवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुल्लाणं द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा  
किमुक्कस्सा ?

§ ७४४ सुगममेदं ।

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७४५. मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए वज्झमाणाए जदि सोलसकसायाणमुक्कस्स-  
ट्टिदिवंधो णत्थि तो णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुल्लाणं पि णत्थि उक्कस्सट्टिदिसंत-  
कम्मं, कसाएहिंतो एदासिं पयडीणमुक्कस्सट्टिदिसंतुप्पत्तीदो । मिच्छत्त-सोलसकसायाण-

कालके वाद उत्कृष्ट सक्त्वेशके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके एक आवाधाकाण्डकसे  
न्यून स्थितिके प्राप्त होने तक घटाते जाना चाहिये ।

§ ७४३ अब आवाधाकाण्डकसे कम स्त्रीवेदकी स्थितिके इच्छित होनेपर सोलह कपायोंकी  
अन्तर्मुहूर्त कम आवाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और प्रतिभन्न होकर स्त्रीवेद-  
का बन्ध करते समय बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे सक्रमण करके तदनन्तर  
अवस्थित अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर और उत्कृष्ट सक्त्वेशकी पूर्ति करके जो जीव मिथ्यात्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी ओच उत्कृष्ट स्थितिको  
देखते हुए एक आवाधाकाण्डक कम होती है । अब इस आवाधाकाण्डकके नीचे स्त्रीवेदकी  
जो स्थिति इच्छित हो उस स्थितिसे सोलह कपायोंकी स्थितिका अन्तर्मुहूर्त अधिक बन्ध कराके  
पूर्वोक्त विधिको जानकर उसके योग्य स्त्रीवेदकी सबसे जघन्य अन्तःकोडाकोड़ी स्थितिके प्राप्त  
होने तक स्थिति घटाता जावे । इसी प्रकार पुरुषवेद, हास्य और रतिका भी कथन करना चाहिये,  
क्योंकि उसमें इनमें कोई विशेषता नहीं है ।

❀ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और  
जुगुप्साकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७४४. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ७४५ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय यदि सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका  
बन्ध नहीं होता है तो नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म  
नहीं होता है, क्योंकि कपायोंसे इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होती है । मिथ्यात्व और

सुखस्तद्विदिवं सते नि एदासि पयडीणसुखस्तद्विदिसंतकम् मयमिच्छं; बन्धावसिप  
 र्मन्तरे बद्धकसायसुखस्तद्विदो ए संकमायावदो । बन्धावसिप्यादिकर्तकसायसमयपबद्धस्त  
 द्विदो ए एदासि पयडीणसुखरि संकंतावस्थाए यदि मिच्छत्तु सुखस्तद्विदिवं होदि तो  
 मिच्छत्तु सुखस्तद्विदिविहरीए सह एदासि पयडीणमनस्तद्विदिविहरी होदि । एवं  
 होदि चि काठण बइवसहमहारण उक्तस्मा वा अणुक्तस्मा वा होदि चि मणिदं ?

ॐ उक्तस्मादो अणुक्तस्मा समकणमार्थि काट्ठण जाय बीससागरोबम  
 कोडाकोडीओ पलियोबमस्त अससेवविभागेण कणाओ सि ।

॥ ७२६ ॥ एत्थ साव णवु सयवेदमस्सिद्वण सुचत्थविवरण कस्सामो । तं बह-  
 मिच्छत्तु सुखस्तद्विदिं बधिय सोलसकसायाणं समयणुक्तस्तद्विदिं बधिय पुणो बन्धावसि-  
 प्यादिकर्तकसायद्विदो ए णवु सयवेदसरूपेण संकामिज्जमाणावस्थाए यदि मिच्छत्तु सु-  
 खस्तद्विदिवं होदि तो णवु सयवेदस्त अणुक्तस्तद्विदिविहरी; सगोष्ठसुखस्तद्विदि  
 पेक्खिद्वण समयणुचावो । पुणो अण्णेण बीयेण कसायाणं दुसमकणसुखस्तद्विदिं बधिय  
 बध बसिप्यादिकर्तकसायद्विदो ए णवु सयवेदसरूपेण संकामिद्वण एत्थ मिच्छत्तु सुखस्त-  
 द्विदिवं सते णवु सयवेदस्त अणुक्तस्तद्विदिविहरी, सगोष्ठसुखस्तं पेक्खिद्वण दुसमयण  
 चावो । एवमेवेण कमेण सोलसकसायद्विदिं तिसमयणाविसरूपेण बन्धावसि बन्धावसि-  
 प्यादिकर्तकसायद्विदो ए णवु सयवेदसरूपेण संकामिप सुकवसमए मिच्छत्तु सुखस्तद्विदिं

सोलह कपायोकी उत्तुल स्थितिका कथ्य होने पर मा इन प्रकृतियोंका उत्तुल स्थितिसत्कर्म  
 मन्वीय है क्योंकि वही हुई कपायकी उत्तुल स्थितिका कथावलीके भीतर संक्रमण नहीं जाता है ।  
 तथा बन्धावसिसे रहित कपायके समकणसुखोंकी उत्तुल स्थितिका इन प्रकृतियोंमें संक्रमण होते  
 समय यदि मिध्यात्वका उत्तुल स्थितिकथ्य जाता है तो मिध्यात्वकी उत्तुल स्थितिविमर्शके साथ  
 इन प्रकृतियोंकी उत्तुल स्थितिबिभक्ति होती है । इस प्रकार मिध्यात्वकी उत्तुल स्थितिके समय  
 इन प्रकृतियोंकी उत्तुल और अनुत्तुल स्थिति प्राप्त होती है ऐसा समझ कर पठित्वपम भ्रमरकमे  
 'उत्तुल होती है या अनुत्तुल' यह कहा है ।

ॐ अनुत्तुल स्थिति एक समय कम अपनी उत्तुल स्थितिसे लेकर पन्थोपमका  
 असंख्यातवां भ्रम कम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है ।

॥ ७२७ ॥ यदा पले नपुंसकवक्त्रा जामय लेद्ध सृक्के अर्बक मृतासा करते हैं । यह इस  
 प्रकार है—मिध्यात्वकी उत्तुल स्थितिका कथ्य करके और सोलह कपायोकी एक समय कम उत्तुल  
 स्थितिका कथ्य करके तदनन्तर पन्थावसिसे रहित कपायकी स्थितिका नपुंसकवक्त्ररूपसे संक्रमण  
 होनेके समय यदि मिध्यात्वका उत्तुल स्थितिका कथ्य होता है तो नपुंसकवक्त्रकी अनुत्तुल स्थिति  
 विभक्ति होती है, क्योंकि उस समय अपनी उत्तुल स्थितिका देखते हुए यह एक समय कम होती  
 है । पुनः अन्य बांधके कपायकी दो समय कम उत्तुल स्थितिको बांधकर बन्धावसिसे रहित कपायकी  
 स्थितिका नपुंसकवक्त्ररूपसे संक्रमण जाये समय यदि मिध्यात्वका उत्तुल स्थितिकथ्य होता है तो  
 उस समय उसके नपुंसकवक्त्रकी अनुत्तुल स्थितिबिभक्ति होती है, क्योंकि अपनी ओर उत्तुल  
 स्थितिको देखते हुए यह दो समय कम होती है । इस प्रकार इसी क्रमसे सोलह कपायोकी  
 स्थितिका तीन समय कम आदिरूपसे कथ्य करके और बन्धावसिसे रहित कपायकी स्थितिका

बंधाविय ओदारेदव्वं जाव णवुंसयवेदस्स ओणुकस्सट्ठिदी एगेणावाधाकंडएण्णा जादा त्ति ।

§ ७४७. एदिस्से ट्ठिदीए उप्पत्तिविहाणं वुचदे । तज्जहा—मिच्छत्त-सोलसकसा-याणमावाहाकंडएण्णउक्कस्सट्ठिदिमावलियमेत्तकालं बंधाविय पुणो उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए तक्काले आवाधाकंडएण्णावलियादीदकसायट्ठिदि णवुंसयवेदस्सवरि संकामिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पवद्धाए णवुंसयवेदस्स अणुकस्स-ट्ठिदिबिहत्ती होदि । कुदा ? आवलियव्बहियआवाहाकंडएण्णचत्तालीससागरोवम-कोडाकोडिमेत्तट्ठिदितादो । एवं जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव वीसं सागरोवमकोडाकोडि-मेत्तट्ठिदि त्ति ।

§ ७४८. संपहि वीसंसागरोवमकोडाकोडिपमाणे इच्छिज्जमाणे सोलसकसायाण-मावलियव्बहियवीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिमावलियमेत्तकालं बंधाविय पुणो उक्कस्स-संकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिवज्जमाणसमए पुव्वुत्तावलियादीदकसायट्ठिदीए णवुंसयवेदस्सरूवेण संकंताए णव सयवेदट्ठिदी अणुकस्सा होदि; वीससागरोवम-कोडाकोडिपमाणत्तादो । पुणो समयूणावाहाकंडयमेत्तट्ठिदिमप्पणो बंधमस्सिदूणोदारिय गेण्हिदव्वं । एवमरदि-सोग-भय-दुगुछाण पि वत्तव्व, वीससागरोवमकोडाकोडिट्ठिदिबंधा-दीहि तत्तो विसेसाभावादो । एवं मिच्छत्तेण सह सव्वपयडीणं सण्णियासो गदो ।

नपुसकवेदरूपसे सक्रमण कराके तथा सक्रमणके समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके नपुसकवेदकी ओव उत्कृष्ट स्थिति एक आवाधाकाण्डक कम होने तक घटाते जाना चाहिये ।

§ ७४९. अब इस स्थितिके उत्पन्न होनेकी विधि कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी एक आवाधाकाण्डक न्यून उत्कृष्ट स्थितिका एक आवलि कालतक बन्ध कराके पुनः उत्कृष्ट सक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके उसी समय एक आवाधाकाण्डक कम और एक आवलि रहित कषायकी स्थितिका नपुसकवेदमे सक्रमण कराने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर नपुसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है, क्योंकि यह स्थिति एक आवलि अधिक आवाधाकाण्डक कम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण है । इसी प्रकार जानकर वीस कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक नपुसकवेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये ।

§ ७४८ अब बीस कोडाकोडी सागर स्थितिके इच्छित होने पर सोलह कषायोंकी एक आवलि अधिक बीस कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितिका एक आवलि कालतक बन्ध कराके पुनः उत्कृष्ट सक्लेशकी पूर्ति करके जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके उस समय पूर्वोक्त एक आवलिसे रहित कषायकी स्थितिका नपुसकवेदरूपसे सक्रमण हाने पर नपुसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि यह स्थिति बीस कोडाकोडी सागर है । पुनः अपने बन्धकी अपेक्षा एक समय कम आवाधाकाण्डक प्रमाण स्थितिको घटाकर ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि बीस कोडाकोडी सागर-प्रमाण स्थितिवन्ध आदिकी अपेक्षा नपुसकवेदसे इनमें कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार मिथ्यात्वके साथ सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

ॐ सम्मत्तस्त उक्तस्तद्विद्विहृतिविहृतिविहृति मिच्छास्त द्विद्विहृती  
किमुक्तस्त किमुक्तस्त ?

§ ७४९ सुगममेव ।

ॐ शिष्या अणुक्तस्त ।

§ ७५० कुतो ? सम्माद्विद्विहृति मिच्छास्तस्य वंशायवेण तत् तदुक्तस्तद्विहृती  
असंभवादो । न च पदसमयवेद्यसम्माद्विहृति मातृगणस्त्य सम्मत्तस्तुक्तस्तद्विहृति  
विहृती होदि, मिच्छाद्विहृति अपदिगहसम्मात्तकम्मे सम्मत्तस्तुवरि मिच्छात्तद्विहृती  
संक्रमाभावादो ।

ॐ उक्तस्तस्तो अणुक्तस्तस्तो अतोमुक्तस्त ।

§ ७५१ कुतो ? मिच्छात्तुक्तस्तद्विहृति वंशिय पदिहृतिद्विहृति अंतोमुक्तस्तमच्छिप  
वेदगसम्मात्त पदिहृत्तपदसमय मिच्छात्तद्विहृती सम्मत्तस्तुवरि संक्रताय सम्मत्तस्तु  
क्तस्तद्विहृतिविहृती हादि, तत्त मिच्छात्तद्विहृती सगोमुक्तस्तद्विहृति ऐक्यद्विहृति अंतोमुक्त  
स्तुक्तस्तुक्तस्तो ।

ॐ शिष्य अणुक्तो शिष्यो ।

§ ७५२ सम्मत्तद्विहृती उक्तस्तिसयाय संतीय नहा अणोसि कम्माभममुक्तस्तद्विहृती  
अणोशिविष्या तदा मिच्छात्तुक्तस्तद्विहृती शानोमविष्या; सम्मत्तुक्तस्तद्विहृती एय  
विष्यत्तम्मात्तुक्तस्तद्विहृती ।

ॐ सम्मत्तकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्तिवाचो जीवके मिध्यात्वकी स्थिति  
ह्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७४८, यह सूत्र सुगम है ।

ॐ नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७४९ क्योंकि सम्मत्तकी मिध्यात्वका वन्ध नहीं होता, अतएव वहाँ उसकी उत्कृष्ट स्थिति  
नहीं हो सकती और प्रथम समयवर्ती वेदकसम्मत्तकी जो वन्ध सम्मत्तकी उत्कृष्ट स्थिति-  
विमक्ति अन्वयवादी नहीं क्योंकि मिध्यात्वकी जीवके सम्मत्त प्रकृति पतङ्गप्रपन्नेके अपावय है,  
अतः उसके सम्मत्तमें मिध्यात्वकी स्थितिका संक्रमाव नहीं होता है ।

ॐ यह अनुत्कृष्ट स्थितिविमक्ति भवनी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है ।

§ ७५१ क्योंकि मिध्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिका वन्ध करने और मिध्यात्वसे निवृत्त होकर  
तत्ता वहाँ अन्तर्मुहूर्तका एक ठहरकर का वेदकसम्मत्तके प्राप्त होनेके पहले समयमें मिध्यात्वकी  
स्थितिका सम्मत्तमें संक्रमण करता है उसके सम्मत्तकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति होती है । पर  
वहाँ मिध्यात्वकी स्थिति अपनी ओर उत्कृष्ट स्थितिके देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम पाई जाती है ।

ॐ यहाँ मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका इससे अविरक्त अन्य विकल्प  
नहीं होता ।

§ ७५२ सम्मत्तकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए जिस प्रकार अन्य कर्मोंको अनुत्कृष्ट स्थिति  
अनेक प्रकारकी होती है उस प्रकार मिध्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अनेक प्रकारकी नहीं होती है,

❀ सम्मामिच्छत्तद्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा ?

§ ७५३. सुगममेदं ।

❀ णियमा उक्कस्सा ।

§ ७५४. कुदो ? अंतोमुहुत्तूणमत्तरिमागरोवमकोडाकोडिमेत्तमिच्छत्तद्विदीए पढम-

समयवेदगसम्मादिविम्भि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तमरूवेण जुगवं संकंतिदमणादो । सम्मा-  
मिच्छत्तस्सुदयणिसेगो सगमरूवेण णत्थि; थिवुक्कमंक्रमेण सम्मत्तुदयणिसेगसरूवेण  
परिणदत्तादो । तम्हा सम्मत्तुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण सम्मामिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए  
एगणिसेगेण्णाए होदव्व । ण च उदयणिसेगस्स सगसरूवेण धरणद्वमद्वावीससंत-  
कम्मियमिच्छाइदी तप्पाओग्गुक्कस्समिच्छत्तद्विदिमंतकम्मिओ सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जावेदुं  
सक्किज्जइ, सम्मामिच्छाइद्विदिम दसणतियस्स संकमाभावेण दोण्हं पि अणुक्कस्सद्विदि-  
प्पसंगादो त्ति ? ण, उक्कस्सद्विदीए पक्कंताए काल मोत्तूण णिसेयाणं पहाणत्ता-  
भावादो । कत्थ पुण णिसेयाणं पहाणत्तं ? जहण्णद्विदीए । तं कुदो णव्वदे ? छण्णो-  
कसायजहण्णद्विदीए अंतोमुहुत्तावद्वाणपरूवणमुत्तादो । ण कोहसंजलणेण वियहिचारो,

अन्यथा सम्यक्त्वकी उत्कृष्टस्थिति एक प्रकारकी नहीं बन सकती है ।

❀ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७५३ यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे उत्कृष्ट होती है ।

§ ७५४ क्योंकि अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोडी सागरप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिका वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे एक साथ सक्रमण देखा जाता है ।

शंका—सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका उदयनिपेक अपने रूपसे उदयमें नहीं आता है, क्योंकि स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उसका सम्यक्त्वके उदयनिपेकरूपसे परिमाण हो जाता है । अतः सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक निपेक कम होनी चाहिये । यदि कहा जाय कि जिससे सम्यग्मिथ्यात्वका उदयनिपेक अपने रूपसे प्राप्त हो जाय इसलिये अद्वाइस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवकी तत्प्रायोग्य मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त करा दिया जाय सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता, अतः वहा दोनोंकी ही अनुत्कृष्ट स्थितिका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिमें कालको छोड़कर निपेकोंकी प्रधानता नहीं है ।

शंका—तो फिर निपेकोंकी प्रधानता कहाँ पर है ?

समाधान—जघन्य स्थितिमें ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—छद्म नोकपायोंकी जघन्य स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त है इस बातका कथन करने-

एतत्समयपर्यन्तं तिस्रेण गणहं समगुणदोमान्त्रियमेतद्वाणमुपरि गंतुं नृणां सामिच  
प्राणादो । तदो सम्मापिच्छत्तं गियमा उक्तस्तं ति सिद्धं ।

॥ सोलसकस्ताप-पावणोक्तसायायं द्विविदिविहृत्पीठं किमुक्तस्ता  
अणुक्तस्ता ?

§ ७५५ सुगममेवं ।

॥ गियमा अणुक्तस्ता ।

§ ७५६ कुदो ! सम्मत्तुक्तस्ताद्विविदिविहृत्पिण्डादी पदमसमयवेद्यसम्माद्विद्विम्भि  
सोक्तस्तस्ताप-पावणोक्तसायाणमुक्तस्ताद्विविदिविहृत्पावादादो । सो वि कुदो ! सगविसेस  
कारमुक्तस्तासक्तस्तापुविद्यमिच्छत्तुदयामावादादो । न च कारणेण विणा कर्त्तव्यं संभव,  
अभ्यसगादो ।

॥ उक्तस्तावो अणुक्तस्ता अतोमुक्तत्वात्पि कारुण जाय पक्षिवोचमस्त  
असत्वेऽपि भागेणैवा स्ति ।

§ ७५७ तं अहं—अहोवीसतंतकम्पिणं बदमिच्छत्त-सोक्तस्ततापुक्तस्ता

बाह्ये सूत्रसे जाना जाता है ।

यदि कहा जाय कि एक कर्मका कोपसंज्ञकमसे अभिचार हो जायगा सो भी बात नहीं  
है क्योंकि यहाँ एक सम्यग्ज्ञानके विषयके प्रत्यक्ष करनेके लिये एक समय कम हो आवश्यक  
काल कम आकर बचन स्वामित्वकी प्रधानता है ।

अतः सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमर्शिके समय सम्यग्मिथ्यात्व नियमसे उत्कृष्ट स्थिति-  
वाला होता है यह बात सिद्ध हुई ।

॥ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कपायोंकी और नौ नोकपायों  
की स्थितिविमर्शिक क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७५८ यह सूत्र सुगम है ।

॥ नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७५९ क्योंकि सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमर्शिकवाले प्रथम समयवर्ती वेदकसम्यग्मिथ्या  
कीवले सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है ।

शुद्धा—इस बीजके सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध क्यों नहीं  
होता है ?

समाधान—क्योंकि सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जो विशेष  
कारण उत्कृष्ट संज्ञासे सम्बन्ध रहनवाला मिथ्यात्वका अर्थ है वह यहाँ पर नहीं पाया जाता है ।  
यदि कहा जाय कि कारणके बिना भी कार्य हो जायगा सो भी बात नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर  
अतिप्रसंग होय जाता है ।

॥ यह अनुत्कृष्ट स्थितिविमर्शिक अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त  
क्रमसे लेकर पन्ध्रवा असंख्यातवाँ भाग कम तक होती है ।

§ ७६० कुतासा इस प्रकार है—जिसन मिथ्यात्व और सातह कपायों की उत्कृष्ट स्थिति

द्विदिणा वंधावल्याइक्कंतकसायद्विटिसंकमेणुक्कस्सीकयणवणोकसाएण जहण्णपडि-  
हग्गद्धमच्छिय सम्मत्ते पडिवण्णे सम्मत्तुक्कस्सद्विदिविहृत्ती हांदि । तवक्काले सोलस-  
कसाय-णवणोकसायाणुक्कस्सद्विदी अंतोमुद्दुत्तूणा; जहण्णपडिहग्गद्धाए अधद्विटिगलणाए  
गलित्तादो । मिच्छत्तुक्कस्सद्विदिवंधकाले सोलसकसायाणं समयूणुक्कस्सद्विदीए  
पवद्धाए अण्णा सोलसकसाय-णवणोकसायाणमणुक्कस्सद्विदी होदि; पुण्णद्विदिं पेक्खि-  
दूण समयूणत्तादो । एवं दुममयूण-तिसमयूणादिकमेण ओदारेदन्व जाव समयूणावाहा-  
कंडएणुक्कस्सद्विदिं ति । तत्थ सच्चपच्छिमवियप्पो बुचदे । तज्जा— मिच्छत्तुक्कस्स-  
द्विदिवंधेण मह कसायाणं समयूणावाहाकंडएणुक्कस्सद्विदिं वंभिय अवद्विटि-  
पडिहग्गद्धमधद्विटिगलणाए गालिय सम्मत्ते पडिवण्णे सोलसकसाय-णवणोकसायाणं  
द्विदी सगुक्कस्सद्विदिं पेक्खिदूण समयूणावाहाकंडएण जहण्णपडिहग्गद्धाए च ऊणा ।  
एत्तो हेट्ठा णोदारेदुं सक्किज्जइ, ओदारिदे सम्मत्तुक्कस्सद्विदिविणासादो ।

❀ एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि ।

§ ७५८. जहा सम्मत्तुक्कस्सद्विदिणिरोह काऊण अवसेसकम्मद्विदीणं सण्णियासो  
कदो तहा सम्मामिच्छत्तुक्कस्सद्विदिणिरोहं काऊण सेसकम्मद्विदीणं सण्णियासो कायव्वो,

बांधी हैं और बन्धावलिके बाद जिसने कपायकी स्थितिका सक्रमण करके नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट  
स्थिति की है ऐसा अट्टाईस प्रकृतियोंका सत्कर्मवाला जीव यदि जघन्य प्रतिभग्नकाल तक  
मिथ्यात्वमे रहकर सम्यक्त्वकी प्राप्त हुआ तो उस समय उसके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति  
होती है और उसी समय उसके सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त  
कम होती है, क्योंकि इसके जघन्य प्रतिभग्न काल अध स्थितिगलनाके द्वारा गल चुका है । तथा  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सोलह कपायों की एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके  
बन्ध होने पर सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अन्य  
अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि पहलेकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति एक समय कम है ।  
इसी प्रकार दो समय कम, तीन समय कम आदि क्रमसे एक समय कम आवाधा काण्डकसे न्यून  
उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थितिको घटाते जाना  
चाहिये । वहाँ अव सत्रसे अन्तिम चिकल्प कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थिति  
बन्धके साथ कपायोंकी एक समय कम आवाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर  
उदन्ततर अवस्थित प्रतिभग्नकालको अधस्थितिगलनाके द्वारा गलाकर इस जीवके सम्यक्त्वके  
प्राप्त होने पर सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक  
समय कम आवाधाकाण्डक और जघन्य प्रतिभग्न काल प्रमाण कम होती है । यहा सोलह कपाय  
और नौ नोकपायोंकी स्थितिको इससे और कम नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इनकी स्थितिको  
इससे और कम करने पर सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका विनाश हो जाता है ।

❀ इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर शेष प्रकृतियों  
की स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिये ।

§ ७५८ जिस प्रकार सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर अर्थात् सम्यक्त्वकी  
उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए शेष कर्माँकी स्थितियोंका सन्निकर्ष कहा उसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी





§ ७६२. तं जहा—मिच्छत्त-सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गसमए चेव इत्थिवेदवधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए इत्थिवेदस्सुवेण संकामिदाए इत्थिवेदस्सुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तक्काले मिच्छत्तं समयूणं होदि; उक्कस्सट्ठिदीदी अधट्ठिदिगलणाए गलिदेगसमयत्तादो । संपहि सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले मिच्छत्तस्स-समयूणक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेदं वधतेण कसायट्ठिदीए तस्सरुवेण संकामिदाए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तस्ममए मिच्छत्तस्स अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती; सणुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिवदूण दुसमयूणत्तादो । एवं तिसमयूणादिकमेण मिच्छत्तमोदारेयव्वं जाव आवाहाकंडएण्णट्ठिदिं परं ति । पुणो वि आवाहाकंडयस्म हेट्ठा मिच्छत्तं समज्जणावलियमेत्तमोदरदि । त जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिमंतो-सुहुत्तमेत्तमावलियमेत्तं वा काल वंधतेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदी वि समयूणावाहाकंडएण्णा वद्धा । पुणो पडिहग्गसमए इत्थिवेदं वंधतेण वधावलियादीदकसायट्ठिदी तस्सरुवेण संकामिदा ताथे इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । एवं पडिहग्गावलियमेत्तकाल-मिथिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती चेव; वधगद्धाए चरिमावलियमेत्तुक्कस्सट्ठिदीण तत्थ संकंतिदसणादो । मिच्छत्तं पुण पडिहग्गपढमसमए आवाहाकंडएण्ण विदिसमए तेण समयाहिण तदियसमए तेण दुसमयाहिण एवं णेदव्वं जाव पडिहग्गावलियचरिम-

§ ७६२. उसका खुलासा इस प्रकार है—जो मिथ्यात्व और सालह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्नकालके भीतर ही स्त्रीवेदका बन्ध करता हुआ बन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे सक्रमण करता है उसके स्त्रीवेदका उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । तथा उस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि इसकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अध.स्थितिगलनाके द्वारा एक समय गल गया है । अब सोलह कपायों की उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय मिथ्यात्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बाधकर प्रतिभग्न कालके भीतर स्त्रीवेदको बाधते हुए किसी जीवके कपायकी स्थितिके स्त्रीवेदरूपसे संक्रामित होने पर जिससमय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है उस समय मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है, क्योंकि अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए यह दो समय कम होती है । इसी प्रकार तीन समय कम इत्यादि क्रम से आवाधाकाण्डक प्रमाण कम स्थितिके प्राप्त होने तक मिथ्यात्वकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । तथा इसके बाद भी आवाधाकाण्डके नीचे मिथ्यात्वकी स्थितिको एक समय कम आवलिप्रमाण और कम करना चाहिये । खुलासा इस प्रकार है—सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको एक अन्तर्मुहूर्तकाल तक या एक आवलि कालतक बाधते हुए किसी जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति भी एक समयकम आवाधाकाण्डकप्रमाण न्यून बाधी । पुन प्रतिभग्नकालके भीतर स्त्रीवेदका बंध करते हुए उस जीवने बन्धावलिसे रहित कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे सक्रमण किया तब उस जीवके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । इस प्रकार प्रति-भग्नकालके एक आवलि काल तक स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति ही होती है, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धकालमें अन्तिम आवलिप्रमाण कपायकी उत्कृष्ट स्थितियोंका स्त्रीवेदमें संक्रमण देखा जाता है । तथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रतिभग्नकालके पहले समयमें तो एक आवाधाकाण्डकप्रमाण कम होती है, दूसरे समयमें एक समय अधिक एक आवाधाकाण्डकप्रमाण

समञ्जीति । नवरि तस्य मिच्छासुखस्तद्विदी ममयूणावस्थित्यम्भरियभाषाहाकटण्ण  
ऊणा होदि । इदो ? वंषेण समयूणाभाहाकटण्णमिच्छासुखस्तद्विदी पुणो नि अघ  
द्विदिगलणाए आबल्लियमेवद्विदीणं परिहाणिदंमणादा ।

⊗ सम्मत्त-सम्माभिच्छाणा द्विदिनिहृती किमुपस्सा अणुपस्सा ?

§ ७६३ सुगममेदं ।

⊗ शियमा अणुपस्सा ।

§ ७६४ मिच्छादिद्विदि सम्मत्त-सम्माभिच्छाणमुपकस्मद्विदीए अभावादा ।

ए प इत्येवेदस्स मिच्छादिद्वि मोत्त ण सम्माद्विदिम्भ उक्कस्सद्विदिनिहृती हादि; तस्य  
पवामावेणित्थिपदस्स पडिहग्गचामावादो कसायद्विदीए वि तस्य उक्कस्सचामावादो ।

⊗ उक्कस्सावो अणुपस्सा अंतोमुहुत्तणमार्दि कादूण जाय एगा  
द्विदि ति ।

§ ७६५ तं वहा—मिच्छासुखस्तद्विदि वधिय पडिहग्गो हादूवा सम्मत्तं पचूण तस्य  
सम्मत्त-सम्माभिच्छाणमुपकस्सद्विदिनिहृत्तिआ हादूण सम्मत्तेणतामुहुत्तमच्चिय मिच्छासु  
खंणूण सम्मत्तवग्गेण कल्लण संकिस्सम गंतूण सोल्लसकसापाणमंगसमयमावस्थियमत्तकालं

कम हाती हे और तीसर समयम हो समय अधिक एक आवापत्तवत्तकममाय कम हाती हे ।  
इस प्रकार प्रतिमान कल्लकी एक आबल्लिके अन्तिम समय तक मिच्छात्वकी स्थिति पटल जाना  
पड़िये । इतनी विशेषता है कि वहाँ पर मिच्छात्वकी वृत्त्य स्थिति एक समय कम आबल्लिप्रमाण  
कल्लसे अधिक एक आवापत्तवत्तक कल्लप्रमाण कम हाता है, क्योंकि यन्त्रकी जपड़ा एक समय  
कम आवापत्तवत्तक कल्लप्रमाण कम मिच्छात्वकी वृत्त्य स्थितिमेंसे अवास्थितिगतनानक द्वारा  
आबल्लिप्रमाण स्थितियोंकी हानि और देखी जागी है ।

⊗ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिच्छात्वकी स्थिति  
विमक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६६ वह सूत्र सुगम है ।

⊗ नियमसे अनुत्कृष्ट हाती है ।

§ ७६७ क्योंकि मिच्छाद्विदि सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिच्छात्वकी वृत्त्य स्थिति नहीं पाइ  
जाती है । यदि कहा जाय कि मिच्छाद्विदि वृत्त्य सम्पत्तिमिच्छात्वकी वृत्त्य स्थितिविमक्ति  
रही आब सा भी बाग नहीं है क्योंकि सम्पत्तिमिच्छात्वकी वृत्त्य स्थिति नहीं जाना है अतः  
वहाँ पर स्त्रीवेदका पतनप्रमाण नहीं पाया जाता है । तथा वहाँ पर कयावकी स्थिति भी वृत्त्य  
नहीं हाती है ।

⊗ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमस  
लेकर एक स्थिति तक होती है ।

§ ७६८ उसका गुणमा इस प्रकार है—आ नीव मिच्छात्वकी वृत्त्य स्थितिका वर्यवर,  
और प्रतिमान हाकर, तदन्तर सम्पत्त्वका प्रहाय करके कमसे प्रथम समयमें सम्पत्त्व और सम्प  
त्तिमिच्छात्वकी वृत्त्य विमक्तिका धारक हाकर तथा सम्पत्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त बाज तक रहकर  
तदन्तर मिच्छात्वमें जाकर और सवम जपय्य कात्रक द्वारा संज्ञाकी पूर्ति करके सातह कयावो-

वा उक्कस्मट्टिदि वंधिय पडिहग्गपढमसमए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्टिदिहत्ती होदि । तक्काले सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमणुक्कस्मट्टिदी; सगुक्कस्सट्टिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तू-एत्तादो । सेमं जहा मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदीए गिरुद्धाए सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताण सण्णियासो कदो तहा इत्थिवेदुक्कस्सट्टिदीए गिरुद्धाए वि तासिं पयडीण द्विदीए सण्णियासो कायव्वो; विसेसाभावादो ।

❀ एवरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा त्ति ।

§ ७६६, अतोमुहुत्तूणुक्कस्सट्टिदिप्पहुडि जावेगा द्विदि त्ति सव्वट्टिदीहि सह सण्णियासे पुव्वसुत्तेण सपत्ते तस्सापवादट्ठमेदं सुत्तमागद । चरिमुव्वेल्लणकंडयम्मि उक्कीरणद्धामेत्ताओ फालीओ होंति । एत्तियमेत्ताओ फालीओ होंति त्ति कुदो णव्वदे ? चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा त्ति एदम्हादो सुत्तादो । ण च एगसमणण द्विदिखंडए पदंते संते 'चरिमफालीए ऊणा' त्ति णिद्देसो जुज्जदे; एक्कम्मि चारिमा-चरिमववहारभावादो । होदु णाम फालीणं बहुत्तसिद्धी, ताओ उक्कीरणद्धामेत्ताओ त्ति कथं णव्वदे ? द्विदिदंडयणिवदणकालस्म उक्कीरणद्धाववएसण्णहाणुववत्तीदो । ण च

की एक समय तक या एक आवलि काल तक उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है उसके प्रतिभग्न होनेके प्रथम समयमें स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । तथा उस समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति हांती है, क्योंकि वह अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । आगे जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका रोक कर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी शेष स्थितियोंका सन्निकर्ष किया है उसी प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिको रोक कर भी उन प्रकृतियोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिये, क्योंकि दानोमें कोई विशेषता नहीं है ।

❀ किन्तु इतनी विशेषता है कि वह अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति अन्तिम उद्वेलना काण्डककी अन्तिम फालिसे न्यून होती है ।

§ ७६६ अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थितितक अनुत्कृष्ट स्थिति बिभक्ति होती है । इस प्रकार पूर्वे सूत्र वचनसे सब स्थितियोंके साथ सन्निकर्षके प्राप्त होने पर उसके अपवादके लिये यह सूत्र आया है । अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकमें उत्कीरणा काल प्रमाण फालिया होती हैं ।

शंका—इतनी फालिया होती हैं यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—'चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा' इस सूत्र वचनसे जाना जाता है । यदि एक समयके द्वारा स्थितिकाण्डकका पतन स्वीकार किया जाय तो 'चरिमफालीए ऊणा' यह निर्देश नहीं बन सकता है, क्योंकि एकमें अन्तिम और अनन्तिम इस प्रकारका व्यवहार नहीं बन सकता है ।

शंका—फालिया बहुत होती हैं यह भले ही सिद्ध हो जाओ परन्तु वे उत्कीरणकाल प्रमाण होती हैं यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—यदि फालिया उत्कीरण काल प्रमाण न मानी जाय तो स्थितिकाण्डकके पतन होनेके कालकी उत्कीरण काल यह संज्ञा नहीं बन सकती है । इससे जाना जाता है कि फालिया

हिदिपदेसाणमुकीरणमकुणमाणए अद्याए उअकीरणद्या पि ववएसो बबदे । आणस्विया  
एसा सण्णा, आगमसव्वसण्णाणमत्ताणुगयाणमुवर्त्तमादो । एदं सुत्त देसामासियं ति  
क्काऊण सव्वहिदिहृषीयाणि अंतोमुहुत्तेण पिबदंति पि वेत्तव्वं । ण समुग्घादगद  
केवलहिदिहृषीएहि विपहिचारो; केवलीणमकेवलीहि साहम्माभाषादो ।

॥ ७६७ ॥ चरिममुब्बेसणकडयस्म चरिमफालीए नचिया णिसेया तथियमेचहिदीओ  
मोत्त ण अचियाओ सेसहिदीओ तथियमेत्ता चेव सण्णियासवियप्पा होति । चरिम  
फालिमेत्ता किप्प अद्या ? ण, तथियमेचहिदीसु एगवारण पिबदिदासु मिच्छत्तुक्कस्स  
हिदीए सह पदेक्कं तंहिदीणं सण्णियासासुवर्त्तमादो । ण तदुवरिमादिमुब्बेसणकड  
एहि विपहिचारो, तेसि कडयाणमबहिदभायामाभावेण सव्वणिसेगाणं मिक्कत्तुक्कस्स  
हिदीए सह सण्णियासुवर्त्तमादो । ण चरिममुब्बेसणकडयस्मि बहण्णमि आयाम पदि  
अणियमो; तिकासविसयासेसमीवेसु चरिममुब्बेसणबहण्णकडयापापस्स एगस्सुवचादो ।  
एद दो णप्पदे ? एहस्स सुत्तणिहंसस्म अण्णहाणुपवसीदो ।

उत्कीर्य कालप्रमाण होती है । तथा स्थितिगत प्रयत्नोंकी उत्कीरणा नहीं करने पर कलको  
राकीर्यकला यह संज्ञा ही नहीं आ सकती । यदि कहा जाय कि यह संज्ञा निष्कल है, सो भी  
नाह नहीं है क्योंकि आभामिक समी संज्ञार्थ अवैक्य अनुसरण करनेवाली होती है ।

यह सूत्र वैशामयैक है ऐसा समझकर सब स्थितिकण्डकोंका पतन अन्तमुत्तं कालक द्वारा  
होता है ऐसा म्हाय करना चाहिये । यदि कहा जाय कि ऐसा मानने पर समुद्घातगत केवलीके  
स्थितिकण्डकोंके साथ व्यभिचार आता है सो भी नाह नहीं है क्योंकि केवलियोंकी इतर  
व्यवस्थाके साथ समानता नहीं पाई जाती है ।

॥ ७६७ ॥ अन्तिम छोलनाकाण्डकी अन्तिम अक्षिके वितने निम्न होते हैं । कतनी स्थिति-  
योंको जीवकर दो वितनी स्थितियाँ हों वतने ही सन्निकर्ष विकल्प होत हैं ।

संज्ञा—अन्तिम आभामिका सन्निकर्षविकल्प क्यों नहीं प्राप्त होते हैं ।

समाधान—नहीं क्योंकि वतनी स्थितियोंका एक बारमें पतन हो जाता है इसलिये  
मिथ्यात्वकी अदृष्ट स्थितिके साथ वन्नी से प्रत्यक्ष स्थितिका सन्निकर्ष नहीं पाया । है ।

यदि कहा जाय कि इसप्रकार तो इसके ऊपरके छोलनाकाण्डके अन्तिम प्रथम छोलनाकाण्डक  
तक समी छोलनाकाण्डकोंके साथ व्यभिचार हो जायगा सो भी नाह नहीं है क्योंकि उन काण्डकोंका  
अवस्थित आत्मा नहीं पाया जाता इसलिये उनके साथ निषेधोंका मिथ्यात्वकी अदृष्ट स्थितिके  
साथ सन्निकर्ष बन जाता है । यदि कहा जाय कि अल्प अन्तिम छोलनाकाण्डकमें आभामिका  
कोई निम्न नहीं है सो भी नाह नहीं है, क्योंकि जिहासवर्ती सब बीजोंमें अल्प अन्तिम  
छोलनाकाण्डका आत्मा एकसा ही होता है ।

प्रश्न—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इस सूत्रका निर्णय अन्यथा बन नहीं सकता ना इससे जाना जाता है कि  
अल्प अन्तिम छोलना काण्डकका आत्मा एकसा होता है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रकर यह है कि मिथ्यात्व आदिकी अदृष्ट स्थितिकाले जीवके सम्पत्त्य  
और सम्पत्तिमत्त्वकी स्थिति क्या अदृष्ट होती है या अनुत्तल ? इसका जो उत्तर दिया है उसका

भाव यह है कि नियमसे अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्राप्त होती है और उक्त दोनों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति वेदरुसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें सम्भव है, अतः मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति तो हो नहीं सकती । हों अनुत्कृष्ट स्थिति अवश्य सम्भव है सो भी यह अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक जानना चाहिये । किन्तु इसका एक अपवाद है । वात यह है कि सब प्रकृतियोंके प्रथमादि स्थितिकाण्डक सम और विषम दोनों प्रकारके होते हैं । इसलिये उन स्थितिकाण्डकोंमें प्राप्त स्थितिचक्रणोंके साथ नाना जीवोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष बन जाता है । किन्तु अन्तिम जघन्य स्थितिकाण्डक एक समान होता है । अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व सन्त्यन्धी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिमें जितने निपेक्ष सम्भव हैं उतने स्थितिचक्रण सन्निकर्षमें नहीं प्राप्त होते, क्योंकि उनका पतन क्रमसे न होकर एक समयमें हो जाता है । इस पर एक स्थितिकाण्डकमें प्राप्त होनेवाली फालियों उत्कीरणकालकी सार्थकता और समुद्घातको प्राप्त हुए केवलीके स्थितिकाण्डके साथ आनेवाला व्यभिचारका निराकरण इनका विचार किया गया है । पहली और दूसरी वातका विचार करते हुए बतलाया है कि एक स्थितिकाण्डकमें एक फालि न होकर अनेक फालियाँ होती हैं । प्रमाण रूपमें 'एवमिदं चरिमुत्वेत्तल्लणकडयचरिमफालीए अण्णा' यही सूत्र उपस्थित किया गया है । इस सूत्रमें फालिके साथ चरम विशेषण आया है इसमें प्रतीत होता है कि एक स्थितिकाण्डकमें अनेक फालियाँ होती हैं । अन्यथा फालिको चरम विशेषण देनेकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि एकमें चरम और अचरम यह व्यवहार नहीं बन सकता है । तो फिर वे कितनी होती हैं । इस श्रुतिके होने पर बतलाया है कि स्थितिकाण्डकका जितना उत्कीरण काल होता है उतनी फालियाँ होती हैं । इसका यह तात्पर्य है कि उत्कीरण कालके एक-एक समयमें एक-एक फालिका पतन होता है । यहाँ फालि शब्द फॉक इस अर्थमें आया है । जैसे लडकीके चारने पर उसमें अनेक फलक या स्तर निकलते हैं उसी प्रकार स्थितिकाण्डकका पतन होते समय विवक्षित स्थितिकाण्डकके अनेक स्तर या फलक हो जाते हैं । उनमेंसे एक-एक फलकका एक-एक समयमें पतन होता है । इस प्रकार इन फालियों के पतनमें कितना समय लगता है उस सब कालको उत्कीरणकाल कहते हैं । उत्कीरणका अर्थ ढकीरना है और इसमें जो काल लगता है उसे उत्कीरणकाल कहते हैं । भावार्थ यह है कि एक स्थितिकाण्डकके पतनका काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । इसलिये उत्कीरण कालका प्रमाण भी इतना ही होता है । और एक स्थितिकाण्डकमें फालियाँ भी उक्तप्रमाण ही होती हैं । परन्तु प्रत्येक फालि स्थितिकाण्डकके आयामप्रमाण होती है । और तभी उसकी फालि यह सद्भा सायक है । तीसरी वातका विचार करते हुए बतलाया है कि अकेवलियोंके साथ केवलियोंकी समानता करना ठीक नहीं । मतलब यह है कि ससारी जनोंको एक-एक स्थितिकाण्डकके पतनमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और समुद्घातगत केवलीको एक-एक समय ही लगता है । अब जब कि सब स्थितिकाण्डकोंका काल अन्तर्मुहूर्त मान लिया जाय तो यह वात केवलियोंके स्थितिकाण्डकमें घटित नहीं होती, इसलिये व्यभिचार दोष आता है । वस इसी शकाका समाधान करते हुए यह बतलाया है कि केवलियोंकी छद्मस्थ जनोंके साथ समानता नहीं है । अर्थात् एक-एक स्थितिकाण्डकका काल जो अन्तर्मुहूर्त बतलाया है वह छद्मस्थ जनोंकी अपेक्षा बतलाया है समुद्घातगत केवलियोंकी अपेक्षा नहीं, इसलिये कोई दोष नहीं प्राप्त होता । समुद्घातगत केवलियोंके तो परिणामोंकी विशुद्धिके कारण एक-एक समयमें एक-एक स्थिति काण्डकका पतन हो जाता है । इस प्रकार इतने कथनका यह तात्पर्य है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके निपेक्षोंका एक साथ पतन होता है इसलिये उतने निपेक्ष सन्निकर्षको नहीं प्राप्त होते ।

❁ सोलसकसायाणं द्विविदिविहरी किमुक्तस्ता अणुक्तस्ता ?

‡ ७६८ सुगमयेदं ।

❁ पियमा अणुक्तस्ता ।

‡ ७६९ कुतो ? कसायाणमुक्तस्तद्विदिवंधकाळे इतिवेदस्त बंधाभावादो ।  
बंधमायेण अपदिहमास्तिरिषदस्त सोलसकसायाणमुक्तस्तद्विदिवंधकाळ उक्तस्त-  
द्विदीए समवामावादो ।

❁ उक्तस्तादो अणुक्तस्ता समऊणमार्दि कानूण जाव आबलियूया सि ।

‡ ७७० तं जहा—पदिहउपदमसमए बंधानलियादिककवकमायद्विदीए इति  
वेदमि संकंताए इतिवदस्त उक्तस्तद्विदिविहरी होदि । तक्काळे कसायद्विदी  
सयुक्तस्तं पेस्तिहण समयूणा; चरिमसमयमि वधुक्तस्तद्विदीए गलिदेगसमयचादो ।  
एवं विदियसमए दुसमयूणा वदियसमए तिसमयूणा एवमावस्मियेचसमएसु कसायुक्तस्त  
द्विदी आबलियूणा होदि । इतिवेदद्विदी पुण उक्तस्ता चेव, चरिमसमयमि  
वदकसायुक्तस्तद्विदीए बंधाबलियादिककंताए इतिवेदस्तुवरि संकंतिदंसादो ।  
माबलियादो ववरि कसायुक्तस्तद्विदी ऊणा किण्व कीरइ ? ण, ववरि इतिवंधुक्तस्त

❁ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कपायोंकी स्थितिविमक्ति क्या  
उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

‡ ७६८ यह सूत्र सुगम है ।

❁ नियमस अनुत्कृष्ट होती है ।

७६९, क्योंकि कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविषयके समय स्त्रीवेदका ग्रन्थ नहीं होता है । तथा  
ग्रन्थकपसे पठग्रन्थपनेको नहीं प्राप्त हुए स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति सातह ८ पायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके  
ग्रन्थके समय संभव नहीं है ।

❁ यह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कम से  
लेकर एक मानसिकम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।

‡ ७७० इसका सुसास इस प्रकार है—प्रतिममक्राज्जे प्रथम समयमें बन्धाबलिके दृष्टि  
कपायकी स्थितिके स्त्रीवेदमें संक्रमण होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविमक्ति होती है । उस  
समय कपायकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती है क्योंकि यहाँ  
पर अन्तिम समयमें बंधी हुई कपायकी उत्कृष्ट स्थितिके एक समय गल गया है । इसी प्रकार  
दूसरे समयमें दो समय कम तीसरे समयमें तीन समय कम तथा इसी प्रकार जाबलिप्रमाण  
समयोंके व्यतीत होने पर कपायकी उत्कृष्ट स्थिति एक व्यावस्थिक होती है परन्तु यहाँतक  
स्त्रीवेदकी स्थिति उत्कृष्ट ही रहती है, क्योंकि अन्तिम समयमें बंधी हुई कपायकी उत्कृष्ट स्थितिके  
बन्धाबलिके व्यतीत होने पर स्त्रीवेदमें संक्रमण वेदा जाता है ।

शुंका—कपायकी उत्कृष्ट स्थिति एक व्यावस्थिक तक ही कम क्यों होती है इससे और

द्विदीए असंभवादो ।

❀ पुरिसवेदस्स द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७७१ सुगममेदं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७७२, कुदो ? इत्थिवेदबंधकाले सेसवेदाणं बंधाभावादो । किमिदि णत्थि बंधो ! साहावियादो । ण च सहावो पडियवोयणाजोग्गो, अव्ववत्थावत्तीदो । ण च बंधेण विणा पुरिसवेदो कसायद्विदिं पडिच्छदि, अपडिग्गहत्तादो ।

\* उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तण्मादिं कादूण जाव अतो-  
कोडाकोडि ति ।

§ ७७३ तं जहा—कसायाणमुक्कस्सद्विदिं पडिवंधिय पडिग्गसमए वज्झ-  
माणपुरिसवेदस्सुवरि वधावलियादीदकसायद्विदीए संकंताए पुरिसवेदस्सुक्कस्सद्विदि-  
विहत्ती होदि । पुणो सव्वजहण्णेणंतोमुहूचोणुक्कस्ससंकिलेसं गतूण कसायुक्कस्सद्विदिं

अधिक कम क्यों नहीं की जाती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि आत्रलिसे अधिक कपायकी स्थितिके कम होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका पाया जाना संभव नहीं है ।

\* स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय पुरुषवेदकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७७१ यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७७२, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धके समय शेष वेदोंका बन्ध नहीं होता है ।

शंका—स्त्रीवेदके बन्धके समय शेष वेदोंका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है कि स्त्रीवेदके बन्धके समय शेष वेदोंका बन्ध नहीं होता है और स्वभावमें शंका नहीं की जा सकती, अन्यथा अव्यवस्थाकी आपत्ति प्राप्त होती है । और बन्धके विना पुरुषवेद कपायकी स्थितिको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उस समय वह अपतद्ग्रहरूप है । तात्पर्य यह है कि जब तक पुरुषवेदका बन्ध न हो तब तक उसमें कपायकी स्थितिका संक्रमण नहीं होता ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर अन्तः कोड़ाकोड़ी तक होती है ।

§ ७७३, इसका खुलासा इस प्रकार है—कपायकी उत्कृष्ट स्थितिको बाध कर प्रतिभन्नकालके पहले समयमें बंधनेवाले पुरुषवेदमें बन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिके संक्रमण होने पर पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । पुन सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट सक्लेशको प्राप्त होकर और कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभन्न कालके प्रथम समयमें

बंधिय पदिहगसमए बज्जमाणित्थिबेदम्मि बंधावस्त्रियादिबर्कतकसायद्विदीए संकंताए इन्धिवेदद्विदी उक्कत्ता होदि । तक्काले पुरिसवेदद्विदी सगुणकस्स पेक्खिदूण अंतोमु-  
हुत्तणा; पुरिस-अणु समयवेदद्विदीबंधगद्विदी समूहस्स अंतोमुहुत्तचुत्तमादो । पुणो  
कसापाणं समयपुणुक्कत्सद्विदि बंधिय पदिहगसमए बज्जमाणपुरिसवेदम्मि बंधावस्त्रिया  
दीदकमायुक्कत्सद्विदीए संकंताए पुम्भिल्लद्विदि पेक्खिदूण पुरिसवेदद्विदी सपहि  
समयूष्सा होदि । पुणो अवद्विदमंतोमुहुत्तमपिक्खिय उक्कत्ससंकिक्खेसं गतूण कसायाणमु  
क्कत्सद्विदि बंधिय पदिहगसमए बज्जमाणित्थिबेदम्मि बंधावस्त्रियादीदकसायद्विदीए  
संकंताए इत्थिवेदस्स उक्कत्सद्विदी होदि । तक्काले पुरिसवेदद्विदी सगुणकस्सद्विदि  
पेक्खिदूण समयारियमंतोमुहुत्तणा । एवं ज्ञापिदूण ओदारैयन्नं ज्ञाय निम्भियण  
अंतोकोडाकोडि पि ।

• इत्थ-रवीयं द्विदिशिहरी किमुक्कत्सता अणुक्कत्सता ?

§ ७७४ सुगममेदं ।

• उक्कत्ता वा अणुक्कत्ता वा ।

§ ७७५ यदि इत्थिवेदं बज्जमाण इत्थ-रवीयं बंधो अस्ति तो इत्थिवदुक्कत्स  
द्विदीए विहचिभो पदासिं पि उक्कत्सद्विदीए; तिण्हं पयडीणमुवरि अक्कमेण संकंतीए ।

बंधनेबाले स्त्रीवेदमें बन्धावस्त्रिसे रहित कयावकी स्थितिके संक्रमण करने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट  
स्थिति होती है । इस समय पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त  
कम होती है क्योंकि पुरुषवेद और नपुंसकत्वके बंधन्य वन्धककालोंका समूह अन्तर्मुहूर्त  
पाया जाता है । पुनः कयावकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर प्रतिभ्रमकालके पहले  
समयमें बंधनेबाले पुरुषत्वमें बन्धावस्त्रिसे रहित कयावकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमण  
होन पर पुरुषवेदकी पहलेकी स्थितिको देखते हुए इस समयकी स्थिति एक समय कम होती है ।  
पुनः अवस्थित अन्तर्मुहूर्त कालतक ठहर कर और उत्कृष्ट संकलनका प्राप्त होकर तथा कयावकी  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभ्रम कालके प्रथम समयमें बंधनेबाले स्त्रीवेदमें बन्धावस्त्रिसे रहित  
कयावकी स्थितिके संक्रमण होन पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । तथा इस समय पुरुषवेदकी  
स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम होती है । इसी  
प्रकार ध्यान कर निर्दिष्ट अन्तःकोडाकोडी स्थितिके प्राप्त होनेतक पुरुषवेदकी स्थितिको घटते  
जाना चाहिये ।

• स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय हास्य और रतिही स्थितिनिमित्त क्या  
उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७७४ यह सूत्र सुगम है ।

• उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७७५ यदि स्त्रीवेदके बन्धके समय हास्य और रतिका बन्ध होता है तो स्त्रीवेदकी  
उत्कृष्ट स्थितिनिमित्तबाधा होना इच्छा इस दोनोंकी भी उत्कृष्ट स्थितिनिमित्तबाधा होता है,  
क्योंकि बन्धावस्त्रिसे रहित कयावकी उत्कृष्ट स्थिति तीनों प्रवृत्तिमेंसे एकसमय संक्रमण हुन है ।



अण्णहा अणुक्कस्सा; वंधाभावेण अपडिग्गहाणं हस्स-रदीणमुवरि कसायुक्कस्सट्ठिदीए संकमाभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति ?

§ ७७६. तं जहा—अंतोमुहुत्तकालमावलियमेत्तकालं वा कसायुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गसमए वज्झमाणित्थिवेद-हस्स-रदीसु वंधावल्यादिवक्तकसायट्ठिदीए संकंताए तिण्हं पि उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । पुणो तटणंतरउवरिमसमए हस्स-रदि-बंधवोच्छेददुवारेण अरदि-सोगेसु बंधमागदेसु इत्थिवेदस्सुक्कस्सट्ठिदीए सह हस्स-रदीणमणुक्कस्सट्ठिदी होदि; अप्पणो उक्कस्सट्ठिदीदो अधट्ठिदिगलणेण गलिदेगसम-यत्तादो । एवं हस्स-रदिट्ठिदीए जाव समयूणावलियमेत्तकालो गलदि तावित्थि-वेदस्सुक्कस्सट्ठिदिनिहत्ती चेव । उवरि अणुक्कस्सा होदि; तत्थ वंधावल्यादीदकसायु-क्कस्सट्ठिदिसकंतीए अभावादो ।

§ ७७७. तदो अण्णेण जीवेण एगसमय समयूणावलियूणकसायुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय समयूणावलिमेत्तकालमुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेदेण सह वज्झमाणहस्स-रदीसु आवल्यादिवक्तकसायट्ठिदीए संकमिदाए इत्थिवेद-हस्स-रदीणं

अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि बन्ध नहीं होनेसे अपतद्ग्रहको प्राप्त हुई हास्य और रतिमें कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण नहीं होता है ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर अन्तःकोडाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ७७६ खुलासा इस प्रकार है—अन्तर्मुहूर्त काल तक या एक आवलि कालतक कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभ्रम कालके पहले समयमें बधनेवाले स्त्रीवेद हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिके सक्रान्त होने पर तीनों ही प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । पुन तदनन्तर अगले समयमें हास्य और रतिकी बन्धव्युच्छित्ति होकर अरति और शोकके बन्धको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ हास्य और रतिकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि तब इन प्रकृतियोंकी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक समय गल गया है । इस प्रकार जब तक हास्य और रतिकी स्थितिमेंसे एक समय कम एक आवलि प्रमाण काल जीर्ण होता है तब तक स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति ही रहती है तथा इसके बाद स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है, क्योंकि एक समय कम एक आवलिके बाद स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका सक्रमण नहीं पाया जाता है । अर्थात् तब स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कपायकी उत्कृष्ट स्थितिसे उत्तरोत्तर कम स्थितिका सक्रमण होता है ।

§ ७७७ तदनन्तर किसी एक जीवने एक समय तक एक समयसे न्यून एक आवलि कम कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर एक समय एक आवलि प्रमाण काल तक कपाय की उत्कृष्ट स्थितिको बंध कर प्रतिभ्रमकालके पहले समयमें स्त्रीवेदके साथ बधनेवाली हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिका सक्रमण किया तब उसके स्त्रीवेद, हास्य और रति

हिदी सगुक्कस्सहिदि पेविसल्लूण समयुणावसियाए ऊणा होदि । रिदियसमए हस्स  
रदिपंपबोच्छेददुवारण भरदि-सोगेसु बंधमागदसु इत्यिबदस्सुक्कस्सहिदिविहृती हादि;  
बंधावसियादिबद्धकसायुक्कस्सहिदीए तत्तिपत्तिबद्धम्मि संकतिदत्तणादो । हस्स रदि  
हिदी पुण सगुक्कस्सहिदि पेविसल्लूण आनल्लियुण; बंधाभावादो । एवं भाव दुसम  
युणावसियमेत्तमदाणमुपरि गच्छदि तापित्तिवेदहिदी सक्कस्सा चेत्त । हस्स-रदीणं  
पुण भाव तत्तिपमदाणं गच्छदि ताव सगुक्कस्सहिदी दुसमयुणा दोआनल्लियुणां  
होदि । बंधावसियादीदकसायुक्कस्सहिदीए आवसियादि ऊणा होदि ।

§ ७७= ततो अणो भीतो दुसमयुणदोआनल्लियादि ऊणियं कसायुक्कस्स-  
हिदि वधिय पुणो समयुणावसियमेत्तकालमुक्कस्सहिदि वधिय पडिहगसमए इत्यिबद  
हस्स-रदीसु बद्धमाणिपासु बंधावसियादीकसायुक्कस्सहिदि सक्कामिय तिणं पि अणुक्कस्स  
हिदिविहृत्तिओ आदो । ततो अवरिमसमयप्पहुदि हम्म-रदिपंपबोच्छेददुवारण इत्यिबद  
सह भरदि-सोगे बंधावधिय पुम्मं व ओदारेदम्मं । एवं पुणो पुणा एदेस विहाणेण  
ओदारेदुज गेदम्म भाव अतोकाटाकोदि चि । णवरि वं अ हिदिं पिहं मिदुमिच्छदि  
ततो आवसियम्महियमेगसमयं बंधावधिय पुणो समयुणावसियमेत्तकालं कसायाणमुक्कस्स  
हिदि वधिय पडिहगसमए बद्धमाणित्तिवेद-हस्स-रदीसु पुष्पणिद्धहिदीए आवसि-  
की स्थिति अपनी कष्ट स्थितिको देखते हुए एक समयसे न्यून एक आवसि काल प्रमाण कम  
होती है । तथा दूसरे समयमें हास्य और रतिकी बन्ध व्युत्पत्तिके द्वारा अरति और शाकके  
बन्धको प्राप्त हान पर स्त्रीवैरकी कष्ट स्थिति विरक्त है । क्योंकि बन्धावसिसे रहित कयावकी  
कष्ट स्थितिके पक्षों स्त्रीवैरमें संक्रमण होता जाता है । पर हास्य और रति की स्थिति अपनी  
कष्ट स्थितिको देखते हुए एक आवसि कम होती है, क्योंकि उस समय इनका बंध नहीं है ।  
इस प्रकार रूप तक वा समय कम आवसिममाय काल आगे जाते हैं तब तक स्त्रीवैरकी स्थिति  
कष्ट स्थिति ही होती है । पर हास्य और रतिसे छटना काल आगे जाने तक इनकी कष्ट स्थिति  
ही समयसे न्यून हो आवसि कम होती है ।

§ ७८= पुनः अन्य जीवने एक समय तक वा समय कम वा आवसियोंसे न्यून कयावोंकी  
कष्ट स्थितिका बन्ध करके पुनः एक समय कम एक आवसि काल तक कष्ट स्थितिके बन्ध  
करके प्रतिभूत कालके पहले समयमें बंधमबाल कीवद् हास्य और रतिमें कयावसिसे रहित  
कयावकी स्थितिका संक्रमण किया तब वह तीनों ही प्रवृत्तियोंकी अनुवृत्ति स्थितिभिन्नकिंचि पारक  
हुआ । तदनन्तर इसके आगे के समयसे लेकर हास्य और रतिकी बन्धव्युत्पत्तिद्वारा स्त्रीवैरके  
साथ अरति और शाकका बन्ध करके पहले समान हास्य और रतिकी स्थितिके पटाव जाना  
बाहिय । इस प्रकार पुनः पुनः इस विधिसे अन्तःकाकाकाही सागर प्रमाण स्थितिके प्राप्त हान  
तक हास्य और रतिकी स्थितिका पटाव हुए जाना बाहिय । किन्तु इतनी विवेचना है कि त्रिम  
जिस स्थितिका रोचना बाह्य हमने एक आवसि अधिक कयावकी स्थितिके एक समय तक बन्ध  
करके पुनः एक समय कम एक आवसि काल तक कयावकी कष्ट स्थितिके बन्ध करके प्रतिभूत  
कालके पहले समयमें बंधमबाल स्त्रीवैर हास्य और रतिमें पहले गयी हुई स्थितिके एक आवसिक

यादीदाए संकंताए तिण्हं अणुकस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तदो उवरिमसमए हस्स-रदिवंधे फिट्ठे अरदि-सोग्गित्थिवेदाणमुकस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तत्काले हस्स-रदीणं पुव्व-णिरुद्धट्ठिदी समयूणा होदि ।

❀ अरदि-सोगाणं द्विदिविहत्ती किमुक्स्सा अणुकस्सा ?

§ ७७६. सुगममेदं ।

❀ उक्स्सा वा अणुकस्सा वा ।

§ ७८०. इत्थिवेदे वज्झमाणे जदि अरदि-सोगा वज्झति तो इत्थिवेदुकस्स-ट्ठिदीए सह अरदि-सोगाण पि उक्स्सट्ठिदिविहत्ती होदि; वंधागलियादीदकसायुकस्स-ट्ठिदीए अक्रमेण तिण्हमुवरि संकंतीए । अण्णहा अणुकस्सा; पडिहग्गावलियाए अरदि-सोगाणं वंधाभावेण णट्ठपडिहग्गाभावाण कसायुकस्सट्ठिदीए आगमाभावादो ।

❀ उक्स्सादो अणुकस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीससागरो-वमकोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणाओ त्ति ।

§ ७८१. एदासिं पयडीणं समयूणुकस्सट्ठिदिआदिट्ठिदीणं सण्णियासो वुच्चदे । तं जहा—आवलियमेत्तकालं कसायाणमुकस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहग्गसमए वज्झमा-णित्थिवेद-अरदि-सोगेसु वंधावलियादिककतकसायट्ठिदीए संकंताए तिण्हं पि उक्स्स-

वाद सक्रान्त होने पर तीनोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है तदनन्तर इसके आगेके समयमें हास्य और रतिकी बन्धव्युच्छिन्ति हो जानेपर अरति, शोक और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । तथा उस समय हास्य और रतिकी पहले रुकी हुई स्थिति एक समय कम होती है ।

❀ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय अरति और शोककी स्थिति विभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७७६. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७८० स्त्रीवेदके बन्धके समय यदि अरति और शोकका बन्ध होता है तो स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ अरति और शोककी भी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है, क्योंकि बन्धावलि से रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका एक साथ तीनोंमें संक्रमण हुआ है । अन्यथा अरति और शोक की स्थिति अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिभग्न कालकी एक आवलिके भीतर बन्ध नहीं होनेसे पनदग्रहपनेसे रहित अरति और शोकमें कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं होता ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्य का असख्यातवाँ भाग कम वीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ७८१ अब इन प्रकृतियोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर शेष स्थितियोंका सन्निकर्ष कहते हैं । जो इस प्रकार है—एक आवलिकाल तक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बधनेवाली स्त्रीवेद, अरति और शोक प्रकृतियोंमें बधावलिले रहित कषायकी स्थितिके सक्रान्त होनेपर तीनोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । तदनन्तर

द्विदिनिहृची होदि । तदो उचरिमसमय अरदि-सोगयषभो-ज्येदुबारेण हस्त-रदीसु  
 वंभमागयासु अरदि-सोगुक्तस्सद्विदी समयूणा होदि; पडिग्गइत्तामावण तत्त कसाय  
 द्विदीए संकमाभावदो । एवमुवरि वि वत्तव्वं आव समयूणावलिपए ऊणमुक्कस्स  
 द्विदी जावा चि । सेसुवरिमपरुवणा बहा हस्त रदीणमित्थिनदुक्कस्सद्विदिसंभणं कदा  
 तहा कायन्वा । जवरि एत्थ समयूणावाहाकटएण्णपीससागरावमकोडाकोडीआ  
 कसायुक्कस्सद्विदिबंधण सह अरदि-सोगे वधाविय पडिग्गसमय अरदि-सोगबंध  
 वोच्चदं काडूण आवसियमेत्तद्विदीओ गालिय अतिमवियप्पा वत्तव्वो । कूदो ? कसायु  
 क्कस्सद्विदीए वक्कपाणाए णवु सयवेद-अरदि-सोग मय-वुगु क्कणं णियमेण तत्त  
 वंभे मंत सगुक्कस्सद्विदीओ समयूणावाहाकटएण्णस्संव द्विदिषपस्सुवरांभादो ।

❀ एव णवु सयवेदस्स ।

§ ७८२ बहा अरदि-सोगाण इत्थिवदुक्कस्सद्विदिपटिबद्धाणं परुवणा कदा  
 तहा णवु सयवेदस्स वि परुवणा कायन्वा; समयूणमार्दि काडूण जाव पीसंसागरोवम  
 कोडाकोडीओ पछिदो० असंखे०भागेण ऊणाओ चि एदेहि सन्धियासवियप्येहि  
 अबिससादो । एत्ततणविसेसपटुप्पावणद्वुत्तरसुच भणदि—

❀ जवरि पियमा अणुक्कस्सा ।

आगेके समयमें अरति और शोककी वस्तुस्थिति होकर हास्य और रतिके वचनों प्राप्त होनेपर  
 अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि उस समय पतवृम्भपना नहीं  
 रहनेसे जन्में कयावकी स्थितिका संक्रमण जारी होता है । इसी प्रकार आगे भी एक समयकम  
 एक आवाजसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक इसी प्रकार कवन करना चाहिये । शेष आगेकी  
 प्रक्रमणा, जिस प्रकार स्त्रीवचकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्बन्ध रखनयाका । हास्य और रतिकी भी है  
 एक प्रकार करनी चाहिये । किन्तु बहा पर कयावकी उत्कृष्ट स्थितिके वचके साथ अरति और  
 शोकका एक समय कम आवावाकण्यकसे न्यून पीस कोडाकोडी सागर स्थितिप्रमत्त वच्य कराके  
 तथा प्रतिमन्त कासके प्रथम समयमें अरति और शोककी वस्तुस्थिति कटके और एक आवाज  
 प्रमाय स्थितियोंके गलाकर अन्तिम विकल्प करना चाहिये क्योंकि कयावकी उत्कृष्ट स्थितिके  
 वचके समय नपुंसकवेद अरति शोक मय और सुगुप्ताका निमगने वच्य होता है पर वह  
 स्थितिबन्ध अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे एक समय कम आवावाकण्यकसे न्यून तक ही होता है ।

❀ इसी प्रकार नपुंसकवेदकी प्रक्रमणा करनी चाहिये ।

§ ७८२ जिस प्रकार स्त्रीवचकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ अरति और शोककी प्रक्रमणा की है  
 उसी प्रकार नपुंसकवेदकी भी प्रक्रमणा करनी चाहिये क्योंकि एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे  
 कवन पत्तोपमके असंख्यातर्ष माग कम पीस कोडाकोडी सागर प्रमाय स्थिति तक होनेवाले  
 सन्धिरूपके भेदोंकी अपेक्षा अरति और शोकके कवनसे नपुंसकवेदके कवनमें कोई भेद नहीं है ।  
 अब इस विषय में थोड़ेसा बतसानके किय आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय नपुंसकवेदकी  
 स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७८३. कुदो ? इत्थिवेदेण सह णवुंसयवेदस्स वंधाभावादो । तेण पडिहग्ग-  
पढमसमए वज्झमाणित्थिवेदम्मि वंधावलियादीदकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकताए इत्थि-  
वेदस्स उक्कस्सट्ठिदी होदि णवुंसयवेदस्स पुण णियमेण समयूणुक्कस्सट्ठिदी । एत्तो  
उवरि जाव आवलियमेत्तद्धाणं गच्छदि तावित्थिवेदो उक्कस्सो चेव । णवरि णवुंसयवेदु-  
क्कस्सट्ठिदी आवलियूणा होदि । एवमुवरि अरदि-सोगोयरणविहाणं बुद्धीए काऊण  
ओदारेयव्वं ।

❀ भय-दुगुंछाणं द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७८४. सुगमं ।

❀ णियमा उक्कस्सा ।

§ ७८५. जम्मि काले इत्थिवेदो वज्झदि तम्मि काले भय-दुगुंछाणं वधो  
णियमा अत्थि; धुवबंधितादो । तेणित्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदीए संतीए भय-दुगुंछाओ  
ट्ठिदि पडुच्च णियमा उक्कस्साओ त्ति भणिद ।

❀ जहा इत्थिवेदेण तहा सेसेहि कम्महेहि ।

§ ७८६. जहा इत्थिवेदुक्कस्सट्ठिदीए णिरुद्धाए सेसकम्महेहि सणियासो कदो  
तहा हस्स-रदि-पुरिसवेदानमुक्कस्सट्ठिदिणिरुंभणं कादूण सणियासो वत्तव्वो

§ ७८३. क्योंकि स्त्रीवेदके साथ नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता है । अतः प्रतिभग्न कालके  
प्रथम समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेदमें बन्धावलिले रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रान्त होने पर  
स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति होती है परन्तु उस समय नपुंसकवेदकी नियमसे एक समय कम उत्कृष्ट  
स्थिति होती है । इसके आगे एक आवलिकाल व्यतीत होने तक स्त्रीवेद उत्कृष्ट ही रहता है  
परन्तु नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थिति उस समय एक आवलि कम होती है । इसी प्रकार आगे अरति  
और शोककी स्थितिके घटानेकी विधिको बुद्धिसे विचार कर उसी प्रकार नपुंसकवेदकी स्थितिको  
घटाना चाहिये ।

❀ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय भय और जुगुप्साकी स्थितिविभक्ति क्या  
उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७८४. यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे उत्कृष्ट होती है ।

§ ७८५. जिस कालमें स्त्रीवेदका बन्ध होता है उस कालमें भय और जुगुप्साका बन्ध  
नियमसे होता है, क्योंकि ये दोनों प्रकृतिया ध्रुवबन्धिनी हैं । अतः स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके होने  
पर भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है । यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।

❀ जिस प्रकार स्त्रीवेदके साथ सन्निकर्षके विकल्प कहे हैं उसी प्रकार शेष  
कर्मोंके साथ जानने चाहिये ।

§ ७८६ जिस प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके सद्भावमें शेष कर्मोंके साथ सन्निकर्ष  
कहा है उसी प्रकार हास्य, रति और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका सद्भाव करके सन्निकर्ष कहना

विसेसाभावादो ।

● यपरि विसेसो जाणिय्यो ।

१ ७८७ तस्य पुरिसवेदणिरु भणं काऊण यण्णमाणे णत्थि विसेसो; सम्मकम्मोहि सह सण्णिकासिज्जमाण इत्थिवेदसण्णिकासेण समाणत्तादो । इस्स-रदिणिरु भणं काऊण यण्णमाणे मिच्छत्त-सम्मात्त-सम्मामिच्छत्त-सोत्तसकसाय-भय-दुग्गुत्ताणं सण्ण यासेसु णत्थि विसेसो; इत्थिवेदुक्कस्सद्विदिसण्णियासेण समाणत्तादो । इत्थि पुरिसाणं सण्णियात्तं भत्थि विसेसो, तं वत्तइस्सासो । तं महा—इस्स-रदीणमुक्कस्सद्विदीए संतीए इत्थि पुरिसवेदानं द्विदी सिया उक्कस्सा; कसायाणमुक्कस्सद्विदीए पडिच्छिद्दाए चदुक्कं पि कम्माणमुक्कस्सद्विदिसणादो । सिया अपुक्कस्सा; पडिहग्गसमए इस्स-रदीसु वज्जमाणिणामु इत्थि पुरिसवेदानं वत्तामावे सत्ति उक्कस्सद्विदीए अपात्तादो । मदि अपुक्कस्सा तो अंतोमुदुत्तणमार्दि काऊण आव अंतोकांठाकोदि चि । इदो सम कपुक्कस्सद्विदिमादिविय्यो न कम्मदे ? इस्स रदीणं व इत्थि-पुरिसवेदानमेगसमएण पयविधंयस्स बोच्चेदामात्तादो ।

१ ७८८ एदस्स णयणिरुद्दाए क्को पुक्कवे । तं महा—कसायाणमुक्कस्सद्विदिं

वत्थिये क्कोकि इत्थे कम्ममें कोई विसेयता नही है ।

● किन्तु कुछ विशय जानना चाहिये ।

१ ७८९ उत्तमसे पुरुषवत्त्वे राककर कवन करने पर कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि सब कर्म्मोंके साथ पुरुषवत्त्वा सन्निकष करने पर स्त्रीवत्त्वे सन्निकर्म्मोंके समान है । हास्य और रतिको रोक कर बधन करन पर मिथ्यात्व सम्यक्त्व, सम्ममिथ्यात्व मोहाह कयाय, मय और कुप्राप्तके सन्निकर्म्मोंमें कोई विशेषता नहीं है क्योंकि हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ कुछ प्रकृतियोंकी स्थितिछ होनवाला सन्निकर्म्म स्त्रीवत्त्वाकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ हानवाले सन्निकर्म्मोंके समान है । पर स्त्रीवत्त्वा और पुरुषवत्त्वे सन्निकर्म्ममें कुछ विशेषता है । आगे उसीको बताते हैं । जो इस प्रकार है—हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके रहत हुए स्त्रीवत्त्वा और पुरुषवत्त्वाकी उत्कृष्ट स्थिति कदापि न उत्पन्न होती है, क्योंकि कपामकी उत्कृष्ट स्थितिके इनमें संक्रमित हो जान पर बातों ही कर्म्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । कदापि न उत्पन्न होती है, क्योंकि प्रतिमग्न काकके प्रथम समयमें हास्य और रतिके कथरुं प्रथम स्त्रीवत्त्वा और पुरुषवत्त्वा बन्ध नहीं हान पर उनकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती है । यदि हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवत्त्वा और पुरुषवत्त्वा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है तो वह अन्तर्मुहूर्त कम् उत्कृष्ट स्थितिसे होकर अन्तः कोहलकी तक होती है ।

शुद्धा—एक समय कम् उत्कृष्ट स्थिति आदि निश्चय कर्म्मों नहीं प्राप्त होता है ।

समाधान—क्योंकि जिस प्रकार हास्य और रतिका एक समयतक बन्ध होकर अनन्तर उसकी व्युत्पत्ति हो जाती है उस प्रकार स्त्रीवत्त्वा और पुरुषवत्त्वा एक समयतक बन्ध होकर उसकी व्युत्पत्ति नहीं होती ।

१ ७९० अब सबकी अपेक्षा इसके कम्मका कम्म करते हैं तो इस प्रकार है—कपामकी

वधिय पडिहगसमए वज्झमाणि<sup>१</sup>त्थि-पुरिसवेदेसु वधावलियादिकंतकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकंताए इत्थि-पुरिसवेदाणमुक्कस्सट्ठिदिं कादूण पुणो अंतोमुहुत्त णवुंसयवेद-अरदि-सोगेहि सह कसायुक्कस्सट्ठिदिं वंधिय पडिहगसमए अरदि-सोगपयडिवधवोच्छेद-दुवारेण वज्झमाणहस्स-रदीसु वंधावलियादिकंतकसायट्ठिदीए संकंताए हस्स-रदीण-मुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तक्काले इत्थि-पुरिसवेदट्ठिदी सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा । संपहि एदमतोमुहुत्तणमादिं कादूण णेठव्वं जाव धुवट्ठिदि त्ति एसो विसेसो त्ति ।

§ ७८६ के वि आइरिया भणंति—एदासु वि पयडीसु णत्थि विसेसो; हस्स-रदीणं व एगसमएण पयडिवंधवोच्छेदसभवाटो । इत्थि पुरिसवेदाणमेगसमएण वंधवोच्छेदो होदि त्ति कुदो णव्वदो ? महाबंधसुत्तादो हस्स-रदीणमुक्कस्सट्ठिदि-णिरुंभणं काऊणि<sup>२</sup>त्थि-पुरिसवेदाणं समयूणादिसण्णियासवियप्परूपरूपयउच्चारणादो च णव्वदे । ‘णवरि विसेसो जाणियव्वो’ त्ति चुणिसुत्तणिहेसण्णहाणुववत्तीदो इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण वंधवोच्छेदो ण होदि त्ति ण वोत्तुं जुत्तं; एदस्स णिहेसस्स णवुंसयवेद-अरदि-सोगाणं सण्णियासेसु उववत्तिदसणादो । तं जहा—इत्थिवेदे

उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभ्रम कालके प्रथम समयमे बंधनेवाले स्त्रीवेद और पुरुषवेदमे बन्धावलिले रहित कपायकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रान्त होने पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है । पुन अन्तर्मुहूर्त काल तक नपुसकवेद, अरति और शोकके साथ कपायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभ्रमकालके प्रथम समयमे अरति और शोक इन दो प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्तिद्वारा बंधनेवाली हास्य और रतिमे बन्धावलिले रहित कपायकी स्थितिके संक्रान्त होने पर हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति होती है । तथा उस समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है । अब इस अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर ध्रुवस्थिति प्राप्त होने तक स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । यही यहाँ विशेषता है ।

§ ७८६ कुछ आचार्य कहते हैं कि इन प्रकृतियोंमे भी कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि हास्य और रतिके समान इन प्रकृतियोंका भी एक समय तक बन्ध हाकर अनन्तर उनकी व्युच्छित्ति संभव है ।

शंका—स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्धव्युच्छित्ति होती है यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—महाबन्धसूत्र से । तथा हास्य और रति की उत्कृष्ट स्थितिको रोककर स्त्रीवेद और पुरुषवेद की एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति आदि सन्निकर्ष विकल्पों का कथन करनेवाली उच्चारणासे जाना जाता है ।

शंका—‘एवरि विसेसो जाणियव्वो’ इस प्रकार चूर्णिसूत्रका निर्देश अन्यथा बन नहीं सकता, इसलिये स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती ।

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस निर्देशकी सार्थकता नपुसकवेद, अरति

गिरुद्धे गवु सयवेदो गियमा अणुक्कस्ता; इत्थिवेदवधफाले गवु सयवेदस्स बंधामाभादो ।  
 हस्स-रदीण पुण वक्कस्सहिदीए गिरुद्धाए गवु सयवेदहिदी सिया ठक्कस्ता; हस्स  
 रदिबंधकासे वि गवु सयवेदस्स बंधुवर्धमादो । सिया अणुक्कस्ता; कयाइ तत्थ  
 बंधामाभेण तस्स समयूणादिवियप्पुवत्तदीदो । इत्थिवेदठक्कस्सहिदीएण अरदि-सोगाणं  
 सिया वक्कस्ता; इत्थिवेदण सह एदेसि बंधं पवि विरोहामाभादो । सिया अणुक्कस्ता;  
 पडिहमासमए हस्स-रदीसु बंधमागदासु अरदि-सोगाणं समयूणमार्धिं कावूण नाव  
 पडिहोवमस्स असंखेज्जविमामग्गवियबीससागरोपमकोडाकोविमेषवियप्पुवत्तमादो ॥  
 हस्स-रदीणमन्कस्सहिदीए गिरुद्धाए पुण अरदि-सोगहिदी गियमा अणुक्कस्ता;  
 पडिहमासमए हस्स-रदीसु वक्कमागियासु तप्पदिनक्कत्ताजमरदि-सोगाणं, बंधामाभादो ।  
 तदो इत्थि-पुरिसवेदसु पत्थि विसेसो पि सिद्ध ।

§ ७३० सुत्तादिप्याएण पुण इत्थि पुरिसवेदेसु पि विसेसो अत्थि चेव, हस्स  
 रदीण व इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण वधुवरमाणम्मवममादो । तदो इत्थिवेदे गिरुद्धे  
 हस्स-रदीणं समयूणादिवियप्पा होति । हस्स-रदीसु पुण गिरुद्धासु इत्थि पुरिसवेदाणमंतो  
 सुद्धुच्चादिवियप्पा पि ।

और धाक प्रकृतिका संनिकर्योम कतकार्ये गई है । सुज्ञाता इस प्रकार है—स्त्रीवत्की उत्कृष्ट  
 स्थितिके रहने पर नपुंसकवत्की स्थिति नियमसे अनुकूल होती है, क्योंकि स्त्रीवत्क बन्धके  
 समय नपुंसकवत्का बन्ध नहीं होता । परन्तु हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर  
 नपुंसकवत्का स्थाव कदाचित् उत्कृष्ट होती है क्योंकि हास्य और रतिके बन्धके समय मा  
 नपुंसकवत्का बन्ध पाया जाता है । कदाचित् अनुकूल होती है क्योंकि कदाचित् हास्य और  
 रतिके बन्ध बन्ध नहीं होनेसे नपुंसकवत्की उत्कृष्ट स्थावतम एक समय कम आवि विकल्प पाय  
 बात है । स्त्रीवत्की उत्कृष्ट स्थावतक साथ अरात और शाककी स्थिति कदाचित् उत्कृष्ट होती है,  
 क्योंकि स्त्रीवत्क बन्धक साथ इनका बन्ध हानम काह विराय गई आता है । कदाचित् अनुकूल  
 होता है, क्योंकि प्रातमगन्ताका प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धका प्रस हान पर अरात  
 और शाककी एक समय कम उत्कृष्ट स्थावतसे सत्कर पत्थका असंभवताका भाग बांधक बास  
 कोडाका। सत्तर तक स्थावतिकल्प होत बाध है । परन्तु हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थावतक  
 रहने पर अरात और शाककी स्थावत नियमसे अनुकूल होता है, क्योंकि प्रतिमन कासक प्रथम  
 समयमें हास्य और रतिके बन्धका प्रस हान पर इनका प्रातमगन्तु अरति और धाक प्रकृतिका  
 बन्ध नहीं होता है इसलिये स्त्रीवत् और पुरुषवत्क विषयम काह विस्तृता नही है यह  
 सिद्ध हुआ ।

§ ७३० परन्तु उक्त सूत्रक अधिप्रायानुसार स्त्रीवत् और पुरुषवत्क विषयम मी विस्तृता  
 है ही, क्योंकि उक्त सूत्रमें हास्य और रतिके समान लाजेह और पुरुषवत्की एक समयक हाव  
 बन्ध व्युत्पत्ति नहीं स्वीकार की है, अतः स्त्रीवत्की उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर हास्य और रतिके  
 एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति आवि विकल्प हाव है । परन्तु हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थावतक  
 रहने पर स्त्रीवत् और पुरुषवत्क अन्तर्गुह्यते कम उत्कृष्ट स्थिति आवि विकल्प हाव है ।



❀ णवुंसयवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्तस्स ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७९१. सुगमं ।

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७९२. णवुंसयवेदट्ठिदीए उक्कस्साए संतीए जदि मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदी पवद्धा होज्ज तो मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि अण्णहा अणुक्कस्सा; उक्कस्सादो हेट्ठिमट्ठिदीदो वंथंतस्स उक्कस्सत्ताभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणा त्ति ।

§ ७९३. पल्लिदो० असंखे० भागो किपमाणो ? एगावल्लियन्वडियसमयूणावाहा-  
कंडयमेत्तो । अहिओ किण्ण होदि ? ण, कसाएसु उक्कस्सट्ठिदिवंधे संते मिच्छत्तस्स  
समऊणावाहाकंडएण्णउक्कस्सट्ठिदिमेत्तजहण्णट्ठिदिवंधस्स तत्थुवलंभादो । एगावल्लियाए  
अहियत्तं कथमुवल्लभदे ? ण, पडिहग्गकाले वि णवुंसयवेदस्स आवल्लियमेत्तकालमुक्कस्स-  
ट्ठिदिसंभवादो । सेसं सुगमं; बहुसो परुविदत्तादो ।

\* नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति-  
विभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७९१ यह सूत्र सुगम है ।

\* उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ७९२. नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिक रहते हुए यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध  
होता है तो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि  
उत्कृष्टसे कमकी स्थितिका बन्ध करनेवालेके उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे  
लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है ।

§ ७९३. शंका—यहापर पल्योपमके असंख्यातवें भागका कितना प्रमाण लिया है ?

समाधान—एक समय कम आवाधाकाण्डकमे एक आवलि कालके जोड़ देने पर जितना  
प्रमाण हो तत्प्रमाण यहा पल्यका असंख्यातवें भाग काल लिया है ।

शंका—इससे अधिक क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होते समय मिथ्यात्वका कमसे कम  
स्थितिबन्ध एक समय न्यून आवाधाकाण्डकसे कम उत्कृष्ट स्थिति मात्र ही होता है, इससे कम नहीं ।

शंका—पल्यके असंख्यातवें भागको जो एक आवलि अधिक और एक समय कम  
आवाधा काण्डक प्रमाण बतलाया है तो यहा एक आवलि काल अधिक कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रतिभ्रम कालके भीतर भी नपुंसकवेदकी एक आवलि काल तक  
उत्कृष्ट स्थिति संभव है ।

सूत्रका शेष व्याख्यान सुगम है, क्योंकि उसका अनेकवार कथन कर आये हैं ।

⊗ सम्मत्त-सम्माभिच्छुत्तायं द्विदिभिहृती किमुक्तस्ता अणुक्तस्ता ?  
 § ७६४ सुगमं ।

⊗ विषमा अणुक्तस्ता ।

§ ७६५ ण्डु सययदुक्तस्तद्विदिभिहृत्विचमि मिच्छाद्विदिमि सम्मत्त सम्माभिच्छुत्तायमुक्तस्तद्विदीय अमानादो । ण च सम्माद्विदिपदमसमए पद्विचदाए सम्मत्त-सम्माभिच्छुत्तायमुक्तस्तद्विदीय अणुत्तयसि सभयो; विरोहादो ।

⊗ उक्तस्तावो अणुक्तस्ता अंतोमुक्त एमादि कायूष जाव एगा द्विदि ति । पवरि वरिसुव्येकूपकं वयवरिमफासीय कथा ।

§ ७६६ एदेसि दोणं मुत्ताजमत्ते अणुमाणे अहा मिच्छुत्तायमुक्तस्तद्विदिभिहृत्तमं काकण सम्मत्त-सम्माभिच्छुत्तायमुत्ताय पद्विचणा कदा तहा एत्य वि कायम्मा; विसंसा मावादो ।

⊗ सोवसकसायायं द्विदिभिहृती किमुक्तस्ता अणुक्तस्ता ?

§ ७६७ सुगमं ।

⊗ उक्तस्ता वा अणुक्तस्ता वा ।

\* नपुंसकबेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्बन्धिध्यात्वकी स्थितिबिमक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६४ यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७६५ नपुंसकबेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिमक्तिके कारण मिध्यादृष्टि बीजके सम्यक्त्व और सम्बन्धिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिमक्ति नहीं पाई जाती है । सम्यक्त्व और सम्बन्धिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धितिके प्रथम समयमें होती है अतः उत्सव अन्वय पाया जाना संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर विरोध आता है ।

\* यह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक होती है । किन्तु इतनी मिश्रपता है कि इसमेंसे अन्तिम बड़े अनाकाण्डककी अन्तिम प्राप्तिप्रमाण स्थितिको कम कर बना चाहिए ।

§ ७६६ इन बातों सुनोका जब कन्तेपर जिस प्रकार मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहत हुए सम्यक्त्व और सम्बन्धिध्यात्वसम्बन्धी दो सुनोका कमन किया है वसी प्रकार यहां भी करना चाहिए, क्योंकि इनोके कमनोई कार्य विधेयता नहीं है ।

\* नपुंसकबेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोवह कपायोंकी स्थितिबिमक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६७ यह सूत्र सुगम है ।

\* उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ७६८. यदि णवुंसयवेदस्स उक्कस्सट्ठिदीए संतीए अप्पिदकसायाणमुक्कस्स-  
ट्ठिदिवंधो होज्ज तो उक्कसा, अण्णहा अणुक्कस्सा; समयूणादिट्ठिदीसु वद्धासु उक्कस्सत्त-  
विरोहादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादि कादूण जाव आवलिज्जणा त्ति ।

§ ७६९ तं जहा—कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिमावलियमेत्तकालं वधिय पडिहग्ग-  
समए वज्झमाणणवुंसयवेदस्मि वधावलियादिकसंतकसायट्ठिदीए संकंताए णवुंसयवेद-  
ट्ठिदी उक्कस्सा होदि तस्समए कसायट्ठिदी समयूणा होदि; उक्कस्सट्ठिदीदो अधट्ठिदि-  
गलणाए गलिदेगसमयत्तादो । एवं दुसमयूणादिकमेण णेदव्वं जाव आवलियमेत्तकालो  
कसायट्ठिदीए गलिदो त्ति । अहिओ किण्ण गालिज्जदे ? ण, उवरि णवुंसयवेदुक्कस्स-  
ट्ठिदीए असंभवादो ।

❀ इत्थि-पुरिसवेदाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८००. सुगमं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ८०१. णवुंसयवेदवधकाले णियमेणित्थि-पुरिसवेदाणं वंधाभावादो । किं

§ ७६८ यदि नपु सकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए विवक्षित कपायका उत्कृष्ट स्थिति  
बन्ध होवे तो उत्कृष्ट स्थिति होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि एक समय कम  
आदि स्थितियोंके बँधने पर उन्हे उत्कृष्ट माननेमें विरोध आता है ।

\* वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर आवली  
क्रम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।

§ ७६९ जो इस प्रकार है—कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलि कालतक बाधकर  
पश्चात् कालके प्रथम समयमें बधनेवाले नपुसकवेदमें बन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिके  
नश्वर होन पर नपुसकवेदकी स्थिति उत्कृष्ट होती है और उस समय कपायकी स्थिति एक  
क्रमक्रम होती है, क्योंकि उस समय कपायकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थिति गलनाके द्वारा एक  
क्रमसे गलना होता है । इसी प्रकार कपायकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे दो समय कम आदि क्रमसे आवलि  
क्रमसे गलने तक कथन करते जाना चाहिये ।

—कपायकी उत्कृष्ट स्थितिमें से एक आवलिसे अधिक काल क्यों नहीं गलाया

—नहीं, क्योंकि इसके आगे नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना असंभव है ।

स्थि। —वेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थितिबिभक्ति

—अनुत्कृष्ट ?

आवाधा —समय है ।

सग. —होती है ।

उत्कृष्ट स्थिति —बन्धके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध नियमसे नहीं

सूत्रका अ

कारण ? तदभावे अर्थात्तामात्रो ?

⊗ उक्तस्तथादो अणुकस्तथा अतोमुहुत्तमात्रिं कावृष जाव अतो कोडाकोडि ति ।

§ ८०२ तं जहा—सोस्तकसायाणमुक्तस्तद्विदिं बंधिय पविहगासमप समया विरोहण पञ्चमाणिस्त्रि-पुरिसवेदेसु बंधावस्थियादिककृतकसायद्विदीए संकताए इत्थि पुरिसवेदाणमुक्तस्तद्विदिबिहृत्ती होदि । तदो अतोमुहुत्तणे संकितोसं गतूण कमायु कस्तद्विदिं बंधिय बंधावस्थियादिककृतकसायद्विदिमि णवु सपवेदे संकामिदम्मि णवु सपवेदस्स उक्तस्तद्विदिबिहृत्ती । तत्पुदेसं णं इत्थि-पुरिसवेदद्विदी पुण भियमा अतोमुहुत्ता; सगुक्तस्तद्विदीदो अथद्विदिगलणाए गस्सिदंतोमुहुत्तचादो । एवं समयूणादिकपेण कसायद्विदिं बंधिय ओदारेदूण वेदेष्व जाव अंतोकोडाकोडि ति ।

§ ८०३ इत्थिवेदभिरु भणे कदे णवु सपवेदुक्तस्तद्विदी समयूणा बादा । णवु सपवेदम्मि गिरु भणे कदे पुण इत्थिवेदद्विदी सगुक्तस्तथा अतोमुहुत्ता बादा । किमेदस्स कारणं ? पुरुषदे—कसायाणमुक्तस्तद्विदीए पञ्चमाणाए णवु सपवेदस्स जण तस्य भियमेण बंधो तेण पविहगासमप इत्थिवेदे उक्तस्तद्विदिमुगदे णवु सप

शुंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—नपुंसकवर्गके कथके समय स्त्रीवेद और पुरुषवर्गका कथ नहीं होनेमें अस्मत्ता-मात्र कारण है । अर्थात् नपुंसकवर्गके कथके समय स्त्रीवेद और पुरुषवर्गके कथका संबंध अभाव है ।

⊗ यह अनुक्तुष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तः कोडाकोडी सागर तक होती है ।

§ ८०२ वा इस प्रकार है—सोलाह कथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर प्रतिमग्नकालके प्रथम समयमें आत्मातुल्य बंधनेवाले स्त्रीवेद और पुरुषवर्गमें कथावस्थिसे रहित कथावकी स्थितिके अन्तर्गत होने पर स्त्रीवर्ग और पुरुषवर्गकी उत्कृष्ट स्थितिबिमर्श होती है । तदनन्तर एक अन्तमुहूर्त कालके द्वारा संकेतको प्राप्त होकर और कथावकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके कथावलीसे रहित कथावकी स्थितिके नपुंसकवर्गमें संक्रान्त होने पर नपुंसकवर्गकी उत्कृष्ट स्थिति-बिमर्श होती है । तब वहाँ पर स्त्रीवेद और पुरुषवर्गकी उत्कृष्ट स्थिति नियमसे अन्तमुहूर्त कम होती है, क्योंकि स्त्रीवर्ग और पुरुषवर्गकी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमसे अथास्थितिगणनाके द्वारा एक अन्तमुहूर्त गल गया है । इस प्रकार एक समय कम आदिसे कमसे कथावकी स्थितिका कथ करके अन्तःकोडी सागर प्रमाथ स्थितिके प्राप्त होनेतक स्त्रीवेद और पुरुषवर्गकी स्थितिको पठात जाना चाहिये ।

§ ८०३ शुंका—स्त्रीवर्गकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए नपुंसकवर्गकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है और नपुंसकवर्गकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर स्त्रीवर्गकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तमुहूर्त कम होती है इसका क्या कारण है ?

समाधान—कथाओंकी उत्कृष्ट स्थितिके बंधत समय नपुंसकवर्गका भूँकि नियमसे बन्ध होता है इसलिये प्रतिमग्न कालके प्रथम समयमें स्त्रीवेदके उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होने पर नपुंसक-

वेदो सगुक्कस्सद्विदिं पेक्खिय समयूणो होदि; तत्थ तदो गल्लिदेगसमयत्तादो । णवुंसय-  
वेदे पुण उक्कस्सद्विदिमुवगदे इत्थिवेदो णियमेण अंतोमुहुत्तूणो इत्थिवेदवंधपडिसेह-  
दुवारेण कसायाणमुक्कस्सद्विदीए सह णवुंसयवेदे वंधमागदे तव्वंधपढमसमयप्पहुडि जाव  
अंतोमुहुत्तं ण गदं ताव कसायाणमुक्कस्सद्विदिवंधसंभवाभावादो । तं कुदो णव्वदे ?  
उक्कस्सद्विदिवंधंतरस्स जहणस्स वि अतोमुहुत्तपमाणपरूवयवंधसुत्तादो । इत्थि-पुरिस-  
वेदानमेगसमएण वंधुवरमाणब्भुवगमादो च अंतोमुहुत्तणत्तमविरूद्धं सिद्धं ।

❀ हस्स-रदीणं द्विदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८०४. सुगम

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ८०५. पडिहगपढमसमए णवुंसयवेदुक्कस्सद्विदीए संतीए जदि हस्स-रदीणं  
बंधो होज्ज तो उक्कस्सा, अण्णहा अणुक्कस्सा; वंधाभावेण हस्स-रदीसु कसायद्विदि-  
संकंतीए अभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समज्जणमादिं कादूण जाव अंतोकोडा-  
कोडि ति ।

वेदकी उत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती है, क्योंकि वहा पर  
उसमेसे एक समय गल गया है । परन्तु नपुसकवेदके उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदकी  
उत्कृष्ट स्थिति नियमसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ नपुसक-  
वेदके बन्धको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता और स्त्रीवेदके बन्धके प्रथम समयसे लेकर  
जब तक अन्तर्मुहूर्त काल नहीं व्यतीत होता है तब तक कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध समझ नहीं  
है । अतः नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अन्तर्मुहूर्त कम हो  
जाता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य बन्धान्तर भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है इस प्रकार कथन  
करनेवाले बन्धसूत्रसे जाना जाता है । तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्ध-  
व्युच्छिन्ति नहीं स्वीकार की गई है अतः इससे भी नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय पुरुषवेद  
और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति ठीक अन्तर्मुहूर्त कम सिद्ध होती है ।

❀ नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट  
होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८०४ यह सूत्र सुगम है ।

\* उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ८०५ प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें नपुसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए यदि हास्य  
और रतिका बन्ध होवें तो उनकी स्थिति उत्कृष्ट होती है अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि बन्धके  
बिना हास्य और रतिमें कषायकी स्थितिका सम्प्रमाण नहीं पाया जाता है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तः-  
कोडाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ८०६ पदिहमपदमसमयमि णनु सयवेद-हस्त-रदीणं बंधे सत तिणं पि उक्कस्तद्विदिविहरी होदि । वदणतरभिवियसमप हस्त-रदिवंध बोच्चिण्णे हस्त-रदीणं समयूणक्कस्तद्विदी होदि । एषं दुसमयूणादिकमेण जेद्वन जाव समऊणावलिमाए ऊणक्कस्तद्विदि पि । उवरि इतिवेद णिरुद्धे हस्त रदीणं पचकमं पुदीए अमहारिय पचच ।

⊗ अरदि-सोगाण द्विविदिविहरी किमुक्कस्तसा अणक्कस्तसा ?

§ ८०७ सुगमं ?

⊗ उक्कस्तसा वा अणक्कस्तसा वा ।

§ ८०८ णनुसयवेदबंधकाले अरदि-सोगाणं बंधे संते तिणं पि उक्कस्तद्विदिविहरी होदि, अण्णहा अणक्कस्तसा; अवन्ममाणबंधपयसीणं पदिगाहचामावाद्रो ?

⊗ उक्कस्तसावो अणक्कस्तसा समऊणमार्दि कादूण जाव बीसं सागरोवम कोडाकोडीओ पक्षिवोचमस्त अस्तलेऊजविभागेण ऊणाओ ।

§ ८०९, सं जहा—सोक्षसकसायाणमुक्कस्तद्विदिविहरीमुदुत्तमेचकलं बंधिय पदिहगसमप अरदि-सोगबंधवोच्चेदुवारेण हस्त रदीसु बंधमागयासु णनु सयवेदद्विदी सत्य उक्कस्तसा; वन्ममाणचावो । अरदि-सोगद्विदी पुण समयूणक्कस्तसा; बंधामावाद्रो ।

§ ८१० प्रतिमग्न कालके प्रथम समयमें नपुंसकवच हास्य और रतिके बन्ध होत हुए तीनों की ही वृष्ट स्थितिबिमर्षि होती है । तदनन्तर दूसरे समयमें हास्य और रतिके बन्धके व्युत्क्रिन्न हा घान पर हास्य और रतिकी वृष्ट स्थिति एक समय कम होती है । इस प्रकार वा समय कम आदि क्रमसे लेकर एक समय कम आबलिते मूल वृष्ट स्थिति तक जानना चाहिये । तथा इसके आगे इत्रीवृक्षा वृष्ट स्थितिके रहते हुए हास्य और रतिका वा प्रम क्या है उसका मुझसे विचार करके दहों मी कथन करना चाहिये ।

⊗ नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय अरति और शोककी स्थितिबिमर्षि क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८११ यह सत्य सुगम है ।

⊗ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट मी ।

§ ८१२, नपुंसकवचके वचक समय अरति और शोकके बन्ध हान पर तीनोंकी ही वृष्ट स्थितिबिमर्षि होती है अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थितिबिमर्षि हानो है, क्योंकि मर्षी बंधनवासी प्रकृतिधर्मोंमें पतनप्रपना नहीं पाया जाता है ।

⊗ यह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिस लेकर पन्नोपमक असम्पातर्षे याग न्यून बीस कोडाकाड़ी सागर तक होती है ।

§ ८१३ वा इस प्रकार है—मासह क्यार्थोकी वृष्ट स्थितिमा अन्तर्मुक्त काम तक दोबकर प्रतिमग्नकालके प्रथम समयमें अरति और शोककी बन्ध व्युत्क्रिन्नि हापर हास्य और रतिके बन्धका प्राप्ति हान पर वहाँ पर नपुंसकवचकी स्थिति उत्कृष्ट होती है क्योंकि प्रथम बन्ध हा रहा है परन्तु अरति और शोकका वृष्ट स्थिति एक समय कम होती है क्योंकि प्रथम बन्ध

एवं जाव पडिहग्गावलियमेत्तकालो उवरि गच्छदि ताव अरदि-सोगुक्कस्सट्ठिदी आवलियूणा होदि । पुणो समयाहियावलियपढमसमए कसायाणमावलिऊणुक्कस्सट्ठिदि वंधिय पुणो आवलियमेत्तकालं उक्कस्सट्ठिदि वंधिय पडिहग्गपढमसमए हस्स-रदीसु वंधमागदासु अरदि-सोगुक्कस्सट्ठिदी समयाहियावलियाए ऊणा होदि । पुणो जाव आवलियमेत्तकालो गच्छदि ताव अरदि-सोगुक्कस्सट्ठिदी दोहि आवलियाहि ऊणा होदि । एवं जाणिदूण ओदारेय्वं जाव आवलियव्वभहियसमऊणावाहाकंडएणूणवीसं सागरोवमकोडाकोडिमेत्तकम्मट्ठिदी चेट्ठिदा त्ति ।

❀ भय-दुगुंछाणं टिदीविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८१० सुगमं ?

❀ नियमा उक्कस्सा ।

§ ८११, धुवबंधित्तोदो ।

❀ एवमरदि-सोग-भय दुगुंछाणं पि ।

§ ८१२, जहा णवुंसयवेदस्स सव्वकम्मेहि सह सण्णियासो कदो तहा अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पि कायव्वं ।

नहीं हो रहा है । इस प्रकार एक आवलिप्रमाण प्रतिभग्नकालके आगे जाने तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिप्रमाण कम हो जाती है । पुनः एक समय अधिक आवलिके प्रथम समयमें कपायोंकी एक आवलि कम उत्कृष्ट स्थितिको बंधकर पुन एक आवलि काल तक कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बंधकर प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होनेपर अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक समय अधिक एक आवलि कम होती है । पुनः एक आवलि प्रमाण कालके जाने तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति दो आवलि काल प्रमाण कम होती है । इस प्रकार एक समय कम आवाधाकाण्डकमें एक आवलि कालके जोड़ने पर जितना प्रमाण हो उतने कालसे न्यून बीस कोडाकोडी सागर प्रमाण कर्मस्थितिके प्राप्त होने तक अरति और शोककी स्थितिको घटाते जाना चाहिये ।

❀ नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय भय और जुगुप्साकी स्थितिबिभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८१० यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे उत्कृष्ट होती है ।

§ ८११, क्योंकि ये दोनों प्रकृतियाँ धुवबन्धिनी हैं ।

❀ इसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी सब कर्मों के साथ सन्निकर्ष कहना चाहिये ।

§ ८१२, जिस प्रकार नपुंसकवेदका सब कर्मोंके साथ सन्निकर्ष किया उसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी करना चाहिये ।

ॐ पापरि विसेसो जायियण्णो ।

§ २१३ एत्थं विसेसपण्णहं पुण्णवे—अरदि-सोगाणमुक्कस्सहिदिणिक्कं भणं  
कादूणं मण्णमाणे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त-सोत्तसकसायणं णधु सयवेदमंगो ।  
अरदि-सोगाणमुक्कस्सहिदीए संसीए इत्थिवेदस्स सिया उक्कस्सहिदी; पडिहगपडम  
समए अरदि सागहि सह इत्थिवेदे बज्जमाणे तिण्णं पि उक्कस्सहिदिनिहृत्तिसपादो ।  
अण्णाहा अयुक्कस्सा; बंधामावं कसापहिदिपडिच्छणससीए अमावावो । अथ अणु  
क्कस्सा समउणमादिं कादूणं जाव अंतोकोडाकोहि पि । कुदो ? इत्थिवेदबंधकास्स  
एवसमए एते समयुगउक्कस्सहिदिसंतुवर्त्तमादो ।

§ २१४ जेसिमाइरियाणमिस्सिवेदबंधकाळो नहण्णमो अंतोमुहुत्तमेचो तेसिम  
हिप्पाएण अंतोमुहुत्तमादिं कादूणं जाव अंतोकोडाकोहि पि । तं जहा—कसायु  
क्कस्सहिदिं बंधिय पडिहगसमए इरियवद अरदि-सोगाणमाबळियमेचकास्समुक्कस्सहिदी  
होदि । संपहि इत्थिवेदबंधो जाव अंतोमुहुत्तं ण गर्दं ताव ण पिदुदि । एदम्मि भावस्सिय  
वज्जंतोमुहुत्तमेचइत्थिवेदबंधकाळम्मि इत्थिवेद अरदि सोगाणं हिदीओ अपडिदिगत्ताए  
गत्तामाओ वेद ति । कुदो ? जाव अंतोमुहुत्तं ण गर्दं ताव संकिसेत्तं पूरेदु ओ सक्कदि  
पि कादूणं उहुमुक्कस्सहिदिं बंधाविदो । पुणो तप्पाओमोणं जहण्णकाळेपुक्कस्स

ॐ परन्तु कुत्र मिश्रेण जानना चाहिये ।

§ २१३ अब यहाँ पर विशेषका कथन करत हैं—अरति और शाककी उत्कृष्ट स्थितिको  
उत्कृष्ट कथन करने पर मिथ्यात्व, सम्मत्त्व, सम्मगिमिथ्यात्व और सोलह कपायोंका संग तनुत्क-  
वत्के समान है । अरति और शोचकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए स्त्रीवत्की कथावित् उत्कृष्ट स्थिति  
होती है, क्योंकि प्रतिभन्तकालके प्रथम समकर्म अरति और शाकके साथ स्त्रीवत्के बन्ध होने पर  
तीनोंकी ही उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति दृक्ता जाती है । अथवा अरति और शाककी उत्कृष्ट स्थितिके  
समय स्त्रीवत्की स्थिति अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि स्त्रीवत्का कथन नहीं होने पर कसरी कथावत्की  
स्थितिका संक्रमित करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती है । अब यदि अनुत्कृष्ट स्थिति होती है तो वह  
एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकाङ्क्षाकी सागर तक जाती है, क्योंकि स्त्रीवत्के  
बन्धकालके एक समय होनेपर एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है ।

§ २१४ किन्तु जिन आचार्योंके मतसे स्त्रीवत्का अपम्य वग्यकाल भी अन्तमुहूर्त है उनके  
अभिप्रायानुसार अन्तमुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकाङ्क्षाकी सागर तक अनुत्कृष्ट स्थिति  
पाई जाती है । इसका झुलासा इस प्रकार है—कथावत्की उत्कृष्ट स्थितिका बौध्द प्रतिभन्तकालमें  
स्त्रीवत्, अरति और शोचकी एक आचलिकाल तक उत्कृष्ट स्थिति होती है । यहाँ पर स्त्रीवत्का  
वग्य जब तक अन्तमुहूर्त काल व्यतीत नहीं हुआ है तब तक नहीं पहुँचा है । इस एक आचलिते  
रहित अन्तमुहूर्त प्रमाण स्त्रीवत्के वग्यकालमें स्त्रीवत्, अरति और शाककी स्थितियों अपम्यस्थिति  
गल्लकाके द्वारा गलती रहती हैं, क्योंकि जब तक एक अन्तमुहूर्त काल व्यतीत नहीं हुआ है  
तब तक उत्कृष्ट संस्मरणका पूरा करना शक्य नहीं है, ऐसा समझकर जाद अन्तमुहूर्त काल तक  
उत्कृष्ट स्थितिका वग्य करता है । पुनः इसके वाग्य अपम्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संस्मरणको प्राप्त



संकिलेसं गंतूणुक्कस्सट्ठिदि वंधिय वंधावलियादीदकसायट्ठिदीए सकामिदाए अंतो-  
मुहुत्तकालं सव्वमरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदी होदि । कुदो ? कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए  
उक्कस्ससंकिलेसेण वज्झमाणाए हस्स-रदीहि विणा अरदि-सोगाणं चेव वंधसंभवादो ।  
कसायुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिकालेण अरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिकालो सरिसो कसा-  
याणमुक्कस्सट्ठिदिवंधे थक्के वि आवलियमेत्तकालमरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ति-  
दंसणादो । सपहि इत्थिवेदट्ठिदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा । पुणो अप्पणेण  
जीवेण कसायाणं समज्जुक्कस्सट्ठिदिमंतोमुहुत्तकालं वंधिय पडिहग्गसमए वज्झमाणा-  
इत्थिवेदम्मि वंधावलियादीदकसायट्ठिदी संकामिदा । ताधे इत्थिवेदट्ठिदी सगुक्कस्स  
पेक्खिदूण समज्जणा । तदो अतोमहुत्तकालमित्थिवेदं वंधिय अवरेगमंतोमुहुत्तकालं  
णवुंसयवेदं वंधिय पुणो अतोमहुत्तेणुक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूणुक्कस्सकसायट्ठिविं वंधिय  
बंधावलियादीदकसायट्ठिदीए सकामिदाए अरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदी होदि । तम्मि  
समए इत्थिवेदो अप्पणो उक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण समयाहियअंतोमुहुत्तूणो होदि । एवं  
दुसमयाहिय-तिसमयाहिय-अतोमहुत्तमूणं कादूण णेदव्वं जाव अंतोकोडाकोडि त्ति ।  
एवं पुरिसवेदस्स । णवुंसयवेदस्स एव चेव । णवरि समज्जणमादिं कादूण [ जाव ]  
वोसंसागरोवमकोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागेण ऊणाओ त्ति णेदव्वं ।

होकर और कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके  
सक्रमित होनेपर अन्तर्मुहूर्त कालतक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि  
कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट सकलेशसे बंधने पर हास्य और रतिको छोड़कर अरति और  
शोकका ही बन्ध संभव है । यद्यपि अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिका काल  
कषायकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके कालके समान है तो भी कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिवन्धने रुक  
जाने पर भी एक आवलि काल तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति देखी  
जाती है । यहाँ पर स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम है ।  
पुनः अन्य जीवने कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको अन्तर्मुहूर्त काल तक बाँधा और  
प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका सक्रमण  
किया तो उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती  
है । तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक स्त्रीवेदका बन्ध करके तथा दूसरे एक अन्तर्मुहूर्त काल तक  
नपुंसकवेदका बन्ध करके पुनः एक अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके और  
कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर बन्धावलिसे रहित उस कषायकी स्थितिका अरति और शोकमें  
सक्रमण होनेपर अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति होती है । तथा उस समय स्त्रीवेद अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिवाला होता है । इसी  
प्रकार दो समय अधिक और तीन समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्त-  
कोडाकोड़ी सागर तक स्त्र वेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । इसी प्रकार पुरुषवेदकी स्थिति  
होती है । तथा नपुंसकवेदकी स्थिति भी इसी प्रकार होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
नपुंसकवेदकी स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असख्यातवा भाग कम  
बीस कोडाकोड़ी सागर तक घटाते हुए ले जाना चाहिये ।

§ ८१५ इत्स-रदीण गियमा अणुक्कस्ता समजणमादि कादण जाव अंतोकोडा कादि चि । मय-दुगुंछाण गियमा उक्कस्ता; पुनरुचिमातो । मय-दुगुंछाण गियमं कादण मण्णमाणे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मागिच्छत्त-सोत्तसकसाय तिण्णित्रदाणमरदि सागमंगो । इत्स-रदि अदि-सोगाणं णयुसयवेदमंगो ।

§ ८१६ एवं जुण्णिसुत्तमास्सिहण सण्णियासपरुवण करिय संपहि उप्पारमम स्सिहणुक्कस्तसण्णियासं कस्तमो । पुनरुचमिदि पत्थ मण्णयरो ण कायम्मो; आइरियाणावुक्कदेसवरजाणावणह पक्खिदाय पुणरुचदोसामायावो ।

§ ८१७ सण्णियासो दुविहो—अहण्णमो उक्कस्तमो वेदि । तत्थ उक्कस्तप पयदं । दुविहो गिहेसो—ओयेण आवेसेण य । ओयेण मिच्छत्तउक्कस्तहिदिबिहियस्स सम्मत्त-सम्मागिच्छत्त० सिंया अरिय सिंया गत्थि । अदि मरिय, किमुक्कस्ता अणुक्कस्ता । गियमा अणुक्कस्ता । अंतोमुदुत्तणमादि कादण जाव एगा हिदि चि । जवरि चरिमु ज्जेन्जगकटपण्ण। सोत्तसक० किमुक्क अणुक्क० ? उक्कस्ता वा अणुक्कस्ता वा । उक्कस्तावो अणुक्कस्ता समजणमादि कादण जाव पखिदीवमस्त असंसेज्जदिभागेण जणा । चचारिणोक्क० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा मणुक्क० अंतोमुदुत्तणमादि कादण

§ ८१४ हास्य और रतिकी स्थिति एक समय कम अपनी बहुत स्थितिसे लेकर अन्तः कोडाकोड़ी सागर तक निम्नसे अनुकूल होती है । तथा मय और जुगुप्ताकी स्थिति निम्नसे उत्कृष्ट होती है क्योंकि वे दोनों प्रकृतिवर्षी भूवर्गिनी हैं । मय और जुगुप्ताकी उत्कृष्ट स्थिति कहते हुए सन्निकर्षक कवन करनेपर मिथ्यात्व, सम्यक्त्व सम्यगिमिथ्यात्व, साक्षात् कथान और तीनों बेशीक संग अरति और शोकके समान है । तथा हास्य रति अरति और शोकका संग ननुसकवेदके समान है ।

§ ८१५ इस प्रकार जूलिस्त्रका आत्मय लेकर सन्निकर्षका कवन करके मय लवारणाका आश्रय लेकर उत्कृष्ट सन्निकर्षको बताते हैं । यदि कोई कहे कि जिसका जूलिस्त्र द्वारा कवन किया है उसका लवारणा द्वारा कवन करने पर पुनरुक्त शेष आता है अतः किसी एकका कवन नहीं करना चाहिये सा भी करना ठीक नहीं है, क्योंकि आचार्योंके उपदेशोंम अन्तरका ज्ञान कवनके लिए जूलिस्त्रके कवनके बाद भी लवारणाका कवन करने पर पुनरुक्त शेष नहीं आता है ।

§ ८१७ सन्निकर्ष दो प्रकारका है—अप्य और उत्कृष्ट । जन्तुसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आवेक्षनिर्देश । जन्तुसे ओषकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवास्तविकीके सम्यक्त्व और सम्यगिमिथ्यात्वकी स्थिति-बिभक्ति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो क्या उत्कृष्ट होती या अनुकृष्ट ? निम्नसे अनुकृष्ट होती है । जो एक अन्तर्मुखी कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक जाती है । किन्तु इतनी विरोधता है कि वह अनुकृष्ट स्थिति अन्तिम धरोहरनाकावकके सन्निकर्ष विभक्तों से मूल होती है । साक्षात् कथार्योंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है वा अनुकृष्ट ? उत्कृष्ट कथवा अनुकृष्ट होती है । जन्तु अनुकृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्थोपय क असेज्जवातवें माग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । चार शोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट

जाव अंतोकोडाकोडि ति । पंचणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादि काट्ठण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पल्लिदो० असंखे० भागेण्णाओ ति ।

§ ८१८, सम्पत्तुकरसद्विदिवहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा अतोमुहुत्तूणा । णत्थि अणो वियप्पो । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणमादि काट्ठण जाव पल्लिदो० असंखे० भागेण्णाओ ति । एवं सम्मामि० ।

§ ८१९, अणंताणु० कोध० मिच्छत्त-पण्णारसक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादि काट्ठण जाव पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण्णाओ ति । सम्पत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । चत्तारिणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा अतोमुहुत्तूणमादि काट्ठण जाव अंतोकोडाकोडि ति । पंचणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । जदि अणुक्कस्सा समयूणमादि काट्ठण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पल्लिदो० असंखेज्जदिभागेण्णाओ ति । एवं पण्णारसकसायाणं ।

हाती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट हाती है । जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है । पाच नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होती है । उनमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमका असंख्यावा भाग कम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है ।

§ ८१८ सन्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है । यहा मिथ्यात्वकी स्थितिका अन्य विकल्प नहीं होता । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर पल्लोपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्षका कथन करना चाहिये ।

§ ८१९ अनन्तानुबन्धी क्रोधकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व और पन्द्रह कपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होती है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है । सन्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग मिथ्यात्वके समान है । चारो नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है । पाच नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । यदि अनुत्कृष्ट होती है तो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमका असंख्यातवा भाग कम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है । इसी प्रकार शेष पन्द्रह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

॥ ८२० ॥ इरिषवेदुनकस्माहिदिविहृतिपियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ?  
 पियमा अणुक्कस्सा, पगसमयमार्दि काट्ण जाव पत्तिदो० असत्त्वं भागेणूणा । सम्मत्त  
 सम्मामि० मिच्छत्तमंगो । पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? पियमा अणुक्कस्सा समय  
 णमार्दि काट्ण जाव अंतोकोडाकोडी ति । अथवा अतोमुदुत्तणमार्दि काट्णे चि वत्तम्भं ।  
 पत्तुत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? पियमा अणुक्कस्सा, समयणमार्दि काट्ण जाव बीस  
 सागरोवमकाडाकोडाया पत्तिदो० असत्त्वं जदिवागण ऊणाभा । इत्त-ग्दि० किमुक्क०  
 अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कसादो अणुक्कस्सा समयणमार्दि काट्ण  
 जाव अंतोकोडाकोडीया । अरदि सोग० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कसा अणुक्कस्सा  
 वा । उक्कस्सादा अणुक्कस्सा समयणमार्दि काट्ण जाव बीससागरोवमकाडाकोडीया  
 पत्तिदो० असत्त्वं जदिमतोण ऊणाभा । मय-दुगुल किमुक्क० अणुक्क० ? पियमा  
 उक्कस्सा । सात्तसक्क० किमुक्क० अणुक्क० ? पियमा अणुक्क० । समयणमार्दि काट्ण  
 जाव आसत्तिऊणा । एवं पुरिसवेत्तम्भ ।

॥ ८२१ ॥ णवु सयवेत्तक्कस्माहिदिविहृतिपियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ?  
 उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादा अणुक्कस्सा समयणमार्दि काट्ण जाव पत्तिदो०  
 असत्त्वं भागेण ऊणा । सम्मत्त-सम्मामि मिच्छत्तमंगो । सोत्तसक्क० किमुक्क० अणुक्क० ?

॥ ८२० ॥ स्त्रीवेदकी अणुक्क स्थितिबिम्बिचाले बीसके मिध्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती  
 है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जा एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्तोपमके  
 असंख्यातवर्षे भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका मंग मिध्यात्वक समान  
 है । पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक  
 समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है । अथवा एक समय  
 कमके स्थानमें अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर एका करना चाहिये । नपुंसकवर्षकी स्थिति क्या  
 उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जा एक समय कम अपनी उत्कृष्ट  
 स्थितिसे लेकर पत्तोपमके असंख्यातवर्षा भाग कम बीस काडाकोडी सागर तक होती है । इत्थं और  
 रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । इसमेंसे  
 अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है ।  
 अरति और शाहकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट  
 भी । इनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्तोपमके असंख्यातवर्षा  
 भाग कम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है । मय और जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या  
 अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोत्तह कपायोकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?  
 नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । वा एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें लेकर एक आसति कम तक होती  
 है । इसी प्रकार पुरुषवर्षकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बिचाले बीसके सत्तिऊर करना चाहिये ।

॥ ८२१ ॥ नपुंसकवर्षकी उत्कृष्ट स्थितिबिम्बिचाले जापक मिध्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट  
 होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । इनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय  
 कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पत्तोपमके असंख्यातवर्षे भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और  
 सम्यग्मिध्यात्वका मंग मिध्यात्वक समान है । सोत्तह कपायोकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या

उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव आवलिउणा । इत्थि-पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा । समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । अथवा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण । हस्स-रदि० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । अग्दि-सोग० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवम-कोडाकोडीओ पल्लिदो० अमंखेज्जदिभागेण ऊणाओ । भय-दुगुद्धा० इत्थिवेदभंगो ।

§ ८२२, हस्सउक्कस्सद्विविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा । समयूणमादि कादूण जाव पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण । सम्पत्त-सम्पामि० मिच्छत्तभंगो । सोलसक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० । एगसमयमादिं कादूण जाव आवलिउणा । इत्थि०-पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतो-कोडाकोडि त्ति । अथवा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण । णवुंसय० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीसं-

अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक आवलि कम तक होती है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है । अथवा 'एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर के' स्थानमें 'अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' कहना चाहिये । हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उसमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है । अरति और शोककी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उसमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमका अवस्थातवां भाग कम वीस कोडाकोडी सागर तक होती है । भय और जुगुप्साका भंग स्त्रीवेदके समान है ।

§ ८२२ हास्य प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमके असख्यावें भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । सोलह कषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक आवलि कम तक होती है । स्त्रावेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोडाकोडी सागर तक होती है । अथवा 'एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' के स्थानमें 'अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट

सागरोपमकोडाकोडीओ पस्विदो० अस्तंसे० भागेणूणाओ । अरदि-सोग० किमुक्क०  
अणुक्क० ? भियमा अणुक्कस्ता । समयूणमार्दि कादूण जाव बीसंसागरोपमकोडाकोडीओ  
पस्विदो० अस्तंसे० भागेणूणाओ । रदि मय-दुगु जाओ किमुक्क० अणुक्क० ? भियमा  
उक्कस्ता । एवं रदि० ।

§ ८२३ अरदि० उक्कस्ताद्विदिविहारीयस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ?  
उक्कस्ता अणुक्कस्ता वा । उक्कस्ताओ अणुक्कस्ता समयूणमार्दि कादूण जाव पस्विदो०  
अस्तंसे० भागेणूणा । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तमंगो । सोलसक० णवुसगमंगो । इत्थि  
पुरिस-गणुसयवेदाण रदिमंगो । इत्थ-रदि० किमुक्क० ? भियमा अणुक्क० । समयूण  
मार्दि कादूण जाव अतोकोडाकोडि प्ति । सोग मय-दुगुजाण भियमा उक्कस्ता ।  
एवं सोम० ।

§ ८२४ मय० उक्क० द्विदिवि० मिच्छत्त०-सम्म० सम्मामि० सोलसक०  
तिष्णिबेद० अरदिमंगो । इत्थ-रदि-अरदि-सोम० णवु सयमंगो । दुगु छ० किमुक्क०  
अणुक्क० ? उक्क० । एवं दुगुक्क० । एवं सम्मगेरइय-तिरिक्क-पंचिंदियतिरिक्क  
पंचिंदियतिरि० पञ्च० पंचि० तिरि० नाणिणी०-मणुसतिय०-वेव-भवणादि जाव सहस्सार०  
पंचि०-पंचि०-पञ्च०-तस-तसपञ्च०-पंचमण०-पंचवचि०-कायओगि० ओरासि०

स्थितिसे लेकर पस्वोपमका अस्तंस्मातर्षा भाग कम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है । अरति और  
कोककी स्थिति क्या उत्पन्न होती है या अनुत्पन्न ? नियमसे अनुत्पन्न होती है । जो एक समय  
कम अपनी उत्पन्न स्थितिसे लेकर पस्वोपमका अस्तंस्मातर्षा भाग कम बीस कोडाकोडी सागर तक  
होती है । रति, मय और जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्पन्न होती है या अनुत्पन्न ? नियमसे उत्पन्न  
होती है । इसी प्रकार रति प्रकृतिकी उत्पन्न स्थितिबिमर्शिके पारक जीवके समिकप जानना चाहिये ।

§ ८२३ अरति प्रकृतिकी उत्पन्न स्थितिबिमर्शिके पारक जीवके मिष्वात्त्वकी स्थिति क्या  
उत्पन्न होती है या अनुत्पन्न ? उत्पन्न भी होती है और अनुत्पन्न भी । उनमेंसे अनुत्पन्न स्थिति  
एक समय कमसे लेकर पस्वोपमके अस्तंस्मातर्षा भाग कम उत्पन्न स्थिति तक होती है । सम्मत्त्व  
और सम्मग्निष्वात्त्वका मंग मिष्वात्त्वके समान है । छोलह कपायोका मंग नपुंसकप्रेरके समान  
है । स्त्रीवेव पुरुषवेव और नपुंसकप्रेरका मंग रतिके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या  
उत्पन्न होती है या अनुत्पन्न ? नियमसे अनुत्पन्न होती है । जो एक समय कम अपनी उत्पन्न स्थितिसे  
लेकर अस्तंकोडाकोडी सागर तक होती है । तथा छोक मय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे  
उत्पन्न होती है । इसी प्रकार शोकमहृतिकी उत्पन्न स्थितिबिमर्शिके पारक जीवके समिकप  
जानना चाहिये ।

§ ८२४ मयमहृतिकी उत्पन्न स्थितिबिमर्शिके पारक जीवके मिष्वात्त्व, सम्मत्त्व,  
सम्मग्निष्वात्त्व, साहस कयाय और तीव्र बर्षाका मंग अरतिके समान है । हास्य रति अरति  
और कोकका मंग नपुंसकप्रेरके समान है । जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्पन्न होती है या अनुत्पन्न ?  
उत्पन्न होती है । इसी प्रकार जुगुप्सा प्रकृतिकी स्थितिबिमर्शिके पारक जीवके समिकप जानना  
चाहिये । इसी प्रकार सब मारकी तिर्यक्, पंचेन्द्रिय तिर्यक् पंचेन्द्रिय तिर्यक् पयात पंचेन्द्रिय  
तिर्यक् पानिमती सामान्य मनुष्य, मनुष्य पयात, मनुष्यनी सामान्य देव भवनशक्तियोंसे लेकर  
सहस्तर कल्प तकके देव, पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पक्षास, वस, वस पयात, पांचों मनायोगी पांचों

वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसिद्धि०-  
सण्णि-आहारि ति ।

१ ८२५. पंचिंदियतिरि० अपज्ज० मिच्छत्त उक्कस्सद्विदिविहत्तियस्स सम्मत्त०-  
सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा  
अणुक्कस्सा । अंतोमुहुत्तूणमादि कादूण जाव एया द्विदी । णवरि चरिमुव्वेत्तल्ल-  
कंडएणूणा । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा  
वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादि कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागेणूणा ।  
सम्मत्त० उक्कस्सद्विदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क०  
अंतोमुहुत्तूणा । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा । सोलसक०-  
णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० । अंतोमुहुत्तूणमादि कादूण जाव  
पल्लिदोबमस्स असंखे० भागेणूणा । एवं सम्मामि० । अणंताणुवंधिकोध० उक्कस्सद्विदि-  
विहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो  
अणुक्कस्सा समयूणमादि कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागेणूणा । सम्मत्त० सम्मा-  
मिच्छत्तभंगो । पण्णारसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा ।

वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैकियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले,  
असयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाच लेश्यावाले, मव्य, सही और आहारक  
जीवोंके जानना चाहिये ।

१ ८२५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके धारक जीवके  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनकी  
स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति पर्यंत होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमें अन्तिम  
उद्वेलना काण्डक प्रमाण स्थितिको घटा देना चाहिये ; सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति  
क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट  
स्थिति एक समय कमसे लेकर पल्लोपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।  
सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या  
अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है । सम्यग्मि-  
थ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कषाय  
और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो  
अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक  
होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।  
अनन्तानुबन्धी ओधकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट  
होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय  
कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्लोपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग मिथ्यात्वके समान है । पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार पन्द्रह कषाय

एवं पण्णारसक०-ग्राह्यलोकसायाण । एवं मणुसमपञ्ज०-बादरेहृदियमपञ्ज०-सुहृमेहृदिय  
पञ्जचापञ्जच-सम्पञ्चिगसिद्धि-पैधि०-अपञ्ज०-बादरपुत्रविमपञ्ज०-सुहृमपुत्रवि-पञ्ज-  
चापञ्जच-बादरभातअपञ्ज०-सुहृमभात-पञ्जचापञ्जच तेज-बादरसुहृमपञ्जचापञ्जच-  
पात्र०-बादरसुहृमपञ्जचापञ्जच-बादरवणपञ्चद्विषयेय०-अपञ्ज०-णिगोद-बादरसुहृमपञ्ज-  
चापञ्जच-तप्तअपञ्जचा चि ।

§ ८२६ आपदादि जाव चरिमगेवर्त्तं ति मिच्छचुक्कस्सहिदिभिर्हृत्पित्तस्य  
सम्पत्त-सम्पामि० सिया अत्थि, सिया अत्थि । यदि अत्थि किमुक्क० अणुक्क० ?  
उक्क० अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पसिदो० असंत्तमागुणमार्दि कादुण  
जाव दगा हिदि चि । गवरि चरिमुच्चणकंदयचरिमफालीयाए ऊणा । सोत्तसक०  
जवणोक्क० किमुक्क० अणुक्क० ? गियमा उक्क० । एवं सोत्तसक०-जवणोक्क० ।  
सम्पत्त० उक्कस्सहिदिभिर्हृत्पित्तस्य मिच्छच सम्पामि०-सोत्तसक०-गवणोक्क० किमुक्क०  
अणुक्क० ? छियमा उक्क० । एवं सम्पामि० ।

§ ८२७ अणुहिसादि जाव सम्पद्धिसिद्धि चि मिच्छचुक्कस्सहिदिभिर्हृत्पित्तस्य

और नौ नाकपायोकी स्थितिबिम्बछके धारक जीवके समिकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार मनुष्य  
अपवाप्त, बादर एकेन्द्रिय अपवाप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपवाप्त,  
सब विकलान्द्रिय, पचेन्द्रिय अपवाप्त, बादर प्रविषाकायिक अपवाप्त सूक्ष्म प्रविषाकायिक, सूक्ष्म  
प्रविषाकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म प्रविषाकायिक अपवाप्त बादर जलकायिक अपवाप्त, सूक्ष्म जलकायिक,  
सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपवाप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर  
अग्निकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपवाप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त,  
सूक्ष्म अग्निकायिक अपवाप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर  
वायुकायिक अपवाप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपवाप्त,  
बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक स्तर अपवाप्त, निगाह, बादर निगाह, बादर निगाह पर्याप्त, बादर  
निगाह अपवाप्त, सूक्ष्म निगाह, सूक्ष्म निगाह पर्याप्त सूक्ष्म निगाह अपवाप्त और त्रस अपवाप्त  
जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८२८ आन्त कस्यसे स्तर उपरिम ग्रैवेयक तत्त्व देवोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति-  
बिम्बछके धारक जीवके सम्पत्त और सम्पामिध्यात्व य वा प्रवृत्तयो कदाचित् ह और कदाचित्  
मरी हैं । यदि हैं ता इनकी स्थिति क्या उत्कृष्ट हाती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और  
अनुत्कृष्ट भी । इनमें अनुत्कृष्ट स्थिति पस्यापमक असंख्यातर्षे भाग कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे  
होकर एक स्थिति तक हाती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इससे आन्तम उद्वपनाकाण्डकी  
अन्तिम काशिमम्य स्थितियोंका घटा हुआ चाहिये । सातह कपाय और नौ माकपायोकी स्थिति  
क्या उत्कृष्ट हाती है या अनुत्कृष्ट ? निम्नमें उत्कृष्ट हाती है । इसी प्रकार सातह कपाय और  
नौ माकपायोकी उत्कृष्ट स्थितिके धारक जीवके समिकर्ष जानना चाहिये । सम्पत्तकी उत्कृष्ट  
स्थितिविम्बछके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्पामिध्यात्व सातह कपाय और नौ माकपायोकी  
स्थिति क्या उत्कृष्ट हाती है या अनुत्कृष्ट ? निम्नमें उत्कृष्ट हाती है । इसी प्रकार सम्पामिध्यात्व  
की उत्कृष्ट स्थितिविम्बछके धारक जीवके समिकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८२९ अनुदिसस स्तर सवोषासिद्धि तत्त्व देवोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविम्बछके



सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० । एवमेक्केक्कस्स । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-सजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-खइय-उवसम०-सासण०-दिट्ठि त्ति ।

§ ८२८. एइदिय-वादरेइंदिय-तप्पज्ज०-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढविपज्ज०-आउ०-वादरआउ०-वादरआउपज्ज०-वणप्फदि-वादरवणप्फदिपत्तेयसरी-तप्पज्ज०-ओरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स-कम्मइय०-असण्णि०-अणाहारि०-मटि०-सुट०-विहंग०-मिच्छादिट्ठि त्ति ओघं । णवरि एइंदियादि अणाहारिपज्जंत्तेसु धुववन्धिणमुक्कस्सट्ठिदि-विहत्तियस्स चट्ठणोक० उक्क० अणुक्क० वा । समऊणमार्दि काट्ठण जाव अंतोकोडा-कोडि त्ति । चट्ठणोक० उक्कस्सट्ठिदिवि० धुववन्धिणमुक्क० अणुक्क० वा । समयूण-मार्दि काट्ठण जाव पल्लिदो० असखे० भागेणूणा । समऊणावल्लिऊणा त्ति एसो विसेसो जाणियव्वो ।

§ ८२९. आभिणि०-सुद०-ओहि० मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० धारक जीवके सम्यक्त्व, सम्यागमिध्यात्व, सालह कपाय और नौ नाकपायोंका स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार प्रत्येक प्रकृतिकी स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिये । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायवाले, मन पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदापस्थापनासयत, परिहार-विशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८२८. एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक पर्याप्त, वनस्पति कायिक, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वादर वनस्पति कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी, असज्ञा, अनाहारक, मत्त्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विमगज्ञानी और मिथ्यादृष्टि जीवोंके ओघक समान सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतना विशेषता है कि एकेन्द्रियोंसे लेकर अनाहारकौतक जीवोंमें ध्रुववन्धिनी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिके धारक जीवके चार नोकपायोंकी स्थिति उत्कृष्ट भा होती है और अनुत्कृष्ट भा । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्त कोडाकाड़ा सागर तक होती है । चार नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके ध्रुववन्धिनी प्रकृतियोंकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । यहा पर एक समय कम या एक आवली कम उत्कृष्ट स्थिति होती है इतना विशेष जानना चाहिए ।

§ ८२९ आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यगमिध्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट

अणुक० ? उककस्ता अणुककस्ता वा । उककस्तादो अणुककस्ता समपूणमादिं कादूण जाव पलिदो० असत्ते० मागणूणा । एवं सम्मत्त-सम्मामि० । अणुताणु० कायुककस्त० विहृत्षिपस्त सम्मत्त-सम्मामि० किमुक० अणुक० ? उककस्ता अणुककस्ता वा । उककस्तादो अणुककस्ता समपूणमादिं कादूण जाव पलिदो० असत्ते० मागणूणा । पण्णारसक० णवणो० किमुक० अणुक० ? णियमा उक० । एव पण्णारसक०-णवणोकमायाण । एवोमहिदस०-सम्मा०-वेदय० चि० ।

॥ ८३० ॥ सुककस्तिसिय० पवि० तिरि० अपज्जचमंगो । अमव० सम्मत्त-सम्मामि० कज्ज० ओय० । सम्मामि० मिच्छत्तुक्कस्तह्रिदिबिहृत्षिपस्त सम्मत्त-सम्मामि० किमुक० अणुक० ? णियमा अणुक० । अंतोमुहुत्तणादिं कादूण जाव सागरोवमपुषधं । सोत्तसक० णवणोक० किमुक० अणुक० ? आमिणि मंगो । एवं सोत्तसक०-णवणोक० । सम्मत्तुक्कस्तह्रिदिबिहृत्षिपस्त मिच्छत्त-सोत्तसक०-णवणोक० किमुक० अणुक० ? णियमा अणुक० अंतोमुहुत्तणा । णवरि पण्णारीसकसायाण अंतोमुहुत्तणादिं कादूण जाव

होती है या अनुत्पद्यते ? उत्पद्यते मी होती है और अनुत्पद्यते भी । वनमेंसे अनुत्पद्यते स्थिति एक समय कम उत्पद्यते स्थितिसे लेकर पस्यापमके असेक्यातवें भाग कम तक होती है । इसी प्रकार सम्मत्त और सम्मत्तिप्यात्वकी उत्पद्यते स्थितिबिम्बिके धारक जीवके समिकरूप जानना चाहिये । अमत्तलुब्धकी कोवकी उत्पद्यते स्थितिबिम्बिके धारक जीवके सम्मत्त और सग्यागमप्यात्वकी स्थिति क्या उत्पद्यते होती है या अनुत्पद्यते ? उत्पद्यते मी होता है और अनुत्पद्यते भी । वनमेंसे अनुत्पद्यते स्थिति अपनी उत्पद्यते स्थिति की अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पस्यापमके असेक्यातवें भाग कम उत्पद्यते स्थिति तक होती है । पन्नाह कपाय और नौ नाकपायोंकी स्थिति क्या उत्पद्यते होती है या अनुत्पद्यते ? नियमसे उत्पद्यते होती है । इसी प्रकार पन्नाह कपाय और नौ नाकपायोंकी उत्पद्यते स्थितिबिम्बिके धारक जीवके समिकरूप जानना चाहिये । इसी प्रकार अवपिदगनपात, सग्नदृष्टि और बहकसम्पद्यति वाचोंक जानना चाहिये ।

॥ ८३० ॥ सुककस्तैरावालोके पक्कम्भियव अपयातर्षके समान भोग है । अमप्योंके सम्मत्त और सम्मत्तिप्यात्वकी छात्र कर लेप कवन आपक समान है । ठरूप यह है कि अमप्योंके सम्मत्त और सम्मत्तिप्यात्व व वा प्रवृत्तियों मही होती वतः इनके साथ अन्य प्रवृत्तियों का भार अन्य प्रवृत्तियों के साथ इनका समिकरूप मही पान होता । दोय प्रवृत्तियोंका समिकरूप ओपक समान है । सम्मत्तिप्याट्टियोंमें मिप्यात्वकी उत्पद्यते स्थितिबिम्बिके धारक जीवके सम्मत्त और सम्मत्तिप्यात्वकी स्थिति क्या उत्पद्यते होती है या अनुत्पद्यते ? नियमसे अनुत्पद्यते होती है । आ अमत्तमुहते कम अपनी उत्पद्यते स्थितिसे लेकर सागर पुषत्त तक होती है । मातह कपाय और नौ नाकपायोंकी स्थिति क्या उत्पद्यते होती है या अनुत्पद्यते ? यहाँ आभिनिवाधिक शानियोंके समान भोग है । इसी प्रकार सात्रह कपाय और नौ नाकपायोंकी उत्पद्यते स्थितिबिम्बिके धारक जीवोंके समिकरूप जानना चाहिये । सम्मत्तकी उत्पद्यते स्थितिबिम्बिके धारक जीवके मिप्यात्व, मातह कपाय और नौ नाकपायोंकी स्थिति क्या उत्पद्यते होती है या अनुत्पद्यते ? नियमसे अनुत्पद्यते होती है । आ उत्पद्यते स्थितिसे अमत्तमुह कम होती है । चिन्तु इनकी पिपेयता है कि पक्काम कपायों की अनुत्पद्यते स्थिति अमत्तमुह कमसे लेकर पस्यापमके असेक्यातवें भाग कम उत्पद्यते स्थिति तक होती है । सम्मत्तिप्यात्वकी स्थिति क्या उत्पद्यते होती है या अनुत्पद्यते ? नियमसे उत्पद्यते होती है ।

पलिदो० असंखे० भागेणूणा ति । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० ।  
एवं सम्मामि० ।

एवगुक्कस्सट्ठिदिसणियासो समत्तो ।

❀ जहणणट्ठिदिसणियासो ।

§ ८३१ सुगममेदं ।

❀ मिच्छत्तजहणणट्ठिदिसंतकम्मियस्स अणंताणुबंधीणं एत्थि ।

§ ८३२, अणंताणुबंधीणं एत्थि सणियासो ति संबंधो कायव्वो । कुदो ? पुब्बं  
चेव विसंजोद्दाण तत्थ ट्ठिदिसंताभावादो ।

❀ सेसाणं कम्मण ट्ठिदिविहत्ती किं जहणणा अजहणणा ?

§ ८३३, सुगममेदं ।

❀ णियमा अजहणणा ।

§ ८३४, कुदो, उवरि जहणणट्ठिदिं पडिवज्जमाणामेत्थ जहणणत्तविरोहादो ।

❀ जहणणादो अजहणणा असंखेज्जगुणव्वभहिया ।

§ ८३५, कुदो ? मिच्छत्तस्स दुसमयकालेगट्ठिदीए सेसाए सम्मत्त-सम्मामि-  
च्छत्ताए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं वारसकसाय-णवणोकसायाणमंतोकोढा-  
कोडिसागरोवममेत्ताणं ट्ठिदीणमवसिट्ठाणमुवलंभादो ।

हैं । इसी प्रकार सन्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकष जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसन्निकष समाप्त हुआ ।

\* अव जघन्य स्थितिके सन्निकर्षका अधिकार है ।

§ ८३१ यह सूत्र सुगम है ।

\* मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सत्कर्मवाले जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सन्निकर्ष नहीं है ।

§ ८३२ यहां पर अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सन्निकर्ष नहीं है, इस प्रकार सवन्ध करना चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होनेके पहले ही इसकी विसंयोजना हो जाती है, अतः इसका मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके समय स्थिति सत्त्व नहीं पाया जाता है ।

\* मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सत्कर्मवाले जीवके शेष कर्मोंकी स्थितिबिभक्ति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?

§ ८३३ यह सूत्र सुगम है ।

\* नियमसे अजघन्य होती है ।

§ ८३४ क्योंकि शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति आगे जाकर प्राप्त होनेवाली है, अतः उनकी यहा जघन्य स्थिति माननेमें विरोध आता है ।

\* वह अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है ।

§ ८३५ क्योंकि जब मिथ्यात्वकी दो समय काल प्रमाण एक स्थिति शेष रहती है तब सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी पत्योपपत्ते असंख्यातवर्गे भागप्रमाण तथा बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति शेष पाई जाती है ।

ॐ मिच्छुरोण णीदो सेसेहि नि अणुमग्गियब्बो ।

॥ ८३६ ॥ मिच्छुरोण णीदो सह सण्णियासो णीदो कहिदो परुविदो चि  
उत्तं होदि । सेसेहि नि कम्मोहि एसो अहण्णसण्णियासो अणुमग्गियब्बो गबेसियब्बो  
चि उत्तं होदि ।

॥ ८३७ ॥ परं जइयसहाइरियमुहपिणिग्गय शुणिसुत्ताख देसामासिएण घ्वि  
दस्स उचारणपक्खणं कस्सामो । अहण्णए पयदं । दुविदो णिइसो—ओपेख मादेसेण ।  
ओपेण मिच्छुरोण अहण्णद्विदिशिहृत्पिप्तसिष्णुयासो सम्मत्त-सम्मापि० किं जइ० अजइ० ?  
णियमा अजइ० अमत्ते० गुणम्महिमा । बारत्त०-जवणोक्क० किं जइ० अजइ० ?  
णियमा अज० असत्ते० गुणम्महिमा । अर्णत्ताणुइपी णिस्संता ।

॥ ८३८ ॥ सम्मत्तस्स जइ० बारत्त०-जवणोक्क० किं जइ० अज० ? णियमा  
अज० असत्ते० गुणम्महिमा । सेसस्स अत्तं ।

॥ ८३९ ॥ सम्मापि० जइ० विहृत्पिप्तसिष्णुयासो मिच्छुरोण-सम्मत्त-अर्णत्ताणु० सिया अत्ति  
सिया यात्ति । यदि अरिच किं जइ० अजइ० ? णियमा अज० असत्ते० गुणम्महिमा ।  
बारत्त०-जवणोक्क० किं अ० अज० ? णियमा अज० असत्ते० गुणम्महिमा ।

★ जिस प्रकार मिथ्यात्वके साथ सब प्रकृतियोंका सम्बन्ध कहा है उसी प्रकार  
क्षेप कर्मोंके साथ भी उसका विचार करना चाहिये ।

॥ ८३६ ॥ जिस प्रकार मिथ्यात्वकी वचन्य स्थितिके साथ सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार शेष  
कर्मोंके साथ भी यह वचन्य सन्निकर्ष कहना चाहिये । सूत्रमें जो 'यन्तो' पद है उसका अर्थ  
'कहना चाहिये प्रकृत्युपकरण चाहिये' यह होता है तथा 'अणुमग्गियब्बो' परका अर्थ खोजना  
चाहिये होता है ।

॥ ८३७ ॥ इस प्रकार बलितुपम व्यापारिके मुक्तसे निकले हुए श्रुतिसूत्रोंके वेदान्तवैक दानसे  
सूचित हुए अर्थकी व्याख्याका कथन करते हैं—अब वचन्य सन्निकर्षका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा  
निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आषेणनिर्देश । हमसे ओषकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी  
वचन्य स्थितिबिम्बितिके जीवके सम्बन्ध और सम्मिमिथ्यात्वकी स्थिति क्या वचन्य होती है  
या अवचन्य ? नियमसे अवचन्य होती है । जो अपनी वचन्य स्थितिसे असंस्मृतगुणी अधिक  
होती है । बारत्त कथा और नौ मोक्षकार्योंकी स्थिति क्या वचन्य होती है या अवचन्य ? नियमसे  
अवचन्य होती है, जो अपनी वचन्य स्थितिसे असंस्मृतगुणी अधिक होती है । तथा अनन्ता-  
नुबन्धीका यहाँ अभाव है ।

॥ ८३८ ॥ सम्मत्तवचन्यकी वचन्य स्थितिबिम्बितिके धारक जीवके बारत्त कथा और नौ  
मोक्षकार्योंकी स्थिति क्या वचन्य होती है या अवचन्य ? नियमसे अवचन्य होती है । जो अपनी  
वचन्य स्थितिसे असंस्मृतगुणी अधिक होती है । इसके शेष प्रकृतियोंका मन्त्र नहीं है ।

॥ ८३९ ॥ सम्मिमिथ्यात्वकी वचन्य स्थितिके धारक जीवके मिथ्यात्व सम्मत्त और  
अनन्तानुबन्धी वचन्य से बारत्त प्रकृतियों का अभिहित है और कथाबिहित नहीं है । यदि है तो इनकी स्थिति  
क्या वचन्य होती है या अवचन्य ? नियमसे अवचन्य होती है । जो अपनी वचन्य स्थितिसे

§ ८४० अणंताणु०कोध० जह० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसक०-णव-  
णोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० असखेज्जगुणा । तिण्णिक० किं ज०  
[ अजह० ] ? णियमा जह० । एवं तिण्हं कसायाण ।

§ ८४१ अपच्चक्खाणकोध० जह०विहत्तियस्स चत्तारिसज०-णवणोक० किं  
ज० अज० ? णियमा अज० असखे०गुणा । सत्तकसाय० किं जह० अज० ? णियमा  
जह० । एव सत्तकसायाण ।

§ ८४२ इत्थि०ज०विहत्तियस्स सत्तणोक०-तिण्णिसजल० किं जह० अज० ?  
णियमा अज० सखे०गुणा । लोभसज० किं जह० अज० ? णियमा अज० असखे०-  
गुणा । एव एवु स० ।

§ ८४३ पुरिस०ज०विहत्तियस्स तिण्ह सजल० किं ज० अज० ? णियमा  
अज० सखेज्जगुणा । लोभसज० किं जह० अज० ? णियमा अज० असखे०गुणा ।

§ ८४४, इस्सज० तिण्णिसज०-पुरिस० किं जह० अज० ? णियमा अज०

असख्यातगुणी अधिक होती है । वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्यस्थितिसे असख्यातगुणी होती है ।

§ ८४०. अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४१. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके चार सज्वलन और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । शेष अप्रत्याख्यानावरण मान आदि सात कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अप्रत्याख्या-  
वरण मान आदि सात कपायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४२. स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सात नोकपाय और तीन सज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । लोभसज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४३ पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके तीनों सज्वलनोंकी स्थिति क्या जघन्य होता है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । लोभ सज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है ।

§ ८४४. हास्यकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके तीन सज्वलन और पुरुषवेदकी

संसे०गुणा । सोमसंमल० किं नह० अग्रह० ? शियमा अम० असंसेगुणा । पंच  
नोक० किं नह० अम ? शियमा अहणा । एव पंचनोक० ।

५८४५ कोपसमल० अह० विहृतिपस्त दोसंमल० किं अह० अग्रह० ? शियमा  
अम० संसेगुणा । सोम० किं अ० अग्र० ? शियमा अम०, असंसे०गुणा । माणसंम०  
अह० विहृतिपस्त मायासंम० किं अ० अग्र० ? शियमा अम० संसे०गुणा । स्मेम  
किं अ० अग्र० ? शियमा अम०, असंसे०गुणा । मायासंमल० अह० विहृति० सोम०  
किं अ० अम० ? शियमा अम० असंसे०गुणा ।

५८४६ सोमसंम० अह० द्विदि० सेसणत्वि । एवं मणुस-मणुसपञ्च०  
मणुसिणी-पंचिदिय-पंचि० पञ्च०-तस-तसपञ्च०-यधमण०-पंचवधि०-कायमोगि०  
मोराति०-सोमक० वस्तु०-अचवस्तु० सुवक० मवसि०-सण्णि०-माहारि ति । पञ्चरि  
मणुसपञ्चचपसु इति० अहणाद्विद्विहृतिपस्त चदुसंमल०-सचणोक० शियमा अग्र०  
असंसे०गुणा । णवुस० सिया अत्वि सिया णत्वि । नदि अत्वि, शियमा अम०  
असंसे०गुणा । मणुस्तिणीसु णवुस० अ० द्विदिवि० चदुसल०-अह्नोक० शियमा

स्थिति क्या अचपम्य होती है या अग्रचपम्य ? नियमसे अग्रचपम्य होती है । जो अचपम्य स्थितिसे  
संख्यातगुणी होती है । सोम संख्यातनकी स्थिति क्या अचपम्य होती है या अग्रचपम्य ? नियमसे  
अग्रचपम्य होती है । जो अचपम्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । पंच नोकपायोंकी स्थिति क्या  
अचपम्य होती है या अग्रचपम्य ? नियमसे अचपम्य होती है । इसी प्रकार पंच नोकपायोंकी अचपम्य  
स्थितिबिमलिके धारक जीवके सन्निकष जानना चाहिये ।

५८४७ सोम संख्यातनकी अचपम्य स्थितिबिमलिके धारक जीवके दो संख्यातनकी स्थिति क्या  
अचपम्य होती है या अग्रचपम्य ? नियमसे अग्रचपम्य होती है । जो अचपम्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती  
है । सोम संख्यातनकी स्थिति क्या अचपम्य होती है या अग्रचपम्य ? नियमसे अग्रचपम्य होती है जो  
अचपम्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । मानसंख्यातनकी अचपम्य स्थितिबिमलिके धारक जीवके  
मायासंख्यातनकी स्थिति क्या अचपम्य होती है या अग्रचपम्य ? नियमसे अग्रचपम्य होती है जो  
अचपम्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सोमसंख्यातनकी स्थिति क्या अचपम्य होती है या  
अग्रचपम्य ? नियमसे अग्रचपम्य होती है जो अचपम्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । माया  
संख्यातनकी अचपम्य स्थितिबिमलिके धारक जीवके सोमसंख्यातनकी स्थिति क्या अचपम्य होती है  
या अग्रचपम्य ? नियमसे अग्रचपम्य होती है जो अचपम्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है ।

५८४८ सोमसंख्यातनकी अचपम्य स्थिति बिमलिके धारक जीवके दो पञ्चतिर्था नहीं पाई  
जाती हैं । इसी प्रकार अर्वाच ओषके समान मनुष्य मनुष्य पयास, मनुष्यनी पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय-  
पयास, जस जस पयास पौषों मनोवागी, पौषों अचपम्योरी, अग्रचपम्योरी औरपरिचपम्योरी,  
सोम कयायवासे, अग्रचपम्योरीवासे अचपम्योरीवासे मनुष्य, संधी और अग्रचपम्य  
जीवके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पयासकोई जीवके अचपम्य स्थिति  
बिमलिके धारक जीवके पार संख्यातन और सात नोकपायोंकी नियमसे अग्रचपम्य स्थिति होती है  
और वह अचपम्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा मनुष्यकोई कदाचित् है और कदाचित्  
नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति नियमसे अग्रचपम्य होती है या अचपम्य स्थितिसे असंख्यात-  
गुणी होती है । मनुष्यनिर्वासे मनुष्यकोई अचपम्य स्थितिबिमलिके धारक जीवके पार संख्यातन

अज०, असंखे० गुणा । पुरिस० जहणोकसायभंगो ।

§ ८४७. आदेसेण णेरइय० मिच्छत्त० जह० विहत्ति० वारसक०-भय-दुग्ध० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा सम-उत्तरादि जाव पल्लिदो० असंखे० भागवहिया । सम्पत्त० सिया अत्थि, सिया णत्थि । जदि अत्थि, किं जह० अज० ? णियमा अज० विट्ठाणपट्ठिदा संखेज्जगुणवहिया असंखे० गुणवहिया वा । सम्मामि० सिया अत्थि मिया णत्थि ? जदि अत्थि, किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपट्ठिदा संखे० गुणा अमंखे० गुणा वा णिसंय-प्पहाणत्तणेण, अण्णहा विट्ठाणपट्ठिदा । अणंताणु० चउक० किं जह० अज० ? णियमा अज०, असंखे० गुणा । सत्तणोक० किं जह० अज० ? णि० अज०, असंखे० भागवहिया । सम्पत्त० जहण्णद्विविहत्ति० वारसक०-एवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज०, संखे० गुणा । सम्मामि० ज० विहत्तियस्स मिच्छत्त-वारसक०-एवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जदि अजहण्णा विट्ठाणपट्ठिदा असंखे० भागवहिया संखे० भागवहिया मंखे० गुणवहिया वा । अणंताणु० णियमा अजहण्णा

और आठ नोकपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा पुरुषवेदका भग छह नोकपायोंके समान है ।

§ ८४७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमें से अजघन्य स्थिति एक समय अधिकसे लेकर पत्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक जघन्य स्थिति तक होती है । सम्यक्त्व प्रकृति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी अधिक होती है या असंख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी होती है । यह स्थिति निपेकोंकी प्रधानतासे कही है । अन्यथा जघन्य स्थितिसे अजघन्य स्थिति तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है ? सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कपाय, और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होती है तो वह जघन्यसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी

असंख्ये० गणा । अर्णताणु० कोष० ज० विहारी० मिच्छन्-वारसक०-णवणोक० किं व०  
अम० ? णि० अम० संख्ये० गुणा । सम्मामि० किं ज० अमह० ? णियमा अम०,  
असंख्ये० गुणम्महिषा । तिण्हमणताणुअपीणं किं ज० अम० ? णि० अहणा । एवं  
तिण्हं कसायाणं । अपचनत्वा० कोषज० विहारी० मिच्छन्-एकारसक० किं व० अम० ?  
[ अम० ] तं तु समचरमारिं काहण जाव पत्ति० असंख्ये० मागम्महिषा । मय-  
दुगुणं किं व० अम० ? णिय० अहणा । सम्मत्त-सम्मामि० अर्णताणु० चउक०-  
सचणोक० मिच्छन्तमंगो । एवमेकारसक० । इरिव० ज० विहारी० मिच्छन्-वारसक०-  
अहणोक० किं व० अम० ? णि० अम० संख्ये० गुणा । सम्मत्त-सम्मामि० अर्णता०  
चउक० मिच्छन्तमंगो । एवं पुरिस० । खपुंस० अहणहिंदिविहारीयस्स मिच्छन्-  
वारसक०-इत्थि० पुरिस० अरि-सोग मय-दुगुणं किं व० अम० ? णियमा अम०,  
संख्ये० गुणा । इस्सरदि० किं व० अम० ? णियमा अम० वेढाणपदिदा असंख्ये०  
मागम्महिषा संख्ये० गुणम्महिषा वा । सम्मत्त-सम्मामि० अर्णताणु० चउक० मिच्छन्तमंगो ।

कोषकी अचम्य स्थितिके धारक जीवके मिथ्यात्व बरह कयाय और नौ नोकयायोंकी स्थिति क्या  
अचम्य होती है या अचम्य ? नियमसे अचम्य होती है, जो अचम्यसे संख्यातगुणी होती है ।  
सम्पत्त्व और सम्ममिथ्यात्वकी स्थिति क्या अचम्य होती है या अचम्य ? नियमसे अचम्य  
होती है । जो अचम्यसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । छेप तीन अनन्तलुपन्निबोंकी स्थिति  
क्या अचम्य होती है या अचम्य ? नियमसे अचम्य होती है । इसी प्रकार अनन्तलुपन्नि मान  
आदि तीन कयायोंकी अचम्य स्थिति विमर्शिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्या-  
ख्यानावरण कोषकी अचम्य स्थिति विमर्शिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि  
ग्यारह कयायोंकी स्थिति क्या अचम्य होती है या अचम्य ? नियमसे अचम्य होती है । मिथ्यात्व  
की स्थिति क्या अचम्य होती है या अचम्य ? अचम्य मो होती है और अचम्य भी । इनमेंसे  
अचम्य स्थिति अचम्य स्थितिकी अपेक्षा एक समव अधिकसे लेकर पस्योपमके असंख्यातमें  
भाग तक अधिक होती है । मय और जुगुप्साकी स्थिति क्या अचम्य होती है या अचम्य ?  
नियमसे अचम्य होती है । सम्पत्त्व, सम्ममिथ्यात्व, अनन्तलुपन्नि बहुष्क और सप्त नोकयायोंका  
भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कयायोंकी अचम्य  
स्थिति विमर्शिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवेषकी अचम्य स्थिति विमर्शिके  
धारक जीवके मिथ्यात्व, बरह कयाय और आठ नोकयायोंकी स्थिति क्या अचम्य होती है  
या अचम्य ? नियमसे अचम्य होती है, जो अचम्यसे संख्यातगुणी अधिक होती है ।  
सम्पत्त्व, सम्ममिथ्यात्व और अनन्तलुपन्नि बहुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार  
पुरुषवेषकी अचम्य स्थिति विमर्शिके धारक जीवके जानना चाहिये । नर्पुसकदेवकी अचम्य स्थिति  
विमर्शिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बरह कयाय, स्त्रीवेष, पुरुषवेष अरति छोक, मय और  
जुगुप्साकी स्थिति क्या अचम्य होती है या अचम्य ? नियमसे अचम्य होती है जो अचम्यसे  
संख्यातगुणी अधिक होती है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या अचम्य होती है या अचम्य ?  
नियमसे अचम्य होती है, जो अचम्यसे असंख्यातगुणी अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार  
वा स्थान पवित्र होती है । तथा सम्पत्त्व, सम्ममिथ्यात्व और अनन्तलुपन्नि बहुष्कका भंग  
मिथ्यात्वके समान है । किसी उच्चारणमें अरति और छोककी स्थिति हास्य और रतिके



अज०, असंखे०गुणा । पुनिम० न्दण्णोक्कमायभंगो ।

§ ८४७. आदेसेण णेग्गय० मिन्दत्त० जह० विट्ठि० चारमक०-भय-दुग्गु० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा मम-उत्तरादि त्राय पजिदो० असंखे० भाग्वहिया । सम्मत० मिया अत्थि, मिया णत्थि । जदि अत्थि, किं जह० अज० ? णियमा अज० विट्ठाणपट्ठिदा संखेज्जगुणव्वहिया अमंखे०गुणव्वहिया वा । सम्मामि० सिया अत्थि मिया णत्थि ? जदि अत्थि, किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपट्ठिदा मये०गुणा अमंखे०गुणा त्रा णियमा-प्पहाणत्तणेण, अण्णहा विट्ठाणपट्ठिदा । अणताणु० चउज० किं जह० अज० ? णियमा अज०, असंखे०गुणा । मत्तणोक्क० किं जह० अज० ? एि० अज०, अमंखे०भाग-व्वहिया । सम्मत० जहण्णहिदिविहत्ति० चारमक०-एण्णोक्क० किं ज० अज० ? णि० अज०, संखे०गुणा । सम्मामि० ज० विट्ठित्थियम्म मिन्दत्त-चारसक०-एण्णोक्क० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जदि अजहण्णा विट्ठाणपट्ठिदा अमंखे०-भागव्वहिया संखे०भागव्वहिया मये०गुणव्वहिया त्रा । अणताणु० णियमा अजहण्णा

---

और आठ नोकपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा पुन्यवेदका भग छह नोकपायोंके समान है ।

§ ८४७ आदेशकी अपेक्षा नारियामे मिश्रित्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमें से अजघन्य स्थिति एक समय अधिकसे लेकर पत्योपमने अमर्या-तर्वे भाग अधिक जघन्य स्थिति तक होती है । सम्यक्त्व प्रवृत्ति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होता हुई संख्यातगुणी अधिक होती है या असंख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यग्मिश्रित्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी होती है । यह स्थिति निपेक्षोंकी प्रधानतासे बड़ी है । अन्यथा जघन्य स्थितिसे अजघन्य स्थिति तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिश्रित्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिश्रित्व, वारह कपाय, और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होती है तो वह जघन्यसे असंख्यातर्वे भाग अधिक, संख्यातर्वे भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्यसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी

असंखे० गुणा । अर्णताणु० कोष० ॥ निहृषि० मिच्छत्-वारसक०-अवणोक० किं ख०  
अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मामि० किं ज० अज० ? णियमा अज०,  
असंखे० गुणम्महिया । तिण्हमर्णताणुपणीं किं ज० अज० ? णि० अहण्णा । एष  
तिण्ह कसायणं । अपयवत्ता० कोषज० विहृषि० मिच्छ०-एकारसक० किं ख० अज० ?  
[ अज० ] तं तु समसचरमादिं कादूण जाव पसि० असंखे० मागम्महिया । मय  
दुगुंढ० किं ज० अज० ? णिय० अहण्णा । सम्मच-सम्मामि०-अर्णताणु० चउत्त०  
सचणोक० मिच्छत्तमंगो । एवमेकारसक० । इत्थि० ख० निहृषि० मिच्छत्-वारसक०  
अहणोक० किं ख० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मच-सम्मामि०-अर्णता-  
चउत्त० मिच्छत्तमंगो । एवं पुरिस० । णुसुस० अहण्णद्विदिविहृषियस्त मिच्छत्-  
वारसक०-इत्थि० पुरिस० अदि-सोग मय-दुगुंढ० किं ख० अज० ? णियमा अज०,  
संखे० गुणा । इस्सरदि० किं ख० अज० ? णियमा अज० वेद्धानपदिदा असंखे०  
मागम्महिया संखे० गुणम्महिया वा । सम्मच-सम्मामि०-अर्णताणु० चउत्त० मिच्छत्तमंगो ।

कोषकी अवयव स्थिति के धारक बीबके मिथ्यात्व धारक कथाय और नौ नोकयायोंकी स्थिति क्या  
अवयव होती है वा अवयव ? नियमसे अवयव होती है, वा अवयवसे संख्यातगुणी होती है ।  
सम्पत्त्व और सम्ममिध्यात्वकी स्थिति क्या अवयव होती है वा अवयव ? नियमसे अवयव  
होती है । जो अवयवसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । सेय तीन अनन्तानुबन्धीकी स्थिति  
क्या अवयव होती है वा अवयव ? नियमसे अवयव होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान  
आदि तीन कथायोंकी अवयव स्थिति विमर्शके धारक बीबके समिकर्ष जानना चाहिये । अस्त्या-  
वयानावरण कोषकी अवयव स्थिति विमर्शके धारक बीबके अस्त्यावयानावरण मान आदि  
ग्यारह कथायोंकी स्थिति क्या अवयव होती है वा अवयव ? नियमसे अवयव होती है । मिथ्यात्व  
की स्थिति क्या अवयव होती है वा अवयव ? अवयव मो होती है और अवयव भी । इनमेंसे  
अवयव स्थिति अवयव स्थिति की अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्तोपमके असंख्यातमें  
माग तक अधिक होती है । मय और अणुप्राकी स्थिति क्या अवयव होती है वा अवयव ?  
नियमसे अवयव होती है । सम्पत्त्व, सम्ममिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकयायोंका  
माग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार अस्त्यावयानावरण मान आदि ग्यारह कथायोंकी अवयव  
स्थिति विमर्शके धारक बीबके समिकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवैदकी अवयव स्थिति विमर्शके  
धारक बीबके मिथ्यात्व धारक कथाय और आठ नोकयायोंकी स्थिति क्या अवयव होती है  
वा अवयव ? नियमसे अवयव होती है वा अवयवसे संख्यातगुणी अधिक होती है ।  
सम्पत्त्व, सम्ममिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका माग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार  
पुरुषवैदकी अवयव स्थिति विमर्शके धारक बीबके जानना चाहिये । नपुंसकवैदकी अवयव स्थिति  
विमर्शके धारक बीबके मिथ्यात्व, धारक कथाय, स्त्रीवैद, पुरुषवैद, अरुति, शोक, मय और  
अणुप्राकी स्थिति क्या अवयव होती है वा अवयव ? नियमसे अवयव होती है जो अवयवसे  
संख्यातगुणी अधिक होती है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या अवयव होती है वा अवयव ?  
नियमसे अवयव होती है, जो अवयवसे असंख्यातगुणी अधिक वा संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार  
दो स्थान पठित होती है । तथा सम्पत्त्व, सम्ममिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका माग  
मिथ्यात्वके समान है । किसी अवयवमें अरुति और शोककी स्थिति हास्य और रतिके

अज०, असंखे०गुणा । पुरिस० छण्णोकसायभगो ।

§ ८४७, आदेसेण णेरइय० मिच्छत्त० जह० विहत्ति० वारसक०-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा सम-उत्तरादि जात्र पत्तिदो० असंखे० भागवहिया । सम्मत्त० सिया अत्थि, सिया णत्थि । जदि अत्थि, किं जह० अज० ? णियमा अज० विट्ठाणपदिदा संखेज्जगुणवहिया असंखे०गुणवहिया वा । सम्मामि० सिया अत्थि मिया णत्थि ? जदि अत्थि, किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपदिदा संखे०गुणा असंखे०गुणा वा णिसेय-प्पहाणत्तणेण, अण्णहा विट्ठाणपदिदा । अणंताणु० चउक्क० किं जह० अज० ? णियमा अज०, असंखे०गुणा । सत्तणोक० किं जह० अज० ? णि० अज०, असंखे०भागवहिया । सम्मत्त० जहण्णद्विदिविहत्ति० वारसक०-एवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज०, संखे०गुणा । सम्मामि० ज० विहत्तियस्स मिच्छत्त-वारसक०-एवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जदि अजहण्णा विट्ठाणपदिदा असंखे०-भागवहिया संखे०भागवहिया संखे०गुणवहिया वा । अणंताणु० णियमा अजहण्णा

---

और आठ नोकपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा पुरुषवेदका भग छह नोकपायोंके समान है ।

§ ८४७ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमें से अजघन्य स्थिति एक समय अधिकसे लेकर पत्न्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक जघन्य स्थिति तक होती है । सम्यक्त्व प्रकृति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी अधिक होती है या असंख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी होती है । यह स्थिति निषेकोंकी प्रधानतासे कही है । अन्यथा जघन्य स्थितिसे अजघन्य स्थिति तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है ? सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके वारह कषाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होती है तो वह जघन्यसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्यसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी

किं प्र० अम० ? श्रियमा अम० असंखे० गुणा । बारसक० किं ज० अज० ? श्रियमा  
जहण्णा । एवं बारसक०-गवणोकसापारणं । सम्मत्त० ज० विहत्थियस्स मिच्छत्त-बार  
सक०-गवणोक० किं ज० अज० ? श्रिय० अज० मंखे० गणा । सम्मामि०-अणत्ताणु०  
चत्तक० किं ज० अज० ? श्रिय० अज० असंखे० गुणा । सम्मामिच्छ० अह० विहत्ति  
यस्स मिच्छत्त-बारसक०-गवणोक० किं अह० अज० ? श्रिय० अज० संखेज्जगुणा ।  
अणत्ताणु०-चत्तक० किं अह० अज० ? श्रिय० अज० असंखे० गुणा । सम्मत्तं एतिय ।  
अणत्ताणु० कोह० ज० विहत्ति० मिच्छत्त बारसक०-गवणोक० किं ज० अज० ? श्रिय०  
अम० बहाणपटिदा असंखे० मागमहिया सखे० मागमहिया वा । सम्मत्त-सम्मामि०  
किं ज० अम० ? श्रियमा अम० असंखे० गुणा । तिण्णि कसाय० किं ज० अम० ?  
श्रियमा अह० । एवं तिण्ण कसापारणं ।

§ ८४६ सत्तमाए पुडवीए मिच्छत्त० ज० विहत्ति० बारसक० मय-दुगु झा०  
किं ज० अम० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अम० समयुत्तरमादिं कादूय जाव  
पारक बीजके सम्पत्तय और सम्मग्मिध्यात्वकी स्थिति क्या जपम्ब हाती है वा अजपम्ब ?  
नियमसे अजपम्ब होती है, जो जपम्ब स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । बारक कपायों और  
नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जपम्ब होती है वा अजपम्ब ? नियमसे जपम्ब होती है । इसी  
प्रकार बारक कपाय और नौ नोकपायोंकी जपम्ब स्थितिबिमलिके धारक जावक समिकय जानना  
चाहिये । सम्पत्तयकी जपम्ब स्थितिबिमलिके धारक बीजके मिध्यात्व बारक कपाय और नौ  
नोकपायोंकी स्थिति क्या जपम्ब होती है वा अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब होती है, जो जपम्ब  
स्थितिसे संख्यातगुणी हाती है । सम्मग्मिध्यात्व और अनन्तालुम्बी वस्तुत्वकी स्थिति क्या  
जपम्ब होती है वा अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब होती है । जो जपम्ब स्थितिसे असंख्यातगुणी  
होती है । सम्मग्मिध्यात्वकी जपम्ब स्थितिबिमलिके धारक बीजके मिध्यात्व बारक कपाय और  
नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जपम्ब होती है वा अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब होती है । जो  
अपनी जपम्ब स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । अनन्तालुम्बी वस्तुत्वकी स्थिति क्या जपम्ब  
होती है वा अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब होती है, जो अपनी जपम्ब स्थितिसे असंख्यातगुणी  
होती है । इनके सम्पत्तय प्रकृति नहीं है इसलिये उसका समिकय नहीं कहा । अनन्तालुम्बी  
कोषकी जपम्ब स्थितिबिमलिके धारक बीजके मिध्यात्व बारक कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति  
क्या जपम्ब होती है वा अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब होती है, जो अपनी जपम्ब स्थितिसे  
असंख्यातबे माग अधिक या संख्यातबे माग अधिक इस प्रकार दो स्थान पठित होती है ।  
सम्पत्तय और सम्मग्मिध्यात्वकी स्थिति क्या जपम्ब होती है वा अजपम्ब ? नियमसे अजपम्ब  
होती है, जो अपनी जपम्ब स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तालुम्बी मान आदि तीन  
कपायोंकी स्थिति क्या जपम्ब होती है वा अजपम्ब ? नियमसे जपम्ब होती है । इसी प्रकार  
अनन्तालुम्बी मान आदि तीन प्रकृतियोंकी जपम्ब स्थितिबिमलिके धारक बीजके समिकय  
जानना चाहिये ।

§ ८४६. सावरी वृत्तिमें मिध्यात्वकी जपम्ब स्थितिबिमलिके धारक बीजके बारक कपाय,  
मय और वस्तुत्वकी स्थिति क्या जपम्ब हाती है वा अजपम्ब ? जपम्ब भी होती है और

कम्हि वि उच्चारणाए अरदि-सोगहिदी हस्सरदीणं व वेढाणपदिदा त्ति भणदि, तं जाणिय वत्तव्वं । हस्स० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-वारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछं किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । इत्थि०-पुरिस०वे० किं ज० अज० ? णि० अज० विढाणपदिदा असंखे०भाग० संखे०गुणव्वभहिया वा । रदि० किं ज० अज० ? णिय० जहण्णा । एवं रदि० । अरदि० जह० मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । इत्थि-पुरिस-णवुंस० किं ज० अज० ? णियमा अज० विढाणपदिदा असंखे०भागव्वभहिया संखे०गुण-व्वभहिया वा । सोग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं मोग० । भयस्स ज० विहत्ति० मिच्छत्तवारसक० किं ज० [अज०] ? अज०, तं तु विढाणपदिदा असंखे०भाग-व्वभहिया संखे०भागव्वभहिया वा । दुगुंछं किं ज० अज० ? णियमा जहण्णा । सेसं मिच्छत्तभंगो । एवं दुगुंछाए । एवं पढमाए पुढवीए ।

§ ८४८ विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त ज० विहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि०

समान दो स्थान पतित कही है मो जानकर उसका कथन करना चाहिये । हास्यकी जगन्म स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कपाय, नपुसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मिथ्यात्वके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व वारह कपाय, भय, जुगुप्सा, हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मिथ्यात्वके समान है । स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुसकवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । भयकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और वारह कपायकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्यसे असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातवें भाग अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । शेष कथन मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये ।

§ ८४८. दूसरीसे लेकर छठी पृथिवीतकके नारकियोंमें मिथ्यात्वका जघन्य स्थिति विभक्तिके

बारसक०-इत्य पुरिस० अरदि सोग मय-दुर्गु० किं ज० अज० ? पियमा अज०  
 सखे० गुणा । सम्मच-सम्मायि० अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ? पियमा अज०  
 असखे० गुणा । इस्स-रदि किं ज० अज० ? पि० अज० वेहाणपदिदा असखे०  
 मागम्महिपा संखेज्जगुणा वा ? इस्स जह० विइति० मिच्छव०-बारसक० णपुंस०  
 अरदि-सोग-मय-दुर्गु० किं ज० अज० ? पि० अज० संखेज्जगुणा । सम्मच  
 सम्मायि०-अणंताणु० चउक्क० णपुंस० भगो । इत्य पुरिस० किं ज० अज० ? पिय०  
 अज० वेहाणपदिदा असखे० मागम्महिपा सखे० गुणा वा । रदि० किं ज० अज० ?  
 पियमा अहणा । एवं रदि० । अरदि० जह० विइति० मिच्छव०-बारसक०-इस्स-रदि  
 मय-दुर्गु० किं ज० अज० ? पियमा अज० सखे० गुणा । सम्मच०-सम्मायि०  
 अणंताणु० चउक्क० रदिभगो । तिग्गि वेद० किं ज० अज० ? पिय० अज० वेहाण-  
 पदिदा असखे० मागम्महिपा संखे० गुणा वा । सोग० किं ज० अज० ? पियमा  
 अहणा । एव सोग० । मय ज० विइति० मिच्छव०-बारसक० किं ज० ? अज० । तं तु

स्वित्तिसे असंख्यातगुणी होती है इसी प्रकार पुरुषेश्वरी जपम्य स्वित्तिविमलिके पारक बीजके  
 सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुंसकेश्वरी जपम्य स्वित्तिविमलिके पारक बीजके मिथ्यात्व बाराह  
 कपाय, स्त्रीविष पुरुषेश्व, अरति शोक मय और जुगुप्साकी स्विति क्या जपम्य होती है या  
 अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है जो अपनी जपम्य स्वितिसे संख्यातगुणी होती है ।  
 सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तलुब्धकी जपम्य स्विति क्या जपम्य होती है या  
 अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है जो अपनी जपम्य स्वितिसे असंख्यातगुणी होती है ।  
 हास्य और रतिकी स्विति क्या जपम्य होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है । जो  
 अपनी जपम्य स्वितिसे असंख्यातगुणी आग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान  
 पतित होती है । हास्यकी जपम्य स्विति विमलिके बीजके मिथ्यात्व, बाराह कपाय नपुंसकेश्व  
 अरति, शोक मय और जुगुप्साकी स्विति क्या जपम्य होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य  
 होती है । जो अपनी जपम्य स्वितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और  
 अनन्तलुब्धकी जपम्य स्विति मंग नपुंसकेश्वके समान है । स्त्रीविष और पुरुषेश्वरी स्विति क्या  
 जपम्य होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है जो अपनी जपम्य स्वितिसे  
 असंख्यातगुणी आग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है ।  
 रतिकी स्विति क्या जपम्य होती है या अजपम्य ? नियमसे जपम्य होती है । इसी प्रकार रतिकी  
 जपम्य स्विति विमलिके बीजके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जपम्य स्विति विमलिके  
 पारक बीजके मिथ्यात्व बाराह कपाय, हास्य रति, मय और जुगुप्साकी स्विति क्या जपम्य  
 होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है, जो अपनी जपम्य स्वितिसे संख्यातगुणी  
 होती है । सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तलुब्धकी जपम्य स्विति मंग रतिके समान है । तीनों  
 वेदोंकी स्विति क्या जपम्य होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है । जो अपनी  
 जपम्य स्वितिसे असंख्यातगुणी आग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित  
 होती है । शोककी स्विति क्या जपम्य होती है या अजपम्य ? नियमसे जपम्य होती है । इसी  
 प्रकार शोककी जपम्य स्विति विमलिके बीजके सन्निकर्ष जानना चाहिये । मयकी जपम्य स्विति  
 विमलिके बीजके मिथ्यात्व और बाराह कपायकी स्विति क्या जपम्य होती है या अजपम्य ?

पल्लिदो० असंखे० भागवभहिया । सम्मत्त-सम्मामि० अणंताणु० चउक्क० किं ज०  
 अज० ? णि० अज० अमखे० गुणा । सत्तणोक्क० किं ज० अज० ? णियमा अज०  
 असंखे० भागवभहिया । एवं वारसकसायाणं, णवरि भय-दुगुंछा० तं तु समयुत्तरमादि०  
 जाव आवल्लियवभहिया । सम्मत्त० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० किं  
 ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मामि० किं ज० अज० ? णियमा अज०  
 असंखे० गुणा । अणंताणु० चउक्क० विदियपुढविभंगो । सम्मामि० एवं चेव, णवरि  
 सम्मत्तं णत्थि । अणंताणु० कोध० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० किं  
 ज० अज० ? णि० अज० विट्ठाणपदिदा असंखेज्जभागवभहिया मखे० भागवभहिया वा ।  
 सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । तिण्णि क० किं ज० अज० ? णि० ज० । एवं  
 तिण्हं कसायाणं । इत्थि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-अट्ठणोक्क० किं ज० अज० ?  
 णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ?  
 णियमा अज० असंखे० गुणा । एवं पुरिस० । णवुंस० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-

अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्न्योपमके असख्यातवें भाग तक अधिक होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार बारह कपायोंकी जघन्य स्थितिबभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके भय और जुगुप्साकी स्थिति अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिकसे लेकर एक आवलितक अधिक होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिबभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग दूसरी पृथिवीके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबभक्तिके धारक जीवके इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिबभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या सख्यातवें भाग अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भग मिथ्यात्वके समान है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तान कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी जघन्य स्थितिबभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कपाय, और आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य

मिच्छत्-वारसक०-अणोक्त० किं ज० अज० ? अहणा अजहणा वा । अहणादो  
अजहणा तिहाखपदिदा असंखे० भाग्यमहिया संखे० भाग्यमहिया संखे० गुण्यमहिया  
वा । असंखे० चटक० किं ज० अज० ? खि० अज० संखे० गुण्यमहिया । अणतापु०  
कोप० अह० विहति० मिच्छत्-वारसक०-अणोक्त० किं ज० अज० ? खि० अज०  
असंखे० गुणा । सम्पत्-सम्पामि० किं ज० अज० ? खियमा अज० असंखे० गुणा ।  
विभिक० किं ज० अज० ? खि० अहणा । एवं तिर्ह कसापार्ज । मय० अ०  
विहति० मिच्छत्-वारसक० किं ज० अज० ? अहणा अजहणा वा । अहणादो  
अजहणा असंखे० भाग्यमहिया । सम्पत्-सम्पामि० अणतापु० चटक० मिच्छत्  
मंगो । सत्तखोक्त० किं ज० अज० ? खि० अज० असंखे० भाग्यमहिया । दुगुंज०  
किं ज० अज० ? खि० अहणा । एवं दुगुंजाप । इति० अह० विहति० मिच्छत्  
वारसक०-अणोक्त० किं ज० अज० ? खि० अज० संखे० गुणा । सम्पत्-सम्पामि०  
अणतापु० चटक० मिच्छत्-मंगो । एवं पुरिस० । गर्नुस० अह० विहति० मिच्छत्-

अपन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्पत्मिध्यात्वकी अपन्य स्थिति विमर्शके धारक जीवके  
मिध्यात्व, बारह कपाय और नौ भोक्तार्योंकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा अअपन्य ? अपन्य  
भी होती है और अअपन्य भी । इनमेंसे अअपन्य स्थिति अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातवैभाग  
अधिक, संख्यातवैभाग अधिक वा संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पठित होती है ।  
अनन्तानुबन्धी अनुष्णकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा अअपन्य ? नियमसे अअपन्य होती  
है वा अपनी अपन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है । अनन्तानुबन्धी कोषकी अपन्य  
स्थिति विमर्शके धारक जीवके मिध्यात्व बारह कपाय और नौ भोक्तार्योंकी स्थिति क्या अपन्य  
होती है वा अअपन्य ? नियमसे अअपन्य होती है जो अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी  
होती है । सम्पत्त्व और सम्पत्मिध्यात्वकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा अअपन्य ? नियमसे  
अअपन्य होती है जो अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान  
आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा अअपन्य ? नियमसे अपन्य होती है ।  
इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी अपन्य स्थितिके धारक जीवके सन्नि  
कर्षे जानना चाहिये । मयकी अपन्य स्थिति विमर्शके धारक जीवके मिध्यात्व और बारह  
कपायकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा अअपन्य ? अपन्य भी होती है और अअपन्य भी ।  
इनमेंसे अअपन्य स्थिति अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातवै भाग अधिक होती है ।  
सम्पत्त्व, सम्पत्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी अनुष्ण मंग मिध्यात्वके समान है । सात  
भोक्तार्योंकी स्थिति क्या अपन्य होती है । वा अअपन्य ? नियमसे अअपन्य होती है, वा  
अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातवै भाग अधिक होती है । पुण्यप्ताकी स्थिति क्या अपन्य  
होती है वा अअपन्य ? नियमसे अपन्य होती है । इसी प्रकार पुण्यप्ताकी अपन्य स्थिति  
विमर्शके धारक जीवके सन्निर्कर्षे जानना चाहिये । स्त्रीवैदकी अपन्य स्थिति विमर्शके धारक  
जीवके मिध्यात्व बारह कपाय और आठ नाश्यायोंकी स्थिति क्या अपन्य होती है वा  
अअपन्य ? नियमसे अअपन्य होती है, वा अपनी अपन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है ।  
सम्पत्त्व सम्पत्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी अनुष्ण मंग मिध्यात्वके समान है । इसी प्रकार



तिहाणपदिदा असखे० भागब्भहिया संखे० भागब्भहिया संखे० गुणा वा । दुगुं० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । सेसं मिच्छत्तभगो । एवं दुगुं० वा ।

§ ८५०. तिरक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्त० ज० विहत्ति० वारसक०-भय-दुगुं० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पल्लिदो० असंखे० भागब्भहिया । सम्मत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि । यदि अत्थि, किं ज० अज० ? णि० अज० वेहाणपदिदा सखे० गुणा असखे० गुणा वा । सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । यदि अत्थि किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा वेहाणपदिदा सखे० गुणा असखे० गुणा वा । अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ? णि० अज०-असंखे० गुणा । सत्तणोरु० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० भागब्भहिया । एवं वारसक० । णवरि वारसकसाएसु एक्कदरस्स जहण्णद्विदीए णिरुद्धाए भय-दुगुं० वाओ किं ज० [ अज० ] ? अज०, तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव आवलियब्भहियाओ । सम्मत्त० ज० विहत्ति० वारसक०-एवणोक० किं ज० अज० ? एियमा अज० संखे० गुणा । सम्मामि० जह० विहत्ति०

नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । जुगुत्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । शेष प्रकृतियोंका भग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार जुगुत्साकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ण जानना चाहिये ।

§ ८५०. तिर्यचगतिमे तिर्यचोमं मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके बारह कपाय, भय और जुगुत्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्लोपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है । सम्यक्त्वप्रकृति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक या असंख्यातगुणी इस प्रकार दो स्थानपतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी इस प्रकार दो स्थानपतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार बारह कपायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ण कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कपायोंमेंसे किसी एक कपायकी जघन्य स्थितिके रुके रहने पर भय और जुगुत्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिकसे लेकर एक आवलितक अधिक होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी

मिच्छत्-वारसक०-अवशोक० किं ज० अज० ? अहण्या अजहण्या वा । अहण्यादो  
अजहण्या विद्यापदिदा असंखे० मागम्भरिया संखे० मागम्भरिया संखे० गुणम्भरिया  
वा । अणताणु० चठक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणम्भरिया । अणताणु०  
कोप० जह० विहसि० मिच्छत्-वारसक०-अवशोक० किं ज० अज० ? णि० अज०  
मंसंखे० गुणा । सम्पत्-सम्पामि० किं ज० अज० ? णिपमा अज० असंखे० गुणा ।  
विणिग० किं ज० अज० ? णि० अहण्या । एवं तिण् कसायाणं । मय० ज०  
विहसि० मिच्छत् वारसक० किं ज० अज० ? अहण्या अजहण्या वा । अहण्यादो  
अजहण्या असंखे० मागम्भरिया । सम्पत्-सम्पामि० अणताणु० चठक० मिच्छत्  
मंगो । सत्ताणक० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० मागम्भरिया । दुगुञ्ज०  
किं ज० अज० ? णि० अहण्या । एवं दुगुञ्जाए । इत्थि० जह० विहसि० मिच्छत्  
वारसक०-अवशोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्पत्-सम्पामि०  
अणताणु० चठक० मिच्छत् मंगो । एवं पुरिस० । णवुस० जह० विहसि० मिच्छत्०

अपन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्बन्धिमिच्छात्वकी अपन्य स्थिति विमर्शिके चारक बीरके  
मिच्छात्व, वारह कयाय और नौ नोकयायोंकी स्थिति क्या अपन्य होती है या अजपन्य ? अपन्य  
भी होती है और अजपन्य भी । उनमेंसे अजपन्य स्थिति अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातबैमाग  
अधिक, संख्यातबैमाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है ।  
अनन्तलुक्की अतुल्यकी स्थिति क्या अपन्य होती है या अजपन्य ? नियमसे अजपन्य होती  
है जो अपनी अपन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है । अनन्तलुक्की कोषकी अपन्य  
स्थिति विमर्शिके चारक बीरके मिच्छात्व वारह कयाय और नौ नोकयायोंकी स्थिति क्या अपन्य  
होती है या अजपन्य ? नियमसे अजपन्य होती है, जो अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी  
होती है । सम्बन्ध और सम्बन्धिमिच्छात्वकी स्थिति क्या अपन्य होती है या अजपन्य ? नियमसे  
अजपन्य होती है जो अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तलुक्की मान  
आदि तीन कयायोंकी स्थिति क्या अपन्य होती है या अजपन्य ? नियमसे अपन्य होती है ।  
इसी प्रकार अनन्तलुक्की मान आदि तीन कयायोंकी अपन्य स्थितिके चारक बीरके समान  
करै जानना चाहिये । मयकी अपन्य स्थिति विमर्शिके चारक बीरके मिच्छात्व और वारह  
कयायकी स्थिति क्या अपन्य होती है या अजपन्य ? अपन्य भी होती है और अजपन्य भी ।  
उनमेंसे अजपन्य स्थिति अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातबै माग अधिक होती है ।  
सम्बन्ध सम्बन्धिमिच्छात्व और अनन्तलुक्की अतुल्य मंग मिच्छात्वके समान है । सात  
नोकयायोंकी स्थिति क्या अपन्य होती है । या अजपन्य ? नियमसे अजपन्य होती है, जो  
अपनी अपन्य स्थितिसे असंख्यातबै माग अधिक होती है । अतुल्यकी स्थिति क्या अपन्य  
होती है या अजपन्य ? नियमसे अपन्य होती है । इसी प्रकार अतुल्यकी अपन्य स्थिति  
विमर्शिके चारक बीरके समान जानना चाहिये । स्त्रीवैदकी अपन्य स्थिति विमर्शिके चारक  
बीरके मिच्छात्व वारह कयाय और आठ नोकयायोंकी स्थिति क्या अपन्य होती है या  
अजपन्य ? नियमसे अजपन्य होती है, जो अपनी अपन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है ।  
सम्बन्ध सम्बन्धिमिच्छात्व और अनन्तलुक्की अतुल्य मंग मिच्छात्वके समान है । इसी प्रकार

वारसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० इत्थि०भंगो । हस्स-रदि० किं ज० अज० [ णियमा अज० ] वेढाणपदिदा असंखे०भागवभहिया संखे०गुणा वा । हस्स ज० विहत्ति० भिच्छत्त-वारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंता०चउक्क० णवुंसंभंगो । इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ? णि० अज० वेढाणपदिदा असंखे०भागवभहिया संखे०गुणा वा । रदि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं रदीए । अरदि० जह० विहत्ति० भिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० हस्सभंगो । तिण्णि वेद० किं ज० अज० ? णि० अज० वेढाणपदिदा असंखे०भागवभहिया संखे०गुणा वा । सोग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सोग० ।

§ ८५१ पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणी० भिच्छत्त० जह० विहत्ति० वारसक०-भय-दुगुंछा० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा ।

पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग स्त्रीवेदके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, नपुसकवेद अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या जघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग नपुसकवेदके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारहकषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग हास्यके समान है । तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित है । शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५१. पंचेन्द्रियतिर्य्यच, पंचेन्द्रियतिर्य्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्य्यच योनिमती जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके वारह कषाय भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या

अहम्मादो अज्झइण्णा समयुत्तरमादिं कादृण जाय पल्लिदो० असंखे० भागम्महिया । जवरि मयइगुंइ० सिद्धान्पदिदा । सम्मत्तं सिया अत्थि सिया णत्थि । अदि अत्थि किं ज० अज० ? जि० अज० वेद्धान्पदिदा सखे० गुणा असंखे० गुणा वा । सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । अदि अत्थि, किं ज० अज० ? अहम्मा अमहम्मा वा, अहम्मादो अमहम्मा विद्धान्पदिदा संखे० गुणा असंखे० गुणा वा । अणत्ताणु० चत्तक० किं ज० अज० ? जि० अज० असंखे० गुणा । सत्तणोक्क० किं ज० अज० ? जि० अज० सिद्धान्पदिदा असंखे० भागम्महिया सखे० भागम्महिया संखे० गुणम्महिया वा । एव बारसकसाय० । मय० अह० मिच्छत्त-बारसक०-इगुंइ० किं ज० [ अज० ] ? अज० तं तु समयुत्तरमादिं कादृण जाय पल्लिदो० असंखे० भागम्महिया । सेसं मिच्छत्तमंगो । एवं इगुंइ० । सम्मत्त ज० विहत्ति० बारसक०-जवणोक्क० किं ज० अज० ? जि० अज० संखे० गुणा । सम्मामि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-जवणोक्क० किं ज० अज० ? अहम्मा अमहम्मा वा । अहम्मादो अज्झइण्णा सिद्धान्पदिदा असंखे० भागम्महिया संखे० भागम्म० खे० गुणा वा । अणत्ताणु० चत्तक० किं ज० अज० ? जि० अज०

अवयव होती है या अवयवम् ? अवयव मी होती है और अवयवम् मी । जन्मसे अवयवम् स्थिति एक समय अधिक अवयव स्थितिसे लेकर पस्वोपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक जाती है । किन्तु इतनी बिसेयता है कि मय और जुगुप्साकी स्थिति तीन स्वान्तपतित जाती है । सम्मत्तव क्पाचित् है और क्पाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या अवयव होती है या अवयवम् ? नियमसे अवयवम् जाती है वा संख्यातगुणी अधिक वा असंख्यातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्वान्तपतित होती है । सम्यग्मिध्यात्त्व क्पाचित् है और क्पाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या अवयव होती है वा अवयवम् ? अवयव मी होती है और अवयवम् वा । जन्मसे अवयवम् स्थिति अपनी अवयव स्थितिकी अपेक्षा-संख्यातगुणी अधिक वा असंख्यातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्वान्तपतित होती है । अमन्तलुबन्धी वजुत्तकी स्थिति क्या अवयव होती है या अवयवम् ? नियमसे अवयवम् जाती है वा अपनी अवयव स्थितासे असंख्यातगुणी जाती है । सात नाकपायोंकी स्थिति क्या अवयव होती है या अवयवम् ? नियमसे अवयवम् जाती है वा असंख्यातवें भाग अधिक संख्यातवें भाग अधिक वा संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्वान्तपतित होती है । इस प्रकार बारह क्पायोंकी अवयव स्थितिबिमर्च्छिनासे जाबके समिक्कं जानना चाहिये । मयकी अवयव स्थितिबिमर्च्छिनासे जाबके मिध्यात्व, बारह क्पाय और जुगुप्साकी स्थिति क्या अवयव होती है या अवयवम् ? नियमसे अवयवम् होती है । फिरमी वह अपनी अवयव स्थितिकी अपवा एक समय अधिकसे लेकर पस्वोपमके असंख्यातवें भाग अधिकतक जाती है । क्षेत्र मंग मिध्यात्वके सामान है । इसी प्रकार जुगुप्साकी अवयव स्थितिबिमर्च्छिनासे जाबके समिक्कं जानना चाहिये । सम्मत्तवकी अवयव स्थितिबिमर्च्छिनासे जाबके बारह क्पाय और मी नाकपायोंकी स्थिति क्या अवयव होती है या अवयवम् ? नियमसे अवयवम् होती है वा अपनी अवयव स्थितिसे संख्यातगुणी जाती है । सम्यग्मिध्यात्त्वकी अवयव स्थितिबिमर्च्छिनासे जाबके मिध्यात्व, बारह क्पाय और मी नाकपायोंकी स्थिति क्या अवयव होती है या अवयवम् ? अवयव मी होती है और अवयवम् मी । जन्मसे अवयवम् स्थिति अपनी अवयव स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग

असंखे० गुणा । इत्थि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-अट्ठणो० किं ज० अज० ?  
 णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवं  
 पुरिस० । णवुंस० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-  
 भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणं-  
 ताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । हस्स-रदि० किं ज० अज० ? णियमा अज० वेट्ठाण-  
 पदिदा असंखे० भागवभहिया संखे० गुणा । हस्स० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-  
 अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणा । एवं णवुंस० ।  
 सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ?  
 णियमा अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे० भागवभ संखे० गुणा वा । रदि किं ज० अज० ?  
 णि० जहण्णा । एवं रदीए । अरदि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि०-  
 भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-  
 चउक्क० हस्सभंगो । तिण्णिवेद० किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०

अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय और आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असख्यातवें भाग अधिक और सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हास्यकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदका भंग जानना चाहिये । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, वारह कषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपना जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग हास्यके समान है । तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है,

भागम्भ० संस्वे० गुणा वा । सोग० किं ज० अज० ? शि० जहणा । एवं सो० । नवरि  
पं० तिरि० जोगिणीसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तर्भगो ।

॥ ८५२ पं० तिरि० अपञ्च० मिच्छत्त ज० विहृति० सम्मत्त-सम्मामि०  
वारसक०-नवपोक० जोगिणीभगो । अर्णताणु० चतुक्क० किं ज० अज० ? जहणा  
अजहणा वा । जहणादो अजहणा समयुत्तरमार्ति कादूण जाव पत्तिदो० असत्त० भाग  
म्भहिया । सम्मत्त० ज० विहृति० मिच्छत्त सोलसक०-नवपोक० किं ज० अज० ?  
जहणा अजहणा वा । जहणादो अज० तिहाणपदिवा असत्त० भागम्भ० सत्त०  
भागम्भ० संस्वे० गुणा वा । सम्मामि० शि० अज० असत्त० गुणा । एवं सम्मामि०, नवरि  
सम्मत्तं गत्ति । सोलसक० मिच्छत्तर्भगो । भय० नह० मिच्छत्त-सोलसक०-दुगुब्ब०  
किं ज० [ अज० ] ? अज०, सं दू समयुत्तरमार्ति कादूण जाव पत्तिदो० असत्त०  
भागम्भ० । सेसं मिच्छत्तर्भगो । एवं दुगु जाए । सत्तपोक० जोगिणीभगो । नवरि  
अर्णताणु० चतुक्क० शि० संस्वे० गुणा । एवं मणुसमपन्न०-पं० मपन्न० तसअप

को अपनी जघन्य स्थितिसे अस्वभावार्थें भाग अधिक या संस्वातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्थान  
पठित होती है । सोलकी स्थिति क्या अजग्न्य होती है वा अजघन्य ? निम्नसे जघन्य होती है ।  
इसी प्रकार सोलका जघन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीजके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनिमात्र जीवामे सप्त कत्वका भग सत्त्व रसध्वात्मके समान है ।

॥ ८५२ पंचेन्द्रिय तिर्यक् अजग्न्यपञ्चाक्षरि मिध्वात्मकी जघन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीजके  
सम्बन्ध, सम्माम्भ्यात्म, नारद कपाय और नौ भोज्यात्मोंका भग यानिमति तिर्यक्को समान है ।  
अनन्तानुबन्धा चतुष्कका स्थिति क्या जघन्य होती है वा अजघन्य ? जघन्य भी होती है और  
अजघन्य भी । ऊनसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकत  
सेकर पक्षोपमका अस्वभावार्थें भाग अधिक तक होती है । सम्बन्धकी जघन्य स्थितिबिम्बिच्छाले  
बीजके मिध्वात्म, सोलह कपाय और नौ भाकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है वा अजघन्य ?  
जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । ऊनसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा  
अस्वभावार्थें भाग अधिक, संस्वातार्थें भाग अधिक या संस्वातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान  
पठित होती है । सम्माम्भ्यात्मकी स्थिति निम्नसे अजघन्य होती है वा अपनी जघन्य स्थितसे  
अस्वभावार्थें होती है । इसी प्रकार सम्माम्भ्यात्मकी जघन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीजके  
सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्बन्ध प्रकृति नहीं है । सोलह  
कपायोंकी जघन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीजके सप्त प्रकृतिर्यास सन्निकर्ष मिध्वात्मके समान है ।  
मयकी जघन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीजके मिध्वात्म, सोलह कपाय और सुगुप्ताकी स्थिति क्या  
जघन्य होती है वा अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है फिर भी वह अपनी जघन्य स्थितिकी  
अपेक्षा एक समय अधिकत सेकर पक्षोपमका अस्वभावार्थें भाग अधिक तक होती है । दोष  
प्रकृतिर्यासका भग मिध्वात्मके समान है । इसी प्रकार सुगुप्ताकी जघन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीजके  
सन्निकर्ष जानना चाहिये । सात भोज्यात्मोंकी जघन्य स्थितिबिम्बिच्छाले बीजके भग यानिमती  
तिर्यक्को समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका स्थिति निम्नसे  
सम्बन्ध होती है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और अक्ष अपर्याप्त

उज्जत्ताणं ।

§ ८५३. देवाणं णारयभंगो । भवण०-वाणवेंतराणमेवं चैव । णवरि सम्मत्त० सम्मामि० भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्जो-त्ति मिच्छत्तजह० विहत्ति० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मत्त० किं ज० अज० ? णि० अज० असखे० गुणा । एवं सम्मामि० । सम्मत्त० जह० विह० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० वेढाण-पदिदा संखे० भागम्भहिया । कुदो ? उवसमसेहिं चट्ठिय ओदरिदूण दंसणमोहणीयं खविय कदकरणिज्जो होदूण ५ देवेसुप्पणस्स संखेज्जभागम्भहियत्तुवलभादो । संखेज्ज-गुणा वा, उवसमसेहिं चट्ठिय दंसणमोहणीयं खविय कदकरणिज्जो होदूण देवेसुप्प-णस्स संखे० गुणत्तुवलभादो । किरियाविरहिदसम्मादिट्ठीणं द्विदिखंडयघादो णत्थि त्ति भणंताणमाइरियाणमहिप्पाएण एदं भणिदं । किरियाए विणा तिब्बविसोहिवसेण द्विदिखंडयघादो देवेसु अत्थि त्ति भणंताणामहिप्पाएण संखेज्जगुणा चैव । णेरइय०-भवण०-वाण०-जोदिसियसम्माइट्ठीणं किरियाए विणा णत्थि द्विदिखंडयघादो । कुदो ? साभावियादो । सम्मामि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० किं ज०

जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८५३. देवोंके नारकियोंके समान भग है । भवनवासी और व्यन्तर देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्वका भग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । ज्योतिषा देवोंके भग दूसरी पृथिवीके समान है । सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका भग जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिचिभक्तिवाले जीवके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो दो स्थान पतित होती है । उनमेंसे पहली संख्यातवें भाग अधिक होती है क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणीपर चढ़कर और उतरकर अनन्तर दर्शनमोहनीयका क्षय करता हुआ कृतकृत्यवेदकसम्यग्-गृष्टि होकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातवें भाग अधिक देरी जाती है । या संख्यातगुणी अधिक होती है क्योंकि उपशमश्रेणीपर चढ़कर और वहासे उतरकर दर्शनमोहनीयका क्षय करता हुआ कृतकृत्यवेदक सम्यग्गृष्टि होकर जो देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातगुणी अधिक देखी जाती है । क्रिया रहित सम्यग्गृष्टियोंके स्थितिकाण्डकप्राप्त नहीं होता है ऐसा माननेवाले आचार्योंके अभिप्रायानुसार उक्त कथन किया है । परन्तु जो आचार्य क्रियाके बिना तीव्र विशुद्ध परिणामोंसे देवोंमें स्थितिकाण्डकप्राप्त होता है ऐसा मानते हैं उनके अभिप्रायानुसार उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातगुणी ही होती है । तो भी नारकी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी सम्यग्गृष्टि जीवोंके क्रियाक बिना स्थितिकाण्डकप्राप्त नहीं होता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिचिभक्तिवाले जीवके

अत्र० ? पि० अत्र० संस्ते०गुणा । अर्णताणु०-चतुष्क किं ज० अम० ? पि० अत्र०  
असंस्ते०गुणा । अर्णताणु० कोषम० मिच्छत्त वारसक० जवणोक० किं म० अम० ?  
पि० अम० संस्ते०गुणा । सम्मत्तसम्मापि० किं ज० अत्र० ? पि० अत्र० असंस्ते०  
गुणा । तिप्पिक० किं ज० अत्र० ? पि० अहण्णा । एवं तिप्पि कसायाण । अपपच  
क्खाणकोषम० विहसि० एककारसक०-जवणोक० किं ज० अत्र० ? पि० अहण्णा ।  
एवमेकारसक०-जवणोकसायाण ।

§ ८५४ अणुदिसादि भाव सम्पदसिद्धि पि मिच्छत्त अह० विहसि० वारसक०  
जवणोक० किं ज० अत्र० ? पि० अम० संस्ते०गुणा । सम्मत्त० किं ज० अत्र० ?  
पि० अत्र० असंस्ते०गुणा । सम्मापि० किं ज० अम० ? पि० अहण्णा । एवं  
सम्मापि० । सम्मत्त० अह० विहसी० वारसक०-जवणोक० किं ज० अत्र० ? पि०  
अम० संस्ते०गुणा । अथवा संस्ते०भागम्म० संस्ते०गुणा पि वेद्धानपदिदा । एत्थ कारणं  
पुण्यं व दत्तम् । अर्णताणु०कोष० ज०विह० मिच्छत्त-सम्मापि०-वारसक०-जवणोक०

मिध्यात्व वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे  
अज्ञाप्य होती है, जो अपनी ज्ञाप्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी अतुल्यकी  
स्थिति क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य होती है, जो अपनी ज्ञाप्य  
स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी कोषकी ज्ञाप्य स्थितिबिमिच्छित्तान्ते जीवके  
मिध्यात्व वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे  
अज्ञाप्य होती है जो अपनी ज्ञाप्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व और सम्य  
गिमिध्यात्वकी स्थिति क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य होती है, जो अपनी  
ज्ञाप्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी स्थिति  
क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे ज्ञाप्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान  
आदि तीन कपायोंकी ज्ञाप्य स्थितिबिमिच्छित्तान्ते जीवके समिक्कपे जानना चाहिये । अप्रत्याख्यात-  
वरण कोषकी ज्ञाप्य स्थितिबिमिच्छित्तान्ते जीवके अप्रत्याख्यातावरण मान आदि ग्याह कपाय  
और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे ज्ञाप्य होती है । इसी  
प्रकार अप्रत्याख्यातावरण मान आदि ग्याह कपाय और नौ नाकपायोंकी ज्ञाप्य स्थितिबिमिच्छि-  
तान्ते जीवके समिक्कपे जानना चाहिये ।

§ ८५४ अणुदिससे लेकर सार्वासिद्धि तकके क्षेत्रोंमें मिध्यात्वकी ज्ञाप्य स्थितिबिमिच्छित्तान्ते  
जीवके वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे  
अज्ञाप्य होती है जो अपनी ज्ञाप्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या  
ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य होती है जो अपनी ज्ञाप्य स्थितिसे असंख्या-  
तगुणी होती है । सम्यगिमिध्यात्वकी स्थिति क्या ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे ज्ञाप्य  
होती है । इसी प्रकार सम्यगिमिध्यात्वकी ज्ञाप्य स्थितिबिमिच्छित्तान्ते जीवके समिक्कपे जानना  
चाहिये । सम्यक्त्वकी ज्ञाप्य स्थितिबिमिच्छित्तान्ते जीवके वारह कपाय और नौ नाकपायोंकी स्थिति  
क्या ज्ञाप्य है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य है जो अपनी ज्ञाप्य स्थितिसे संख्यातगुणी है ।  
अथवा संख्यातर्थात् अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्वान पठित है । यहाँ पर  
करण पक्षसे समान कहना चाहिये । अनन्तानुबन्धी कोषकी ज्ञाप्य स्थितिबिमिच्छित्तान्ते जीवके



किं ज० अज० ? णि० अज० रंखे० गुणा । सम्मत्त० किं ज० अज ? णि० अज० असंखे० गुणा । तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्चक्खाण-कोधज० एक्कारसक०-णवणोक्क० [ कि० जह० अज० ? ] णि० जहण्णा । एवमेक्कारसक० णवणोक्कसायाणं ।

§ ८५५. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु मिच्छत्तजह० विहत्ति० सोलसक०-भय-दुगुंछ० किं० ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पल्लिदो० असखे० भागेण भहिया । सम्मत्त-सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अज० तिट्ठाणपदिदा संखे० भागभहिया संखे० गुणा वा असंखे० गुणा वा । सत्तणोक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० असखे० भागभहिया । एवं सोलसकसाय-भय-दुगुंछाणं । णवरि भय जह० दुगुंछ० णियमा जहण्णा । एव दुगुंछ० । भय-दुगुंछाणं जहण्णद्विदीए सतीए कथं सोल-सकसायाणमसंखे० भागभहियत्तं ? ण, सोलसकसायाणं जहण्णद्विदीदो अब्भहियद्विदि-

मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरणमान आदि ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५६. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्लोपमके असख्यातवें भाग अधिक तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे सख्यातवें भाग अधिक, सख्यातगुणी अधिक या असंख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थानपतित होती है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भयकी जघन्य स्थितिवाले जीवके जुगुप्साकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिवाले जीवके भयकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है ।

शंका—भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिके रहते हुए सोलह कपायोंकी स्थिति असंख्यातवें भाग अधिक कैसे होती है ?

बंघे जावे वि भय-दुर्गुणाणमावसियमेतकालं अहण्णटिडिबिहत्तिर्वसणादो । कसायाणं पुण अहण्णटिडिबिहरीए सत्तीए भय-दुर्गुणाओ समयुत्तरमादि कादण जाव आवसिय मेत्तेण अम्महियाओ; एक्कस्स वि कसायस्स अहण्णटिदीए भय-दुर्गुणासु संकंताए अपिदकसायस्स वि अहण्णटिदिमावनिष्णासादो । पढम-सत्तमपुडबि-पंथिं-तिरिक्ख भवण-वाणनेतरादिस्स वि एसो अरयो पस्सेयव्वो । सम्मत्तं अह-विहत्ति-मिच्छत्त-सोत्तसक-णवणोक्क-किं व- [ अ- ] ? अहण्णा अजहण्णा वा । अहण्णादो अज-विहाणपदिदा असंसे-यागम्महि-संसे-यागम्महिया संसे-गुणा वा । सम्मामि-किं ज-अज-? णि-अ-असंसे-मुणा । एवं सम्मामि- । णवरि सम्मत्तं जत्थि । इत्थि-ज-विहत्ति-मिच्छत्त-सोत्तसक-अट्ठणोक्क-किं व-अज-? पि-अज-असंसे-यागम्म- । सम्मत्त-सम्मामि-मिच्छत्तमंमो । एवं ज्जणोक्कसायाणं । एवं सम्म एहंदि-पचकायाणं ।

५८५६ विगल्लिदिपसु मिच्छत्त अह-विहत्ति-सोत्तसक-भय-दुर्गु-किं व-अज-? अहण्णा अजहण्णा वा । अहण्णादो अज-समयुत्तरमादि कादण जाव

समाधान-ज्जी क्योंकि सोलह कयायोंके जपम्य स्थितिसे अधिक स्थितिकमके होने पर भी भय और दुर्गुणाओंकी एक आबलि कालतक जपम्य स्थितिबिमर्शिके देखी जाती है ।

परन्तु कयायोंकी जपम्य स्थितिबिमर्शिके छठे हुए भय और दुर्गुणाओंकी स्थिति अपनी जपम्य स्थितिकी अपेक्षा एक समयसे लेकर एक आबलि कालतक अधिक होती है क्योंकि एक भी कयायकी अजपम्य स्थितिसे भय और दुर्गुणाओंमें संकल्प होने पर बिबक्षित कयायकी जपम्य स्थितिकी भी बिनाश हो जाता है । पड़ती और सातवीं पृथिवीमें तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच, भवन-वासी, और अन्तरादिक देवोंमें भी इस अवस्था कमन करता चाहिये । सम्यक्त्वकी जपम्य स्थिति-बिमर्शिके बारक बीचके मिथ्यात्व मोक्ष कयाय और जो मोक्षपायोंकी स्थिति क्या जपम्य होती है या अजपम्य ? जपम्य भी होती है और अजपम्य भी । उनमेंसे अजपम्य स्थिति अपनी जपम्य स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातमें याग अधिक, संख्यातमें याग अधिक या संख्यातरुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जपम्य होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है । जो कि जपम्य स्थितिसे असंख्यातरुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जपम्य स्थितिबिमर्शिके बारक बीचके समिकर्ष जानना चाहिये । किन्तु श्रुती विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं होती है । बीचकी जपम्य स्थितिबिमर्शिके बारक बीचके मिथ्यात्व, सोलह कयाय और आठ मोक्षपायोंकी स्थिति क्या जपम्य होती है या अजपम्य ? नियमसे अजपम्य होती है जो जपम्य स्थितिसे असंख्यातमें याग अधिक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भेद मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार छह मोक्षपायोंकी जपम्य स्थिति बिमर्शिके बारक बीचके समिकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार सब पंचेन्द्रिय और पाँच स्वावरण्य बीचके जानना चाहिये ।

५८५७ विगल्लिदिपसु मिथ्यात्वकी जपम्य स्थितिबिमर्शिके बारक बीचके सोलह कयाय भय और दुर्गुणाओंकी स्थिति क्या जपम्य होती है या अजपम्य ? जपम्य भी होती है और अजपम्य भी । उनमेंसे अजपम्य स्थिति अपनी जपम्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे

पल्लिदो० असंखे० भागवभहिया । णवरि भय-दुगुं ब्वाओ तिहाणपदिदा । सम्मत्त-  
सम्मापि० एइदियभंगो । सत्तणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० तिहाणपदिदा  
असंखे० भागवभहिया संखे० भागवभ० सखे० गुणवभहिया वा । एवं सोलसकसाय-भय-  
दुगुं ब्वाणं । णवरि भयजह० दुगुं० किं ज० [ अजह० ] ? अजह० तं तु समयुत्तरमादिं  
कादूण जावपल्लिदो० असंखे० भागवभ० । एवं दुगुं० । सम्मत्त-सम्मापि० एइदियभंगो ।  
इत्थि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक० किं जह० अजहण्णा ? णि० अज० संखे०  
भागवभहिया । अट्ठणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणवभहिया ।  
सम्मत्त-सम्मापि० मिच्छत्तभंगो । एवं पुरिस० । णवु स० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-  
सोलसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं ब्वा० इत्थिवेदभंगो । सम्मत्त-सम्मापि०  
एइदियभंगो । हस्सरदि० किं ज० अजह० ? णि० अज० वेहाणपदिदा असंखे० भाग-  
वभहिया सखे० गुणवभहिया वा । हस्सज० विहत्ति० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवुं स०-  
अरदि-सोग-भय-दुगुं ब्वा०-सम्मत्त०-सम्मापि० इत्थिवेदभंगो । इत्थि-पुरिस० किं ज०  
अज० ? णि० अज० वेहाणपदिदा असंखे० भागवभहिया संखे० गुणवभहिया वा । रदि०

लेकर पत्न्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी स्थिति तीन स्थानपतित होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । इसी प्रकार सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भयभी जघन्य स्थितिवालेके जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्न्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है । इसी प्रकार जुगुप्साके विषयमें जानना चाहिये । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभाक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक होती है । आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कपाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भंग स्त्रीवेदके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । हाम्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हाम्यकी जघन्य स्थितिभिक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो



पल्लिदो० असंखे० भागवभहिया । णवरि भय-दुगुंछाओ तिहाणपदिदा । सम्मत्त-  
 सम्मामि० एइदियभंगो । सत्तणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० तिहाणपदिदा  
 असंखे० भागवभहिया संखे० भागवभ० संखे० गुणवभहिया वा । एवं सोलसकसाय-भय-  
 दुगुंछाणं । णवरि भयजह० दुगुं० किं ज० [ अजह० ] ? अजह० त तु समयुत्तरमादिं  
 कादूण जावपल्लिदो० असंखे० भागवभ० । एवं दुगुं० । सम्मत्त-सम्मामि० एइदियभंगो ।  
 इत्थि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक० किं जह० अजहणा ? णि० अज० संखे०  
 भागवभहिया । अट्ठणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणवभहिया ।  
 सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । एवं पुरिस० । णवुंस० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-  
 सोलसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० इत्थिवेदभंगो । सम्मत्त-सम्मामि०  
 एइदियभंगो । हस्सरदि० किं ज० अजह० ? णि० अज० वेहाणपदिदा असंखे० भाग-  
 वभहिया संखे० गुणवभहिया वा । हस्सज० विहत्ति० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवुंस०-  
 अरदि-सोग-भय-दुगुंछ०-सम्मत्त०-सम्मामि० इत्थिवेदभंगो । इत्थि-पुरिस० किं ज०  
 अज० ? णि० अज० वेहाणपदिदा असंखे० भागवभहिया संखे० गुणवभहिया वा । रदि०

लेकर पत्योपमके असख्यातवें भाग अधिक तक होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी स्थिति तीन स्थानपतित होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । सात नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असख्यातवें भाग अधिक, मख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । इसी प्रकार सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि भयकी जघन्य स्थितिवालेके जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पत्योपमके असख्यातवें भाग अधिक तक होती है । इसी प्रकार जुगुप्साके विषयमें जानना चाहिये । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातवें भाग अधिक होती है । आठ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । नपुसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कपाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भंग स्त्रीवेदके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असख्यातवें भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । हास्यकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नपुसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदके समान है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो

अह० द्विदिवि० मिच्छत्-वारसक०-णषणोक्त० किं ज० अज० ? णि० अज० संसे  
गुणा । तिञ्जि कसाय० शियमा अहण्णा । एवं तिण्हं कसायार्थं । इत्थि० अ० विह  
मिच्छत्-सोत्तसक० अट्ठणोक्त० किं अ० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । सम्म  
सम्मायि० सिया मत्ति सिया एत्ति । अह अत्ति किं अ० अज० ? अहण्णा अ  
हण्णा वा । अहण्णादो अजहण्णा वेद्धानपदिवा संसे० गुणा असंसे० गुणा वा । एत  
सम्प० अ० एत्ति । एवं पुरिस० । पबु० स० अ० वि० मिच्छत्-सोत्तसक०-णषणोक्त  
किं ज० अज० ? णि० अज० संसे० गुणा । सम्पत्त-सम्मायि० इत्थिमंगा । इत्त-रति  
किं अ० अज० ? णि० अज० विद्धानपदिवा असंसे० मागम्महिवा संखे० गुणा वा  
इत्त० अह० विह० मिच्छत्-सोत्तसक०-णषणोक्त० किं ज० अज० ? णि० अज०  
संखे० गुणा । सम्पत्त-सम्मायि० इत्थिमंगा । इत्थि पुरिस० किं ज० अज० ? णि  
अज० विद्धानपदिवा असंसे० मागम्महिवा संखे० गुणा वा । रदि० किं अ० अज०  
णि० अ० । एव रदीए । एवं चैव अरदि-सोगार्ण । णवरि पबुस० वेद्धानपदिवा ।

भारक बीजक मिष्यात्, भारक कषाय और नौ नाकयवोंकी स्थाति क्या ज्ञाप्य हाता है  
अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य हाती है । जो अपनी ज्ञाप्य स्थितिसे संस्मातगुणी होती ।  
(सम्पत्त और सम्मगिमिष्यात्क मंग मिष्यात्क समान जानना) । तथा अनन्तलुक्की मान आ  
तीन कषायोंकी स्थिति नियमसे ज्ञाप्य होती है । इसी प्रकार अनन्तलुक्का मान आत्त व  
कषायोंकी ज्ञाप्य स्थितिबिम्बितिके भारक बीजके सन्निकृप जानना चाहिये । स्त्रीवैद्यकी ज्ञा  
स्थितिबिम्बितिके भारक बीजके मिष्यात्, सोमह कषाय और आठ मोक्षयवोंकी स्थाति क  
ज्ञाप्य होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य हाती है, या ज्ञाप्य स्थितिसे संस्मातगु  
होती है । सम्पत्त और सम्मगिमिष्यात् कषायित हैं और कषायित नहीं हैं । यदि हैं तो उन  
स्थाति क्या ज्ञाप्य हाती है या अज्ञाप्य ? ज्ञाप्य मी होती है और अज्ञाप्य ना । उनमें  
अज्ञाप्य स्थिति अपनी ज्ञाप्य स्थितिकी अपक्षा संस्मातगुणी अधिक वा असंस्मातगुणी अधि  
इस प्रकार दो स्थान पठित हाती है । किन्तु विशेषता इतना है कि इसके सम्पत्तकी ज्ञा  
स्थिति नहीं हाती है । इसी प्रकार पुरुषवैद्य । भारके सन्निकृप जानना चाहिये । नपुंसकवैद्यकी ज्ञा  
स्थितिबिम्बितिके भारक बीजक मिष्यात्, साहह कषाय और छह नाकयवोंकी स्थाति क्या ज्ञा  
होती है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य हाता है । जो अपनी ज्ञाप्य स्थितिसे संस्मातगु  
होती है । सम्पत्त और सम्मगिमिष्यात्क मंग स्त्रीवैद्यक समान है । हात्स्य और एठिके स्था  
क्या ज्ञाप्य हाती है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य हाती है, या अपनी ज्ञाप्य स्थिति  
असंस्मातवै मंग अधिक वा संस्मातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्थान पठित हाती है । हात्स्य  
ज्ञाप्य स्थितिबिम्बितिके भारक बीजक मिष्यात्, साहह कषाय और पांच नाकयवोंकी स्था  
क्या ज्ञाप्य हाता है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य हाती है जो अपनी ज्ञाप्य स्थिति  
संस्मातगुणा हाती है । सम्पत्त और सम्मगिमिष्यात्क मंग स्त्रीवैद्यके समान है । स्त्रीवैद्य अं  
पुरुषवैद्यकी स्थिति क्या ज्ञाप्य हाती है या अज्ञाप्य ? नियमसे अज्ञाप्य हाती है, या अप  
ज्ञाप्य स्थितिसे असंस्मातवै मंग अधिक वा संस्मातगुणी अधिक इस प्रकार वा स्थान पठि  
होती है । एठिकी स्थिति क्या ज्ञाप्य हाती है या अज्ञाप्य ? नियमसे ज्ञाप्य हाती है । इस  
प्रकार एठिकी ज्ञाप्य स्थितिबिम्बितिके भारक बीजके सन्निकृप जानना चाहिये । तथा इसी प्रक

णि० जहं० । एवं तिहं कसायाणं । अपच्चक्खाणकोधज० विहत्ति० एक्कारसक०-  
णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहणा । एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं ।

§ ८५८ वेउच्चियमिस्स० मिच्छत्त० ज०विह० वारसक०-णवणोक० किं ज०  
अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्भत्त-सम्भामि० किं ज० अज० ? णि० अज०  
असंखे०गुणा । सम्भत्तज० विह० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि०  
अज० विहाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया सखे०गुणा वा । सम्भामि० ज० वि०  
मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० किं० ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सत्त-  
णोक० किं ज० अज० ? जहणा अजहणा वा जहणादो अजहणा तिहाणपदिदा  
असंखे०भागब्भहिया सखे० भागब्भ० संखे०गुणा वा । अपच्चक्खाणकोध० ज०  
वि० एक्कारसक०-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० जहणा । सत्तणोक० किं ज०  
अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । एवमेक्कारसकसाय-भय-दुगुंछाणं । अणताणु० कोध०-

जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि  
तीन कषायोकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्याना-  
वरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह  
कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है ।  
इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५८ वैक्रियकमिअकाययोगियोमे मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके  
वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य  
होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी स्थिति क्या  
जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जा जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी  
होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी  
स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असख्यातवें भाग  
अधिक या सख्यातगुणी इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके मिध्यात्व सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती  
है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जा जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । सात  
नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य । जघन्य भी होती है और अजघन्य भी ।  
उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असख्यातवें भाग अधिक, सख्यातवें  
भाग अधिक या सख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । अप्रत्याख्यानावरण  
क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय, भय  
और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । सात  
नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य  
स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार ग्यारह कषाय भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति-  
विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके

पुरिस० एवं चेव । एवमि पुरिस० ज० वि० चचारिक० किं ज० अम० ? एि०  
अहणा । एवं चवुसं संज्ञमणायं । अण्णोक्क० पुरिस० चवुसम० णि० अम०  
संखे० गुणा ।

॥ ८६१ ॥ अत्रगदमिच्छसज्ज० वि० सम्मत्त-सम्माभि० किं ज० अम० ? णि०  
अहणा । अट्ठकसाय० इत्थि-णवुसं किं ज० अज० ? णि० अम० संखे० गुणा ।  
चदुसंज०-सत्तणोक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० गुणा । एवं सम्म०  
सम्माभि० । अपपन्नस्वाणकोपन्न० वि० मिच्छस-सम्मत्त-सम्माभि० गत्थि ? सत्तक०  
इत्थि-णवु स० किं अज० ? णि० अहणा । चत्तारिसंज्जस०-सत्तणोक्क० किं ज०  
अज० ? णि० अम० असंखे० गुणा । एवं सत्तकसायणं । इत्थि ज० वि० चचारि  
संन०-सत्तणोक्क० किं ज० अज० ? णि० अम० असंखे० गुणा । अट्ठक० णवु स०  
णि० अहणा । एवं णवु स० । सत्तणोक्क० चत्तारिसंज्जणाणमोपं ।

नपुंसकवैदकी जपस्य स्थितिविमित्तिके धारक जीवके आठ मोक्षपाय और चार संन्यसनोंकी स्थिति  
नियमसे अजपस्य होती है जो अपनी जपस्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार  
नपुंसकवैदकी जीवके ज्ञानना चाहिये । पुरुषवैदकी जीवके भी इसी प्रकार ज्ञानना चाहिये । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि पुरुषवैदकी जपस्य स्थितिविमित्तिके धारक जीवके चार संन्यसन कयायोंकी स्थिति  
क्या जपस्य होती है या अजपस्य ? नियमसे जपस्य होती है । इसी प्रकार चार संन्यसनोंकी  
जपस्य स्थितिविमित्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । यह नोक्यायोंकी जपस्य स्थिति  
विमित्तिके धारक जीवके पुरुषवैद और चार संन्यसनोंकी स्थिति नियमसे अजपस्य होती है या  
जपस्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है ।

॥ ८६१ ॥ अपगतवेदियोमिं मिध्यात्वकी जपस्य स्थितिविमित्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व  
सम्यग्मिध्यात्वकी स्थिति क्या जपस्य होती है या अजपस्य ? नियमसे जपस्य होती है । आठ  
कयाय, स्त्रीवैद और नपुंसकवैदकी स्थिति क्या जपस्य होती है या अजपस्य ? नियमसे अजपस्य  
होती है या जपस्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । चार संन्यसन और सात मोक्षपायोंकी स्थिति  
क्या जपस्य होती है या अजपस्य ? नियमसे अजपस्य होती है । या जपस्य स्थितिसे असंख्यात-  
गुणी होती है । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जपस्य स्थितिविमित्तिके धारक  
जीवके सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । अथवाक्याय जीवकी जपस्य स्थितिविमित्तिके धारक जीवके  
मिध्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व ये तीन प्रवृत्तियों में हैं । सात कयाय, स्त्रीवैद और  
नपुंसकवैदकी स्थिति क्या जपस्य होती है या अजपस्य ? नियमसे जपस्य होती है । चार संन्यसन  
और सात मोक्षपायोंकी स्थिति क्या जपस्य होती है या अजपस्य ? नियमसे अजपस्य होती है  
जो जपस्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सात कयायोंकी जपस्य स्थिति  
विमित्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । जीवकी जपस्य स्थिति विमलित्तिके धारक  
जीवके चार संन्यसन और सात नोक्यायोंकी स्थिति क्या जपस्य होती है या अजपस्य ?  
नियमसे अजपस्य होती है जो जपस्य स्थितिसे असंख्यातगुणा होती है । आठ कयाय चार  
नपुंसकवैदकी स्थिति नियमसे जपस्य होती है । इसी प्रकार नपुंसकवैदकी जपस्य स्थितिविमित्तिके  
धारक जीवके सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिये । सात नोक्याय और चार संन्यसनोंकी जपस्य स्थिति  
विमित्तिके धारक जीवके आठ कयायोंके समान ज्ञानना चाहिये ।



§ ८५६. आहार० मिच्छत्तज० वि० सम्मत्त-सम्पामि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । एवं सम्मत्त-सम्पामि० । अणंताणु० कोधज० मिच्छत्त-सम्मत्त सम्पामि०-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं कमायाणं । अपच्चक्खाणकोधज० वि० एकारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एकमेक्कारसकसाय-णवणोकसायाणं । एवमाहारमि० । कम्मइय० ओरालियमिस्सभंगो । णवरि सत्तणोक० अण्णदरज० मिच्छ० सोलसक० सेसणोक० णिय० अज० विट्ठाणपदिदा असंखे० भागव्वहिया संखे० गुणव्वहिया ।

§ ८६०. वेदाणुमादेण इत्थि० पंचिंदियभंगो । णवरि इत्थि० ज० वि० सत्तणोक०-चत्तारि संज० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सत्तणोकसाय-चत्तारिसंजलणाणं । एवुंस० जह० विह० अट्ठणोक०-चटुसज० णि० अज० असंखे० गुणा । एवं एवुंसं, अरति और शाककी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुसकवेदकी स्थिति दो स्थान पतित होती है ।

§ ८५६ आहारक काययोगियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंमें सम्यग्मत्त और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । वारह कपाय और नौ नोकरायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी कोवनी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकरायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानादरण काधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जावक ग्यारह कपाय और नौ नोकरायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार ग्यारह कपाय और नौ नोकरायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जावके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । कामणकाययोगियों आहारकमिश्रकाययोगियों समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सात नोकरायोंमेंसे विसा भा प्रवृत्तिकी जघन्य स्थितिवाले मिथ्यात्व, सोलह कपाय और शेष नोकरायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है ।

§ ८६०. वेद मागणके अनुवादसे मन्त्रीवेदियोंका भग पंचेन्द्रियोक समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तियाल जीवके सात नोकराय और चार संजलना की स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार सात नोकराय और चार संजलनाकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

णवणोक० किं ज० अज० ? जि० सहज्जा । सम्मत्त०-सम्मामि० मदिअण्णाभिर्म्मगो ।  
 एवं सोकसक० णवणोकसायाण । सम्मत्त० जह० विह० मिअत्त०-सोससक०-णवणोक०  
 किं ज० [अज०] ? अज० । त तु तिहाणपदिदा । सम्मामि० किं ज० अज० ? जि०  
 अज० असत्ते० गुणा । एवं सम्मामि० ? णवरि सम्मत्त णत्ति ।

१८६५ आभिणि० सुद० ओहि० ओधर्मगो । जवरि सम्मामिच्छत्तस्स क्ख  
 षणाए जहण्णाट्ठिदी कायव्या । एनं संवद०-मणपज्ज०-सामाहय-खेदो०-ओहिर्वस०  
 सम्मादिट्ठिणं । जवरि मणपज्ज० इत्थि-णपुंस०-सामिणो जाणिदव्या । सामाहय-खेदो०  
 तिग्गिसंज०-भावणोक्क०-अ० वि० सोमसंज० किं अ० अज० १ णि० अमह० संत्वे० गुणा ।

॥ ८६६ ॥ परिहार० मि० ब्र० च० वि० सम्पत्तिसम्पत्तिमि किं न० अम० ? नि०  
अम० असत्वे० गुणा । वारसक०-प्रवणोक्त० किं न० अम० ? नि० अम० सत्वे० गुणा ।  
सम्पत्त० च० वि० वारसक०-प्रवणोक्त० किं न० अम० ? नि० अम० वेदागपदिदा ।  
सम्पत्तिमि० न० वि० सम्पत्त० किं न० अम० ? नि० अम० असत्वे० गुणा० । सेस०

धारक बीचके सोलह क्वाय और नौ नोकयायोंकी स्थिति क्या अक्षय्य होती है या अक्षय्य ? नियमसे अक्षय्य होती है । सम्यक्त्व और सम्बन्धिष्वात्मका रंग सत्यज्ञानियोंके समान है । इसी प्रकार सोलह क्वाय और नौ नोकयायोंकी अक्षय्य स्थितिबिमिच्छिके धारक बीचके समिकर्षे ज्ञानता चाहिये । सम्यक्त्वकी अक्षय्य स्थितिबिमिच्छिके धारक बीचके मिष्वात्व सोलह क्वाय और नौ नोकयायोंकी स्थिति क्या अक्षय्य होती है या अक्षय्य ? अक्षय्य होती है जो तीन स्वान पठित होती है । सम्यग्मिष्वात्मकी स्थिति क्या अक्षय्य होती है या अक्षय्य ? नियमसे अक्षय्य होती है जो अक्षय्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्बन्धिष्वात्मकी अक्षय्य स्थितिबिमिच्छिके बीचके ज्ञानता चाहिये । किन्तु इतनी विक्षेपता है कि इसके सम्यक्त्व-प्रकृति नहीं है ।

§ ८१५ आमिन्विषयक ज्ञानी, भुक्तज्ञानी और अविज्ञानी बीबोंका संग जोषके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्मिश्रितत्वात्त्वकी अचपल स्थिति अचपलके समान ही रहना चाहिये। इसी प्रकार संवत् मनुष्यवैज्ञानी सामायिकसंवत् जेहोपस्थापनासंवत् अविज्ञानी और सम्मिश्रित बीबोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि समस्तवैज्ञानिकोंमें स्वीय और नपुंसकवैज्ञानिकों के जानकर रहना चाहिये। सामायिकसंवत् और जेहोपस्थापनासंवत्में हीन मनुष्य और नौ नोकपायोकी अचपल स्थितिचिन्मिश्रितता बीबोंके जोमसंज्ञानकी स्थिति क्या अचपल होती है या अचपल ? नियमने अचपल होती है या अपनी अचपल स्थितिसे संख्यात्मक होती है।

§ ८६६ परिहार विपुलिसंयतोमि मिध्यात्वकी अवस्थ स्थितिविमर्शनाले जीवके सम्बन्ध और सम्मिध्यात्वकी स्थिति क्या अवस्थ होती है या अव्यवस्थ ? नियमसे अव्यवस्थ होती है जो अवस्थ स्थितिसे अस्वभावगुणों होती है । बारह कथाम और नौ भाष्यार्थोंकी स्थिति क्या अवस्थ होती है या अव्यवस्थ ? नियमसे अव्यवस्थ होती है जो अवस्थ स्थितिसे स्वभावगुणी होती है । सम्बन्धकी अवस्थ स्थितिविमर्शनाले जीवके बारह कथाम और नौ भाष्यार्थोंकी स्थिति क्या अवस्थ होती है या अव्यवस्थ ? नियमसे अव्यवस्थ होती है जो जो स्वभावपठित होती है । सम्मिध्यात्वकी अवस्थ स्थितिविमर्शनाले जीवके सम्बन्धकी स्थिति क्या अवस्थ होती है या

§ ८६२. कसायानुवादेण कोध० पंचिदियभंगो । नवरि कोध० ज० वि० तिणि-  
सज० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्ह संजलणानं । एव माण० । नवरि  
दोणि० संजल० णि० जहण्णा ? एव माय० । नवरि एगसंज० णियमा जहण्णा ।

§ ८६३. अकसा० मिच्छत्तज० वि० सम्मत्त-सम्माभि० किं ज० अज० ? णि०  
जहण्णा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा । एवं  
सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं । अपच्चक्खाणकोधज० वि० एकारसक०-णवणोक० किं ज०  
अज० ? णि० जहण्णा । एवमेकारसक०-णवणोकसायाणं । एवं सुहुमसांपराय-जहा-  
क्खादाणं । नवरि सुहुम० लोभसंज० जह० वि० सेसं णत्थि । सेस० जह० लोभसंज०  
णिय० अज० असंखे० गुणा ।

§ ८६४. णाणाणुवादेण मदिसुदअण्णा० तिरिक्खोघं । नवरि अणंताणु० चउक०  
मिच्छत्तभंगो । सम्मत्त० सम्माभिच्छत्तभंगो । एवमभवसि० मिच्छायिहि०-असणी० ।  
नवरि अभवसिद्धिएसु सम्मत्त०-सम्माभि० णत्थि । विहंग० मिच्छत्त ज० वि० सोलसक०-

§ ८६२ कपाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोधी जीवका पचेन्द्रियोंके समान भग है। किन्तु  
इतनी विशेषता है कि क्रोधकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके तीन संज्वलनोंकी स्थिति क्या  
जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार मान आदि तीन संज्वलनों-  
की जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार मानी जीवके  
जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके माया आदि दो संज्वलनोंकी स्थिति नियमसे  
जघन्य होती है। इसी प्रकार मायो जीवके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके  
लोभ सज्वलनकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है।

§ ८६३ कपायरहित जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है।  
बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य  
होती है, जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी  
जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवोंके जानना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य  
स्थिति विभक्तिके धारक जीवके शेष ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती  
है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शेष ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी  
जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार सूक्ष्म सापरायिक  
सयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसापराय  
गुणस्थानमें लोभ सज्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके शेष प्रकृतियों नहीं हैं। तथा शेष  
प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके लोभसज्वलनकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती  
है जो जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है।

§ ८६४ ज्ञान मार्गणाके अनुवादसे मत्तज्ज्ञानी जीवोंमें सामान्य तिर्यचोंके समान कथन  
जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग मिथ्यात्वके समान  
है तथा सम्यक्त्वका भग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार अमव्य, मिथ्यादृष्टि और  
असज्जी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अमव्य जीवोंके सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतिया नहीं हैं। विभग ज्ञानियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके

॥ ८६६ ॥ स्वइपसम्मा० एकवीसपयवीणमोषं । वेदय० मिच्छत्त-सम्माभि०  
अर्णताणु० चठक्कणं परिहारमंगो । सम्मत्त० ज० वि० बारसक० णवणोक्क० किं ज०  
अज० ? जइण्णा अजइण्णा वा । जइण्णादो अजइण्णा वेदाणपदिदा । अपचक्खा०  
कोपस० वि० सम्मत्त० किं ज० अज० ? पि० जइण्णा । एवमेककारसक०-णवणोक्क  
सायाणं जइण्णत्तं पचय्यं । एवमेकारसक० णवणोक्कसायाणं । उवसमसम्मा० मिच्छत्त०  
ज० वि० सम्मत्त०-सम्माभि०-बारसक०-णवणोक्क० किं ज० अज० ? पि० जइण्णा ।  
एवं सम्मत्त-सम्माभि०-बारसक०-णवणोक्क० । अर्णताणु० कोप० ज० वि० मिच्छत्त  
सम्मत्त-सम्माभि०-बारसक०-णवणोक्क० किं ज० अज० ? पि० अज० सत्ते० गुणा ।  
विणिगक० किं ज० अज० ? पि० जइण्णा । एवं तिण्हं कसायाणं । एवं सासुजसम्मा-  
दिहीणं । गवरि अर्णताणु० चठक्क० मिच्छत्तमंगो ।

॥ ८७० ॥ सम्मामिच्छाही० मिच्छत्तजइ० सम्म०-सम्माभि० पि० अज०  
सत्ते० गुणा । सेसं गियमा जइ० । गवरि अर्णताणु० चठक्कं गारिव । एवं बारसक०

॥ ८६६ ॥ कायिकसम्यग्दृष्टिर्मि० इच्छीस प्रवृत्तियोंका संग जोयके समान है । वेदक  
सम्यग्दृष्टिर्मि० मिच्छात्त, सम्यग्मिच्छात्त और अनन्तलुब्धकी कतुष्क संग परिहारविहृतिस्वतोंके  
समान है । सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिबिम्बित्वासे जीवक बारह कयाय और नौ नोकयावोंकी स्थिति  
क्या अपन्य हाठी है या अजपन्य ? अपन्य भी हाठी है और अजपन्य भी । उनमसे अजपन्य  
स्थिति अपन्य स्थितिसे दो स्थानपतित होती है । अमत्याक्यानान्तरण जावकी अपन्य स्थिति-  
बिम्बित्वासे जीवके सम्यक्त्वकी स्थिति क्या अपन्य हाठी है या अजपन्य ? नियमसे अपन्य हाठी  
है । इसी प्रकार म्मारह कयाय और नौ नोकयावोंका स्थिति अपन्य कहना चाहिये ।  
इसी प्रकार अमत्याक्यानान्तरण मान आदि म्मारह कयाय और नौ नोकयावोंकी अपन्य  
स्थितिबिम्बित्वासे जावके समिकप जानना चाहिये । अपन्य सम्यग्दृष्टिर्मि० मिच्छात्तकी  
अपन्य स्थितिबिम्बित्वासे जीवक सम्यक्त्व, सम्यग्मिच्छात्त, बारह कयाय और नौ नोकयावोंका  
स्थिति क्या अपन्य हाठी है या अजपन्य ? नियमसे अपन्य हाठी है । इसी प्रकार सम्यक्त्व,  
सम्यग्मिच्छात्त, बारह कयाय और नौ नोकयावोंकी अपन्य स्थितिबिम्बित्वासे जीवके समिकप  
जानना चाहिये । अनन्तलुब्धकी अपन्य स्थितिबिम्बित्वासे जीवक मिच्छात्त, सम्यक्त्व,  
सम्यग्मिच्छात्त, बारह कयाय और नौ नोकयावोंकी स्थिति क्या अपन्य हाठी है या अजपन्य ?  
नियमसे अजपन्य हाठी है या अपन्य स्थितिसे संक्यातगुणी होती है । अनन्तलुब्धकी मान  
आदि तीन कयावोंका स्थिति क्या अपन्य हाठी है या अजपन्य ? नियमसे अपन्य हाठी है । इसी  
प्रकार अनन्तलुब्धकी मान आदि तीन कयावोंका अपन्य स्थितिबिम्बित्वासे जीवके समिकप  
जानना चाहिये । इसी प्रकार साक्षादनसम्यग्दृष्टि जावक जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
अनन्तलुब्धकी कतुष्क संग मिच्छात्तके समान है ।

॥ ८७० ॥ सम्यग्मिच्छादृष्टिर्मि० मिच्छात्तकी अपन्य स्थितिबिम्बित्वासे जीवके सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिच्छात्तकी स्थिति नियमसे अजपन्य हाठी है जो अपन्य स्थितिसे संक्यातगुणी  
होती है । तथा शेष प्रवृत्तियोंकी स्थिति नियमसे अपन्य हाठी है किन्तु इतनी विशेषता है कि  
इसके अनन्तलुब्धकी कतुष्क नहीं है । इसी प्रकार बारह कयाय और नौ नोकयावोंकी अपन्य

सम्मत्तभंगो । अणंताणु०कोध० जह० दंसणतिय-तिण्णिकसा० ओधं । सेसं मिच्छत्त-भंगो । एवं तिण्हं कसायाणं । अपचक्खवाणकोध० ज० वि० एवारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहणा । एवमेवारसक० णवणोकसायाणं । एवं मंजडासंजडाणं ।

§ ८६७. असंजद० मिच्छत्त० ज० वि० सम्मत्त०-सम्मामि० किं ज० अज० । णि० अज० असंखे०गुणा । वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त० ज० वि० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० मंखेज्जगुणा । सम्मामि० ज० वि० सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि णि० असंखे०गुणा । वारसक० णवणोक० किं ज० अज० ? जहणा अजहणा वा । जहणादो अज० तिहाणपदिदा । सेमं तिरिक्खोघ । णवरि मिच्छत्त० अणंताणु० चउक्क०भंगो ।

§ ८६८ किण्ह-णील-काउ० तिरिक्खोघ । णवरि किण्ह-णीललेस्सामु सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्तभंगो । तेउ०-पम्म०परिहार०भंगो । णवरि सम्मामि० ओधं ।

अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होनी है । शेष प्रकृतियोंका भग सम्यक्त्वके समान है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके तीन दर्शन मोहनीय और अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंका कथन ओघके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके शेष ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार शेष ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार सयत्तासंयत्तोंके जानना चाहिये ।

§ ८६७ असंयत्तोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होता है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे तीन स्थान पतित होती है । शेष कथन सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वका भग अनन्तानुबन्धी चतुष्कके समान है ।

§ ८६८ कृष्ण नील और कापोत लेश्यावालोंके सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नील लेश्याओंमें सम्यक्त्वका भग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । पीत और पद्मलेश्यावालोंमें परिहार विशुद्धिसयत्तोंके समान भग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भग ओघके समान है ।

§ ८६६ स्वयसम्मा० एकवीसपयडीगमोर्ष । वेदय० मिच्छत्त-सम्मापि०  
अर्णताणु० चउक्कणं परिहारमंगो । सम्मत्त० न० वि० बारसक० जवणोक्क० किं न०  
अज० ? जहण्णा अनहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा वेदागपदिदा । अपयक्खा०  
कोषज० वि० सम्मत्त० किं न० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेवकारसक०-गवणोक्क  
सायार्ण जहण्णार्ण पत्तब्ब । एवमेवकारसक०-गवणोक्कसायार्ण । उवसमसम्मा० मिच्छत्त०  
न० वि० सम्मत्त०-सम्मापि०-बारसक०-गवणोक्क० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा ।  
एवं सम्मत्त-सम्मापि०-बारसक०-गवणोक्क० । अर्णताणु० कोष० न० वि० मिच्छत्त  
सम्मत्त-सम्मापि०-बारसक०-गवणोक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० सत्ते० गुणा ।  
विष्मिक्क० किं न० अज० ? णि० जहण्णा । एवं विष्मिक्कसायार्ण । एवं सासजसम्मा  
विहीणं । जवरि अर्णताणु० चउक्क० मिच्छत्तमंगो ।

§ ८७० सम्मामिच्छाद्दी० मिच्छत्तज० सम्म०-सम्मापि० णि० अज०  
सत्ते० गुणा । सेसं गियमा जह० । जवरि अर्णताणु० चउक्कं गतिथ । एवं बारसक०-

§ ८६६ कायिकसम्बन्धित्वयोर्मे इषीस प्रकृतियोंका मंग जोयके समान है । वेदक  
सम्बन्धित्वयोर्मे मिध्यात्व, सम्बन्धिमिध्यात्व और अनन्तलुब्धकी वस्तुच्छन्न मंग परिहारविहितसंबन्धोंके  
समान है । सम्बन्धित्वकी अथवा स्थितिविमर्शिताले बीबक वारह कपाय और नौ नाकपायोंकी स्थिति  
क्या अथवा हाठी है वा अजअथवा ? अथवा मी हाठी है और अजअथवा मी । उनमेंसे अजअथवा  
स्थिति अथवा स्थितिसे जो स्वानपठित होती है । अमर्यादस्थानावरण जोयकी अथवा स्थिति-  
विमर्शिताले बीबके सम्बन्धित्वकी स्थिति क्या अथवा हाठी है वा अजअथवा ? नियमसे अथवा हाठी  
है । इसी प्रकार ग्यारह कपाय और नौ नाकपायोंका स्थिति अथवा कल्पना चाहिये ।  
इसी प्रकार अमर्यादस्थानावरण मान आध ग्यारह कपाय और नौ नाकपायोंकी अथवा  
स्थितिविमर्शिताले बाबाके सन्निकष आनन्दा चाहिये । अथवा सम्बन्धित्वयोर्मे मिध्यात्वकी  
अथवा स्थितिविमर्शिताले बीबके सम्बन्धित्व, सम्बन्धिमिध्यात्व, वारह कपाय और नौ नाकपायोंका  
स्थिति क्या अथवा हाठी है वा अजअथवा ? नियमसे अथवा हाठी है । इसी प्रकार सम्बन्धित्व  
सम्बन्धिमिध्यात्व, वारह कपाय और नौ नाकपायोंकी अथवा स्थितिविमर्शिताले बीबके सन्निकष  
आनन्दा चाहिये । अनन्तलुब्धकी कायका अथवा स्थितिविमर्शिताले बीबके मिध्यात्व, सम्बन्धित्व,  
सम्बन्धिमिध्यात्व, वारह कपाय और नौ नाकपायोंकी स्थिति क्या अथवा हाठी है वा अजअथवा ?  
नियमसे अजअथवा हाठी है जो अथवा स्थितिसे संख्यातगुण्यी होती है । अनन्तलुब्धकी मान  
आधि तीन कपायोंका स्थिति क्या अथवा हाठी है वा अजअथवा ? नियमसे अथवा हाठी है । इसी  
प्रकार अनन्तलुब्धकी मान आधि तीन कपायोंका अथवा स्थितिवाले बीबके सन्निकष आनन्दा  
चाहिये । इसी प्रकार सासजसम्बन्धित्व बाबाके आनन्दा चाहिये । किन्तु इतनी विवेचना है कि  
अनन्तलुब्धकी वस्तुच्छन्न मंग मिध्यात्वके समान है ।

§ ८७० सम्बन्धिमिध्याद्वित्वयोर्मे मिध्यात्वकी अथवा स्थितिविमर्शिताले बीबके सम्बन्धित्व  
और सम्बन्धिमिध्यात्वकी स्थिति नियमसे अजअथवा हाठी है जो अथवा स्थितिसे संख्यातगुण्यी  
होती है । तथा शेष प्रकृतियोंकी स्थिति नियमसे अथवा हाठी है किन्तु इतनी विवेचना है कि  
इसके अनन्तलुब्धकी वस्तुच्छन्न मंगी है । इसी प्रकार वारह कपाय और नौ नाकपायोंकी अथवा

णवणोक० । अणंताणु० क्रोध० ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसक०-णवणोक०  
णिय० अज० असंखेज्जगुणा<sup>१</sup> । तिण्णि कमा० णिय० जहण्णा । एवं तिण्णं कसायाण ।  
सम्म० जह० द्विदिविह० सम्मामि० णिय० जह० । सेसमव्व० णिय० अज० संखे-  
गुणा । एवं सम्मामि० । अणाहाराणं कम्मइयभगो ।

एवं सण्णियासो समत्तो ।

❀ [ अप्पावहुअं । ]

§ ८७१. अप्पावहुअं दुमिहं द्विद्विअप्पावहुअ जीअप्पावहुअ चेदि । तत्थ द्विदि-  
अप्पावहुअं वत्तइस्सामो ।

❀ सव्वत्थोवा णवणोकसायाणमुक्कस्सद्विदिविहृती ।

§ ८७२. कुदो ? वंधावलियूणचत्तालीस-सागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तादो । किमठ-  
बंधावलियाए ऊणा ? ण, वद्धसमए चेव कसायुक्कस्सद्विदीए णोकसायाणमुगि संकम-  
णसत्तिविरोहादो । तं पि कुदो ? साहावियादो । ण च सहानो परपडि<sup>३</sup>जोयणारुहो,

स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नारुपायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असख्यातगुणी होती है । तथा तीन उपायोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । तथा शेष सब प्रकृतियोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे सख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनाहारकोंके कर्मफलप्रयोगियोंके समान भग है ।

इस प्रकार सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

❀ अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ ८७१. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्थिति अल्पबहुत्व और जीव अल्पबहुत्व । उनमेंसे स्थितिअल्पबहुत्वको बतलाते हैं—

❀ नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है ।

§ ८७२. क्योंकि नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण बन्धावलि कम चालीस कोड़ा-काड़ी सागर है ।

शंका—इसे एक बन्धावलिप्रमाण कम किसलिये किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बन्ध होनेके पहले समयमें ही कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें नौ नोकपायरूपसे संक्रमण होनेकी शक्ति माननेमें विरोध आता है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि ऐसा स्वभाव है और स्वभाव दूसरेकी प्रकृतिके अनुरूप होता नहीं,

१. ता० प्रती 'सखे०गुणा' इति पाठ । २ ता० प्रती 'कोडीओ' इति पाठ । ३ आ० प्रती 'परपडि' इति पाठ ।

मध्यसगादो ।

⊗ सोखसकसापाखमुक्कस्सद्विविधहीए बिसेसाहिया ।

§ ८७३ बंपावक्षियमेत्तेण ।

⊗ सम्मामिच्छुत्तस्स उच्छ्रयस्सद्विविधहीए बिसेसाहिया ।

§ ८७४ केतियमेत्तेण ? अंतामुद्गुणतासमागतोन्नमकाढाकोडोमेण ।

⊗ सम्मत्तस्स उच्छ्रयस्सद्विविधहीए बिसे० ।

§ ८७५ के० मेत्तेण ? एगुदयभित्तेगद्विविधमेत्तेण । खुग्गेसुत्ते अइसहाइरियो

कम्मि वि कालपहाणं कादूण द्विविधवण्णं कुणदि पिच्छत्तस्स संपुण्णसत्तरिसागरो-  
पपकोडाकोडिद्विदिपरूपणादो । कम्मि वि गित्तेगपहाणं कादूण वण्णं कुणदि; सम्म  
पुक्कस्सद्विदि पेक्खिदूण सम्मामिच्छुत्तस्सद्विदीए देण्णत्तपरूपणादो, अण्णोक्कसाय  
अइण्णद्विदीए अतोमुद्गुत्तपेत्तावहाणपरूपणादो च । उच्चारणाइरियो वि कम्मि वि  
कालपहाणं कादूण द्विविधवण्णं कुणदि; सम्मत्तजइण्णद्विदि पेक्खिदूण पिच्छत्तजइण्ण  
द्विदीए सत्तेज्जगुणत्तपरूपणादो । कम्मि वि पिसमपहाणं कादूण वण्णं कुणदि; अणु

अम्भवा अतिप्रसंग दाव आता ह ।

⊗ ना नोक्कपायोकी उत्कट स्थितिमे सोखह कपायोकी उत्कट स्थितिबिमर्कि  
विशेष अधिक है ।

§ ८७६ ना नोक्कपायोकी उत्कट स्थितिसे सोखह कपायोकी उत्कट स्थिति एक कपावक्षि  
काल प्रमाण अधिक है ।

⊗ सोखह कपायोकी उत्कट स्थितिसे सम्मग्निध्यात्वकी उत्कट स्थितिबिमर्कि  
विशेष अधिक है ।

§ ८७७ शृंक्षा—किन्तनी अधिक है ?

समाधान—अन्तमुद्गुत्त कम तोस कोडाकोकी सागर अधिक है ।

⊗ सम्मग्निध्यात्वकी उत्कट स्थितिसे सम्मत्तकी उत्कट स्थितिबिमर्कि विशेष  
अधिक है ।

§ ८७८ शृंक्षा—किन्तनी अधिक है ?

समाधान—एक कय मिच्छका स्मिताप्रमाण अधिक है ।

शृंक्षा—युत्तिसुत्तमे यत्तिवृत्त आत्माय कही कालकी प्रमानता करक स्थितिका पण्यन करते  
हैं जसे मिच्छात्वकी उत्कट स्थिति वा सत्तर काडाकोकी सागरप्रमाण कही है वह कालकी  
प्रमानतासे कही है । कही निरेक्केका प्रमान करके स्थितिका बर्णन करते हैं, जत सम्मत्तकी  
उत्कट स्थितिका देखते हुए सम्मग्निध्यात्वकी उत्कट स्थिति वा वृत्तान कही है और वह  
नोक्कपायोकी अपम्य स्थितिकी वा अन्तमुद्गुत्तप्रमाण अवस्थिति कही है वह नियमोंकी प्रमाणासे  
ही कही है । इसी प्रकार उच्चारणाचार्य भी कही कालका प्रमान करके स्थितिका पण्यन करते हैं  
वैसे सम्मत्तकी अपम्य स्थितिकी वृत्तान रूप वा मिच्छात्वकी अपम्य स्थिति संख्यातगुणी कही



दिसासु मिच्छत्तद्विदिं पेक्खिदूण सम्मत्तुक्कस्सद्विदीए विसेसाहियत्तपरूवणादो । तदो एदेसिं दोण्णमाइरियाणमहिप्पाओ दुरवगमो चि ? ण; णिसंगेहिंतो कालस्स अभेद-  
प्पहाणा परूवणा भेदप्पणाए कालपहाणा चि दोसाभावादो । किमदं गुणपहाणभावेण  
परूवणा कीरदे ? कारणंतरावेस्वाए दुविहणयमस्सिदूणद्विदिसिस्साणुग्गहदं वा ।

❖ मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहत्ती विसेसाहिया ।

§ ८७६, के० मेत्तेण ? अतोमुहुत्तेण ।

❖ णिरयगदीए सच्चत्थोवा इत्थिवेदपुरिसवेदाणमुक्कस्सद्विदिविहत्ती ।

§ ८७७, कुदो ? तत्थेदेसिमुदयाभावेणुदयणिसेगस्स एवुंसयवेदसरूवेण त्थि-  
उक्कसंकमेण गमणादो ।

❖ सेसाणं णोकसायाणमुक्कस्सद्विदिविहत्ती विससाहिया ।

§ ८७८, केत्तिएण ? एगुदयणिसेगेण ।

हैं वह कालकी प्रधानतासे ही कही है । कहीं निपेकोंको प्रधान करके स्थितिका वर्णन करते हैं, जैसे अनुदिश आदिमे मिथ्यात्वकी स्थितिको देखते हुए जो सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति विशेष अधिक कही है वह निपेकोंकी प्रधानतासे ही कही है इससे मालूम होता है कि इन दोनों आचार्यों-का अभिप्राय दुरवगम है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि जहां निपेकोंकी अपेक्षा प्ररूपणा की है वहां निपेकोंसे कालके अभेदकी प्रधानता करके प्ररूपणा की है और जहां भेदकी विवक्षासे प्ररूपणा की है वहां कालकी प्रधानतासे प्ररूपणा की है, इसलिये कोई दोष नहीं है ।

**शंका**—इस प्रकार गौण मुख्यभावसे प्ररूपणा किसलिये की जाती है ?

**समाधान**—भिन्न भिन्न कारणोंकी अपेक्षासे अथवा द्रव्याधिक और पर्यायार्थिक नयोंका आश्रय लेनेवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिये गौण मुख्यभावसे प्ररूपणा की जाती है ।

\* सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है ?

§ ८७६ शंका—कितनी अधिक है ?

**समाधान**—अन्तर्मुहूर्त अधिक है ।

\* नरकगतिमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है ।

§ ८७७ शंका—नरकगतिमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति सबसे थोड़ी क्यों है ?

**समाधान**—क्योंकि वहां पर इन दो प्रकृतियोंका उदय नहीं होता है अतः इनका उदय-निषेक स्तवुकसक्रमणके द्वारा नपुंसकवेदरूपसे परिणत हो जाता है ।

\* स्त्रीवेद और पुदुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिसे शेष नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८७८ शंका—कितनी अधिक है ?

**समाधान**—एक उदय निषेकप्रमाण अधिक है ।

ॐ सोलसयई कसायाणमुक्कस्सद्विदिविहृषी विसेसाहिया ।

§ ८७६ केसिएण, वंशारसियाए ।

ॐ सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहृषी विसेसाहिया ।

§ ८८० केसियमेचो विसेसो पि ? तीसं सागरोवमकोवाकोदीभो मंठो मुहुष्साओ ।

ॐ सम्मत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहृषी विसेसाहिया ।

§ ८८१ केसिएण, एगुवयणितेगेण ।

ॐ मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्विदिविहृषी विसेसाहिया ।

§ ८८२ के० ? मंठोमुहुषेण ।

ॐ सेसासु गवीसु येवब्बो ।

§ ८८३ पवेणेतसि सुत्ताणं देसापासिपणं आखाविदं, वेणं जुप्पिणमुच्चवनि दाणमत्थायमुच्चारणमस्सिदूणं परुषणं कस्सामो ।

ॐ शेष नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविमर्क विशेष अधिक है ।

§ ८८६ शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक सम्भावति काजममाय अधिक है ।

ॐ सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यग्निध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमर्क विशेष अधिक है ।

§ ८८० शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ।

समाधान—विशेषका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त कम तीस कोवकोदी भाग है ।

ॐ सम्यग्निध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमर्क विशेष अधिक है ।

§ ८८१ शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक वयमनिपेक्षमाय अधिक है ।

ॐ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविमर्क विशेष अधिक है ।

§ ८८२ शंका—कितनी अधिक है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त अधिक है ।

ॐ इसी प्रकार शेष गतियोंमें जानना चाहिये ।

§ ८८३ पूर्णतः सभी सूत्र हेतुमर्पक हैं यह इस सूत्रसे जगता दिया है, अतः पूर्णसूत्रम सुचित होनेका अर्थोंका उच्चारणका आशय लेकर करने करते हैं—

§ ८८४ द्विद्विअप्पावहुअं दुविहं—जहणणमुक्कसं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य ? तत्थ ओघेण सञ्चत्थोवा णवणोक० उक्क-  
स्सद्विदिविहत्ती । सोलसक० उक्क० विहत्ती विसे० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० विसेसा० ।  
मिच्छत्त० उक्क० विसेसा० । एवं सत्तमु पुढवीसु । तिरिक्खगइचउक्क०-गणुसतिय०-  
देवगई०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पचमण०-  
पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्वि०-तिण्णवेद-चत्तारिक०-असंजड०-चक्खु०-  
अचक्खु०-पचले०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारए च्ति ।

§ ८८५, पंचि० तिरि० अपज्ज० सञ्चत्थोवा सोलसक०-णवणोक० उक्क० द्विद्वि  
विहत्ती । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० द्विद्विहत्ती विसे० । मिच्छत्तुक० द्विद्विहत्ती  
विसे० । एवं मणुसअपज्ज०-वादरेइंदिय अपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-मव्वविग-  
लिंदिय-पंचिंदिय अपज्ज०-वादरपुढवि०अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-वादरआउ०  
अपज्ज०-सुहुमआउ०पज्जत्तापज्जत्त-तेउ० वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-वाउ० वादरसुहुम-

§ ८८४ स्थिति अल्पवहुत्त्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहल यहा उत्कृष्टका  
प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दां प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे  
ओघनिर्देशकी अपेक्षा नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति सरसे थोड़ी है । सोलह कपायोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति विशेष अधिक है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति  
विशेष अधिक है । मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सातों  
पृथिवियोंके नारकी, तिर्यचगतियों सामान्य, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती तिर्यच,  
सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्त्रार स्वर्गतकके  
देव, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी,  
औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, असयत,  
चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्ण आदि पाच लेश्यावाले, भव्य, सङ्गी, और आहारक जीवोंके  
जानना चाहिये ।

§ ८८५ पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट  
स्थिति विभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति  
विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार  
मनुष्य अपर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म  
एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म  
पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, वादर जलकायिक  
अपर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तक,  
अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक और  
उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म  
वायुकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति-  
कायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोदवनस्पति, वादर

१. ता० प्रती 'विहत्ती [ विसेसाहिया ] । सोलसक०' इति पाठः ।

पञ्चचापञ्चस वादरवणपञ्चद्विअपञ्च० सुहुमवणपञ्चद्विपञ्चचापञ्चस गिगोदवणपञ्चद्वि  
वादरसुहुमपञ्चचापञ्चस-वादरवणपञ्चद्विपञ्चसरीरअपञ्च०-तस अपञ्चचेति ।

§ ८८६ आणदादि जाय उअरिमगेवञ्जो णि सञ्चत्योवा सोल्लसक०-णवणोक०  
उक्कस्सहिदिविहृती । सम्माणि० उक्कस्सहिदिविहृती वित्ते० । मिञ्चत्त-सम्मात्त० उक्क०  
हिदिवि० वित्ते० । एवं सुक्कत्तेस्साए । णवरि सम्मात्तसुवरि मिञ्चत्त० उक्क० वित्ते० ।  
अणुदिसादि आव० सम्मद्विसिद्धि णि सञ्चत्योवा सोल्लसक० णवणोक० उक्क० हिदि  
विहृती । मिञ्चत्त-सम्माणि० उक्क० वि० वित्ते० । सम्मात्तुक्क० विह० वित्ते० । एवमाहार  
माहारमि०-आमिभि०-सुव० ओदि०-मणपञ्च०-सज्जद०-सामाहयञ्जेदो०-परिहार०  
सज्जदासज्जद० ओदिदस०-सम्मादि०-वेदयसम्मादिहिदि ।

§ ८८७ इदिपाणु० एअदिवेसु सञ्चत्योवा णवणोक० उक्क० हिदिविहृती ।  
सोल्लसक० उक्क० वि० विमे० । सम्मात्त सम्माणि० उक्क० विहृती वित्ते० । मिञ्चत्तुक्क०  
वि० वित्ते० । एवं वादरेदिय-वादरेदियपञ्चत्त पुडवि०-वादरपुडवि०-तप्पञ्च०-आत्त०-  
वादरआत्त०-तप्पञ्च०-वादरवणपञ्चद्विपञ्चत्त-तप्पञ्च०-ओरास्मिपमिस्स०-वेठ०-मिस्स-कम्म-  
इय-तिष्णिअण्णाण मिञ्चादिहि-असणि०-मणाहारए णि । एवममवसि० । णवरि  
सम्मात्त०-सम्माणि० णरिह ।

विगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म विगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर  
वनस्पति प्रत्येकशरीर अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त बीबोंके जानना चाहिये ।

§ ८८६ आनत कल्पसे लेकर ऊपरिम नैवयक तक बेबोंमें सोल्लह कपाय और नौ नोकपायों  
की कल्ल स्थितिबिमल्लि सप्तसे बोझी है । इससे सम्मत्तमिप्यात्त्वकी कल्ल स्थितिबिमल्लि विशेष  
अधिक है । इससे मिप्यात्त्व और सम्मत्त्वकी कल्ल स्थितिबिमल्लि विशेष अधिक है । इसी  
प्रकार दुक्कत्तेरपामे जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां सम्मत्त्वके अनन्तर  
मिप्यात्त्वकी कल्ल स्थिति विशेष अधिक होती है । अनुदिससे लेकर सर्वापैसिद्धिकके बेबोंमें  
सोल्लह कपाय और नौ नोकपायोंकी कल्ल स्थितिबिमल्लि सप्तसे बोझी है । इससे मिप्यात्त्व और  
सम्मत्तमिप्यात्त्वकी कल्ल स्थितिबिमल्लि विशेष अधिक है । इससे सम्मत्त्वकी कल्ल स्थितिबिमल्लि  
विशेष अधिक है । इसी प्रकार आहारककाययोगी आहारकमिअययोगी, मतिज्ञानी भुतज्ञानी,  
अवधिज्ञानी, मत्तपरीयज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत जेवोपस्थापना संयत परिहारविमुदिसंयत,  
संयतासंयत, अवधिदशनवाले सम्मत्ति, और भक्कसम्मत्ति बीबोंके जानना चाहिये ।

§ ८८७ इन्द्रिय मागण्डके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें नौ नोकपायोंकी कल्ल स्थितिबिमल्लि  
सप्तसे बोझी है । इससे सोल्लह कपायोंकी कल्ल स्थितिबिमल्लि विशेष अधिक है । इससे सम्मत्त्व  
और सम्मत्तमिप्यात्त्वकी कल्ल स्थितिबिमल्लि विशेष अधिक है । इससे मिप्यात्त्वकी कल्ल  
स्थितिबिमल्लि विशेष अधिक है । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पयात्त, पृथिवीकायिक  
वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक वादर जलकायिक, वादर जल-  
कायिक पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपयात्त,  
ओदारिक मिअययोगी वैद्वियिअमिअययोगी, अमंअययोगी तीनों अज्ञानी मिप्यात्ति  
अमंअी और अग्राहकोंके जानना चाहिये । तथा अमंअोंके इसी प्रत्यर जानना । किन्तु इनके

§ ८८८. अवगद० सव्वत्थोवा वारसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिविहत्ती । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० द्विदिवि० विसे० । एव मृदुम०-जहाक्खाद० अकसायित्ति ।

§ ८८९. खइए णत्थि अप्पावद्दुगं; वारसक०-णवणोक० द्विदीणं सरिसत्तादो । उवसमे सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक०-उक्क० द्विदिविहत्ती । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० द्विदिविहत्ती विसे० । एवं सासण० । सम्मामि० सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिविहत्ती । सम्मत्त० उक्कद्विदिविहत्ती विसे० । सम्मामि० उक्क० द्विदिवि० विसे० । मिच्छत्तउक्क० विसे० ।

एवमुक्कस्सप्पावहुआणुगमो समत्तो ।

§ ८९०. जहण्णए पयटं । दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसे० । ओघेण सव्वत्थोवा सम्मत्त-इत्थि०-णवुंस०-लोभसंज० जहण्णद्विदिविहत्ती । मिच्छत्त-सम्मामि०-वारसक० जहण्णद्विदिविहत्ती सखे० गुणा । मायासंज० जह० द्विदिवि० असंखे० गुणा । माण-संजल० जह० द्विदिविह० संखे० गुणा । कोधजह० द्विदिवि० सखे० गुणा । पुरिसजह० द्विदि० विह० संखेज्जगुणा । छण्णोक० जह० द्विदिवि० संखे० गुणा । एवं मणुस०-मणुसपज्ज०-मणुसिणी-पंचिंदिय-पचिं० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-काय-सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिया नहीं हैं ।

§ ८८८. अपगत वेदियोंमें बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति सरसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सूक्ष्मसापराधिक सयत, यथाख्यातसयत और अकपायी जीवोंमें जानना चाहिये ।

§ ८८९. चायिक सम्यग्दृष्टियोंमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि इनके बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति समान है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सासादन सम्यग्दृष्टियोंके जानना चाहिये । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

§ ८९०. अब जघन्य स्थिति अल्पबहुत्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सम्यक्त्व, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इससे मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इससे क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इससे छह नोकपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस, पर्याप्त,

आमि० भोरासिय०-सोमक०-आमिणि०-सुद०-ओहि०-संजद० चकसु० अचकसु०  
ओरिदस०-सुचकले०-मवसि०-सम्मादि०-सणि आहारए चि । गवरि मणुसपज्ज०  
छणोकसायाणमुवरि इत्थिबेद० जह० अससे०गुणा । मणुसिणी० कोधसंखत्तपस्सुवरि  
पुरिस०-छणोक्क० जह० द्विदिवि० संखे०गुणा । जणुस० जह० द्विदिवि० अससे०गुणा ।

॥ ८९१ ॥ ओदेसेण णेरएणु सम्भत्थोवा सम्मच० जह० द्विदिवि० । सम्मामि०-  
अणसाजु०चतक० जह० द्विदिवि० संखेगुणा । पुरिस० जह० द्विदिवि० अससे०गुणा ।  
इत्थिज्ज० द्वि० विसेसा० । के० मेत्तेण ? पुरिसवेदबंघगद्धणित्थिवेदबंघगद्धामेत्तेण ।  
इत्त रदि० जह० द्वि० वि० विसे० । के० मेत्तेण ? अरदि-सोगबंघगद्धण पुरिसजणु-  
सपवेदबंघगद्धामेत्तेण । अरदि-सोग० जहण्ण० द्विदिवि० विसे० । के० मेत्तेण ? इत्त  
रदबंघगद्धापरिणीणसगबंघगद्धामेत्तेण । जणुस० जह० द्विदिवि० विसे० । के० मेत्तेण ?  
इत्थि-पुरिसबंघगद्धाइत्त-रदिबंघगद्धामेत्तेण । चारसक० मय-जुगुद्धाण जह० द्विदिवि०  
विसे० । मिक्कचज्ज० द्विदिवि० विसे० ।

॥ ८९२ ॥ एत्थुबज्जन्मसमदप्याबहुअ वत्तइत्तामो । तं महा—सम्भत्थोवा पुरिस  
बंघगद्धा २ । इत्थिवेदबंघगद्धा संखे०गुणा ४ । इत्त-रदि-बंघगद्धा संखे०गुणा १६ ।

पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, कथयोगी औचारिक कथबोली सोम कथाचाली, मतिज्ञानी,  
कुतज्ञानी अथपिज्ञानी सबत चतुर्वर्त्तनवाले अथचतुर्वर्त्तनवाले, अथचिन्तनवाले, दुष्कर्मकर्मवाले,  
मध्य, सम्मन्दष्टि, संखी और आहारक बीबोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विवेकता है कि  
मनुष्य पर्याप्तकोमें जह नोक्याबोंक ऊपर स्त्रीवैदकी अथम्य स्थितिबिमति असंख्यातगुणी होती  
है । मनुष्यनियोंमें ओषसंखलनके ऊपर पुरुषवैद और जह नोक्याबोंकी अथम्य स्थितिबिमति  
संख्यातगुणी होती है । इससे नपुंसकवैदकी अथम्य स्थितिबिमति असंख्यातगुणी होती है ।

॥ ८९१ ॥ आवेदनविदकी अपेक्षा नारदियोंमें सम्भक्तकी अथम्य स्थितिबिमति छवसे  
बोझी है ? इससे सम्भक्तिप्रमाण और अनन्तागुणकी वस्तुत्वकी अथम्य स्थितिबिमति संख्यात  
गुणी है । इससे पुत्रत्वकी अथम्य स्थितिबिमति संख्यातगुणी है । इसमें स्त्रीवैदकी अथम्य  
स्थितिबिमति विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? पुरुषवैदके कथककालसे कम स्त्रीवैदके  
कथक कालप्रमाण अधिक है । इससे हास्य और रतिकी अथम्य स्थितिबिमति विशेष अधिक  
है । कितनी अधिक है ? अरति और झोकके कथक कालसे कम पुरुषवैद और नपुंसकवैदके  
कथक कालप्रमाण अधिक है । इससे अरति और झोककी अथम्य स्थितिबिमति विशेष अधिक  
है । कितनी अधिक है ? हास्य और रतिके कथक कालसे कम अपने कथक कालप्रमाण अधिक  
है । इससे नपुंसकवैदकी अथम्य स्थितिबिमति विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? स्त्रीवैद  
और पुरुषवैदके कथककालसे कम हास्य और रतिके कथककाल प्रमाण अधिक है । इससे वाद  
कथम भव और पुत्रप्राप्ती अथम्य स्थितिबिमति विशेष अधिक है । इससे मित्रताकी अथम्य  
स्थितिबिमति विशेष अधिक है ।

॥ ८९२ ॥ अब यहाँ प्रकृतमें कथयोगी अथम्यवस्तुत्वकी वत्तताये हैं । जो इस प्रकार है—  
पुरुषवैदका कथककाल सबसे बोझा है जिसकी सहजानी ९ है । इससे स्त्रीवैदका कथ  
काल संख्यातगुणा है जिसकी सहजानी ४ है । इससे हास्य और रतिक कथककाल संख्यात

अरदि-सोगवधगद्धा संखे० गुणा ३२ । णवुंसयवेदवंधगद्धा विसे० ४२ । सगसगपडि-  
वक्खवंधगद्धाओ कसायजहण्णट्ठिदीदो २०० सोहिदे सत्तणोकसायाणं जहण्णट्ठिदीओ  
होति । तासिं पमाणमेदं—पुरिस० जहण्णट्ठिदी एसा १५४ । इत्थि० जहण्ण०ट्ठिदी  
१५६ । हस्स-रदिज० ट्ठिदी १६८ । अरदि-सोगजहण्णट्ठिदी १८४ । णवुंस०जह०  
ट्ठिदी १६४ । एसा उच्चारणप्पावहुअस्स संदिदी ।

§ ८६३. संपहि चिरंतणवक्खाणाइरियाणमप्पावहुअं वत्तइस्सामो । सव्वत्थोवा  
सम्भत्त० जह० ट्ठिदिविहत्ती । सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० ज० विहत्ति० संखे०  
गुणा । पुरिस० ज० विहत्ती असखे० गुणा । इत्थि० जह० विहत्ती विसे० । हस्स-  
रदि० ज० ट्ठि० विह० विसे० । णवुंस० जह० वि० विसे० । अरदि-सोग० ज० वि०  
विसे० । भय-दुगुंछाणं ज० ट्ठिदि० विसे० । वारसण्हं कसायाणं ज० ट्ठि० वि० विसे० ।  
मिच्छत्त ज० ट्ठि० वि० विसे० । एदस्स अप्पावहुअस्स साहण्हमद्धप्पावहुअं वत्तइ-  
स्सामो । तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिस० वंधगद्धा ३ । इत्थि० वंधगद्धा संखे० गुणा  
६ । हस्स-रदिवंधगद्धा विसे० ११ । णवुंस० वंधगद्धा संखे० गुणा २२ । अरदि-सोग  
बंधगद्धा विसेसा० २३ । अप्पप्पणो पडिवक्खवंधगद्धाओ कसायजहण्णट्ठिदीए २००

गुणा है जिसकी सहनानी ६ है । इससे अरति और शोकका बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी  
सहनानी ३२ है । इससे नपुंसकवेदका बन्धकाल विशेष अधिक है इसकी सहनानी ४२ है । ऊपर  
जो अंक सट्टि दी है उसके अनुसार अपने-अपने प्रतिपक्ष बन्धकालोंको कपायकी जघन्य स्थिति  
२०० मेंसे घटा देनेपर सात नोकपायोंकी जघन्य स्थितियाँ होती हैं । उनका प्रमाण निम्न प्रकार  
है—पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति १५४ होती है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति १५६ होती है ।  
हास्य और रतिकी जघन्य स्थिति १६८ होती है । अरति और शोककी जघन्य स्थिति १८४  
होती है । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति १६४ होती है । यह उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये अल्प-  
बहुत्वकी सट्टि है ।

§ ८६३. अब चिरन्तन व्याख्यानाचार्यके अल्पबहुत्वको बतलाते हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति संख्यातगुणी है । पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे  
स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थिति-  
बिभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे  
अरति और शोककी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य  
स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । इससे बारह कपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है ।  
इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति विशेष अधिक है । अब इस अल्पबहुत्वकी सिद्धि करनेके  
लिये अल्पबहुत्वको बतलाते हैं, जो इस प्रकार है—पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे थोड़ा है  
जिसकी सहनानी ३ है । इससे स्त्रीवेदका बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी ६ है ।  
इससे हास्य रतिका बन्धकाल विशेष अधिक है जिसकी सहनानी ११ है । इससे नपुंसकवेदका  
बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी २२ है । इससे अरति और शोकका बन्धकाल विशेष  
अधिक है जिसकी सहनानी २३ है । इस प्रकार ऊपर जो अंकसट्टि दी है उसके अनुसार अपने

सोहिय सत्तमोक्तसायजहण्णहिदीयो उच्चपावेद्व्यामो । पुरिस० जहण्णहिदी १६९ ।  
इत्थि० जह० हिदी १७५ । इत्थ-रदिजहण्णहिदी १७७ । जम्बुस० जह० हिदी १८८ ।  
अरदि सोग जहण्णहिदी १८६ ।

१८९४ एत्थ दोसु वि वक्कलणोसु एककेणेव सत्थेण होद्वन्नं, ण दोणं, पिरो  
इदो । किंतु मय-दुग्ग ज्ञाणमुनरि कसायाणं जह० हिदिविसेसाहिया चि जं मणिदं  
तण्ण घट्ठे ; णेरइयविदियसमए जावकसायहिदिं मयदुग्ग ज्ञासु संकामिय संकामणा  
वत्थियमेत्तहिदीण गाळणोवापामापादो । कुदो ? गहिदसरीरणेइयस्स पढमसमए कसा  
एहि सह मय-दुग्ग ज्ञाणमंतोकोदाकोदिमेत्तहिदिविषुवत्तंभादा । णेरइयविदियसमयादो  
इहा ण मयदुग्ग ज्ञाणं जहण्णहिदी होदि सत्थ मय-दुग्ग ज्ञाहि पडिज्जिज्जमाणकसाप  
जहण्णहिदीए अमाबादो । त पि कुदो जम्बुदे ? णेरइयविदियसमए येव जहण्ण  
सामिचदाणादो । तम्हा बारसकसापदुग्गज्ञाणं जहण्णहिदीओ सरिसाओ चि अमुबारणाए  
मणिदं तं चेव पेत्तव्व पिरवत्तपादो । जह पुण असण्णिपरिमसमए कसायजहण्ण  
हिदीदो मयदुग्ग-जहण्णहिदिविहरीए भावत्थिपूजर्चं सम्मइ तो कसायाणं विसेहियर्चं  
पढद । जवरि एदं ज्ञाणिय वत्तन्नं । उच्चारणाहिणामा पुण तहा ण सम्मइ चि ।

अपने प्रतिपक्ष कथकाओंका कथायकी जपम्य स्थिति ० ० मेंसे पदानपर सात नोम्पायोंकी  
जपम्य स्थितियां उत्पन्न करना चाहिये । उनमेंसे पुरुषवेदकी जपम्य स्थिति १६६ होती है । स्त्रीवेद  
की जपम्य स्थिति १७५ होती है । हास्य और रतिकी जपम्य स्थिति १७० होती है । नपुंसकवेदकी  
जपम्य स्थिति १८८ होती है । अरति और शोककी जपम्य स्थिति १८६ होती है ।

१८९४ यहां इन दोनों व्याख्यानोमेंसे कोई एक व्याख्यान ही सत्य होना चाहिये दोनों  
नहीं, क्योंकि दोनोंको सत्य माननेमें विरोध आता है । किन्तु मय और जुगुप्साके ऊपर कथायोंकी  
जपम्य स्थितिका जो विशेष अधिक कहा है वह नहीं बनता है क्योंकि नारदियोंके उत्पन्न  
होनेके दूसरे समयमें प्राप्त हुए कथायकी स्थितिके मय और जुगुप्सामें संक्रमित कर देम पर संक्रमणा  
वत्तिप्रमाण स्थितियोंके गलानेका कोई उपाय नहीं पाया जाता है । इसका कारण यह है कि  
नारदोंके शरीर प्रसू करनेके पहले समयमें कथायोंके मय मय और जुगुप्साका अन्त काटकाई  
प्रमाण स्थितिबन्ध पाया जाता है । और नारदियोंके दूसरे समयसे नीचे मय और जुगुप्सा  
प्रकृतियोंकी जपम्य स्थिति गयी जाती है क्योंकि वहां मय और जुगुप्साकपसे क्षीयनेवाली कथायों  
की जपम्य स्थिति नहीं पायी जाती है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि नारदियोंके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें ही कथाओंका जपम्य  
स्थानित्व दिया है ।

अतः बाह्य कथाय और जुगुप्सा इनकी जपम्य स्थितियां समान होती हैं मया जा  
व्यारणामें कहा है यही महसूस करना चाहिये क्योंकि यह जपन निर्वोच है । और यदि असत्तियोंके  
अन्तिम समयमें रहम वाली कथायोंकी जपम्य स्थितिसे मय और जुगुप्साकी जपम्य स्थितिमें एक  
आवृत्ती कम कम प्राप्त होता है । ता कथायोंकी जपम्य स्थिति मय और जुगुप्साकी जपम्य स्थितिसे  
विशेष अधिक बन जाती है । किन्तु जानकर इसका जपन करना चाहिये । परन्तु व्याख्यात्मक



§ ८६५. एव पढमाए पुढवीए । विदियादि जाव छट्ति सव्वत्थोवा सम्मत्त-  
सम्माभि०-अणताणु०-चउक्काण जह० विहत्ती । वारसक०-णवणोकसायाणं ज० विह०  
असखेज्जगुणा । मिच्छत्तज० वि० विसेसा० ।

§ ८६६. सत्तमाए पुढवीए सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्माभि०-अणताणु०-चउक्काणं  
ज० द्विदिविहत्ती । पुरिस० ज० द्विदी असंखे०गुणा । इत्थि० ज० द्विदिविहत्ती  
विसेसा० । हस्स-रदिज० वि० विसेसा० । अरदि-सोग० ज० द्विदिवि० विसे० ।  
णबुंस० ज० द्वि० वि० विसेसा० । भय-दुगुंछ० जह० द्विदिवि० विसे० । वारसक०  
ज० वि० विसेसा० । केत्ति यमेत्तेण ? एगावलियामेत्तेण । कुदो ? कसायाणं जहण्ण  
द्विदीए जादाए पुणो आवलियमेत्तमद्धानमुवरि गंतूण भय-दुगुंछाणं जहण्णद्विदिसमु-  
प्पत्तीदो । कसायाणमेत्थ जहण्णद्विदिसंतमवधस्स अतोमुहुत्तमेत्तकालसंभवादो । जहण्ण-  
द्विदिसंतदो कसायद्विदिबंधे अहिए जादे वि भयदुगुंछाणं सगजहण्णद्विदिसंतदो हेट्ठा  
वधसंभवादो । मिच्छत्तज० वि० विसे० । एत्थ अद्धप्पावहुअं णवणोकसायाणं जहण्ण-  
द्विदिउप्पायणविहाणं च पढमपुढविमंगो; भेदाभावादो चिरंतणाइरियवक्खाणं पि एत्थ

अभिप्राय वैसा नहीं है ।

§ ८६५ इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी  
तकके नारकियोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विभक्ति  
सबसे थोड़ी है । इससे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति विभक्ति असंख्यातगुणी  
है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-विभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८६६. सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी  
जघन्य स्थिति विभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति असंख्यातगुणी  
है । इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य  
स्थिति विभक्ति विशेष अधिक है । इससे अरति और शोककी जघन्य स्थिति विभक्ति विशेष  
अधिक है । इससे तपुसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और  
जुगुप्साकी जघन्य स्थिति विभक्ति विशेष अधिक है । इससे बारह कषायोंकी जघन्य स्थिति विभक्ति  
विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? एक आवली अधिक है ।

**शंका**—भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे बारह कषायोंकी जघन्य स्थिति एक आवलि  
अधिक क्यों है ?

**समाधान**—क्योंकि कषायोंकी जघन्य स्थिति हो जानेपर तदनन्तर एक आवलिप्रमाण  
काल आगे जाकर भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति उत्पन्न होती है । इसका कारण यह है कि  
यहां पर अन्तर्मुहूर्त कालतक कषायोंकी सत्तामें स्थित जघन्य स्थितिके समान कषायोंका बन्ध  
संभव है । और जघन्य स्थिति सत्त्वसे कषायका स्थितिबन्ध अधिक होनेपर भी भय और  
जुगुप्साका अपने जघन्य स्थिति सत्त्वसे नीचे बन्ध संभव है । बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिसे  
मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्ति विशेष अधिक है । यहां पर काल सम्बन्धी अल्पबहुत्वको और  
नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके उत्पन्न करनेकी विधिको पहली पृथिवीके समान जानना चाहिये,

मप्यनो पदमपुहविहस्वाणसमाणं ।

५८६७ तिरिक्त्वर्गए सम्प्रत्योषा सम्प्रत० जह० द्विदिविहरी । त्रिपिया द्विदि  
विहरी त्रिपिया च व सम्प्रामि० । अणंताणु० चठक्क० ण० द्विदि० त्रिपिया चैव ।  
अ० द्विदिविह० संखे० गुणा णिसेगसमयगगणादो । पुरिस० अ० द्विदिपि० असंखेज्ज  
गुणा । इतिअह० द्विदिवि० विमे० । हस्तरदि० अ० निह० विमेसा० । अरदि  
सोगअ० पि० विसे० । णवु स० अ० द्विदिविह० विमे० । मय-दुगु अ० ज० वि० विसे० ।  
वारसक० जह० विहरी विसेसा० । कारणमेत्थ जहा सचमपुहवीए उच्च तथा वचम्भ ।  
मिच्छत्तजह० द्विदिवि० विसे० । एत्थ उच्चारणाइरियस्त सत्तणोक्कसायव्वगदाओ  
पुम्भं व वचम्भाओ; ऋगुदीसु तासि विसेसामावादो । वक्त्वाणाइरियाणमेत्थ सत्तणो  
क्कसायद्वप्यावहुअमुच्चारणद्वप्यावहुएण सरिसत्तेण तिरिक्त्वर्गए गरिय दोणमप्याव  
हुमाणं मेदो । एवं पंचिदियतिरिक्त्व-मंचि० तिरि० पञ्चचारणं । णवरि णवुस० जहण्ण  
द्विदीए च्वरि मय-दुगु ज्ञाजहण्णद्विदी संखे० गुणा । कुदो ? णवु सयव्वजहण्णद्विदी  
णाम सागरोवमचचारि सत्तमागा पस्सिदो० असत्ते० मागण पडिक्कत्तव्वगदाए व ऊणा;  
पंचिदियसु सम्पञ्चिय वंशामावण पंचिदियद्विदिसत्तम्वेव तत्तत्तोमुहुचकालुवळमादो । मय

क्योंकि इससे इसमें कोई भेद नहीं है । चिरन्तनाचार्यका व्याख्यान भी वहाँ अपने पहली प्रविषीके  
व्याख्यानके समान है ।

५८८० तिर्यग्गतिमें सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिबिमर्शित सबसे थोड़ी है । सम्यक्त्वकी  
जितनी स्थितिबिमर्शित है उतनी ही सम्यग्मिथ्यात्वकी और उतनी ही अनन्तलुपधी बहुपक्षकी  
अपन्य स्थिति है । पर यह स्थिति बिमर्शित संख्यातगुणी है, क्योंकि इसमें निपक्षोंके समर्थोक्त प्रत्यक्ष  
क्रिया है । इससे पुरुषवेदकी अपन्य स्थितिबिमर्शित असंख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवदकी अपन्य  
स्थितिबिमर्शित विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी लक्ष्म स्थितिबिमर्शित विशेष अधिक  
है । इससे अरति और झोक्की अपन्य स्थितिबिमर्शित विषय अधिक है । इससे नपुंसकवदकी  
अपन्य स्थितिबिमर्शित विशेष अधिक है । इससे मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थितिबिमर्शित विषय  
अधिक है । इससे चारद्व कपावोकी अपन्य स्थितिबिमर्शित विशेष अधिक है । इसका कारण जिस  
प्रकार सातवीं प्रविषीमें यह आया है उस प्रकार वहाँ कहा जाहिये । चारद्व कपावोकी अपन्य  
स्थितिसे मिथ्यात्वकी अपन्य स्थितिबिमर्शित विशेष अधिक है । वहाँ उच्चारणाचार्यके द्वारा यह  
गये सात नोकपावोके बन्धकालोंका पहलेंके समान व्याख्यान करना चाहिये; क्योंकि चारों  
गतिबोमें इनके कर्ममें कोई विशेषता नहीं है । परन्तु यहाँ तिर्यग्गतिमें व्याख्यानमाचार्यके द्वारा  
कहा गया सात नोकपावो सम्बन्धी अपन्यबहुव्य उच्चारणाचार्यके अस्तरवृत्तके समान है अतः  
तिर्यग्गतिमें जानो अपन्यबहुव्यमें कोई भेद नहीं है । इसी प्रकार पंचमित्रिय नियम और पंचमित्रिय  
तिर्यक् पर्याप्तकोके जानना चाहिये । किन्तु इनकी विशेषता है कि नपुंसकवदकी अपन्य स्थिति  
ऊपर मय और जुगुप्साकी अपन्य स्थिति संख्यातगुणी है, क्योंकि पंचमित्रिय तिर्यक् और पंचमित्रिय  
तिर्यक् पर्याप्तकोमें नपुंसकवदकी अपन्य स्थिति एक सागरके सात भ्रमोंमेंसे पस्यापमय  
असंख्यातवा भाग और प्रतिपक्ष प्रवृत्तिके बन्धकालसे कम चार भागमयाव होती है क्योंकि चार  
एक पंचमित्रिय पंचमित्रियोंमें उत्पन्न हुआ और उसमें नपुंसकवेदका वण्य नहीं किया तो इसके

§ ८६५. एव पदमाए पुढवीए । विदियादि जाव छट्ति सच्चत्थोवा सम्मत्त-सम्माभि०-अणताणु०-चउकाण जह० विहत्ती । वारसक०-णवणोकसायाणं ज० विह० असखेज्जगुणा । मिच्छत्तज० वि० विसेसा० ।

§ ८६६. सत्तमाए पुढवीए सच्चत्थोवा सम्मत्त-सम्माभि०-अणताणु०-चउकाणं ज० द्विदिविहत्ती । पुरिस० ज० द्विदी असखे०गुणा । इत्थि० ज० द्विदिविहत्ती विसेसा० । हस्स-रदिज० वि० विसेसा० । अरदि-सोग० ज० द्विदिवि० विसे० । णवुंस० ज० द्वि० वि० विसेसा० । भय-दुगुंछ० जह० द्विदिवि० विसे० । वारसक० ज० वि० विसेसा० । केत्तियमेत्तेण ? एमावलियामेत्तेण । कुदो ? कसायाणं जहण द्विदीए जादाए पुणो आवलियमेत्तमद्वाणमुवरि गंतूण भय-दुगुंछाणं जहणद्विदिसमु-प्पत्तीदो । कसायाणमेत्थ जहणद्विदिमंतसमवधस्स अतोमुहुत्तमेत्तकालसभवादो । जहण-द्विदिसंतादो कसायद्विदिवंधे अहिए जादे वि भयदुगुंछाणं सगजहणद्विदिसंतादो हेद्वा वधसभवादो । मिच्छत्तज० वि० विसे० । एत्थ अद्धप्पावहुअं णवणोकसायाणं जहण-विदिउप्पायणविहाणं च पढमपुढविमंगो; भेदाभावादो चिरंतणाइरियवक्खाणं पि एत्थ

अभिप्राय वैसा नहीं है ।

§ ८६५ इसी प्रकार पहली पृथिवीमे जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे वारह कपाय और नौ नाकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-विभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ८६६. सातवीं पृथिवीमे सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थिति-विभक्ति विशेष अधिक है । इससे अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे वारह कपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? एक आवली अधिक है ।

**शुका**—भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे वारह कपायोंकी जघन्य स्थिति एक आवलि अधिक क्यों है ?

**समाधान**—क्योंकि कपायोंकी जघन्य स्थिति दो जानेपर तदनन्तर एक आवलिप्रमाण काल आगे जाकर भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थित उत्पन्न होती है । इसका कारण यह है कि यहां पर अन्तर्मुहूर्त कालतक कपायोंकी सत्तामें स्थित जघन्य स्थितिके समान कपायोंका बन्ध संभव है । और जघन्य स्थिति सत्त्वसे कपायका स्थितिबन्ध अधिक होनेपर भी भय और जुगुप्साका अपने जघन्य स्थितिसत्त्वसे नीचे बन्ध संभव है । वारह कपायोंकी जघन्य स्थितिसे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । यहां पर काल सम्बन्धी अल्पबहुत्वकी और नौ नाकपायोंकी जघन्य स्थितिके उत्पन्न करनेकी विधिको पहली पृथिवीके समान जानना चाहिये,



दुग्ंछाण पुण सागरोवमसहस्सस्स वे सत्तभागा पल्लिदोवमस्स मंखे० भागेणूणा, भयदुग्ंछाण ध्रुववधित्तेणे पंचिंदिएसुप्पण्णपढमसमए वि वंयसंभगादो । तेए एवुंसं० जहण्णद्विदीदो भयदुग्ंछजहण्णद्विदी सखेज्जगुणा त्ति सिद्धं । वारसक० जहण्णद्विदी सखे०गुणा । कुदो ? पल्लिदो० सखे०भागेणूणं सागरोवमसहस्सचत्तारिमत्तभागत्तादो । पिच्छत्त-जहण्णद्विदी विसे० ; पल्लिदो० सखे०भागेणूणसागरोवमसहस्सस्स सत्त सत्त भागत्तादो । जोण्णिणीसु एवं चेव, णवरिं सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० ज० द्विदिविहत्ती ।

८६८ पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु सव्वत्थोवा सम्मत्त०-सम्मामि० ज० द्विदिवि० । पुरिस० ज० द्विदिवि० असंखे०गुणा । सेस० पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्काए वारसक०भंगो । एवं मणुसअपज्ज०-पंचि०अपज्ज०-तस-अपज्जत्ताणं ।

§ ८६९. एहंदिउ-वादेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं तिरि-क्खोवभंगो । णवरि सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तेण सह वत्तव्वं, अणंताणु०चउक्क च वारस-अन्तमुहूर्त कालतक एकेन्द्रियोंका स्थितिसत्त्व ही पाया जाता है । परन्तु भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्योपमका संख्यातवा भाग कम दो भागप्रमाण पाई जाती है, क्योंकि भय और जुगुप्सा ध्रुववन्धिनी प्रकृतिया होनेसे पचेन्द्रियों उत्पन्न होनेके पहले समयमें भी उनका बन्ध सभव है, इसलिये नपु सकवेदकी जघन्य स्थितिसे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति सरयातगुणी होती है यह सिद्ध हुआ । भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे वारह कपायोंकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी है, क्योंकि वारह कपायोंकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्योपमके संख्यातवें भाग कम चार भागप्रमाण है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विशेष अधिक है, क्योंकि इसका प्रमाण हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्योपमका संख्यातवा भाग कम सात भागप्रमाण है । पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है ।

§ ८६८ पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-विभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति असंख्यातगुणी है । शेष प्रवृत्तियोंका भंग पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग वारह कपायोंके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८६९. एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके सामान्य तिर्यचोंके समान भग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका कथन सम्यग्मिथ्यात्वके साथ करना चाहिये ।

१ आ प्रती '—भागेणूणा' इति पाठ । २ आ ता प्रत्यो 'द्विदिवि० संखे०गुणा । पुरिस०' इति पाठ ।

कसाएई सह माणिदम्ब । सम्बविगलिदियाणं पंचिदियअपज्जत्तभंगो ।

‡ ६०० कायाणुवादेण सन्नपुइवि०-सम्बआठ०-सम्बसेउ०-सम्बवाठ०-सम्बवण  
फदि०-सम्बणिमोद०-आदरवणफदिपचेय०-पज्जत्तापज्जत्ताणं एइदियमंगो । बे  
अण्णाण० अमव०-मिच्छादि० असण्णीणं च एइ दियमंगो । एअरि अमम्बेसु सम्मत्त  
सम्माभि० एत्थि ।

‡ ९०१ देवगईण देवाएणं गारगमंगो । एअं मण०-वाण्णेत० । एअरि सम्मत्त  
सम्माभिच्छेण सह माणिदम्ब । ओइसियेसु सम्बत्थोवा सम्मत्त-सम्माभिच्चत्त०  
अणंताणु० चउक्क० न० विइची । बारसक० एअणोक्क० ख० विइ० असंखे० गुणा ।  
न० द्विदि० संखे० गुणा । मिच्छत्त० ख० विइची वित्तेसा० ।

‡ ६०२ सोइम्यादि आअ जज्जगज्जासि सम्बत्थोवा सम्मत्तन० विइची ।  
सम्माभि० अणंताणु० चउक्क० न० विइची सत्थिया चेव । न० द्विदि० संखेअगुणा ।  
बारसक०-गवणोक्क० अइण्णविइची असंखे० गुणा; काम्पहाणपावत्तवणादो । एिमेय  
पहाण्णे पुण बारसक० अइणोक्कसायाणमुअरि पुरिमवेदन० द्विदिवि० वित्ते० । एसो  
अत्थो अएत्थं वि वत्थो । मिच्छत्तन० विइ० संखे० गुणा । अपुरिसादि नाअ  
सम्बइसिद्धि चि सम्बत्थोवा सम्मत्तन० विइची । अणता० चउक्क० न० द्विदिविइची

और अनन्तलुबन्धी बतुएक्का कवन बारह कपायके साथ करना चाहिये । सब विद्वान्त्रियोंका  
संग पंचेन्द्रिय अपर्याप्तके समान है ।

‡ ६०० अयममंणके अनुवायसे सब पुबिचीकाविक, सब जलकाविक, सब अग्निकाविक,  
सब वायुकाविक, सब वनस्पतिकाविक सब निगोद वाअर वनस्पतिअविक प्रायेक्षरीर और  
जनने पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंके पंचेन्द्रियोंके समान संग है । मत्स्यजानी मुतामाना, अमम्ब  
मिच्छादृष्टि और अमद्वियोंके पंचेन्द्रियोंके समान संग है । किन्तु इतनी विषयता है कि अमम्बोंमें  
सम्बत्सव और सम्ममिध्यात्थ वे दो प्रकृतियां नहीं हैं ।

‡ ६०१ देवगतियें देवोंका संग गारकियोंक समान है । इसी प्रकार भवनवासी और  
अन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मत्स्यत्सवका सम्ममिध्यात्सव  
सब अत्यवगत कहना चाहिये । व्याप्तियोंमें सम्मत्सव सम्ममिध्यात्सव और अनन्तलुबन्धी  
बतुएक्की अपम्य स्थितिबिमर्षित सबसे बाढ़ा है इससे बाह्य कपाय भी मोक्षप्राप्तोंकी अपम्य  
स्थितिबिमर्षित असंख्यानगुणी है । इससे गरिस्थितिबिमर्षित संख्यातगुणी है । इसल मिध्यात्वकी  
अपम्य स्थितिबिमर्षित भिन्न अधिक है ।

‡ ६०२ औपम स्वर्गसे ऊपर भी मीथेयक तकके देवोंमें मत्स्यत्सवकी अपम्य स्थितिबिमर्षित  
सबसे बाढ़ी है । सम्ममिध्यात्सव और अनन्तलुबन्धी बतुएक्की अपम्य स्थितिबिमर्षित इतनी ही  
है । पर यत्स्विति संख्यातगुणी है । इससे बाह्य कपाय और भी मोक्षप्राप्तोंकी अपम्य स्थिति  
बिमर्षित अममत्सवगुणी है क्योंकि यहां पर कामकी प्रधानता स्वीकार की गई है । मित्रोंकी  
प्रधानता रहनेपर ता बाह्य कपाय और आठ नाकप्राप्तोंक ऊपर पुरुषवत्का अपम्य स्थितिबिमर्षित  
बिगेर अधिक है । यह अर्थ अत्यन्त ही कहना चाहिये । हमने मिध्यात्वकी अपम्य स्थितिबिमर्षित  
संख्यातगुणी है । अनुरिच्छे सेअर सचार्थसिद्धि तकके देवोंमें मत्स्यत्सवकी अपम्य स्थितिबिमर्षित

तत्तिया चेव । ज० द्वि० वि० संखे० गुणा । वारसक० एवणोक्क० जह० विहत्ती असंखे० गुणा । मिच्छत्त-सम्पामि० ज० द्विदि वि० संखे० गुणा ।

§ ६०३. ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघभंगो । णवरि अणंताणु० चउक्क० वारस-कसायभंगो । एवं वेउव्वियमिस्स० । णवरि णवुंसयवेदस्सुवरि वारसक०-भय-दुगुंछ० जह० संखे० गुणा । मिच्छ० सखे० गुणा । अणंताणु० चउक्क० संखे० गुणा । वेउव्वि-यक्काय० सोहम्मभंगो । णवरि सम्मत्तं सम्पामिच्छत्तेण सह वत्तव्व । कम्मइय० सक्क-त्थोवा सम्मत्त० ज० द्विदिवि० । सम्पामि० ज० वि० संखे० गुणा । पुरिस० ज० द्विदिवि० असंखे० गुणा । इत्थिज० वि० विसे० । हस्स-रदि० ज० पि० विसे० । अरदि-सोग० ज० वि० विसे० । णवुंस० ज० वि० विसे० । भय-दुगुंछ० ज० वि० विसे० । सोलसक० ज० वि० विसे० । मिच्छ० ज० वि० विसेमाहिया । एवमणा-हारीण । आहार० आहारमिस्स० सक्कत्थोवा वारसक०-णवणोक्क० ज० द्विदिवि० । मिच्छ०-सम्म०-सम्पामि० ज० द्विदिवि० सखेज्जगुणा । अणंताणु० चउक्क० ज० द्वि० वि० संखे० गुणा ।

§ ९०४. वेदाणुवादेण इत्थिवेदे सक्कत्थोवा सम्मत्त-इत्थि० जह० द्वि० विहत्ती ।

सबसे थोड़ी है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति उतनी ही है । पर यत्स्थिति विभक्ति सख्यातगुणी है । इससे वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है ।

§ ६०३. औदारिकमिश्रकाययोगियोंका भग सामान्य तिर्यचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग वारह कषायोंके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिक-मिश्रकाययोगियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें नपुसकवेदके ऊपर वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । वैक्रियिककाययोगियोंका भग सौधर्म कल्पके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वकी सम्यग्मिथ्यात्वके साथ कहना चाहिये । कर्मणुकाययोगियोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति-विभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे अरति और शोकका जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे सोलह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना चाहिये । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सख्यातगुणी है ।

§ ६०४ वेद मार्गणके अनुवादसे स्त्रीवेदमें सम्यक्त्व और स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति





वि० संखे० गुणा । एवं माणकसाईसु, णवरि वारसक० ज० द्विदीदो तिणिसंज० ज० द्विदी असखे० गुणा । कोधसंज० ज० द्वि० संखे० गुणा । पुरिस० ज० द्विदी संखे० गुणा । छण्णोक० ज० द्वि० संखे० गुणा । एवं मायक०, णवरि वारसक० जह० द्विदीदो उवरि माया-लोभसंजलणाणं ज० द्विदीओ असंखे० गुणाओ । माणसंज० ज० संखे० गुणा । कोधसज० ज० वि० संखे० गुणा । पुरिसज० वि० संखे० गुणा । छण्णोक० ज० वि० संखे० गुणा ।

§ ६०६. अकसाईसु सव्वत्थोवा वारसक०-णवणोक० ज० द्वि० विहत्ती । सम्मत्त-मिच्छत्त-सम्माभि० ज० वि० संखे० गुणा । एवं जहाक्खाद० । सुहुमसांपरा० एवं चेव । णवरि सव्वत्थोवा लोभसंजल० ज० द्वि० विह० । एकारसक०-णवणोक० ज० द्वि० वि० असंखे० गुणा ।

§ ६०७. विहंगणाणीणं जोदिसियभंगो । णवरि अणंताणु० चउक्कस्स वारसक० सायभंगो । मणपज्ज० आभिणि० भंगो । णवरि छण्णोकसायाणमुवरि इत्थिवेद० जह० असंखे० गुणा । णवुंस० जह० असंखे० गुणा । सामाइयद्धेदो० मायकसायभंगो । णवरि वारसकसायाणमुवरि लोभसंज० ज० वि० असंखे० गुणा । माय० ज० वि०

नोरुपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सख्यातगुणी हैं । इसी प्रकार मान कषायवाले जावोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें वारह कषायोंकी जघन्य स्थितिसे तीन सज्जलनोंकी जघन्य स्थिति असख्यातगुणी हैं । इससे क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति सख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति सख्यातगुणी है । इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सख्यातगुणी है । इसी प्रकार मायारुपायवाले जावोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें वारह कषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्तिसे ऊपर माया और लोभसज्जलनोंकी जघन्य स्थितिया असख्यातगुणी हैं । इससे मानसज्वलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सख्यातगुणी है । इससे क्रोधसज्जलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सख्यातगुणी है । इससे छह नाकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सख्यातगुणी है ।

§ ६०६. कषाय रहित जावाम वारह कषाय और नौ नोरुपायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यक्त्व मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सख्यातगुणी है । इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जावोंके जानना चाहिये । सूक्ष्म सापरायिकसंयत जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें लोभसज्जलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति सबसे थोड़ी है इससे ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिबिभक्ति असख्यातगुणी है ।

§ ६०७. विभगज्ञानियोंके ज्योतिषियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग वारह कषायोंके समान है । मनःपर्ययज्ञानियोंके मतिज्ञानियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके छह नोकषायोंके ऊपर स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति असख्यातगुणी है । इससे नपुंसवेदकी जघन्य स्थितिबिभक्ति असख्यातगुणी है । सामांयिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जावोंके मायाकषायवाले जीवोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कषायोंके ऊपर लोभसज्जलनकी जघन्य स्थितिबिभक्ति असख्यातगुणी है ।

संख्ये० गुणा । उषरि णत्थि विसेसो ।

१०८ परिहारसूत्र० सम्प्रदाया सम्प्रदाय० हि० वि० । मिच्छत्त०-सम्मा  
मि०-अणत्ताणु०-चत्तक० अ० वि० सत्ते० गुणा । बारसक०-णत्तणोक्क० अ० हि० वि०  
असत्ते० गुणा । एवं सब्बदासं ब्रह्म-वैद्य-यम्मलेस्सार्ण । असं ब्रह्म० सम्प्रदाया सम्प्रदाय०  
अ० हि० वि० । मिच्छत्त० सम्मामि० अणत्ताणु०-चत्तक० अ० हि० वि० सत्ते० गुणा ।  
सेस० विरिक्खोप ।

॥ २०६ ॥ किं न गीतल्लेस्साण तिरिक्खयंमो । जवरि सम्पत्तं-सम्मामिध्वत्तेण  
सह वत्तम् । काठं तिरिक्खोपं ।

॥ ६१० ॥ स्वयं० सम्बन्धोवा सोपसं० इत्थि-गुण० स० अ० वि० । अहं०  
साय० अ० द्वि० वि० संस्ते० गुणा । मायासं० अ० द्वि० वि० अस्तंस्ते० गुणा ।  
सेसमोच० । वेदगसम्मादिदी० परिहारमंगो । अवसम० सम्बन्धोवा अर्गताप्यु० चउक०  
अ० द्वि० वि० । बारसक०-अवजो० अ० द्वि० वि० अस्तंस्ते० गुणा । मिच्छत्त  
सम्मापि० अ० द्विदि० वि० वितेसा० । सासण० सम्बन्धोवा सोससक० अवजो०  
अ० द्वि० वि० । मिच्छत्त-सम्मापि० अ० द्वि० वि० वितेसा० । सम्मापि०  
सम्बन्धोवा सम्मापि० अ० द्वि० वि० । सम्मापि० अ० द्वि० वि० विस० । बारसक०

इससे मायासंन्यास की अपेक्षा स्थितिबिनामक संन्यासगुणी है। ऊपर आर कोई निश्चयता नहीं है।

§ १०८ पश्चात्पश्चात्संयतोर्मै सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिनिर्मित सबसे बाड़ी है। इससे मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तलुब्धकी चतुष्पदी अपन्य स्थितिनिर्मित संख्यातगुणी है। इससे बाह्य क्वाय और नौ नाक्यावर्गकी अपन्य स्थितिनिर्मित असंख्यातगुणी है। इसा मन्त्र संवत्तासंयत, पीतलेख्यमन्त्र और पञ्चसंख्यातल जावर्ग जानमा चाहिये। असंयतोर्मै सम्यक्त्वकी अपन्य स्थितिनिर्मित सबसे बाड़ी है। इससे मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तलुब्धकी चतुष्पदी अपन्य स्थितिनिर्मित संख्यातगुणी है। छेप कथन सामान्य विवेचनोक्त समान है।

§ ६०६ कृष्ण और नीलसेस्यावाले जीवोंके तिर्यचोंके समान भोग है। किन्तु इतनी विप्रेयता है कि इनके सम्पत्तिका कबन सम्पत्तिमध्यात्वेक सत्य करना चाहिये। अप्रोतसेस्यावाले जीवोंके सामान्य तिर्यचोंके समान जानना चाहिये।

§ ६१० कामिहस्तसम्पन्नादिभिर्मैत्र्योपसंभारजन, स्त्रीवत् और नपुंसकप्रेमकी अवस्थ स्थिति-  
विमर्शित सप्तम धात्री है। इससे आठ कार्याओंकी अपन्य स्थिति विमर्शित संभारतृणी है। इससे  
मायासंभारजनकी अवस्थ स्थिति विमर्शित अस्तंभ्यातृणी है। छत्र कवन व्यापके समान है। बद्ध-  
सम्पन्नादिप्रयोगके परिहारविशेषितसंयतोंके समान भोग है। अपगमसम्पन्नादिप्रयोगमें अन्तर्मातृव्यापी  
अतृणीकी अवस्थ स्थिति विमर्शित सप्तम धात्री है। इससे बारह कार्या और नौ नोष्ठार्योंकी अपन्य  
स्थिति विमर्शित अस्तंभ्यातृणी है। इससे मिथ्यात्व सम्पन्नत्व और सम्पन्नमिथ्यात्वकी अपन्य  
स्थिति विमर्शित विधेय अधिक है। साधारणसम्पन्नादिप्रयोग साधारण व्याप और नौ मातृधार्योंकी  
अपन्य स्थिति विमर्शित सप्तम धात्री है। इससे मिथ्यात्व सम्पन्नत्व और सम्पन्नमिथ्यात्वकी अपन्य  
स्थिति विमर्शित विधेय अधिक है। सम्पन्नमिथ्यादिप्रयोगमें सम्पन्नत्वकी अपन्य स्थिति विमर्शित सप्तम  
धात्री है। इससे सम्पन्नमिथ्यात्वकी अपन्य स्थिति विमर्शित विधेय अधिक है। इससे बारह कार्या

णवणोक० ज० द्वि० वि० संखेज्जगुणा । मिच्छ० जह० विसे० । अणंताणु० चउक०  
ज० द्वि० वि० संखे० गुणा ।

एव द्विदिअप्पावहुगाणुगमो समत्तो ।

§ ९११. संपहि जीव अप्पावहुगाणुगम वत्तइस्सामो । सो दुविहो—जहण्णओ  
उकस्सओ चेदि । तत्थ उकस्सए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ  
ओघेण छ्वीसं पयदीणं सव्वत्थोवा उकस्सद्विदिविहत्तिया जीवा । अणुक० द्विदि-  
विहत्तिया जीवा अणंतगणा । सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा उक० द्विदि०  
जीवा । अणुक० द्विदि० जीवा असंखे० गुणा । एवं तिरिक्ख०-एइदिय-वणप्फदि०-  
णिगोद०-वादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-  
णवुंस०-चत्तारिक०-मदिसुदअण्णाण-असजद०-अचक्खुदस०-तिणिले०-भवसि०-  
अभव०-मिच्छादि०-असणी०-आहारि०-अणाहारि त्ति । णवरि अभव० सम्म०-सम्मा-  
मि० णत्थि ।

§ ९१२. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा अट्ठावीस० उक० द्विदि० जीवा । अ-  
णुक० द्विदि० जीवा असंखे० गुणा । एव सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख०-मणुस  
मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद त्ति सव्वविगलंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्व-  
चत्तारिकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउ० मिस्स-इत्थि-पुरिस०-विहं-

और नौ नोकषायोंकी जगन्य स्थितिबिभक्ति सख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-  
विभक्ति विशेष अधिक है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिबिभक्ति सख्यातगुणी है ।

इस प्रकार स्थिति अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ ९११. अब जीव विषयक अल्पबहुत्वानुगमको बतलाते हैं । वह दो प्रकारका है—जघन्य  
और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-  
निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा छ्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्ति-  
वाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव अनन्तगुणें हैं । सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणें हैं । इसी प्रकार तिर्यंचों, तथा एकेन्द्रिय, वनस्पति और निगोद  
जीव तथा इन तीनोंके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीव तथा काययोगी,  
औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी कर्मणकाययोगी, नपुसकवेदवाले, चारों कषायवाले,  
मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्या  
दृष्टि, असत्ता, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंके  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिया नहीं हैं ।

§ ९१२ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले  
जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणें हैं । इसा प्रकार सब  
नारकी, सब पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर  
अपराजित तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पचेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक आदि चार कायवाले,

म०-आमिषि०-सुद०-ओहि०-संभदासंभद०-चक्रसु०-ओहिदस०-तिष्णिळे०-सम्मादि०-  
स्वयसम्मा०-बदयसम्मादि०-उवसम०-सासण०-सम्माभि०-सण्णि चि ।

॥ ९१३ ॥ मणुसपञ्च०-मणुसिणोसु सञ्जयपञ्चोऽसञ्जयतोवा उक्त० द्विदि० जीवा ।  
अनुक्त० द्विदि जीवा संखे० गुणा । एव सञ्चद्व०-आहार० आहारमिस्स-अवगद०-  
अकसा०-मणपञ्च०-जाणी-संभद०-सामाहय-अदो०-परिहार०-सुहुमसांप० महाक्त्वाद०  
संभदे चि ।

एवमुक्तस्समो जीव अप्यावहुगापुममो समचो ।

॥ ९१४ ॥ अहण्णए पयदं । दुविही छिहेसो—ओमेण आदेसेण य । तरण ओपेण  
सञ्जयतोवा सञ्जयपञ्चोऽसञ्जयतोवा उक्त० द्विदि० जीवा । अथ० उक्तस्समंगो । एवं सञ्जयपञ्चय  
सञ्चपंचिदियतिरिक्ख-सञ्चमणुस-सञ्चदेव-सञ्चविगिहिय-सञ्चपंचिदिय-अचारि काप  
सञ्चतस-पंचमणु पंचवधि०-अयबोगि० ओरासि०-वेउम्भि०-वेउम्भियमिस्स० आहार०  
आहार०मिस्स०-तिष्णिळे०-अवगद०-अचारिक० अकसा०-विहंग०-आमिषि० सुद०  
ओहि०-मणपञ्च०-संभद०-सामाहयअदो०-परिहार०-सुहुम०-महाक्त्वाद०-समदासंभद०  
चक्रसु०-ओहिदस०-तिष्णिळे० मवसि०-सम्मादि०-स्वय०-बेदय०-उवसम०-सासण०

सब ब्रह्म, पांचों मनायोगी, पांचों कवनयोगी वैद्विषिककाययोगी वैद्विषिकमिन्नकाययोगी,  
एतदेवबाले, पुरुषदेवबाले विमंगलानी, मतिज्ञानी जनज्ञानी अचक्षिज्ञानी संयतासंयत चक्र-  
बलैनाले अचक्षिज्ञानी, पीतादि तीन सेवकाबाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञानिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि  
लपकसम्यग्दृष्टि, सामाहयसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिज्जमदृष्टि और छंदो जीवोंके जानना ।

॥ ९१५ ॥ मणुप्य पर्याप्त और मनुष्यनियोगे सब प्रकृतियोंकी कृत्स्न स्थितिबिम्बितबाले जीव  
सबसे बोधे हैं । इन्से अनुकूल स्थितिबिम्बितबाले जीव संभवातरुणे हैं । इसी प्रकार सर्ववै-  
सिदिक देव आहारकअभयोगी, आहारकमिन्नकाययोगी अपगतवेदबाले, अकसापबाले मना  
पर्यवज्ञानी संयत सामाधिकसंयत, जेहोपरस्थापनासंयत, परिहारविमुक्तिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिक-  
संयत और यथाक्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए ।

इस प्रकार कृत्स्न जीव अल्पकृतत्वानुगम समाप्त हुआ ।

॥ ९१६ ॥ अथ जीव विपयक अपय्य अल्पकृतत्वक प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देस हो  
प्रकरण है—ओचनिर्देस और आदेसनिर्देस । उनमेंसे ओचकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी अपय्य  
स्थितिबिम्बितके धारक जीव सबसे बोधे हैं । अपय्यमय्यक अंग कृत्स्नके समान है । इसी प्रकार  
सब मारकी, सब पंचेन्द्रिक विदेव सब मणुप्य, सब देव सब विद्वेन्द्रिक सब पंचेन्द्रिक, पृथिवी  
आदि चार स्वावर काय, सब ब्रह्म पांचों मनायोगी पांचों कवनयोगी अभयोगी, ओहदिक-  
अभयोगी वैद्विषिककाययोगी वैद्विषिकमिन्नकाययोगी आहारकअभयोगी आहारकमिन्नकाय-  
योगी, तीनों वेदबाले, अपगतवेदबाले ज्येष्ठादि चारों कयायबाले, अकसायी विमंगलानी मति  
ज्ञानी जनज्ञानी अचक्षिज्ञानी मनापर्यवज्ञानी संयत, सामाधिकसंयत, जेहोपरस्थापनासंयत,  
परिहारविमुक्तिसंयत सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाक्यातसंयत संयतसंयत, चक्रबलैनाले अचक्षि-  
ज्ञानी, पीतादि तीन सेवकाबाले मय्य, सम्यग्दृष्टि ज्ञानिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि, लपकम-



